बौद्धभारतीग्रन्थमाला—३७
Bauddha Bharati Series—37

विनयपिटके

महावग्गपालि

[हिन्दी अनुवाद सहिता]

बौद्धभारती
वाराणसी

प्रधान सम्पादक
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारतीग्रन्थमाला–३७

Bauddha Bharati Series—37

विनयपिटके

महावग्गपालि

[हिन्दी अनुवाद सहिता]

बौद्धभारती

वाराणसी

प्रधान सम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-३७

Bauddha Bharati Series-37

विनयपिटके

महावग्गपालि

[हिन्दीअनुवादसहिता]

प्रधानसम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

Bauddha Bharati Series-37

The
MAHĀVAGGAPĀLI

With
HINDI TRANSLATION

Edited & Translated By
Swāmī Dwārikādās Śāstrī

BAUDDHA BHARATI
VARANASI

2542 B.] 1998 [V. 2055

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-३७

विनयपिटके

महावग्गपालि

हिन्दीरूपान्तरसहिता

सम्पादक एवं अनुवादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारती

वाराणसी

बु० २५४२] १९९८ ई० [वि०२०५५

पो० बॉ० नं० १०४९
वाराणसी-२२१ ००१. (भारत)

P. B. No. 1049
VARANASI-221 001 [India]

सहसम्पादक :
धर्मकीर्त्तिशास्त्री
चन्द्रकीर्त्तिशास्त्री

प्रथम संस्करण : १९९८

First Edition : 1998

Price Rs. 500/=

मुद्रक :

तरुण ऑफसेट प्रिंटर्स,
518/14 अनूप मार्केट, मौजपुर, दिल्ली – 53
☎ 2260794

प्रकाशकीय वक्तव्य

"अनुजानामि, भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं" ति

— विनयपिटके, भगवा बुद्धो।

बौद्धभारती के स्थापनाकाल (सन् १९६८ ई०) से ही हमारा यह सङ्कल्प था कि समग्र त्रिपिटक (बुद्धवचन) का हिन्दी-रूपान्तर (अनुवाद) के साथ पुनः प्रकाशन होना चाहिये, जिससे वह अन्य (भाषाओं के) विद्वानों के लिये भी उपयोगी हो सके। परन्तु यह कार्य स्वयं में इतना विशाल, गुरुतर एवं बहुव्ययसाध्य था कि बौद्धभारती जैसा अल्पसाधन वाला प्रतिष्ठान एकाकी इसके प्रकाशन का साहस नहीं कर पा रहा था।

एतदर्थ, हमने विगत पन्द्रह वर्षों में अत्यधिक प्रयास किया; भारत के केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय से, उ०प्र० शासन के शिक्षा विभाग से, भारत के अनेक साधनसम्पन्न प्रकाशकों से तथा धनपतियों एवं बुद्धिजीवियों से इस कार्य के लिये आर्थिक साधन संगृहीत कराने हेतु निवेदन किया; परन्तु किसी ने भी, इस कार्य हेतु, हमारा उत्साहवर्धन नहीं किया।

अन्त में, हमने विवश होकर, बौद्धभारती के अपने अल्प साधनों के बल पर ही इस कार्य को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। तदनुसार, सर्वप्रथम सुत्तपिटक का **मज्झिमनिकाय** (सम्पूर्ण) हिन्दी अनुवाद के साथ पाँच भागों में प्रकाशित किया गया जो कि पाँच वर्ष में पूर्ण हुआ।

उसी क्रम में, हमने सुत्तपिटक का **दीघनिकाय** (सम्पूर्ण) (हिन्दी अनुवाद के साथ) का भी तीन भागों में प्रकाशन किया।

अब हम **विनयपिटक** में **महावग्ग** नामक अत्यावश्यक ग्रन्थ उसी पद्धति में आप के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं।

'मज्झिमनिकाय' की तरह इसमें भी हमने पालि-पाठ के लिये बर्मा में हुए छट्ठ सङ्गायन पर आधृत, और श्रीलंका, स्याम (थाईलैण्ड) तथा पालिटैक्स्ट सोसाइटी लन्दन के संस्करणों का सहयोग लेकर १९५६-६१ में 'पालि त्रिपिटिक प्रकाशन मण्डल' नालन्दा से प्रकाशित एवं आदरणीय भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी-संस्करण को आदर्श रूप में रखा है। इसमें हमने बहुत कम परिवर्तन किया है। कहीं-कहीं मुद्रणाशुद्धियों के संशोधन के अतिरिक्त अधिक कुछ नहीं किया है।

साथ ही हमने उक्त सभी बर्मा, नालन्दा एवं रोमन संस्करणों की पृष्ठ-संख्या रोमन अक्षरों में क्रमशः यथास्थान दे दी है। अनुसन्धाता इससे लाभान्वित होंगे।

हमने हिन्दी-अनुवाद, आचार्य श्रीबुद्धघोष की अट्ठकथा को प्रमाण मान कर सम्पन्न करते हुए, उसे पालि-पाठ के साथ नीचे दिया है। इससे पाठक को पालि एवं उसकी हिन्दी— दोनों ही भाषाएँ अत्यन्त सरलता से हृदयङ्गम हो सकेंगी—ऐसा हमारा विश्वास है।

यहाँ हमें एक निवेदन अवश्य करना है कि विषय—वैशद्य (बात को समझाने) के लिये पालि में विषय का अनुकूल-प्रतिकूल, या आरोह-अवरोह दोनों क्रमों से विस्तृत (अक्षरशः) वर्णन किया जाता है। इस शैली में भाषाच्छटा तो अवश्य आ जाती है, परन्तु इस शब्द-समूह में

फंस कर पाठक मूल विषय से दूर-दूर सा होने लगता है। इसके लिये पालि-संग्रहकारों ने ऐसे विशेष स्थानों (जहाँ पाठ पुनः पुनः आवृत्त हो) के लिये '....पे०....' की परम्परा रखी है। इस परम्परा का इससे पहले के संस्करणों में निर्भयता से उपयोग हुआ है। इसे हमने भी अपने हिन्दी-अनुवाद में स्वीकार किया है। परन्तु '....पे०....' का अनुवाद हमने '....पूर्ववत्....' करके दिया है, या प्रायः '....' इस चिह्न का प्रयोग किया है, ताकि पाठक प्रसङ्ग के प्रधान विषय से दूर न हो जाय।

यों हमने एक अभिनव पद्धति में बुद्ध-वचन (त्रिपिटक) का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। यदि विद्वानों को यह पद्धति ग्राह्य तथा अनुकूल प्रतीत हुई तो हम आगामी काल में त्रिपिटक के समग्र ग्रन्थों का प्रकाशन इसी पद्धति से करेंगे।

एक कार्य हमने, इस प्रसङ्ग में, और किया है। ग्रन्थ में वर्णित सूत्रों का संक्षेप हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषाओं में ग्रन्थ के प्रारम्भ में दे दिया है। जिससे पाठक को सूत्रों का वर्ण्य विषय एक ही दृष्टि में हृदयङ्गम हो जाय।

इस तरह हम इस ग्रन्थमाला को पालि-हिन्दी-इंग्लिश तीनों ही भाषाओं के विद्वानों के लिये उपयोगी बना पाये हैं—ऐसा हमारा विश्वास है।

वसन्तपञ्चमी, २०५४ वि०
वाराणसी

अध्यक्ष
बौद्धभारतीपरिषद्

बुद्धचरित : संक्षेप में

(बौद्ध वाङ्मय के प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर)

बुद्धपूर्व सामाजिक व्यवस्था

मर्यादापुरुषोत्तम राम एवं योगेश्वर कृष्ण के अवतारों के हजारों वर्ष बाद, भारतीय समाज में एक बार पुनः विशृङ्खलता आने लगी। उस समय साधारण जनता की भी वास्तविक धर्म के प्रति अरुचि बढ़ने लगी और पाषण्डयुक्त अधर्म को ही 'धर्म' माना जाने लगा। उनकी दृष्टि में स्वर्गसुख ही चरम सुख हो गया तथा उसकी प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के यज्ञ-यागादि का विधान होने लगा। इन यज्ञों की सम्पन्नता में हजारों निरीह पशु पक्षी नृशंसतापूर्वक मारे काटे जाने लगे। लोग कदाचार को ही सदाचार समझकर उसमें रस लेने लगे। उस समय जनता प्राणिहिंसा, चोरी आदि को जीवनयापन में सहर्ष व्यवहृत करने लगी। यों धीरे-धीरे समग्र जनता कामव्यसनी, मद्यप, हिंसक तथा मूढ़ एवं अन्धविश्वासी बन गयी। इन अन्ध विश्वासों में आकण्ठ निमग्न जनता ने जातिभेद के विषबीज का वपन कर शताब्दियों तक जाति को टुकड़े टुकड़े में बाँट कर घर घर में गृहकलह का घोर सङ्कट उद्भूत कर दिया। मठों एवं मन्दिरों की अपार सम्पत्ति तथा धनराशि का अधार्मिक कृत्यों में व्यय होने लगा। यों, अल्प सङ्ख्या में बची धर्मप्राण जनता इन अधार्मिकों एवं अन्धविश्वासियों के दुष्कृत्यों से त्रस्त हो उठी।

बुद्ध का जन्म

ऐसे ही समय में, आज से पाँच सौ तिरसठ ईसा पूर्व वर्ष में, भगवान् बुद्ध का अवतार हुआ। उनके पिता **शुद्धोदन** कोसल साम्राज्य के अधीन सूर्यवंशी राजा थे, ये शाक्य गणतन्त्र के प्रमुख शासक थे। उनकी माता **महामाया** देवी **कपिलवस्तु** से अपने मातृगृह (देवदहनगर) जा रही थी कि मार्ग में ही लुम्बिनीवन में सुपुष्पित दो शालवृक्षों के बीच, बुद्ध का जन्म हो गया। इस घटना के बाद, (प्रायः २५० वर्ष बाद) सम्राट् अशोक द्वारा बुद्ध के जन्म-स्थान पर बनवाया गया स्मारक (शिलालेख) आज भी इस घटना का साक्षी है।

असित नामक एक वृद्ध संन्यासी राजा शुद्धोदन के महल में आये। उन्होंने नवजात शिशु को देखा। उसके शुभ शरीर में सौभाग्यसूचक लक्षण (चिह्न) देखकर उन्होंने अतीव प्रसन्नता प्रकट की। और कहा कि विश्व में उसका उद्धारक प्रकट हो गया है फिर उनकी आँखों में आँसू गिरने लगे। कारण पूछने पर उन्होंने बताया कि वे, अतिवृद्ध होने के कारण, इस बालक की उपलब्धियाँ (सफलताएँ) देखने हेतु जीवित न रह पायँगे!

बालक का नाम **गौतम** रखा गया, जबकि घर में परिवार के लोग उसे स्नेह से, **'सिद्धार्थ'** कहकर बुलाते थे। शाक्यजन इस बालक का जन्मोत्सव मना ही रहे थे कि बालक की माता महामाया देवी का देहावसान हो गया। अतः अब बालक के पालन पोषण का उत्तरदायित्व महामाया देवी की छोटी बहन **महाप्रजापती गौतमी** ने स्वीकार किया।

ऐश्वर्य-सुख

बचपन से ही बालक गौतम एकान्तप्रिय, गम्भीर एवं मननशील स्वभाव के थे। अतः पिता राजा शुद्धोदन ने उनके विलासमय आवास हेतु तीनों ऋतुओं के योग्य सुख-सुविधासम्पन्न एवं ऐश्वर्यशाली तीन प्रासाद (महल) बनवा दिये कि यह एकान्तप्रिय बालक आगे चलकर घर छोड़कर प्रव्रजित न हो जाय। अच्छा हो कि यह बालक इन्हीं महलों में ऐश्वर्य-सुखभोग में लिप्त रहे। समय आने पर उसका विवाह भी करा दिया। नाना प्रकार के नृत्य, वाद्य, सङ्गीत की भी व्यवस्था कर दी। परन्तु भवितव्यता को कौन टाल सकता था!

चार प्रतीक

कोमलहृदय राजपुत्र ने, कभी उदयान-शोभा देखने के लिये जाते हुए, मार्ग में क्रमशः किसी दिन एक जराजीर्ण वृद्ध पुरुष को, किसी दिन एक रोगी को और किसी दिन एक मृत व्यक्ति को देखा। उन्हें देखकर, उनके विषय में सारथि द्वारा बतायी गयी वास्तविकता जानकर युवक गौतम को संसार के प्रति अनासक्ति एवं ग्लानि हो गयी। इसी क्रम में उसने कभी मार्ग में जाते हुए किसी विरक्त संन्यासी को देखा। उससे संवाद करने के बाद, उसे बहुत प्रसन्नता हुई। यहीं से राजकुमार के मन में दुःख का वास्तविक कारण जानने की इच्छा प्रबल हुई।

विवाह एवं पुत्रोत्पत्ति

समय आने पर, गौतम का यथासमय विवाह हुआ तथा उन्हें अपनी पत्नी से एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। उसे जब यह हर्षद समाचार सुनाया गया तो उसके मुख से अनायास निकल पड़ा कि एक राहुल (विघ्न-बाधा) और उत्पन्न हो गया। राजा ने सोचा, क्यों न इसका नाम 'राहुल' ही रख दिया जाय। सम्भवतः अपने पुत्र का मुख देखते हुए यह, इसके व्यामोह में पड़कर, राज्यसुख से मुख न मोड़े।

महाभिनिष्क्रमण (गृहत्याग)

परन्तु एक मध्य रात्रि में, जब तरुण एवं रूपवती नर्तकियाँ उसका मन बहलाने का प्रयत्न कर रही थीं, राजकुमार सिद्धार्थ का हृदय अत्यधिक उद्विग्न हो उठा। इस स्थिति में, वे अपनी पत्नी एवं शिशु को सोता हुआ छोड़कर, किसी दूसरे को उनके जाने का ज्ञान न हो इस तरह चुपचाप, छन्दक सारथि को लेकर, घोड़े पर आरूढ़ हो, जङ्गल की तरफ चल दिये। वहाँ उन्होंने अपने राजसी परिधान छोड़ दिये, घोड़ा सारथि को दे दिया और

खड्ग से अपने लम्बे घुँघराले बाल काट डाले एवं विरक्त बनकर एकाकी ही आगे वन में प्रविष्ट हो गये।

तपश्चर्या

सर्वप्रथम वे, उस समय के प्रसिद्ध ज्ञानी **आळार कालाम** के आश्रम में पहुँचे। उन्हें गुरु बनाकर उनसे चित्तवृत्तिनिरोध के विषय में बहुत कुछ जाना, समझा। तदनन्तर वे दूसरे विद्वान् **उद्दक रामपुत्त** के आश्रम में गये। उनसे भी उन्होंने बहुत कुछ ज्ञानार्जन किया; परन्तु इतने से भी उनकी ज्ञान-पिपासा शान्त न हुई। अन्त में, वे बोधगया के समीप सुरम्य प्रदेश में पहुँचे, जहाँ चतुर्दिक् घने जङ्गल थे, सुनहली रेती के बीच झरने बह रहे थे। वहाँ उन्होंने इस जनसाधारण विश्वास के साथ कि 'देह-यातना से मन अधिक शान्त एवं उदात्त हो जाता है', अनेक विधियों से घोर दुष्कर तपश्चर्या की। परन्तु अन्त में उनकी समझ में आ गया कि इन दुष्करचर्याओं के माध्यम से भी कोई अलौकिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो पायगा!

बोधिप्राप्ति

छह वर्ष निरन्तर दुष्करचर्या करने के बाद, जब वे ३५ (पैंतीस) वर्ष की आयु के के थे, एक दिन उनके मन में यह भाव जाग्रत् हुआ कि वे सम्बोधि (पूर्ण ज्ञान) प्राप्त करके रहेंगे! उसी दिन मध्याह्न में **सुजाता** नाम की किसी कुलकन्या ने उनको देवता समझ कर मधुर खीर (पायस) खिलायी। सायङ्काल एक घसियारे ने उनको सूखी घास की पूलियाँ बिछाने के लिये दीं। इन्हें बोधिप्राप्ति हेतु शुभ लक्षण मानकर, वे एक पीपल (अश्वत्थ) वृक्ष के नीचे सुदृढ़ पद्मासन लगाकर बैठ गये और यह निश्चय किया— "भले ही मेरे शरीर का चर्म, मेरी स्नायुएँ, मेरी अस्थियाँ गल जायँ, मेरे शरीर का सम्पूर्ण रक्त ही क्यों न सूख जाय; परन्तु मैं इस आसन से तब तक न उठूँगा, इसी आसन पर दृढ़ता से बैठा रहूँगा जब तक कि मुझे सम्बोधि (पूर्ण ज्ञान) प्राप्त न हो जाय।"

यह प्रतिज्ञा करने पर, मार ने उनको भयग्रस्त करने के लिये, घोर झञ्झावात चलाये, प्रभञ्जन (प्रलयकालीन वायु) छोड़े; परन्तु मार के ये प्रबल अस्त्र बोधिसत्त्व तक पहुँच ही न सके; अपितु वे मध्य मार्ग में ही पुष्प रूप में परिणत हो गये। मार ने बोधिसत्त्व को प्रतिज्ञा से च्युत करने के लिये स्वर्ग में जन्म का भी प्रलोभन दिया, परन्तु इस प्रलोभन का भी उनके चित्त पर कोई प्रभाव न पड़ा। अन्त में, मार अपनी पराजय मान कर भाग गया। उसकी सेना भी परास्त होकर पीछे हट गयी।

उसी रात्रि में बोधिसत्त्व गौतम को उस अनुपम अद्वितीय कारणचक्र (हेतुसमुत्पाद=प्रतीत्यसमुत्पाद) का बोध हुआ जिस पर इनसे पहले के किसी तत्त्वचिन्तक ने विचार ही नहीं किया था। इसे जानने के साथ ही वे बोधिसत्त्व से '**बुद्ध**' बन गये। विनयपिटक के **महावग्ग** में लिखा है[1]— "अब उस जिज्ञासु के लिये सब बातें स्पष्ट हो

---

१. यदा ह वे पातुभवन्ति धम्मा आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
विधूपयं तिट्ठति मारसेनं सूरियो व ओभासयमन्तलिक्खं॥ ति॥ (-म०व०, पृ० ५)

गयीं। मार की सेनाओं को भगाकर वह सूर्य के समान लोक में प्रदीप्त हो गया।''

धर्मयात्रा

इस तरह, 'बुद्ध' होने के बाद भी, उन्होंने उसी अश्वत्थ (बोधि) वृक्ष के आस पास साधना-सुख की अनुभूति करते हुए चार सप्ताह और बिताये। एतदनन्तर, वे धर्मयात्राहेतु वहाँ से चले। मार्ग में मारकन्याओं ने उनको घेर लिया और अपने सौन्दर्य के प्रलोभन द्वारा उन्हें संसार में लौटाने का प्रबल प्रयास किया, परन्तु भगवान् दृढ़चित्त थे तो दृढ़चित्त ही रहे। उनका कहना था— ''इस कन्याओं का यह कुत्सित प्रयास ऐसे पुरुषों पर तो प्रभाव डाल सकता है जिनका चित्त चञ्चल हो, परन्तु दृढ़सङ्कल्प 'बुद्ध' पर इनका कोई प्रभाव नहीं हो सकता।''

आगे चलकर भगवान् को मार्ग में उत्कलवासी दो व्यापारी मिले, जिनमें एक का नाम था **तपस्सु** और दूसरे का नाम था **भल्लिक**। उन्होंने भगवान् को यव एवं मधु सम्पृक्त खाद्य (लड्डू) भोजनहेतु दिया। ये दोनों भगवान् के प्रथम उपासक बने।

यद्यपि भगवान् प्रारम्भ में तो अपनी धर्मदेशना के प्रति कुछ शङ्कित हुए कि लोक में इतना गम्भीर एवं दुर्दर्श ज्ञान कोई समझ पायगा कि नहीं; क्योंकि यहाँ तो सभी लोग लोभ एवं द्वेष के आगार दिखायी पड़ रहे हैं! परन्तु बाद में ब्रह्मा द्वारा अभियाचना करने पर, उनका चित्त भी लोक के प्रति द्रवित हो उठा और उनके ध्यान में आया कि इस लोभ-द्वेषमय जगत् में भी कुछ जिज्ञासु तो ऐसे मिलेंगे ही जो निर्मलचित्त होंगे! उन्हें मेरे इस धर्मोपदेश द्वारा मार्गदर्शन की नितान्त आवश्यकता है!

धर्मचक्रप्रवर्त्तन

इसी विचार से अनुप्राणित होकर भगवान् **वाराणसी** के ऋषिपतन मिगदाव में पहुँचे। वहाँ सर्वप्रथम अपने पाँच पूर्व सब्रह्मचारियों के सम्मुख ऐसे मध्यम मार्ग का उपदेश किया जो आगे चलकर धर्मचक्रप्रवर्तन नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ। इस तरह प्रारम्भ में इन पाँच भिक्षुओं से भिक्षुसङ्घ की स्थापना हुई। तदनन्तर भी भगवान् इस वर्ष के समग्र वर्षावास (वर्षा ऋतु के तीन मास) पर्यन्त ऋषिपतन (वाराणसी) में ही ठहर कर जिज्ञासुजनों को धर्मदेशना करते रहे। इस अन्तराल में भगवान् ने **यश** आदि साठ अन्य जिज्ञासुओं को भी 'धर्म' में दीक्षित किया।

वर्षावास के बाद, भगवान् पुनः चारिका करते हुए बोधगया के पास **उरुवेल काश्यप** जटिल के आश्रम में पहुँचे, जो कि अग्निपूजक ब्राह्मण था। यहाँ इन जटिलों को लोकोत्तर चमत्कार दिखाया। भगवान् की अनुमति के विना वे ब्राह्मण अपनी यज्ञशाला की अग्नि प्रज्वलित न कर सके। किसी तरह (भगवान् के सङ्केत से) अग्नि प्रज्वलित हुई तो उन जटिलों को जलौघ (बाढ़) ने आ घेरा। भगवान् की कृपा से ही वे सब याज्ञिक उससे भी अपना त्राण कर पाये।

महावंस के साक्ष्य के आधार पर, भगवान् ने इसी समय लङ्काद्वीप में पधार कर वहाँ यक्षों का दमन करते हुए उस द्वीप को मनुष्यों के लिये आवासयोग्य बनाया। लङ्का

द्वीप से प्रत्यावर्तित होकर पुनः भगवान् उन जटिलों के आश्रम में पहुँचे। वहाँ एक हजार जटिलों सहित उन उरुवेल काश्यप आदि तीनों भाइयों को स्वधर्म में दीक्षित कर प्रव्रज्या दी।

राजगृह में

इस एकसहस्रसङ्ख्यक भिक्षुसङ्घ को साथ लेकर भगवान् चारिका करते हुए मगध राज्य की राजधानी **राजगृह** पहुँचे। वहाँ के राजा बिम्बिसार ने उनका हार्दिक स्वागत किया। राजा **बिम्बिसार** ने भगवान् को सङ्घ के लिये राजगृह नगर स्थित अपना वेणुवन दान कर दिया।

यह राजा भगवान् के गृहस्थाश्रम के समय का परम मित्र था, परन्तु भगवान् से आयु में पाँच (५) वर्ष छोटा था।

सारिपुत्र-मौद्गल्यायन की प्रव्रज्या

सञ्जय परिव्राजक भी उस समय अपनी शिष्यमण्डली के साथ मगध में ही रहते थे। इनकी शिष्यमण्डली में **सारिपुत्र** एवं **मौद्गल्यायन** भी थे। एक दिन सारिपुत्त को भिक्षाकर्म हेतु जाते हुए बुद्धशिष्य **अस्सजि** मिल गया। सारिपुत्त ने उससे उसके शास्ता एवं धर्म के विषय में पूछा तो अस्सजि ने बताया कि उसे इस धर्म की दीक्षा लिये हुए अल्प समय ही हुआ है, अतः वह अधिक विस्तार से तो नहीं बता पायगा, परन्तु उसके शास्ता ने उसको जो धर्मोपदेश किया है उसका सार (संक्षेप) यह है—

"**ये धम्मा हेतुप्पभवा हेतुं तेसं तथागतो आह।**
तेसं च यो निरोधो एवंवादी महासमणो॥" (म० व०, पृ० ६२)

[उन वस्तुओं के विषय में जिनकी उत्पत्ति का कोई कारण है, और वह जो कारण है, उसके विषय में महाश्रमण (बुद्ध) ने ज्ञान दिया है। तथा उनका दमन (निरोध) किस प्रकार किया जाय?— यह भी उस महान् विरक्त ने बता दिया है।]

सारिपुत्र जो स्वयं बहुश्रुत थे, इस धर्म-संक्षेप को सुनकर ही इस का महत्त्व समझ गये। और इससे प्रभावित होकर सारिपुत्त एवं मौद्गल्यायन— दोनों ही भगवान् बुद्ध के शिष्य बन गये। इन दोनों के सङ्घ में सम्मिलित होने से सङ्घ का भी गौरव बढ़ा; क्योंकि ये दोनों ही अपने समय के बहुत अच्छे धर्म-व्याख्याता थे। [इन दोनों भिक्षुओं के अस्थ्यवशेष साँची (मध्यप्रदेश) के स्तूप में आज भी सुरक्षित है।]

त्रिपिटक-पाठ से ज्ञात होता है कि सारिपुत्र मौद्गल्यायन ने भी बुद्ध-धर्म का व्याख्यान, भगवान् की तरह ही, धीरता एवं गम्भीरता से किया है। अस्तु।

राहुल आदि को दीक्षा

बोधिप्राप्ति के कुछ वर्ष बाद भगवान् बुद्ध, चारिका करते हुए, पुनः कपिलवस्तु पहुँचे। वहाँ राजा शुद्धोदन ने भगवान् का स्वागत किया। परन्तु भगवान् उस समय तक एक सच्चे श्रमण बन चुके थे। दूसरे दिन भगवान् ने नगर में चारिका तथा भिक्षाकर्म किया। उनके ये दिव्य कर्म देखकर उनकी पत्नी उनके प्रति विशेष श्रद्धालु बन गयी। वह

भी उनके चरणों में अर्पित हो गयी। तथा उसने अपने पुत्र राहुल से भी कहा– "राहुल! तूँ अपने पिता से दायभाग माँग ले।" ऐसा कहे जाने पर भगवान् ने उस (राहुल) को भी शिष्य बनाते हुए सङ्घ की शरण में ले लिया।

परिवार का नापित (नाई) **उपालि** भी इसी अवसर पर प्रव्रजित हुआ। जो आगे चलकर भिक्षु-विनय का महान् व्याख्याकार सिद्ध हुआ।

श्रावस्ती में जेतवनाराम

श्रावस्ती के एक श्रेष्ठी (धनिक व्यापारी) **अनाथपिण्डक** ने जेतवन की पूरी भूमि पर सुवर्णमुद्राएँ बिछाकर (उस भूमि को सुवर्णमुद्राओं से ढक कर) खरीद लिया और वहाँ श्रमणोचित सभी सुख-सुविधाओं से सम्पन्न **जेतवनाराम** नाम से विहार बनवाया, तथा उसे बुद्धप्रमुख भिक्षुसङ्घ को दान कर दिया।

इसी विहार में रहते हुए भगवान् दूसरी बार लङ्काद्वीप पधारे, जहाँ उन्होंने नागराजाओं को अनुशासित किया— ऐसी **महावंस के लेखक** की मान्यता है।

इसी तरह, कोसल का राजा **प्रसेनजित्, विशाखा** नामक एक धनसम्पन्न स्त्री एवं इसी तरह उस राज्य के कितने ही वैभवशाली नागरिक भगवान् बुद्ध के धर्मोपदेश के प्रभाव से उनके शिष्य बन गये।

भगवान् एक बार पुन: जब राजगृह गये तो वहाँ वे रुग्ण हो गये। तब वहाँ के प्रसिद्ध चिकित्सक राजवैद्य **जीवक** कौमारभृत्य ने भगवान् की चिकित्सा की। भगवान् के प्रति श्रद्धातिरेक से ये जीवक वैद्य भी, अन्त में, भगवान् के शिष्य बन गये।

शाक्य-कौलिय जलविवाद

कुछ समय बाद शाक्यों और कोलिय जाति के बीच नदी-जल के विवाद को लेकर भयङ्कर कलह हो गया। भगवान् ने मध्यस्थ बनकर वह कलह शान्त कराया। यदि भगवान् ऐसा न करते तो इसका परिणाम बहुत ही दु:खद होता। इस घटना के कुछ काल बाद ही राजा शुद्धोदन का देहावसान हो गया।

स्त्री-प्रव्रज्या

कालक्रम से, भगवान् की स्तन्यपायिनी माता **महाप्रजापति गौतमी** ने भगवान् से सङ्घ में प्रव्रज्या-दीक्षा की याचना की, परन्तु भगवान् ने स्पष्ट निषेध कर दिया। दूसरी बार महाप्रजापति गौतमी के कहने से भगवान् के प्रधान उपट्ठाक (अनुचर) **आयुष्मान् आनन्द** ने स्त्रियों को सङ्घ में प्रव्रजित करने की अनुमति माँगी, उसे भी भगवान् ने अस्वीकार कर दिया। तदनन्तर, तीसरी बार जब महाप्रजापति गौतमी और आनन्द—दोनों ने मिलकर सङ्घ में स्त्रियों के भी प्रव्रजित होने की अनुमति माँगी तो भगवान् ने स्वीकार कर लिया। यों, महाप्रजापति गौतमी सङ्घ में **प्रथम भिक्षुणी** बनी। इस प्रकार, भारत में पहली बार किसी स्त्री के लिये घर छोड़कर आध्यात्मिक मुक्ति (निर्वाण) प्राप्त करने का मार्ग खुल गया।

इस तरह, समय बीतता गया, भगवान् बुद्ध और उनके शिष्य, चारिका करते हुए समग्र देश में उत्साह के साथ भ्रमण कर धर्मोपदेश करते रहे। इस उपदेश में उन्होंने पुराने अन्धविश्वासों, जीवहिंसा एवं परस्पर विद्वेष के विरुद्ध प्रबल प्रचार किया। साथ ही वे शान्ति, करुणा मैत्री एवं अहिंसा का सन्देश घर घर पहुँचाने का भी प्रयास करते रहे।

भगवान् पर आरोप

भगवान् का यह चमत्कार-प्रभाव देखकर उनके विरुद्ध अनेक ब्राह्मणों ने एवं अन्य सम्प्रदाय वालों (तीर्थिकों) ने कतिपय षड्यन्त्र रचे। इसी प्रसङ्ग में चिञ्चा नाम की वेश्या को, भगवान् पर लाञ्छन लगाने के यत्न में, कठोर दण्ड मिला। (द्र. धम्मपदट्ठकथा १३/९)।

इसी तरह एक दूसरी सुन्दरी ने भी भगवान् पर आरोप लगाया कि वह भगवान् से सांसारिक प्रेम करती है। वास्तविकता ज्ञात होने पर वह भी दण्डित हुई।

सङ्घ में फूट

जब भगवान् बुद्ध की आयु बहत्तर (७२) वर्ष की हो गयी तो सङ्घ पर सङ्कट के दिन आने लगे। **अजातशत्रु** ने अपने पिता राजा बिम्बिसार की हत्या कर दी। मगध का यह नया राजा (अजातशत्रु) सङ्घ के ही एक उद्दण्ड भिक्षु **देवदत्त** का शिष्य था। दोनों ने परामर्श कर भगवान् बुद्ध के प्राण लेने के अनेक प्रयत्न किये; परन्तु इन कुटिल प्रयत्नों का परिणाम विपरीत ही रहा। (१) भिक्षु देवदत्त ने एक बहुत बड़ी शिला भगवान् को लक्ष्य कर नीचे लुढका दी; परन्तु उससे भगवान् को कोई विशेष आघात नहीं लगा। (२) फिर उन्होंने किसी अवसर पर भगवान् की ओर पागल हाथी छोड़ दिया। उस हाथी को भी अन्त में भगवान् के चरणों में नतमस्तक होना पड़ा। (३) फिर देवदत्त ने, इन सब प्रयत्नों में असफल होने पर सङ्घ में भेद (फूट) डालने का प्रबल प्रयास किया। (४) नया सङ्घ भी बनाया। परन्तु, अन्त में कुटिल भिक्षु देवदत्त, अपने दुष्कृत्यों के कारण, मुख से रक्त का वमन करता हुआ, मृत्यु का वरण कर सदा के लिये षड्यन्त्र करने से विफल हो गया!

शाक्यों का सामूहिक नरसंहार

भगवान् के महापरिनिर्वाण से दो वर्ष पूर्व (भगवान् की ७८ वर्ष की आयु में) भिक्षुसङ्घ के सम्मुख जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो गया। घटना यह हुई कि कोसलनरेश राजा प्रसेनजित् का एक पुत्र शाक्य रानी से था। जिसका नाम था **विडूडभ**। अपनी माता (शाक्य) के घर, नीच कुल में उत्पन्न होने के कारण, शाक्यों ने उसका अपमान कर दिया। उसने उसी समय क्रोधवश प्रतिज्ञा की कि वह शाक्यों से इस अपमान का प्रतिशोध लेगा। अतः उसने, अपने पिता की मृत्यु के बाद, राजा बनने पर, समग्र शाक्य जाति से प्रतिशोध लेना आरम्भ कर दिया। जो भी शाक्य जहाँ कहीं मिलता या दिखायी देता उसके वह तलवार से दो टुकड़े करा देता। इस तरह पूर्ण शाक्य जाति ही विनष्ट होने की स्थिति में आ गयी। (द्र०— धम्मपदट्ठकथा-४/३) जब वृद्ध भगवान् के सम्मुख यह

वृत्तान्त गया तब उनके हृदय में कितना कष्ट पहुँचा होगा! इतने पर भी वे शान्त भाव से चारिका करते रहे और शान्ति, बन्धुत्व, प्रेम एवं पवित्रता का ही सन्देश देते रहे।

सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन का परिनिर्वाण

शाक्यों के इस सामूहिक हत्या-क्रम के एक सप्ताह बाद ही सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन का भी अपने अपने कर्मफलविपाक से परिनिर्वाण हो गया। इस घटना से तो भिक्षुसङ्घ सर्वथा ही शून्यवत् हो गया।

इसी बीच **अम्बपाली** गणिका ने भी अपना आम्रवन भगवान् बुद्ध के चरणों में समर्पित कर दिया। परन्तु भगवान् बुद्ध को इससे क्या आश्वासन मिला होगा!

भगवान् का महापरिनिर्वाण

यों, अस्सी (८०) वर्ष की जीवनायु में पहुँचते पहुँचते भगवान् को निश्चय हो गया कि अब उनके शरीर का अन्त निकट आ गया है। ऐसी स्थिति का आभास उन्होंने आनन्द को पहले ही बता दिया। और कह दिया कि उनके बाद उनके वचन (बुद्धवचन= त्रिपिटक) ही उनके मार्ग दर्शक होंगे।

उस समय भगवान् पावा में थे। वहाँ के निवासी चुन्द नामक कम्मारपुत्त ने भगवान् को अपने घर पर भोजन के लिये निमन्त्रित किया। वहाँ उसने भगवान् को चावल, रोटी के साथ 'सूकरमद्दव' भी भोजनहेतु दिया। ('सूकरमद्दव' शब्द के अर्थ पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान् इसे 'सूअर का नरम मांस' बताते हैं तो कुछ विद्वान् 'एक प्रकार की खाद्य वनस्पति'। जो भी हो,) बुद्ध को वह खाद्यवस्तु पची नहीं, और उन्हें 'रक्तातिसार' रोग हो गया।

उसी रोग से ग्रस्त होकर वे **कुशीनगर** पहुँचे। वहाँ दो शाल वृक्षों के बीच में उन्होंने आनन्द से सङ्घाटी बिछाने के लिये कहा। वहाँ वे सिंहशय्या से लेट गये। उन्होंने हजारों भिक्षुओं को अन्तिम उपदेश दिया, जिसकी शब्दावलि यह है— "अब, भिक्षुओ! मुझे तुम लोगों से अधिक कुछ नहीं कहना है। मेरा अन्तिम उपदेश यही है कि जो कुछ भी यह लोक में निर्मित दिखायी दे रहा है उसका एक न एक दिन क्षय होगा ही। निर्वाण-प्राप्ति के लिये तुम स्वयं उत्साह से यत्न करो।" ("हन्द, दानि, भिक्खवे, आमन्तयामि वो—'वयधम्मा सङ्खारा; अप्पमादेन सम्पादेथ।' " - दी० नि०, म० प० सु० पृ० ३७४)इसके बाद वे समाधिमग्न हो गये। समाधि से उठते ही उनका महापरिनिर्वाण हो गया।

अन्तिम संस्कार

उनका अन्तिम संस्कार भी वहाँ की जनता ने बहुत राजसी सम्मान के साथ सम्पन्न किया। यद्यपि भगवान् की अस्थियों के अवशेष के विभाजन (बँटवारा) को लेकर वहाँ के राजन्यवर्ग में कुछ कलह की स्थिति आयी, परन्तु वहाँ उपस्थित **द्रोण** नामक बुद्धिमान् ब्राह्मण ने उस अवशेष के आठ भाग कर सब को समान रूप से देकर वह कलह शान्त किया।

यह एक संयोग की ही बात है कि भगवान् दो शालवृक्षों के बीच ही अवतरित हुए, (जन्मे) थे और दो शालवृक्षों के बीच ही उनका महापरिनिर्वाण भी हुआ!

और यह घटना भी संयोग ही कही जायगी कि **वैशाख मास की पूर्णिमा** के दिन उनका **अवतार** (जन्म) हुआ, वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन ही उन्हें **बोधिप्राप्ति** हुई, तथा वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन ही उनका **महापरिनिर्वाण** हुआ। अतः बौद्धों में यह एक ही दिन तीन प्रकार से पवित्र माना जाता है!

बौद्ध सङ्गीति

१. प्रथम धर्मसङ्गीति (पञ्चशतिका)

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद भिक्षु-सङ्घ की प्रथम परिषद् (जिसे प्रथम 'सङ्गीति', 'सङ्गायन' या 'संग्रह' भी कहते हैं) राजगृह में बुलायी गयी। उसमें धर्म और विनय निश्चित (बुद्धवचन के रूप में अनुमोदित) हुए। महास्थविर **महाकाश्यप** इस प्रथम परिषद् के सभापति हुए, **उपालि** स्थविर एव **आनन्द** स्थविर ने इसमें प्रमुख वक्ता के रूप में भाग लिया।

चुल्लवग्ग (विनयपिटक) के ११वें खन्धक में बतायी गयी परम्परा ही **दीपवंस** एवं **महावंस** में भी मिलती है। उसके अनुसार, कुशीनगर (कुसिनारा) में भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के क्षणों में महास्थविर महाकाश्यप वहाँ उपस्थित नहीं थे। वे पावा से राजगृह आ रहे थे कि मार्ग में एक आजीवकपथानुयायी (नग्न) साधु ने उनको भगवान् के महापरिनिर्वाण का समाचार सुनाया। सुनते ही कुछ भिक्षु शोक (विलाप) करने लगे। सुभद्र नामक एक स्थविर ने भिक्षुओं को ऐसा शोक करने से रोका, और कहा— ''भिक्षुओ! न रोओ, न विलाप करो; क्योंकि अब तो हम उस महाश्रमण से मुक्त हो गये हैं जो हमें— 'यह करो, यह न करो'— कहते हुए अपने अनुशासन में बाँधे रखता था। अब हम स्वतन्त्र हैं कि जो चाहें करेंगे और जिस तरह चाहें रहेंगे।''

सुभद्र का यह कथन सुनकर महास्थविर महाकाश्यप धर्म की रक्षा के विषय में चिन्तित हो उठे। उन्होंने निश्चय किया कि उन पर भगवान् का सौंपा हुआ जो उत्तरदायित्व (सङ्घ का धर्मपूर्वक सञ्चालन) आ पड़ा है, उसकी पूर्ति के लिये तत्काल समग्र बौद्धसङ्घ की सभा बुलायी जाय।

(तिब्बती दुल्व और युवान च्वांग के वर्णनों से भी यही ज्ञात होता है कि बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद धर्म विलुप्त हो जायगा— ऐसी आशङ्का सुभद्र जैसे भिक्षुओं को ही नहीं, अपितु समग्र सङ्घ के मन में समष्टि रूप में छा रही थी।)

कुछ विचार के बाद सङ्घ ने निश्चय किया सङ्घ की ऐसी प्रथम सभा का स्थल राजगृह में रखा जाय। यह कहा जाता है कि १. यह सभा (सङ्घ की बैठक) सप्तपर्णी गुहा के पास हुई। २. तिब्बती दुल्व के अनुसार न्यग्रोध गुफा के पास हुई। ३. लोकोत्तरवादियों के अनुसार वैभार पर्वत के उत्तर में तथा ४. अश्वघोष के अनुसार गृध्रकूट पर्वत की इन्द्रसाल गुहा में यह सभा हुई।

पालि-ग्रन्थों से यह भी ज्ञात होता है कि सप्तपर्णी गुफा के बाहर राजा अजातशत्रु ने सभा के आयोजन के लिये एक विशाल मण्डप भी बनवा दिया था। परन्तु विडम्बना

यह है कि अभी तक इस गुफा का निश्चित ज्ञान नहीं हो पाया है। फिर भी इतना तो निश्चित है कि यह सभा राजगृह में हुई थी; क्योंकि उस समय राजगृह में सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। (चुल्लवग्ग में यद्यपि अजातशत्रु का नामोल्लेख नहीं है, परन्तु तिब्बती **दुल्व, महावंस** एवं **समन्तपासादिका** के अनुसार उस सभा के सभी बाह्य प्रबन्ध राजा अजातशत्रु ने ही करवाये थे।)

वर्षा ऋतु के दूसरे मास में सङ्घ की यह प्रथम सभा एकत्र हुई। चार सौ निन्यानवै (४९९) भिक्षु इस सभा में आये थे। इस अवसर के लिये बुद्ध-परिनिर्वाण के स्थान पर (कुसिनारा में) जितने भिक्षु उपस्थित थे उन सब की सहमति से यह स्थान एवं सङ्ख्या निश्चित की गयी थी। पहले स्थविर आनन्द को इस सभा के लिये सङ्घ नहीं चुन रहा था, परन्तु बाद में, कुछ भिक्षुओं के आग्रह पर, उन्हें भी सम्मिलित किया गया। तब परिषद् की सङ्ख्या ५०० हो गयी। परिषद् में सम्मिलित होने से पूर्व स्थविर आनन्द को सङ्घ के उन आरोपों का उत्तर देना पड़ा था, जो उन पर लगाये गये थे।

स्थविर आनन्द पर सात आरोप

(१) वे बुद्ध के महापरिनिर्वाण से इतने अभिभूत हो गये थे कि वे छोटे-छोटे नियमों उपनियमों का ध्यान नहीं रख पाये।

(२) बुद्ध का चीवर सींते समय उन्होंने चीवर को पैर के अँगूठे से दबाकर रखा।

(३) उन्होंने भगवान् के शरीर को अभिवादन करने की अनुमति पहले नारियों को दी।

(४) उन्होंने भगवान् से अपने शरीर को कल्पपर्यन्त स्थिर रखने की प्रार्थना नहीं की।

(५) उन्होंने महाप्रजापति गौतमी के प्रभाव में आकर स्त्रियों को सङ्घ में प्रवेश की अनुमति दिलायी।

(६) तीन वार माँगने पर भी उन्होंने भगवान् बुद्ध को पीने के लिये जल नहीं दिया।

(७) उन्हेंने दुश्चरित्र स्त्रियों एवं पुरुषों को भी भगवान् के गुप्ताङ्गों का दर्शन करने दिया।

इन सभी आरोपों का आनन्द स्थविर ने सन्तोषजनक उत्तर दिया। अतः सङ्घ ने उनको आरोपमुक्त कर दिया।

इसी प्रथम सभा में **छन्न** भिक्षु को भगवान् की आज्ञा से ब्रह्मदण्ड दिया गया। यह छन्न भिक्षु पहले का वही छन्न (छन्दक) सारथि था जिसने भगवान् का, राज-प्रासाद से महाभिनिष्क्रमण करते समय, विश्वसनीयता के साथ सहयोग किया था। परन्तु वही छन्न आज भिक्षु बनने के बाद इतना उद्दण्ड हो गया कि वह किसी भी छोटे-बड़े भिक्षु को अपवचन बोलने में कोई सङ्कोच नहीं करता था। जब उसे सङ्घ द्वारा ब्रह्मदण्ड सुनाया गया और उसमें भगवान् की अनुमति भी बतायी गयी तो वह पश्चात्तापदग्ध हो गया। इस

पश्चात्ताप से उसके सभी मल क्षीण हो गये और वह अर्हत् हो गया। अर्हत् होने पर तो उसे दण्ड-मुक्त हो ही जाना था। अस्तु।

इस प्रथम सङ्गीति के चार परिणाम निकले—

(१) स्थविर उपालि के नेतृत्व में विनय का निश्चय।

(२) स्थविर आनन्द के नेतृत्व में धम्म (सुत्त) का निश्चय।

(३) आनन्द पर आक्षेप तथा उनका उत्तर।

(४) छन्न भिक्षु को ब्रह्मदण्ड एवं उसके द्वारा पश्चात्ताप।

यह सङ्गीति 'पञ्चशतिका' सङ्गीति भी कहलायी; क्योंकि इसमें पाँच सौ भिक्षु सम्मिलित हुए थे। और यह सङ्गीति 'स्थविरीय सङ्गीति' भी कहलायी; क्योंकि इसमें सम्मिलित होने वाले सभी भिक्षु स्थविर थे, या स्थविरवाद को मानते थे। *

२. द्वितीय धर्मसङ्गीति (सप्तशतिका)

भगवान् के महापरिनिर्वाण के एक सौ (१००) वर्ष बीतने के बाद, द्वितीय भिक्षुसङ्घपरिषद् की बैठक धर्म और विनय पर निर्णय हेतु **वैशाली** में हुई।

चुल्लवग्ग एवं **दीपवंस** तथा **महावंस** के अनुसार वज्जी (वृजिप्रदेश) के भिक्षु ऐसी दस बातें (दस वत्थूनि=निषिद्ध कर्म) करते थे, जिन्हें स्थविर **काकण्डकपुत्र यश** धर्मसम्मत नहीं मानते थे। अपितु वे सभी बातें उनकी दृष्टि में अनैतिक एवं अधर्मयुक्त ही थीं। इन वज्जी भिक्षुओं ने, यश द्वारा विरोध किये जाने पर, उनका 'प्रतिसारणीय कर्म' किया। यश को अपना पक्ष-समर्थन करना पड़ा। जनसाधारण के सम्मुख उन्होंने अपना पक्ष अद्भुत वक्तृत्वकौशल के साथ रखा। इसके विरोधस्वरूप वज्जिपुत्र भिक्षुओं ने उनको 'उत्क्षेपणीय दण्डकर्म' दिया जिसका अर्थ था—स्थविर यश का सङ्घ से निष्कासन।

उपर्युक्त दस बातें **चुल्लवग्ग, दीपवंस** तथा **महावंस** में इस प्रकार उद्धृत की गयी हैं—

(१) सिङ्गिलोण कप्प— (भिक्षा के समय एक खाली सींग में नमक भर कर ले जाना) [यह अड़तीसवें (३८) पाचित्तिय नियम के विरुद्ध था, जिसमें किसी भी प्रकार का खाद्यसंग्रह निषिद्ध माना गया है।]

(२) दियङ्गुल कप्प— (जब मध्याह्न में सूर्य की छाया दो अङ्गुल विस्तृत होने लगे, तब भोजन करना) [यह सैंतीसवें (३७) पाचित्तिय नियम के विरुद्ध था, जिसमें मध्याह्न के बाद भोजन करना 'अविहित' बताया गया है।]

(३) गामन्तर कप्प— (एक ही दिन में, एक स्थान पर भोजन कर, फिर दूसरे ग्राम में जाकर पुनः भोजन कर लेना) [यह पैंतीसवें (३५) पाचित्तिय नियम के विरुद्ध था, जिसके अनुसार अतिभोजन निषिद्ध है।]

(४) आवास कप्प— (एक ही सीमा में अनेक स्थानों पर उपोसथविधि सम्पन्न करना।) [यह विनयपिटक के महावग्ग में घोषित नियमों के विरुद्ध था।]

(५) अनुमति कप्प— (किसी कार्य को सम्पन्न करने के बाद सङ्घ से उसकी अनुमति प्राप्त करना।) [यह भी भिक्षु-शासन के विरुद्ध था।]

(६) आचिण्ण कप्प— (रूढ़ियों, परम्पराओं को ही शास्त्र=बुद्धवचन मानना। [यह भी भिक्षुशासन के विरुद्ध था; क्योंकि बौद्धों में कोई भी परम्परा तभी विहित मानी जाती है जब वह बुद्धानुमोदित भी हो।]

(७) अमथित कप्प— (भोजन के बाद दही के रूप में आधे परिवर्तन वाले दूध को पीना।) [यह भी पैंतीसवें (३५) पाचित्तिय नियम के विरुद्ध था, जिसमें अतिभोजन निषिद्ध माना गया है।]

(८) जलोगिकप्प— (ताड़ी=सुरा, ताड़ से निकला रस, पीना।) [यह इक्कावनवें (५१) पाचित्तिय नियम के विरुद्ध था, जिसके अनुसार मादक पेय निषिद्ध है।]

(९) अदसक निसीदन— (जिसके किनारे निकले हुए न हों ऐसे कम्बल या रजाई का बैठने के लिये आसन के रूप में प्रयोग करना) [यह भी नवासीवें (८९) पाचित्तिय नियम के विरुद्ध था, जिसके अनुसार विना किनारे की चादर उपयोग में लाना निषिद्ध घोषित है।]

(१०) जातरूपरजतग्गहण— (सोने-चाँदी का परिग्रह करना।) [यह परिग्रह भी निस्सग्गिय-पाचित्तिय, नियम अट्ठारह (१८) के अनुसार निषिद्ध घोषित था।]

अतः स्थविर काकण्डपुत्र यश ने इन सभी बातों को धर्मविरुद्ध बताया। परन्तु उन्हें सङ्घ से बहिष्कृत ही कर दिया गया। तब वे वहाँ से कोसाम्बी गये और वहाँ उन्होंने पश्चिम प्रदेश, अवन्ति तथा दक्षिण प्रदेश के भिक्षुओं को एकत्र किया, जिससे कि वे मिल-बैठकर इस विवाद को निर्णीत करें और इस अधर्मप्रसार को रोकें तभी विनय (धर्मानुशासन) की रक्षा हो सकेगी।

वहाँ से वे सभी भिक्षु एकत्र होकर अहोगङ्ग पर्वत पर **सम्भूत साणवासी** स्थविर के पास पहुँचे, उन्हें अभिवादन कर उनसे इस विवादास्पद विषय पर विचार करने हेतु निवेदन किया। सब बातें सुनकर, स्थविर सम्भूत स्थविर ने भी स्वीकृति दे दी। यहाँ पश्चिम से साठ (६०) तथा अवन्ती एवं दक्षिण से अट्ठासी (८८) अन्य भिक्षु भी एकत्र हो गये । अन्त में इन सभी भिक्षुओं का यह विचार बना कि सौरेय्य निवासी अर्हत् **रेवत सहजाति** से भी इस विषय पर विमर्श कर लिया जाय। उनकी सम्मति भी महत्त्वपूर्ण होगी। वे सब वहाँ पहुँचे।

उधर वज्जी भिक्षु भी शान्त नहीं बैठे थे। वे भी अर्हत् रेवत सहजाति के पास पहुँचे। जिन्होंने अर्हत् को बड़े बड़े उपहार भी देने चाहे, जो उन्होंने अस्वीकृत कर दिये। रेवत के शिष्य **उत्तर** को वज्जियों ने अपने अनुकूल बना लिया, परन्तु वह भी उन वज्जियों की कोई सहायता या समर्थन नहीं कर पाया। अन्त में दोनों पक्षों के सात सौ (७००) भिक्षुओं की एक सभा, इस विवाद पर कोई निर्णय करने हेतु हुई। परन्तु यह सभा भी कोई सर्वसम्मत निर्णय करने में असमर्थ ही रही।

अन्त में इस सभा में, अर्हत् रेवत सहजाति के प्रस्ताव के अनुसार, दोनों पक्षों में से चार चार प्रमुख भिक्षुओं का चयन कर उनकी एक समिति (उद्वाहिका) बनायी गयी, जिसका निर्णय मानना सबने स्वीकार किया।

तरुण भिक्षु **अजित** इस समिति के स्थाननियन्त्रक (स्थान-व्यवस्थापक) बनाये गये। महास्थविर **सब्बकामी** इस समिति के सभापति चुने गये; क्योंकि वे उन उपस्थित भिक्षुओं में सबसे वृद्ध (१२० वर्ष) थे। समिति ने एक एक विषय पर विचार किया। महास्थविर सब्बकामी ने प्रत्येक विवाद-विषय प्रस्तुत किया, तथा अर्हत् रेवत सहजाति ने सभी विवादों का धर्मसम्मत उत्तर दिया। अन्त में उन सात सौ भिक्षुओं की पूर्ण सभा हुई जिसमें धर्म और विनय का सङ्गायन हुआ एवं उपर्युक्त दसों बातें अधर्मसम्मत (अविहित, भिक्षुओं के लिये अकरणीय) घोषित की गयीं।

उपर्युक्त कथासार **चुल्लवग्ग, दीपवंस** एवं **महावंस** में समान रूप से उद्धृत है, केवल दीपवंस एवं महावंस में उल्लिखित सभा में सम्मिलित हुए भिक्षुओं की सङ्ख्या में अतिशयोक्ति द्योतित होती है।

दीपवंस एवं **समन्तपासादिका** (विनयपिटक की बुद्धघोषकृत अट्ठकथा) के अनुसार, यह सङ्गीति राजा अजातशत्रु के वंशज राजा **कालाशोक** के समय हुई।

दीपवंस के अनुसार, वैशाली के दस हजार (१००००) भिक्षुओं की एक पृथक् महासङ्गीति भी हुई।

महावंस के अनुसार, सात सौ (७००) स्थविर भिक्षुओं ने धर्म एवं विनय का सङ्कलन किया।

समन्तपासादिका (आचार्य बुद्धघोष) के अनुसार, विवाद पर अन्तिम निर्णय के बाद सात सौ (७००) भिक्षुओं ने धर्म एवं विनय का सङ्गायन किया। इस तरह त्रिपिटक का एक नया संस्करण प्रस्तुत किया, जिसमें पिटक-ग्रन्थ निकाय, अङ्ग एवं धर्मस्कन्ध के रूप में पृथक् किये गये।

यों हम कह सकते हैं कि गौण विवरण के विषय में भले ही मतभेद हो, परन्तु इस द्वितीय सङ्गीति का इस रूप में होना—सभी प्राचीन ग्रन्थकारों को मान्य है।

इस परिषद् का अन्तिम एवं दुःखद निष्कर्ष यह रहा कि सङ्घ में मतभेद स्पष्ट हो गया आर महासाङ्घिक भिक्षु स्थविरवादियों से पृथक् हो गये। ✻

३. तृतीय धर्मसङ्गीति

यह तीसरी धर्मसङ्गीति **सम्राट् अशोक** के समय, उन्हीं के संरक्षण, में हुई। उस समय बौद्ध धर्म में अनेक सम्प्रदाय बन चुके थे। उनमें एकरूपता लाना अत्यावश्यक था। परन्तु प्रमाणों के आधार पर इतना तो कहना ही पड़ेगा कि यह सङ्गीति एकान्ततः केवल स्थविरवादियों की ही थी। इसमें अन्य बौद्ध सम्प्रदाय, राजभय या अन्य किसी कारण से, उपेक्षापूर्वक सम्मिलित हुए या सम्मिलित ही नहीं हुए।

सम्राट् अशोक को **मोग्गलिपुत्त तिस्स स्थविर ने** बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। (न्यग्रोध श्रामणेर ने तो उनके हृदय में बौद्ध धर्म के प्रति केवल श्रद्धा जगायी थी।) स्थविर तिष्य को धर्म के अनुयायियों में अधर्म का प्रवेश देख कर बहुत कष्ट हो रहा था। अतः उनके परामर्श से सम्राट् ने इतर धर्मानुयायियों की समीक्षा कर उन्हें धर्म से निष्कासित कर दिया। इतना ही नहीं, शास्त्रीय दृष्टि से उनके मतवादों को निरस्त करने के लिये स्थविर ने **कथावत्थुप्रकरण** नामक एक विशेष ग्रन्थ की भी रचना की।

मोग्गलिपुत्त तिष्य मेधावी ब्राह्मण थे। सोलह वर्ष की आयु होते होते वे तीनों वेदों के ज्ञाता हो चुके थे। उन्होंने सिग्गव स्थविर (आर्य उपालिस्थविर के प्रपौत्र शिष्य) से बौद्ध धर्म की दीक्षा (प्रव्रज्या) ली। और साधना करते करते अर्हत्पद तक पहुँच गये। उन्हीं के उपदेश के प्रभाव से सम्राट् अशोक ने अपने पुत्र **महेन्द्र** एवं पुत्री **सङ्घमित्रा** को सङ्घ में धर्म की दीक्षा दिलायी। वे दोनों (पुत्र एवं पुत्री) यथासमय लङ्काद्वीप गये और दोनों ने ही वहाँ जीवनपर्यन्त रहकर बौद्धधर्म के चतुरस्र प्रचार-प्रसार में पूर्ण सहयोग दिया।

सम्राट् अशोक द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद, विहारों में सुख-समृद्धि का अतिरेक हो गया। अतः सङ्घ से पूर्वनिष्कासित या फिर अन्य मतानुयायी तीर्थिक भी सङ्घ में स्तेयसंवासक के रूप में बहुत अधिक सङ्ख्या में प्रविष्ट हो गये। वे सब अपनी ही बातें अपनी पद्धति से कहते भी थे, करते भी थे और उन्हें ही बौद्ध मत कहकर चलाना चाहते थे। स्थविर मोग्गलिपुत्र तिष्य को यह सब देखकर घोर क्लेश होने लगा। और वे इस पाप से अपने को अलिप्त रखने के लिये साधनाहेतु अहोगङ्ग पर्वत पर जाकर रहने लगे। वे वहाँ सात वर्ष रहे।

उनकी अनुपस्थिति में सङ्घ का अनुशासन सर्वथा नष्ट हो गया। इस सात वर्ष के बीच सङ्घ में इतने मिथ्यादृष्टि एवं धर्मद्रोही भिक्षु प्रविष्ट हो गये कि सात वर्ष के इस दीर्घ अन्तराल में पाटलिपुत्र के **अशोकाराम** में न कोई पाक्षिक उपोसथ कर्म हुआ, और न कोई प्रवारणाविधि ही सम्पन्न हुई। अन्त में विवश होकर सम्राट् अशोक ने राजकीय आदेश दिया कि उपोसथविधि सम्पन्न की जाय। इस आज्ञा को कार्यरूप में परिणत करने के लिये एक अमात्य को नियुक्त किया। उस मूढ़मति अमात्य ने, सम्राट् के आदेश का वास्तविक भाव न समझते हुए, अशोकाराम में जाकर भिक्षुओं को डराना-धमकाना प्रारम्भ किया और अन्त में मिथ्यादृष्टियों की उपस्थिति में उपोसथ न करना चाहने वाले कुछ वास्तविक भिक्षुओं के सिर काट डाले। सम्राट् को यह दुःखद समाचार मिला तो वे तत्काल अशोकाराम आये। वहाँ आकर उन्होंने वृद्ध भिक्षुओं से पूछा कि इन हत्याओं का उत्तरदायी (फलभोक्ता) कौन है? सम्राट् इनके किसी भी उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुए। उधर भिक्षुओं में भी दो मत (पक्ष) हो गये। एक पक्ष इन हत्याओं का वास्तविक उत्तरदायी सम्राट् को ही मानता था तो एक नहीं। अन्त में, स्थविर भिक्षुओं ने निर्णय दिया कि इस प्रश्न का शास्त्रानुकूल एवं धर्मसम्मत उत्तर केवल मोग्गलिपुत्र तिष्य स्थविर ही दे सकते हैं।

तब सम्राट् ने, स्थविर को लाने के लिये, अधिकारिवर्ग एवं भिक्षुसमूह को अहोगङ्ग पर्वत पर भेजा। बहुत मान-मनौवल के बाद, ये स्थविर नाव द्वारा पाटलिपुत्र आये। स्वयं सम्राट् ने उनका स्वागत किया। उन्हें सुविधापूर्वक 'आराम' में ठहराया गया। उन्होंने वहाँ एक चमत्कार (पृथ्वी का एकांश कम्पन) दिखाया। इससे सम्राट् बहुत प्रभावित हुआ। तब सम्राट् ने स्थविर से अपना प्रश्न पूछा। स्थविर ने उत्तर दिया— "कुत्सित सङ्कल्प के विना किया हुआ कोई भी कर्म अधर्म नहीं होता।" यह सुनकर सम्राट् का सन्देह निवृत्त हो गया। एक सप्ताह तक स्थविर ने सम्राट् को सद्धर्म का उपदेश किया।

तदनन्तर, सम्राट् ने सभी भिक्षुओं को एक स्थान पर एकत्र किया। इनमें प्रत्येक भिक्षु को अपना अपने मत प्रतिपादित करने का अवसर दिया। इनमें से जिस भिक्षु ने स्थविरवाद (विभज्यवाद) का समर्थन किया उसे ही वास्तविक भिक्षु माना गया। अवशिष्ट साठ हजार (६०.०००) भिक्षुवेषधारी स्तेयसंवासकों को सङ्घ से निष्कासित कर दिया गया। शुद्ध मतवाले भिक्षुओं ने उपोसथ कर्म किया। इससे सङ्घ से समग्र पापवासना एवं अकुशल धर्मों की निवृत्ति हुई।

तत्पश्चात्, स्थविर तिष्य ने त्रिपिटक-पारङ्गत एक हजार (१,०००) भिक्षुओं का चयन किया तथा उनके सभापतित्व में सम्पन्न हुई सभा में बौद्ध धर्म के सिद्धान्त निश्चित किये गये। नौ मास तक यह कार्य चला। इसी सभा में समग्र त्रिपिटक के सङ्कलन का कार्य भी पूर्ण हुआ। साथ ही मोग्गलिपुत्र तिष्य द्वारा रचित '**कथावत्थुप्पकरण**' ग्रन्थ भी त्रिपिटक के एक ग्रन्थ के रूप में मान्य किया गया ।

सम्राट् के विशेष आग्रह पर बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु देश-देशान्तर में भिक्षुओं के प्रचारकमण्डल भेजने का भी निर्णय किया गया।

इस तृतीय धर्मसङ्गीति से निष्कर्ष रूप में ये उपलब्धियाँ हुईं—

(१) अन्य मतावलम्बियों के निष्कासन से सङ्घ की परिशुद्धि।

(२) त्रिपिटक का पुनः सङ्कलन

(३) एवं उसमें शास्त्रार्थपद्धति पर **कथावत्थु** ग्रन्थ का समावेश हुआ।

(४) अन्य देशों में भी बौद्ध धर्म-प्रचार का निर्णय हुआ।

(५) महेन्द्र और सङ्घमित्रा ने अपना जीवन समर्पित कर लङ्काद्वीप को बौद्ध धर्ममय बनाने का सङ्कल्प।

(६) सम्राट् अशोक को इसी सङ्गीति से समग्र देश में बौद्ध सिद्धान्तों को शिलाओं पर लेखन की प्रेरणा।

✻

अष्टादश निकाय
(सङ्घभेद)

'अति सर्वत्र वर्जयेत्'— यह एक प्राचीन मान्यता है। बौद्धधर्म का अत्यधिक प्रचार प्रसार होने के कारण, सम्राट् अशोक का समय आते-आते सङ्घ में इतना उग्र मतभेद हो गया था कि अन्त में वह अट्ठारह (१८) भागों में विभक्त हो गया[१]।

यद्यपि अब तक सभी इतिहासकारों ने दशवस्तुविषयक मतभेद को ही 'सैद्धान्तिक मतभेद' की संज्ञा दी है, परन्तु सूक्ष्मेक्षिकया समीक्षा करने के बाद ऐसा लगता है कि ये तथाकथित दशवस्तुविषयक आदि मतभेद सैद्धान्तिक कम थे, भौगोलिक (स्थानीय या प्रादेशिक), तथा भाषाविषयक ही अधिक थे। इनकी प्रबलता इसी से देखी जा सकती है कि ये आज तक निर्णीत नहीं हो सके; क्योंकि जब सभी बौद्ध १. भगवान् बुद्ध को ही अपना शास्ता मानते हैं, २. निर्वाण को ही अपना चरम लक्ष्य मानते हैं, ३. उनकी दृष्टि में आर्य सत्यचतुष्टय एवं आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ही उक्त निर्वाणप्राप्ति का एकमात्र उपाय है तथा ४. सभी के मत में प्रतीत्यसमुत्पाद ही ज्ञान के साक्षात्कार का सुलभतम उपाय है तो सैद्धान्तिक मतभेद कहाँ और कैसा!

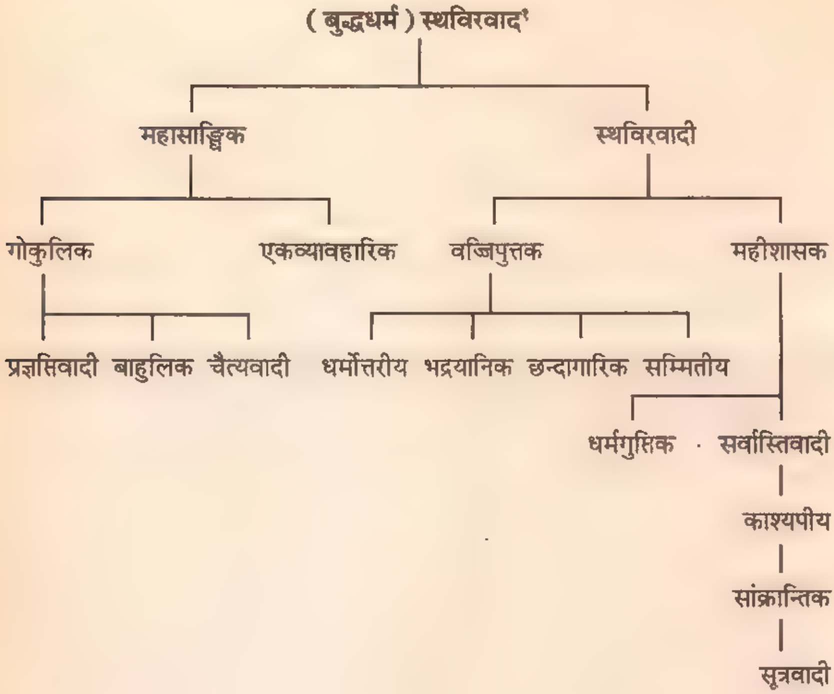
हमारी मान्यता तो यह है कि प्रारम्भ से ही बौद्धों की ब्राह्मण-धर्म के सिद्धान्तों से प्रत्यक्ष प्रतिद्वन्द्विता थी। जनता में बौद्धों के सिद्धान्तों का प्रचार होते होते वह समय आ ही गया जब ब्राह्मणों को उत्तर देने के लिये बौद्धों को भी संस्कृत भाषा की, जो कि तत्कालीन आभिजात्यकुलीन जनता की व्यवहारभाषा थी, गम्भीर आवश्यकता आ पड़ी। साधारण जन-भाषा में ब्राह्मणों की तार्किक युक्तियों का उत्तर देने में बौद्ध अपने को दुर्बल पा रहे थे। जबकि भगवान् बुद्ध का धर्मोपदेश की भाषा के विषय में स्पष्ट आदेश था कि "अनुजानामि, भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं ति" (भिक्षुओ! मैं तुम्हें धर्मोपदेश के प्रवचन हेतु अपनी जनभाषा के व्यवहार हेतु अनुज्ञा देता हूँ)। यहाँ एक तरफ स्थविरवादी थे जो भगवान् के आदेश से एक पद (कदम) भी पीछे नहीं हटना चाहते थे, उधर महासाङ्घिकों को संस्कृत भाषा का उपयोग करना समय का आह्वान (पुकार) लगता था। यह एक ऐसा मतभेद था कि जो आज तक सुलझ नहीं पाया। अन्यथा दशवस्तुओं वाला विवाद तो भिक्षु रेवत स्थविर के युक्तियुक्त निर्णय देने के बाद सुलझ ही गया लगता था। हम देखते हैं, उस सङ्गीति के बाद इन दश वस्तुओं की इतिहास में आगे कोई चर्चा नहीं मिलती, न इनको मानने के लिये ही कोई विवेकी भिक्षु आग्रही दिखायी देता है।

इसी तरह आगे चलकर श्रावकयान (हीनयान) एवं महायान में अन्य मतभेद भी उभरे, परन्तु दशवस्तुविषयक मतभेद इतना महत्त्वपूर्ण नहीं रहा। अस्तु। उस समय के

---

१. द्र०— म.वं. चतुर्थ परिच्छेद।

सङ्घभेद का रेखाचित्र दीपवंस, महावंस के अनुसार यह है—



१. (द्र० महावंस भूमिका पृ० सं० ४१)

भगवान् बुद्ध के

४६ वर्षावास (वस्सावास)

(अङ्गुत्तरनिकाय[1] एवं धम्मपद की अट्ठकथा[2] के आधार पर)

क्रम	स्थान (विहार)	नगर	काल	विशेष
१.	मिगदाव	ऋषिपतन (सारनाथ)	५२७ ई.पू.	४७० वि.पू.
२.	वेणुवन	राजगृह	५२६ ई.पू.	४६९ वि.पू.
३.	वेणुवन	राजगृह	५२५ ई.पू.	४६८ वि.पू.
४.	वेणुवन	राजगृह	५२४ ई.पू.	४६७ वि.पू.
५.	महावन, कूटागारशाला	वैशाली	५२३ ई.पू.	४६६ वि.पू.
६.	मङ्कुलकाराम	मङ्कुल पर्वत (गुजरात का सुनापरन्तदेश)	५२२ ई.पू.	४६५ वि.पू.
७.	त्रायस्त्रिंश भवन	देवलोक	५२१ ई.पू.	४६४ वि.पू.
८.	भेसकडावन	सुंसुमार गिरि (चुनार)	५२० ई.पू.	४६३ वि.पू.
९.	घोषिताराम	कौशाम्बी	५१९ ई.पू.	४६२ वि.पू.
१०.	वनषण्ड	पारिलेय्यक	५१८ ई.पू.	४६१ वि.पू.
११.	नाला	ब्राह्मणग्राम	५१७ ई.पू.	४६० वि.पू.
१२.	नलेरु पुचिमन्द वृक्ष के नीचे	वेरञ्जा	५१६ ई.पू.	४५९ वि.पू.
१३.	चालिका	चालिय पर्वत	५१५ ई.पू.	४५८ वि.पू.
१४.	जेतवन	श्रावस्ती	५१४ ई.पू.	४५७ वि.पू.
१५.	न्यग्रोधाराम	कपिलवस्तु	५१३ ई.पू.	४५६ वि.पू.
१६.	अग्गालवचैत्य या सिंसपावन, गोमग्ग	आळवी	५१२ ई.पू.	४५५ वि.पू.
१७.	वेणुवन	राजगृह	५११ ई.पू.	४५४ वि.पू.
१८.	चालिका	चालिय पर्वत	५१० ई.पू.	४५३ वि.पू.
१९.	चालिका	चालिय पर्वत	५०९ ई.पू.	४५२ वि.पू.

१. द्र०—अ.नि.अट्ठकथा २:४:५

२. द्र०—धम्मपद अट्ठकथा (प्रारम्भ में ही)

क्रम	स्थान (विहार)	नगर	काल	विशेष
२०.	वेणुवन	राजगृह	५०८ ई.पू.	४५१ वि.पू.
२१.	जेतवन	श्रावस्ती	५०७ ई.पू.	४५० वि.पू.
२२.	पूर्वाराम	श्रावस्ती	५०६ ई.पू.	४४९ वि.पू.
२३.	जेतवन	श्रावस्ती	५०५ ई.पू.	४४८ वि.पू.
२४.	पूर्वाराम	श्रावस्ती	५०४ ई.पू.	४४७ वि.पू.
२५.	जेतवन	श्रावस्ती	५०३ ई.पू.	४४६ वि.पू.
२६.	पूर्वाराम	श्रावस्ती	५०२ ई.पू.	४४५ वि.पू.
२७.	जेतवन	श्रावस्ती	५०१ ई.पू.	४४४ वि.पू.
२८.	पूर्वाराम	श्रावस्ती	५०० ई.पू.	४४३ वि.पू.
२९.	जेतवन	श्रावस्ती	४९९ ई.पू.	४४२ वि.पू.
३०.	जेतवन	श्रावस्ती	४९८ ई.पू.	४४१ वि.पू.
३१.	जेतवन	श्रावस्ती	४९७ ई.पू.	४४० वि.पू.
३२.	पूर्वाराम	श्रावस्ती	४९६ ई.पू.	४३९ वि.पू.
३३.	जेतवन	श्रावस्ती	४९५ ई.पू.	४३८ वि.पू.
३४.	पूर्वाराम	श्रावस्ती	४९४ ई.पू.	४३७ वि.पू.
३५.	जेतवन	श्रावस्ती	४९३ ई.पू.	४३६ वि.पू.
३६.	पूर्वाराम	श्रावस्ती	४९२ ई.पू.	४३५ वि.पू.
३७.	जेतवन	श्रावस्ती	४९१ ई.पू.	४३४ वि.पू.
३८.	पूर्वाराम	श्रावस्ती	४९० ई.पू.	४३३ वि.पू.
३९.	जेतवन	श्रावस्ती	४८९ ई.पू.	४३२ वि.पू.
४०.	पूर्वाराम	श्रावस्ती	४८८ ई.पू.	४३१ वि.पू.
४१.	जेतवन	श्रावस्ती	४८७ ई.पू.	४३० वि.पू.
४२.	पूर्वाराम	श्रावस्ती	४८६ ई.पू.	४२९ वि.पू.
४३.	जेतवन	श्रावस्ती	४८५ ई.पू.	४२८ वि.पू.
४४.	पूर्वाराम	श्रावस्ती	४८४ ई.पू.	४२७ वि.पू.
४५.	जेतवन	श्रावस्ती	४८३ ई.पू.	४२६ वि.पू.
४६.	महावन, कूटागारशाला	वैशाली	४८२ ई.पू.	४२५ वि.पू.

भगवान् बुद्ध की

धर्मप्रवचनपद्धति

एवं उसका प्रभाव

जनता के सम्मुख धर्मासन पर विराजमान होकर भगवान् बुद्ध की धर्मोपदेश करने की पद्धति बहुत ही सरल एवं सर्वजनबोध्य होती थी। वे अपने प्रवचन में जनता को सबसे पहले **दान का माहात्म्य** बताते थे। फिर **शील** (सदाचार) का **माहात्म्य** (अच्छाई) बताते हुए **स्वर्ग का माहात्म्य** बताते थे कि किन शुभकर्मों के सहारे स्वर्ग-सुख की उपलब्धि हो सकती है। तदनन्तर, अधर्मपूर्वक किये गये **कामभोगों के दुष्परिणाम** अर्थात् उनसे होने वाले अपकार तथा दोषों की क्रमशः व्याख्या करते थे और अन्त में, निष्काम भाव से की जाने वाली सत्कर्मों एवं **धर्मों के आराधन की प्रशंसा** करते थे।

इस तरह उस धर्मसभा में उपस्थित जनता उक्त उपदेशश्रवण के प्रभाव से भव्यचित्त, मृदुचित्त, विकारों से अनाच्छादितचित्त, धर्माचरण में आह्लादितचित्त एवं भगवान् के प्रति श्रद्धालुचित्त हो जाती थी।

आर्य सत्यचतुष्टय

तब भगवान् उस श्रद्धालु जनता को इस सद्धर्म की दूसरी सीढ़ी (सोपान) का उपदेश प्रारम्भ करते थे जो साधक को बौद्ध धर्म की साधना की तरफ प्रेरित करने वाला होता था। जैसे— ''इस धर्म की साधना से साधक को स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि यह समग्र दृश्यमान जगत् 'दुःख' है; इस दुःख की उत्पत्ति का कोई न कोई कारण 'समुदय' भी अवश्य है; (प्रयास करने पर) उस दुःख का 'निरोध' (नाश) भी किया जा सकता है और उस 'निरोध का मार्ग' (उपाय) भी तथागत ने अभिसम्बुद्ध कर लिया है।''

भगवान् इस दुःखनिरोध के लिये जो मार्ग बताते थे, उसके ये आठ अङ्ग (आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग) होते थे। जैसे— १. सम्यग्दृष्टि, २. सम्यक्सङ्कल्प, ३. सम्यग्वाक्, ४. सम्यक्कर्मान्त, ५. सम्यगाजीव, ६. सम्यग्व्यायाम, ७. सम्यक्स्मृति एवं ८. सम्यक्समाधि। विशुद्ध ज्ञानप्राप्ति का यह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ही एकमात्र साधन है, अन्य कोई नहीं।

आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग

१. सम्यग्दृष्टि— भगवान् कहते हैं कि जो तत्त्वचिन्तक स्वचिन्तन से प्राणातिपात अकुशल; लोभ आदि अकुशलमूल; प्राणातिपात-त्याग आदि कुशल; अलोभ आदि कुशलमूल कर्मों एवं चार आर्यसत्यों को भली भाँति (सही ढंग से) जान लेता है वही 'सम्यग्दृष्टि' कहलाता है।

'यह लोक शाश्वत है या शाश्वत' आदि मिथ्यादृष्टियाँ (धारणाएँ) रखना जाति-जरा, मरण, शोक, परिदेव, दु:ख, दौर्मनस्य को ही निमन्त्रण देना है। सत्कायदृष्टि आदि छह संयोजन नष्ट कर वह स्रोतआपन्न (निर्वाण, मार्ग पर चलने वाला) बन जाता है।

भगवान् अवतार लें या न लें, उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म तो बने ही रहते हैं। अत: सम्यग्दृष्टिचिन्तक को उन्हीं उपदेशों पर निरन्तर चिन्तन मनन करना चाहिये। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान— ये सब अनित्य हैं, विनाशी हैं। भगवदुक्त इस मान्यता पर सभी पण्डितजन एकमत हैं। जिसके यह बात समझ में न आये या जो इन्हें नित्य एवं अविनाशी समझे, वह मूर्ख या बाल ही है।

भगवान् कहते हैं कि 'वही जीव है, वही शरीर है' या 'जीव अन्य है, शरीर अन्य'— यह धारणा रखने पर मेरे बताये धर्म की वास्तविक साधना नहीं हो सकती। इसलिये इन दोनों अन्तों (मर्यादाओं=किनारों) की मिथ्या बातों को छोड़कर, तथागत मध्यमार्ग से धर्मोपदेश करते हैं। वह उपदेश यों है—

प्रतीत्यसमुत्पाद— अविद्या के होने (प्रत्यय) से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नामरूप, नामरूप के होने से छह आयतन, छह आयतनों के होने से (विषय-) स्पर्श, स्पर्श के होने से वेदना (अनुभूति), वेदना के होने से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान, उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से जरा (बुढ़ापा), मरण, शोक, रोना-पीटना, दु:ख, मानसिक चिन्ता तथा उद्विग्नता होती है। इस प्रकार इस समग्र दु:खस्कन्ध की उत्पत्ति होती है।

अविद्या के निरोध से समग्र वैराग्य एवं संस्कारों का निरोध होता है, संस्कारों के निरोध से विज्ञान का निरोध, विज्ञान के निरोध से नामरूप का निरोध, नामरूप के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव का निरोध, भव के निरोध से जन्म का निरोध, जन्म के निरोध से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दु:ख एवं उद्विग्नता का निरोध होता है। इस प्रकार इस समग्र दु:खस्कन्ध का निरोध होता है।

अविद्या और नीवरणों (दोषों) से युक्त प्राणी तृष्णा के बन्धन में बँधे हुए, यहाँ वहाँ आसक्त होते रहते हैं— इस प्रकार उनको बार-बार जन्म लेना पड़ता है।

लोभ द्वेष मोह के परिणाम एवं लोभ द्वेष मोह के कारण किये गये कर्म का, जहाँ उसका अस्तित्व बनता है, वहीं विपाक होता है। जहाँ वह कर्मविपाक होता है, वहीं उस कर्मविपाक की अनुभूति (भोग) भी होती है, भले ही वह इस जन्म में हो या किसी दूसरे जन्म में।

और अविद्या के नाश से विद्या का उत्पाद एवं तृष्णा का निरोध हो जाने पर पुनर्जन्म की कोई सम्भावना नहीं रहती। अलोभ अद्वेष अमोह का परिणाम, अलोभ अद्वेष अमोह के कारण किया गया, अलोभ अद्वेष अमोह से उत्पन्न कर्म लोभ-द्वेष और मोह के

विनष्ट हो जाने पर स्वयं भी नष्ट हो जाता है, मूल से समाप्त हो जाता है, भविष्य में उसके पुनरुत्पाद की कोई सम्भावना नहीं रहती।

२. सम्यक्सङ्कल्प— १. नैष्कर्म्यसङ्कल्प २. अव्यापादसङ्कल्प एवं ३. अविहिंसा-सङ्कल्प— ये तीन प्रकार के सम्यक्सङ्कल्प कहलाते हैं। भगवान् के मत में वह सर्वोत्कृष्ट सम्यक्सङ्कल्प है, जिससे, उनका उपदेश सुनने के बाद, आर्यश्रावक को अपना घर-बार व सांसारिक व्यवहार छोड़कर प्रव्रज्या लेने का मन होने लगे।

३. सम्यग्वाक्— यहाँ कोई साधक असत्यभाषण छोड़कर, उससे दूर रहता है और सत्यवादी, सत्यभाषण में विश्वास करता हुआ, यथार्थ वचन से जनता का विश्वासपात्र बन जाता है। उससे यदि किसी सभा, जनसमूह या राजदरबार में किसी बात के विषय में पूछा जाय तो उसने जो सुना या देखा हो वही कहता है, झूठ नहीं बोलता। वह किसी की चुगली कर एक दूसरे को नहीं लड़ाता, कठोर वाणी नहीं बोलता, व्यर्थ प्रलाप (बकवाद) नहीं करता, विरोधियों (चोर-लुटेरों) द्वारा पीटे जाने पर भी उनके विरुद्ध मन में मैल नहीं लाता— वही 'सम्यग्वाक्' कहलाता है। अत: तत्त्वचिन्तक को समूह में पड़ने पर दो ही बात करनी चाहिये— या तो धार्मिक संवाद या फिर मौन धारण।

४. सम्यक्कर्मान्त— जो व्यक्ति सन्मार्ग पर चलने की चाह रखता हुआ हिंसा, चोरी, व्यभिचार फिर वह भले ही किसी भी कैसी भी परायी स्त्री के साथ क्यों न हो, को छोड़कर अहिंसारत रहता है, दूसरे से दी हुई चीज को ही लेता है, बलपूर्वक नहीं और सभी प्रकार के व्यभिचार से दूर रहता है, वही 'सम्यक्कर्मान्त' (सही कर्म करने वाला) कहलाता है।

५. सम्यगाजीव— यहाँ कोई आर्यश्रावक मिथ्या आजीव (आजीविका= जीवनयापनवृत्ति) को छोड़कर, सही आजीविका से जीवनयापन करता है। यह 'सम्यक्-आजीव' कहलाता है। [धर्म के उपासक को ये पाँच दूषित व्यापारिक वृत्ति निषिद्ध बतायी गयी हैं— शस्त्र का व्यापार, प्राणियों का व्यापार, मांस का व्यापार, मद्य (शराब) का व्यापार एवं जहरीली चीजों का व्यापार।]

६. सम्यग्व्यायाम— सम्यग्व्यायाम से तात्पर्य है, सम्यक्प्रयत्न। (व्यायाम, प्रधान और प्रयत्न— ये तीनों शब्द एक ही अर्थ को बताते हैं)। सम्यग्व्यायाम को शास्त्र में चार भागों में विभक्त किया गया है, वे हैं— संवरप्रधान, प्रहाणप्रधान, भावनाप्रधान और अनुरक्षणप्रधान।

(क) संवरप्रधान— कोई साधक अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये प्रयत्न करता है, श्रम करता है, चित्त को वश में करता है, दबाये रखता है— यह उसका प्रयत्न 'संवरप्रधान' है।

(ख) प्रहाणप्रधान— कोई साधक उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के नाश (प्रहाण) के लिये इच्छा व प्रयास करता है, उधर बढ़ता है, चित्त को वश में करता है,

दबाता है और उत्पन्न हुए कामवितर्क आदि सभी पापमय अकुशल धर्मों को स्वीकार नहीं करता, उन्हें छोड़ देता है— उसका यह प्रयत्न 'प्रहाणप्रधान' है।

(ग) भावनाप्रधान— कोई साधक अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये इच्छा व प्रयास करता है, उधर बढ़ता है, चित्त को वश में करता है, दबाता है— उसका यह प्रयत्न 'भावनाप्रधान' कहलाता है।

(घ) अनुरक्षणप्रधान— कोई साधक उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति, विपुलता एवं परिपूर्णता के लिये इच्छा व प्रयास करता है, उधर बढ़ता है, तदर्थ चित्त को वश में करता है, दबाता है—उसका यह प्रयत्न 'अनुरक्षणप्रधान' कहलाता है।

७. **सम्यक्स्मृति**— कोई साधक इस शरीर के अङ्गों को ही शरीर की वास्तविकता समझते हुए (काया में कायानुपश्यी हो) उद्योगशील, अनुभव और ज्ञान से युक्त, स्मृतिसम्पन्न, लोक (शरीर) सम्बन्धी लोभ और दुःखदौर्मनस्य का संवरण कर अभ्यास करता है। वेदनाओं में वेदनानुपश्यी, चित्त में चित्तानुपश्यी और धर्मों में अर्थात् पाँच उपादानस्कन्धों में, छह आध्यात्मिक एवं बाह्य आयतनों में, सात बोध्यङ्गों में तथा चार आर्यसत्यों में धर्मानुपश्यी होकर उद्योगशील, अनुभव एवं ज्ञान से युक्त हो, स्मृतिसम्पन्न, लोकसम्बन्धी लोभ और दुःख-दौर्मनस्य का संवरण कर अभ्यास करता है वह 'सम्यक्स्मृति' कहलाता है।

८. **सम्यक्समाधि**— चित्त की एकाग्रता को ही 'समाधि' कहते हैं। चार स्मृतिप्रस्थान समाधि के कारण हैं। चार सम्यक्प्रधान समाधि द्वारा परिष्कृत होते हैं। उन-उन धर्मों का सेवन करना, भावना करना या अधिक बढ़ाना ही समाधि की भावना है। जैसे— पाँच नीवरणों को दूर हटाना, चार ध्यानों की मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षासहगत चित्त में भावना करना। यही 'सम्यक्समाधि' है। इस समाधि से अनुपादान (अपरिग्रह)-भावना में दृढ़ता लाकर चित्तवृत्ति को उसी तरह निरुद्ध कर लिया जाता है, जैसे दीपक में तैल और बत्ती के समाप्त हो जाने पर दीपक बुझ जाता है।

भगवान् बुद्ध के मत में चित्तवृत्तिनिरोध ही निर्वाण है।

उपरिलिखित प्रवचनपद्धति से स्पष्ट ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध ने जनता को सर्वप्रथम शील (सदाचार) पालन के लिये दृढ़ता से समझाया और इन्होंने पाँच नियम ऐसे सुझाये, जिनका पालन जनता का दृढ़ता से करना ही पड़ता था। जैसे— १. अहिंसा, २. सत्यभाषण, ३. अस्तेय (चोरी न करना), ४. ब्रह्मचर्यपालन (परस्त्रीगमन का निषेध) एवं ५. मद्यपान का निषेध। इन पाँच नियमों को 'पञ्चशील' कहा गया। बुद्ध के मत में इस **पञ्चशील का पालन** प्रत्येक पुरुष के लिये आवश्यक है, फिर भले ही वह गृहस्थ हो या प्रव्रजित। भगवान् बुद्ध इसी 'पञ्चशील' के पालन हेतु अपने सभी प्रवचनों में दृढ़ता से आग्रह करते थे।

भगवान् बुद्ध ने अपनी समग्र शिक्षा को तीन अङ्गों में विभक्त किया था; यथा—

१. शील, २. समाधि एवं ३. प्रज्ञा। कोई भी साधक शील का पालन करते हुए ही समाधि एवं प्रज्ञा की तरफ बढ़ सकता है— ऐसा भगवान् बुद्ध का मन्तव्य था।

समाधि एवं प्रज्ञा के लिये प्रव्रज्या उपसम्पदा लेना आवश्यक माना गया। प्रव्रज्याविधि प्राप्त करने के बाद, साधक को भिक्षुनियम (दश शील) का पालन करते हुए समग्र त्रिपिटक का निरन्तर पारायण तथा तदनुसार आचरण करते हुए गुरु के अनुशासन में रहकर साधनारत रहना पड़ता है, जिसमें ध्यानपद्धति द्वारा सांसारिक विषयों में स्वचित्तवृत्ति निरोध करना अत्यावश्यक है। स्वचित्तवृत्तिनिरोध के सतत अभ्यास के बाद, साधक गुरुप्रोक्त प्रतीत्यसमुत्पाद तथा अभिधर्मपद्धति द्वारा शुद्ध चित्त से संसार की अनित्यता एवं अनात्मता पर श्रवण-मनन करता है। यों इस तत्त्व का निदिध्यासन करते करते साधक के चित्त से संसार के प्रति राग, द्वेष, मोह, तृष्णा आदि सभी विकार समाप्त हो जाते हैं। इस क्षीणास्रव की स्थिति वाले साधक को ही निर्वाण का साक्षात्कार होता है और उसी समय साधक यह कहने की स्थिति में आता है— **"खीणा मे जाति, उसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया"** ति (अर्थात् मेरी जन्ममरण-परम्परा क्षीण हो चुकी है, मैंने अपने सभी कर्तव्य पूर्ण कर लिये हैं, अब मेरा इस संसार में वर्तमान में कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है)।

इस तरह भगवान् बुद्ध की यह धर्मोपदेश-पद्धति इतनी सरल एवं क्रमबद्ध है कि इसके अनुसार साधना करने वाले साधक को न तो पहले भाषाज्ञान के लिये १२ वर्ष तक काशी में रहना पड़ता था, न २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रम का कठोर अनुशासन ही भोगना पड़ता था! वहाँ केवल चित्तशुद्धि पर सब कुछ निर्भर था। त्रिपिटक के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि जिन जिज्ञासुओं का चित्त सदाचार पालन से शुद्ध था, उनको भगवान् का उपदेश सुनते सुनते ही तत्काल अर्हत्त्व पद प्राप्त हो गया, परन्तु जो निर्मलचित्त नहीं हो सके थे वे इस जन्म की तो बात ही क्या, दो तीन जन्मों तक भी अर्हत्त्व पद तक नहीं पहुँच सके थे। कलुषित चित्त वाले देवदत्त जैसे भिक्षुओं तक की जो दुर्गति हुई— वह तो सब को ज्ञात है ही। यह है इस धर्मप्रवचन की महत्ता।

धर्मप्रवचन का प्रभाव— भगवान् बुद्ध तथा भिक्षुसङ्घ के इस धार्मिक प्रवचन के प्रभाव से कुछ ही समय में भारतीय समाज नैतिक दृष्टि से अभ्युन्नत होने लगा। उसमें क्रमशः नैतिकता बढ़ने लगी और अनैतिकता का ह्रास होने लगा। धार्मिकता के मोर्चे पर जनता उत्साह से एकत्र होने लगी, अधार्मिकों का व्यूह बिखरने लगा। अङ्गुलिमाल जैसे चोर-लुटेरे चोरी डकैती छोड़कर भगवान् द्वारा बोधित मार्ग पर चलने लगे। मद्य पीने वाले मद्यपान को अपराध मानने लगे, जारलोग परदारगमन को असामाजिक दुराचार तथा नरक में पतन का मार्ग समझ कर उससे दूर हट गये। असत्यभाषियों, चुगलखोरों या बकवादियों का समाज में कोई सम्मानित स्थान नहीं रह गया। यज्ञ यागादि में की जानेवाली हिंसा का परित्याग कर जनता शास्त्रसम्मत स्वाध्याय में लग गयी। पढ़े लिखे ब्राह्मण लोग भी जन्मना जाति का वृथाभिमान त्याग कर कर्मणा जाति पर विश्वास करने लगे। सम्पूर्ण जनसमूह दुर्गुणों का परित्याग कर सद्गुणों की धारणा के साथ एकता के सूत्र में गुँथ गया। समाज को और चाहिये क्या था! यों कहिये कि अन्धे को आँख मिल गयी!

समग्र भारत में भगवान् बुद्ध के प्रभाव से भारतीय समाज में आगामी १५०० वर्षों तक, रामराज्य का सुखी वायुमण्डल पुन: बना रहा। अशोक का बृहत् साम्राज्य एवं विश्व प्रसिद्ध नालन्दा विश्वविद्यालय इस बात के प्रबल साक्षी हैं।

भगवान् बुद्ध के उपदेशों का संग्रह

भगवान बुद्ध के प्रवचनकाल (पैतालीस वर्षों) में उनका यह अमूल्य उपदेशसंग्रह विशाल आकार ग्रहण कर चुका था। विद्वान् श्रद्धालु भिक्षुओं ने इस उपदेश का विषय-विभाजन करते हुए, इसे तीन भागों में संग्रह किया। यह संग्रह **त्रिपिटक** कहलाया। ये तीन पिटक हैं— १. विनयपिटक, २. सुत्तपिटक एवं ३. अभिधम्मपिटक।

१. जिस पिटक में भिक्षु एवं भिक्षुणियों से सम्बद्ध पालनीय धर्मों का उपदेश संगृहीत है, उसे **विनयपिटक** कहते हैं। इस पिटक में पाँच ग्रन्थ संगृहीत हैं— १. महावग्ग, २. चुल्लवग्ग, ३. पाराजिक, ४. पाचित्तिय एवं ५. परिवार।

२. दूसरा **सुत्तपिटक** पाँच निकायों में विभक्त है— १. दीघनिकाय, २. मज्झिमनिकाय, ३. संयुत्तनिकाय, ४. अङ्गुत्तरनिकाय एवं ५. खुद्दकनिकाय।

इस पाँचवें (खुद्दक) निकाय में छोटे बड़े (मिलाकर) पन्द्रह (१५) ग्रन्थ सम्मिलित हैं। जैसे— १. खुद्दकपाठ, २. धम्मपद, ३. उदान, ४. इतिवुत्तक, ५. सुत्तनिपात, ६. विमानवत्थु, ७. पेतवत्थु, ८. थेरगाथा, ९. थेरीगाथा, १०. जातक, ११. निद्देस, १२. पटिसम्भिदामग्ग, १३. अपदान, १४. बुद्धवंस एवं १५. चरियापिटक।

३. तीसरे **अभिधम्मपिटक** में सात (७) ग्रन्थ सम्मिलित हैं। जैसे- १. धम्मसङ्गणि, २. विभङ्ग, ३. धातुकथा, ४. पुग्गलपञ्ञत्ति, ५. कथावत्थु, ६. यमक एवं ७. पट्ठान।

समग्र त्रिपिटक की उपलब्धि

यद्यपि श्रीलङ्का और बर्मा आदि देशों में समग्र त्रिपिटक उन देशों की अपनी अपनी लिपि (वर्णमाला) में उपलब्ध है, इसी तरह थाइलैण्ड एवं कम्बोडिया देशों में भी त्रिपिटक के अनेक संस्करण समय समय पर उन देशों की लिपियों में हो चुके हैं। लन्दन की पालि टैक्स्ट सोसायटी ने भी रोमन लिपि में त्रिपिटक का बहुत सा भाग मुद्रित कराया है; परन्तु भारतवर्ष में अभी कुछ समय (बीसवीं शताब्दी के मध्य) पूर्व तक देवनागरी लिपि में समस्त त्रिपिटक उपलब्ध नहीं था जो अब (१९५६-१९६१ ई. में) भारत के केन्द्रीय एवं बिहार प्रान्त के शासनों के आर्थिक सहयोग से सम्पन्न हो पाया है।

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि समस्त त्रिपिटक का देवनागरी लिपि में हिन्दी अनुवाद भी हो जाय तो वह हिन्दीभाषी अनुसन्धाताओं तथा जिज्ञासुओं के लिये सभी क्षेत्रों में—राजनीति, इतिहास, भूगोल, व्यापार, वाणिज्य, शिक्षा, संस्कृति, दर्शन, लौकिक व्यवहार तथा आध्यात्मिक साधना में अनुसन्धान करना सहज साध्य हो जायगा। इस समस्या के समाधानहेतु **बौद्धभारती** विद्वानों के सहयोग से सतत प्रयासरत है।

❋

निदानकथा

आज से प्राय: २५०० वर्ष पूर्व लोकशास्ता भगवान् बुद्ध ने, बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद मध्यमण्डल में चारिका करते हुए निरन्तर ४५ वर्षों तक उस समय की लोकभाषा में, बहुजनहिताय बहुजनसुखाय जो उपदेश किया था, सौभाग्य से त्रिपिटिक के रूप में वह आज भी सुरक्षित है। वे चाहते थे कि उनका सन्देश जनसाधारण तक पहुँचे, इसके लिये स्वयं उन्होंने लोकभाषा (अर्धमागधी) में उपदेश किया और साथ ही अपने शिष्यों को भी यह अनुमति प्रदान की कि वे उनके उपदेशों को अपनी अपनी भाषा में परिवर्तित कर धारण कर सकते हैं। हो सकता है उन दिनों तत्कालीन अनेक भाषाओं में बुद्धवचनों के संग्रह हुए हों; किन्तु आज जो बुद्धवचन हमें मिलते हैं, वे एक ही भाषा में हैं, जिसे हम 'पालिभाषा' कहते हैं। कालान्तर में इसी भाषा में विस्तृत साहित्य की रचना हुई। त्रिपिटक पर अट्ठकथाएँ और इन अट्ठकथाओं पर टीका, अनुटीका, मधुटीका, योजना, गण्ठी आदि अनेक टीका-ग्रन्थ समय-समय पर निर्मित हुए। इनके अतिरिक्त अनुपिटक और उन पर अट्ठकथा, टीका आदि प्रचुर साहित्य भी हमें इसी पालिभाषा में मिलता है। इसी से समझा जा सकता है कि यह कितना विस्तृत साहित्य है। यह सम्पूर्ण साहित्य बर्मा, श्रीलङ्का, श्याम, कम्बोज आदि बौद्ध देशों में आज भी न केवल सुरक्षित ही है; अपितु अध्ययन-अध्यापन तथा नये नये ग्रन्थलेखन आदि द्वारा दिनानुदिन वृद्धिङ्गत भी हो रहा है। वहाँ के मनीषी इस साहित्य की उसी प्रकार सुरक्षा कर रहे हैं, जिस प्रकार भारत में वेद और उसके उपजीव्य साहित्य की या अन्यत्र बाइबिल और कुरान साहित्य की सुरक्षा की जा रही है।

त्रिपिटक

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के अनन्तर उनके प्रमुख शिष्यों ने बुद्धवचनों की सुरक्षा की दृष्टि से उनका तीन भागों में संग्रह किया। वे तीन भाग पिटारियों की भाँति हैं, अत: उन्हें 'त्रिपिटक' कहा जाता है। **विनयपिटक, सुत्तपिटक** और **अभिधम्मपिटक**— ये तीन पिटक हैं। जिस पिटक में भिक्षु और भिक्षुणियों से सम्बद्ध पालनीय धर्मों के उपदेश सङ्गृहीत हैं उसे 'विनयपिटक' और जिसमें विद्वानों तथा साधारण समाज के लिये उपदेश सङ्गृहीत हैं उसे 'सुत्तपिटक' कहते हैं। तथा जिसमें विद्वानों द्वारा समझने योग्य गम्भीर और दार्शनिक सिद्धान्त उपदिष्ट हैं उसे 'अभिधम्मपिटक' कहते हैं। ये तीनों पिटक भी आगे चलकर अनेक उपविभागों में बाँटे गये।

'तिपिटक' के ग्रन्थों का विभाजन

तिपिटक

विनयपिटक

१. महावग्ग
२. चुल्लवग्ग
३. पाराजिक
४. पाचित्तिय
५. परिवार

सुत्तपिटक

१. दीघनिकाय
२. मज्झिमनिकाय
३. संयुत्तनिकाय
४. अङ्गुत्तरनिकाय
५. खुद्दकनिकाय

(१) खुद्दकपाठ
(२) धम्मपद
(३) उदान
(४) इतिवुत्तक
(५) सुत्तनिपात
(६) विमानवत्थु
(७) पेतवत्थु
(८) थेरगाथा
(९) थेरीगाथा
(१०) जातक
(११) निद्देस
(१२) पटिसम्भिदामग्ग
(१३) अपदान
(१४) बुद्धवंस
(१५) चरियापिटक

भिधम्मपिटक

१. धम्मसङ्गणि
२. विभङ्ग
३. धातुकथा
४. पुग्गलपञ्ञत्ति
५. कथावत्थु
६. यमक
७. पट्ठान

महावग्ग ग्रन्थ का सारांश

यह **महावर्ग** ग्रन्थ भगवान् बुद्ध के जीवन की उस घटना के वर्णन से प्रारम्भ होता है जब भगवान् अभिसम्बोधि प्राप्त कर 'बुद्ध' हो चुके थे और लोक में धर्मचक्रप्रवर्तन हेतु सन्नद्ध हो रहे थे।

इस ग्रन्थ का संग्रह दश स्कन्धकों (अध्यायों) में विभक्त किया गया है। जैसे— १. महास्कन्धक, २. उपोसथस्कन्धक, ३. वर्षोपनायिकास्कन्धक, ४. प्रवारणास्कन्धक, ५. चर्मस्कन्धक, ६. भैषज्यस्कन्धक, ७. कठिनस्कन्धक, ८. चीवरस्कन्धक, ९. चाम्पेय-स्कन्धक एवं कौशाम्बिकस्कन्धक।

१. महास्कन्धक

इन स्कन्धकों में महास्कन्धक का सारांश यह है—

१. बोधिकथा— उस समय भगवान् बुद्ध उरुवेला की नेरञ्जरा नदी के तट पर बोधिवृक्ष के नीचे लोक में सर्वप्रथम अभिसम्बोधि प्राप्त कर चुके थे। तदनन्तर भगवान् उसी बोधिवृक्ष के नीचे सप्ताहपर्यन्त निरन्तर, एक आसन से स्थित रहकर, विमुक्ति (मोक्ष) सुख का आनन्द लेते हुए विराजमान रहे।

२-४. वहाँ से उठकर वे **अजपाल** नामक न्यग्रोधवृक्ष एवं **मुचलिन्द** वृक्ष के नीचे क्रमशः सप्ताहपर्यन्त विराजमान रहे। वहाँ से उठकर वे समीपस्थ **राजायतन वृक्ष** के नीचे पहुँचे। वहाँ बैठकर उन्होंने **तपस्सु** एवं **भल्लिक** नामक दो बनजारे व्यापारियों के हाथों से लड्डू एवं मट्ठे की भेंट स्वीकार की और उन्हें चातुर्महाराजिक देवताओं द्वारा सद्यः आनीत पात्र में रखकर भोजन के रूप में ग्रहण किया। तदनन्तर उन्होंने उन दोनों व्यापारियों को बुद्ध और धर्म— इन दो वचनों से धर्मोपदेश किया। ये दोनों व्यापारी भगवान् के **प्रथम उपासक** हुए।

५. **ब्रह्मयाचन**— तब वहाँ भी एक सप्ताह का समय बिताकर, समाधि से उठकर, पुनः अजपालन्यग्रोधवृक्ष के नीचे जाकर साधनारत भगवान् के मन में यह विचार उठा— "मैंने यह गम्भीर, कठिनता से साक्षात्करणीय, दुःखेन बोधगम्य, शान्त, उत्तम, तर्क से अखण्डनीय, निपुण, पण्डितों द्वारा ही समझने योग्य धर्म प्राप्त तो कर लिया; परन्तु मुझे इस धर्म का जिसको उपदेश करना है वह जनता तो कामभोगों में ही तृप्ति मानती हुई, उनके आस्वाद में ही प्रसन्नता अनुभव कर रही है। ऐसी (कामभोगों में लिप्त) जनता के लिये यह 'प्रत्ययसापेक्ष उत्पत्ति' (प्रतीत्यसमुत्पाद) का सिद्धान्त समझ पाना दुरूह ही

होगा। साथ ही वह स्थान पाना तो और भी कठिन होगा, जिसे सभी संस्कारों का प्रशमन, सभी मानसिक ऊहापोहों का परित्याग, तृष्णाक्षय, वैराग्य, दुःखनिरोध तथा निर्वाण कहा जाता है। अथ च, मैं किसी तरह उसे धर्मोपदेश करूँ और वह उसे समझ न पावे तो यह भी मेरे लिये मानसिक कष्टदायक ही होगा कि मेरा उपदेश सम्मुखस्थ श्रोता को समझ में ही न आवे।" यों उनका चित्त इस धर्मप्रचार में उत्साहित न होकर उसकी उपेक्षा की तरफ प्रवृत्त हो गया।

ऐसे समय में सहम्पति ब्रह्मा ने आकर उनसे निवेदन किया— "भगवन्! आप के इस निश्चय से तो धर्मप्राण जनता का विनाश ही हो जायगा; क्योंकि लोक में अल्प चित्तविकारों वाली धार्मिक जनता भी वर्तमान है। आपका यह धर्मोपदेश न सुनने से उनकी बहुत हानि होगी। अतः आप धर्मोपदेश करें। लोक में इसके सुनने वालों की कोई कमी नहीं है।"

ब्रह्मा का यह सामयिक और उचित निवेदन सुनकर भगवान् ने इस पर पुनः विचार किया तथा उन्होंने धर्मप्राण जनता को धर्मोपदेश करने का निश्चय किया और अन्त में सहम्पति ब्रह्मा से कहा—

"हे ब्रह्मन्! उस धार्मिक जनता के लिये अमृतद्वार खुल गया ही समझो जो मेरा उपदेश ध्यानपूर्वक सुनेंगे तथा मुझमें श्रद्धा प्रकट करेंगे। मैं तो पहले अपने लिये होने वाले वृथा कष्ट को ध्यान में रखकर ही प्राणियों को इस उत्तम धर्म का उपदेश न करने की बात कह रहा था।"

६. पञ्चवर्गीयों को उपदेश का निश्चय— धर्मोपदेश का निश्चय करने के बाद, भगवान् ने आळार कालाम तथा उद्दक रामपुत्त का देहावसान जानकर, सर्वप्रथम वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में साधनारत पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को धर्म का उपदेश किया।

७. धर्मचक्रप्रवर्तन— तब भगवान् ने उन पञ्चवर्गीयों को अपने साक्षात्कृत धर्म का मर्म संक्षेप में यों समझाया— "भिक्षुओ! प्रव्रजित को अपनी साधना में इन दो मर्यादाओं का उपयोग नहीं करना चाहिये। १. मूर्खों द्वारा सेवनीय कामवासनाओं में अत्यधिक लिप्त रहना (कामसुखल्लिकानुयोग) तथा २. अनर्थकारी क्लिष्ट तपस्याओं में लगे रहना (आत्मक्लमथानुयोग)। इन दोनों अतियों की उपेक्षा करते हुए मेरे द्वारा उपदिष्ट इस मध्यम मार्ग (उपाय) का साधना में उपयोग करना चाहिये। यह मध्यम मार्ग ही साधक को शान्ति, अभिज्ञा, बुद्धत्व एवं निर्वाण प्राप्ति में प्रगति करा सकता है। उस मार्ग को साधक इन आठ उपायों से जान सकता है; जैसे— १. सम्यग्दृष्टि, २. सम्यक्सङ्कल्प, ३. सम्यग्वाक्, ४. सम्यक्कर्मान्त, ५. सम्यगाजीव, ६. सम्यग्व्यायाम, ७. सम्यक्स्मृति एवं ८. सम्यक्समाधि। साधक द्वारा इस आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग से आर्य सत्यचतुष्टय को ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञात तथा प्रहाण, प्रहेय, प्रहीण इस त्रिविध पद्धति से अनुलोम-विलोम क्रम द्वारा विचार करके ही अधिगत किया जा सकता है, निर्वाण तक पहुँचा जा सकता है।"

यह धर्मोपदेश सुनकर उन पञ्चवर्गीयों में सर्वप्रथम आयुष्मान् **आज्ञातकौण्डिन्य** को 'इस लोक में सभी पदार्थ विनाशशील हैं'— यह धर्म ज्ञान हुआ, तदनन्तर **वप्र** एवं **भद्रीय** को। तदनन्तर आयुष्मान् **महानाम** एवं **अश्वजित्** को धर्मज्ञान हुआ। इस तरह ये पाँच भिक्षु भगवान् से बुद्ध एवं धर्म के नाम पर सर्वप्रथम साक्षात् प्रव्रज्या प्राप्त कर पाये।

८. **अनात्मज्ञान**— बाद में भगवान् ने इन भिक्षुओं को रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान में अनित्यत्व एवं अनात्मत्व का विस्तार से प्रतिपादन किया। इन पाँच स्कन्धों में अनित्यत्व एवं अनात्मत्व का विश्वास हो जाने पर साधक को संसार से उदासीनता (वैराग्य), दुःखों से मुक्ति एवं जन्म-मरणपरम्परा का क्षय अधिगत हो जाता है।

इस अवधि तक, उस समय उक्त छह अर्हत् (१. बुद्ध + ५ पञ्चवर्गीय भिक्षु = ६) हो चुके थे।

९. फिर वाराणसी का **यश कुलपुत्र** भगवान् का शिष्य बना। तब गणना में सात अर्हत् हो गये।

यश के भिक्षु बन जाने के बाद भगवान् उसके साथ उसके माता-पिता के घर भिक्षाहेतु गये। वहाँ धर्मोपदेश सुनकर वे दोनों भी भगवान् के उपासक हो गये। इस तरह ये दोनों बुद्ध धर्म सङ्घ के नाम पर सर्वप्रथम त्रैवाचिक उपासक-उपासिका बने।

यश कुलपुत्र की प्रव्रज्या सुनकर उसके अन्य चार साथी कुलपुत्र भी (विमल, सुबाहु, पूर्णजित् एवं गवाम्पति) भगवान् के शिष्य बन गये।

यह सुनकर कालान्तर में यश कुलपुत्र के पचास अन्य साथी भी भगवान् के पास आकर भिक्षुभाव में प्रव्रजित हो गये।

इस तरह तब तक लोक में **इकसठ अर्हत्** हो चुके थे।

१०. इसी अवसर पर मार ने भगवान् को संसार में प्रवृत्त करने का एक और प्रबल प्रयास किया, परन्तु भगवान् ने उसको झिड़क दिया।

११. भिक्षुओं को प्रव्रज्या उपसम्पदा देने का अधिकार— धर्मचक्रप्रवर्तनकाल से उस समय तक इतने भिक्षु बन जाने के बाद वे भिक्षु अन्य प्रव्रज्यापेक्षी पुरुषों को लेकर भगवान् के सम्मुख उपस्थित होने लगे। भगवान् को, साधना में रत रहने के कारण, उन पुरुषों को प्रव्रज्यादीक्षा देने में विलम्ब होने लगा। तब भगवान् ने सोचा— "क्यों न मैं इन भिक्षुओं को ही अन्य प्रव्रज्याभिलाषियों को प्रव्रज्या देने का अधिकार सौंप दूँ!" तब भगवान् ने भिक्षुसङ्घ को एकत्र कर कहा— "आज से मैं तुम्हें भी उन उन दिशाओं से आये हुए प्रव्रज्या-प्रत्याशियों को प्रव्रज्या उपसम्पदा देने का अधिकार देता हूँ।"

१२. प्रव्रज्या उपसम्पदा देने की विधि— "प्रत्याशी को, दाढ़ी मूँछ मुँड़वाकर, काषाय वस्त्र पहना कर, एक कन्धे पर उत्तरासङ्ग (दुपट्टा) कराकर, भिक्षुओं की चरणवन्दना कराकर, उकड़ू (उत्कुटिक) बैठाकर, हाथ जुड़वाकर, 'ऐसा बोलो' कहकर, उस प्रत्याशी से यों उच्चारण कराया जाय— 'मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ, धर्म की शरण में जाता हूँ,

सङ्घ की शरण में जाता हूँ'; (दूसरी बार भी) 'मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ, धर्म की शरण में जाता हूँ, सङ्घ की शरण में जाता हूँ।' (तीसरी बार भी) 'मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ, धर्म की शरण में जाता हूँ, सङ्घ की शरण में जाता हूँ।' 'भिक्षुओ! मैं इस त्रिविध शरणगमन से प्रत्याशियों को प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा देने की तुम्हें अनुमति देता हूँ।''

१३. भद्रवर्गीय प्रव्रज्या— जब भगवान् वाराणसी में प्रथम वर्षावास बिताकर पुन: उरुबेला (गया) की तरफ चारिकाहेतु निकले तो मार्ग में उन्होंने तीस भ्रान्त भद्रवर्गीय पुरुषों को भी धर्मोपदेश द्वारा सांसारिक मायाजाल से छुड़ाकर प्रव्रजित किया।

१४. शिष्यों सहित उरुवेलकाश्यप आदि जटिलत्रय को प्रव्रज्या— क्रमशः चारिका करते हुए भगवान् उरुवेला पहुँचकर भगवान् जटिल उरुवेल काश्यप के आश्रम में जाकर साधनाहेतु विराजमान हुए। वहाँ विशाल सर्प का दमन कर जटिलों को पहला प्रातिहार्य (चमत्कार) दिखाया। इस तरह पन्द्रह प्रातिहार्य दिखाकर उन्हें प्रभावित कर, **आदीप्तपर्यायसूत्र** का उपदेश करते हुए उन एक हजार जटिलों को अपने धर्म में दीक्षित किया।

१५. बिम्बिसारसमागम— तदनन्तर भगवान् गयाशीर्ष (ब्रह्मयोनि पर्वत) की चारिका करते हुए राजगृह पहुँचे। वहाँ के राजा बिम्बिसार ने, जो कि उनका बचपन का साथी भी था, सादर स्वागत किया तथा भिक्षुओं के लिये साधनास्थल के रूप में **वेणुवन का दान** किया।

१६. सारिपुत्र मोग्गल्लान की प्रव्रज्या— उस समय राजगृह के पास ही रहने वाले सञ्जय परिव्राजक की बहुत प्रसिद्धि थी। उसके साथ ढाई सौ शिष्य थे। उनमें सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन प्रसिद्ध थे। इन दोनों को ही परम पद प्राप्ति की बहुत ललक थी। ये दोनों इसके लिये समस्त भारतवर्ष में घूमे, परन्तु उन्हें ऐसा कोई गुरु नहीं मिला जो उन्हें निर्वाणप्राप्ति का उपाय बता देता। एक दिन सारिपुत्र ने अश्वजित् भिक्षु को राजगृह में भिक्षाचर्या करते हुए देखा। उसके गम्भीर पदक्रम एवं शरीर की विनीत चेष्टाओं से ही वह समझ गया कि यह कोई गम्भीर ज्ञानी है। भिक्षाचर्या के बाद शारिपुत्र तथा अश्वजित् का संवाद हुआ। संवाद में अश्वजित् ने सारिपुत्र को अपने गुरु के उपदेश के रूप में ''ये धम्मा हेतुप्पभवा'' (द्र० पृ० ६२) यह प्रसिद्ध गाथा सुनायी। गाथा सुनकर सारिपुत्र इस बुद्धोपदेश से बहुत प्रभावित हुए तथा मौद्गल्यायन से परामर्श कर अपने ढाई सौ सब्रह्मचारियों के साथ भगवान् की शरण में आ गये। वे बुद्ध से दीक्षा लेकर साधना करते हुए अर्हत् हो गये। भगवान् बुद्ध ने उन दोनों को समग्र सङ्घ का अग्रश्रावक बना दिया; क्योंकि सारिपुत्र कुशलवक्ता थे, और मौद्गल्यायन गम्भीर अध्येता तथा चिन्तक थे।

इन दोनों के सङ्घ में सम्मिलित होने से समाज पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। परिणामस्वरूप समाज के हजारों प्रतिष्ठित पुरुष प्रव्रज्या लेकर सङ्घ में प्रविष्ट हो गये। इसके कारण भगवान् बुद्ध पर समाज को विशृङ्खलित करने का आरोप भी लगा, परन्तु वह शनैः शनैः स्वयं शान्त हो गया।

१७. सङ्घ में उच्छृङ्खलता का निरोध— जब कहीं अधिक भीड़ हो जाती है तो वहाँ उच्छृङ्खलता स्वभावत: आ जाती है। यहाँ भी धीरे धीरे भिक्षु जब स्व मन से व्यवहार करने लगे, उपाध्याय या आचार्य द्वारा बोधित अनुशासन की उपेक्षा करने लगे। ठीक से वस्त्र धारण किये विना भिक्षाचर्या करने लगे, भोजन करते लोगों के बीच से निकलना, भोजन की थाली या उच्छिष्ट पात्रों पर से आगे बढ़ना, खाने पीने की वस्तुओं को लाँघना, खादय वस्तु स्वयं माँगकर खाना, भिक्षा लेते समय जोर से चिल्लाना— ये या ऐसी ही अन्य असामाजिक बातें भिक्षुओं में प्रबलता से फैल गयी थीं। इससे गृहस्थ समाज में तो रोष फैलना ही था, सभ्य सुशिक्षित स्थविर भिक्षु भी इस व्यवहार से असन्तुष्ट रहने लगे। तब भगवान् ने भिक्षुओं के लिये कुछ अनिवार्य नियम बनाकर तथा उनका कठोरता से पालन करने का आदेश देकर भिक्षुओं की उच्छृङ्खलता पर अङ्कुश लगाते हुए उनके लिये सम्यग्वर्तना (सम्मावत्तना=सद्व्यवहार) के नियम प्रचारित किये।

१८. इनमें शिष्य का उपाध्याय के साथ व्यवहार, उपाध्याय का शिष्य के साथ व्यवहार आदि विस्तार से निरूपित किये गये।

१९. साथ ही इन नियमों का पालन न करने वालों को सङ्घ से निष्कासित करने तथा क्षमायाच्ञा करने वालों को क्षमा का विधान भी रखा गया।

२०. उपसम्पदाविधि— प्रसङ्गवश उपसम्पदा की विधि भी विस्तार से बतायी गयी। जिसके लिये अन्त में यह विधान किया गया है कि याच्ञा करने वाले को ही उपसम्पदा देनी चाहिये।

२१. चार निःश्रय— भिक्षुव्यवहार की पूर्ति के लिये चार साधन बताये; जैसे—

(१) प्रव्रज्याप्राप्ति के बाद भिक्षुओं की शरीरमात्रा प्रमुख रूप से भिक्षा के अन्न से चलेगी, इसके लिये भिक्षु को जीवनपर्यन्त उत्साहित रहना होगा। सद्गृहस्थ का भोजन, निमन्त्रण तथा शलाका भोजन अतिरेक लाभ में माने जायँगे।

(२) इस प्रव्रज्या के बाद, वस्त्र का काम चलाने के लिये प्रमुख रूप से फटे चीथड़ों से बनाये चीवर का ही उपयोग करना होगा। क्षौम, कौशेय, कम्बल आदि वस्त्र अतिरेक लाभ के रूप में माने जायँगे।

(३) इस प्रव्रज्या के बाद, प्रमुख रूप से वृक्षों के नीचे वास ही निद्रा या शरीरसुख के विषय में आलम्बन होगा। फिर भले ही कभी कभी आवासहेतु विहार, हवेली या प्रासाद ही क्यों न मिल जाय!

(४) तथा इस प्रव्रज्या के बाद, शरीर की रोगनिवृत्तिहेतु प्रमुख रूप से गोमूत्र का ही औषध रूप में प्रयोग करना होगा। फिर भले ही समय समय पर अतिरिक्त लाभ के रूप में घी, मक्खन, तैल, मधु या शर्करा ही क्यों न मिल जाय।

२२. आचार्य के साथ शिष्य का व्यवहार— प्रसङ्गवश शिष्यों का आचार्य के साथ व्यवहार कैसे होना चाहिये? यह भी विस्तार से बताया गया है।

२३. **अन्तेवासी (शिष्य) के साथ आचार्य के व्यवहार** का निरूपण भी विस्तार से हुआ है।

२४. **प्रणामना**— इसी तरह, आवश्यकता हो तो उद्दण्ड भिक्षुओं को सङ्घ से निष्कासित करने तथा शिष्य द्वारा क्षमा माँगने पर उसे पुनः सङ्घ में मिलाने के नियम बनाये गये।

२५. निश्रयदान के लिये भगवान् का आग्रह था कि किसी चतुर एवं समर्थ भिक्षु, जो दश वर्ष या इससे भी पूर्व भिक्षु बना हो, द्वारा ही नि:श्रय दिया जाना चाहिये।

२६. साथ ही भगवान् ने नि:श्रय की समाप्ति के नियम तथा अपवाद भी बताये।

इसके बाद के **२७. उपसम्पादयितव्यपञ्चक** तथा **२८. उपसम्पादयितव्यषट्क** एवं **२९. अन्यतीर्थिकपूर्वकथा** यथाप्रसङ्ग ग्रन्थ में ही (पृ. ९९ से ११० तक) देखकर समझ लेनी चाहिये।

३०. पञ्चरोगकथा— उस समय मगध देश में ये पाँच रोग अधिकता से फैल गये; जैसे— १. कुष्ठ, २. गलगण्ड, ३. किलास (श्वेतकुष्ठ), ४. शोष एवं ५. अपस्मार। ऐसे रोगी चिकित्साहेतु **जीवक** कौमारभृत्य (राजवैद्य) के पास जाते थे। परन्तु जीवक, राजद्वार एवं सङ्घ की चिकित्सा में व्यस्त रहने के कारण, सब रोगियों की चिकित्सा नहीं कर पाते थे। अतः वे रोगी विवशतः भिक्षुसङ्घ में प्रव्रजित हो गये। तब वे जीवक से चिकित्सा कराने लगे। रोगियों की अधिकता के कारण उद्विग्न होकर जीवक ने भगवान् से निवेदन किया। तब भगवान् ने ऐसे रोगी पुरुषों को सङ्घ में प्रव्रजित करने का पूर्णतः निषेध कर दिया।

३१. राजभृत्यकथा— राजा बिम्बिसार द्वारा राज्य-सीमा पर शान्ति स्थापना हेतु सैनिकसमूह भेजा गया। उसमें से बहुत से कामचोर सैनिक सङ्घ में प्रव्रजित हो गये। ज्ञात होने पर राजा ने भगवान् को इसकी सूचना भिजवायी। भगवान् ने राजभृत्यों को भी प्रव्रजित करने का निषेध कर दिया।

३२. अङ्गुलिमालचौरवस्तु— उस समय अङ्गुलिमाल जैसे (घोषणा करके चौरी करने वाले) चौर भिक्षुओं में आकर भिक्षुसङ्घ में प्रव्रजित हो गये। मनुष्य उन्हें देखकर दूर से ही अपना गन्तव्य मार्ग बदल देते थे। उन मनुष्यों की यह क्रिया स्थविर भिक्षुओं को अनुचित लगी। उन्होंने भगवान् के सम्मुख यह समस्या रखी। भगवान् ने ऐसे घोषणा करके चौरी करनेवालों को सङ्घ में प्रव्रजित करना पूर्णतः निषिद्ध कर दिया।

३३. काराभेदक वस्तु— कारावास से भागे अपराधियों का भी सङ्घ में प्रवेश निषिद्ध हुआ।

३४. लिखितकचौरवस्तु— राजा द्वारा लिखितक (जिसके विषय में देखते ही मार डालने की लिखित राजाज्ञा हो) चौर का भी सङ्घ में प्रवेश निषिद्ध हुआ।

३५. कशाहतवस्तु— कोड़ों से पीटे जाने का दण्ड पाये अपराधी का भी सङ्घ में प्रवेश निषिद्ध हुआ।

३६. लक्षणाहतवस्तु— उष्ण लोह या ताम्र से दागे गये अपराधी पुरुष का भी सङ्घ में प्रवेश निषिद्ध हुआ।

३७. ऋणिपुरुषवस्तु— कर्ज में डूबे अपराधी पुरुष का भी सङ्घ में प्रवेश निषिद्ध हुआ।

३८. दासवस्तु— क्रयक्रीत दास का भी सङ्घ में प्रवेश निषिद्ध किया गया।

३९. कर्मारभण्डुवस्तु— एक युवक को प्रव्रज्या देने के प्रसङ्ग में भगवान् को कहना पड़ा कि मुण्डन कर्म से पूर्व, सङ्घ से अनुमति लेकर ही, सामान्यजन को प्रव्रजित करना चाहिये।

४०. उपालिदारकवस्तु— कभी सत्तरह साथियों के साथ उपालि नामक बालक को प्रव्रजित कर लिया गया। ये बालक प्रातः उठते ही खाने के लिये चिल्लाते थे। उनकी इस चिल्लाहट (क्रन्दन) से विहार की स्थायी शान्ति में बाधा पड़ती थी। अतः भगवान् ने बीस वर्ष से कम आयु के लोगों को प्रव्रज्या देने पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया।

४१. अहिवातकरोगवस्तु— महामारी रोग से बचे पिता-पुत्र दोनों सङ्घ में प्रव्रजित हो गये। भिक्षा के समय बालक की चञ्चलता देखकर गृहस्थजन भिक्षुओं पर नाना प्रकार के आरोप लगाने लगे। तब भगवान् ने पन्द्रह वर्ष से कम आयु के बालक की सङ्घ में प्रव्रज्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया; परन्तु इतनी छूट दे दी कि उसे श्रामणेर बनाया जा सकता है।

४२. कण्डकवस्तु— अपशब्द बोलने वाले दो श्रामणेरों को देखकर भगवान् ने एक भिक्षु को एक ही श्रामणेर रखने की अनुमति दी।

४३-४४. आहुन्दरिक वस्तु— एक समय वर्षावास के बाद भी भगवान् के राजगृह में रह जाने के कारण, दर्शनार्थी भिक्षुओं की भीड़ बहुत हो गयी। भगवान् ने भिक्षुओं को लेकर राजगृह छोड़ने का मन बनाया। परन्तु भिक्षुओं ने निःश्रय का बहाना लेकर राजगृह नहीं छोड़ा। तब भगवान् ने निःश्रय लेने योग्य भिक्षुओं को एक स्थान पर बसने की दश वर्ष की अवधि में पाँच वर्ष की छूट दे दी।

४५. राहुलवस्तु— राहुल को श्रामणेर प्रव्रज्या देने के प्रसङ्ग में, श्रामणेरों को भी त्रिशरणगमन से ही प्रव्रज्या देने की अनुमति दे दी। साथ ही आयुष्मान् सारिपुत्र जैसे समर्थ भिक्षु को अपने साथ तीन श्रामणेर तक रखने की अनुमति दे दी। तथा राजा शुद्धोदन के आग्रह पर यह कठोर नियम बनाया कि माता-पिता की आज्ञा के विना पुत्र को प्रव्रजित नहीं करना चाहिये।

४६. शिक्षापदकथा— भगवान् ने श्रामणेरों को ये दश शिक्षापद सिखाने का विधान किया; जैसे— १. हिंसा, २. चौरी, ३. व्यभिचार, ४. असत्यभाषण, ५. मद्यपान, ६. असमय का भोजन, ७. नृत्य, गीत आदि में सम्मिलित होना, ८. माला, गन्धद्रव्य आदि का उपयोग, ९. उच्च एवं सुखदायक शय्याओं पर सोना एवं १०. सोना चाँदी का परिग्रह— इन दश बातों से दूर रहना।

४७. दण्डकर्मवस्तु— भिक्षुओं के अलाभ, अनर्थ, आवासराहित्य, निन्दा एवं वैमनस्य फैलाने वाले श्रामणेर को दण्ड देने की अनुमति दी गयी। वह दण्ड था— श्रामणेरों को आवास में प्रवेश न करने देना। परन्तु श्रामणेरों का भोजनहेतु मुखद्वार बन्द न करना चाहिये।

४८. अनापृच्छावरणवस्तु— उपाध्यायों से पूछे विना श्रामणेरों का आराम में प्रवेश निषिद्ध नहीं करना चाहिये।

४९. अपलाडनवस्तु— दूसरों के श्रामणेरों को बहकाना नहीं चाहिये।

५०. कण्डकश्रामणेरवस्तु— १. प्राणिहिंसक, २. चौर, ३. जार, ४. असत्यभाषी, ५. मद्यप, ६. बुद्धनिन्दक, ७. धर्मनिन्दक, ८. सङ्घनिन्दक, ९. मिथ्यादृष्टि एवं १०. भिक्षुणीदूषक श्रामणेर को सङ्घ से निष्कासन की अनुमति दी गयी।

५१. पण्डक वस्तु— किसी नपुंसक (पण्डक) को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। यदि किसी कारण से प्रव्रज्या मिल भी गयी हो तो उसको निकाल देना चाहिये।

५२. स्तेयसंवासकवस्तु— किसी स्तेयसंवासक को (चौरी से कषायवस्त्र धारण कर भिक्षु बनने वाले को) उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। यदि किसी कारण से उसको उपसम्पदा मिल भी गयी हो तो भी, उसकी वास्तविकता ज्ञात होने पर, निकाल देना चाहिये।

५३. तिर्यग्गतवस्तु— तिर्यग्गत (सर्प आदि) योनियों को उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। यदि किसी कारण से....पूर्ववत्.....।

५४-५९. मातृ-पितृघातकादिवस्तु— मातृघातक, पितृघातक, अर्हद्धातक, भिक्षुणीदूषक तथा लौहितोत्पादक एवं स्त्रीपुरुष उभय चिह्नों वाले पुरुष को उपसम्पन्न नहीं करना चाहिये। यदि किसी कारण से....पूर्ववत्....।

६०. अनुपाध्यायकादिवस्तु— उपाध्याय की अनुमति के विना किसी को उपसम्पन्न नहीं करना चाहिये....पूर्ववत्....। सङ्घ को, गण को, पण्डक को, स्तेयसंवासक को, तिर्य्यग्गत को, मातृघातक, पितृघातक, अर्हद्धातक, भिक्षुणीदूषक, उभयतोव्यञ्जनक को उपाध्याय बनाकर किसी को उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये।

६१. अपात्रकादिवस्तु— अपात्र, अचीवरक, याचितकपात्रचीवरक प्रत्याशी को उपसम्पन्न नहीं करना चाहिये।

६२. नप्रव्राजयितव्यवस्तु— हाथ कटे हुए आदि ३२ प्रकार के मनुष्यों को उपसम्पन्न नहीं करना चाहिये।

६३. अलज्जिनिश्रयवस्तु— जानबूझ कर अपराध करनेवालों को, अपराध छिपाने वालों को, अगम्यमार्गगामियों (अलज्जियों) को नि:श्रय नहीं देना चाहिये। इनका अलज्जित्व पहचानने के लिये चार पाँच दिन का अवसर लेना चाहिये।

६४. गमिकादिनिश्रयवस्तु— यात्रियों को, रोगी को, परिचारक को, आरण्यक को नि:श्रय के विना भी आवास में रहने की अनुमति दी गयी।

६५. सङ्घपरिषद् में स्थविर भिक्षु का गोत्र नाम से आह्वान की अनुमति दी गयी।

६६. एक साथ दो प्रत्याशियों को एक उपाध्याय होने पर अनुश्रावण की अनुमति दी गयी।

६७. गर्भ से बीस वर्ष आयु वाले को उपसम्पदा की अनुमति दी गयी।

६८. **उपसम्पदाविधि**— उपसम्पदा से पूर्व तेरह आन्तरायिक (विघ्नकारक) प्रश्न पूछने की अनुमति दी गयी तथा इसके अवान्तर नियम बनाये गये।

६९. उपसम्पन्न के लिये आवश्यक ज्ञातव्य बातें (निःश्रय) बताने का नियम बनाया गया। ये आवश्यक बातें ये हैं— १. छाया नापना, २. ऋतुओं का प्रमाण, ३. दिन का भाग, ४. सङ्गीति एवं ५. चार निःश्रय।

७०. **चार अकर्तव्य**— उपसम्पन्न को ये चार बातें जीवनपर्यन्त अकरणीय हैं; जैसे— १. मैथुन धर्म का सेवन, २. चौरी, ३. हिंसा एवं ४. ऋद्धि का प्रदर्शन।

७१. **आपत्ति के अभाव में उत्क्षिप्तक के विषय में** विचारणीय बातों का भी भगवान् ने विस्तार से स्पष्टीकरण किया।

२. उपोसथस्कन्धक

१. चतुर्दशी, पूर्णिमा एवं पक्ष की अष्टमी के दिन भिक्षुओं को एकत्र होकर धर्मचर्चा की अनुज्ञा दी गयी।

२. इस धर्मचर्चा में प्रातिमोक्षपाठ (भिक्षुनियमपाठ) की आवृत्ति की अनुमति दी गयी।

३. सङ्घ को एकत्र होकर चतुर्दशी या पूर्णिमा के दिन उपोसथ कर्म करने का आदेश दिया गया।

इस नियम का पालन न करने के कारण **महाकप्पिन** भिक्षु को भगवान् ने स्वयं चेतावनी दी।

४. इस उपोसथ कर्म में कितनी दूर तक के भिक्षु एकत्र सम्मिलित हों— इसकी सीमा निर्धारित की गयी।

५. इस उपोसथ कर्म के एक निश्चित आगार का विधान किया गया।

६. इस उपोसथ के समय एक प्रमुख विशाल स्थान निर्धारित करने की अनुमति दी गयी।

७. उपोसथसीमा में सम्मिलित होने के लिये तीन चीवरों के नियम में छूट दी गयी।

८. सीमा के त्याग की घोषणा से पूर्व, तीन चीवर के त्याग तथा एक वासस्थान के त्याग की घोषणा आवश्यक बतायी गयी।

९. उपोसथ के लिये ग्रामसीमा आदि निर्धारित की गयी।

१०. उपोसथ के दो भेद कर उसके लिये चतुर्दशी एवं पूर्णिमा का दिन नियत किया गया।

११. प्रातिमोक्ष के पाठ की विधि निर्धारित की गयी। इसके पाँच प्रकार के पाठ निर्धारित हुए।

१२. प्रातिमोक्ष पाठ के समय विनयसम्बन्धी प्रश्न सङ्घ की सहमति से ही पूछे जा सकते हैं।

१३. सङ्घ की सहमति के विना, पाठ के समय, विनयसम्बन्धी प्रश्न का उत्तर वर्जित किया गया।

१५. नियमविरुद्ध कार्य निषिद्ध किया गया, प्रातिमोक्षपाठ मे बीच के कुछ अंश छोड़ना नियमविरुद्ध माना गया।

१६. प्रातिमोक्षपाठक से प्रार्थना आदि की एक निश्चित विधि निर्धारित की गयी।

१७. प्रत्येक भिक्षु के लिये पक्ष-गणना आदि का ज्ञान अनिवार्य माना गया।

१८. विहार में उपोसथ से पूर्व कृत्यों (स्वच्छता आदि) की अनुमति दी गयी।

१९. आदेश हुआ कि लम्बी यात्राओं में दूसरे भिक्षुओं का साथ उपाध्याय से पूछकर ही करना चाहिये।

२०. रोगी होने पर, उपोसथ के समय, अपनी परिशुद्धि भेजने के नियम बनाये गये।

२१. विवाद-निर्णय हेतु मतदानसम्बन्धी नियम बनाये गये।

२२. उपोसथ में सम्मिलित होने के लिये आते समय रिश्तेदारों आदि द्वारा भिक्षु के पकड़े जाने पर उनसे छूटने की विधि निर्धारित की गयी।

२३. किसी भिक्षु को उन्मत्तक (पागल) घोषित करने की विधि निर्धारित की गयी।

२४. उपोसथ कर्म के लिये कितने भिक्षुओं का 'सङ्घ' माना जाय- यह निर्णय किया गया।

२५. आपत्तिग्रस्तता की प्रतीकारविधि निश्चित की गयी।

२६. आपत्ति (स्वकीय दोष) प्रकट करने की विधि निर्धारित की गयी।

२७. आधे अधूरे दोष की प्रतीकारविधि बतायी गयी।

२८. भिक्षुओं की सङ्ख्या ज्ञात न होते हुए भी उपोसथ कर्म करने में अनापत्ति-पञ्चदशक का विस्तार।

२९. वर्ग, अवर्ग संज्ञक पञ्चदशक (पन्द्रह नियमों) का विस्तार।

३०. सन्देहयुक्त उपोसथप्रक्रिया के पञ्चदशक का विस्तार।

३१. सङ्कोच से किये गये उपोसथ के विषय में पञ्चदश नियमों का विस्तार।

३२. भेद (कटूक्ति) से किये गये उपोसथ के विषय में पञ्चदशक का विस्तार किया गया।

३३. सीमावक्रान्तिक पेय्याल का विस्तार किया गया।

३४. उपोसथ व्रत के आरम्भ से पूर्व आवासिक भिक्षुओं के आकार,लिङ्ग, निमित्त उद्देश्य (स्वाध्याय), मञ्चपीठ आदि की परिशुद्धि का ज्ञान आवश्यक।

३५. नानासंवासक आदि भिक्षुओं के साथ उपोसथ कर्म का विधान किया गया।

३६. उपोसथ के दिन आवासत्याग का निषेध किया गया।

३७. उपोसथ के दिन गन्तव्य आवास का विधान किया गया।

३८. प्रातिमोक्षपाठ में अयोग्य पुद्गलों की सूची बनायी गयी। *

३. वर्षोपनायिकस्कन्धक

१. **भगवान् द्वारा**— वर्षा ऋतु में भिक्षुओं को वर्षावास करने की अनुमति दी गयी।

२. वर्षा ऋतु में भिक्षुओं को चारिका करने का निषेध किया गया।

३. वर्षावास में किसी कार्यविशेष के लिये चारिका में सप्ताहमात्र की शिथिलता की गयी।

४. वर्षावास में, विना सन्देश के भी, इन पाँचों के पास जाने की अनुमति दी गयी; जैसे— (१) भिक्षु, (२) भिक्षुणी, (३) शिक्ष्यमाणा, (४) श्रामणेर एवं (५) श्रामणेरी।

५. वर्षावास में, इन सात द्वारा न बुलाने पर भी, इनके पास जाने की अनुमति दी गयी; जैसे— (१) भिक्षु, (२) भिक्षुणी, (३) शिक्ष्यमाणा, (४) श्रामणेर, (५) श्रामणेरी, (६) माता एवं (७) पिता।

६. परन्तु इन चार के पास, बुलाये जाने पर ही, जाने की अनुमति दी गयी; जैसे— (१) भिक्षु का भाई, (२) भिक्षु की बहन, (३) भिक्षु का रिश्तेदार, (४) किसी भिक्षु या विहार का नौकर।

७. किसी विघ्नविशेष पर वर्षावास छोड़ने की अनुमति भी दी गयी; जैसे- (१) साथी भिक्षु ईर्ष्यामय व्यवहार करने लगें, (२) आवास में सर्प, बिच्छु आदि का भय हो, (३) चौरों का भय हो, (४) भूत, प्रेत, पिशाच का भय हो, (५) ग्राम में अग्नि का प्रकोप, (६) आवास अग्निदग्ध हो जाय, (७) समीप की नदी में बाढ़ आ जाय, (८) आवास बाढ़ से घिर जाय, (९) आवास का ग्राम चौर-डाकुओं द्वारा विनष्ट कर दिया जाय, (१०) समस्त ग्राम दूसरे स्थान पर जाने लगे, (११) श्रद्धालु ग्रामवासियों के साथ रहने के लिये, (१२) जहाँ कुछ भी भिक्षा मिलने में अत्यधिक कठिनाई होने लगे, (१३) जहाँ शरीरस्वास्थ्यानुकूल भिक्षा न मिले, (१४) जहाँ रोगनिवारक ओषधि न प्राप्त हो, (१५) जहाँ योग्य परिचारक न मिले, (१६) किसी कुलटा स्त्री द्वारा साधना में विघ्न डालना प्रारम्भ हो, (१७) किसी वेश्या द्वारा...., (१८) किसी कुमारी द्वारा...., (१९) किसी हिंजड़े द्वारा...., (२०) किसी रिश्तेदार द्वारा...., (२१) किसी राजा द्वारा...., (२२) किसी चौर द्वारा...., (२३) किसी धूर्त द्वारा...., (२४) या फिर आवास में या उसके आसपास ऐसा सोने चाँदी का भण्डार मिल जाय जिसके कारण राजा या उसके अधिकारी द्वारा साधना में अन्तराय पड़ने की आशङ्का हो।

८. इसी तरह वर्षावास में, सङ्घभेद रोकने के लिये भी, आवासत्याग की अनुमति दी गयी।

९. व्रज (ग्वालों के झुण्ड) में भी वर्षावास अनुमत माना गया।

१०. वर्षावास के लिये ये सात स्थान अनुपयुक्त माने गये; जैसे— (१) वृक्षों के कोटर, (२) वृक्षों के झुरमुट (गुम्ब), (३) खुला मैदान, (४) शयनासनरहित स्थान (५) श्मशान में बनी कुटिया, (६) घास-फूस के झोपड़े एवं (७) मिट्टी के बने विशाल कुण्डे।

११. प्रव्रज्यापेक्षी को वर्षावास में प्रव्रज्या न देने का निश्चय धर्मविरुद्ध माना गया।

१२. किसी गृहस्थ को उसके यहाँ वर्षावास करने का वचन देकर भी वहाँ वर्षावास न करना दुष्कृत दोषमय माना गया। *

४. प्रवारणास्कन्धक

१. भगवान् ने भिक्षुओं को मूक (मौन) व्रत ग्रहण करने का निषेध किया, तथा साथ ही आदेश दिया कि वर्षावास के बाद सभी भिक्षु अपने दृष्ट, श्रुत एवं सन्दिग्ध अपराधों की प्रवारणा (=मार्जन, परिशुद्धि) करें। इस प्रवारणा के समय वृद्धों (स्थविरों) के सम्मुख बैठने के नियम भी बताये।

२. प्रसङ्गवश तिथिभेद से प्रवारणा के दो भेद बताये। साथ ही प्रवारणा के चतुर्विध कर्म भी बताये।

३. प्रवारणा के समय रोगी भिक्षु द्वारा प्रवारणा भेजने की विधि बतायी गयी।

४. प्रवारणा हेतु आने वाले भिक्षु का रिश्तेदार आदि द्वारा अधिग्रहण कर लेने पर उससे मुक्ति के उपाय बताये गये।

५. सङ्घ के रूप में प्रवारणा के विस्तृत भेद करते समय भगवान् ने पाँच, चार, तीन, दो एवं एक भिक्षु को भी प्रवारणा की अनुमति दे दी।

६. प्रवारणा के समय आपत्ति का प्रतीकार करने का विधान किया गया।

७. प्रवारणा के समय स्वदोष के स्वीकार की विधि बतायी गयी।

८. समान आपत्ति पर सङ्घ में मतभेद होने पर उसका प्रतीकार बताया गया।

९. प्रवारणा के समय अनापत्ति के पन्द्रह भेदों का वर्णन किया गया।

१०. वर्ग अवर्ग संज्ञक प्रवारणा के पन्द्रह भेद...।

११. सन्देहास्पद प्रवारणा के पन्द्रह भेद...।

१२. सङ्कोच के साथ किये गये प्रवारणाकर्म के पन्द्रह भेद...।

१३. भेद (कटूक्ति) पूर्वक किये गये प्रवारणाकर्म के पन्द्रह भेद...।

१४. प्रवारणाविषयक सीमावक्रान्तिक पेयाल का विस्तार।

१५. भिक्षुओं में प्रवारणा के दिवस-विषयक मतभेद पर निर्णय।

१६. प्रवारणा के आरम्भ से पूर्व आवसिक भिक्षुओं के आकार, लिङ्ग, निमित्त आदि का ज्ञान आवश्यक।

१७. नानासंवासक आदि भिक्षुओं के साथ प्रवारणाकर्म का विधान।

१८. प्रवारणा के दिन आवासत्याग का निषेध।
१९. प्रवारणा के दिन गन्तव्य आवास का विधान।
२०. प्रवारणाविधि में वर्जनीय पुद्गलों की सूची।
२१. पाठ के दो या तीन बार में पढ़ने आदि की प्रवारणा।
२२. प्रवारणा के स्थानहेतु नियमनिर्धारण।
२३. प्रवारणा के दिन स्थूलात्यय आदि दोषों की निवारणविधि।
२४. प्रवारणा के समय अपराध या अपराधकर्ता के स्थगन के विषय में निर्णय।
२५. प्रवारणा के समय कलहकारक भिक्षुओं से बचने के उपायों का निर्देश।
२६. चार कारणों से प्रवारणा का संग्रह (आगे बढ़ाना) किया जा सकता है।

❋

५. चर्मस्कन्धक

१. सोण कोटिवीस कुलपुत्र चम्पानगरी के बीस करोड़ सम्पत्ति के स्वामी एक श्रेष्ठी का पुत्र था। वह भगवान् से दीक्षा लेकर धर्मसाधना में लग गया। एक दिन बहुत श्रमपूर्वक अधिक चंक्रमण करने से उसके पैर फट गये और उनसे बहुत अधिक रक्त बहने लगा। तब उसके मन में यह विचार हुआ– ''भगवान् के निष्ठापूर्वक साधना करने वाले जितने भी शिष्य हैं, उनमें मैं भी एक हूँ। तो भी मेरा चित्त आस्रवों से विमुक्त नहीं हो पा रहा है। मेरे घर में अपार सम्पत्ति है; उसके सहारे, मैं कामों का भोग भी कर सकता हूँ तथा दानादि करता हुआ पुण्योपार्जन भी कर सकता हूँ। अतः क्यों न मैं पुनः गृहस्थाश्रम में लौट चलूँ।'' भगवान् ने उसके ये विचार अपने चित्त से जान लिये और शीतवन में साधना कर रहे उसके सम्मुख प्रकट हुए। और बहुत से भिक्षुओं के साथ टहलते हुए उस चंक्रमण स्थल पर पहुँचे जहाँ सोण के पैरों से निकला रक्त बह रहा था। उस रक्त के विषय में भिक्षुओं से पूछने पर उन्होंने बताया कि यह रक्त, चंक्रमण करते समय, शोण के फटे पैरों से निकला है।

२. तब भगवान् आयुष्मान् शोण की साधनाकुटी में गये। प्रणाम, कुशलमङ्गल के बाद भगवान् ने उससे उसके उपर्युक्त विचारों के विषय में पूछा। उसके स्वीकार करने पर उससे भगवान् ने पूछा– ''शोण! क्या तुम अपने गृहस्थाश्रम में वीणावादन में कुशल थे?'' ''हाँ, भन्ते!'' ''तो क्या मानते हो शोण! जब तेरी वीणा के तार बहुत अधिक खिंच जाते थे तो उनसे मधुर स्वर निकल पाता था?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''तो क्या जब उसके तार ढीले रहते थे तब मधुर स्वर निकलता था?'' ''तब भी नहीं, भन्ते!'' ''तो क्या जब उसके तार न अधिक खिंचे होते थे, न ढीले तब उस का कैसा स्वर होता था?'' ''तब तो बहुत मधुर एवं मनोज्ञ होता था।'' ''इसी तरह शोण! अधिक श्रम औद्धत्य का उत्पादक होता है। अतः तुम अपनी साधना में समय की समता का ध्यान रखो। इसी से तुम्हें सफलता मिलेगी।'' आयुष्मान् शोण ने भगवान् के आदेशानुसार समता का ध्यान रखते हुए साधना की तथा कुछ ही समय में अर्हत्त्व पा लिया।

३. एक तल्ले की जूता— आयुष्मान् शोण की सुकुमारता देखकर भगवान् ने उसको एक तल्ले का जूता पहनने की अनुमति दी। इतना ही नहीं, शोण के आग्रह पर, भगवान् ने समग्र भिक्षुसङ्घ को भी एक तल्ले का जूता पहनने की अनुमति दी; परन्तु किसी को भी दोहरे तिहरे तल्ले का जूता पहनना धर्मविरुद्ध घोषित कर दिया।

४. रंगीन जूतों का निषेध— भगवान् ने नीले, पीले, लाल, मंजीठ, महारङ्ग या महानाम रङ्ग में रङ्गी रस्सी से बाँधे गये ऐसे रङ्गों वाले जूतों का निषेध कर दिया।

साथ ही **सिंह व्याघ्र आदि के चर्म** से बने जूतों का भी निषेध कर दिया।

५. दूसरों द्वारा परित्यक्त जूते पहनने की अनुमति— पुराने दो तल्ले या तीन तल्ले के जूते पहनने की अनुमति पैरों के व्रणित होने पर दे दी गयी, परन्तु ऐसे नये जूते पहनने की अनुमति नहीं थी।

६. भिक्षुओं को आदेश था कि उपाध्यायों तथा आचार्यों के सामने कोई भी भिक्षु जूता पहन कर न घूमे।

आवास में जूता पहनना पूर्णतः निषिद्ध था। परन्तु पैरों के व्रणित होने पर वहाँ भी जूता पहनना अनुमत था।

मञ्च या पीठ पर चढ़ना हो तो वहाँ तक जाने के लिये जूता पहनना अनुमत था।

साथ ही आवास में अन्धकार होने पर जूता, लाठी एवं दीपक रखना अनुज्ञात था।

७. काठ की पादुकाएँ पहनना निषिद्ध— आवास में खड़ाऊँ पहनना सर्वथा निषिद्ध था; क्योंकि उनकी खट् खट् ध्वनि से आवास की शान्ति भङ्ग होती थी।

ताड़ या बाँस के हरे पत्तों से बनी जूतियाँ भी निषिद्ध थीं; क्योंकि उनसे प्राणिहिंसा तथा जङ्गलों की सुन्दरता नष्ट होती थी।

साथ ही तृण, मूँज एवं खजूर के पत्तों, कमल के पत्तों से बनी पादुकाएँ भिक्षुसङ्घ के लिये निषिद्ध थीं।

सोना, चाँदी, मणि, वैदूर्य, स्फटिक, कांस्य, काच या लाख से बनी पादुकाएँ भी भिक्षुओं के लिये अव्यवहार्य थीं।

शौचालय, मूत्रालय, आचमनस्थल पर जाने के लिये पादुकाओं का प्रयोग अनुमत था; परन्तु ये पादुकाएँ इससे आगे नहीं जाती थीं।

८. भिक्षु को **यान से यात्रा** नहीं करनी होती थी। हाँ, रोगी को यान पर आरोहण की अनुमति थी।

इसी तरह भिक्षु को पालकी पर चढ़ने की अनुमति दी गयी। साथ ही पुरुष के हाथ से चलाये जाते (हत्थवट्टक) यान पर चढ़ने की भी भिक्षु की अनुमति थी।

९. भिक्षु को **उच्चासन** एवं **महाशयनों** का **उपयोग सर्वथा वर्जित** था।

१०. भिक्षु को सिंह, व्याघ्र, द्वीपी, हाथी एवं गौ का चर्म व्यवहार में कथमपि नहीं लेना चाहिये।

११. भिक्षुओं को गृहस्थों के चर्मावनद्ध आसनों पर बैठने की अनुमति थी, उन पर सोने या लेटने की नहीं।

जूता पहन कर गाँव में जाना भिक्षु के लिये निषिद्ध हुआ। रोगी भिक्षु इसका अपवाद था।

१२-१३. अवन्ति प्रदेश के कुरूरघर पर्वत पर साधनारत आयुष्मान् महाकात्यायन को उन्हीं के शिष्य सोणकुटिकर्ण के माध्यम से भगवान् ने पाँच वर दिये; जैसे—
(१) अवन्ति दक्षिणापथ में प्रव्रज्या-उपसम्पदा हेतु भिक्षुओं की गणसङ्ख्या में कमी;
(२) अवन्ति दक्षिणापथ में भिक्षुओं को गृहस्थों के उतरे हुए जूते पहनने की अनुमति;
(३) अवन्ति दक्षिणापथ में भिक्षुओं को प्रतिदिन स्नान की अनुमति;
(४) भिक्षुओं को भेड़, बकरी के चर्मों के प्रयोग की अनुमति; एवं
(५) चीवर के विषय में कुछ और अधिक स्पष्ट निर्देश दिये।

भगवान् सोणकुटिकण्ण से **सुत्तनिपात** के पारायणवग्ग की गाथाएँ सस्वर सुनकर बहुत प्रसन्न हुए॥

*

६. भैषज्यस्कन्धक

१. **पञ्चभैषज्यकथा**— एक समय भगवान् श्रावस्ती के जेतवनाराम साधना हेतु विराजमान थे। उस समय बहुत से भिक्षु शरद्तु में होने वाले कुछ रोगों से पीड़ित थे। इस कारण वे बहुत ही दुर्बल, रूक्ष एवं दुर्वर्ण हो गये। तब भगवान् ने उन रोगी भिक्षुओं को ऐसी पाँच ओषधियाँ बतायीं; जो उनके रोगनिवारण में भी सहायक हुई तथा इनके शरीर को भी स्वस्थ रखने लगीं। जैसे— **घी, मक्खन, तैल, मधु एवं फाणित** (चासनी)।

आगे चलकर कुछ रोगों के प्रतीकार के लिये रींछ, मछली, सूअर आदि की **चर्बी से युक्त ओषधियों का प्रयोग विहित** किया गया।

२. कुछ ऐसी **मूल** (जड़) **ओषधियों** के उपयोग की भी स्वीकृति दी गयी, जिनका प्रयोग रोगावस्था में ही विहित था, स्वस्थावस्था में नहीं; जैसे—हल्दी, अदरख, वच, नागरमोथा, अतीस, चिरायता, कुटकी, खसखस या ऐसी ही अन्य ओषधियाँ।

रोगावस्था में कुछ **ओषधियों के काषाय** (क्राथ) भी स्वीकृत हुए; जैसे— नीम, कुटज, पटोल, प्रग्रव, नक्तमाल।

इन ओषधियों को पीसने हेतु **खरल एवं शिल** रखने की भी अनुमति दी गयी।

कुछ **वृक्षों के पत्ते** भी ओषध माने गये; जैसे—नीम, कुटज, पटोल, तुलसी, कपास तथा ऐसी ही अन्य ओषधियाँ।

कुछ **फल ओषधियाँ**; जैसे— विड़ंग, पिप्पल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला आदि।

कुछ **जतु** (गोंद) **ओषधियाँ**; जैसे— हींग आदि।

कुछ **क्षार** (लवण) **ओषधियाँ**; जैसे— समुद्री नमक, काला नमक, सैंधा नमक, खान से निकला नमक एवं विड नमक आदि।

कुछ चूर्ण ओषधियाँ— स्थूल कच्छ (दाद) आदि रोगों में सहायक कुछ ओषधियों का चूर्ण बनाकर उपयोग में लेने की अनुमति दी गयी।

इनके लिये पिसी ओषधियों का छानने के लिये **चालनी** भी अनुमत हुई।

प्रेतबाधानिवृत्ति के लिये कच्चा मांस तथा रक्त भी अनुमत हुआ।

नेत्र अञ्जनों को रखने केलिये **ढक्कनदार पात्रों** की भी स्वीकृति दी गयी। इन अञ्जनों के प्रयोग हेतु **शलाका** (सलाई) भी अनुमत हुई।

मस्तिष्करोगों के लिये नस्य कर्म की अनुमति दी गयी। धूम्रपान की भी अनुमति मिली। धूम्रपान हेतु चिलम रखना भी स्वीकृत हुआ।

वातरागों की निवृत्ति हेतु— कुछ तैलपाकों की अनुमति दी गयी। साथ ही **स्वेदकर्म** एवं **अङ्गोदक** एवं रक्तमोचन की अनुमति दी गयी।

पैरों में **तैलमर्दन** भी वातरोग का शामक माना गया।

शल्य चिकित्सा में उपयोगी साधनों की स्वीकृति दी गयी।

सर्पविष, ग्रहणी रोग, पाण्डुरोग, त्वक्शून्य रोग आदि के लिये विशेष ओषधियाँ स्वीकृत की गयीं।

३. रोगी की परिचर्या के लिये **परिचारक** रखना अनुमत हुआ। उक्त सभी ओषधियों को भिक्षुओं को रोगनिवृत्ति के बाद भी आवश्यक उपयोग की दृष्टि से सप्ताहपर्यन्त अपने पास रखने की अनुमति दी गयी।

४. **गुड़** का यथेच्छ उपयोग (रोगानुसार) करने की अनुमति दी गयी। साथ ही **मूँग** तथा **सिरका** के उपयोग की भी अनुमति मिली।

५. इन ओषधियों को, स्थायी रूप से विहार में रखकर, इनका उपयोग निषिद्ध माना गया।

६. प्रसङ्गवश भगवान् द्वारा भिक्षुओं को निर्जन स्थान होने पर स्वयं फल आदि के ग्रहण तथा भोजन के बाद लाय गये भक्ष्य के ग्रहण की भी अनुमति दी गयी।

७. दूसरे भिक्षु के लिये गृहस्थ द्वारा लाये गये पदार्थ को लेकर रखने की अनुज्ञा देते हुए, तालाब में उत्पन्न चीजों का उपयोग करने की स्वीकृति दी गयी।

८. **गुप्ताङ्गों में शल्यचिकित्सा** में शस्त्रकर्म निषिद्ध किया गया।

९. **मानव-मांस के भक्षण** का सर्वथा निषेध किया गया।

१०. साथ ही हाथी, घोड़ा, कुत्ता, सर्प, सिंह, व्याघ्र, चीता, रींछ, लकड़बग्घा आदि के माँस का प्रयोग भी निषिद्ध किया गया।

११. खिचड़ी एव लड्डू के गुण बताते हुए इन्हें खाने की अनुमति दी गयी। परन्तु इनके लिये एक जगह का निमन्त्रण पाकर दूसरी जगह जाकर लेना निषिद्ध किया गया।

१२. इसी तरह अन्यत्र का निमन्त्रण पाकर अन्यत्र भोजन करना भी निषिद्ध माना गया।

१३. भिक्षुओं को साधारण अवस्था में गुड़मिश्रित जल तथा रुग्णावस्था में गुड़ के उपयोग की अनुमति मिली।

१४. प्रसङ्गवश भगवान् ने पाटलिग्राम के महामात्यों को दुःशील के दुर्गुण तथा सुशील के सद्गुणों का माहात्म्य बताया।

१५. एवं महामात्यों द्वारा कोटिग्राम के निर्माणाधीन नगर-निर्माण की प्रशंसा की।

१६. साथ ही भगवान् ने वहाँ भिक्षुओं को आर्यसत्य का उपदेश किया।

१७. कोटिग्राम में भगवान् को अम्बपाली गणिका का निमन्त्रण।

१८. इस निमन्त्रण से वहाँ के लिच्छविगण को ईर्ष्या हुई।

१९. भगवान् ने सिंह सेनापति को लोक में फैले अपने प्रवाद के शब्दों का वास्तविक अर्थ बताया। तथा भिक्षुओं को त्रिकोटिपरिशुद्ध (अदृष्ट, अश्रुत, एवं अपरिशङ्कित) मत्स्य-मांस के सेवन की ही अनुमति दी।

२०. दुर्भिक्ष काल के नियमों का सुभिक्ष में निषेध किया गया। विहार में वस्तुओं के भाण्डागार की अनुमति। भाण्डागार में साधारण समय में भोजन बनाना तथा उसका उपयोग निषिद्ध।

२१. भद्दिया के मेण्डक गृहपति की भगवान् में श्रद्धा।

२२. **पाँच गोरस** (दूध, दही, मट्ठा, मक्खन एवं घी) के उपयोग की अनुमति। तथा **यात्रा में**— चावल, मूँग, उड़द, नमक, गुड़, तैल, घी आदि साथ रखने की अनुमति।

परन्तु किसी भी दशा में सोना चांदी आदि साथ रखना पूर्णतः निषिद्ध किया गया।

२३. धान्य फल रस को छोड़कर अम्बपान आदि फलरस पानों का, ढाक के पत्तों का रस छोड़कर सभी पत्ररसों का तथा महुआ के पुष्परस को छोड़कर सभी पुष्परसों का उपयोग अनुमत माना गया।

२४. खाने योग्य पौधों का सलाद एव आटे के लड्डू खाना अनुमोदित हुआ।

२५. प्रव्रजित को अकरणीय के करने का निषेध किया गया।

२६. सभी फलों को खाने योग्य माना गया।

२७. विहार की भूमि के पास बोये अन्न का दशम भाग भूस्वामी को देकर ही उसका उपयोग।

२८. करणीय तथा अकरणीय के विषय में चार सिद्धान्त घोषित किये गये।

*

७. कठिन स्कन्धक

१. भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में साधना हेतु विराजमान थे। उस समय कुछ पावेयक भिक्षु वर्षावास कर 'कठिन' की प्रतीक्षा न कर भगवान् के दर्शन हेतु जेतवन में आये। भगवान् ने उनसे कुशल मङ्गल पूछते हुए सच्चाई जानकर उन्हें आदेश दिया— "**वर्षावास कर चुके भिक्षुओं को 'कठिन'** (सङ्घ की सम्पत्ति से सम्मान

प्रदर्शन हेतु भिक्षु को दिया गया वस्त्र) **धारण करना चाहिये।**" साथ ही कठिन-धारकों के लिये ये पाँच नियम घोषित किये—

१. विना आमन्त्रण के विचरना, २. विना तीनों चीवरों को लिये विचरना,

३. गण के साथ भोजन करना, ४. इच्छानुसार 'चीवर' लेना,

५. 'चीवर' मिलते समय उपस्थित का ही चीवर माना जायगा।

इसके बाद कठिन के **प्रसारण** (लेकर पहनना) तथा **अप्रसारण** (लेकर रख देना), **लेकर**, (आदाय), **ठीक से लेकर** (समादाय) आदि के यथानुरूप सप्तक एवं षट्क आदि भेदों का विस्तार किया, जो जिज्ञासु को ग्रन्थ में ही द्रष्टव्य है।

*

८. चीवरस्कन्धक

इस स्कन्धक के प्रारम्भ में राजवैद्य जीवक कौमारभृत्य का विस्तृत जीवनचरित्र दिया गया है। यह जीवक जब कुशल चिकित्सक हो गया तब इसने बुद्ध एवं सङ्घ की भी चिकित्सा आरम्भ की। एक बार भगवान् उदररोग से पीड़ित हुए तो जीवक ने उनको तीस विरेचन कराये। जब वे स्वस्थ हो गये तो जीवक ने उनको मँहगा, शिवि देश का बना दुशाला भेंट किया।

सङ्घ की स्थापना से अब तक सभी भिक्षुजन गृहस्थों द्वारा परित्यक्त, गलियों में फेंके पुराने कपड़ों को ही धोकर उनको चीवर के रूप में पहनते थे। जीवक के स्नेहमय आग्रह पर भगवान् ने **नये वस्त्रों के चीवर पहनने की अनुमति दी।** तथा स्वयं भी वह दुशाला स्वीकार किया।

इसके बाद तो भिक्षु पहनने ओढ़ने के विविध वस्त्र गृहस्थों से स्वीकार करने लगे। परन्तु इन नये वस्त्रों के साथ, पुराने चिथड़ों से बने चीवरों की भी अनुमति थी।

इन गृहस्थों द्वारा प्रदत्त चीवरों के भिक्षुओं को विभाजन हेतु भगवान् ने नियम बनाये। इनके लिये सर्वप्रथम 'चीवरसंरक्षक' की नियुक्ति (भिक्षुओं में से ही) की गयी। फिर चीवरों के रख-रखाव के लिये भाण्डागारों की स्थापना हुई। चीवरों के भिक्षुओं मे बँटवारे के विस्तृत नियम बनाये गये।

चीवरों को रङ्गने के तथा चीवरों की सिलाई के नियम भी घोषित हुए।

इस तरह भिक्षुओं का चीवरों के प्रति राग बढ़ता हुआ देखकर भगवान् ने सङ्घ में पुन: त्रिचीवर ही पहनने का प्रतिबन्ध लगा दिया। अतिरिक्त चीवर, कोई भी भिक्षु, दश दिन तक ही अपने पास रख सकता था।

भिक्षुओं के प्रति विशाखा उपासिका का स्नेहमय आग्रह देखकर, भगवान् ने भिक्षुओं को भोजन एवं वस्त्र में आठ सुविधाएँ दीं। इन आठों सुविधाओं की व्यवस्था, श्रावस्ती में आने वाले सभी भिक्षुओं के लिये विशाखा मृगारमाता की तरफ से थी। वे आठ सुविधाएँ ये थीं— (१) वर्षा ऋतु में पहनने के लिये धोती, (२) नवागन्तुकों को विशाखा के घर पर भोजन, (३) श्रावस्ती से जाने वाले भिक्षुओं को पाथेय, (४) रोगी

भिक्षु को पथ्य, (५) रोगी के परिचारक को भोजन, (६) रोगी को औषध, (७) प्रतिदिन प्रातःकाल यागु, (८) तथा भिक्षुणीसङ्घ को उदकशाटी (मासिक धर्म के समय उपयोज्य वस्त्र)।

भिक्षुओं के लिये शयनसम्बन्धी नियम बनाये गये।

चीवरों तथा अन्य वस्त्रों की अनिवार्य उपयोगविधि प्रसारित की गयी।

सङ्घ के लिये मिले चीवर की विभाजनविधि निश्चित की गयी। विभिन्न वस्त्रों के उपयोग की विधि बतायी गयी।

सङ्घ के लिये प्रदत्त चीवर पर, जब तक 'कठिन' न मिल जाय तब तक उस वर्षावासी भिक्षु का ही अधिकार घोषित किया गया।

ऐसे चीवर सङ्घ के सम्मुख ही वितरित किये जाने आवश्यक बताये गये।

वर्षावास से अतिरिक्त स्थान में प्राप्त चीवर में अंशविभाजन निषिद्ध किया गया।

एतदनन्तर रोगी भिक्षु की सेवाविधि विस्तार से वर्णित है। मृत रोगी भिक्षु या श्रामणेर की वस्तुओं पर सङ्घ का आधिपत्य माना गया।

भिक्षु का नग्न रहना सर्वथा निषिद्ध कर दिया गया।

साथ ही चीवर के स्थान पर कुश चीर आदि का धारण भी निषिद्ध कर दिया।

सर्वथा नीले-पीले रङ्गों से रङ्गे वस्त्रों का प्रयोग भी निषिद्ध हो गया।

वर्षावासिकों द्वारा न लिये चीवरों का क्या उपयोग हो?— यह भी बताया गया।

सङ्घभेद के बाद मिले चीवर की व्यवस्था, तथा दूसरे के लिये भेजे गये चीवर के विषय में निर्णय किया गया।

अन्त में चीवर के विषय में आठ मातृकाएँ चीवर के निर्णय हेतु घोषित की गयीं।

❋

९. चाम्पेयस्कन्धक

इस स्कन्ध का आरम्भ काश्यपगोत्र नामक भिक्षु के क्रियाकलाप से आरम्भ होता है। वह अपने आवास पर आये किसी भी श्रमण को बहुत ही स्नेह-व्यवहार देते हुए चाय, जलपान, भोजन, शयनासन की सभी सुखसुविधाएँ देता था। इन सुविधाओं के मिलने से कुछ भिक्षु ऐसे आये जो बहुत दिन यहाँ ठहर गये और अन्त में उस काश्यपगोत्र भिक्षु को ही आवास से निकाल दिया। वह इस व्यवहार से दुःखी होकर भगवान् के सम्मुख गया। और उनको समस्त घटना सुना दी। तब भगवान् ने सङ्घ के सम्मुख निर्णय दिया— "निरपराध एवं निर्दोष भिक्षु को अकारण या विना किसी घटना के उत्क्षेपणीय दण्ड (निष्कासन) नहीं देना चाहिये।"

फिर इसी क्रम में भिक्षुओं द्वारा अधर्मपूर्वक तथा धर्मपूर्वक किये गये निर्णयों का विभाजन किया गया।

साथ ही निर्णायकसङ्घों का वर्गीकरण कर उनके निर्णयों एवं अधिकारों की व्याख्या की गयी।

एतदनन्तर उन सङ्घों की कार्यपद्धति बतायी गयी।

अन्त में आयुष्मान् उपालि के एतद्विषयक प्रश्नों का उत्तर दिया गया।

*

१०. कौशाम्बिकस्कन्धक

भगवान् बुद्ध जब कौशाम्बी के घोषिताराम में साधनाहेतु विराजमान थे, उसी समय किसी भिक्षु की किसी आपत्ति (दोष) को लेकर वहाँ के भिक्षुसङ्घ में गम्भीर विवाद उठ खड़ा हुआ। भगवान् मध्यस्थ के रूप में वहाँ पहुँचे। भगवान् ने, सङ्घ की एकता के नाम पर, दोनों पक्षों को बहुत समझाया; इस एकता के प्रसङ्ग में **दीघावुजातक** की प्राचीन कथा भी सुनायी; परन्तु भगवान् द्वारा इस तरह समझाने-बुझाने का भी उन दोनों पक्षों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इस सङ्घभेद से भगवान् को बहुत कष्ट हुआ।

यों, सङ्घ की इस फूट से दुःखी होकर भगवान् ने घोषिताराम छोड़ दिया और वे अकेले ही पारिलेय्यक वन में जाकर साधना में रत हो गये। उसी समय अपने साथियों के व्यवहार से दुःखी हो कर एकान्त खोजता हुआ एक गजराज भी वहाँ आया। इस अवसर पर उसने, एक मनुष्य-अनुचर की तरह, भगवान् की सेवा की। अन्त में आयुष्मान् आनन्द वहाँ आये और भगवान् को श्रावंस्ती के जेतवनाराम में ले गये।

कुछ समय बाद कौशाम्बी के भिक्षु वहाँ के नागरिकों द्वारा अपमानित होकर सही मार्ग पर आ गये और वे लज्जित होकर श्रावस्ती आये। उन्होंने स्वकृत सङ्घभेद के लिये प्रायश्चित्त करते हुए भगवान् से क्षमायाच्ञा की। कृपालु भगवान् ने भी सङ्घ में सामग्री (एकता) का उपदेश करते हुए उनको क्षमा कर दिया।

अन्त में भगवान् ने आयुष्मान् उपालि द्वारा 'सङ्घसामग्री' के विषय में पूछे गये प्रश्नों का भी उचित समाधान किया॥

'महावग्ग' ग्रन्थ का सार-संक्षेप समाप्त॥

*

INTRODUCTION

1. THE COUNCILS : TIPIṬAKA COMPILED

At kusīnārā, after the Mahāparinibbāna, the disciples had assembled to pay their last homage to the Master. Venerable Mahākassapa, the chief of the congregation, was reminding them of the declaration of the Lord : "It is the very nature of all things near and dear to us that we must divide ourselves form them, leave them, and sever ourselves from them." At this, Bhikkhu Subhadda, who had joined the Order in his old age, and hence had no training in the Discipline, attempted to console the monks thus : "Do not grieve, brothers, for now we are definitely released from the restraint of the Great Teacher and his too rigid discipline. While the Master lived, we were constantly rebuked for failing to observe the hard rules : but, now we are at liberty to do as we please; therefore, do not grieve." These shocking words of Subhadda, just after the demise of the Lord, gave rise to the apprehension that there might also be other heretics in the Saṅgha, who would misinterpret and distort the Doctrine. The Venerable Mahākassapa, therefore, addressed the Bhikkhus thus :

Come, sirs, let us chant together the Dhamma and the Vinaya, before what is not-Dhamma is spread abroad, and what is Dhamma is put aside; before what is not-Vinaya is spread abroad and what is Vinaya is put aside; before those who argue against the Dhamma become powerful, and those who hold to the Dhamma become weak!

(a) The First Council

The Venerable chose five hundred Arhat Monks to hold a Great Council, to collect and preserve the Word of the Master in pristine purity. Rājagaha, The capital city of Magadha, was selected as the venue for the meeting. It is recorded that King Ajātasattu, a devout patron of the Buddha, made all arrangements for the significant convention, at the Sattapaṇṇi Cave, on the Vebhāra hill. According to the Tibetan tradition, however, it is supposed to have taken place at the Nigrodha Cave. The account of Aśvaghoṣa locates it at the Indraśāla Cave, on the Mount

Gijjhakūta. None the less, there is no dispute about the fact that it was at Rājagaha that the First Council met.

Venerable Māhakassapa, the General President of the Council, with the permission of the Sañgha, asked questions on Vinaya to Upāli. These questions related to the different offences; the matter, the occasion, the individuals concerned, the principal rules, the amendments to rules and all other details about them. Thus, the Vinaya text was agreed upon and settled.

Then, again, with the permission of the Sañgha, he put questions on the Dhamma to Ānanda. These questions followed the lines adopted for Vinaya—the occasion of the sermons and the person or persons with reference to whom they were preached.

The Commentary, of a much later date, aserts that the Abhidhamma Pitaka was also included in the collection of the Dhamma. It gives a full list of the names of the books of Pāli Tipiṭaka that is available to us today.

Prof. Oldenberg, however, does not accept the historical authenticity of this Council, on the ground that no reference to it has been made in the Mahāparinibbāna Sutta. though it does mention the remark made by Subhadda. This objection has been amply disproved by scholars, both Eastern and Western.

(b) The Second Council

A century after the passing away of the Buddha, a great controversy arose in the Saṅgha concerning the interpretation of some Vinaya rules. This necessitated the convention of the Second Council. Leading monks, from distant parts of India, assembled to take part in the Council, held at Vesālī. According to the Dīpavaṁsa and Samantapāsādikā, this Council was held in the reign of King Kalāsoka, a descendant of Ajātasattu. Buddhaghosa writes that seven hundred Bhikkhus took part in this Council, and that they drew up a new edition, divided in the Piṭakas, Nikāyas, Aṅgas and Dhammakkhandhas.

(c) The third Council

The third Council was held at Pātaliputta, under the patronage of the celebrated Buddhist monarch, Asoka the Great. The necessity of this Council was to expose and refute the various heretical views that had crept into the Saṅgha, as a result of

members of other sects joining the Buddhist Order, attracted by the royal patronage it had been receiving. The Venerable Moggaliputta Tissa, the presiding Elder, restored the true Doctrine, by propounding the Abhidhamma treatise, the Kathāvatthu, which was accepted as a Pakaraṇa of the third Piṭaka.

After the Council, Asoka despatched missionaries to the different countries of the world for the propagation of the Noble Doctrine. Mahinda, the son of Asoka, and Saṅghamittā, his daughter, were sent to Ceylon, where their mission was a great success. Ceylon became a stronghold of Buddhism; and, even to this day, the tradition of the Pāli Tipiṭaka has been maintained there with all religious zeal.

(d) The fourth Council

Up till then, the Tipiṭaka was principally handed down orally from teachers to pupils. There did exist the practice of writing amongst the members of the Sañgha; but, most probably, the Scripture was not compiled systematically in the form of books. This was done, for the first time, in Ceylon in 29 B.C. during the reign of King Vaṭṭagāmani Abhaya, with all the detailed classifications that are now obtained in the Pāli Tipitaka of the Theravāda School. This is often regarded as the Fourth Council.

(e) The Fifth Council

The Fifth Council, according to orthodox Theravāda tradition, was held at mandalay, upper Burma, in 1871, under the patronage of King Mindon. At this Council the whole Pāli Tipiṭaka was revised, re-edited and finally engraved on 729 marble slabs, as follows :

Vinaya	III slabs
Sutta	410 slabs
Abhidhamma	208 slabs

(f) The Sixth Council

Now, in this present age, the necessity was left of bringing out an up-to-date edition of The Tipiṭaka, thoroughly revised and systematically edited and printed on the most modern machines. This task was taken up by the Burmese Chaṭṭha Saṅgāyana, in Rangoon, which opened on the 17th May, 1954, in the artificially built Rock Cave, specially constructed for the purpose, at

some distance from Rangoon. Two thousand and five hundred of the most erudite Bhikkhus, from all parts of the world, took part in chanting to Tipiṭaka. A modern printing press was also installed in a separate building and there the approved texts were printed as soon as they had received the sanction of the Saṅgāyana. The Saṅgāyana councluded on the full-moon day of May, 1956.

2. NEED FOR TIPIṬAKA IN DEVANĀGARĪ

In Ceylon and Burma, the Tipiṭaka is available in their own scripts. In Thailand and Cambodia, likewise, several editions of the Tipiṭaka, in Siamese and Cambodian scripts, were prepared and published from time to time. The Pāli Text Society, London, has completed the publication of a major portion of the Tipiṭaka in Roman character. But, the entire Tipiṭaka was still not available in any script of India.

Pāli, the language of the Tipitaka, originally called Māgadhī, was the common spoken language of India more than two thousand years ago, in the same areas where Hindī is spoken at present. It is, therefore, more easily accessible to the Indian scholar than to any one else. If the Tipiṭaka is made available in Devanāgari, it would open a vast field of cultural studies to our readers. So far, our difficulty with Pāli had been more of script than of language.

The distribution of the books of the Pāli tipiṭak may be understood from the following chart :

Tipiṭaka

Vinaya Piṭak	**Sutta Piṭak**	**Abhidhamma Piṭak**
1. Mahāvagga	1. Dīghanikāya	1.Dhammasaṅgaṇi
2. Cullavagga	2. Majjhimanikāya	2. Vibhaṅga
3. Pacittiya	3. Saṁyuttanikāya	3. Dhatukathā
4. Pārājika	4. Aṅguttaranikāya	4. Puggalapaññatti
5. Parivāra	5. Khuddakanikāya	5. Kathāvatthu
		6. Yamaka
		7. Paṭṭhāna

I. Khuddakapāṭha

II. Dhammapada
III. Udāna
IV. Itivuttaka
V. Suttanipāta
VI. Vimānavatthu
VII. Petavatthu
VIII. Theragāthā
IX. Therigāthā
X. Jātaka
XI. Niddesa
XII. Paṭisambhidāmagga
XIII. Apadāna
XIV. Buddhavaṁsa, and
XV. Cariyapiṭaka

The Vinayapiṭaka deals with the rules and regulations for the life of the Bhikkhus and for the discipline of the monastery. The Suttapiṭaka is a collection of the sermons delivered by the Buddha, and also by his Chief Disciples, duly approved by Him. The Abhidhammapiṭaka expounds technically the psycho-ethical Philosophy of Buddhism.

A Summary of

THE MAHĀVAGGA

The Mahāvagga opens with an account of the days in the life of the Buddha immediately after realising the Great Enlightenment under the Bodhi tree, when He sat in the same posture for seven days, enjoyijng the bliss of deliverance. It gives a full history of the all-sided organisation of the Saṅgha; and concludes with the Buddha, teaching UPāli, what the 'Unanimity in an Order' (Saṅghasāmaggi) is. Let us have a bird's eye-view of these ten chapters :

Chapter I : Mahākhandhaka

The Blessed One was sitting in one posture for a week under the Rājāyatana tree, in the bliss of deliverance. Then, two merchants—Tapassu and Bhallika—from ukkala, approached and offered him gruel and sweets. They became the first two laydisciples, taking refuge only in two—the Buddha and the Dhamma.

From Rājāyatana, the Blessed one went to the foot of the Ajapāla Banyan tree and took his seat. There, it occurred to him : "The Doctrine that I have found out is deep and difficult to comprehend. Would it be of use if I preach it to others?" Then, Brahmā Sahampati appeared before him, and with folded hands, entreated him to take compassion on the world and preach the Dhamma.

The Blessed One accepted the prayer of Brahmā and set out for Isipatana Migadāya, Bārāṇasi, to preach his Dhamma to the five monks, who were dwelling there at that time. On the way, an Ājivaka monk, Upaka, approached him and asked who he was and under whom he led the holy life. To this, the Blessed One replied :

"For me there is no teacher,
One like me does not exist,
In the world with its devas
No one equals me.
To turn the Dhamma-wheel
I go to Kasī's city,

Beating the drum of Deathlessness
In a world that's blind become."

To the five monks, at Isipatana, the Blessed One preached : "Monks, seekers after truth must avoid the two extremes—that of the path of self-indulgence and that of self-mortification. Having avoided these two extremes, the Tathāgata has found out the Middle Way, the Noble Eight-Fold Path of Right View, Right Resolution, Right Speech, Right Action, Right Livelihood, Right Efforts, Right Mindfulness, and Right Concentration.

"Monks, life is a chain of miseries; attachment is the origin of all miseries; complete freedom from attachment is bliss, Nibbāna; and the eight-fold Noble path is the way to that freedom."

The Five monks were converted and were established in sainthood.

Yasa, the son of a merchant of Vārāṇasī, saw the void nature of pleasures, renounced home, approached the Buddha and became a Bhikkhu. four friends of yasa—Vimala, Subāhu, Puṇṇaji and Gavampati— as also fifty other companions of his came out and joined him.

Then, the Blessed One addressed the sixty Arhat monks thus : "Go ye, O Bhikkhus and wander forth for the gain of the many, for the welfare of the many, in compassion for the world, for the good, for the gain, for the welfare of gods and men. Proclaim, O Bhikkhus, the Doctrine glorious; preach ye a life of holiness, perfect and pure."

From Banaras, the Blessed One started for uruvela. He sat under a tree in a small jungle. There, thirty friends, called the Bhaddavaggiya, were searching all round the jungle a harlot who had run away with the ornaments of their wives. They say the Blessed One sitting under the tree and enquired if he had seen a woman pass that way. The Blessed One preached to them that it was better to search one's own self than to search a harlot. They listened to him and became his followers.

At Uruvela, there lived three great yogi hermits, having knotted hairs, called the Jatilas, Uruvela kassapa, Nadi kassapa and Gaya Kassapa. They tried to hold a contest with the Blessed One in Yogic powers, but were defeated and became his followers.

On the Gayāsisa Hill (present Brahmayoni), the Blessed. One was dwelling with one thousand follower-monks. He

preached the Ādittapariyāya Sutta to them,and they were established in sainthood.

From Gayāsisa, the Blessed One came to Rājagaha and was dwelling at Laṭṭhivana. King Bimbisāra heard about it, and, with great royal grandeur and with a large retinue, went to him. He offered the Bamboo-Grove Monastery for the use of the Order.

At Rājagaha, the mendicant Sāriputta came across Bhikkhu Assaji, a disciple of the Buddha, and asked him what his master taught. Assaji said in brief :

"Those things which proceed from a cause, of these the Truth-finder has told the cause,
And that which is their stopping—the great recluse has such a doctrine."

This opened the eyes of Sāriputta. He rushed up to his friend Moggallāna and informed him about the appearance of the Great master. They approached Him with devotion and listened to his Doctrine, and were established in sainthood.

The number of candidates coming for Ordination increased day after day. The Blessed One had to lay down the procedure for conferring Pabbajjā and Upasampadā. A Bhikkhu had to bring a formal resolution before the Saṅgha that such and such person was willing to get Ordination under such and such Teacher. It was declared thrice, and the Saṅgha was asked if it was acceptable to every one. If there was no objection, it was declared that the applicant was admitted into the order.

At the time, Jīvaka Komārabhacca, the famous royal physician of king Bimbisāra, was great devotee of the Buddha. He was the attending physician of the monks staying in the Veḷuvana Monastery. It so happened that five diseases became prevalent in Magadha—leprosy, boils, eczema, consumption and epilepsy—and those afflicted approached the royal physician and for treatment. But, being busy, he could not accept the cases. Then, they got themselves ordained as monks and lived in the Bamboo-Grove Monastery, and got treatment from the physician, Jivaka. When they were well, they left the Order and went about. This caused annoyance to the physician and he requested the Master not to let patients, suffering from those diseases, join the Saṅgha. The Blessed One, therefore, enjoined upon the Bhikkhus to ascertain first if a candidate for Pabbajjā and upasampadā was suffering from any of the five ailments.

At that time there arose some political disturbances on the frontiers and the king had ordered a battalion to go and meet the insurgents. Some of the soldiers broke away and got themselves ordained. This was brought to the notice of the king, who made a complaint about it to the Buddha. It was, therefore, made a rule to check before-hand if the applicant was a runaway from the army.

The father of the Blessed one, king Suddhodana, the Chief of the Sākyas, had sent invitation to him to visit Kapilavatthu. he accepted the invitation and set out for Kapilvatthu. There, princess yasodharā spoke thus to her son : "Rahula, this is your father, go and ask him for your inheritance." Then, the child Rāhula approached the Lord and said : "Pleasant is your shadow, recluse, give me my inheritance." The Blessed One caught Rāhula by his finger and took him to the place where he was staying and ordered Sāriputta to admit him into the Order. Then, king Suddhodana approached the Blessed One and said : "Lord, when the Lord renounced home, it had been a great sorrow to us, likewise when Nanda did the same, and it reachd its acme when Rāhula did it. It were well, Lord, if the Bhikkhus did not let a child go forth without the parent's consent." The Blessed One accepted this prayer and said : "Bhikkhus, a child who has not his parent's consent should not be ordained."

Chapter II : Uposatha

At that time, the Blessed One dwelt on the Mount Gijjhakūta, at Rājagaha. Then, king Bimbisāra approached the Lord and said : "Lord, the monks of different sects assemble togeher on the fourteenth, fifteenth, and eighth days of the month and preach their doctrine. They, thus become popular and strong. It would be nice if the Bhikkhus too were to do the same."

The Blessed One accepted the suggestion of the royal devotee and ordered the Bhikkhus to assemble on those days and perform Uposatha ceremony. He framed the detailed rules for the procedure of the ceremony. A particular Chapter-house, Sīmā, was to be legally fixed for holding the Uposatha, in which the monks living whithin the settled boundaries had to assemble and recite the Pātimokkha ruls, 227 in all. Rules were made for the selection of the monk who should lead the recitation of the

Pātimokkha. At the end of the recitation he made a general enquiry if any one of the assembly had committed the transgression. It there was one such, he was expected to make a confession of it, after which, he was considered to be pure.

It was made compulsory that the attendance of the monks, living in that particular area, must be cent per cent. Attendance by proxy was allowed, under certain conditions. The attendance of a lunatic Bhikkhu, however, was not compulsory. But, a legal procedure in the Saṅgha had to be followed to get the Bhikkhu declared a lunatic. Recitation of the Pātimokkha was allowed in an asembly of at least four. If the number was less, they had simply to make a confession of their transgressions amongst themselves and pronounce themselves pure. If there was only one Bhikkhu present, he had to clean and arrange the place when Uposatha was held and wait for the arrival of other Bhikkhus. And, if no one turned up, he had to resolve himself that this was a day of Uposatha for him.

Chapter III : Vassūpanāyikā

At that time, the Blessed One dwelt in the Bamboo-Grove Monastery, at Rājagaha. he heard the people complaining : "How bad it is for the Bhikkhus to wander about even in the rainy season, trampling upon the crops and grasses, injuring life that is one-facultied, and bringing destruction to many small creatures." He, then, enjoined upon the Bhikkhus to observe the Vassāvāsa, to stay at one place during the rainy months.

The Vassāvāsa began after the full-moon day of the Asāḷha month, or a month later. A bhikkhu was not allowed to leave the place and go away elsewhere during this period. Some urgent conditions, however, were recognised, under which, going out was allowed for a period of one week. If he was away for more than a week, it was regarded as a transgression.

In case of there being a danger form wild animals, or reptiles, or thieves, flood, etc., The bhikkhu was allowed to break the Vassāvāsa and go away to some other place.

If there was an apprehension of a schism taking place in the order, the Bhikkhu ws allowed to break the Vassāvāsa and go to restore goodwill.

Vassāvāsa was not allowed in the hollow of a tree, or in he forks of a tree, or in open place, or in funeral house, or under an umbrella, or in a big jar.

Chapter IV : Pavāraṇā

At that time, the Blessed One dwelt in the Jetavana Monastery, at Sāvatthi. Then, a number of Bhikkhus were observing Vassāvāsa in a monastery in Kosala. They settled amongst themselves : "Let us keep a vow of strict silence in the rainy season and manage somehow to carry on without talking to one another, so that there might be no occasion for mutual discord and misunderstanding." And they actually lived like that.

At the end of the rains, they went to Sāvatthi to pay their homage to the Lord. The Blessed One heard from them how they had spent the whole Vassāvāsa, keeping vow of silence, and expressed his disapproval of it. He disallowed the Bhikkhus to observe the vow of silence and lead a dumb life, like animals. He said : "Monks, at the end of rains, you should request the Order to point out if they have seen, heard, or even suspected an ofence in you; so that, you may be aware of it and try to get rid of it."

The last day of the Vassāvāsa was fixed to perform the ceremony of Pavāraṇā. Each Bhikkhu, one by one, had to invite the Saṅgha to point out to him if an offence was seen, heard, or even suspected in him, so that he might be aware of it and try to make amends for it.

It was made compulsory that the attendance of the monks, living in the area, must be cent per cent. If a Bhikkhu was ill, he was allowed to send his Pavāraṇā by proxy. Or, if the Bhikkhu was very ill, the Saṅgha had to come to the bed of the Bhikkhu and perform the Pavāraṇā ceremony. Ordinarily, the quorum of an assembly, for the Pavāraṇā ceremony, was five; but, in special circumstances the Pavāraṇā was permissible for even two Bhikkus. If there happend to be only one Bhikkhu present, he had to clean and arrange the place where the Saṅgha usually met and wait for another to come; and if no one turned up, he had to make a resolution for himself that it was a Pavāraṇā day for him.

Chapter V : Camma (Hides)

In Campā, there lived a merchant's son, named Soṇa Koṭivīsa, who was delicate and who had hairs grown in the soles of his feet. He went to Rājagaha and listened to a sermon of the Lord at Mount Gijjhakūṭa and took Pabbajjā and Upasampadā. He went to a solitary place at Sītavana and devoted him self very

ardently to the practice of meditation, walking up and down all the while; so much so, that his feet began to bleed profusely.

The Blessed One knew of it and went to the place. he asked Soṇa : "What do you think of this, Soṇa? Were you clever at the music of a stringed lute when formerly you were a householder?"

"Yes, Lord."

"What do you think about this, Soṇa? When the strings of your lute were too taut, was your lute at that time tuneful and fit for playing upon?"

"No, indeed, Lord."

" What do you think about this, Soṇa? When the strings of your lute were too slack, was your lute at that time tuneful and fit for playing upon?"

"No, indeed, Lord."

"What do you think about this, Soṇa? When the strings of your lute were neither too taut nor too slack, but were keyed to an even pitch, was your lute at that time tuneful and fit for playing upon.?"

"yes, Lord."

"Even so, Soṇa, too much output of energy conduces to restlessness; and too feeble energy conduces to slothfulness. Therefore, Soṇa, determine upon evenness in energy and evenness of faculties."

Venerable Soṇa fulfilled the Path and attained to sainthood.

As the Venerable Soṇa was so delicate, the Blessed One was pleased to allow him to use sandals with one lining. But Soṇa was hesitant to use sandals himself, when the other members of the Order went barefooted. The Lord was, then, pleased to allow the Bhikkhus the use of sandals with one lining.

A Bhikkhu was not allowed to use sandals when elder Bhikkhus were walking barefooted. The use of wooden sandals was disallowed, as it was disturbing and noisy in a peaceful monastery.

The use of cart was allowed to a sick monk. The use of decorative and luxurious beds was disallowed to a Bhikkhu.

Chapter VI : Bhesajja

At that time, the Blessed One dwelt in the Jetavana Monastery, at Sāvatthi. There, the Bhikkus had recovered from illness; and, were very weak. The Blessed One thought that he would

allow them to take some nourishment, which was not regarded as their normal food. he saw that ghee, butter, oil, honey and molasses, these five were such nourishments; and, therefore, allowed the Bhikkhus to take them even after midday.

The following things were allowed to be used for medicine : tallow from bears, tallow from fish, tallow from alligators, tallow from swine, tallow from donkeys; roots, turmeric, ginger, orris, garlic, black hellebore, khus-khus, nut-grass, astringent decoctions form the nimb tree, from the kuṭaja, from the pakkava, from nattamala, nimb leaves, kuṭaja leaves, cucumber leaves, basil leaves, cotton-tree leaves, vilaṅga fruits, pepper, black pepper, yellow Myrobalan, beleric, emblic, goṭha-fruit, resins hingu, hingu-resin, hingu-gum, gum, sea-salt, black salt, rock-salt, culinary-salt, red salt, etc.

Raw flesh and raw blood were allowed as medicine.

The following medicines were allowed for one suffering from troubles in the eyes : ointments, black collyrium, rasa-ointment, sota-ointment, yellow-ochre, lamp-black.

Oil, prepared with a mixture of wine, was also allowed for medicine. Steam-bath was allowed for rheumatic troubles.

At that time, a certain monk was bitten by a snake. The Lord said : "I allow you to give him stool, urine, ashes and mud."

A Monk was constipated. "I allow you, monks, to make him drink raw lye."

A certain monk had jaundice. "I allow you, monks, to make him drink a compound of cow's urine and yellow myrobalan."

A monk had a boil. "I allow the monk a compress, a piece of cloth for tying over the sore, to sprinkle it with mustardpowder, to make a fumigation, oil for the sore, a linen bandage, etc."

At Banaras, a lady lay-devotee, Suppiyā, wanted to prepare meat for a monk; and, that day, it was not available in the market. She, therefore, out of her great devotion, cut off a portion of flesh from her thigh and prepared it for the ailing monk. The Lord heard about it, and disallowed taking human flesh, and also the flesh of elephant, horse, snake, lion, tiger and hyena.

From Banaras, the Blessed One went to Andhakavinda; and from there, back of Rājagaha. From Rājagaha, he went to the village Pāṭaligāma, on the bank of the Ganges. At that time, the city of Pātaliputta was under construction. A sermon was preached to the people on the duties of house-holder. Sunīdha and

Vassakāra, two chief ministers of Magadha, were in charge of the construction of the city. The gate, by which the lord departed, came to be called Gotama Dvāra.

The Blessed One crossed the Ganges and reached Koṭigāma. The courtesan Ambapālī extended him an invitation for a meal at her house. The Lord accepted the invitation.

The Licchavis of Vesālī came to see the Lord. They were very beautiful. The Lord said that they were like the devas.

In Vesālī, the famous general Siha, a disciple of Nigaṇṭhanātaputta, came to the Blessed One, and was converted.

From Vesālī, the Blessed One went to Bhaddiya, Āpaṇa Kusināra, Ātumā, and Savatthi.

Chapter VII : Kaṭhina

At that time, the Blessed One dwelt in the monastery of Anāthapindika, at Sāvatthi. At the end of the rains, some Bhikkhus from Sāketa came to see him.

"I allow you, Bhikkhus, to make up Kaṭhina robe after the completion of Vassāvāsa. Five things will be allowed to you when the Kaṭhina robes have been made up : going to families for alms without having asked for permission, walking for alms though one may not have the three robes, a group-meal, as many robes as you require, and whatever robe-material accrues there, that will be for you."

The Kaṭhina robe was offered to Bhikkhu after due procedure in the Saṅgha.

Chapter VIII : Cīvara (Robes)

Jīvaka Komārabhacca was a child, born of the harlot Sālavati of Rājagaha, thrown away on the rubbish just after birth, picked up and bred and brought up by prince Abhaya. he went to Taxasila and learnt medicine. He cured the chronic headache of the wife of the merchant by only one dose of medicine. He cured the king Bimbisāra of fistula. He executed successful operations on brain and intestines.

Once, Jīvaka offered the Lord a pair of costly sheets of clothes, which he had received as a present from the king of Kosala. The Lord accepted the offer and allowed the Bhikkhus to use robes offered by lay devotees. Similarly, the use of blankets was allowed.

Rules regarding proper receipt and distribution of robes were made.

"I allow you, Bhikkus, six kinds of dyes : dye form roots, dye from stems, dye from bark, dye from leaves, dye from flowers and dye from fruits."

The Lord saw the rice-field of Magadha, laid out in strips, laid out in lines, laid out in embankments, laid out in squares; and, asked Ānanda that the Bhikkhus should follow the same design in preparing the robes.

A Bhikkhu was allowed to keep only three robes : a double outer cloak, a single upper robe, and a single inner robe.

Sheet, towel, strainer, and some such pieces were allowed.

Naked bath, in the open, was disallowed.

Chapter IX : Campeyya

The chapter deals with the different legal procedures against an offending Bhikkus, such as—Ukkhepaniya, Tijjaniya, Niyassa, Pabbājanīya, Paṭisāraṇiya.

Chapter X : Kosambaka

At that time, the Blessed One dwelt in the Ghositārāma Monastery, at Kosāmbi. There, the Bhikkhus had a knotty quarrel amongst themselves. The Lord tried his best to end the differences, and preached the Dīghāvu Jātaka to them. But, they did not listen to him. He, therefore, left the monastery and retired to the Pārileyyaka forest. A king of elephants, being tired of crowded company, had also retired and come to that forest; he saw the Buddha and waited upon him like an attendeant.

The Lord preached on the Unanimity of Order (Saṅghasāmaggī) To Upāli.

✻

THE PĀLI ALPHABET IN DEVNĀGARĪ AND ROMAN CHARACTERS

VOWELS

अ = a | आ = ā | इ = i | ई = ī | उ = u | ऊ = ū | ए = e | ओ=o

CONSONANTS WITH VOWEL "A"

क ka	ख kha	ग ga	घ gha	ङ ṅa
च ca	छ cha	ज ja	झ jha	ञ ña
ट ṭa	ठ ṭha	ड ḍa	ढ ḍha	ण ṇa
त ta	थ tha	द da	ध dha	न na
प pa	फ pha	ब ba	भ bha	म ma
य ya	र ra	ल la	व va	स sa
	ह ha	ळ ḷa	अं aṁ	

VOWELS IN COMBINATION

क ka	का kā	कि ki	की kī	कु ku	कू kū	के ke	को ko
ख kha	खा khā	खि khi	खी khi	खु khu	खू khū	खे khe	खो kho

CONJUNCT-CONSONANTS

क्क kka	ञ्च ñca	द्व dva	म्ब mba
क्ख kkha	ञ्छ ñcha	ध्य dhya	म्भ mbha
क्य kya	ञ्ज ṅja	ध्व dhva	म्म mma
क्र kra	ञ्झ ṅjha	न्त nta	म्य mya
क्ल kla	ट्ट ṭṭa	न्त्व ntva	म्ह mha
क्व kva	ट्ठ ṭṭha	न्थ ntha	य्य yya
ख्य khya	ड्ड ḍḍa	न्द nda	य्ह yha
ख्व khva	ड्ढ ḍḍha	न्द्र ndra	ल्ल lla
ग्ग gga	ण्ट ṇṭa	न्ध ndha	ल्य lya
ग्घ ggha	ण्ठ ṇṭha	न्न nna	ल्ह lha
ग्य gya	ण्ड ṅḍa	न्य nya	व्ह vha
ग्र gra	ण्ण ṇṇa	न्ह nha	स्त sta
ङ्क ṅka	ण्ह ṇha	प्प ppa	स्त्र stra
ङ्ख ṅkha	त्त tta	प्फ ppha	स्न sna
ङ्ग ṅga	त्थ ttha	प्य pya	स्य sya
ङ्घ ṅgha	त्व tva	प्ल pla	स्स ssa
च्च cca	त्य tya	ब्ब bba	स्म sma
च्छ ccha	त्र tra	ब्भ bbha	स्व sva
ज्ज jja	द्द dda	ब्य bya	ह्म hma
ज्झ jjha	द्ध ddha	ब्र bra	ह्व hva
ञ्ञ ñña	द्य dya	म्प mpa	ळ्ह ḷha
ञ्ह ñha	द्र dra	म्फ mpha	

ा = ā | ि = i | ी = ī | ु = u | ू = ū | े = e | ो = o

1	2	3	4	5	6	7	8	9	0
१	२	३	४	५	६	७	८	९	०

विसयक्कमो

२. उपोसथक्खन्धकं

३. वस्सूपनायिकक्खन्धकं

४. पवारणाक्खन्धकं

५. चम्मक्खन्धकं

६. भेसज्जक्खन्धकं

७. कठिनक्खन्धकं

८. चीवरक्खन्धकं

९. चम्पेय्यक्खन्धकं

१०. कोसम्बकक्खन्धकं

*

विनयपिटके

महावग्गो

[२.खन्धकविभागो]

यो गवं न विजानाति न सो रक्खति गोगणं।
एवं सीलं अजानन्तो किं सो रक्खति संवरं॥

*　　　*　　　*

पमुट्ठम्हि च सुत्तन्ते अभिधम्मे च तावदे।
विनये अविनट्ठम्हि पुन तिट्ठति सासनं॥

● *नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स* ●

महावग्गपालि

१. महाखन्धकं

१. बोधिकथा

१. तेन समयेन बुद्धो भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरञ्जराय [N.3, R.1, B.1] तीरे बोधिरुक्खमूले पठमाभिसम्बुद्धो। अथ खो भगवा बोधिरुक्खमूले सत्ताहं एकपल्लङ्केन निसीदि विमुत्तिसुखपटिसंवेदी।

अथ खो भगवा रत्तिया पठमं यामं पटिच्चसमुप्पादं अनुलोमपटिलोमं मनसाकासि— "अविज्जापच्चया सङ्खारा, सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं, विञ्ञाणपच्चया नामरूपं, नामरूपपच्चया सळायतनं, सळायतनपच्चया फस्सो, फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा, तण्हापच्चया उपादानं, उपादानपच्चया भवो, भवपच्चया जाति, जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्ख-दोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति—एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

"अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो, सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो,

---

● *उस भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम* ●

महावर्गपालि

१. महास्कन्धक

१. बोधिकथा

१. उस समय भगवान् बुद्ध उरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तट पर, बोधिवृक्ष (पिप्पल वृक्ष) के नीचे, प्रथम अभिसम्बोधि (बुद्ध पद) प्राप्त कर चुके थे। तब भगवान् उसी बोधिवृक्ष के नीचे सप्ताहपर्यन्त निरन्तर एक आसन से स्थित रहकर विमुक्ति (मोक्ष) सुख का आनन्द लेते हुए विराजमान रहे।

इसी बीच भगवान् ने रात्रि के प्रथम प्रहर (याम) में प्रतीत्यसमुत्पाद (हेतु या प्रत्यय से उत्पत्ति के नियम) का अनुलोम (आदि से अन्त की तरफ) तथा प्रतिलोम (अन्त से आदि की तरफ) क्रम से मनन किया। (जैसे—)

(अनुलोमपद्धति—) "अविद्या के कारण (हेतु)से संस्कार होते हैं, संस्कार के कारण विज्ञान होता है, विज्ञान के कारण नाम–रूप होते हैं, नाम–रूप के कारण छह आयतन, छह आयतनों के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जाति (जन्म), जाति के कारण जरा (बुढापा), मरण, शोक, विलाप (रोना–पीटना), शारीरिक दुःख, दौर्मनस्य (मानसिक दुःख) उत्पन्न होते है। इस तरह इस समग्र दुःखस्कन्ध (संसार) का समुदय (उत्पत्ति) होता है।

(प्रतिलोमपद्धति—) "अविद्या से सर्वथा वैराग्य होने के कारण उसका पूर्ण निरोध (नाश) होने से संस्कारों का निरोध हो जाता है, संस्कार के निरोध होने से विज्ञान का निरोध, विज्ञान के निरोध से

विञ्ञाणनिरोधा नामरूपनिरोधो, नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो, सळायतननिरोधा फस्सनिरोधो, फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो, वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो, तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो, उपादाननिरोधा भवनिरोधो, भवनिरोधा जातिनिरोधो, जातिनिरोधा जरामरणं सोकपरिदेव-
[R.2] दुक्ख दोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति—एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होती'' ति।

[B.2] अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

''यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
अथस्स कङ्खा वपयन्ति सब्बा यतो पजानाति सहेतुधम्मं''॥ ति॥

२. अथ खो भगवा रत्तिया मज्झिमं यामं पटिच्चसमुप्पादं अनुलोमपटिलोमं मनसाकासि— ''अविज्जापच्चया सङ्खारा, सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं, विञ्ञाणपच्चया नामरूपं .... पे०.... एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। ....पे०....निरोधो होती'' ति।

[N.4] अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

''यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
अथस्स कङ्खा वपयन्ति सब्बा यतो खयं पच्चयानं अवेदी''॥ ति॥

३. अथ खो भगवा रत्तिया पच्छिमं यामं पटिच्चसमुप्पादं अनुलोमपटिलोमं मनसा-

---

नाम–रूप का निरोध, नाम–रूप के निरोध से छह आयतनों का निरोध, छह आयतनों के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव का निरोध, भव के निरोध से जाति का निरोध, जाति के निरोध से जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास (पश्चात्ताप) का निरोध होता है। यों, इस समग्र दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है।''

भगवान् ने इस वास्तविकता को जानकर, उस समय यह हृदयोद्गार प्रकट किया–

''जब उत्साहसम्पन्न, ध्यानाभ्यासरत ब्राह्मण के मन में चिन्तन करते करते ये (उपर्युक्त प्रतीत्यसमुत्पादयुक्त) धर्म उद्भूत (प्रकट) हो जाते हैं, तब इन सहेतुक धर्मों का सम्यग्ज्ञान हो जाने के कारण, उस (ज्ञानी ब्राह्मण) की सभी आकांक्षाएँ (सांसारिक तृष्णाएँ) शान्त हो जाती हैं।''

२. इसके बाद, रात्रि के द्वितीय (मध्यम) प्रहर में भी भगवान् ने उसी (पूर्वोक्त) प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त का उक्त अनुलोम–प्रतिलोम क्रम से चिन्तन मनन करते हुए मन में यों (विचार) किया–

''अविद्या के प्रत्यय (कारण) से संस्कार होते हैं, संस्कारों के कारण विज्ञान होता है, विज्ञान के कारण नाम–रूप....पूर्ववत्....यों इस समग्र दुःखस्कन्ध का समुदय होता है।....पूर्ववत्.... दुःखस्कन्ध का निरोध होता है।''

भगवान् ने इस प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त की गम्भीरता समझ कर उस समय अपने ये उद्गार प्रकट किये–

''जब उत्साही एवं ध्यानाभ्यासरत ज्ञानी विप्र को चिन्तन करते करते ये धर्म मन में बैठ जाते हैं तो इस प्रत्यय (हेतु) ज्ञान के कारण उस की सभी सांसारिक आकांक्षाएँ क्षीण (शान्त) होने लगती हैं।''

३. तब, भगवान् ने रात्रि के अन्तिम (पश्चिम) प्रहर में भी उसी (पूर्वोक्त) प्रतीत्यसमुत्पादसिद्धान्त का अनुलोम–प्रतिलोम क्रम से चिन्तन मनन करते हुए मन में उसी पद्धति का विचार किया–

कासि—"अविज्जापच्चया सङ्खारा, सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं, विञ्ञाणपच्चया नामरूपं.... पे०....एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।....पे०....निरोधी होती" ति।

अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

"यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
विधूपयं तिट्ठति मारसेनं सुरियो व ओभासयमन्तलिक्खं"॥ ति॥

बोधिकथा निट्ठिता॥

२. अजपालकथा

४. अथ खो भगवा सत्ताहस्स अच्चयेन तम्हा समाधिम्हा वुट्ठहित्वा बोधि-[B.3] रुक्खमूला येन अजपालनिग्रोधो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा अजपालनिग्रोधमूले सत्ताहं एकपल्लङ्केन निसीदि विमुत्तिसुखपटिसंवेदी। अथ खो अञ्ञतरो हुंहुङ्कजातिको ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—[R.3]

"कित्तावता नु खो, भो गोतम, ब्राह्मणो होति, कतमे च पन ब्राह्मणकारका धम्मा" ति? अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

"यो ब्राह्मणो बाहितपापधम्मो निहुंहुङ्को निक्कसावो यतत्तो।
वेदन्तगू वुसितब्रह्मचरियो धम्मेन सो ब्रह्मवादं वदेय्य।
यस्सुस्सदा नत्थि कुहिञ्चि लोके"॥ ति॥

अजपालकथा निट्ठिता॥

"अविद्या के प्रत्यय (हेतु) से संस्कार, संस्कारो के प्रत्यय से विज्ञान, विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप....पूर्ववत्...यों इस समग्र दु:खस्कन्ध का उत्पाद होता है। ....पूर्ववत्....दु:खस्कन्ध का निरोध (नाश=क्षय) होता है।"

तब, भगवान् ने, इस सिद्धान्त को और अधिक महत्त्व देते हुए पुनः अपने ये हृदयोद्गार प्रकट किये—

"जब किसी उत्साही, ध्यानी एवं ज्ञानी विप्र (ब्राह्मण) को चिन्तन करते करते ये धर्म पूर्णत: हृदयस्थ हो जाते हैं तो वह मारसेना को परास्त करता हुआ लोक में उसी तरह देदीप्यमान रहता है, जैसे कि आकाश में सूर्य आलोकित रहता है।"

बोधिकथा पूर्ण।।

२. अजपालकथा

४. एक सप्ताह व्यतीत होने पर, उस समाधि से उठकर, भगवान् उस बोधिवृक्ष के नीचे से अजपाल नामक वट वृक्ष के नीचे गये। वहाँ जाकर (उस अजपाल वृक्ष के नीचे) भी विमुक्ति-सुख का आनन्द लेते हुए वे सप्ताहपर्यन्त एक ही आसन से विराजमान रहे। इसी बीच, कोई हुंहुङ्क जाति का (अभिमानी) ब्राह्मण, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। वहाँ पहुँचकर वह भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ब्राह्मण ने भगवान् से यों पूछा—"भो गौतम! कोई पुरुष किन लक्षणो के होने से 'ब्राह्मण' कहलाता है और उसकी वह विशेषता बतलाने वाले कौन से धर्म हैं?

भगवान् ने उस ब्राह्मण के प्रश्न का आशय समझकर इस उदान के रूप में उत्तर दिया—

३. मुचलिन्दकथा

[N.5] ५. अथ खो भगवा सत्ताहस्स अच्चयेन तम्हा समाधिम्हा वुट्ठहित्वा अजपालनिग्रोध-मूला येन मुचलिन्दो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा मुचलिन्दमूले सत्ताहं एकपल्लङ्केन निसीदि विमुत्तिसुखपटिसंवेदी। तेन खो पन समयेन महा अकालमेघो उदपादि, सत्ताहवद्दलिका सीतवातदुद्दिनी। अथ खो मुचलिन्दो नागराजा सकभवना निक्खमित्वा भगवतो कायं सत्तक्खत्तुं भोगेहि परिक्खिपित्वा उपरिमुद्धनि महन्तं फणं करित्वा अट्ठासि— "मा भगवन्तं सीतं, मा [B.4] भगवन्तं उण्हं, मा भगवन्तं डंसमकसवातातपसरीसपसम्फस्सो" ति। अथ खो मुचलिन्दो नागराजा सत्ताहस्स अच्चयेन विद्धं विगतवलाहकं देवं विदित्वा भगवतो काया भोगे विनिवेठेत्वा सकवण्णं पटिसंहरित्वा माणवकवण्णं अभिनिम्मिनित्वा भगवतो पुरतो अट्ठासि पञ्जलिको भगवन्तं नमस्समानो। अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

"सुखो विवेको तुट्ठस्स सुतधम्मस्स पस्सतो।
अब्यापज्जं सुखं लोके पाणभूतेसु संयमो॥
सुखा विरागता लोके कामानं समतिक्कमो।
अस्मिमानस्स यो विनयो एतं वे परमं सुखं"॥ ति॥

मुचलिन्दकथा निट्ठिता ॥

" ब्राह्मण वही है जिसके समग्र पापधर्म नष्ट हो गये हों, जो निरभिमान होकर अपने चित्तविकारों को विगलित कर चुका हो, जो वेदों के अन्तिम निष्कर्ष (मोक्ष) को भलीभाँति प्राप्त कर चुका हो तथा जिसने अपनी धर्मसाधना पूर्ण कर ली हो। इस लोक में उससे ऊपर (श्रेष्ठ) कोई नहीं है।।"

अजपालकथा पूर्ण।।

३. मुचलिन्दकथा

५. तब भगवान् एक सप्ताह का समय और व्यतीत होने पर, अजपाल वटवृक्ष के नीचे बैठ कर लगायी गयी समाधि से उठकर, पास ही खड़े दूसरे मुचलिन्द नामक वृक्ष के नीचे पहुँचकर, वहाँ भी विमुक्तिसुख का आनन्द लेते हुए सप्ताहपर्यन्त एक आसन से बैठे रहे। इसी बीच, विना ऋतु के ही काली घटाओं वाले तथा सप्ताहपर्यन्त टिके रहने वाले बड़े बड़े बादल आकाश में उमड़ आये, जिनके कारण शरीर को कष्टदायक ठण्डी हवाएँ बहने लगीं। तब मुचलिन्द नाम का कोई नागराज (विशाल सर्प) अपने बिल (भवन) से निकल कर भगवान् के शरीर पर अपना शरीर सात बार लपेट कर तथा उनके शिर पर अपना फण फैलाकर इसलिये बैठा रहा कि इस दुर्दिन मे भगवान् के शरीर पर ठण्ढी या गर्म ऋतु का कोई दुष्प्रभाव न पड़े और न ही किसी मच्छर, मक्खी या साँप-विच्छू के काटने से कोई वेदना हो। इसके बाद एक सप्ताह का समय बीतने पर, घिरी हुई घटाओं के विखर जाने पर, ऋतु के अनुकूल हो जाने पर, भगवान् के शरीर पर लिपटे हुए अपने शरीर को हटा कर, हाथ जोड़कर प्रणाम करता हुआ वह नागराज भगवान् के सम्मुख खड़ा हो गया। तब भगवान् ने मुचलिन्द सर्प की वह मानसिक स्थिति देखकर यह उद्‌गार प्रकट किया—

"सर्वथा यथालाभसन्तुष्ट एवं धर्मों का मर्मज्ञ साधक एकान्तवास में ही सुख मानता है। लोक में सभी प्राणियों में संयम का व्यवहार करना निर्द्वन्द्व सुख का द्योतक है।।

४. राजायतनकथा

६. अथ खो भगवा सत्ताहस्स अच्चयेन तम्हा समाधिम्हा वुट्ठहित्वा मुचलिन्दमूला येन राजायतनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा राजायतनमूले सत्ताहं एकपल्लङ्केन निसीदि विमुत्ति-सुखपटिसंवेदी। तेन खो पन समयेन तपुस्सभल्लिका वाणिजा उक्कला तं देसं अद्धान-[R.4] मग्गप्पटिपन्ना होन्ति। अथ खो तपुस्सभल्लिकानं वाणिजानं ञातिसालोहिता देवता तपुस्सभल्लिके वाणिजे एतदवोच— "अयं, मारिसा, भगवा राजायतनमूले विहरति पठमाभिसम्बुद्धो; गच्छथ तं भगवन्तं मन्थेन च मधुपिण्डिकाय च पतिमानेथ; तं वो भविस्सति दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति। अथ खो तपुस्सभल्लिका वाणिजा मन्थं च मधुपिण्डिकं च आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो तपुस्सभल्लिका वाणिजा भगवन्तं एतदवोचुं— "पटिग्गण्हातु नो, भन्ते, भगवा मन्थं च मधुपिण्डिकं च, यं अम्हाकं अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति। अथ खो भगवतो एतदहोसि—"न खो तथागता हत्थेसु पटिग्गण्हन्ति। किम्हि नु खो अहं [N.6] पटिग्गण्हेय्यं मन्थं च मधुपिण्डिकं चा" ति? अथ खो चत्तारो महाराजानो भगवतो [B.5] चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय चतुद्दिसा चत्तारो सेलमये पत्ते भगवतो उपनामेसुं—"इध, भन्ते, भगवा पटिग्गण्हातु मन्थं च मधुपिण्डिकं चा" ति। पटिग्गहेसि भगवा पच्चग्घे

"कामभोगों से दूर रहना तथा उनके प्रति वैराग्य ही लोक में परम सुख है। इसी तरह लौकिक पदार्थों में अपने अहन्त्व–ममत्व (अस्मिमान) का नाश भी परम सुख है"।।

मुचलिन्दकथा समाप्त।।

४. राजायतनकथा

६. तब भगवान्, एक सप्ताह का समय व्यतीत होने पर, उस (मुचलिन्द वृक्ष के नीचे लगायी) समाधि से उठकर मुचलिन्द वृक्ष के नीचे से राजायतन वृक्ष के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर भी सप्ताहपर्यन्त विमुक्तिरस का आनन्द लेते हुए समाधिमग्न रहे। उस समय तपुस्स और भल्लिक नामक दो बनजारे (बैलों पर अनाज लादकर व्यापार करने वाले), जो कि उत्कल (उड़ीसा) देशवासी थे, उस तरफ से अपने व्यापार के प्रसङ्ग में आगे उस मार्ग से जा रहे थे। उनकी ही जाति के प्रेत बने किसी देवता ने उन बनजारों से कहा—"मार्ष! तत्काल बुद्ध पद प्राप्त करने वाले भगवान् समीप ही उस राजायतन वृक्ष के नीचे विराजमान हैं। उनके पास जाओ, और उन्हें मट्ठा (तक्र) और मधु–पिण्ड (लड्डू) समर्पित कर सम्मानित करो। यह तुम्हारे लिये हितकर व सुखकर होगा"। तब वे दोनों तपस्सु एवं भल्लिक बनजारे मट्ठा और लड्डू लेकर जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गये। वहाँ जाकर उन्हें प्रणाम कर एक तरफ खडे हो गये।

एक तरफ खड़े हुए वे दोनों (तपस्सु और भल्लिक) व्यापारी भगवान् से यों निवेदन करने लगे—"भन्ते! भगवान् (हमारे द्वारा लायी गयी) मट्ठा और लड्डू (की भेंट) स्वीकार करे। जोकि हमारे लिये चिरकाल तक हितकर एवं सुखप्रद होगी।" तब भगवान् के मन में यह विचार आया—"तथागत हाथ में भिक्षा नहीं लिया करते, तो मैं (इन व्यापारियों का दिया हुआ) मट्ठा और लड्डू किस (पात्र) में लूँ?" तब चारों महाराजा (देव्ता), अपने मन से भगवान् के मन का वह विचार जान कर, चारों दिशाओं से चार शिलामय (पत्थर के बने) पात्र लेकर भगवान् के सामने रखकर निवेदन करने लगे—"भन्ते! भगवान् (आप) इन पात्रों में यह मट्ठा एवं लड्डू स्वीकार करें।" तब भगवान् ने उस सुन्दर मूल्यवान् पात्र में वे मट्ठा और लड्डू स्वीकार किये। स्वीकार कर उनका भोजन किया। तब उन दोनो

सेलमये पत्ते मन्थं च मधुपिण्डिकं च, पटिग्गहेत्वा च परिभुञ्जि। अथ खो तपुस्सभल्लिका वाणिजा भगवन्तं ओनीतपत्तपाणिं विदित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोचुं—"एते मयं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छाम धम्मं च, उपासके नो भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेते सरणं गते" ति।

ते च लोके पठमं उपासका अहेसुं द्वेवाचिका।

राजायतनकथा निट्ठिता॥

५. ब्रह्मयाचनकथा

७. अथ खो भगवा सत्ताहस्स अच्चयेन तम्हा समाधिम्हा वुट्ठहित्वा राजायतनमूला येन अजपालनिग्रोधो तेनुपसङ्कमि। तत्र सुदं भगवा अजपालनिग्रोधमूले विहरति। अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"अधिगतो खो म्यायं धम्मो गम्भीरो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो। आलयरामा खो पनायं पजा आलयरता आलयसम्मुदिता। आलयरामाय खो पन पजाय [R.5] आलयरताय आलयसम्मुदिताय दुद्दसं इदं ठानं यदिदं इदप्पच्चयतापटिच्चसमुप्पादो; इदं पि खो ठानं सुदुद्दसं यदिदं सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं। अहं चेव खो पन धम्मं देसेय्यं, परे च मे न आजानेय्युं, सो ममस्स किलमथो, सा ममस्स विहेसा" ति। अपिस्सु भगवन्तं इमा अनच्छरिया गाथायो पटिभंसु पुब्बे अस्सुतपुब्बा—

व्यापारियों ने भगवान् को भोजन के बाद, पात्र से हाथ हटाया हुआ देखकर, भगवान् के चरणों में सिर झुकाते हुए उन से यो निवेदन किया—"भन्ते! हम दोनों भगवान् की शरण में जाते हैं और आपके द्वारा उपदिष्ट धर्म की शरण में जाते हैं। आज से आप हम दोनों को अञ्जलिबद्ध यावज्जीवन प्राण रहने तक अपना उपासक मानें।"

और संसार मे वे ही दोनों बनजारे दो वचनों (बुद्ध और धर्म) से **प्रथम उपासक** (सेवक) कहलाये।

राजायतनकथा पूर्ण।।

५. ब्रह्मयाचनकथा

७. तब भगवान्, वहाँ भी एक सप्ताह का समय बीतने के बाद, उस समाधि से उठकर पुनः जहाँ अजपाल नामक बरगद का वृक्ष था वहाँ पहुँचे। भगवान् उस अजपाल वृक्ष के नीचे पुनः एकान्त में साधनारत हो गये। वहाँ साधनारत भगवान् के मन में यह विचार उठा—"मैंने यह गम्भीर, कठिनता से साक्षात्करणीय (दुर्दश) एव कठिनाई से बोधगम्य (दुरनुबोध), शान्त, उत्तम, तर्क से अखण्डनीय, निपुण एव पण्डितों द्वारा ही समझने योग्य धर्म प्राप्त तो कर लिया; परन्तु इस धर्म का जिसको उपदेश करना है वह जनता कामतृष्णा से ही तृप्त रहती हुई कामभोगों के आस्वाद मे ही प्रसन्नता अनुभव कर रही है। कामभोगों मे लिप्त इस जनता के लिये यह 'प्रत्ययसापेक्ष उत्पत्ति' (प्रतीत्यसमुत्पाद) का सिद्धान्त समझ पाना दुरूह ही होगा। साथ ही वह स्थान पाना तो और भी कठिन होगा जिसे सभी सस्कारो का प्रशमन, सभी मानसिक ऊहापोहों का परित्याग, तृष्णाक्षय, वैराग्य, दुःखनिरोध तथा निर्वाण कहा जाता है। किसी तरह मैं उसे धर्मोपदेश करूँ और वह उसे समझ ही न पावे तो यह भी मेरे लिये मानसिक कष्ट ही होगा कि मैंने धर्मोपदेश किया भी परन्तु श्रोता को समझ मे ही न आया।

"किच्छेन मे अधिगतं हलं दानि पकासितुं।
रागदोसपरेतेहि नायं धम्मो सुसम्बुधो॥
पटिसोतगामिं निपुणं गम्भीरं दुद्दसं अणुं। [B.6]
रागरत्ता न दक्खन्ति तमोखन्धेन आवुटा" ॥ ति॥

इति ह भगवतो पटिसञ्चिक्खतो अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमति, नो धम्मदेसनाय।

८. अथ खो ब्रह्मुनो सहम्पतिस्स भगवतो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय एतदहोसि— "नस्सति वत भो लोको, विनस्सति वत भो लोको, यत्र हि नाम तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमति, नो धम्मदेसनाया" ति। अथ खो ब्रह्मा [N.7] सहम्पति—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य एवमेव—ब्रह्मलोके अन्तरहितो भगवतो पुरतो पातुरहोसि। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा दक्खिणजाणुमण्डलं पठवियं निहन्त्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"देसेतु, भन्ते, भगवा धम्मं, देसेतु सुगतो धम्मं। सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति, भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो" ति। इदमवोच ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वान अथापरं एतदवोच—

"पातुरहोसि मगधेसु पुब्बे धम्मो असुद्धो समलेहि चिन्तितो।
अपापुरेतं अमतस्स द्वारं सुणन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं॥

इस तरह यह मेरे लिये यह उद्वेग–(विक्षेप–) कारक बात ही होगी।" उन्हें उस समय इसी विचार से सम्बद्ध ये गाथाएँ ध्यान में आयीं–

"जिस धर्मज्ञान को मैंने इतनी कठिनता से प्राप्त किया है उसे ऐसे किसी दूसरे को सहजता से समझा देना सरल नहीं है जो अपने चित्त को रागद्वेष में लिप्त किये बैठा है।।

क्योंकि यह धर्म तो अतिगम्भीर है, प्रतिस्रोतोगामी (संसार से विपरीत धारा में चलने वाला), दुःखेन साक्षात्करणीय तथा सूक्ष्म है। इसे सांसारिक माया–मोह में लिप्त एवं अज्ञानान्धकार से आवृत्त जनता कहाँ समझ पायगी!"

भगवान् के चित्त में ऐसा विचार उत्पन्न होने के कारण, उनका चित्त धर्म–प्रचार की तरफ न झुककर अल्प–उत्सुकता (धर्म–प्रचार में उपेक्षा) की तरफ मुड़ गया।

८. तब भगवान् के धर्मोपदेश के प्रति ऐसे विचार जानकर, सहम्पति ब्रह्मा ने सोचा–"अरे, भगवान् के ऐसे निश्चय से तो धर्मप्राण जनता का विनाश ही हो जायगा! भगवान् की धर्मोपदेश के प्रति यह उपेक्षा अनुचित है। इन्हें धर्मप्राण जनता के हित में धर्मोपदेश के प्रति उत्साह रखना ही उचित होगा।" तब ब्रह्मा सहम्पति, जैसे कोई बलवान् पुरुष सिकुडी हुई बाहु को फैला दे या फैली हुई बाहु को समेट ले, वैसे ही ब्रह्मलोक में अन्तर्हित हो, भगवान् के सम्मुख प्रकट हुए। वहाँ सहम्पति ब्रह्मा ने अपना अङ्गवस्त्र एक कन्धे पर कर, दक्षिण जानु को पृथ्वी पर टिका कर जहाँ भगवान् विराजमान थे उधर हाथ जोड़कर भगवान् से निवेदन किया–"भन्ते! आप धर्मप्राण जनता को धर्मोपदेश करें; क्योंकि लोक में अल्प चित्तविकार वाले धार्मिक जन भी हैं, यह धर्मोपदेश न सुनने से उनकी बहुत हानि होगी। अतः आप उपदेश करें। धर्म को सुनने वालों की कोई कमी नहीं है।"–ब्रह्मा सहम्पति ने यह कहा।

इसके साथ ही उसने यह भी कहा–

"सेले यथा पब्बतमुद्धनिट्ठितो यथापि पस्से जनतं समन्ततो।
तथूपमं धम्ममयं, सुमेध, पासादमारुय्ह समन्तचक्खु॥
[R.6] "सोकावतिण्णं जनतमपेतसोको अवेक्खस्सु जातिजराभिभूतं।
[B.7] उट्ठेहि वीर विजितसङ्गाम सत्थवाह अनण, विचर लोके।
देसस्सु भगवा धम्मं अञ्ञातारो भविस्सन्ती"॥ ति॥

एवं वुत्ते भगवा ब्रह्मानं सहम्पतिं एतदवोच—"मय्हं पि खो, ब्रह्मे, एतदहोसि—'अधिगतो खो म्यायं धम्मो गम्भीरो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो। आलयरामा खो पनायं पजा आलयरता आलयसम्मुदिता। आलयरामाय खो पन पजाय आलयरताय आलयसम्मुदिताय दुद्दसं इदं ठानं यदिदं इदप्पच्चयतापटिच्च-समुप्पादो; इदं पि खो ठानं सुदुद्दसं यदिदं सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं। अहं चेव खो पन धम्मं देसेय्यं, परे च मे न आजानेय्युं, सो ममस्स किलमथो, सा ममस्स विहेसा' ति। अपिस्सु मं, ब्रह्मे, इमा अनच्छरिया गाथायो पटिभंसु पुब्बे अस्सुतपुब्बा—

[N.8] 'किच्छेन मे अधिगतं हलं दानि पकासितुं।
रागदोसपरेतेहि नायं धम्मो सुसम्बुधो॥
पटिसोतगामिं निपुणं गम्भीरं दुद्दसं अणुं।
रागरत्ता न दक्खन्ति तमोखन्धेन आवुटा'॥ ति॥

इति ह मे, ब्रह्मे, पटिसञ्चिक्खतो अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमति नो धम्मदेसनाया" ति।

दुतियं पि खो ब्रह्मा सहम्पति भगवन्तं एतदवोच—"देसेतु, भन्ते, भगवा धम्मं, देसेतु सुगतो धम्मं; सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति, भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो" ति। इदमवोच ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वान अथापरं एतदवोच—

"मगधदेश में पहले मलिनचित्त साधकों द्वारा चिन्तित धर्म प्रकट किया गया था। परन्तु अब धर्मप्रिय जनता निर्मलचित्त आप द्वारा साक्षात्कृत अमृतमय धर्म का श्रवण करे।।

"अतः हे सुमेध! (स्वच्छबुद्धे!) सर्वत्र समान दृष्टि रखने वाले आप इस दया करने योग्य एवं जन्म मरण से अभिभूत जनता को धर्ममय पर्वत पर चढ़ कर उसी तरह देखें जैसे कोई ऊँचे महल पर चढ़ा हुआ आदमी नीचे भूमि पर चारों ओर खड़े हुए लोगों को करुणामय दृष्टि से देखा करता है।।

"हे शोकरहित! हे संग्रामजित्! हे वीर! हे सार्थवाह! हे ऋणवान् को ऋणरहित करने वाले! आप (धर्मोपदेशहेतु) सन्नद्ध हों और लोक में विचरण करें। अपना धर्मोपदेश प्रारम्भ करें। उसे सुनने वाले भी मिलेगें ही।"

ऐसा निवेदन किये जाने पर भगवान् उस सहम्पति ब्रह्मा से यों बोले—"भो ब्रह्मन्! मुझे भी पहले यही विचार उत्पन्न हुआ था कि 'जिस धर्मज्ञान को मैंने इतनी कठिनता से प्राप्त किया है उसे किसी दूसरे को सहजता से समझा देना सरल कार्य नहीं है।....पूर्ववत्. ..तब यह मेरे लिये उद्वेगकर

''पातुरहोसि मगधेसु पुब्बे धम्मे असुद्धो समलेहि चिन्तितो। [B.8]
अपापुरेतं अमतस्स द्वारं सुणन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं॥
''सेले यथा पब्बतमुद्धनिट्ठितो यथापि पस्से जनतं समन्ततो।
तथूपमं धम्ममयं सुमेध पासादमारुय्ह समन्तचक्खु॥
''सोकावतिण्णं जनतमपेतसोको अवेक्खस्सु जातिजराभिभूतं।
उट्ठेहि वीर विजितसङ्गाम सत्थवाह अनण विचर लोके।
देसस्सु भगवा धम्मं अञ्ञातारो भविस्सन्ती''॥ ति॥

दुतियं पि खो भगवा ब्रह्मानं सहम्पतिं एतदवोच— ''मय्हं पि खो, ब्रह्मे, एतदहोसि—'अधिगतो खो म्यायं गम्भीरो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो। आलयरामा खो पनायं पजा आलयरता आलयसम्मुदिता। आलयरामाय खो पन पजाय आलयरताय आलयसम्मुदिताय दुद्दसं इदं ठानं यदिदं इदप्पच्चयतापटिच्चसमुप्पादो; इदं पि खो ठानं सुदुद्दसं यदिदं सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं। अहं चेव खो पन धम्मं देसेय्यं, परे च मे न आजानेय्युं, सो ममस्स किलमथो, सा ममस्स विहेसा' ति। अपिस्सु मं, ब्रह्मे, इमा अनच्छरिया गाथायो पटिभंसु पुब्बे अस्सुतपुब्बा—

'किच्छेन मे अधिगतं हलं दानि पकासितुं। [N.9]
रागदोसपरेतेहि नायं धम्मो सुसम्बुधो॥
पटिसोतगामिं निपुणं गम्भीरं दुद्दसं अणुं।
रागरत्ता न दक्खन्ति तमोखन्धेन आवुटा'॥ ति॥

इति ह मे, ब्रह्मे, पटिसञ्चिक्खतो अप्पोस्सुकताय चित्तं नमति, नो धम्म- [B.9]
देसनाया'' ति।

ततियं पि खो ब्रह्मा सहम्पति भगवन्तं एतदवोच—''देसेतु, भन्ते, भगवा धम्मं, देसेतु सुगतो धम्मं। सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति, भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो'' ति। इदमवोच ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वान अथापरं एतदवोच—

''पातुरहोसि मगधेसु पुब्बे धम्मो असुद्धो समलेहि चिन्तितो।
अपापुरेतं अमतस्स द्वारं सुणन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं॥
''सेले यथा पब्बतमुद्धनिट्ठितो यथापि पस्से जनतं समन्ततो।

तथा दुःखप्रद ही होगा।...अज्ञानान्धकारावृत्त जनता कहाँ समझ पायगी! यों चिन्तन करते हुए मुझको धर्मोपदेश के प्रति उपेक्षा ही हुई, मेरा उत्साह नहीं बढ़ा।''

दूसरी बार भी ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् से निवेदन किया—....पूर्ववत्....।

दूसरी बार भगवान् ने भी सहम्पति ब्रह्मा को बताया—. ..पूर्ववत्.....।

तीसरी बार भी ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् से निवेदन किया—....पूर्ववत् .. ।

तथूपमं धम्ममयं, सुमेध, पासादमारुय्ह समन्तचक्खु॥
"सोकावतिण्णं जनतमपेतसोको अवेक्खस्सु जातिजराभिभूतं।
उट्ठेहि वीर विजितसङ्गाम सत्थवाह, अनण विचर लोके।
देसस्सु भगवा धम्मं अञ्ञातारो भविस्सन्ती'॥ ति॥

९. अथ खो भगवा ब्रह्मुनो च अज्झेसनं विदित्वा सत्तेसु च कारुञ्ञतं पटिच्च बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेसि। अद्दसा खो भगवा बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेन्तो सत्ते अप्परजक्खे महारजक्खे तिक्खिन्द्रिये मुदिन्द्रिये स्वाकारे द्वाकारे सुविञ्ञापये दुविञ्ञापये, अप्पेकच्चे परलोकवज्जभयदस्साविनो विहरन्ते, अप्पेकच्चे न परलोकवज्जभयदस्साविनो विहरन्ते। सेय्यथापि नाम उप्पलिनियं वा पदुमिनियं वा पुण्डरीकिनियं वा अप्पेकच्चानि
[B.10] उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदका-
[N.10] नुग्गतानि अन्तोनिमुग्गपोसीनि, अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि समोदकं ठितानि, अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदका अच्चुग्गम्म ठितानि अनुपलित्तानि
[R.7] उदकेन; एवमेवं भगवा बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेन्तो अद्दस सत्ते अप्परजक्खे महारजक्खे तिक्खिन्द्रिये मुदिन्द्रिये स्वाकारे द्वाकारे सुविञ्ञापये दुविञ्ञापये, अप्पेकच्चे परलोक-वज्जभयदस्साविनो विहरन्ते, अप्पेकच्चे न परलोकवज्जभयदस्साविनो विहरन्ते; दिस्वान ब्रह्मानं सहम्पतिं गाथाय अज्झभासि—

"अपारुता तेसं अमतस्स द्वारा ये सोतवन्तो पमुञ्चन्तु सद्धं।
विहिंससञ्ञी पगुणं न भासिं धम्मं पणीतं मनुजेसु ब्रह्मे"॥ ति॥

---

९. तब भगवान् ने ब्रह्मा सहम्पति के हार्दिक आशय को समझकर प्राणियों पर दया दिखाते हुए बुद्धचक्षु (ज्ञानचक्षु) से लोक पर दृष्टिपात किया। ऐसा करते हुए भगवान् ने देखा कि लोक में कुछ प्राणी अल्प चित्तविकार वाले हैं तो कुछ अधिक चित्तविकार वाले। कोई मृदु इन्द्रिय वाले तो कुछ तीक्ष्ण इन्द्रिय वाले, कोई सरल स्वभाव वाले तो कोई दुष्ट स्वभाव वाले, कोई कृत उपदेश को सरलता से समझने वाले, या कोई कठिनता से समझने वाले थे। उनमें कुछ ऐसे भी प्राणी थे जो परलोक (नरक के दण्ड) से भय मानकर यथाशक्ति सदाचाररत रहते थे, कुछ लोगों को परलोक से कोई भय ही न था। जैसे उत्पलसमुदाय, पद्मसमुदाय या पुण्डरीकसमुदाय वाली पुष्करिणियों में कितने ही उत्पल, पद्म या पुण्डरीक जल में उत्पन्न हुए, जल में बंधे हुए जल से बाहर न निकलकर जल में डूबे हुए ही पोषित होते रहते हैं तो कुछ जल में उत्पन्न होकर तथा जल में सम्पृक्त रहते हुए उदक के समान ही रहते हुए पोषित होते हैं। तथा कोई कोई उत्पल पद्म या पुण्डरीक उदक में उत्पन्न तथा उदक से सम्पृक्त रहकर भी उदक से बहुत ऊपर निकल कर (उदक से अलिप्त रहकर) खड़े होते हैं। इसी तरह भगवान् ने अपने ज्ञानचक्षु से लोक को देखा जहाँ कुछ प्राणी अल्प चित्तविकार....पूर्ववत्....यथाशक्ति सदाचाररत थे...भय न था। उन्हें देखकर भगवान् ने ब्रह्मा सहम्पति को यह आश्वासन दिया—

"हे ब्रह्मन्! उन लोगों के लिये अब अमृतद्वार खुल गया ही समझो, जो कान (ध्यान) लगाकर मेरे उपदेशों को सुनेंगे और मुझ पर श्रद्धा की वर्षा करते रहेंगे। मैं तो (पहले) अपने लिये होने वाले वृथा कष्ट को ध्यान में रख कर ही प्राणियों को इस उत्तम धर्म का उपदेश न करने की बात कह रहा था।"

अथ खो ब्रह्मा सहम्पति "कतावकासो खोम्हि भगवता धम्मदेसनाया" ति भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायि॥

ब्रह्मयाचनकथा निट्ठिता॥

६. पञ्चवग्गियकथा

१०. अथ खो भगवतो एतदहोसि—"कस्स नु खो अहं पठमं धम्मं देसेय्यं? को इमं धम्मं खिप्पमेव आजानिस्सती" ति? अथ खो भगवतो एतदहोसि—"अयं खो **आळारो कालामो** पण्डितो ब्यत्तो मेधावी दीघरत्तं अप्परजक्खजातिको; यन्नूनाहं आळारस्स कालामस्स पठमं धम्मं देसेय्यं, सो इमं धम्मं खिप्पमेव आजानिस्सती" ति। अथ खो अन्तरहिता देवता भगवतो आरोचेसि—"सत्ताहकालङ्कतो आळारो कालामो" ति। अथ खो भगवतो [B.11] एतदहोसि— "महाजानियो खो आळारो कालामो; सचे हि सो इमं धम्मं सुणेय्य, खिप्पमेव आजानेय्या" ति। (१)

अथ खो भगवतो एतदहोसि—"कस्स नु खो अहं पठमं धम्मं देसेय्यं? को इमं धम्मं खिप्पमेव आजानिस्सती" ति? अथ खो भगवतो एतदहोसि—"अयं खो **उद्दको रामपुत्तो** पण्डितो ब्यत्तो मेधावी दीघरत्तं अप्परजक्खजातिको; यन्नूनाहं उद्दकस्स रामपुत्तस्स पठमं धम्मं देसेय्यं, सो इमं धम्मं खिप्पमेव आजानिस्सती" ति। अथ खो अन्तरहिता देवता भगवतो आरोचेसि—"अभिदोसकालङ्कतो, भन्ते, उद्दको रामपुत्तो" ति। भगवतो पि खो ञाणं उदपादि—"अभिदोसकालङ्कतो उद्दको रामपुत्तो" ति।अथ खो भगवतो एतदहोसि—

तब ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् से उक्त आश्वासन पाकर समझ लिया कि भगवान् ने प्राणियों को धर्मोपदेश करने की स्वीकृति दे दी। अतः वे भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्हित हो गये।

ब्रह्मयाचनकथा समाप्त।।

६. पञ्चवर्गीयकथा

१०. तब भगवान् के मन में यह विचार आया—"मैं किस (अधिकारी जिज्ञासु) को सर्वप्रथम धर्मोपदेश करूँ जो इसे तत्काल (क्षिप्र) ही समझ ले।" फिर भगवान् को ध्यान आया कि "यह **आडार कालाम** तो पण्डित, व्यक्त (समझदार), चतुर, मेधावी एवं बहुत समय से निर्मलचित्त है, तो क्यों न मैं सर्वप्रथम आडार कालाम को ही इस धर्म की देशना करूँ; वह इसे तत्काल समझने की क्षमता रखता है!" उस समय किसी अप्रकट देवता ने भगवान् को बताया—"भन्ते! अभी एक सप्ताह पूर्व ही आडार कालाम का देहावसान हो चुका है।" यह सुनकर भगवान् को विचार हुआ "आडार कालाम बहुत विद्वान् था। वह यदि इस धर्म को सुनता तो बहुत शीघ्र हृदयङ्गम कर लेता।" (१)

तब भगवान् को मन में यह हुआ—"अब मैं किस को सर्वप्रथम इस धर्म की देशना करूँ....यह **उद्दक रामपुत्र** भी पण्डित, व्यक्त (सुलझे विचारों वाला), मेधावी एवं बहुत समय से निर्मलचित्त है, यदि इस उद्दकरामपुत्र को ही सर्वप्रथम इस धर्म की देशना की जाय तो वह भी इसे शीघ्र ही समझ सकता है।" तब फिर किसी अप्रकट देवता ने भगवान् को बताया—"उद्दक रामपुत्र का देहपात भी विगत सन्ध्या में ही हो चुका है।" साथ ही साथ भगवान् के भी ध्यान में आ गया कि "उद्दक रामपुत्त का देहावसान तो विगत सन्ध्या में ही हो चुका है।" तब भगवान् ने सोचा—"उद्दक

"महाजानियो खो उद्दको रामपुत्तो; सचे हि सो इमं धम्मं सुणेय्य, खिप्पमेव आजानेय्या" ति। (२)

अथ खो भगवतो एतदहोसि—"कस्स नु खो अहं पठमं धम्मं देसेय्यं? को [N.11] इमं धम्मं खिप्पमेव आजानिस्सती" ति? अथ खो भगवतो एतदहोसि—"बहूपकारा खो मे **पञ्चवग्गिया भिक्खू**, ये मं पधानपहितत्तं उपट्ठहिंसु; यन्नूनाहं पञ्चवग्गियानं भिक्खूनं [R.8] पठमं धम्मं देसेय्यं" ति। अथ खो भगवतो एतदहोसि—"कहं नु खो एतरहि पञ्चवग्गिया भिक्खू विहरन्ती" ति? अद्दसा खो भगवा दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन पञ्चवग्गिये भिक्खू बाराणसियं विहरन्ते इसिपतने मिगदाये। अथ खो भगवा उरुवेलायं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन बाराणसी तेन चारिकं पक्कामि। (३)

११. अद्दसा खो **उपको** आजीवको भगवन्तं अन्तरा च गयं अन्तरा च बोधिं अद्धानमग्गप्पटिपन्नं, दिस्वान भगवन्तं एतदवोच—"विप्पसन्नानि खो ते, आवुसो, इन्द्रियानि, परिसुद्धो छविवण्णो परियोदातो। कं सि त्वं, आवुसो, उद्दिस्स पब्बजितो? को वा ते सत्था? कस्स वा त्वं धम्मं रोचेसी" ति? एवं वुत्ते भगवा **उपकं** आजीवकं गाथाहि अज्झभासि—

[B.12] "सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्यं॥
"न मे आचरियो अत्थि सदिसो मे न विज्जति।
सदेवकस्मिं लोकस्मिं नत्थि मे पटिपुग्गलो॥
"अहं हि अरहा लोके अहं सत्था अनुत्तरो।

रामपुत्र भी अत्यधिक बुद्धिमान् था, यदि वह इस धर्म को सुनता तो वह भी इस धर्म को शीघ्र समझने की क्षमता रखता था।" (२)

तब भगवान् के मन में यह विचार उठा—"अब मैं किसे सर्वप्रथम धर्मोपदेश करूँ....।" तब भगवान् को यह ध्यान आया कि **पञ्चवर्गीय भिक्षुओं** ने मेरा बहुत साथ दिया था, उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को यदि मैं प्रथम धर्मदेशना करूँ तो वे भी इसे शीघ्र समझने की योग्यता रखते हैं।" भगवान् उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं के वर्तमान वास के विषय में ध्यान करने लगे तो उन्हें अपने अलौकिक ज्ञानचक्षु द्वारा ज्ञात हुआ कि वे इस समय वाराणसी के पास ऋषिपतन (सारनाथ) मृगदाव में साधनारत हैं। तब भगवान् उरुवेला में यथाभीष्ट साधना करने के बाद वाराणसी की ओर चारिकाहेतु चल पड़े। (३)

११. **उपक** नामक आजीवक ने भगवान् को गया और बोधिप्राप्तिस्थान के बीच मार्ग में चलते देखा। भगवान् को देखकर वह बोला—"आयुष्मन्! तुम्हारी इन्द्रियाँ प्रसन्न एवं उदार लग रही हैं! तुम्हारे शरीर की कान्ति भी परिशुद्ध तथा उज्ज्वल है! तुम किसको गुरु मानकर प्रव्रजित हुए हो! तुम्हारा गुरु कौन है? तुम किसका धर्म स्वीकार कर साधना कर रहे हो?" ऐसा पूछे जाने पर, भगवान् ने उपक आजीवक को इन गाथाओं के माध्यम से उत्तर दिया—

"मैं सबको पराजित करने वाला तथा सर्वज्ञ हूँ एवं सभी धर्मों से निर्लिप्त हूँ। मैं सर्वत्यागी होकर अपनी भवतृष्णाओं को क्षीण कर डालने के कारण विमुक्त हो चुका हूँ। मैं तो स्वयं ज्ञान का साक्षात्कार कर यहाँ तक पहुँचा हूँ। अतः मैं किसको अपना गुरु बताऊँ!!

एकोम्हि सम्मासम्बुद्धो सीतिभूतोस्मि निब्बुतो॥
"धम्मचक्कं पवत्तेतुं गच्छामि कासिनं पुरं।
अन्धीभूतस्मिं लोकस्मिं आहञ्छं अमतदुन्दुभिं"॥ ति॥

"यथा खो त्वं, आवुसो, पटिजानासि, अरहसि अनन्तजिनो" ति।

"मादिसा वे जिना होन्ति ये पत्ता आसवक्खयं।
जिता मे पापका धम्मा तस्माहमुपक जिनो"॥ ति॥

एवं वुत्ते **उपको** आजीवको "हुवेय्यावुसो" ति वत्वा, सीसं ओकम्पेत्वा, उम्मग्गं गहेत्वा पक्कामि। (४)

१२. अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन वाराणसी इसिपतनं मिगदायो, येन **पञ्चवग्गिया भिक्खू** तेनुपसङ्कमि। अद्दसंसु खो पञ्चवग्गिया भिक्खू भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं; दिस्वान अञ्ञमञ्ञं कतिकं सण्ठपेसुं—"अयं, आवुसो, समणो गोतमो [R.9] आगच्छति, बाहुल्लिको पधानविब्भन्तो आवत्तो बाहुल्लाय। सो नेव अभिवादेतब्बो, [N.12] न पच्चुट्ठातब्बो, नास्स पत्तचीवरं पटिग्गहेतब्बं; अपि च खो आसनं ठपेतब्बं, सचे सो आकङ्खिस्सति निसीदिस्सती" ति। यथा यथा खो भगवा पञ्चवग्गिये भिक्खू उपसङ्कमति, तथा तथा ते पञ्चवग्गिया भिक्खू नासक्खिंसु सकाय कतिकाय सण्ठातुं। असण्ठहन्ता [B.13]

"मेरा कोई गुरु नहीं है। इस संसार में मेरे समान कोई नहीं है। देवताओं सहित इस लोक में मेरा प्रतियोगी (समानता रखने वाला) अन्य कोई नहीं।।

"मैं ही संसार में ज्ञानी हूँ। मैं ही श्रेष्ठ उपदेशक हूँ। मैं ही एकाकी सम्यक्सम्बुद्ध बनकर शान्ति तथा निर्वाण प्राप्त कर सका हूँ।।

"मैं धर्म का चक्र चलाने (धर्म को सब तरफ फैलाने) के लिये काशी नगरी की तरफ जा रहा हूँ। (वहाँ जाकर) अविद्या के कारण अन्धे से हुए इस लोक में अमृत (निर्वाण) का नगाड़ा (दुन्दुभि) बजाऊँगा।।"

(उपक बोला—) "आयुष्मन्! तुम तो ऐसा कह रहा हो मानो तुम ही अनन्त जिन (विजयी बुद्ध) हो!"

(भगवान् बोले—) "मेरे ही जैसे लोग 'जिन' हुआ करते हैं जिनके चित्तमल (आश्रव) क्षीण हो चुके हैं।

उपक! मैंने अपने सभी पापमय अकुशल धर्मों को जीत लिया है (विनष्ट कर दिया है). अतः मैं ही 'जिन' हूँ'।।

भगवान् द्वारा यह उत्तर दिये जाने पर, वह उपक आजीवक "होगे तुम वैसे, आयुष्मन्!"— यह कहकर, उपेक्षापूर्वक शिर हिलाते हुए पुनः अपने रास्ते आगे चल दिया।

१२. तब भगवान् क्रमशः चारिका करते हुए, जहाँ वाराणसी (के पास) ऋषिपतन मृगदाव (मृगारण्य) था, जहाँ पञ्चवर्गीय भिक्षु (साधनारत) थे वहाँ, पहुँचे। पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने भगवान् को आते हुए दूर से ही देख लिया। देखकर उन पाँचों ने परस्पर मन्त्रणा (कतिका) की—"यह साधना से पतित हुआ, कभी इधर या उधर की साधनाओं में मन लगाने वाला (=बाहुल्लिक), एवं वास्तविक साधना से विरत होकर अब भी इधर उधर की साधनाओं में ही लगा रहने वाला श्रमण गौतम आ रहा है। न हमें इसका अभिवादन करना है, न प्रत्युत्थान और न आने पर आगे बढ़कर (आदरवश) इसका

भगवन्तं पच्चुग्गन्त्वा एको भगवतो पत्तचीवरं पटिग्गहेसि, एको आसनं पञ्ञापेसि, एको पादोदकं, एको पादपीठं, एको पादकठलिकं उपनिक्खिपि। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने; निसज्ज खो भगवा पादे पक्खालेसि। अपिस्सु भगवन्तं नामेन च आवुसोवादेन च समुदाचरन्ति। एवं वुत्ते भगवा पञ्चवग्गिये भिक्खू एतदवोच—"मा, भिक्खवे, तथागतं नामेन च आवुसोवादेन च समुदाचरथ। अरहं, भिक्खवे तथागतो सम्मासम्बुद्धो; ओदहथ, भिक्खवे, सोतं, अमतमधिगतं, अहमनुसासामि, अहं धम्मं देसेमि। यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जामाना न चिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठे व धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा" ति।

एवं वुत्ते पञ्चवग्गिया भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"ताय पि खो त्वं, आवुसो गोतम, चरियाय, ताय पटिपदाय, ताय दुक्करकारिकाय नेवज्झगा उत्तरिमनुस्सधम्मं अलमरियञाणदस्सनविसेसं, किं पन त्वं एतरहि, बाहुल्लिको पधानविब्भन्तो आवत्तो बाहुल्लाय, अधिगमिस्ससि उत्तरिमनुस्सधम्मं अलमरियञाणदस्सनविसेसं" ति? एवं वुत्ते भगवा पञ्चवग्गिये भिक्खू एतदवोच—"न, भिक्खवे, तथागतो बाहुल्लिको, न पधानविब्भन्तो, न आवत्तो बाहुल्लाय; अरहं, भिक्खवे, तथागतो सम्मासम्बुद्धो। ओदहथ, भिक्खवे, सोतं, अमतमधिगतं, अहमनुसासामि, अहं धम्मं देसेमि। यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमाना नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा" ति।

पात्र चीवर ही लेना है। केवल एक आसन बिछा दें, उस पर इसे बैठना होगा तो बैठेगा।" परन्तु जैसे जैसे भगवान् समीप आते गये वैसे वैसे वे पञ्चवर्गीय भिक्षु अभी पीछे स्थिर की गयी मन्त्रणा पर स्थिर नहीं रह सके और (अन्त में भगवान् के उस आश्रम पर पहुँच जाने पर) एक ने (आदरवश) भगवान् का पात्र–चीवर उनके हाथ से लिया, एक ने उनके लिये आसन बिछाया, एक ने पैर धोने के लिये जल तथा पैर रखने का पीढ़ा एवं पैर रगड़ने की लकड़ी पास लाकर रख दी। भगवान् बिछे आसन पर बैठे, बैठकर भगवान् ने अपने पैर धोये। परन्तु उस समय भी वे लोग भगवान् को उनके पैतृक नाम तथा 'आयुष्मन्' कहकर ही सम्बोधित कर रहे थे। यह सुनकर भगवान् ने उनसे कहा—"भिक्षुओ! तथागत को पैतृक नाम तथा 'आयुष्मन्' कहकर सम्बोधन नहीं करना चाहिये। भिक्षुओ! मैं अर्हत् (ज्ञानी) सम्यक्सम्बुद्ध हो चुका हूँ। भिक्षुओ! ध्यान दो, अपना चित्त इधर लगाओ! मैंने जिस 'अमृत' को पा लिया है उसे मैं तुम्हें बताऊँगा, मैं तुम्हें उस धर्म की देशना करूँगा। इस देशना के अनुसार आचरण करने पर, जिसके लिये कुलपुत्र घर से बेघर होकर प्रव्रजित होते हैं उस अनुपम ब्रह्मचर्य–(धर्मसाधना)सीमा को इसी जन्म में शीघ्र ही स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, उसे अधिगत कर साधना का फल प्राप्त कर सकोगे।"

ऐसा कहे जाने पर उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने उत्तर दिया—"आयुष्मन् गौतम! जब तुम उस साधना के, उस धारणा के, उस दुष्कर तपस्या के करने पर भी आर्यों के ज्ञानदर्शन की परा काष्ठा की विशेषता या उत्तरमनुष्य धर्म (दिव्यशक्ति) नहीं प्राप्त कर सके तो फिर अब साधनाभ्रष्ट होकर, इधर उधर की साधनाओं में मन लगाकर तुम उस आर्यज्ञानदर्शन की परा काष्ठा युक्त उत्तरमनुष्य धर्म को क्या प्राप्त कर पाये होगे!" यह सुनकर भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! तथागत इधर उधर की

दुतियं पि खो पञ्चवग्गिया भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं....पे०....। दुतियं पि खो भगवा पञ्चवग्गिये भिक्खु एतदवोच....पे०...। ततियं पि खो पञ्चवग्गिया भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"ताय पि खो त्वं, आवुसो गोतम, चरियाय, ताय पटिपदाय, ताय दुक्करकारिकाय नेवज्झगा उत्तरिमनुस्सधम्मं अलमरियञाणदस्सनविसेसं, किं पन त्वं एतरहि, [R.10] बाहुल्लिको पधानविब्भन्तो आवत्तो बाहुल्लाय, अधिगमिस्ससि उत्तरिमनुस्सधम्मं [B.14] अलमरियञाणदस्सनविसेसं" ति? एवं वुत्ते भगवा पञ्चवग्गिये भिक्खू एतदवोच— "अभिजानाथ मे तुम्हे, भिक्खवे, इतो पुब्बे एवरूपं भासितमेतं" ति? "नो हेतं, भन्ते" ति। "अरहं, भिक्खवे, तथागतो सम्मासम्बुद्धो; ओदहथ भिक्खवे सोतं, अमतमधिगतं, अहमनुसासामि, अहं धम्मं देसेमि। यथानुसिट्ठं तथा पटिपज्जमाना नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं [N.13] दिट्ठे व धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा" ति।

असक्खि खो भगवा पञ्चवग्गिये भिक्खू सञ्ञापेतुं। अथ खो पञ्चवग्गिया भिक्खू भगवन्तं सुस्सूसिंसु, सोतं ओदहिंसु, अञ्ञाय चित्तं उपट्ठापेसुं।

७. धम्मचक्कप्पवत्तनं

१३. अथ खो भगवा पञ्चवग्गिये भिक्खू आमन्तेसि—"द्वेमे, भिक्खवे, अन्ता पब्बजितेन न सेवितब्बा। कतमे द्वे? यो चायं कामेसु कामसुखल्लिकानुयोगो हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थसंहितो, यो चायं अत्तकिलमथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थसंहितो। एते खो, भिक्खवे, उभो अन्ते अनुपगम्म, मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा, चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति।

साधनाओं में भटके हुए नहीं है, न तुम्हारी उक्त साधना से ही भ्रष्ट हैं, तथागत तो अब सम्यक्सम्बुद्ध हो चुके हैं, भिक्षुओ! ध्यान दो....पूर्ववत्....साधना का फल प्राप्त कर सकोगे।"

दूसरी बार भी पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने यह कहा—....पूर्ववत्.....। भगवान् ने दूसरी बार भी वही उत्तर दिया—....पूर्ववत्....। तीसरी बार भी उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने अपनी वही पूर्वोक्त बात दुहरायी तब भगवान् ने (अपनी बात को कुछ अधिक स्पष्ट करते हुए) कहा—"भिक्षुओ! अच्छा यह बताओ कि क्या तुम्हें स्मरण है कि मैंने इससे पूर्व तुम लोगों से अपने विषय में ऐसा कुछ कहा था?" "नहीं, भन्ते!" "तो फिर तुम समझ लो कि तथागत वस्तुतः ही सम्यक्सम्बुद्ध हो चुके हैं....पूर्ववत्....साधना का फल प्राप्त कर सकोगे।"

यों भगवान् उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को अपनी बात पर सहमत कर पाये। तब उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने भगवान् की बात सुनने की इच्छा प्रकट की, तथा उनके कथन पर ध्यान देना प्रारम्भ किया एवं उस ज्ञान को सुनने लिये उत्सुकता प्रकट की।

७. धर्मचक्रप्रवर्तन

१३. तब भगवान् ने उन भिक्षुओं को समझाना प्रारम्भ किया—"भिक्षुओ! किसी भी प्रव्रजित (संन्यासी) को दो अन्तों (=सीमाओं=अतियों) का बहुत अधिक उपयोग नहीं करना चाहिये। कौन से दो? (१) प्रथम यह कि हीन (निकृष्ट) ग्राम्य (अलक्ष्मीकर), मूर्खों द्वारा ही करणीय तथा अनार्यजनों द्वारा सेवित कामवासनाओं में अत्यधिक लिप्त रहना (=कामसुखल्लिकानुयोग); (२) द्वितीय यह कि जो

''कतमा च सा, भिक्खवे, मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा, चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति ? अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि। अयं खो सा, भिक्खवे, मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा, चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति।

१४. ''इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खं अरियसच्चं। जाति पि दुक्खा, जरा पि दुक्खा, व्याधि पि दुक्खो, मरणं पि दुक्खं, अप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो, [B.15] यं पिच्छं न लभति तं पि दुक्खं। सङ्खित्तेन, पञ्चुपादानक्खन्धा दुक्खा।

''इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं—यायं तण्हा पोनोब्भविका नन्दिरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी, सेय्यथीदं—कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा।

''इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं—यो तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधो, चागो, पटिनिस्सग्गो, मुत्ति, अनालयो।

''इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं—अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि।

दुःखमय, अपने लिये कष्टकर, मूर्खों द्वारा ही करणीय, अनार्यजनसेवित तथा अत्यधिक अनर्थकारी क्लिष्ट तपस्याओं में लगे रहना (आत्मक्लमथानुयोग)। इन दोनों ही तरह की अतियों (पराकाष्ठाओं) की उपेक्षा कर तथागत ने मध्यम मार्ग की गवेषणा की है जो कि आखें खोल देने वाला एवं विशिष्ट ज्ञानदायक है; तथा शान्ति, अभिज्ञा, बुद्धत्व एवं निर्वाण की तरफ बढ़ाने वाला है।

वह मध्यम मार्ग....कौन सा है? यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग। जैसे— १. सम्यग्दृष्टि, २. सम्यक्सङ्कल्प, ३. सम्यग्वाक्, ४. सम्यक्कर्मान्त, ५. सम्यगाजीव, ६. सम्यग्व्यायाम, ७. सम्यक्स्मृति एवं ८. सम्यक्समाधि। भिक्षुओ! यह है वह सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा गवेषित मध्यम मार्ग जो कि आँखें खोल देने वाला एवं विशिष्ट ज्ञानदायक है तथा शान्ति, अभिज्ञा, बुद्धत्व एवं निर्वाण की तरफ बढाने वाला है।

१४. ''भिक्षुओ! यह 'दुःख' आर्य सत्य है। इस संसार में उत्पन्न होना (जन्म लेना) दुःख है, जरा (वृद्धावस्था) दुःख है, मरण भी दुःख है, शोक (प्रियवस्तु के वियोग से होने वाली मानसिक व्यथा) रोना–कलपना, दुःखी होना, चिन्तित तथा उदास होना भी दुःख है, अप्रिय विषयों से संयोग भी दुःख है, प्रिय विषयों से वियोग भी दुःख है, एवं जिस किसी प्रिय वस्तु का, चाहते हुए भी, न मिलना दुःख है। संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि ये पाँचों (रूप, वेदना आदि) उपादानस्कन्ध ही दुःख हैं।

''और, भिक्षुओ! यह 'दुःखसमुदय' (दुःखोत्पत्ति का कारण) भी आर्य सत्य है। यह जो संसार में बारम्बार जन्म दिलाने वाली, उसमें आसक्ति या राग की उत्पादिका, तथा जहाँ तहाँ आनन्द (सुख) का अनुभव कराने वाली तृष्णा है (यही दुःखसमुदय है)। यह तृष्णा तीन प्रकार की है; जैसे—१. कामभोगतृष्णा, २. भव (जन्म)तृष्णा एवं ३. विभव (नाश) की तृष्णा।

''भिक्षुओ! यह दुःखनिरोध आर्य सत्य है जो उपर्युक्त तृष्णा के निःशेषतः वैराग्य, निरोध, त्याग, परित्याग, मुक्ति एवं अनासक्ति (के रूप में प्रकट होता) है।

''और भिक्षुओ! इस दुःखनिरोध की तरफ ले जाने वाला मार्ग भी आर्यसत्य है इसे 'आर्य

१५. "इदं दुक्खं अरियसच्चं ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु [R.11] चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। तं खो पनिदं दुक्खं अरियसच्चं परिञ्ञेय्यं ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। [N.14] तं खो पनिदं दुक्खं अरियसच्चं परिञ्ञातं ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। (१)

"इदं दुक्खसमुदयं अरियसच्चं ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। तं खो पनिदं दुक्खसमुदयं अरियसच्चं पहातब्बं ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। तं खो पनिदं दुक्खसमुदयं अरियसच्चं पहीनं ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। (२)

"इदं दुक्खनिरोधं अरियसच्चं ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। तं [B.16] खो पनिदं दुक्खनिरोधं अरियसच्चं सच्छिकातब्बं ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। तं खो पनिदं दुक्खनिरोधं अरियसच्चं सच्छिकतं ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। (३)

"इदं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु

अष्टाङ्गिक मार्ग' कहते हैं। जैसे—१. सम्यग्दृष्टि, २. सम्यक्सङ्कल्प, ३. सम्यग्वाक्, ४. सम्यक्कर्मान्त, ५. सम्यगाजीव, ६. सम्यग्व्यायाम, ७. सम्यक्स्मृति एवं ८. सम्यक्समाधि।

१५. "भिक्षुओ! (क) 'यह दुःख आर्यसत्य है' (—ऐसा ज्ञान होने पर) पहले न सुने गये धर्मों के प्रति मेरी आँखें खुल गयीं, ज्ञान उत्पन्न हो गया, प्रज्ञा उत्पन्न हो गयी, विद्या उत्पन्न हो गयी, मेरे सामने आलोक (प्रकाश) फैल गया।

(ख) भिक्षुओ! 'यह दुःख आर्यसत्य परिज्ञेय है' (—ऐसा ज्ञान होने पर) पहले न सुने गये धर्मों के प्रति....(प्रकाश) फैल गया।

(ग) भिक्षुओ! 'यह दुःख आर्यसत्य परिज्ञात है' (—ऐसा ज्ञान होने पर) पहले न सुने गये धर्मों के प्रति....(प्रकाश) फैल गया। (१)

(क) "भिक्षुओ! 'यह दुःखसमुदय आर्यसत्य है' (—ऐसा ज्ञान होने पर)....पूर्ववत् . ..।

(ख) भिक्षुओ! 'यह दुःखसमुदय आर्यसत्य प्रहेय है' (—ऐसा ज्ञान होने पर)....।

(ग) भिक्षुओ! यह 'दुःखसमुदय आर्यसत्य प्रहीण है' (ऐसा ज्ञान होने पर)... । (२)

(क) "भिक्षुओ! 'यह दुःखनिरोध आर्यसत्य है' (—ऐसा ज्ञान होने पर)....।

(ख) भिक्षुओ! 'यह दुखनिरोध आर्यसत्य साक्षात्करणीय है' (—ऐसा ज्ञान होने पर). .।

धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। तं खो पनिदं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं भावेतब्बं ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। तं खो पनिदं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं भावितं ति मे, भिक्खवे, पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। (४)

१६. ''यावकीवं च मे, भिक्खवे, इमेसु चतूसु अरियसच्चेसु एवं तिपरिवट्टं द्वादसाकारं यथाभूतं ञाणदस्सनं न सुविसुद्धं अहोसि, नेव तावाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय—'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति पच्चञ्ञासिं। यतो च खो मे, भिक्खवे, इमेसु चतूसु अरियसच्चेसु एवं तिपरिवट्टं द्वादसाकारं यथाभूतं ञाणदस्सनं सुविसुद्धं अहोसि, अथाहं, भिक्खवे, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय— 'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति पच्चञ्ञासिं। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि—'अकुप्पा मे विमुत्ति, अयमन्तिमा जाति, नत्थि दानि पुनब्भवो'' ति।

इदमवोच भगवा, अत्तमना, पञ्चवग्गिया भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति। [N.15] इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने आयस्मतो कोण्डञ्ञस्स विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं' ति।

(ग) भिक्षुओ! 'यह दुःखनिरोध आर्यसत्य मेरे द्वारा पहले ही साक्षात्कृत है' (--ऐसा ज्ञान होने पर)....। (३)

(क) भिक्षुओ! 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग आर्य सत्य है' (ऐसा ज्ञान होने पर)...।

(ख) ''भिक्षुओ! 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग आर्य सत्य भावनीय (साधना करने योग्य) है' (ऐसा ज्ञान होने पर)....।

(ग) ''भिक्षुओ! 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग आर्यसत्य मेरे द्वारा पहले से ही भावित है'-- (ऐसा ज्ञान होने पर) पहले न सुने गये धर्मों के प्रति....। (४)

१६. ''भिक्षुओ! जब तक कि मुझे इन चार आर्यसत्यों के विषय मे यो त्रिगुण करके यह बारह आकार वाला यथार्थ शुद्ध ज्ञान नहीं हुआ, भिक्षुओ! तब तक मैंने देवता मार एवं ब्रह्मा सहित इस लोक में श्रमण ब्राह्मण सहित किसी भी पुरुष को यह नहीं कहा कि मैंने सम्यक्सम्बोधि का साक्षात्कार कर लिया है। परन्तु भिक्षुओ! जब मुझे इन चार आर्यसत्यों के विषय में उपर्युक्त प्रकार से द्वादशाकार ज्ञान हो गया तब मैंने देवता मार तथा ब्रह्मा सहित इस लोक की श्रमण ब्राह्मणसहित जनता को बताया कि मैने सम्यक्सम्बोधि का साक्षात्कार कर लिया है। तभी मैंने इस यथार्थता के विषय में लोक में जनता के सम्मुख यह दावा (अधिकारपूर्वक गर्वोक्ति) भी किया कि मैंने ज्ञानदर्शन कर लिया है। मेरी यह मुक्ति अचल है, मेरा इस संसार मे यह जन्म अन्तिम है, अब मेरा यहाँ कभी पुनर्जन्म नहीं होगा।''

भगवान् ने यह उपदेश किया। सन्तुष्ट होकर उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया।

(भगवान् द्वारा आर्यसत्यचतुष्टयविषयक) यह व्याख्यान दिये जाने के तत्काल बाद ही आयुष्मान्

१७. पवत्तिते च पन भगवता धम्मचक्के, भुम्मा देवा सद्दमनुस्सावेसुं—"एतं [B.17] भगवता बाराणसियं इसिपतने मिगदाये अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं, अप्पटिवत्तियं [R.12] समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन व मारेन वा ब्रह्मुना केनचि वा लोकस्मिं" ति। भुम्मानं देवानं सद्दं सुत्वा चातुम्महाराजिका देवा सद्दमनुस्सावेसुं....पे०....। चातुम्महाराजिकानं देवानं सद्दं सुत्वा तावतिंसा देवा....पे०....। यामा देवा....पे०....। तुसिता देवा....पे०....। निम्मानरती देवा....पे०....। परनिम्मितवसवत्ती देवा....पे०....। ब्रह्मकायिका देवा सद्दमनुस्सावेसुं— "एतं भगवता बाराणसियं इसिपतने मिगदाये अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं, अप्पटिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं" ति। इति ह, तेन खणेन, तेन लयेन, तेन मुहुत्तेन याव ब्रह्मलोका सद्दो अब्भुग्गच्छि। अयं च दससहस्सी लोकधातु सङ्कम्पि, सम्पकम्पि, सम्पवेधि; अप्पमाणो च उळारो ओभासो लोके पातुरहोसि, अतिक्कम्म देवानं देवानुभावं।

अथ खो भगवा इमं उदानं उदानेसि—"अञ्ञासि वत, भो कोण्डञ्ञो, अञ्ञासि वत भो कोण्डञ्ञो" ति। इति हिदं आयस्मतो कोण्डञ्ञस्स 'अञ्ञासिकोण्डञ्ञो' त्वेव नामं अहोसि।

१८. अथ खो आयस्मा अञ्ञासिकोण्डञ्ञो दिट्ठधम्मो पत्तधम्मो विदितधम्मो परियोगाळ्हधम्मो तिण्णविचिकिच्छो विगतकथङ्कथो वेसारज्जप्पत्तो अपरप्पच्चयो सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोच—"लभेय्याहं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं"

कौण्डिन्य को यह निर्मल, निर्विकार धर्मचक्षु उत्पन्न हो गया—"जो कुछ भी यहाँ उत्पत्ति स्वभाव वाला (समुदयधर्मा) है वह सब नाशवान् है।"

१७. भगवान् द्वारा उपर्युक्त धर्मचक्र के घुमाये (धर्मोपदेश का क्रम प्रारम्भ किये) जाने पर भूमि (पृथ्वी) वासी देवताओं ने हर्षध्वनि की—"भगवान् ने आज वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में ऐसा अनुपम धर्मचक्र घुमाया (धर्मोपदेश का क्रम प्रारम्भ किया) कि अब वह किसी श्रमण—ब्राह्मण, देवता या मार या ब्रह्मा या लोक में कोई अन्य पुरुष द्वारा रोकने पर भी नहीं रुक सकता।" भूमिवासी देवताओं का यह हर्षनिनाद सुनकर, चातुर्महाराजिक देवों ने भी यही हर्षनिनाद किया। चातुर्महाराजिक देवों का वह हर्षनिनाद सुनकर त्रायस्त्रिंशलोकवासी देवों ने भी....याम देवों ने....तुषित देवों ने....निर्माणरति देवों ने....परनिर्मितवशवर्त्ती देवों ने....। (अन्त में) ब्रह्मकायिक देवों ने भी यह हर्षनिनाद किया— "भगवान् द्वारा वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में भगवान् द्वारा प्रवर्तित धर्मचक्र अब किसी....के द्वारा नहीं रोका जा सकता।" इस तरह उसी क्षण, उसी पल एवं उसी मुहूर्त में यह हर्षोल्लासमय शब्द ब्रह्मलोक तक पहुँच गया। और दस हजार लोकों वाला यह समग्र ब्रह्माण्ड भी (उसी समय) कम्पित=सम्प्रकम्पित= सम्प्रवेधित हुआ। तथा देवताओं की आभा से भी अधिक उग्र प्रकाश उस समय समग्र लोक में फैल गया।

तब भगवान् ने यह हर्षमिश्रित हृदयोद्गार प्रकट किया—"अरे! यह कौण्डिन्य जान गया, यह कौण्डिन्य तो (इस धर्म के विषय में) सब (तरफ से सब) कुछ जान गया।" तभी से आयुष्मान् कौण्डिन्य 'आज्ञातकौण्डिन्य' नाम से लोक में प्रसिद्ध हुए।

पञ्चवर्गीयों की प्रव्रज्या— १८. तब आयुष्मान् आज्ञातकौण्डिन्य ने इस धर्म का साक्षात्कार कर, इसे प्राप्त कर, इस का (ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर तक) अवगाहन कर, निर्विवाद तथा असन्दिग्ध

ति। "एहि, भिक्खू" ति भगवा अवोच—"स्वाक्खातो धम्मो, चर ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया" ति। सा व तस्स आयस्मतो उपसम्पदा अहोसि। (१)

१९. अथ खो भगवा तदवसेसे भिक्खू धम्मिया कथाय ओवदि अनुसासि। अथ खो आयस्मतो च **वप्पस्स** आयस्मतो च **भद्दियस्स** भगवता धम्मिया कथाय ओवदियमानानं अनुसासियमानानं विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—'यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं' ति।

[B.18] ते दिट्ठधम्मा पत्तधम्मा विदितधम्मा परियोगाळ्हधम्मा तिण्णविचिकिच्छा विगतकथङ्कथा वेसारज्जप्पत्ता अपरप्पच्चया सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोचुं—"लभेय्याम मयं, भन्ते, भगवतो, सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्याम उपसम्पदं" ति। "एथ, भिक्खवो" ति भगवा अवोच— "स्वाक्खातो धम्मो, चरथ ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया" [N.16, R.13] ति सा व तेसं आयस्मन्तानं उपसम्पदा अहोसि। (२)

अथ खो भगवा तदवसेसे भिक्खू नीहारभत्तो धम्मिया कथाय ओवदि अनुसासि। यं तयो भिक्खू पिण्डाय चरित्वा आहरन्ति, तेन छब्बग्गो यापेति।

एवं ननु–नच से दूर, इस बुद्ध–धर्म में विशेषेण दक्ष (विशारद) एवं विश्वस्त होकर भगवान् से निवेदन किया–"अच्छा होता, भन्ते! कि मैं भगवान् से प्रव्रज्या (श्रामणेर की दीक्षा) एवं उपसम्पदा (संन्यास की दीक्षा) प्राप्त कर लेता!" तब भगवान् ने–"आओ, भिक्षु" इन दो विशिष्ट दीक्षाबोधक शब्दों का उच्चारण करते हुए उस आयुष्मान् आज्ञातकौण्डिन्य को उत्साह एवं आश्वासन भरे वचनों में कहा–"तुम्हारे लिये यह धर्म भलीभाँति व्याख्यात किया जा चुका है, इस पर आचरण करते हुए तुम इसकी साधना में लग जाओ। निश्चय ही यह धर्म, समय आने पर, तुम्हारे दुःखों का नाश करने में सर्वथा समर्थ होगा।"

भगवान् का यह आशीर्वचन ही उन आयुष्मान् कौण्डिन्य के लिये उपसम्पदा (दीक्षामन्त्र) बन गया। (इसे 'एहि भिक्खूपसम्पदा' कहते हैं।) (१)

१९. तब भगवान् ने अवशिष्ट (चार) भिक्षुओं को धार्मिक कथाओं का और अधिक उपदेश तथा प्रवचन किया। इस तरह भगवान् द्वारा कृत वैसी धार्मिक कथाओं का उपदेश तथा प्रवचन सुनते सुनते आयुष्मान् **वप्र** एवं आयुष्मान् **भद्दिय** को भी यह निर्मल, निर्विकार धर्मचक्षु (धर्मज्ञान) उत्पन्न हो गया–"इस लोक में जो कुछ भी उत्पत्तिधर्मा (पदार्थ) हैं वे सभी विनाशशील (निरोधकधर्मा) हैं।"

तब उन्होंने भी (दूसरे दिन) इस धर्म का साक्षात्कार कर, इसे प्राप्त कर, इसका (ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर तक) अवगाहन कर, निर्विवाद एवं असन्दिग्ध तथा किसी भी प्रकार के 'ननु नच' (शङ्का–समाधान) से दूर, इस बुद्धधर्म में विशेष दक्ष एवं विश्वस्त होकर भगवान् से निवेदन किया–"भन्ते! क्या ही अच्छा होता कि हम (दोनों भी) आप से प्रव्रज्या व उपसम्पदा पा लेते!" "आओ, भिक्षुओ!" ऐसा कहते हुए भगवान् उत्साह एवं आश्वासन भरे शब्दों में (उन दोनो भिक्षुओं से) यह बोले–"तुम्हारे लिये यह धर्म भलीभाँति व्याख्यात किया जा चुका है, इस पर आचरण करते हुए तुम इसकी साधना में लग जाओ। निश्चय ही यह (धर्म) समय आने पर तुम्हारे सभी दुःखों का नाश करने में सर्वथा समर्थ होगा।" भगवान् का यह आशीर्वचन ही उन दोनों भिक्षुओं की 'उपसम्पदा' कहलाया। (ये दोनों भिक्षु भी 'एथ भिक्खवो' इस उपसम्पदाविधि से उपसम्पन्न हुए)। (२)

तदनन्तर, भगवान् उन भिक्षुओं द्वारा लायी गयी भिक्षा से भोजन ग्रहण करते थे। उन में से तीन भिक्षु जो कुछ भी भिक्षा में लाते उसी से वे छहों भिक्षु उदर–पोषण करते थे।

अथ खो आयस्मतो च **महानामस्स** आयस्मतो च **अस्सजिस्स** भगवता धम्मिया कथाय ओवदियमानानं अनुसासियमानानं विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—'यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं' ति। ते दिट्ठधम्मा पत्तधम्मा विदितधम्मा परियोगाळ्हधम्मा तिण्णविचिकिच्छा विगतकथङ्कथा वेसारज्जप्पत्ता अपरप्पच्चया सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोचुं—''लभेय्याम मयं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्याम उपसम्पदं'' ति। ''एथ, भिक्खवो'' ति भगवा अवोच—''स्वाक्खातो धम्मो, चरथ ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया'' ति। सा व तेसं आयस्मन्तानं उपसम्पदा अहोसि॥ (३)

८. अनत्तपरियायो

२०. अथ खो भगवा पञ्चवग्गिये भिक्खू आमन्तेसि—''रूपं, भिक्खवे, अनत्ता। रूपं च हिदं, भिक्खवे, अत्ता अभविस्स, नयिदं रूपं आबाधाय संवत्तेय्य, लब्भेथ च रूपे—एवं मे रूपं होतु, एवं मे रूपं मा अहोसी ति। यस्मा च खो, भिक्खवे, रूपं अनत्ता तस्मा रूपं आबाधाय संवत्तति, न च लब्भति रूपे— एवं मे रूपं होतु, एवं मे रूपं मा अहोसी ति।

''वेदना, भिक्खवे, अनत्ता। वेदना च हिदं, भिक्खवे, अत्ता अभविस्स, नयिदं वेदना आबाधाय संवत्तेय्य, लब्भेथ च वेदनाय—एवं मे वेदना होतु, एवं मे वेदना मा अहोसी ति। यस्मा च खो, भिक्खवे, वेदना अनत्ता, तस्मा वेदना आबाधाय संवत्तति, न च लब्भति वेदनाय—एवं मे वेदना होतु, एवं मे वेदना मा अहोसी ति।

''सञ्ञा, भिक्खवे, अनत्ता। सञ्ञा च हिदं, भिक्खवे, अत्ता अभविस्स, नयिदं

इस (भिक्षुद्वय की उपसम्पदा) के बाद, भगवान् ने अवशिष्ट दो भिक्षुओं को पूर्वापेक्षया अधिक उत्साहप्रद एवं वैराग्यबोधक धार्मिक उपदेश तथा प्रवचन किया। इस धार्मिक प्रवचन–उपदेश को सुनते सुनते उन दो भिक्षुओं–आयुष्मान् **महानाम** तथा आयुष्मान् **अश्वजित्** को भी यह निर्मल....पूर्ववत्...विनाशशील हैं। तब उन्होंने भी (तीसरे दिन) इस भगवदुपदिष्ट धर्म का साक्षात्कार कर....भगवान् से निवेदन किया–''क्या ही अच्छा होता, भन्ते! कि हम (दोनों) भी....पूर्ववत्...। भगवान् का यह आशीर्वचन ही उन आयुष्मान् महानाम एवं आयुष्मान् अश्वजित् के लिये 'उपसम्पदा' का दायक बन गया।। (३)

८. अनात्मपर्यायसूत्र

२०. इसके बाद भगवान् ने उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को (नैरात्म्यविषयक) देशना करते हुए बताया– (१) ''भिक्षुओ! रूप (भौतिक पदार्थ) आत्मरहित (अनात्म पदार्थ) है। भिक्षुओ! रूप यदि आत्मवान् होता तो यह रूप पीड़ा (आबाधा) दायक न बनता, तथा रूप में–'मेरा रूप ऐसा हो' या 'मेरा रूप ऐसा न हो' ऐसी बात भी मिलती; क्योंकि, भिक्षुओ! रूप अनात्म पदार्थ है अतः यह पीड़ादायक भी बनता है तथा उस में यह बात भी नहीं मिलती कि 'मेरा रूप ऐसा हो', या 'मेरा रूप ऐसा न हो।'

(२) ''वेदना, भिक्षुओ! आत्मरहित है। भिक्षुओ! वेदना यदि आत्मवान् होती तो यह वेदना पीड़ादायक न होती, न इस वेदना के विषय में–'मेरी वेदना ऐसी हो' या 'मेरी वेदना ऐसी न हो' यह न होता; क्योंकि भिक्षुओ!....पूर्ववत्....'मेरी वेदना ऐसी न हो...।'

(३) ''संज्ञा, भिक्षुओ! आत्मरहित है। भिक्षुओ!....पूर्ववत्...। मेरी संज्ञा ऐसी न हो।

सञ्ञा आबाधाय संवत्तेय्य, लब्भेथ च सञ्ञाय— 'एवं मे सञ्ञा होतु, एवं मे सञ्ञा मा [B.19] अहोसी' ति। यस्मा च खो, भिक्खवे, सञ्ञा अनत्ता, तस्मा सञ्ञा आबाधाय संवत्तति, न च लब्भति सञ्ञाय— 'एवं मे सञ्ञा होतु, एवं मे सञ्ञा मा अहोसी' ति।

"सङ्खारा, भिक्खवे, अनत्ता। सङ्खारा च हिदं, भिक्खवे, अत्ता अभविस्संसु, नयिदं सङ्खारा आबाधाय संवत्तेय्युं, लब्भेथ च सङ्खारेसु—'एवं मे सङ्खारा होन्तु, एवं मे सङ्खारा मा अहेसुं' ति। यस्मा च खो, भिक्खवे, सङ्खारा अनत्ता, तस्मा सङ्खारा आबाधाय संवत्तन्ति, न च लब्भति सङ्खारेसु—'एवं मे सङ्खारा होन्तु, एवं मे सङ्खारा मा अहेसुं' ति।

[R.14] "विञ्ञाणं, भिक्खवे, अनत्ता। विञ्ञाणं च हिदं, भिक्खवे, अत्ता अभविस्स, नयिदं विञ्ञाणं आबाधाय संवत्तेय्य, लब्भेथ च विञ्ञाणे—'एवं मे विञ्ञाणं होतु, एवं मे [N.17] विञ्ञाणं मा अहोसी' ति। यस्मा च खो भिक्खवे, विञ्ञाणं अनत्ता, तस्मा विञ्ञाणं आबाधाय संवत्तति, न च लब्भति विञ्ञाणे— 'एवं मे विञ्ञाणं होतु, एवं मे विञ्ञाणं मा अहोसी' ति।

२१. "तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति? "अनिच्चं, भन्ते!" "यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति? "दुक्खं, भन्ते!" "यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति?

"नो हेतं, भन्ते!"

"वेदना निच्चा वा अनिच्चा वा" ति? "अनिच्चा, भन्ते!" "यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति? "दुक्खं, भन्ते!" "यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता" ति?

"नो हेतं, भन्ते"!

"सञ्ञा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति? "अनिच्चा, भन्ते!" "यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति? "दुक्खं, भन्ते!" "यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं— एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता ति"?

---

(४) 'संस्कार, भिक्षुओ! आत्मरहित हैं। भिक्षुओ....पूर्ववत्....।

(५) 'विज्ञान, भिक्षुओ! आत्मरहित है। भिक्षुओ! यदि विज्ञान आत्मवान् होता तो यह विज्ञान पीड़ादायक न बनता। तथा विज्ञान में....'मेरा विज्ञान ऐसा होता' या 'मेरा विज्ञान ऐसा न होता'—ऐसा नहीं पाया जाता।

२१. (१) "तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य है?" "अनित्य है, भन्ते!" "तो जो अनित्य होता है वह दुःखमय होता है सुखमय?" "दुःखमय होता है, भन्ते!" "जो पदार्थ (स्वयं) अनित्य है, दुःखमय है, विनाशशील है उसके विषय में क्या यह मान लेना उचित होगा कि 'यह मेरा है' या 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है?" "नहीं, भन्ते!"

(२) तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! वेदना नित्य है या अनित्य?"

"अनित्य है, भन्ते!"....पूर्ववत्....।

(३) "तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! संज्ञा नित्य है या अनित्य है?"

"अनित्य है, भन्ते!... पूर्ववत्.....।

"नो हेतं भन्ते।"

"सङ्खारा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति? "अनिच्चा, भन्ते!" "यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति? "दुक्खं, भन्ते!" "यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता" ति?

"नो हेतं, भन्ते!"

"विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति? "अनिच्चं, भन्ते!" यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति? "दुक्खं, भन्ते!" "यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं— 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता" ति?

"नो हेतं भन्ते!"

२२. "तस्मातिह, भिक्खवे, (१) यं किञ्चि रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे वा सन्तिके वा, [B.20] सब्बं रूपं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति—एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। (२) या काचि वेदना अतीतानागतपच्चुप्पन्ना अज्झत्ता वा बहिद्धा वा ओळारिका वा सुखुमा वा हीना वा पणीता वा या दूरे सन्तिके वा, सब्बा वेदना— 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति— एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। (३) या काचि सञ्ञा अतीतानागतपच्चुप्पन्ना अज्झत्ता वा बहिद्धा वा ओळारिका वा सुखुमा वा हीना वा पणीता वा या दूरे सन्तिके वा, सब्बा सञ्ञा—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति—एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। (४) ये केचि सङ्खारा अतीतानागतपच्चुप्पन्ना अज्झत्ता वा बहिद्धा वा ओळारिका वा सुखुमा वा हीना वा पणीता वा ये दूरे सन्तिके वा, सब्बे सङ्खारा— 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति—'एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। (५) यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति—एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं।

---

(४) "तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! संस्कार नित्य है या अनित्य?"
"अनित्य हैं, भन्ते!"....पूर्ववत्....।

(५) "तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! विज्ञान नित्य है या अनित्य?"
"अनित्य है, भन्ते!....पूर्ववत्....।

२२. (१) इसलिये, भिक्षुओ! जो भी अतीत अनागत एवं वर्तमान रूप है, फिर भले ही वह आध्यात्मिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, हीन हो या पुष्ट, दूर का हो या समीप का, वैसे सभी प्रकार के रूपों के विषय में 'वह न मेरा है, न मैं हूँ, न वह मेरा आत्मा है'—ऐसा समझना चाहिये। इस प्रकार भलीभाँति समझकर जानना देखना चाहिये।

(२) "....जो भी अतीत अनागत या वर्तमान वेदना है, फिर भले ही वह....पूर्ववत्.....।

(३) "....जो भी अतीत अनागत या वर्तमान संज्ञा हैं फिर भले ही वे....पूर्ववत्....।

(४) "....जो भी अतीत अनागत या वर्तमान संस्कार हैं फिर भले ही वे....पूर्ववत्....।

(५) " ...जो भी अतीत अनागत या वर्तमान विज्ञान.... विषय में 'वह विज्ञान न मेरा है, न

२३. ''एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति, वेदनाय [N.18] पि निब्बिन्दन्ति, सञ्ञाय पि निब्बिन्दति, सङ्खारेसु पि निब्बिन्दति, विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति; निब्बिन्दं विरज्जति; विरागा विमुच्चति; विमुत्तस्मिं 'विमुत्तम्ही' ति ञाणं होति, 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति।

२४. इदमवोच भगवा। अत्तमना पञ्चवग्गिया भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं।

इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने पञ्चवग्गियानं भिक्खूनं अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिंसु।

तेन खो पन समयेन **छ लोके अरहन्तो** होन्ति॥

पञ्चवग्गियकथा निट्ठिता॥

पठमभाणवारो निट्ठितो॥

९. पब्बज्जाकथा

[B.21, R.15] २५. तेन खो पन समयेन बाराणसियं **यसो** नाम कुलपुत्तो सेट्ठिपुत्तो सुखुमालो होति। तस्स तयो पासादा होन्ति— एको हेमन्तिको, एको गिम्हिको, एको वस्सिको। सो वस्सिके पासादे वस्सिके चत्तारो मासे निप्पुरिसेहि तुरियेहि परिचारियमानो न हेट्ठापासादं ओरोहति। अथ खो यसस्स कुलपुत्तस्स पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितस्स समङ्गीभूतस्स परिचारियमानस्स पटिगच्चेव निद्दा ओक्कमि, परिजनस्सा पि पच्छा निद्दा ओक्कमि, सब्बरत्तियो

में 'वह हूँ, न वह मेरी आत्मा है'—ऐसा समझना चाहिये। ऐसा समझकर उसे भलीभाँति जानना, देखना चाहिये।

२३. ''भिक्षुओ! ऐसा देखते हुए, ऐसा जानते हुए वह ज्ञानी आर्यश्रावक रूपों के विषय में निर्वेद (उदासी) प्राप्त करता है, वेदना....संज्ञा....संस्कार....विज्ञान के विषय में उदासी प्राप्त करता है, उदासी से वैराग्ययुक्त हो जाता है, इस वैराग्य की दृढ़ता से वह दु:खों से विमुक्त हो जाता है, विमुक्त होने पर उसे 'मैं दु:खों से विमुक्त हो चुका हूँ'—ऐसा भान (ज्ञान) हो जाता है और वह जान जाता है—'मेरा इस संसार में आना जाना समाप्त हो गया, मेरी धर्मसाधना पूर्ण (सफल) हो गयी, मैं कृतकृत्य हो चुका, अब मुझे यहाँ कुछ करना अवशिष्ट नहीं है।' ''

२४. भगवान् ने यह उपदेश किया। उससे सन्तुष्ट हुए उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने भगवान् के इस भाषण (उपदेश) का अभिनन्दन किया। भगवान् द्वारा ऐसा उपदेश करते ही करते उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं का चित्त, आश्रवों (चित्तमलों) का उपादान न करने के कारण उनसे, मुक्त हो गया।

उस समय तक लोक में **छह अर्हत्** (१ भगवान् स्वयम्, और ५ पञ्चवर्गीय भिक्षु—इस तरह १+५=६) हो चुके थे।।

पञ्चवर्गीयकथा सम्पन्न।।

प्रथम भाणवार पूर्ण ।।

९. प्रव्रज्याकथा

२५. उस समय वाराणसी में **यश** नामक कोई कुलपुत्र किसी धनाढ्य श्रेष्ठी का सुकुमार पुत्र था। उसके (सुखोपभोग के लिये) तीन प्रासाद (महल) बने हुए थे। उनमें एक हेमन्त ऋतु के अनुकूल, एक ग्रीष्म ऋतु के अनुकूल, एक वर्षा ऋतु के अनुकूल। इनमें से वह वर्षा ऋतु के दिनों में वर्षा ऋतु के अनुकूल प्रासाद में पुरुषरहित एकान्तवास करता हुआ वर्षों के चार महीने तक निरन्तर युवती

च तेलप्पदीपो झायति। अथ खो यसो कुलपुत्तो पटिगच्चेव पबुज्झित्वा अद्दस सकं परिजनं सुपन्तं—अञ्ञिस्सा कच्छे वीणं, अञ्ञिस्सा कण्ठे मुदिङ्गं, अञ्ञिस्सा कच्छे आळम्बरं, अञ्ञं विकेसिकं, अञ्ञं विक्खेळिकं, अञ्ञा विप्पलपन्तियो, हत्थप्पत्तं सुसानं मञ्ञे। दिस्वानस्स आदीनवो पातुरहोसि, निब्बिदाय चित्तं सण्ठासि। अथ खो यसो कुलपुत्तो उदानं उदानेसि—"उपद्दुतं वत, भो, उपस्सट्ठं वत, भो" ति।

अथ खो यसो कुलपुत्तो सुवण्णपादुकायो आरोहित्वा येन निवेसनद्वारं तेनुपसङ्कमि। अमनुस्सा द्वारं विवरिंसु—'मा यसस्स कुलपुत्तस्स कोचि अन्तरायं अकासि अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाया' ति। अथ खो यसो कुलपुत्तो येन नगरद्वारं तेनुपसङ्कमि। अमनुस्सा द्वारं विवरिंसु—'मा यसस्स कुलपुत्तस्स कोचि अन्तरायं अकासि अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाया' ति। अथ खो यसो कुलपुत्तो येन इसिपतनं मिगदायो तेनुपसङ्कमि।

२६. तेन खो पन समयेन भगवा रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय अज्झोकासे चङ्कमति। अद्दसा खो भगवा यसं कुलपुत्तं दूरतो व आगच्छन्तं, दिस्वान चङ्कमा ओरोहित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो यसो कुलपुत्तो भगवतो अविदूरे उदानं उदानेसि— "उपद्दुतं वत भो, उपस्सट्ठं वत भो" ति। अथ खो भगवा यसं कुलपुत्तं एतदवोच— "इदं खो, [N.19] यस, अनुपद्दुतं, इदं अनुपस्सट्ठं। एहि, यस, निसीद, धम्मं ते देसेस्सामी" ति।

स्त्रियों द्वारा बजाये वाद्यों से ही अपना मन बहलाता हुआ उस प्रासाद से नीचे कभी नहीं उतरता था। एक दिन रात्रि में पाँचों कामभोगों का आनन्द लूटते, उन्हीं में मग्न रहते उस यश कुलपुत्र की निद्रा पहले ही खुल गयी जबकि अन्य परिजन अभी सोये ही पड़े थे। रात्रि भर जलने वाला तैल दीपक ही प्रकाश कर रहा था। उस प्रकाश में उसने देखा—उसके परिजनों में कोई स्त्री वीणा गोद में लिये एक तरफ लुढ़की पडी थी, तो किसी के गले में मृदंग ही उलझा रह गया था, किसी की गोद में आडम्बर (डक्का=एक वाद्यविशेष) ही पड़ा रह गया था, किसी के बाल बिखरे पड़े थे, किसी के मुँह से लार टपक रही थी, कोई स्वप्न में बड़बड़ा रही थी। यह सब देखकर ऐसा लग रहा था मानो श्मशान का दृश्य प्रत्यक्ष (सम्मुख) दिखायी दे रहा हो। इसे देख कर यश कुलपुत्र को बहुत ही खेद हुआ, गृहस्थ के कामभोगों से चित्त उचट गया। तब यश कुलपुत्र के मुख से अचानक यह बात निकल पड़ी—"अरे यह तो बहुत सन्ताप का विषय है, बहुत पीड़ादायक बात है।"

तब वह यश कुलपुत्र सुवर्ण की खड़ाऊँ पहन कर प्रासाद के निष्क्रमण द्वार की तरफ बढ़ा। देवताओं ने द्वार खोल दिया कि कोई इसकी घर से बेघर होकर प्रव्रज्या में विघ्नकारक न बने। प्रासाद से निकलकर यश कुलपुत्र नगर के मुख्यद्वार की तरफ बढ़ा। वहाँ पहुँचने पर भी देवताओं ने द्वार खोल दिये कि इसकी प्रव्रज्या में किसी प्रकार का विघ्न न पड़े। तब वह यश कुलपुत्र नगर से निकल कर जिधर ऋषिपतन मृगदाव था उधर चल पड़ा।

२६. उस समय भगवान्, रात्रि व्यतीत होने पर प्रत्यूष के समय (प्रातःकाल) आसन छोड़कर खुले स्थान में घूम रहे थे। तब भगवान् ने यश कुलपुत्र को आते हुए दूर से ही देखा। उसे देखकर भगवान् चंक्रमण-स्थल से उतर कर बिछे आसन पर विराजमान हुए। जबकि भगवान् अभी कुछ दूर ही थे, यश कुलपुत्र के मुख से वही बात निकल पड़ी—"अरे! यह तो बहुत सन्ताप का विषय है, बहुत पीडादायी बात है!" तब भगवान् ने कुलपुत्र को यह कहा—"आओ यश! यह स्थान न तो सन्तापप्रद है न पीड़ादायक! आओ! बैठो, मैं तुम्हें धर्म की देशना करूँगा।"

अथ खो यसो कुलपुत्तो— 'इदं किर अनुपद्दुतं, इदं अनुपस्सट्ठं' ति हट्ठो उदग्गो [B.22] सुवण्णपादुकाहि ओरोहित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नस्स खो यसस्स कुलपुत्तस्स भगवा अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथीदं—दानकथं सीलकथं सग्गकथं, कामानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, [R.16] नेक्खम्मे आनिसंसं पकासेसि। यदा भगवा अञ्ञासि यसं कुलपुत्तं कल्लचित्तं, मुदुचित्तं, विनीवरणचित्तं, उदग्गचित्तं, पसन्नचित्तं, अथ या बुद्धानं सामुक्कंसिका धम्मदेसना तं पकासेसि—दुक्खं, समुदयं, निरोधं, मग्गं। सेय्यथापि नाम सुद्धं वत्थं अपगतकाळकं सम्मदेव रजनं पटिग्गण्हेय्य, एवमेव यसस्स कुलपुत्तस्स तस्मिंयेव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—'यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं' ति।

२७. अथ खो यसस्स कुलपुत्तस्स माता पासादं अभिरुहित्वा यसं कुलपुत्तं अपस्सन्ती येन सेट्ठी गहपति तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा सेट्ठिं गहपतिं एतदवोच— "पुत्तो ते, गहपति, यसो न दिस्सती" ति। अथ खो सेट्ठी गहपति चतुद्दिसा अस्सदूते उय्योजेत्वा सामं येव येन इसिपतनं मिगदायो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो सेट्ठी गहपति सुवण्णपादुकानं निक्खेपं, दिस्वान तं येव अनुगमासि। अद्दसा खो भगवा सेट्ठिं गहपतिं दूरतो व आगच्छन्तं, दिस्वान भगवतो एतदहोसि— "यन्नूनाहं तथारूपं इद्धाभिसङ्खारं अभिसङ्खरेय्यं यथा सेट्ठी गहपति इध निसिन्नो इध निसिन्नं यसं कुलपुत्तं न पस्सेय्या" ति। अथ खो भगवा तथारूपं इद्धाभिसङ्खारं

तब यश कुलपुत्र भगवान् के उस वचन—'यह स्थान न तो सन्तापदायक है न पीड़ादायक' को सुनकर आह्लादित हो प्रसन्न चित्त से, खड़ाऊँ छोड़कर, नंगे पैर ही, जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचा। पास जाकर, भगवान् को प्रणाम कर वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस यश कुलपुत्र को भगवान् ने आनुपूर्वी कथा कही; जैसे—दानकथा, शीलकथा, स्वर्गकथा, कामभोगों का दुष्परिणाम, उनके कारण होने वाली हीन प्रवृत्ति, दोष, तथा निष्कामता का माहात्म्य (प्रशंसा)। इन धार्मिक प्रसङ्गों को सुनाने के बाद, जब भगवान् ने देखा कि अब यश कुलपुत्र का चित्त भव्य, मृदु, विकारों से अनाच्छादित, आह्लादित एवं प्रसन्न है तब जनता को धर्म की तरफ आगे बढ़ाने वाली बुद्धों की उत्कृष्ट देशना—दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध एवं दुःखनिरोधगामी मार्ग— का उपदेश यश कुलपुत्र को किया। इस देशना के प्रभाव से यश कुलपुत्र का चित्त उसी तरह निर्मल निर्विकार हो गया जैसे कोई शुद्ध कालिमाविहीन, निर्मल श्वेत वस्त्र हो। वह वस्त्र जैसे तत्काल मनचाहा रङ्ग ठीक ढंग से पकड़ लेता है, उसी तरह उस यश कुलपुत्र के निर्मल चित्त में तत्काल यह धर्मज्ञान उत्पन्न हो गया—"इस संसार में जो कुछ भी उत्पत्तिधर्मा (पदार्थ) हैं वे सब नाशवान् हैं।"

२७. यश कुलपुत्र के महल से बाहर निकलने के कुछ काल बाद, जब उसकी माता महल में गयी और उसे वह यश कुलपुत्र कहीं भी नहीं दिखायी दिया तो वह अपने पति श्रेष्ठी गृहपति के पास जाकर बोली—"गृहपति! तुम्हारा पुत्र महल में कहीं भी दिखायी नहीं पड़ रहा।" तब श्रेष्ठी गृहपति ने यश की खोज में चारों तरफ घुड़सवार दौड़ाकर वह स्वयं ऋषिपतन मृगदाव की तरफ चल पड़ा। वहाँ गृहपति ने ऋषिपतन में प्रवेश के बहुत पहले ही सोने की खड़ाऊँओं के निक्षेपचिह्न देख लिये। उन्हीं का पीछा करता हुआ वह ऋषिपतन में प्रवेश कर गया। वहाँ भगवान् ने दूर से ही गृहपति को उधर आते हुए देख लिया। देखकर उन्हें यह विचार आया कि क्यों न मैं अब एक छोटा सा अलौकिक चमत्कार दिखाऊँ कि यह श्रेष्ठी गृहपति यहीं बैठे अपने पुत्र यश को न देख पाये। भगवान् ने वैसा

अभिसङ्खरेसि। अथ खो सेट्ठी गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—"अपि, भन्ते, भगवा यसं कुलपुत्तं पस्सेय्या" ति?

"तेन हि, गहपति, निसीद, अप्पेव नाम इध निसिन्नो इध निसिन्नं यसं कुलपुत्तं पस्सेय्यासी" ति। अथ खो सेट्ठी गहपति—"इधेव किराहं निसिन्नो इध निसिन्नं यसं कुलपुत्तं पस्सिस्सामी" ति हट्ठो उदग्गो भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नस्स खो सेट्ठिस्स गहपतिस्स भगवा अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथीदं—दानकथं सीलकथं सग्गकथं, कामानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, नेक्खम्मे आनिसंसं पकासेसि। यदा भगवा अञ्ञासि सेट्ठिं गहपतिं कल्लचित्तं, मुदुचित्तं, विनीवरणचित्तं, उदग्गचित्तं, [B.23] पसन्नचित्तं, अथ या बुद्धानं सामुक्कंसिका धम्मदेसना, तं पकासेसि—दुक्खं, समुदयं, निरोधं, मग्गं। सेय्यथापि नाम सुद्धं वत्थं अपगतकाळकं सम्मदेव रजनं पटिग्गण्हेय्य, एवमेव सेट्ठिस्स गहपतिस्स तस्मिंयेव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—'यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं' ति। [N.20]

अथ खो सेट्ठी गहपति दिट्ठधम्मो विदितधम्मो परियोगाळ्हधम्मो तिण्णविचिकिच्छो विगतकथङ्कथो वेसारज्जप्पत्तो अपरप्पच्चयो सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते; सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती' ति—एवमेव भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं

चमत्कार किया। इसी बीच श्रेष्ठी गृहपति भगवान् के पास पहुँचा, पहुँचकर उसने भगवान् से पूछा— "क्या, भन्ते! आपने यश कुलपुत्र को देखा है?"

गृहपति! बैठो! यहाँ बैठे हुए तुम यहीं बैठे यश कुलपुत्र को देख लोगे।" श्रेष्ठी गृहपति—"यहीं बैठा मैं यहीं बैठे अपने पुत्र को देख पाऊँगा"—सुन कर बहुत प्रमुदित हुआ। यों प्रसन्न होकर वह गृहपति भगवान् को अभिवादन कर एक तरफ बैठ गया। तब भगवान् ने उसको आनुपूर्वी कथा सुनाने का उपक्रम करते हुए दानकथा, शीलकथा आदि का विस्तरशः वर्णन किया। जब उस श्रेष्ठी गृहपति के विषय में भगवान् ने जान लिया कि यह भव्यचित्त एवं मृदुचित्त, निर्विकार, दोषानाच्छादित, धर्मोत्साह से आह्लादित एवं प्रसन्न है तब अन्त में बुद्धों द्वारा दी जाने वाली महत्त्वपूर्ण देशना (आर्यसत्यचतुष्टय का उपदेश) की।...जिससे उस श्रेष्ठी गृहपति को उसी आसन पर बैठे ही बैठे धर्ममय ज्ञानचक्षु उत्पन्न हो गया कि इस संसार में जो कुछ भी उत्पत्तिधर्मा पदार्थ हैं वे सब नाशवान् हैं।

तब वह श्रेष्ठी गृहपति इस धर्म को सही ढंग से जानकर, प्राप्त कर, इसका ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर तक अवगाहन कर, निर्विवाद, असन्दिग्ध तथा किसी भी प्रकार के ननु–नच (शङ्का–सन्देह) से दूर, इस बुद्ध धर्म में विशेष दक्ष एवं विश्वस्त तथा श्रद्धालु बनकर भगवान् से यों निवेदन करने लगा—"भन्ते! कितना आश्चर्य है, कितना अद्भुत है कि जैसे कोई औंधे पात्र को सीधा कर दे, ढके हुए को खोल दे, अनजान को रास्ता दिखा दे या कोई अन्धकारावृत प्रदेश में तैल का दीपक जलाकर बैठ जाय कि देखने वाले देखने योग्य वस्तुओं को देख पायेंगे; इसी तरह श्रीमान् ने नाना प्रकार से इस धर्म का व्याख्यान कर दिखाया। अत: यह मैं, भन्ते! भगवान् की शरण में जाता हूँ, धर्म एवं सङ्घ की भी शरण मे जाता हूँ। भगवान् आज से मुझे मेरे प्राण रहने तक (यावज्जीवन) अपना उपासक (सेवक) समझें।"

सरणं गच्छामि, धम्मं च, भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं [R.17] गतं'' ति। **सो व लोके पठमं उपासको अहोसि तेवाचिको।**

२८. अथ खो यसस्स कुलपुत्तस्स पितुनो धम्मे देसियमाने यथादिट्ठं यथाविदितं भूमिं पच्चवेक्खन्तस्स अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चि। अथ खो भगवतो एतदहोसि— ''यसस्स खो कुलपुत्तस्स पितुनो धम्मे देसियमाने यथादिट्ठं यथाविदितं भूमिं पच्चवेक्खन्तस्स अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं। अभब्बो खो यसो कुलपुत्तो हीनायावत्तित्वा कामे परिभुञ्जितुं, सेय्यथापि पुब्बे अगारिकभूतो; यन्नूनाहं तं इद्धाभिसङ्खारं पटिप्पस्सम्भेय्यं'' ति। अथ खो भगवा तं इद्धाभिसङ्खारं पटिप्पस्सम्भेसि। अद्दसा खो सेट्ठी गहपति यसं कुलपुत्तं निसिन्नं, दिस्वान यसं कुलपुत्तं एतदवोच— ''माता ते, तात यस, परिदेवसोकसमापन्ना, देहि मातुया जीवितं'' ति।

अथ खो यसो कुलपुत्तो भगवन्तं उल्लोकेसि। अथ खो भगवा सेट्ठिं गहपतिं एतदवोच—''तं किं मञ्ञसि, गहपति, यसस्स कुलपुत्तस्स सेखेन ञाणेन सेखेन दस्सनेन [B.24] धम्मो दिट्ठो विदितो सेय्यथापि तया? तस्स यथादिट्ठं यथाविदितं भूमिं पच्चवेक्खन्तस्स अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं। भब्बो नु खो यसो, गहपति, हीनायावत्तित्वा कामे परिभुञ्जितुं सेय्यथापि पुब्बे आगारिकभूतो'' ति? ''नो हेतं, भन्ते!''

''यसस्स खो, गहपति, कुलपुत्तस्स सेखेन ञाणेन सेखेन दस्सनेन धम्मो दिट्ठो विदितो, सेय्यथापि तया। तस्स यथादिट्ठं यथाविदितं भूमिं पच्चवेक्खन्तस्स अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं। अभब्बो खो, गहपति, यसो कुलपुत्तो हीनायावत्तित्वा कामे परिभुञ्जितुं, सेय्यथापि पुब्बे आगारिकभूतो'' ति।

(इस तरह) वह (श्रेष्ठी गृहपति) ही लोक में **त्रैवाचिक** (बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ—यों त्रिशरणगमन द्वारा) **उपासक** प्रसिद्ध हुआ।

२८. भगवान् द्वारा पिता को धर्मदेशना किये जाते समय, यश कुलपुत्र का चित्त यथादृष्ट, यथाविदित धर्म की भूमियों (अवस्था) का प्रत्यवेक्षण करते हुए कामभोगों में पूर्णतः अनासक्त हो जाने से आश्रवों (चित्तविकारों) से सर्वथा मुक्त हो गया। तब भगवान् के मन में यह हुआ—''यश कुलपुत्र का चित्त...आश्रवों से सर्वथा मुक्त हो गया है। अतः अब यह सम्भव नहीं रह गया है कि उसका चित्त पहले (गृहस्थ अवस्था) की तरह पुनः हीन वृत्ति ग्रहण कर उन कामभोगों के सेवन की बात सोचे, अतः अब मैं अपने उस अलौकिक चमत्कार का प्रभाव समाप्त कर दूँ।'' यह सोचकर भगवान् ने अपने उस अलौकिक चमत्कार का प्रभाव समाप्त कर दिया। यह प्रभाव समाप्त होते ही, उस श्रेष्ठी गृहपति ने अपने पुत्र यश को पास ही बैठे हुए देखा। देखकर, उसने यश कुलपुत्र से कहा—''पुत्र! तुम्हारी माता, तुम्हारे विना शोकाकुल हो कब से तुम्हारे लिये विलाप कर रही है। तूँ उसके पास जाकर उसे जीवन-दान दे, (अन्यथा तेरे विना वह मर जायगी।)।'' (यह सुनकर) यश कुलपुत्र ने भगवान् की तरफ देखा। तब भगवान् ने श्रेष्ठी गृहपति से यह पूछा—''तो तुम क्या समझते हो, गृहपति! जैसे तुमने अपूर्ण (=शैक्ष्य) ज्ञान एवं दर्शन से धर्म को देखा है, समझा है, वैसे ही क्या यश कुलपुत्र ने भी देखा है! उसका चित्त तो, देखे और जाने धर्म का अवस्थानुसार प्रत्यवेक्षण करने से, कामभोगों के प्रति सर्वथा अनासक्त, (अलिप्त) होकर उनसे पूर्णतः दूर हो चुका है। अब क्या यह पहले (गृहस्थ अवस्था) की तरह हीन स्थिति में रहकर गृहस्थावस्था के कामभोगो को भोगने योग्य (भव्य) है?'' ''नहीं,

"लाभा, भन्ते, यसस्स कुलपुत्तस्स, सुलद्धं, भन्ते! यसस्स कुलपुत्तस्स, यथा यसस्स कुलपुत्तस्स अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं। अधिवासेतु मे, भन्ते! भगवा अज्जतनाय भत्तं यसेन कुलपुत्तेन पच्छासमणेना" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो सेट्ठी गहपति भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

अथ खो यसो कुलपुत्तो अचिरपक्कन्ते सेट्ठिम्हि गहपतिम्हि भगवन्तं [N.21] एतदवोच– "लभेय्याहं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं" ति। "एहि भिक्खू" ति भगवा अवोच–"स्वाक्खातो धम्मो, चर ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खस्स [R.18] अन्तकिरियाया" ति। सा व तस्स आयस्मतो उपसम्पदा अहोसि।

तेन खो पन समयेन **सत्त लोके अरहन्तो** होन्ति॥

यसपब्बज्जा निट्ठिता॥

२९. अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरं आदाय आयस्मता यसेन पच्छासमणेन येन सेट्ठिस्स गहपतिस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो आयस्मतो यसस्स माता च पुराणदुतियिका च येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। तासं भगवा अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथीदं—दानकथं सीलकथं सग्गकथं, कामानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, नेक्खम्मे

भन्ते!" "तो फिर, गृहपति! जैसे तुमने अपूर्ण...पूर्ववत्....हीन स्थिति में रहकर गृहस्थावस्था के कामभोगों के भोगने योग्य नहीं (अभव्य) है।"

(श्रेष्ठी ने कहा–) "भन्ते! यश कुलपुत्र को (पूर्वोपार्जित पुण्य का) लाभ मिल गया, अत्यधिक लाभ मिल गया कि उस का चित्त कामभोगों से अलिप्त रहते हुए चित्तविकारों से पूर्णतः छुटकारा पा गया। तो, भन्ते! कृपा कर आप कल मेरे घर पर, यश को साथ लेकर, भोजन करना स्वीकार करें।" भगवान् श्रेष्ठी के इस निवेदन को मौन भाव से स्वीकार कर लिया। तब वह श्रेष्ठी गृहपति भगवान् की स्वीकृति जानकर, आसन से उठकर, भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर अपने घर वापस लौट गया।

तब यश कुलपुत्र ने श्रेष्ठी गृहपति (पिता) को लौट जाने के कुछ ही समय बाद भगवान् से यह निवेदन किया–"भन्ते! अच्छा होता कि मैं भगवान् के पास प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा प्राप्त कर लेता।" "आओ, भिक्षु!"–कहकर भगवान् बोले–("तुम्हारे लिये) इस धर्म का (मैने) भलीभाँति व्याख्यान कर दिया है। इस पर आचरण करते हुए तुम इस की साधना में लग जाओ। निश्चय ही यह धर्मसाधना समय आने पर, तुम्हारे दुःखों का क्षय करने में अवश्य समर्थ होगी।" यही उस आयुष्मान् की उपसम्पदा हुई।

उस समय लोक में सात अर्हत् हो गये।।

यश–प्रव्रज्या पूर्ण।।

२९. तब (दूसरे दिन) भगवान् पूर्वाह्न काल में वस्त्र पहन कर, पात्र–चीवर साथ लेकर, यश नामक अनुगामी भिक्षु के साथ जहाँ श्रेष्ठी गृहपति का घर था, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर वहाँ बिछे आसन पर विराजे। तब आयुष्मान् यश की माता एवं पत्नी भगवान् के सम्मुख आयीं। आकर, भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गयीं। भगवान् ने उनको भी क्रमशः धार्मिक देशना की, जैसे–दानकथा,

आनिसंसं पकासेसि। यदा ता भगवा अञ्ञासि कल्लचिता, मुदुचिता, विनीवरणचित्ता, उदग्गचित्ता, पसन्नचित्ता, अथ या बुद्धानं सामुक्कंसिका धम्मदेसना तं पकासेसि—दुक्खं, समुदयं, निरोधं, मग्गं। सेय्यथापि नाम सुद्धं वत्थं अपगतकाळकं सम्मदेव रजनं पटिग्गण्हेय्य, [B.25] एवमेव तासं तस्मिं येव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—'यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं' ति। ता दिट्ठधम्मा पत्तधम्मा विदितधम्मा परियोगाळ्हधम्मा तिण्णविचिकिच्छा विगतकथङ्कथा वेसारज्जप्पत्ता अपरप्पच्चया सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोचुं—"अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते,....पे०....धम्मो पकासितो। एता मयं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छाम, धम्मं च, भिक्खुसङ्घं च। उपासिकायो नो भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेता सरणं गता" ति।

ता व लोके पठमं उपासिका अहेसुं तेवाचिका।

अथ खो आयस्मतो यसस्स माता च पिता च पुराणदुतियिका च भगवन्तं च आयस्मन्तं च यसं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा, भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं, विदित्वा एकमन्तं निसीदिंसु। अथ खो भगवा आयस्मतो यसस्स मातरं च पितरं च पुराणदुतियिकं च धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

३०. अस्सोसुं खो आयस्मतो यसस्स चत्तारो गिहिसहायका बाराणसियं सेट्ठानुसेट्ठीनं [R.19] कुलानं पुत्ता—**विमलो, सुबाहु, पुण्णजि, गवम्पति**—"यसो किर कुलपुत्तो

शीलकथा, स्वर्गकथा; कामभोगों के सेवन के होने वाले दोष, हीनवृत्ति के आचरण से होने वाले क्लेश, साथ ही नैष्कर्म्य की प्रशंसा। जब भगवान् ने जान लिया कि वे दोनों इस धर्मदेशना के प्रभाव से भव्यचित्त, मृदुचित्त, निर्दुष्टचित्त, उत्साहचित्त एवं प्रसन्नचित्त हो चुकी हैं तब उन्होंने बुद्धों द्वारा दी जाने वाली महत्त्वपूर्ण आर्यसत्यचतुष्टय की देशना प्रारम्भ की, जैसे—दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध एवं दुःखनिरोधगामी मार्ग। जैसे शुद्ध साफ निर्मल वस्त्र किसी भी रंग को भलीभाँति पकड़ लेता है, उसी तरह वे दोनों श्रद्धालु नारियों का यह धर्ममय ज्ञानचक्षु खुल गया—"जो कुछ भी यहाँ उत्पत्तिधर्मा है वह सभी नाशवान् है।" तब वे दोनों श्रद्धालु नारियाँ इस धर्म को सही रीति से जानकर, प्रासकर....पूर्ववत्....इस बुद्ध धर्म के दक्ष एवं विशेष श्रद्धालु होती हुई भगवान् से यों निवेदन करने लगीं—"भन्ते! कितना आश्चर्य है, कितना अद्भुत है कि जैसे कोई औंधे के सीधा कर दे....पूर्ववत्....आपने इस सद्धर्म का व्याख्यान किया। हम दोनों (आज से) भगवान् की, धर्म एवं सङ्घ की शरण में जाती हैं। आज से आप हमको प्राण रहने तक अपनी उपासिका समझें।"

वे ही दोनों लोक में प्रथम त्रैवाचिक उपासिकाएँ हुईं।

तब आयुष्मान् यश की माता, पिता और यश की पत्नी ने भगवान् एवं यश को उत्तम उत्तम खाद्य पदार्थों से अपने हाथ से परोसते हुए, सन्तृप्त एवं सन्तुष्ट किया। तथा अन्त में पात्र से हाथ हटाया हुआ देखकर, 'भगवान् भोजन कर चुके'—ऐसा जानकर, वे एक तरफ बैठ गये। तब भगवान् उन सब को (यश के माता-पिता तथा स्त्री को) धार्मिक कथाओं से सन्दृष्ट, समादपित (उत्साहित), समुत्तेजित एव सम्प्रहृष्ट कर आसन से उठकर (ऋषिपतन की तरफ) चल दिये।

३०. आयुष्मान् यश के चार गृहस्थावस्था के मित्र, वाराणसी के बड़े छोटे श्रेष्ठी-अनुश्रेष्ठियों के वशज युवकों—**विमल, सुबाहु, पूर्णजित् एवं गवाम्पति**—ने सुना कि यश कुलपुत्र दाढी मूँछ

केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो'' ति। सुत्वान नेसं एतदहोसि—''न हि नून सो ओरको धम्मविनयो, न सा ओरका पब्बज्जा, यत्थ यसो कुलपुत्तो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो'' ति। ते चत्तारो जना येनायस्मा यसो तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं यसं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। अथ खो आयस्मा यसो ते चत्तारो गिहिसहायके आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं [N.22] निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा यसो भगवन्तं एतदवोच—''इमे मे, भन्ते, चत्तारो गिहिसहायका बाराणसियं सेट्ठानुसेट्ठीनं कुलानं पुत्ता—विमलो, सुबाहु, पुण्णजि, गवम्पति। इमे चत्तारो भगवा ओवदतु अनुसासतू'' ति तेसं भगवा अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथीदं—दानकथं सीलकथं.... पे०....'यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं' ति। ते [B.26] दिट्ठधम्मा पत्तधम्मा विदितधम्मा परियोगाळ्हधम्मा तिण्णविचिकिच्छा विगतकथङ्कथा वेसारज्जप्पत्ता अपरप्पच्चया सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोचुं—''लभेय्याम मयं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्याम उपसम्पदं'' ति। ''एथ, भिक्खवो'' ति भगवा अवोच—''स्वाक्खातो धम्मो, चरथ ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया'' ति। सा व तेसं आयस्मन्तानं उपसम्पदा अहोसि।

अथ खो भगवा ते भिक्खू धम्मिया कथाय ओवदि अनुसासि। तेसं भगवता धम्मिया कथाय ओवदियमानानं अनुसासियमानानं अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिंसु।

मुँड़वाकर, काषाय वस्त्र पहन कर, घर से निकल कर, बेघर होकर प्रव्रजित हो गया। सुनकर उनके मन में विचार आया—''निश्चय ही वह धर्मविनय (धर्मपद्धति) छोटा नहीं होगा जहाँ यश कुलपुत्र दाढ़ी....प्रव्रजित हुआ है।'' वे चारों भी, जहाँ आयुष्मान् यश थे, वहाँ आये, आकर यश को प्रणाम कर एक तरफ खड़े हो गये। तब आयुष्मान् यश उन चारों गृहस्थ मित्रों को लेकर जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ गये, जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे आयुष्मान् यश ने भगवान् से निवेदन किया—''भन्ते! ये चारों मेरे गृहस्थावस्था के मित्र, वाराणसी के श्रेष्ठि-अनुश्रेष्ठी कुलों में उत्पन्न हुए विमल, सुबाहु, पूर्णजित् एवं गवाम्पति नाम के हैं। ये चारों भी भगवान् से धर्मोपदेश एवं धर्मानुशासन (दीक्षा) चाहते हैं। अच्छा हो कि आप इन्हें भी दीक्षा दें।'' तब भगवान् ने उन चारों को भी क्रमशः धार्मिक कथा कहना प्रारम्भ किया; जैसे—दानकथा, शीलकथा....। 'संसार में जो कुछ भी उत्पत्तिधर्मा है वह सब नाशवान् है।' यों वे चारों ही इस धर्म को सही रीति से जानकर, प्राप्तकर....पूर्ववत्....शास्ता के शासन में श्रद्धालु होकर भगवान् से यों निवेदन करने लगे—''अच्छा हो, भन्ते! कि हम चारों भी आप से प्रव्रज्या प्राप्त कर लें, उपसम्पदा प्राप्त कर लें।'' ''आओ, भिक्षुओ''—यह कहकर, भगवान् ने यह भी कहा—(''तुम्हारे लिये) इस धर्म का व्याख्यान विशदतया किया जा चुका है। तुम लोग इसका शुद्धतया आचरण करते हुए इसकी साधना में रत हो जाओ! समय आने पर यह तुम्हारे सभी दुःखों का क्षय करने में निश्चय ही समर्थ होगा।'' यही उन चारों आयुष्मानों की उपसम्पदा हुई। उसके बाद भी भगवान् उन्हें यथासमय धार्मिक कथाएँ सुनाते रहे। इस धार्मिक कथाओं के श्रवण मनन से अन्त में उन चारों का चित्त, संसार से अलिप्त हो जाने के कारण, आश्रवों से विमुक्त हो गया।

तेन खो पन समयेन एकादस लोके अरहन्तो होन्ति ॥

चतुगिहिसहायकपब्बज्जा निट्ठिता ॥

[R.20] ३१. अस्सोसुं खो आयस्मतो यसस्स पञ्ञासमत्ता गिहिसहायका जानपदा पुब्बानुपुब्बकानं कुलानं पुत्ता—"यसो किर कुलपुत्तो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो" ति। सुत्वान नेसं एतदहोसि—"न हि नून सो ओरको धम्मविनयो, न सा ओरका पब्बज्जा यत्थ यसो कुलपुत्तो केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो" ति। ते येनायस्मा यसो तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं यसं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। अथ खो [B.27] आयस्मा यसो ते पञ्ञासमत्ते गिहिसहायके आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा यसो भगवन्तं एतदवोच—"इमे मे, भन्ते, पञ्ञासमत्ता गिहिसहायका जानपदा पुब्बानुपुब्बकानं कुलानं पुत्ता। इमे भगवा ओवदतु, अनुसासतू" ति। तेसं भगवा अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथीदं—दानकथं ....पे०....'यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं ति'। ते दिट्ठधम्मा पत्तधम्मा विदितधम्मा परियोगाळ्हधम्मा तिण्णविचिकिच्छा विगतकथङ्कथा वेसारज्जप्पत्ता अपरप्पच्चया सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोचुं—"लभेय्याम मयं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्याम उपसम्पदं" ति। "एथ, भिक्खवो"—ति भगवा अवोच—"स्वाक्खातो धम्मो, चरथ ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया" ति। सा व तेसं आयस्मन्तानं उपसम्पदा अहोसि। अथ खो भगवा ते भिक्खू धम्मिया कथाय ओवदि [N.23] अनुसासि। तेसं भगवता धम्मिया कथाय ओवदियमानानं अनुसासियमानानं अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिंसु।

तेन खो पन समयेन एकसट्ठि लोके अरहन्तो होन्ति ॥

पञ्ञासगिहिसहायकपब्बज्जा निट्ठिता ॥

१०. मारकथा

३२. अथ खो भगवा ते भिक्खू आमन्तेसि—"मुत्तोहं, भिक्खवे, सब्बपासेहि, ये

यों उस समय तक एकादश (११) अर्हत् हो चुके थे।।

चार गृहिसहायकों की प्रव्रज्याकथा पूर्ण।।

३१. फिर आयुष्मान् यश के गृहस्थावस्था के पचास साथी, जो कि वाराणसी की पुरानी श्रेष्ठ कुलपरम्पराओं से थे, सुना कि यश कुलपुत्र....पूर्ववत्....एक ओर खड़े हो गये। तब आयुष्मान् यश अपने उन पचास पुराने साथियों को जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ ले गये....पूर्ववत्....संसार में जो कुछ भी उत्पन्न है सब नाशवान् है।....यही उन पचास आयुष्मानों की उपसम्पदा हुई। तदनन्तर भी भगवान् यथासमय यथाप्रसङ्ग उन पचासों को विस्तृत धार्मिक कथा सुनाते रहे। यों धर्मचर्चा सुनते सुनते उन सभी प्रव्रजितों का चित्त ससार से अनासक्त हो जाने के कारण आश्रवों से विमुक्त हो गया।।

उस समय तक लोक में इकसठ (६१) अर्हत् हो चुके थे।

पचास गृहिसहायकप्रव्रज्याकथा सम्पूर्ण।।

दिब्बा ये च मानुसा। तुम्हे पि, भिक्खवे, मुत्ता सब्बपासेहि, ये दिब्बा ये च मानुसा। [R.21] चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। मा एकेन द्वे अगमित्थ। देसेथ, भिक्खवे, धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति, भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो। अहं पि, भिक्खवे, येन उरुवेला सेनानिगमो तेनुपसङ्कमिस्सामि धम्म- [B.28] देसनाया'' ति।

३३. अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

''बद्धोसि सब्बपासेहि ये दिब्बा ये च मानुसा।
महाबन्धनबद्धोसि न मे, समण, मोक्खसी'' ति॥
''मुत्तोहं सब्बपासेहि ये दिब्बा ये च मानुसा।
महाबन्धनमुत्तोम्हि निहतो त्वमसि, अन्तका'' ति॥
''अन्तलिक्खचरो पासो य्वायं चरति मानसो।
येन तं बाधयिस्सामि न मे, समण, मोक्खसी'' ति॥
''रूपा सद्दा रसा गन्धा फोट्ठब्बा च मनोरमा।
एत्थ मे विगतो छन्दो निहतो त्वमसि, अन्तका'' ति॥

---

१०. मारकथा

३२. तब भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित (आमन्त्रित) किया—''भिक्षुओ! लोक में जितने भी दिव्य और मानव बन्धन हैं उन सबसे मैं मुक्त हो चुका हूँ। तुम भी उन सभी प्रकार के दिव्य और मानव बन्धनों से मुक्त हो चुके हो। १. भिक्षुओ! अनेक जनों के हित तथा सुख के सम्पादन के लिये, लोक पर दया (अनुकम्पा) के लिये, देवता और मनुष्यों के हित तथा सुख साधन के लिये, (लोक में) विचरण करो। २. एक साथ दो न जाना। ३. (वहाँ जाकर) प्रारम्भ में भी कल्याणकारक,मध्य में भी कल्याणकारक और अन्त में भी कल्याणकारक (मेरे द्वारा उपदिष्ट) इस धर्म का उपदेश करो। ४. अर्थसहित, व्यञ्जन सहित, केवल (शुद्ध), परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य (धर्म) का पालन तथा उपदेश करो (क्योंकि इस संसार में) अल्प चित्तमल वाले प्राणी भी हैं; धर्म का श्रवण न करने से उनकी हानि होगी। तथा तुम्हारे द्वारा उपदिष्ट धर्म का श्रवण करने पर उनका लाभ होगा, वे धर्म के जानने वाले बनेंगे। भिक्षुओ! मैं भी जहाँ उरुवेला में सेनानिगम है वहाँ धर्मदेशनाहेतु जाऊँगा।''

३३. तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा, पहुँच कर भगवान् से गाथाओं (श्लोकों) में बोला—

''भो श्रमण! जितने दिव्य और मानव बन्धन हैं उनसे तुम बँधे हो। मेरे इन बन्धों से तुम कभी मुक्त न हो सकोगे।।''

(भगवान् ने कहा—) ''हे अन्तक! (मृत्युरूप!) मैं तो जितने भी दिव्य और मानव महाबन्धन हैं उन सबसे मुक्त हो चुका हूँ। तूँ ही विनाश के किनारे पर है।।''

(मार ने कहा—) ''हे श्रमण! आकाशचारी मन का जो रागरूपी बन्धन है, मैं तुम्हें उससे बाँधूँगा, मुझसे छूटकर कहाँ जा पाओगे! ।।''

अथ खो मारो पापिमा—"जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति॥

मारकथा निट्ठिता॥

११. पब्बज्जूपसम्पदाकथा

३४. तेन खो पन समयेन भिक्खू नानादिसा नानाजनपदा पब्बज्जापेक्खे च उपसम्पदापेक्खे च आनेन्ति—"भगवा ने पब्बाजेस्सति उपसम्पादेस्सती" ति। तत्थ भिक्खू [N.24] चेव किलमन्ति पब्बज्जापेक्खा च उपसम्पदापेक्खा च। अथ खो भगवतो रहोगतस्स [B.29] पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"एतरहि खो भिक्खू नानादिसा नानाजनपदा पब्बज्जापेक्खे च उपसम्पदापेक्खे च। यन्नूनाहं भिक्खूनं अनुजानेय्यं—तुम्हे व दानि, भिक्खवे, तासु तासु दिसासु तेसु तेसु जनपदेसु पब्बाजेथ उपसम्पादेथा" ति। अथ खो भगवा सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे भिक्खुसङ्घं [R.22] सन्निपातापेत्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"इध मय्हं, भिक्खवे, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'एतरहि खो भिक्खू....पे०....तुम्हे व दानि, भिक्खवे, तासु तासु दिसासु तेसु तेसु जनपदेसु पब्बाजेथ उपसम्पादेथा''' ति।

"अनुजानामि, भिक्खवे, तुम्हे व दानि तासु दिसासु तेसु तेसु जनपदेसु पब्बाजेथ उपसम्पादेथा ति।

(भगवान् ने कहा—) "अन्तक! ये जो रूप, शब्द, रस, गन्ध और स्प्रष्टव्य सांसारिक विषय हैं उनमें मेरी आसक्ति (राग) पूर्णतः विगलित हो चुकी है। अतः मैं तुम्हारे बन्धन में आने से रहा! अब तो तुम ही अपने आप को विनष्ट समझो।"

तब पापी मार—"भगवान् मेरी सच्चाई जान गये, सुगत मेरी वास्तविकता जान गये"—यह समझ कर दुःखी और दौर्मनस्ययुक्त होकर वहीं अन्तर्हित हो गया।।

मारकथा समाप्त।।

११. प्रव्रज्योपसम्पदाकथा

३४. उस समय (धर्मचक्रप्रवर्तन के बाद) कई भिक्षु नाना दिशाओं से, नाना जनपदों से प्रव्रज्या चाहने वाले अनेक अधिकारी पुरुषों को लेकर आते थे कि भगवान् इन्हें प्रव्रज्या दें, उपसम्पदा दें। परन्तु प्रवज्या की सभी सुविधाएँ उपलब्ध न होने के कारण, भिक्षु भी और प्रवज्या तथा उपसम्पदा चाहने वाले प्रत्याशी पुरुष भी दुःखी होते थे, कष्ट पाते थे। तब कभी एकान्त में ध्यानमग्न (पटिसल्लीन) बैठे भगवान् के मन में यह विचार उठा—"इस समय ये अनेक भिक्षु प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा के इच्छुक अनेक प्रत्याशियों को यहाँ लेते हैं कि भगवान् इन्हें प्रव्रजित करें, उपसम्पन्न करें। परन्तु समय से उनको प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा मिल नहीं पाती, अतः भिक्षु और ये प्रत्याशी—दोनो ही चित्त में दुःखी होते हैं। तो क्यों न मैं अब आगे से भिक्षुओं को ही यह अधिकार (अनुज्ञा) दे दूँ कि वे ही उन उन नाना दिशाओं तथा नाना जनपदों में जाकर उन्हें प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा दें।"

तब भगवान् ने सन्ध्या के समय ध्यानभावना से उठकर भिक्षुसङ्घ को एकत्र कर धर्मकथा करते हुए उन्हें बताया कि "आज मुझे एकान्त मे बैठे हुए यह विचार आया...पूर्ववत्...एवं उपसम्पदा

"एवं च पन, भिक्खवे, पब्बाजेतब्बो उपसम्पादेतब्बो—पठमं केसमस्सुं ओहारापेत्वा, कासायानि वत्थानि अच्छादापेत्वा, एकंसं उत्तरासङ्गं कारापेत्वा, भिक्खूनं पादे वन्दापेत्वा, उक्कुटिकं निसीदापेत्वा, अञ्जलिं पग्गण्हापेत्वा, 'एवं वदेही'ति वत्तब्बो—बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, सङ्घं सरणं गच्छामि; दुतियं पि बुद्धं सरणं गच्छामि, दुतियं पि धम्मं सरणं गच्छामि, दुतियं पि सङ्घं सरणं गच्छामि; ततियं पि बुद्धं सरणं गच्छामि, ततियं पि धम्मं सरणं गच्छामि, ततियं पि सङ्घं सरणं गच्छामी" ति।

"अनुजानामि, भिक्खवे, इमेहि तीहि सरणगमनेहि पब्बज्जं उपसम्पदं" ति।

तीहि सरणगमनेहि उपसम्पदाकथा निट्ठिता॥

१२. दुतियमारकथा

३५. अथ खो भगवा वस्संवुट्ठो भिक्खू आमन्तेसि—"मय्हं खो, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा योनिसो सम्मप्पधाना अनुत्तरा विमुत्ति अनुप्पत्ता, अनुत्तरा विमुत्ति सच्छिकता। तुम्हे पि, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा योनिसो सम्मप्पधाना अनुत्तरं विमुत्तिं अनु-[B.30] पापुणाथ, अनुत्तरं विमुत्तिं सच्छिकरोथा" ति। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"बद्धोसि मारपासेहि ये दिब्बा ये च मानुसा।
महाबन्धनबद्धोसि न मे, समण, मोक्खसी"॥ ति॥

दें। अतः भिक्षुओ! आज से मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ कि तुम स्वयं ही उन उन दिशाओं तथा जनपदों में अधिकारी प्रत्याशियों को प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा दिया करो।

"**प्रवज्या एवं उपसम्पदा देने की विधि** यह रहेगी—पहले दाढ़ी मूँछ मुँड़वाकर, काषाय वस्त्र धारण करा कर, एक कन्धे पर उत्तरासङ्ग (दुपट्टा) करवाकर, भिक्षुओं की चरणवन्दना कराकर, उकड़ू (उत्कुटिक) बैठाकर, हाथ जुड़वा कर, 'ऐसा बोलो' कह कर, उस प्रत्याशी से उच्चारण करवाओ—'मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ, धर्म की शरण मे जाता हूँ, सङ्घ की शरण में जाता हूँ;' दूसरी बार भी—'मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ, धर्म की शरण में जाता हूँ, सङ्घ की शरण में जाता हूँ;' तीसरी बार भी—'मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ, धर्म की शरण में जाता हूँ, सङ्घ की शरण में जाता हूँ।'

भिक्षुओ! मैं इस त्रिविध शरणगमन से प्रवज्या एव उपसम्पदा देने की अनुमति देता हूँ।।"

तीन शरणगमनों से उपसम्पदाविधिकथा सम्पूर्ण।।

१२. द्वितीय मारकथा

३५. तब भगवान् ने वर्षावास के समय भिक्षुओं को बताया—"भिक्षुओ! मैंने योनिशः (सूक्ष्मतया) मनस्कार करके, योनिशः मोक्ष की साधना करके ही इस अनुपम मुक्ति को प्राप्त किया है, इस अनुपम मुक्ति का साक्षात्कार किया है। तुम भी योनिशः मनस्कार तथा साधना करके इस अनुपम मुक्ति को प्राप्त करो, इसका साक्षात्कार करो।"

उसी समय, पापी मार जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर उसने इन गाथाओं के माध्यम से यह कहा—

"हे श्रमण! जो भी दिव्य या मानव कामभोगों के मेरे बन्धन हैं आप उन के दृढ़ बन्धन से बन्धे हुए हो। अब आप मेरे द्वारा किसी भी स्थिति में छुटकारा नहीं पा सकते।"

"मुत्ताहं मारपासेहि ये दिब्बा ये च मानुसा।
महाबन्धनमुत्तोम्हि निहतो त्वमसि, अन्तका" ति॥

अथ खो मारो पापिमा—"जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो" ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायि॥

दुतियमारकथा निट्ठिता॥

१३. भद्दवग्गियवत्थु

[N.25, R.23] ३६. अथ खो भगवा बाराणसियं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन उरुवेला तेन चारिकं पक्कामि। अथ खो भगवा मग्गा ओक्कम्म येन अञ्ञतरो वनसण्डो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा तं वनसण्डं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसीदि। तेन खो पन समयेन तिंसमत्ता भद्दवग्गिया सहायका सपजापतिका तस्मिं येव वनसण्डे परिचारेन्ति। एकस्स पजापति नाहोसि; तस्सत्थाय वेसी अनीता अहोसि। अथ खो सा वेसी तेसु पमत्तेसु परिचारेन्तेसु भण्डं आदाय पलायित्थ। अथ खो ते सहायका सहायकस्स वेय्यावच्चं करोन्ता, तं इत्थिं गवेसन्ता, तं वनसण्डं आहिण्डन्ता अद्दसंसु भगवन्तं अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसिन्नं। दिस्वान येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोचुं—"अपि, भन्ते, भगवा एकं इत्थिं पस्सेय्या" ति? "किं पन वो, कुमारा, इत्थिया" ति? 'इध मयं, भन्ते, तिंसमत्ता भद्दवग्गिया सहायका सपजातिका इमस्मिं वनसण्डे परिचारिम्हा। एकस्स

(भगवान् बोले—) "अन्तक! जो दिव्य और मानव तेरे द्वारा रचित बन्धन हैं, उनसे मैं तो पूर्णतः मुक्त हो चुका हूँ। अब तो विनष्ट होने का तेरा अवसर उपस्थित हो गया है।"

तब पापी मार ने यह सोचकर कि भगवान् मेरी सत्य स्थिति जान गये, सुगत मेरी वास्तविकता जान गये— दुःखी एवं दौर्मनस्ययुक्त होकर, वहाँ से हट जाने में ही अपनी भलाई समझी और वह वहीं अन्तर्हित हो गया।।

द्वितीय मारकथा समाप्त।।

१३. भद्रवर्गीयकथा

३६. तब भगवान् वाराणसी में इच्छानुसार साधना सम्पन्न कर, उरुवेला की तरफ चारिका हेतु निकल पड़े। तब भगवान्, मार्ग में चलते हुए, मार्ग से थोड़ा हटकर किसी सघन वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम करने लगे। उस समय संख्या में तीस (३०) भद्रवर्गीय पुरुष, जो कि परस्पर मित्र थे, अपनी अपनी पत्नियों के साथ उसी वनषण्ड (वनप्रदेश) में घूम रहे थे। उन तीस मित्रों में से एक को पत्नी नहीं थी, उसके मनोविनोद के लिये वे लोग एक वेश्या ले आये थे। वह वेश्या, जब वे उन्मत्त होकर अपने में असावधान रहते हुए घूम रहे थे, उनका बहुमूल्य सामान लेकर भाग गयी। तब उन सब मित्रों ने अपने उस एकाकी मित्र की सहायता हेतु उस वेश्या को खोजना प्रारम्भ किया। उसकी खोज में उस वनप्रदेश में घूमते घूमते वे लोग वहाँ जा पहुँचे जहाँ भगवान् जिस वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे।

वहाँ जाकर उन लोगों ने भगवान् से पूछा—"भन्ते! क्या श्रीमान् ने इधर से जाती हुई किसी स्त्री को देखा है?" "कुमारो! तुम्हें उस स्त्री से क्या प्रयोजन है?" "भन्ते! बात यह है कि हम परस्पर एक दूसरे के साथी, संख्या में तीस, इन वनषण्ड में घूमने की दृष्टि से अपनी अपनी पत्नियों के साथ आये थे। हममें से एक के पास उसकी अपनी पत्नी नहीं थी। अतः उसके लिये हमने एक वेश्या का

पजापति नाहोसि; तस्सत्थाय वेसी आनीता अहोसि। अथ खो सा, भन्ते, वेसी [B.31] अम्हेसु पमत्तेसु परिचारेन्तेसु भण्डं आदाय पलायित्थ। ते मयं, भन्ते, सहायका सहायकस्स वेय्यावच्चं करोन्ता, तं इत्थिं गवेसन्ता, इमं वनसण्डं आहिण्डामा'' ति। ''तं किं मञ्ञथ वो, कुमारा, कतमं नु खो तुम्हाकं वरं—यं वा तुम्हे इत्थिं गवेसेय्याथ, यं वा अत्तानं गवेसेय्याथा'' ति? ''एतदेव, भन्ते, अम्हाकं वरं यं मयं अत्तानं गवेसेय्यामा'' ति। ''तेन हि वो, कुमारा, निसीदथ, धम्मं वो देसेस्सामी'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो ते भद्दवग्गिया सहायका भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। तेसं भगवा अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथीदं—दानकथं सीलकथं.....पे०.... 'यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं' ति। ते दिट्ठधम्मा पत्तधम्मा विदितधम्मा परियोगाळ्हधम्मा तिण्णविचिकिच्छा विगतकथङ्कथा वेसारज्जप्पत्ता अपरप्पच्चया सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोचुं—''लभेय्याम मयं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्याम उपसम्पदं'' ति। ''एथ, भिक्खवो'' ति भगवा [R.24] अवोच— ''स्वाक्खातो धम्मो, चरथ ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया'' ति। सा व तेसं आयस्मन्तानं उपसम्पदा अहोसि।

भद्दवग्गियसहायकानं वत्थु निट्ठितं॥

दुतियभाणवारो निट्ठितो॥

१४. उरुवेलपटिहारियकथा

३७. अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन उरुवेला तदवसरि। तेन खो

प्रबन्ध किया था। भन्ते! वह वेश्या हमारी उन्मत्तावस्था का लाभ उठाती हुई, कुछ अमूल्य सामान उठाकर, कहीं भाग गयी। साथी की सहायता करना अपना कर्तव्य समझकर उसी को इन वनषण्ड में खोजते खोजते हम आप से पूछने के लिये चले आये हैं।'' ''तो क्या मानते हो, कुमारो! कि तुम्हारे लिये उस वेश्या का खोजना अधिक आवश्यक (उत्तम) है? या तुम्हें अपने आप का अन्वेषण करना अधिक आवश्यक है?—इन दोनों में तुम किस कार्य को उत्तम समझते हो?'' ''उत्तम तो यही है, भन्ते! कि हम अपने विषय में खोज करें।'' ''तो कुमारो! यहाँ मेरे पास बैठो, मैं तुम्हें उस धर्म का उपदेश करूँगा (जो तुम्हें अपने विषय में खोज करने में सहायक होगा)।''

''अच्छा, भन्ते'' कहकर वे भद्रवर्गीय कुमार भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। (एक तरफ बैठे) उन कुमारों को भगवान् ने क्रमशः (आनुपूर्वी) धर्मकथा कहना प्रारम्भ किया। जैसे—दानकथा, शीलकथा....पूर्ववत्....जो कुछ भी उत्पत्तिधर्मा पदार्थ हैं, वे सब विनाशशील हैं। वे इस धर्म को सही ढंग से जानकर, प्राप्त कर, अवगाहन कर, सभी प्रकार के शङ्का–सन्देहों से दूर होकर, दक्षता प्राप्त कर, दूसरे आचार्यों के मतों पर विश्वास न करते हुए, शास्ता के कथन पर श्रद्धा रखते हुए भगवान् से यों बोले—''अच्छा होता, भन्ते! कि हम श्रीमान् से प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा प्राप्त कर लेते।'' ''आओ, भिक्षुओ''—कहकर भगवान् फिर कहने लगे—(''तुम्हारे लिये) मैंने धर्म का भलीभाँति व्याख्यान कर दिया है। इस धर्म का तुम भलीभाँति आचरण करते हुए अभ्यास करो। यही, समय आने पर, तुम्हारे सभी दुःखों का सर्वथा क्षय करने में अवश्य समर्थ होगा।'' भगवान् द्वारा प्रोक्त विधि ही उनकी उपसम्पदा हो गयी।

भद्रवर्गीय सहायकों की कथा समाप्त।।

द्वितीय भाणवार समाप्त।।

पन समयेन उरुवेलायं तयो जटिला पटिवसन्ति—उरुवेलकस्सपो, नदीकस्सपो, गयाकस्सपो [N.26, B.32] ति। तेसु उरुवेलकस्सपो जटिलो पञ्चन्नं जटिलसतानं नायको होति, विनायको अग्गो पमुखो पामोक्खो। नदीकस्सपो जटिलो तिण्णं जटिलसतानं नायको होति, विनायको अग्गो पमुखो पामोक्खो। गयाकस्सपो जटिलो द्विन्नं जटिलसतानं नायको होति, विनायको अग्गो पमुखो पामोक्खो।

अथ खो भगवा येन उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स अस्समो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा उरुवेलकस्सपं जटिलं एतदवोच—"सचे ते, कस्सप, अगरु, वसेय्याम एकरत्तं अग्यागारे" ति? "न खो मे, महासमण, गरु, अपि च खो चण्डेत्थ नागराजा इद्धिमा आसिविसो घोरविसो, सो तं मा विहेठेसी" ति। दुतियं पि खो भगवा उरुवेलकस्सपं जटिलं एतदवोच—"सचे ते, कस्सप, अगरु, वसेय्याम एकरत्तं अग्यागारे" ति? "न खो मे, महासमण, गरु....पे०.... विहेठेसी" ति। ततियं पि खो भगवा उरुवेलकस्सपं जटिलं एतदवोच—"सचे ते, कस्सप, अगरु....पे०....अग्यागारे" ति? "न खो मे, महासमण, गरु....पे०....विहेठेसी" ति। "अप्पेव मं न विहेठेय्य, इङ्घ त्वं, कस्सप, अनुजानाहि अग्यागारं" ति। "विहर, महासमण, यथासुखं" ति। अथ खो भगवा अग्यागारं पविसित्वा तिणसन्थरकं पञ्ञापेत्वा निसीदि पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। अद्दसा खो सो नागो भगवन्तं पविट्ठं, दिस्वान दुक्खी दुम्मनो पधूपायि।

[R.25] ३८. अथ खो भगवतो एतदहोसि—"यन्नूनाहं इमस्स नागस्स अनुपहच्च छविं च

---

१४. ऊरुवेलप्रातिहार्यकथा

३७. तब भगवान् क्रमशः चारिका करते हुए जहाँ उरुवेला नगरी थी, वहाँ पहुँचे। उस समय उरुवेला में तीन जटिल (परिव्राजक) रहते थे। जैसे—१. उरुवेलकाश्यप, २. नदीकाश्यप एवं ३. गया काश्यप। उनमें उरुवेल काश्यप जटिल पाँच सौ जटिलों का नायक, विनायक, अग्र, प्रमुख या प्रधान था। नदीकाश्यप जटिल तीन सौ जटिलों का नायक... एवं गयाकाश्यप जटिल दो सौ जटिलों का नायक....प्रधान था। तब भगवान् उरुवेलकाश्यप जटिल के आश्रम पर पहुँचे, पहुँचकर उरुवेलकाश्यप से कहा—"हे काश्यप! यदि तुम्हें भार न ज्ञात हो तो मैं एक रात्रि तुम्हारी अग्निशाला में विश्राम कर लूँ।" (जटिल ने कहा—) "महाश्रमण! मुझे तो कोई भार नहीं है, परन्तु इस अग्निशाला में एक ऋद्धिमान् प्रचण्ड, घोर विषवाला नागराज (विशाल सर्प) रहता है मुझे भय है कि कहीं वह तुम्हें कोई हानि न पहुँचाये"।

दूसरी बार भी भगवान् ने उस जटिल से कहा—"भो काश्यप! यदि तुम्हें भार न...पूर्ववत्....।

तीसरी बार भी भगवान् ने उस जटिल से कहा—"भो काश्यप! यदि ...पूर्ववत्... ।

भगवान् ने कहा—"काश्यप! हो सकता है, नागराज मुझे कोई हानि नहीं पहुँचा पाये, तुम केवल मुझे वहाँ रहने की स्वीकृति दे दो!" "तो ठीक है, महाश्रमण! मेरी तरफ से, आपको जैसे सुख मिले, आपको वहाँ रहने की स्वीकृति है।" तब भगवान् उस अग्न्यागार में जाकर पुआल (तृण–राशि) बिछाकर, आसन लगाकर, शरीर को सीधा (सरल) कर, स्मृति को स्थिर कर बैठ गये। उस नागराज ने भगवान् को उस अग्न्यागार में प्रविष्ट होते हुए देख लिया। देखकर नागराज ने क्रोधपूर्वक (विषमिश्रित) धूआँ फेंकना प्रारम्भ किया।

३८. तब भगवान् को यह विचार आया—"क्यों न मैं इस सर्प की त्वचा, मांस, स्नायु, अस्थि

चम्मं च मंसं च न्हारुं च अट्ठिं च अट्ठिमिञ्जं च तेजसा तेजं परियादियेय्यं'' ति। अथ खो भगवा तथारूपं इद्धाभिसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा पधूपायि। अथ खो सो नागो मक्खं असहमानो पज्जलि। भगवा पि तेजोधातुं समापज्जित्वा पज्जलि। उभिन्नं सजोतिभूतानं अग्यागारं आदित्तं विय होति सम्पज्जलितं सजोतिभूतं। अथ खो ते जटिला अग्यागारं परिवारेत्वा एवं आहंसु— ''अभिरूपो वत भो महासमणो नागेन विहेठियती'' ति। अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन तस्स नागस्स अनुपहच्च छविं च चम्मं च मंसं च न्हारुं च अट्ठिं च [B.33] अट्ठिमिञ्जं च तेजसा तेजं परियादियित्वा पत्ते पक्खिपित्वा उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स दस्सेसि—''अयं ते, कस्सप, नागो परियादिन्नो अस्स तेजसो तेजो'' ति। अथ खो उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स एतदहोसि—''महिद्धिको खो महासमणो महानुभावो, यत्र हि नाम चण्डस्स नागराजस्स इद्धिमतो आसिविसस्स घोरविसस्स तेजसा तेजं परियादियिस्सति, न त्वेव च खो अरहा यथा अहं'' ति।

३९. ''नेरञ्जरायं भगवा उरुवेलकस्सपं जटिलं अवोच।
सचे ते कस्सप अगरु विहरेमु अज्जुण्हो अग्गिसालम्ही''॥ ति॥ १॥
''न खो मे महासमण गरु फासुकामो व तं निवारेमि। [N.27]
चण्डेत्थ नागराजा इद्धिमा आसिविसो घोरविसो सो तं मा विहेठेसी''॥ ति॥२॥
''अप्पेव मं न विहेठेय्य इङ्घ त्वं कस्सप अनुजानाहि अग्यागारं ति।
दिन्नं ति नं विदित्वा अभीतो पाविसि भयमतीतो॥ ३॥

एवं मज्जा को कोई हानि पहुँचाये विना ही अपने तेज से इसके तेज को खींच लूँ।'' तब भगवान् वैसा ही ऋद्ध्यभिसंस्कार (चमत्कार) कर उसी तरह धूआँ फैंकने लगे। तब नागराज भगवान् की उस वृद्ध तेजस्विता को न सहन करता हुआ क्रोध से अग्नि फैंकने लगा। (इसे देखकर) भगवान् तेजोधातु में समाधिस्थ (समापन्न) होकर प्रज्वलित हो उठे। यों, दोनों के प्रज्वलित होने पर वह समग्र अग्न्यागार प्रचण्ड सूर्य की तरह प्रज्वलित एवं प्रकाशित लगने लगा। तब वे सभी जटिल, उस अग्निशाला को चारो तरफ से घेरकर यों कहने लगे—''अरे! परम दर्शनीय यह महाश्रमण तो नागराज द्वारा तग किया जा रहा है।'' भगवान् ने उस रात्रि के बीत जाने पर, उस नागराज की त्वचा, मांस आदि को विना कोई हानि पहुँचाये अपने तेज से उसका तेज खींचकर पात्र में डालकर उसे उरुवेलकाश्यप जटिल को दिखाया और कहा—''काश्यप! देख, यह तेरा नाग है। इसके तेज को मैंने अपने तेज से खींच लिया है। तब उरुवेल काश्यप के मन में यह हुआ—''यह महाश्रमण तो महानुभाव तथा अत्यधिक ऋद्धिसम्पन्न है। जिसने कि ऐसे दिव्य शक्तिसम्पन्न एवं घोरविष महानाग के तेज को अपने तेज से खींच लिया। किन्तु, फिर भी, यह मेरे जैसा अर्हत् तो नहीं ही है।''

३९. ''नेरअरा (के किनारे) पर उरुवेल काश्यप को भगवान् ने यह कहा—''यदि भो काश्यप! तुम्हें भार न हो तो आज भर मुझे अपनी अग्निशाला में विश्राम करने दो।। १।।''

''महाश्रमण! अपने किसी सुख या भार के कारण मैं तुम्हें वहाँ ठहरने में निषेध नहीं कर रहा, अपितु मैं इसलिये तुम्हें वहाँ ठहरने से निषेध कर रहा हूँ कि वहाँ एक दिव्य शक्तिसम्पन्न चण्ड (भयंकर क्रोधी) आशीविष = घोरविष नागराज रहता है। हो सकता है, वह तुम्हें कोई हानि पहुँचावे।। २।।''

''हो सकता है, काश्यप! वह मुझे कोई हानि न पहुँचावे। पहले आप तो मुझे वहाँ ठहरने की

"दिस्वा इसिं पविट्ठं अहिनागो दुम्मनो पधूपायि।
सुमनमनसो अधिमनो मनुस्सनागो पि तत्थ पधूपायि॥ ४॥
"मक्खं च असहमानो अहिनागो पावको व पज्जलि।
तेजोधातुसु कुसलो मनुस्सनागो पि तत्थ पज्जलि॥ ५॥
"उभिन्नं सजोतिभूतानं अग्यागारं उदिच्चरे जटिला।
अभिरूपो वत भो महासमणो नागेन विहेठियती ति भणन्ति॥ ६॥
[B.34] "अथ रत्तिया अच्चयेन अहिनागस्स अच्चियो न होन्ति।
इद्धितो पन ठिता अनेकवण्णा अच्चियो होन्ति॥ ७॥
"नीला अथ लोहितिका मञ्जेट्ठा पीतका फलिकवण्णायो।
अङ्गीरसस्स काये अनेकवण्णा अच्चियो होन्ति॥ ८॥
"पत्तम्हि ओदहित्वा अहिनागं ब्राह्मणस्स दस्सेसि।
अयं ते कस्सप नागो परियादिन्नो अस्स तेजसा तेजो"॥ ति॥ ९॥

[B.26] अथ खो उरुवेलकस्सपो जटिलो भगवतो इमिना इद्धिपाटिहारियेन अभिप्पसन्नो भगवन्तं एतदवोच—"इधेव, महासमण, विहर, अहं ते उपट्ठामि धुवभत्तेना" ति (१)

पठम पाटिहारियं॥

४०. अथ खो भगवा उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स अस्समस्स अविदूरे अञ्ञतरस्मिं

आज्ञा दें। जब भगवान् ने जान लिया कि महाश्रमण ने आज्ञा दे दी, तो वे, उस नागराज से कोई भय न खाते हुए, निर्भीक होकर उस अग्निशाला में आसन लगाकर बैठ गये।। ३।।"

"नागराज ने जब देखा कि महाश्रमण निर्भीक होकर अग्निशाला में विराजमान हो गये हैं, तो वह अत्यधिक दौर्मनस्ययुक्त होते हुए क्रोध से विषसम्पृक्त धूआँ फैंकने लगा। यह देखकर मानवश्रेष्ठ महाश्रमण भी उस नागराज को दण्ड देने हेतु विषसम्पृक्त धूआँ फैंकने लगे।। ४।।"

"इस प्रतिद्वन्द्विता को सहन न करते हुए उस नागराज ने क्रोध में भरकर, मुख से अग्नि उगलनी प्रारम्भ कर दी। यह देखकर तेजोधातुसाधना में प्रवीण महाश्रमण ने भी अग्निज्वाला का उत्तर अग्निज्वाला से ही दिया।। ५।।"

"उन दोनों द्वारा फैंकी गयी प्रचण्ड अग्नि से वह अग्निशाला प्रदीप्त हो उठी। यह देखकर बाहर खड़े लोग (जटिल) कह बैठे कि महानाग ने विषभरी फूत्कार से महाश्रमण को भस्म कर दिया है।। ६।।"

("परन्तु) तब रात्रि व्यतीत हाने पर लोगों को स्पष्ट होने लगा कि महानाग की विषभरी फूत्कार शान्त हो गयी और महाश्रमण की तेजोधातु से सम्पन्न अग्नि पहले की तरह जलती रही।। ७।।"

"भगवान् (अङ्गिरस्) के शरीर से प्रकट हुई अग्नि के नाना वर्ण थे, कभी वह नीली होती थी तो कभी लाल। कभी वह मञ्जीठ वर्ण की होती थी तो कभी पीली या फिर कभी हरी। यों रात्रिपर्यन्त उस अग्निशाला से नानावर्ण वाली अग्नियाँ दिखायी देती रहीं।। ८।।

"प्रातः काल होने पर महाश्रमण ने उस नागराज को पात्र में रखकर उरुवेल काश्यप जटिल के सम्मुख रख दिया और कहा कि देखो, तुम्हारे इस नाग का तेज मैंने अपने तेज से खींच लिया है।। ९।।"

तब उरुवेल काश्यप नाम जटिल ने, इस ऋद्धिप्रतिहार्य के देखने से प्रसन्न होकर, भगवान्

वनसण्डे विहासि। अथ खो चत्तारो महाराजानो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं वनसण्डं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा चतुद्दिसा अट्ठंसु, सेय्यथापि महन्ता अग्गिक्खन्धा। अथ खो उरुवेलकस्सपो जटिलो तस्सा रत्तिया अच्चयेन येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच— "कालो, महासमण, निट्ठितं भत्तं। के नु खो ते, महासमण, अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं वनसण्डं ओभासेत्वा येन त्वं तेनुपसङ्कमिंसु, उप-[B.35] सङ्कमित्वा तं अभिवादेत्वा चतुद्दिसा अट्ठंसु, सेय्यथापि महन्ता अग्गिक्खन्धा" ति? [N.28] "एते खो, कस्सप, चत्तारो महाराजानो येनाहं तेनुपसङ्कमिंसु धम्मस्सवनाया" ति। अथ खो उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स एतदहोसि—"महिद्धिको खो महासमणो महानुभावो, यत्र हि नाम चत्तारो पि महाराजानो उपसङ्कमिस्सन्ति धम्मस्सवनाय। न त्वेव च खो अरहा यथा अहं" ति। अथ खो भगवा उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स भत्तं भुञ्जित्वा तस्मिं येव वनसण्डे विहासि। (२)

दुतियं पाटिहारियं॥

४१. अथ खो सक्को देवानमिन्दो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं वनसण्डं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि, सेय्यथापि महाअग्गिक्खन्धो, पुरिमाहि वण्णनिभाहि अभिक्कन्ततरो च पणीततरो

से निवेदन किया—"आप कुछ दिन यही उरुवेला में विराजमान रहते हुए धर्मसाधना करते रहें। आप के दैनिक भोजन की व्यवस्था मैं करता रहूँगा।" (१)

प्रथम प्रतिहार्य वर्णन।।

४०. तब भगवान् उस जटिल उरुवेल काश्यप के आश्रम के समीप ही किसी दूसरे वनखण्ड में साधनाहेतु विराजे। तब देदीप्यमान वर्णवाले चारों (दिशाओं के देवता) महाराज चान्दनी रात में प्रायः उस समग्र (केवलकल्प) वनषण्ड को प्रकाशित करते हुए, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ, पहुँचे। पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर वे चार तरफ खड़े हो गये, जैसे चार अग्निस्तम्भ हों। तब उस रात्रि के व्यतीत होने पर वह उरुवेल काश्यप जटिल जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर भगवान् से यों बोले—"महाश्रमण! (भोजन का) समय हो गया है। भोजन बन चुका है। (एक बात और बताइये—) रात में वे लोग कौन थे, जो चान्दनी रात में प्रायः समग्र वनषण्ड को देदीप्यमान करते हुए आप के पास आये थे, आप के पास आकर आप को प्रणाम कर चारों दिशाओं में खड़े रहे, मानों चार विशाल अग्निस्कन्ध हों?" "काश्यप! ये चारों दिशाओं के महाराज थे जो मेरे पास धर्मश्रवण हेतु आये थे।" यह सुनकर उस जटिल उरुवेल काश्यप के मन में यह हुआ कि "यह महाश्रमण महानुभाव भी है और अत्यधिक ऋद्धिसम्पन्न भी कि जिसके पास धर्मश्रवण हेतु चारों महाराज जैसे बड़े बड़े देवता भी आते हैं। फिर भी यह वैसा अर्हत् तो नहीं है, जैसा कि मैं हूँ।" तब भगवान् उरुवेलकाश्यप के यहाँ भोजन कर उसी वनषण्ड में साधनाहेतु रम गये।। (२)

द्वितीय प्रातिहार्यवर्णन।।

४१. तब दिव्यवर्ण वाले देवेन्द्र शक्र चान्दनी रात में प्रायः उस समग्र वनषण्ड को अपने तेज से अवभासित करते हुए जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर खड़े हो गये जैसे कोई देदीप्यमान अग्निस्कन्ध हो। यह अग्निस्कन्ध पूर्व रात्रि वाले

च। अथ खो उरुवेलकस्सपो जटिलो तस्सा रत्तिया अच्चयेन येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—"कालो, महासमण, निट्ठितं भत्तं। को नु खो सो, महासमण, अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं वनसण्डं ओभासेत्वा येन त्वं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि, सेय्यथापि महाअग्गिक्खन्धो, पुरिमाहि वण्णनिभाहि अभिक्कन्तरो च पणीततरो चा" ति? "एसो खो, कस्सप, सक्को देवानमिन्दो येनाहं तेनुपसङ्कमि धम्मस्सवनाया" ति। अथ खो उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स एतदहोसि—"महिद्धिको खो महासमणो महानुभावो, यत्र हि नाम सक्को पि देवानमिन्दो [R.27] उपसङ्कमिस्सति धम्मस्सवनाय, न त्वेव न खो अरहा यथा अहं" ति। अथ खो भगवा उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स भत्तं भुञ्जित्वा तस्मिं येव वनसण्डे विहासि। (३)

ततियं पाटिहारियं।।

[B.36] ४२. अथ खो ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवल कप्पं वनसण्डं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि, सेय्यथापि महाअग्गिक्खन्धो, पुरिमाहि वण्णनिभाहि अभिक्कन्ततरो च पणीततरो च। अथ खो उरुवेलकस्सपो जटिलो तस्सा रत्तिया अच्चयेन येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—"कालो, महासमण, निट्ठितं भत्तं। को नु खो सो, महासमण, अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं वनसण्डं ओभासेत्वा येन त्वं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि, सेय्यथापि महाअग्गिक्खन्धो, पुरिमाहि वण्णनिभाहि अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा" ति? "एसो खो, कस्सप, ब्रह्मा सहम्पति येनाहं तेनुपसङ्कमि धम्मस्सवनाया" ति। अथ खो उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स एतदहोसि—"महिद्धिको खो महासमणो महानुभावो, यत्र हि नाम ब्रह्मा पि सहम्पति [N.29] उपसङ्कमिस्सति धम्मस्सवनाय, न त्वेव च खो अरहा यथा अहं" ति। अथ खो भगवा उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स भत्तं भुञ्जित्वा तस्मिं येव वनसण्डे विहासि। (४)

चतुत्थं पाटिहारियं।।

४३. तेन खो पन समयेन उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स महायञ्ञो पच्चुपट्ठितो

अग्निस्कन्धों की अपेक्षा प्रकाश और आकार—दोनों में अधिक था। तब उस रात्रि के बीत जाने पर वह उरुवेल काश्यप जटिल, जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और आकर बोले—"महाश्रमण!... पूर्ववत्... प्रकाश और आकार—दोनो में अधिक था।" "काश्यप! यह देवेन्द्र शक्र था जो मेरे पास धर्मश्रवण हेतु आया था।" तब उरुवेल काश्यप जटिल के मन में हुआ—"यह महाश्रमण....पूर्ववत् ..फिर भी यह वैसा अर्हत् नहीं जैसा मैं हूँ।"

तब भगवान् उरुवेल काश्यप के यहाँ भोजन कर उसी वनषण्ड में साधनाहेतु प्रवेश कर गये।।

तृतीय प्रतिहार्यवर्णन।।

४२. तब देदीप्यमान रूप वाले ब्रह्मा सहम्पति उस चान्दनी रात में....पूर्ववत्...धर्मश्रवण हेतु आते हैं। फिर भी वह वैसा अर्हत् नहीं जैसा मैं हूँ। तब भगवान् उरुवेल काश्यप जटिल के यहाँ भोजन कर उसी वनषण्ड में साधनाहेतु प्रवेश कर गये।।

चतुर्थ प्रतिहार्य वर्णन।।

होति, केवलकप्पा च अङ्गमगधा पहूतं खादनीयं भोजनीयं आदाय अभिक्कमितुकामा होन्ति। अथ खो उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स एतदहोसि—"एतरहि खो मे महायञ्ञो पच्चुपट्ठितो, केवलकप्पा च अङ्गमगधा पहूतं खादनीयं भोजनीयं आदाय अभिक्कमिस्सन्ति। सचे महासमणो महाजनकाये इद्धिपाटिहारियं करिस्सति, महासमणस्स लाभसक्कारो अभिवड्ढिस्सति, मम लाभसक्कारो परिहायिस्सति। अहो नून महासमणो स्वातनाय नागच्छेय्या" ति। अथ खो भगवा उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कं अञ्ञाय उत्तरकुरुं गन्त्वा [R.28] ततो पिण्डपातं आहरित्वा अनोतत्तदहे परिभुञ्जित्वा तत्थेव दिवाविहारं अकासि।

अथ खो उरुवेलकस्सपो जटिलो तस्सा रत्तिया अच्चयेन येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच— "कालो, महासमण, निट्ठितं भत्तं। किं नु खो, [B.37] महासमण, हिय्यो नागमासि? अपि च मयं तं सराम—'किं नु खो महासमणो नागच्छती' ति? खादनीयस्स च भोजनीयस्स च ते पटिविंसो ठपितो" ति। "ननु ते, कस्सप, एतदहोसि— 'एतरहि खो मे महायञ्ञो पच्चुपट्ठितो.....पे०.....स्वातनाय नागच्छेय्या' ति। सो खो अहं, कस्सप, तव चेतसा चेतोपरिवितक्कं अञ्ञाय उत्तरकुरुं गन्त्वा ततो पिण्डपातं आहरित्वा अनोतत्तदहे परिभुञ्जित्वा तत्थेव दिवाविहारं अकासिं" ति। अथ खो उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स एतदहोसि—'महिद्धिको खो महासमणो महानुभावो, यत्र हि नाम चेतसा पि चित्तं पजानिस्सति, न त्वेव च खो अरहा यथा अहं" ति। अथ खो भगवा उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स भत्तं भुञ्जित्वा तस्मिं येव वनसण्डे विहासि। (५)

पञ्चमं पटिहारियं।।

---

४३. उस समय, उरुवेल काश्यप जटिल के आश्रम पर एक वृहत् यज्ञ का आयोजन होने वाला था, जिसमें प्रायः सभी अङ्ग–मगधवासी धनिकजन बहुत सी खादय भोज्य सामग्री साथ लेकर उपस्थित होने वाले थे। तब उरुवेलकाश्यप के मन में यह हुआ—"इस समय मेरे आश्रम पर वृहत् यज्ञ का आयोजन होने जा रहा है, उसमें प्रायः सभी अङ्ग –मगधवासी धनिक नागरिक कुछ न कुछ खादय सामग्री लेकर सम्मिलित होंगे। यदि उस समय इस महाश्रमण ने जनसमुदाय के सम्मुख कोई विशिष्ट चमत्कार दिखा दिया तो इस महाश्रमण का लाभ–सत्कार बढ़ेगा और मेरा घट जायगा। अतः अच्छा होता कि कल से महाश्रमण मेरे यहाँ (भोजन करने के लिये) न आते।" तब भगवान् ने उरुवेलकाश्यप जटिल के मन की बात अपने मन से जान कर, उत्तरकुरु देश में जाकर वहाँ भिक्षा कर, अनवतप्त दह (सरोवर) पर आकर उसे खा कर, वहाँ दिन की साधना (दिवाविहार) में लग गये।

उरुवेलकाश्यप जटिल उस रात्रि के बीतने पर भगवान्. .के पास जा कर बोला—"महाश्रमण! भोजन का समय हो गया है, उचित समझें तो आप भोजन कर लें। और हाँ! कल आप नहीं आये। कल आप कहाँ चले गये थे? हम प्रतीक्षा ही करते रह गये कि महाश्रमण आज क्यो नहीं आ रहे हैं? आप के भोजन का भाग (अंश) अब भी रखा हुआ है।" "काश्यप! कल तुम्हारे ही मन में तो यह विचार हुआ था कि आज मेरे यहाँ वृहत् यज्ञ का....महाश्रमण न आवें। काश्यप! तुम्हारे मन की यह बात मैंने अपने मन से जान ली थी, अत. मैं उत्तरकुरु देश में जाकर....वहीं दिवाविहार में लग गया।" तब उरुवेल के मन में यह हुआ कि "यह महाश्रमण अत्यधिक ऋद्धिसम्पन्न है....फिर भी यह मेरे समान अर्हत् तो नहीं ही है।" तब भगवान् उरुवेलकाश्यप के आश्रम पर भोजन कर उसी वनषण्ड में साधना हेतु चले गये।।

पञ्चम प्रातिहार्य वर्णन।।

४४. तेन खो पन समयेन भगवतो पंसुकूलं उप्पन्नं होति। अथ खो भगवतो एतदहोसि— "कत्थ नु खो अहं पंसुकूलं धोवेय्यं" ति? अथ खो सक्को देवानमिन्दो भगवतो चेतसा चेतोपरिवितक्कं अञ्ञाय पाणिना पोक्खरणिं खनित्वा भगवन्तं एतदवोच— "इध, भन्ते, भगवा पंसुकूलं धोवतू" ति। अथ खो भगवतो एतदहोसि— "किम्हि नु खो अहं पंसुकूलं परिमद्देय्यं" ति? अथ खो सक्को देवानमिन्दो भगवतो चेतसा चेतोपरिवितक्कं अञ्ञाय महतिं सिलं उपनिक्खिपि— "इध, भन्ते, भगवा पंसुकूलं परिमद्दतू" ति। अथ खो भगवतो एतदहोसि— "किम्हि नु खो अहं आलम्बित्वा उत्तरेय्यं" ति? अथ खो ककुधे अधिवत्था देवता भगवतो चेतसा चेतोपरिवितक्कं अञ्ञाय साखं ओनामेसि— [N.30; B.38] "इध, भन्ते, भगवा आलम्बित्वा उत्तरतू" ति। अथ खो भगवतो एतदहोसि— [R.29] "किम्हि नु खो अहं पंसुकूलं विस्सज्जेय्यं" ति? अथ खो सक्को देवानमिन्दो भगवतो चेतसा चेतोपरिवितक्कं अञ्ञाय महतिं सिलं उपनिक्खिपि— "इध, भन्ते, भगवा पंसुकूलं विस्सज्जेतू" ति।

अथ खो उरुवेलकस्सपो जटिलो तस्सा रत्तिया अच्चयेन येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच— "कालो, महासमण, निट्ठितं भत्तं। किं नु खो, महासमण, नायं पुब्बे इध पोक्खरणी, सायं इध पोक्खरणी। न यिमा सिला पुब्बे उपनिक्खित्ता। केनिमा सिला उपनिक्खित्ता? नयिमस्स ककुधस्स पुब्बे साखा ओनता, सायं साखा ओनता" ति। "इध मे, कस्सप, पंसुकूलं उप्पन्नं अहोसि। तस्स मय्हं, कस्सप, एतदहोसि— "कत्थ नु खो अहं पंसुकूलं धोवेय्यं" ति? अथ खो, कस्सप, सक्को देवानमिन्दो मम चेतसा चेतोपरिवितक्कं....पे०....'पंसुकूलं धोवतू' ति। सायं अमनुस्सेन पाणिना खनिता पोक्खरणी।

---

४४. उस समय भगवान् को रास्ते में पड़े हुए कुछ पुराने कपड़े (पंसुकूल) मिल गये। तब भगवान् के मन में यह विचार आया—"मैं इस पंसुकूल को कहाँ धोऊँ?" उस समय देवेन्द्र शक्र ने भगवान् के मन में उठे वे विचार अपने मन से जान कर उसी स्थान पर अपने हाथों से खोदकर एक पुष्करिणी (जलाशय) बना कर भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! आप यहाँ इस पांशुकूल को धो लें।" तब भगवान् के मन में यह आया—"अब इसे धोऊँ कहाँ? तब....शक्र ने एक बड़ी शिला लाकर रख दी (और कहा—) "इस पर आप इस पांशुकूल को धो लें।" तब भगवान् के मन में यह हुआ "किस पर सहारा लेकर इस पुष्करिणी में ऊतरूँ?" तब पास में ही खड़े ककुध वृक्ष के अधिवासी देवता ने भगवान् के मन की बात जानकर उस वृक्ष की शाखा नीचे झुका कर कहा—"भन्ते! आप इस शाखा का सहारा (आलम्बन) लेकर उतर जाँय।" तब भगवान् के मन में यह बात आयी—"मैं इस धोए हुए पांशुकूलों को कहाँ फैलाऊँगा?" तब देवेन्द्र शक्र ने भगवान् के मन की बात जानकर वहाँ एक शिला लाकर रख दी और कहा—"भन्ते! इस शिला पर आप इस पांशुकूल को सुखावें।"

तब उरुवेल काश्यप जटिल, उस रात्रि के व्यतीत होने पर, भगवान् के पास गये और निवेदन किया—"महाश्रमण! भोजन का समय उपस्थित है। भोजन बन चुका है। अब आप जैसा उचित समझें।" (फिर वनषण्ड मे चारों तरफ देखा और आश्चर्यचकित होते हुए उसने पूछा—) "महाश्रमण!

तस्स मय्हं, कस्सप, एतदहोसि—"किम्हि नु खो अहं पंसुकूलं परिमद्देय्यं" ति? अथ खो, कस्सप, सक्को देवानमिन्दो मम चेतसा चेतोपरिवितक्कं अञ्ञाय महतिं सिलं उपनिक्खिपि—'इध, भन्ते, भगवा पंसुकूलं परिमद्दतू' ति। सायं अमनुस्सेन उपनिक्खित्ता सिला। तस्स मय्हं, कस्सप, एतदहोसि—"किम्हि नु खो अहं आलम्बित्वा उत्तरेय्यं" ति? अथ खो, कस्सप, ककुधे अधिवत्था देवता मम चेतसा चेतोपरिवितक्कं अञ्ञाय साखं ओनामेसि—'इध, भन्ते, भगवा आलम्बित्वा उत्तरतू' ति। स्वायं आहरहत्थो ककुधो। तस्स मय्हं, कस्सप, एतदहोसि—"किम्हि नु खो अहं पंसुकूलं विस्सज्जेय्यं ति? अथ खो, कस्सप, सक्को देवानमिन्दो मम चेतसा चेतोपरिवितक्कं अञ्ञाय महतिं सिलं उपनिक्खिपि—'इध, भन्ते, भगवा पंसुकूलं विस्सज्जेतू' ति। सायं अमनुस्सेन उपनिक्खित्ता सिला" ति। अथ खो उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स एतदहोसि—"महिद्धिको खो महासमणो महानुभावो, यत्र हि नाम सक्को पि देवानमिन्दो वेय्यावच्चं करिस्सति,न त्वेव च खो अरहा यथा अहं" ति। अथ खो भगवा उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स भत्तं भुञ्जित्वा तस्मिं येव वनसण्डे विहासि। (६)

४५. अथ खो उरुवेलकस्सपो जटिलो तस्सा रत्तिया अच्चयेन येन भगवा [B.39] तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवतो कालं आरोचेसि—"कालो, महासमण, निट्ठितं भत्तं" ति। "गच्छ त्वं, कस्सप, आयामहं" ति उरुवेलकस्सपं जटिलं उय्योजेत्वा याय [R.30] जम्बुया 'जम्बुदीपो' पञ्ञायति, ततो फलं गहेत्वा पठमतरं आगन्त्वा अग्यागारे निसीदि। अद्दसा खो उरुवेलकस्सपो जटिलो भगवन्तं अग्यागारे निसिन्नं, दिस्वान भगवन्तं एतदवोच—"कतमेन त्वं, महासमण, मग्गेन आगतो? अहं तया पठमतरं पक्कन्तो, सो त्वं पठमतरं आगन्त्वा अग्यागारे निसिन्नो" ति? "इधाहं, कस्सप, तं उय्योजेत्वा याय जम्बुया 'जम्बुदीपो' पञ्ञायति, ततो फलं गहेत्वा पठमतरं आगन्त्वा अग्यागारे निसिन्नो। इदं खो, कस्सप, जम्बुफलं वण्णसम्पन्नं गन्धसम्पन्नं रससम्पन्नं। सचे आकङ्खसि परिभुञ्जा" ति। "अलं, महासमण, त्वंयेवेतं अरहसि, त्वं येवेतं परिभुञ्जाही" ति। अथ खो उरुवेल- [N.31]

यह क्या है? यह पुष्करिणी तो पहले यहाँ नहीं थी, न यह शिला ही? यह शिला यहाँ किसने डाली? इस ककुध वृक्ष की शाखा भी पहले लटकी हुई नहीं थी, अब यह लटकी हुई क्यों है?" (भगवान् ने कहा) "काश्यप! कल मुझे रास्ते में एक पांशुकूल प्राप्त हुआ था ...पूर्ववत्....यों यह शाखा किसी देवता ने झुका दी है।" यह सुनकर उरुवेल काश्यप के मन में यह विचार आया—"यह महाश्रमण महर्धिसम्पन्न है; फिर भी वैसा अर्हत् तो नहीं है, जैसा मैं हूँ।" तब भगवान् उरुवेलकाश्यप जटिल के यहाँ भोजन कर उसी वनषण्ड में साधनाहेतु चले गये।। (६)

षष्ठ प्रतिहार्य समाप्त।।

४५. तब उरुवेलकाश्यप जटिल उस रात्रि के बीतने पर: भगवान् के सम्मुख गये और बोले—"महाश्रमण! भोजन का समय हो गया है, भोजन बन चुका है।" "आप चलें, काश्यप! मैं भी आ रहा हूँ।" कहकर भगवान् उरुवेलकाश्यप को लौटा कर स्वयं जिस जम्बू वृक्ष के कारण यह देश 'जम्बुद्वीप' कहलाता है वहाँ जाकर उस वृक्ष से जम्बूफल तोड कर काश्यप से पहले ही आकर अग्निशाला में आकर विराज गये। उरुवेल काश्यप ने भगवान् को अपने से पहले ही आकर अग्निशाला

कस्सपस्स एतदहोसि—"महिद्धिको खो महासमणो महानुभावो, यत्र हि नाम मं पठमतरं उय्योजेत्वा याय जम्बुया 'जम्बुदीपो' पञ्ञायति, ततो फलं गहेत्वा पठमतरं आगन्त्वा अग्यागारे निसीदिस्सति, न त्वेव च खो अरहा यथा अहं" ति। अथो खो भगवा उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स भत्तं भुञ्जित्वा तस्मिं येव वनसण्डे विहासि। (७)

४६. अथ खो उरुवेलकस्सपो जटिलो तस्सा रत्तिया अच्चयेन येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवतो कालं आरोचेसि—"कालो, महासमण, निट्ठितं भत्तं" ति। "गच्छ त्वं, कस्सप, आयामहं" ति उरुवेलकस्सपं जटिलं उय्योजेत्वा याय जम्बुया 'जम्बुदीपो' पञ्ञायति, तस्सा अविदूरे अम्बो....पे०....तस्सा अविदूरे आमलकी....पे०....तस्सा अविदूरे हरीतकी....पे०....तावतिंसं गन्त्वा पारिच्छत्तकपुप्फं गहेत्वा पठमतरं आगन्त्वा अग्यागारे निसीदि। अद्दसा खो उरुवेलकस्सपो जटिलो भगवन्तं अग्यागारे निसिन्नं, दिस्वान भगवन्तं एतदवोच—"कतमेन त्वं, महासमण, मग्गेन आगतो? अहं तथा पठमतरं पक्कन्तो, सो त्वं पठमतरं आगन्त्वा अग्यागारे निसिन्नो" ति? "इधाहं, कस्सप, तं उय्योजेत्वा तावतिंसं [B.40] गन्त्वा परिच्छत्तकपुप्फं गहेत्वा पठमतरं आगन्त्वा अग्यागारे निसिन्नो। इदं खो, कस्सप, पारिच्छत्तकपुप्फं वण्णसम्पन्नं गन्धसम्पन्नं ति। सचे आकङ्खसि गण्हा" ति। "अलं, [R.31] महासमण, त्वंयेवेतं अरहसि, त्वंयेवेतं गण्हा" ति। अथ खो उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स एतदहोसि—"महिद्धिको खो महासमणो महानुभावो, यत्र हि नाम मं पठमतरं उय्योजेत्वा तावतिंसं गन्त्वा पारिच्छत्तकपुप्फं गहेत्वा पठमतरं आगन्त्वा अग्यागारे निसीदिस्सति, न त्वेव च खो अरहा यथा अहं" ति। (८-११)

४७. तेन खो पन समयेन ते जटिला अग्गिं परिचरितुकामा न सक्कोन्ति कट्ठानि

मे बैठे देखा। आश्चर्यचकित होकर उरुवेल काश्यप ने भगवान् से पूछा—"महाश्रमण! आप किस रास्ते से यहाँ आये? मैं आप से पहले चला था, परन्तु आप मेरे से पहले ही अग्निशाला आ विराजे?" "काश्यप! मै तुम्हें यहाँ भेजकर उस जामुन के वृक्ष तक चला गया था जिस कारण यह देश 'जम्बूद्वीप' कहलाता है, वहाँ से उसका फल लेकर सीधा यहीं आ रहा हूँ। तुम्हें भी यह जामुन का फल, जो कि सुन्दर रस वर्ण एवं गन्ध युक्त है, खाना हो तो लो, खाओ!"

"नहीं, महाश्रमण, आप इसे लाये हैं, आप ही इसे खाइये।" तब उरुवेलकाश्यप जटिल के मन मे हुआ—"यह महाश्रमण ऋद्धिसम्पन्न तो है, पर मेरे जैसा अर्हत् तो फिर भी नहीं है।" भगवान् भी उरुवेल काश्यप के यहाँ भोजन कर उसी वनषण्ड में जाकर ध्यानमग्न हो गये।। (७)

सप्तम प्रतिहार्य।।

४६. तब उरुवेल काश्यप जटिल, उस रात्रि के बीत जाने पर, भगवान् के पास आकर बोले—"महाश्रमण! भोजन का समय हो गया है, अब आप जैसे उचित समझें।" "काश्यप' तुम चलो, मैं भी आ ही रहा हूँ।" कहकर (भगवान्) जिस जामुन के वृक्ष के कारण 'यह देश 'जम्बूद्वीप' कहलाता है, उसी जम्बुवृक्ष के समीप वाले आम्रवृक्ष से आम का फल....पूर्ववत्....आमले का फल....पूर्ववत्....हरैं का फल..पूर्ववत्.. त्रायस्त्रिंश लोक में जाकर वहाँ से पारिजात (पारिछत्तक) के फूल लेकर (काश्यप से) पहले ही आकर अग्निशाला में बैठ गये। उरुवेल काश्यप ने भगवान् को वहाँ पहले ही बैठा देखकर पूछा—"महाश्रमण आप किस मार्ग से वहाँ पहले ही आ पहुँचे?" "काश्यप! मैं तुम्हे यहाँ भेज कर त्रायस्त्रिंश लोक से यह वर्ण गन्ध सम्पन्न पुष्प लेकर आ रहा हूँ। तुम ले लो।" "नहीं,

फालेतुं। अथ खो तेसं जटिलानं एतदहोसि—"निस्संसयं खो महासमणस्स इद्धानुभावो, यथा मयं न सक्कोम कट्ठानि फालेतुं" ति। अथ खो भगवा उरुवेलकस्सपं जटिलं एतदवोच— "फालियन्तु, कस्सप, कट्ठानी" ति। "फालियन्तु, महासमणा" ति। सकिदेव पञ्चकट्ठसतानि फालियिंसु। अथ खो उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स एतदहोसि—"महिद्धिको खो महासमणो महानुभावो, यत्र हि नाम कट्ठानि पि फालियिस्सन्ति, न त्वेव च खो अरहा यथा अहं" ति। (१२)

४८. तेन खो पन समयेन ते जटिला अग्गिं परिचरितुकामा न सक्कोन्ति अग्गिं उज्जलेतुं। अथ खो तेसं जटिलानं एतदहोसि—"निस्संसयं खो महासमणस्स इद्धानुभावो, यथा मयं न सक्कोम अग्गिं उज्जलेतुं" ति। अथ खो भगवा उरुवेलकस्सपं जटिलं एतदवोच— "उज्जलियन्तु, कस्सप, अग्गी" ति। "उज्जलियन्तु, महासमणा" ति। सकिदेव पञ्च अग्गिसतानि उज्जलिंसु। अथ खो उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स एतदहोसि—[N.32] "महिद्धिको खो महासमणो महानुभावो, यत्र हि नाम अग्गी पि उज्जलियिस्सन्ति, न त्वेव च खो अरहा यथा अहं" ति। (१३)

४९. तेन खो पन समयेन ते जटिला अग्गिं परिचरित्वा न सक्कोन्ति अग्गिं विज्झापेतुं। अथ खो तेसं जटिलानं एतदहोसि—"निस्संसयं खो महासमणस्स इद्धानुभावो, यथा मयं न सक्कोम अग्गिं विज्झापेतुं" ति। अथ खो भगवा उरुवेलकस्सपं जटिलं एतदवोच— "विज्झायिंसु, कस्सप, अग्गी" ति। "विज्झायन्तु महासमणा" ति। सकिदेव पञ्च [B.41] अग्गिसतानि विज्झायिंसु। अथ खो उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स एतदहोसि—"महिद्धिको खो महासमणो महानुभावो, यत्र हि नाम अग्गी पि विज्झायिस्सन्ति, न त्वेव च खो अरहा यथा अहं" ति। (१४)

महाश्रमण! इसे आप लाये हैं तो आप ही इसे रखें।" तब उरुवेल काश्यप के मन में हुआ—"यह महाश्रमण महर्धिसम्पन्न तो है....परन्तु फिर भी मुझसे बढ़कर अर्हत् नहीं है।" (८–११)

अष्टम, नवम, दशम, एकादश प्रातिहार्य।।

४७. उस समय वे जटिल, (हवन हेतु) अग्नि जलाने के लिये लकड़ियाँ नहीं फाड़ पाते थे। उन जटिलों के मन में यह हुआ—"अवश्य ही यह इस महाश्रमण की ऋद्धि का प्रभाव है कि ये लकडियाँ हमसे फट नहीं पा रही हैं। तब भगवान् से उरुवेल काश्यप ने कहा—"महाश्रमण! ये लकड़ियाँ फट जाँय" "हाँ! काश्यप ये लकडियाँ फट जॉयगी।" इतना कहते ही पाँच सौ लकड़ियाँ एक साथ फट गयीं। तब उरुवेल काश्यप के मन में हुआ—"अवश्य यह महाश्रमण....परन्तु मेरे जैसे नहीं।" (१२)

द्वादश प्रातिहार्य।।

४८. उस समय वे जटिल अग्नि नहीं जला पाते थे....पूर्ववत्. ..। अग्नि जल जाँय। पाँच सौ अग्निकुण्डो में अग्नि एक साथ जल गयी।....परन्तु मेरे जैसा नहीं। (१३)

त्रयोदश प्रातिहार्य।।

४९. उस समय वे जटिल (हवन के बाद) अग्नि बुझा नहीं पाते थे।....पूर्ववत्....परन्तु मेरे जैसा नहीं। (१४)

चतुर्दश प्रातिहार्य।।

५०. तेन खो पन समयेन ते जटिला सीतासु हेमन्तिकासु रत्तीसु अन्तरट्ठकासु हिमपातसमये नज्जा नेरञ्जरायं उम्मुज्जन्ति पि, निम्मुज्जन्ति पि, उम्मुज्जननिम्मुज्जनं पि करोन्ति। अथ खो भगवा पञ्चमत्तानि मन्दामुखिसतानि अभिनिम्मिनि, यत्थ ते जटिला उत्तरित्वा विसीवेसुं। अथ खो तेसं जटिलानं एतदहोसि—"निस्संसयं खो महासमणस्स इद्धानुभावो, [R.32] यथयिमा मन्दामुखियो निम्मिता" ति। अथ खो उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स एतदहोसि—'महिद्धिको खो महासमणो महानुभावो, यत्र हि नाम ताव बहू मन्दामुखियो पि अभिनिम्मिनिस्सति, न त्वेव च खो अरहा यथा अहं" ति। (१५)

५१. तेन खो पन समयेन महाअकालमेघो पावस्सि, महाउदकवाहको सञ्जायि। यस्मिं पदेसे भगवा विहरति, सो पदेसो उदकेन ओत्थटो होति। अथ खो भगवतो एतदहोसि—यन्नूनाहं समन्ता उदकं उस्सारेत्वा मज्झे रेणुहताय भूमिया चङ्कमेय्यं" ति। अथ खो भगवा समन्तो उदकं उस्सारेत्वा मज्झे रेणुहताय चङ्कमि। अथ खो उरुवेलकस्सपो जटिलो—'मा हेव खो महासमणो उदकेन वूळ्हो अहोसी' ति नावाय सम्बहुलेहि जटिलेहि सद्धिं यस्मिं पदेसे भगवा विहरति तं पदेसं अगमासि। अद्दसा खो उरुवेलकस्सपो जटिलो भगवन्तं समन्ता उदकं उस्सारेत्वा मज्झे रेणुहताय भूमिया चङ्कमन्तं, दिस्वान भगवन्तं एतदवोच—"इदं नु त्वं, महासमणा" ति? "अयमहमस्मि, कस्सपा" ति भगवा वेहासं अब्भुग्गन्त्वा नावाय पच्चुट्ठासि। अथ खो उरुवेलकस्सपस्स जटिलस्स एतदहोसि—"महिद्धिको खो महासमणो महानुभावो, यत्र हि नाम उदकं पि न पवाहिस्सति, न त्वेव च खो अरहा यथा अहं" ति। (१६)

---

५०. उस समय वे जटिल हेमन्त ऋतु की हड्डियों तक मे घुस जाने वाली ठण्डी हवा भरी ठण्डी रातों में प्रातःकाल ही उठकर, जबकि पाला (ठण्ढ) पडता रहता था, नेरञ्जरा नदी में स्नान करने जाते थे, वे वहाँ डुबकियाँ लगाते थे, जल में ऊपर नीचे उतराते थे। तब वे ठण्ड के कारण बहुत कष्ट पाते थे। अतः भगवान् ने उनकी सुख–सुविधा के लिये पाँच सौ अंगीठियाँ (मन्दामुखी) अपने ऋद्धिबल से तय्यार कीं। वे जटिल नदी में स्नान कर उन अगीठियों पर अपने हाथ पैर तपा कर सेक कर सुखानुभव करते थे। तब उस जटिल के मन में हुआ....पूर्ववत्... मेरे जैसा नहीं। (१५)

पञ्चदश प्रतिहार्य ।।

५१. उस समय विना ऋतु के ही भयङ्कर वर्षा (=अकालमेघ) होने लगी, जिसके कारण उस प्रदेश में प्रबल बाढ़ आ गयी। बाढ़ के कारण वह समग्र प्रदेश जलमग्न हो गया। तब भगवान् के मन में विचार आया—"क्यों न मैं इस समय अपने चारों ओर के जल को सुखाकर बीच में धूलियुक्त ऊँची भूमि पर चंक्रमण करूँ!" तब भगवान् चारों तरफ से जल हटा कर बीच में धूलियुक्त ऊँची भूमि पर चंक्रमण करने लगे। ऊरुवेल काश्यप जटिल ने यह सोचकर कि अरे "वे महाश्रमण जल में न डूब गये हों", वे नाव लेकर बहुत से जटिलों को साथ लेकर वहाँ पहुँचे जहाँ श्रमण ऊँचे टीले पर चंक्रमण कर रहे थे। पहुँचते ही देखकर आश्चर्यचकित होते हुए कहा—"अरे महाश्रमण! आप हैं?" "हाँ, काश्यप! में ही यह हूँ।" यों कहते हुए भगवान् आकाश में उड़कर उस नाव में आ कर खड़े हो गये। यह देखकर काश्यप जटिल को यह हुआ—"यह महाश्रमण महानुभाव एवं महर्धिसम्पन्न तो है कि इतनी भयङ्कर बाढ़ भी जिसे नहीं डुबो सकी। फिर भी मैं इसे उतना पहुँचा हुआ अर्हत् तो नहीं मान सकता जितना मैं हूँ।"

५२. अथ खो भगवतो एतदहोसि—"चिरं पि खो इमस्स मोघपुरिसस्स [B.42] एवं भविस्सति—'महिद्धिको खो महासमणो महानुभावो, न त्वेव च खो अरहा यथा [N.33] अहं' ति; यन्नूनाहं इमं जटिलं संवेजेय्यं" ति। अथ खो भगवा उरुवेलकस्सपं जटिलं एतदवोच—"नेव च खो त्वं, कस्सप, अरहा, नापि अरहत्तमग्गसमापन्नो। सा पि ते पटिपदा नत्थि, याय त्वं अरहा वा अस्ससि, अरहत्तमग्गं वा समापन्नो" ति।

अथ खो उरुवेलकस्सपो जटिलो भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोच—"लभेय्याहं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं" ति। "त्वं खोसि, कस्सप, पञ्चन्नं जटिलसतानं नायको विनायको अग्गो पमुखो पामोक्खो। ते पि ताव अपलोकेहि, यथा ते मञ्ञिस्सन्ति तथा करिस्सन्ती" ति। अथ खो उरुवेलकस्सपो जटिलो येन ते जटिला तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा ते जटिले एतदवोच—"इच्छामहं, भो, महासमणे ब्रह्मचरियं चरितुं, यथा भवन्तो मञ्ञन्ति तथा करोन्तू" ति। "चिरपटिका मयं, भो, [R.33] महासमणे अभिप्पसन्ना, सचे भवं महासमणे ब्रह्मचरियं चरिस्सति, सब्बेव मयं महासमणे ब्रह्मचरियं चरिस्सामा" ति। अथ खो ते जटिला केसमिस्सं जटामिस्सं खारिकाजमिस्सं अग्गिहुत्तमिस्सं उदके पवाहेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोचुं—"लभेय्याम मयं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्याम उपसम्पदं" ति। "एथ, भिक्खवो"—ति भगवा अवोच—"स्वाक्खातो धम्मो,

---

५२. तब भगवान् के मन में यह विचार उठा—"इस मूर्ख को चिरकाल तक इस का यह भ्रम दबाये रखेगा कि यह महाश्रमण ऋद्धिसम्पन्न तो बहुत है, परन्तु मेरे जितना पहुँचा हुआ अर्हत् तो नहीं है। तो क्यों न अब इस जटिल को फटकारा जाय।" तब भगवान् उस ऊरुवेलकाश्यप जटिल को यों बोले—"अरे काश्यप! न तो तूँ अर्हत् ही है न अर्हत्–मार्ग की तरफ बढ़ा हुआ ही। न तुझे वह ज्ञान (=पटिपदा) ही है, जिसके आश्रय से अर्हत् बना जा सके या अर्हत्–मार्ग पर आरूढ़ हुआ जा सके।"

तब ऊरुवेल काश्यप जटिल भगवान् के श्रीचरणों में अपना शिर रखकर उनसे निवेदन करने लगा—"भन्ते! क्या ही अच्छा हो कि मैं भगवान् से प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा पा जाऊँ।"

(भगवान् ने कहा—) "काश्यप! तुम (अकेले नहीं हो, अपि तु) पाँच सौ जटिलों के नेता भी, नायक, अग्र, प्रमुख तथा प्रधान भी हो। उनसे भी समझ लो, पूछ लो, उन्हें भी बता दो; फिर वे जैसे समझ में आयगा वैसा करेंगे।"

ऊरुवेल काश्यप की दीक्षा— तब वह ऊरुवेलकाश्यप जटिल अपने शिष्य जटिलों के पास गया और उनसे कहा—"मैं तो अब महाश्रमण से उसके धर्म की दीक्षा लेने जा रहा हूँ। अब आप लोग जैसा चाहें, करें।" (जटिल बोले—) "हम तो बहुत पहले से इस महाश्रमण के प्रति श्रद्धालु हैं। यदि आप महाश्रमण से उनके धर्म की दीक्षा लेगें तो हम सब भी उस महाश्रमण का धर्म ग्रहण कर लेंगे।"

तब वे सभी जटिल अपनी केशसामग्री, जटासामग्री, झोली एवं अग्निहोत्र की सामग्री (नेरञ्जरा नदी के) जल में प्रवाहित कर जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान् के श्रीचरणों में सिर से प्रणाम कर उनसे यों निवेदन किया—"भन्ते! हमारे लिये यह शुभप्रद होगा कि हम आपसे प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा प्राप्त कर लें।" "आओ, भिक्षुओ!" कहकर भगवान् फिर यों बोले—"तुमको मैंने धर्म का व्याख्यान भलीभाँति कर ही दिया है। इस धर्म का तुम सावधानीपूर्वक आचरण करते हुए अभ्यास

चरथ ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया'' ति। सा व तेसं आयस्मन्तानं उपसम्पदा अहोसि। (१)

५३. अद्दसा खो नदीकस्सपो जटिलो केसमिस्सं जटामिस्सं खारिकाजमिस्सं अग्गिहुत्तमिस्सं उदके वुय्हमाने, दिस्वानस्स एतदहोसि–''मा हेव मे भातुनो उपसग्गो अहोसी'' ति। जटिले पाहेसि–''गच्छथ मे भातरं जानाथा'' ति। सामं च तीहि जटिलसतेहि सद्धिं येनायस्मा उरुवेलकस्सपो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं उरुवेलकस्सपं एतदवोच–''इदं नु खो, कस्सप, सेय्यो'' ति ? ''आमावुसो, इदं सेय्यो'' ति। अथ खो ते [B.43] जटिला केसमिस्सं जटामिस्सं खारिकाजमिस्सं अग्गिहुत्तमिस्सं उदके पवाहेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोचुं–''लभेय्याम मयं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्याम उपसम्पदं'' ति। ''एथ, भिक्खवो''–ति भगवा अवोच–''स्वाक्खातो धम्मो, चरथ ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया'' ति। सा व तेसं आयस्मन्तानं उपसम्पदा अहोसि। (२)

५४. अद्दसा खो गयाकस्सपो जटिलो केसमिस्सं जटामिस्सं खारिकाजमिस्सं अग्गिहुत्तमिस्सं उदके वुय्हमाने, दिस्वानस्स एतदहोसि–''मा हेव मे भातूनं उपसग्गो अहोसी'' ति। जटिले पाहेसि–''गच्छथ मे भातरो जानाथा'' ति। सामं च द्वीहि जटिलसतेहि सद्धिं येनायस्मा उरुवेलकस्सपो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं उरुवेलकस्सपं [N.34] एतदवोच– ''इदं नु खो, कस्सप, सेय्यो'' ति ? ''आमावुसो, इदं सेय्यो'' ति। [R.34] अथ खो ते जटिला केसमिस्सं...पे०...सा व तेसं आयस्मन्तानं उपसम्पदा अहोसि।

करो। यह तुम्हारे दुःखों का क्षय करने में पूर्ण क्षमता रखता है।'' यही उन आयुष्मानों की उपसम्पदा हो गयी। (१)

नदीकाश्यप की प्रव्रज्या– ५३. तब नदीकाश्यप जटिल, उन जटिलों का सम्पूर्ण सामान, जैसे–केश, जटा, झोली एवं अग्निहोत्र की सामग्री को (नदी के) जल में बहते हुए देख कर चिन्तित हुआ–''अरे! मेरे भाई का कुछ अनिष्ट (=उपसर्ग) तो नहीं हो गया!'' उसने अपने कुछ शिष्य जटिलों को उरुवेलकाश्यप के आश्रम पर यह कह कर भेजा–''जाओ! मेरे भाई के विषय में ठीक पता लगा कर आओ।'' (और कुछ देर बाद) स्वय भी तीन सौ जटिलों को साथ लेकर ऊरुवेल काश्यप जटिल के पास पहुँचा और वह बोला–''यह जो तुमने किया यह (तुम्हारे लिये) श्रेयस्कर है?'' ''हाँ, आयुष्मन्! श्रेयस्कर है।'' तब नदीकाश्यप के सभी शिष्य जटिल भी अपनी केशसामग्री....अग्निहोत्रसामग्री जल में प्रवाहित कर जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे और निवेदन करने लगे–''भन्ते! हम भी आपसे प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्राप्त करना चाहते हैं।'' ''आओ भिक्षुओ!'' कहते हुए भगवान् ने यह भी कहा–''इस धर्म का व्याख्यान तुमको विशदतया कर दिया गया, इस पर सही ढंग से आचरण करते हुए यदि तुम आराधना करोगे तो निश्चय ही यह तुम्हारे दुःखों का क्षय करने में समर्थ होगा....।'' (२)

गयाकाश्यप की प्रव्रज्या– ५४. तब गयाकाश्यप जटिल ने भी नदी में बहती उन जटिलो की वह केशसामग्री....अग्निहोत्र सामग्री बहती हुई देखी तो उसके मन में भी....पूर्ववत्....। और साथ ही अपने दो सौ जटिलशिष्यों के साथ ऊरुवेलकाश्यप के आश्रम पर....पूर्ववत्....दुःखों का क्षय करने में समर्थ होगा। यही उन आयुष्मानों की उपसम्पदा हुई।। (३)

भगवतो अधिट्ठानेन पञ्च कट्ठसतानि न फालियिंसु, फलियिंसु; अग्गी न उज्जलिंसु उज्जलिंसु; न विज्झायिंसु, विज्झायिंसु; पञ्चमन्दामुखिसतानि अभिनिम्मिनि। एतेन नयेन अड्ढुड्ढपाटिहारियसहस्सानि होन्ति।

१५. आदित्तपरियायो

५५. अथ खो भगवा उरुवेलायं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन गयासीसं तेन चारिकं पक्कामि महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं भिक्खुसहस्सेन सब्बेहेव पुराणजटिलेहि। तत्र सुदं भगवा गयायं विहरति गयासीसे सद्धिं भिक्खुसहस्सेन। तत्र खो भगवा भिक्खू [B.44] आमन्तेसि– "सब्बं, भिक्खवे, आदित्तं। किञ्च, भिक्खवे, सब्बं आदित्तं? चक्खु आदित्तं, रूपा आदित्ता, चक्खुविञ्ञाणं आदित्तं, चक्खुसम्फस्सो आदित्तो, यदिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि आदित्तं। केन आदित्तं? रागग्गिना, दोसग्गिना, मोहग्गिना आदित्तं, जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि आदित्तं ति वदामि। सोतं आदित्तं, सद्दा आदित्ता, सोतविञ्ञाणं आदित्तं.... पे०....उपायासेहि आदित्तं ति वदामि। घानं आदित्तं, गन्धा आदित्ता, घानविञ्ञाणं आदित्तं....पे०....उपायासेहि आदित्तं ति वदामि। जिव्हा आदित्ता, रसा आदित्ता, जिव्हा-विञ्ञाणं आदित्तं....पे०....उपायासेहि आदित्तं ति वदामि। कायो आदित्तो, फोट्ठब्बा आदित्ता, कायविञ्ञाणं आदित्तं....पे०....उपायासेहि आदित्तं ति वदामि। मनो आदित्तो, धम्मा आदित्ता, मनोविञ्ञाणं आदित्तं....पे०....उपायासेहि आदित्तं ति वदामि।

"एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं पि निब्बिन्दति, [B.45] रूपेसु पि निब्बिन्दन्ति, चक्खुविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से पि निब्बिन्दति,

---

भगवान् के दृढ़ सङ्कल्प से (इस उरुवेलप्रातिहार्य-कथाप्रसङ्ग में) पाँच सौ लकड़ियाँ नहीं फटीं, फिर फटीं; पाँच सौ अग्निकुण्ड नहीं जले, फिर जले; पाँच सौ अग्निकुण्ड नहीं बुझे, फिर बुझे; पाँच सौ अंगीठियाँ (मन्दामुखी) जलीं–इसलिये ऋद्धिप्रातिहार्य गणना में साढ़े तीन हजार (अड्ढुड्ढ) हुई।

१५. आदीप्तपर्याय

५५. तब भगवान् उरुवेला में इच्छानुसार साधना (विहार) करते हुए अन्त में उन सभी पुराने जटिलों से बने एक सहस्र भिक्षुसङ्घ के साथ गया नगरी के गयाशीर्ष (ब्रह्मयोनि) पर्वत पर पहुँचे। उस पर्वत पर साधना हेतु ठहरे हुए भगवान् ने उन एक हजार भिक्षुओं को यह देशना की–भिक्षुओ! (संसार में) सब कुछ प्रदीप्त हो (जल) रहा है। (नष्ट हो रहा है।) भिक्षुओ! क्या सब कुछ जल रहा है? चक्षु जल रहा है, रूप (चक्षुर्विषय) जल रहा हैं, चक्षुर्विज्ञान जल रहा है, चक्षुःसंस्पर्श जल रहा है, तथा चक्षुःसंस्पर्श के प्रत्यय के कारण जो वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं, वे भी जल रही हैं। किससे जल रही हैं? रागाग्नि से, द्वेषाग्नि से, मोहाग्नि से जल रही हैं, जन्म, जरा, मरण से, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य या पश्चात्ताप की अग्नि से जल रही है। श्रोत्र....घ्राण....जिह्वा....काय....मन....मनोधर्म.... मनोविज्ञान....पश्चात्ताप अग्नि से जल रहा है–ऐसा मैं मानता हूँ, ऐसा मैं कहता हूँ।

"भिक्षुओं! ऐसा देखते हुए, ऐसा समझते हुए श्रुतवान् आर्य–श्रावक चक्षु में भी, अनासक्त हो जाता है, रूप में भी, चक्षुर्विज्ञान में भी, चक्षुःसंस्पर्श में, चक्षुःसंस्पर्शज प्रत्ययोत्पन्न वेदनाओ में भी

यदिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा, तस्मिं [R.35] पि निब्बिन्दति। सोतस्मिं पि निब्बिन्दति, सद्देसु पि निब्बिन्दति....पे०....घानास्मिं पि निब्बिन्दति, गन्धेसु पि निब्बिन्दति....पे०....जिव्हाय पि निब्बिन्दति....रसेसु पि निब्बिन्दति....पे०....कायस्मिं पि निब्बिन्दति, फोट्ठब्बेसु पि निब्बिन्दति....पे०....मनस्मिं पि निब्बिन्दति, धम्मेसु पि निब्बिन्दति, मनोविञ्ञाणे पि निब्बिन्दति, मनोसम्फस्से पि निब्बिन्दति, यदिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं [N.35] वा तस्मिं पि निब्बिन्दति, निब्बिन्दं विरज्जति, विरागा विमुच्चति, विमुत्तस्मिं विमुत्तम्ही ति ञाणं होति। खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया ति पजानाती'' ति। इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने तस्स भिक्खुसहस्सस्स अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिंसु।

आदित्तपरियायो निट्ठितो॥

उरुवेलपाटिहारियं निट्ठितं॥

ततियभाणवारो निट्ठितो॥

१६. बिम्बिसारसमागमकथा

५६. अथ खो भगवा गयासीसे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन राजगहं तेन चारिकं पक्कामि, महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं भिक्खुसहस्सेन सब्बेहेव पुराणजटिलेहि। अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन राजगहं तदवसरि। तत्र सुदं भगवा राजगहे विहरति लट्ठिवने सुप्पतिट्ठे चेतिये। अस्सोसि खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो—''समणो खलु भो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो राजगहं अनुप्पत्तो राजगहे विहरति लट्ठिवनुय्याने सुप्पतिट्ठे चेतिये। तं खो पन भगवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—

अनासक्त हो जाता है। श्रोत्र में भी....शब्दों में भी...घ्राण मे भी....गन्ध में भी....जिह्वा में भी....रस में भी....काय में भी....स्प्रष्टव्य विषयों में भी....मन में भी...मनोधर्मों में भी...मनोविज्ञान में भी....मनःसंस्पर्श में भी...मनःसंस्पर्शजन्य प्रत्ययोत्पन्न वेदनाओं ..न दुःख न सुख में भी अनासक्त हो जाता है। इस अनासक्ति के कारण उसे वैराग्य हो जाता है, वैराग्य होने से वह सुख दुःख से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर उसे 'मैं विमुक्त हूँ' यह ज्ञान हो जाता है तथा वह यह भी समझ जाता है कि मेरा संसार में आना-जाना समाप्त हो चुका है, मेरी धर्मसाधना पूर्ण (सफल) हो चुकी है। मैं कृतकार्य हो चुका हूँ। अब मेरा यहाँ कोई कर्त्तव्य अवशिष्ट नहीं रह गया है।'' भगवान् की इस देशना के प्रभाव से उन एक हजार भिक्षुओं को पूर्ण अनासक्ति एवं विरक्ति के कारण समग्र आश्रवो (चित्तविकारों) से छुटकारा मिल गया।।

आदीप्तपर्याय समाप्त।।

उरुवेलप्रातिहार्य समाप्त।।

तृतीय भाणवार समाप्त।।

१६. बिम्बिसारसमागमकथा

५६. एतदनन्तर, भगवान् गयाशीर्ष में इच्छानुकूल साधना करते हुए, एक हजार पुराणजटिल भिक्षुओं के सङ्घ के साथ राजगृह की तरफ चारिका के लिये निकल पड़े। तब भगवान् क्रमशः चारिका करते हुए राजगृह पहुँचे। और वहाँ राजगृह में **यष्टिवन** के सुप्रतिष्ठित चैत्य में विराजे। उस समय

'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति।

सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं [B.46] सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसान-कल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती'' ति।

अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो द्वादसनहुतेहि मागधिकेहि ब्राह्मण-गहपतिकेहि परिवुतो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा [R.36] एकमन्तं निसीदि। ते पि खो द्वादसनहुता मागाधिका ब्राह्मणगहपति अप्पेकच्चे भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे भगवतो सन्तिके नामगोत्तं सावेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु, अप्पेकच्चे तुण्हीभूता एकमन्तं निसीदिंसु। अथ खो तेसं द्वादसनहुतानं मागधिकानं ब्राह्मणगहपतिकानं एतदहोसि—'' किं नु खो महासमणो उरुवेलकस्सपे ब्रह्मचरियं चरति, उदाहु उरुवेलकस्सपो महासमणे ब्रह्मचरियं चरती'' ति? अथ खो भगवा तेसं द्वादसनहुतानं मागधिकानं ब्राह्मणगहपतिकानं चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय आयस्मन्तं उरुवेलकस्सपं गाथाय अज्झभासि—

''किमेव दिस्वा उरुवेलवासि पहासि अग्गिं किसको वदानो। [N.36]
पुच्छामि तं, कस्सप, एतमत्थं कथं पहीनं तव अग्गिहुत्तं ति?''॥

राजा मागध श्रेणिय बिम्बिसार ने सुना—''शाक्यपुत्र श्रमण गौतम शाक्यकुल से प्रव्रजित होकर राजगृह में आकर यष्टिवन (जटियाँव) के सुप्रतिष्ठित चैत्य में विराजमान हैं। उस भगवान् का लोक में ऐसा यशःशब्द सुनायी दे रहा है—''वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हैं, विद्या एवं आचरण से युक्त हैं , सुगत हैं, लोकज्ञ हैं, उनसे उत्तम संसार में कोई नहीं है। वे चाबुक हाथ में लिये सावधान सारथि के तुल्य हैं, देवताओं और मनुष्य शास्ता हैं, ऐसे वे भगवान् बुद्ध हैं।'' वे ब्रह्मलोक, मारलोक तथा देवलोक सहित इस लोक में देव मनुष्यों सहित श्रमण ब्राह्मण एवं प्रजाजन को स्वयं जानकर साक्षात् कर उपदेश करते हैं। वे आदि, मध्य और अन्त में भी कल्याणप्रद, अर्थ एवं व्यञ्जनसहित, एकान्ततः परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य (धर्म) का उपदेश करते हैं। ऐसे ज्ञानी श्रमणों का दर्शन शुभ ही होता है।

तब राजा मागध श्रेणिय बिम्बिसार १,२०,००० (एक लाख बीस हजार) अनुगामी ब्राह्मणों एवं गृहपतियों के साथ (घिरा हुआ) जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। उन एक लाख बीस हजार ब्राह्मण गृहपतियों में से भी कुछ भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। कुछ प्रणाम करते हुए कुशल मङ्गल भी पूछते रहे। कुछ कुशल मङ्गल एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रश्न भी पूछते हुए एक ओर बैठ गये। और कुछ अपना नाम गोत्र सुनाते हुए और कुछ विना कुछ कहे सुने चुपचाप एक तरफ बैठ गये। उस समय, उन एक लाख बीस हजार ब्राह्मण गृहपतियों के मन में यह विचार उठा—''इन दोनों में, क्या ऊरुवेल काश्यप इन महाश्रमण का शिष्य है? या फिर महाश्रमण ही ऊरुवेल काश्यप के शिष्य हैं?''

तब भगवान् ने उन...श्रमण ब्राह्मण गृहपतियों के मन की बात अपने मन से जानकर आयुष्मान् ऊरुवेलकाश्यप से गाथाओ के माध्यम से यह कहा—

"रूपे च सद्दे च अथो रसे च कामित्थियो चाभिवदन्ति यञ्ञा।
एतं मलं ति उपधीसु ञत्वा तस्मा न यिट्ठे न हुते अरञ्जिं" ति॥

"एत्थेव ते मनो न रमित्थ (कस्सपा ति—भगवा) रूपेसु सद्देसु अथो रसेसु।
अथ को चरहि देवमनुस्सलोके रतो मनो, कस्सप, ब्रूहि मेतं" ति॥

[B.47] "दिस्वा पदं सन्तमनूपधीकं अकिञ्चनं कामभवे असत्तं।
अनञ्ञथाभाविमनञ्ञनेय्यं तस्मा न यिट्ठे न हुते अरञ्जिं॥" ति॥

५७. अथ खो आयस्मा उरुवेलकस्सपो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोच—"सत्था मे, भन्ते, भगवा, सावकोहमस्मि; सत्था मे, भन्ते, भगवा, सावकोहमस्मी" ति। अथ खो तेसं द्वादसनहुतानं मागधिकानं ब्राह्मणगहपतिकानं एतदहोसि—"उरुवेलकस्सपो महासमणे ब्रह्मचरियं चरती" ति।

[R.37] अथ खो भगवा तेसं द्वादसनहुतानं मागधिकानं ब्राह्मणगहपतिकानं चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय अनुपुब्बि कथं कथेसि, सेय्यथीदं—दानकथं सीलकथं सग्गकथं.... पे०.... सामुक्कंसिका धम्मदेसना, तं पकासेसि—दुक्खं, समुदयं, निरोधं, मग्गं। सेय्यथापि नाम सुद्धं वत्थं अपगतकाळकं सम्मदेव रजनं पटिग्गण्हेय्य, एवमेव एकादसनहुतानं मागधिकानं ब्राह्मणगहपतिकानं बिम्बिसारप्पमुखानं तस्मिंयेव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं ति। एकनहुतं उपासकत्तं पटिवेदेसि।

"हे ऊरुवेलवासिन्! तपःकृशकाय! धर्मोपदेशक! तुमने क्या समझ कर अपनी अग्निहोत्रप्रधान तपस्या का परित्याग किया? भोः काश्यप! मैं तुमसे यही पूछ रहा हूँ कि तुमने अपना अग्निहोत्र कर्म क्यों छोड़ दिया?"

(ऊरुवेल काश्यप ने उत्तर दिया—) "याजक लोग रूप, शब्द एवं रस रूपी कामभोगों में, स्त्रियो के रूप, शब्द एवं रस मे हवन करते हैं। कामभोगों के रूप, शब्द एवं रस में ये कामेष्टि यज्ञ किये जाते है। 'ये रागादि उपधियाँ (मनोविकार) मल हैं'—मैंने ऐसा जानकर यज्ञ एवं हवन करना छोड़ दिया। उन से मेरा मन सर्वथा उचट गया।"

(भगवान् ने पूछा—"काश्यप!) जब तुम्हारा मन इन यज्ञों एवं हवनों से उचट गया, जब इनमें तुम्हारा मन नहीं रमा तो काश्यप! मुझे अब यह बताओ कि देव मनुष्य लोक में अब तुम्हारा मन कहाँ लग रहा है?"

(काश्यप बोले—) "शान्त, रागादिरहित, निर्लेप एवं कामभोगों मे निरासक्त, निर्विकार (अविनाशी) तथा दूसरों की सहायता से पार न होने वाले निर्वाणपद को देखकर मैं यज्ञ एवं होम क्रियाओं में अनासक्त हुआ।"

५७. उस समय ऊरुवेल काश्यप आसन से उठकर उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर, भगवान् के श्रीचरणों मे अपना शिर रखते हुए भगवान् से यों निवेदन करने लगे—"भन्ते! भगवान् (आप) ही मेरे गुरु हैं। मै आपका शिष्य हूँ। भन्ते! भगवान् ही मेरे गुरु हैं, मैं तो आपका शिष्य हूँ।" तब (यह सुनकर) उन....ब्राह्मण गृहपतियों को विश्वास हुआ कि 'यहां ये भगवान् ही गुरु हैं, उरुवेलकाश्यप तो इनका शिष्य है।'

५८. अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो दिट्ठधम्मो पत्तधम्मो विदितधम्मो परियोगाळ्हधम्मो तिण्णविचिकिच्छो विगतकथङ्कथो वेसारज्जप्पत्तो अपरप्पच्चयो सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोच—"पुब्बे मे, भन्ते, कुमारस्स सतो पञ्च अस्सासका अहेसुं, ते मे एतरहि समिद्धा। १. पुब्बे मे, भन्त, कुमारस्स सतो एतदहोसि—'अहो वत मं रज्जे अभिसिञ्चेय्युं' ति, अयं खो मे, भन्ते, पठमो अस्सासको अहोसि, सो मे एतरहि समिद्धो। २. 'तस्स [N.37] च मे विजितं अरहं सम्मासम्बुद्धो ओक्कमेय्या' ति, अयं खो मे, भन्ते, दुतियो अस्साको अहोसि, सो मे एतरहि समिद्धो। ३. 'तं चाहं भगवन्तं पयिरुपासेय्यं' ति, अयं खो मे, [B.48] भन्ते, ततियो अस्सासको अहोसि, सो मे एतरहि समिद्धो। ४. 'सो च मे भगवा धम्मं देसेय्या' ति, अयं खो मे, भन्ते, चतुत्थो अस्साको अहोसि, सो मे एतरहि समिद्धो। ५. 'तस्स चाहं भगवतो धम्मं आजानेय्यं' ति, अयं खो मे, भन्ते, पञ्चमो अस्सासको अहोसि, सो मे एतरहि समिद्धो। पुब्बे मे, भन्ते, कुमारस्स सतो इमे पञ्च अस्सासका अहेसुं, ते मे एतरहि समिद्धा। अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य चक्खुमन्तो रूपानि दक्खिन्ती ति—एवमेव भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि, धम्मं च, भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं, भन्ते, भगवा धारेतु.... पे०....स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति। अधिवासेसि भगवा [R.38] तुण्हीभावेन। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि—"कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं" ति।

तब भगवान् ने उन...मगधवासी ब्राह्मण एवं गृहस्थों के चित्त की बात समझकर उनके लिये क्रमशः धर्मदेशना प्रारम्भ की; जैसे—दानकथा, शीलकथा, स्वर्गकथा....पूर्ववत्....यह धर्मचक्षु उत्पन हुआ। उस समय उन श्रमण ब्राह्मणों में दश हजार ने भगवान् का उपासकत्व स्वीकार किया।

५८. तब राजा मागध श्रेणिय बिम्बिसार ने धर्म को जानकर....पूर्ववत्....भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! पहले कुमारावस्था में मेरी पाँच इच्छाएँ थीं—१. 'क्या ही अच्छा होता कि मेरा राज्याभिषेक हो जाता'—यह मेरी पहली इच्छा थी जो पूर्ण हो गयी। २. 'क्या ही अच्छा होता कि मेरे राज्य में ज्ञानी जन चारिका करते रहे'—यह मेरी दूसरी इच्छा थी, जो आज आपके कारण पूर्ण हो गयी। ३. 'क्या ही अच्छा होता कि मैं आप भगवान् की सेवा (पर्युपासना) करता—यह मेरी तीसरी इच्छा थी, वह भी आज पूर्ण हो गयी। ४. 'क्या ही अच्छा होता कि भगवान् मुझे धर्मदेशना करते'—यह चौथी इच्छा थी, वह भी पूर्ण हो गयी। ५. 'क्या ही अच्छा होता कि मैं भगवान् के उस धर्म की गम्भीरता समझ पाता'—यह पाँचवीं इच्छा थी वह भी अब पूर्ण हो गयी। भन्ते! पहले कौमार्यावस्था में मेरी ये पाँच इच्छाएँ थी जो सभी आज पूर्ण हो गयीं। आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते!....पूर्ववत्. .। भिक्षु सङ्घसहित कल का भोजन मेरे यहाँ स्वीकार करें। भगवान् ने मौन रह कर स्वीकार किया। तब मागध राजा श्रेणिय विम्बिसार भगवान् की स्वीकृति जान, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर अपने महल को वापस लौट गया।

५९. अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहं पाविसि महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं भिक्खुसहस्सेन सब्बेहेव पुराणजटिलेहि। तेन खो पन समयेन सक्को देवानमिन्दो माणवकवण्णं अभिनिम्मिनित्वा बुद्धप्पमुखस्स भिक्खुसङ्घस्स पुरतो पुरतो गच्छति इमा गाथायो गायमानो—

"दन्तो दन्तेहि सह पुराणजटिलेहि विप्पमुत्तो विप्पमुत्तेहि।
सिङ्गीनिक्खसुवण्णो राजगहं पाविसि भगवा॥ १॥
"मुत्तो मुत्तेहि सह पुराणजटिलेहि विप्पमुत्तो विप्पमुत्तेहि।
सिङ्गीनिक्खसुवण्णो राजगहं पाविसि भगवा॥ २॥
"तिण्णो तिण्णेहि सह पुराणजटिलेहि विप्पमुत्तो विप्पमुत्तेहि।
[B.49] सिङ्गीनिक्खसुवण्णो राजगहं पाविसि भगवा॥ ३॥
"सन्तो सन्तेहि सह पुराणजटिलेहि विप्पमुत्तो विप्पमुत्तेहि।
सिङ्गीनिक्खसुवण्णो राजगहं पाविसि भगवा॥ ४॥
[N.38] "दसवासो दसबलो दसधम्मविदू दसभि चुपेतो।
सो दससतपरिवारो राजगहं पाविसि भगवा"॥ ति॥ ५॥

मनुस्सा सक्कं देवानमिन्दं पस्सित्वा एवं आहंसु—"अभिरूपो वतायं माणवको, दस्सनीयो वतायं माणवको, पासादिको वतायं माणवको। कस्स नु खो अयं माणवको" ति? एवं वुत्ते सक्को देवानमिन्दो ते मनुस्से गाथाय अज्झभासि—

"यो धीरो सब्बधि दन्तो सुद्धो अप्पटिपुग्गलो।
अरहं सुगतो लोके तस्साहं परिचारको"॥ ति॥

तब राजा....बिम्बिसार ने उस रात्रि के बीतने पर, उत्तम रुचिकर खाद्य, भोज्य बनवा कर भगवान् को सूचित किया—"भन्ते! भोजन का समय हो गया है। भोजन भी बन चुका है।"

५९ तब भगवान् पूर्वाह्न में ठीक से वस्त्र पहनकर, पात्र और चीवर लेकर, सभी एक सहस्र पुराने जटिलो से बने भिक्षु सङ्घ के साथ राजगृह मे प्रविष्ट हुए। उस समय देवेन्द्र शक्र माणवक (वटुक) का रूप धरकर, बुद्धप्रमुख भिक्षुसङ्घ के आगे आगे चलता हुआ ये गाथाएँ बोलने लगा—

"मुक्त एवं संयमी पुराणजटिलो को साथ लिये हुए वे संयमी, मुक्त, शुद्ध सुवर्णतुल्य शरीर प्रभा वाले भगवान् (बुद्ध) राजगृह में प्रवेश कर रहे है।। १-२।।

भवसागर को पार किये अतः शान्तचित्त पुराणजटिलों को अनुगामी बनाये हुए....राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।। ३-४।।

"दश आर्यवास, दश बल एवं दश धर्म (कर्मपथ को जाननेवाले एवं दश अशैक्ष्य धर्मों से युक्त तथा दश सौ (१०००) परिवार (भिक्षुसङ्घ) से युक्त भगवान् बुद्ध राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।" (५)

नगरवासी जनता उस देवेन्द्र शक्र को माणवक के रूप में देखकर (आश्चर्यचकित होती हुई) परस्पर यों बात करने लगी—"अरे! यह माणवक तो बहुत सुन्दर है, यह दर्शनीय भी है, और अत्यन्त मनोमोहक है! यह किसका माणवक है?"

जनता द्वारा बार बार ऐसा पूछा जाने पर, देवेन्द्र शक्र ने उस जनता को गाथाबद्ध ही उत्तर दिया—

६०. अथ खो भगवा येन रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदि। एकमन्त [R.39] निसिन्नस्स खो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स एतदहोसि—"कत्थ नु खो भगवा विहरेय्य? यं अस्स गामतो नेव अविदूरे न च अच्चासन्ने, गमनागमनसम्पन्नं, अत्थिकानं अत्थिकानं मनुस्सानं अभिक्कमनीयं, दिवा अप्पाकिण्णं, रत्तिं अप्पसद्दं अप्पनिग्घोसं विजनवातं, मनुस्सराहसेय्यकं, पटिसल्लानसारुप्पं" ति। अथ खो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स एतदहोसि—"इदं खो अम्हाकं वेळुवनं उय्यानं गामतो नेव अविदूरे....पे०.... [B.50] पटिसल्लानसारुप्पं। यन्नूनाहं वेळुवनं उय्यानं बुद्धप्पमुखस्स भिक्खुसङ्घस्स ददेय्यं" ति। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो सोवण्णमयं भिङ्कारं गहेत्वा भगवतो ओणोजेसि—"एताहं, भन्ते, वेळुवनं उय्यानं बुद्धप्पमुखस्स भिक्खुसङ्घस्स दम्मी" ति। पटिग्गहेसि भगवा आरामं। अथ खो भगवा राजानं मागधं सेनियं बिम्बिसारं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**अनुजानामि, भिक्खवे, आरामं**" ति॥

बिम्बिसारसमागमकथा निट्ठिता॥

"जो धीर, सबसे अधिक बुद्धिमान्, संयमी, शुद्ध एवं लोक में अनुपम पुरुष हैं, जो लोक में सर्वश्रेष्ठ अर्हत् एवं सुगत हैं, उनका मैं एक परिचारक (सेवक) हूँ।।"

मगधराज द्वारा वेणुवन का दान— ६०. तब भगवान् राजा....बिम्बिसार के आवास पर पहुँचे। पहुँचकर विछे आसन पर, भिक्षुसङ्घ सहित विराजे। तब राजा बिम्बिसार ने भिक्षुसङ्घसहित भगवान् बुद्ध को उत्तम एवं रुचिकर खाद्य भोज्य पदार्थ अपने हाथ से परोसे। अन्त में भगवान् को पात्र से एकान्तत: हाथ हटाया हुआ देखकर उन्हें तृप्त हुआ जानकर राजा एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे राजा.. बिम्बिसार के मन में यह विचार उठा—"अब भगवान् कहाँ रहकर साधना करें? वह साधनास्थल ऐसा होना चाहिये जो ग्राम से न अधिक दूर हो न अधिक समीप ही, वहाँ जाना चाहने वाली धर्मप्राण जनता के लिये वहाँ आना जाना सुविधाजनक हो, दिन में जहाँ अधिक भीड़ (जनसम्मर्द) न हो और रात्रि में अधिक कोलाहल न हो, साधना के लिये एकान्त स्थल हो तथा एकान्तवास के योग्य हो।" फिर राजा ने सोचा—"तो क्यों न मैं अपना वेणुवन उद्यान बुद्धप्रमुख भिक्षुसङ्घ को दान कर दूँ।" तब राजा.. बिम्बिसार ने जलपूर्ण सुवर्णपात्र लेकर भगवान् को दान का सङ्कल्प किया—"भन्ते! मैं यह वेणुवन आज से आपसहित भिक्षुसङ्घ को दान करता हूँ।" भगवान् ने वह आराम (उद्यान) स्वीकार किया। तब भगवान् ने राजा बिम्बिसार को (दान शील विषय की) धर्म-कथाएँ कहकर धर्म के प्रति सावधान, उत्साहित, समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया फिर आसन से उठकर चल दिये।

तदनन्तर भगवान् ने इस प्रसङ्ग में भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आराम का दान लेने की।**"

बिम्बिसारसमागमकथा पूर्ण।।

१७. सारिपुत्त-मोग्गल्लानपब्बज्जाकथा

६१. तेन खो पन समयेन सञ्चयो परिब्बाजको राजगहे पटिवसति महतिया परिब्बाजकपरिसाय सद्धिं अड्ढतेय्येहि परिब्बाजकसतेहि। तेन खो पन समयेन सारिपुत्तमोग्गल्लाना सञ्चये परिब्बाजके ब्रह्मचरियं चरन्ति। तेहि कतिका कता होति—"यो पठमं अमतं अधिगच्छति, सो इतरस्स आरोचेतू" ति। अथ खो आयस्मा अस्सजि पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहं पिण्डाय पाविसि पासादिकेन अभिक्कन्तेन पटिक्कन्तेन आलोकितेन विलोकितेन सम्मिञ्जितेन पसारितेन, ओक्खित्तचक्खु इरियापथ-[N.39] सम्पन्नो। अद्दसा खो सारिपुत्तो परिब्बाजको आयस्मन्तं अस्सजिं राजगहे पिण्डाय चरन्तं पासादिकेन अभिक्कन्तेन....पे०.... ओक्खित्तचक्खुं इरियापथसम्पन्नं। दिस्वानस्स एतदहोसि—"ये वत लोके अरहन्तो वा अरहत्तमग्गं वा समापन्ना, अयं तेसं भिक्खु [R.40] अञ्ञतरो। यन्नूनाहं इमं भिक्खुं उपसङ्कमित्वा पुच्छेय्यं—'कंसि त्वं, आवुसो, [B.51] उद्दिस्स पब्बजितो? को वा ते सत्था? कस्स वा त्वं धम्मं रोचेसी' " ति? अथ खो सारिपुत्तस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि—"अकालो खो इमं भिक्खुं पुच्छितुं, अन्तरघरं पविट्ठो पिण्डाय चरति। यन्नूनाहं इमं भिक्खुं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धेय्यं, अत्थिकेहि उपञ्ञातं मग्गं" ति। अथ खो आयस्मा अस्सजि राजगहे पिण्डाय चरित्वा पिण्डपातं आदाय पटिक्कमि। अथ खो सारिपुत्तो पि परिब्बाजको येनायस्मा अस्सजि तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मता अस्सजिना सद्धिं सम्मोदि, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सारिपुत्तो परिब्बाजको आयस्मन्तं अस्सजिं एतदवोच—

---

१७. सारिपुत्र–मौद्गल्यायन–प्रव्रज्याकथा

६१. उस समय सञ्जय परिव्राजक विशाल परिव्राजकसमूह के साथ जिसमें कि ढाई सौ परिव्राजक थे, राजगृह में रहता था। सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन उसी सञ्जय परिव्राजक के शिष्य बनकर धर्मसाधना कर रहे थे। उन लोगों ने परस्पर प्रण (कतिका) कर रखा था—"हम में से जो पहले अमृत प्राप्त कर लेगा वह दूसरे को बता देगा।" उस समय आयुष्मान् अश्वजित् पूर्वाह्ण के समय, वस्त्र पहनकर, पात्र–चीवर साथ लेकर राजगृह में भिक्षा हेतु जा रहे थे, उस समय उन का रूप लुभावना और सुन्दर लग रहा था, चाल–ढाल तथा रास्ते में उनकी चलन क्रिया, उनका इधर–उधर देखना बहुत ही समझदारी से भरपूर था। अतएव उनकी दृष्टि एवं शारीरिक गतिविधि साधुजनोचित एवं सयत थी। सारिपुत्र परिव्राजक ने आयुष्मान् अश्वजित् को भिक्षुवेष में, उपर्युक्त गुणों के साथ...पूर्ववत्... राजगृह में भिक्षा के लिये घूमते देखा। उन्हें देखकर सारिपुत्र परिव्राजक के मन में विचार आया—"लोक में जो अर्हत् या अर्हत्–मार्ग पर आरूढ़ पुरुष हैं, उनमे से ये एक हैं। अत. क्यों न मैं इस भिक्षु के पास जाकर पूछूँ कि आयुष्मन्! तुम किस को गुरु मानकर उपसम्पन्न हुए हो? या किस से तुमने यह धर्म–दीक्षा ली है?" परन्तु फिर सारिपुत्र परिव्राजक के मन मे यह विचार आया—"भिक्षु से ये बातें पूछने का यह उचित समय नहीं है, इस समय ये भिक्षा के लिये घर–घर घूम रहे हैं। क्यों न मैं इस भिक्षु के पीछे–पीछे लगा रहूँ। चाहने वालो को रास्ता मिल ही जाया करता है।" तब आयुष्मान् अश्वजित् घर से भिक्षा लेकर लौटे। तब सारिपुत्र परिव्राजक भी जहाँ आयुष्मान् अश्वजित् थे, वहाँ पहुँचकर कुशलक्षेम पूछते हुए एक ओर खडे हो गये। एक ओर खडे हुए सारिपुत्र परिव्राजक ने अयुष्मान् अश्वजित् को पूछा—"आयुष्मन्! आप की इन्द्रियाँ बहुत शान्त और प्रसन्न

''विप्पसन्नानि खो ते, आवुसो, इन्द्रियानि, परिसुद्धो छविवण्णो परियोदातो। कंसि त्वं, आवुसो, उद्दिस्स पब्बजितो? को वा ते सत्था? कस्स वा त्वं धम्मं रोचेसी'' ति?'' अत्थावुसो, महासमणो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो, ताहं भगवन्तं उद्दिस्स पब्बजितो, सो च मे भगवा सत्था, तस्स चाहं भगवतो धम्मं रोचेमी'' ति। ''किंवादी पनायस्मतो सत्था, किमक्खायी'' ति?'' अहं खो, आवुसो, नवो अचिरपब्बजितो, अधुनागतो इमं धम्मविनयं, न ताहं सक्कोमि वित्थारेन धम्मं देसेतुं, अपि च ते सङ्खित्तेन अत्थं वक्खामी'' ति। अथ खो सारिपुत्तो परिब्बाजको आयस्मन्तं अस्सजिं एतदवोच—''होतु, आवुसो—

'अप्पं वा बहुं वा भासस्सु अत्थं येव मे ब्रूहि।
अत्थेनेव मे अत्थो किं काहसि ब्यञ्जनं बहुं' ति॥

अथ खो आयस्मा अस्सजि सारिपुत्तस्स परिब्बाजकस्स इमं धम्मपरियायं अभासि—

''ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतुं तथागतो आह।
तेसं च यो निरोधो एवंवादी महासमणो'' ति॥

अथ खो सारिपुत्तस्स परिब्बाजकस्स इमं धम्मपरियायं सुत्वा विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—'यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं' ति।

''एसेव धम्मो यदि तावदेव पच्चब्यत्थ पदमसोकं। [B.52]
अदिट्ठं अब्भतीतं बहुकेहि कप्पनहुतेही''॥ ति॥

६२. अथ खो सारिपुत्तो परिब्बाजको येन मोग्गल्लानो परिब्बाजको तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो मोग्गल्लानो परिब्बाजको सारिपुत्तं परिब्बाजकं दूरतो व आगच्छन्तं, दिस्वान

दिखायी दे रही हैं। आप की शरीर-प्रभा भी ओजस्विनी एवं परिशुद्ध है। आयुष्मन्! आप किसको गुरु मान कर प्रव्रजित हुए हैं? अथवा आपका शास्ता (धर्मोपदेशक) कौन है? आप किस का धर्म मानते हैं?'' ''आयुष्मन्! महाश्रमण शाक्यपुत्र, जो कि शाक्यकुल से निकलकर प्रव्रजित हुए हैं, मैं तो उन्हीं भगवान् को गुरु मानकर प्रव्रजित हुआ हूँ। उन्हीं का धर्म मुझे अच्छा लगा (जिसका मैं आचरण कर रहा हूँ)।'' ''आप के शास्ता का क्या मत है? वे अपने शिष्यों को क्या धर्म बताते हैं?'' ''आयुष्मन्! मुझे इस धर्म को स्वीकार किये बहुत दिन नहीं हुए, मैं तो अभी अभी नया ही प्रव्रजित हुआ हूँ। अतः मै उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म को विस्तार से तो नहीं कह सकता, परन्तु तुम्हें मैं उनके धर्म का सार (संक्षेप में) बता सकता हूँ।'' तब यह सुनकर सारिपुत्र ने कहा—

''थोड़ा या बहुत, जो भी कह सको आप कहो। मैं तो उस धर्म का सार ही सुनना चाहता हूँ। मुझे उतने से ही प्रयोजन है। व्यर्थ के शब्दों की जोड़-तोड़ से क्या लाभ होगा?''

तब आयुष्मन् अश्वजित् ने सारिपुत्र परिव्राजक को स्वसम्प्रदायानुसारी यह धर्मपर्याय सुनाया—

''हमारे तथागत ने हेतु से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के हेतु का निर्देश किया है तथा उन का जो निरोध (नाश) है—उसको भी वे महाश्रमण बताते हैं।''

यह धर्मपर्याय सुनते ही सारिपुत्र परिव्राजक को यह शुद्ध निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हो गया—''जो कुछ भी उत्पत्तिधर्मा वस्तु है वह विनाशशील है।''

उसे यह अनुभव हुआ कि यही वह धर्म-पद है जिससे शोकरहित स्थान (निर्वाण) प्राप्त किया जा सकता है। यह तो असङ्ख्य कल्पों से बहुत से ज्ञानियों की दृष्टि से भी ओझल ही पड़ा था।

६२. तब सारिपुत्र परिव्राजक जहाँ मौद्गल्यायन परिव्राजक थे वहाँ गये। मौद्गल्यायन परिव्राजक

सारिपुत्तं परिब्बाजकं एतदवोच—"विप्पसन्नानि खो ते, आवुसो, इन्द्रियानि, परिसुद्धो [N.40, R.41] छविवण्णो परियोदातो। कच्चि नु त्वं, आवुसो, अमतं अधिगतो" ति? "आमावुसो, अमतं अधिगतो" ति। "यथा कथं पन त्वं, आवुसो, अमतं अधिगतो" ति? "इधाहं, आवुसो, अद्दसं अस्सजिं भिक्खुं राजगहे पिण्डाय चरन्तं पासादिकेन अभिक्कन्तेन....पे०.... इरियापथसम्पन्नं। दिस्वान मे एतदहोसि—'ये वत लोके अरहन्तो वा अरहत्तमग्गं वा समापन्ना, अयं तेसं भिक्खु अञ्ञतरो। यन्नूनाहं इमं भिक्खुं उपसङ्कमित्वा पुच्छेय्यं—'कंसि त्वं, आवुसो.... पे०....धम्मं रोचेसी' " ति। तस्स मय्हं, आवुसो, एतदहोसि—"अकालो खो इमं भिक्खुं पुच्छितुं....पे०....अत्थिकेहि उपञ्ञातं मग्गं" ति। अथ खो, आवुसो, अस्सजि भिक्खु राजगहे पिण्डाय चरित्वा पिण्डपातं आदाय पटिक्कमि। अथ ख्वाहं, आवुसो, येन अस्सजि भिक्खु तेनुपसङ्कमिं, उपसङ्कमित्वा अस्सजिना भिक्खुना सद्धिं सम्मोदिं, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठासिं। एकमन्तं ठितो खो अहं, आवुसो, अस्सजिं भिक्खुं एतदवोचं—"विप्पसन्नानि खो ते, आवुसो, इन्द्रियानि, परिसुद्धो छविवण्णो परियोदातो। कंसि त्वं, आवुसो,....पे०....धम्मं रोचेसी' "ति? अत्था-[B.53] वुसो, महासमणो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो, ताहं भगवन्तं उद्दिस्स पब्बजितो....पे०....किं काहसि ब्यञ्जनं बहुं ति। अथ खो, आवुसो, अस्सजि भिक्खु इमं धम्मपरियायं अभासि—

"ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतुं तथागतो आह।
तेसं च यो निरोधो एवंवादी महासमणो" ति॥

[R.42] अथ खो मोग्गल्लानस्स परिब्बाजकस्स इमं धम्मपरियायं सुत्वा विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—'यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं' ति।

"एसेव धम्मो यदि तावदेव पच्चब्यत्थ पदमसोकं।
अदिट्ठं अब्भतीतं बहुकेहि कप्पनहुतेही" ति॥

६३. अथ खो मोग्गल्लानो परिब्बाजको सारिपुत्तं परिब्बाजकं एतदवोच—"गच्छाम मयं, आवुसो, भगवतो सन्तिके, सो नो भगवा सत्था" ति। "इमानि खो, आवुसो, अड्ढतेय्यानि परिब्बाजकसतानि अम्हे निस्साय अम्हे सम्पस्सन्ता इध विहरन्ति, ते पि ताव अपलोकेम।

ने दूर से ही सारिपुत्र परिव्राजक को आते हुए देखा। देखकर सारिपुत्र परिव्राजक से कहा—"आयुष्मन्! तुम्हारी इन्द्रियाँ बहुत प्रसन्न दिखायी दे रही हैं, तुम्हारी शरीरप्रभा भी शुद्ध तथा निर्मल दीख रही हैं, क्या तुमने अमृत तो नहीं पा लिया है!"

"हाँ, आयुष्मन्! अमृत पा लिया।" "आयुष्मन्! तुमने यह अमृत कैसे प्राप्त कर लिया?"

(सारिपुत्र परिव्राजक ने कहा—) "आयुष्मन्! आज मैंने राजगृह में आयुष्मान् अश्वजित् को भिक्षा के लिये....पूर्ववत्....यह तो असङ्ख्य कल्पों से आज तक बहुत से ज्ञानियों की दृष्टि से भी ओझल ही पड़ा था।

६३ तब मौद्गल्यायन परिव्राजक सारिपुत्र परिव्राजक से यों बोले—"आयुष्मन्! चलो, भगवान् की सेवा में चले। आज से वही हमारे शास्ता है।" (सारिपुत्र ने कहा—) "और ये जो ढाई सौ परिव्राजक हमारे सहारे, हमें देखकर यहाँ साधना कर रहे हैं, इन्हें भी बता दें कि हम यह आश्रम—

यथा ते मञ्ञिस्सन्ति, तथा करिस्सन्ती'' ति। अथ खो सारिपुत्तमोग्गल्लाना येन ते परिब्बाजका तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा ते परिब्बाजके एतदवोचुं—''गच्छाम मयं, आवुसो, भगवतो सन्तिके, सो नो भगवा सत्था'' ति। ''मयं आयस्मन्ते निस्साय आयस्मन्ते सम्पस्सन्तो इध विहराम, सचे आयस्मन्ता महासमणे ब्रह्मचरियं चरिस्सन्ति, सब्बेव मयं महासमणे ब्रह्मचरियं चरिस्सामा'' ति। अथ खो सारिपुत्तमोग्गल्लाना येन सञ्जयो परिब्बाजको तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा सञ्जयं परिब्बाजकं एतदवोचुं—''गच्छाम मयं, आवुसो, भगवतो सन्तिके, सो नो भगवा सत्था'' ति। ''अलं, आवुसो, मा अगमित्थ, सब्बेव तयो इमं गणं परिहरिस्सामा'' ति। दुतियं पि खो सारिपुत्तमोग्गल्लाना....पे०....परिहरिस्सामा ति। [N.41] ततियं पि खो सारिपुत्तमोग्गल्लाना सञ्जयं परिब्बाजकं एतदवोचुं—''गच्छाम [B.54] मयं, आवुसो....पे०...सब्बेव तयो इमं गणं परिहरिस्सामा'' ति। अथ खो सारिपुत्तमोग्गल्लाना तानि अड्ढतेय्यानि परिब्बाजकसतानि आदाय येन वेळुवनं तेनुपसङ्कमिंसु। सञ्जयस्स पन परिब्बाजकस्स तत्थेव उण्हं लोहितं मुखतो उग्गञ्छि।

अद्दसा खो भगवा सारिपुत्तमोग्गल्लाने दूरतो व आगच्छन्ते, दिस्वान भिक्खू आमन्तेसि—''एते, भिक्खवे, द्वे सहायका आगच्छन्ति—कोलितो, उपतिस्सो च। एतं मे सावकयुगं भविस्सति अग्गं भद्दयुगं'' ति।

गम्भीरे ञाणविसये अनुत्तरे उपधिसङ्खये।
विमुत्ते अप्पत्ते वेळुवनं अथ ने सत्था ब्याकासि॥
''एते द्वे सहायका आगच्छन्ति कोलितो उपतिस्सो च।
एतं मे सावकयुगं भविस्सति अग्गं भद्दयुगं'' ति॥

धर्म छोड़ रहे हैं अब वे चाहें वैसा करें।'' यों विचार कर वे दोनों उन ढाई सौ परिव्राजकों के पास गये और बोले—''आयुष्मानो! हम तो भगवान् के पास जा रहे हैं, वे ही आज से हमारे गुरु हैं।'' ''आयुष्मानो! हम तो आपके सहारे से ही इस धर्म में साधना कर रहे थे, यदि आप लोग उन भगवान् से दीक्षा लेंगे तो हम भी आप लोगों के साथ ही उन भगवान् से दीक्षा लेंगे।'' तब वे सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन सञ्जय परिव्राजक के पास गये और उससे यह बोले—''आयुष्मन्! हम लोग तो भगवान् के पास जा रहे हैं, वे ही आज से हमारे शास्ता हैं।'' ''नहीं आयुष्मानो! ऐसा न करो। आज से हम तीनो मिल कर इस गण का सञ्चालन करेंगे।'' दूसरी बार भी सञ्जय को सारिपुत्र मौद्गल्यायन ने कहा....पूर्ववत्....। तीसरी बार भी....।

तब वे सारिपुत्र मौद्गल्यायन उन ढाई सौ परिव्राजकों को साथ लेकर वेणुवन की तरफ चल दिये। परन्तु सञ्जय परिव्राजक (भगवान् का विरोध करने के कारण) मुँह से खून फैंकने लगा।

भगवान् ने सारिपुत्र मौद्गल्यायन को, दूर से ही, आते हुए देखा। उन्हें देखकर पास बैठे भिक्षुओं को बताया—''भिक्षुओ! ये दो साथी आ रहे हैं, इनमें से एक का नाम है कोलित और दूसरे का नाम है उपतिस्स। ये मेरे दो मुख्य शिष्य उत्तम युगल (जोड़ी) के रूप में होंगे।''

वेणुवन में भगवान् बुद्ध ने गम्भीर ज्ञान वाले इन दोनों के अनुपम, भावनायुक्त और दुर्लभ निर्वाण के विषय में भविष्यवाणी की—

'कोलित और उपतिष्य—ये दो मित्र आ रहे हैं। ये दोनो उत्तम (श्रेष्ठ) युगल के रूप में, मेरे प्रमुख शिष्य होंगे।''

[R.43] अथ खो सारिपुत्तमोग्गल्लाना येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोचुं—"लभेय्याम मयं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्याम उपसम्पदं" ति। "एथ, भिक्खवो"—ति भगवा अवोच—"स्वाक्खातो धम्मो, चरथ ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया" ति। सा व तेसं आयस्मन्तानं उपसम्पदा अहोसि।

अभिञ्ञातानं पब्बज्जा

६४. तेन खो पन समयेन अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता मागधिका कुलपुत्ता भगवति ब्रह्मचरियं चरन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"अपुत्तकताय पटिपन्नो समणो गोतमो, वेधब्याय पटिपन्नो समणो गोतमो, कुलुपच्छेदाय पटिपन्नो समणो गोतमो, इदानि अनेन जटिलसहस्सं पब्बाजितं, इमानि च अड्ढतेय्यानि परिब्बाजकसतानि सञ्चेय्यानि पब्बाजितानि। इमे च अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता मागधिका कुलपुत्ता समणे गोतमे ब्रह्म-
[B.52] चरियं चरन्ती" ति। अपिस्सु भिक्खू दिस्वा इमाय गाथाय चोदेन्ति—

"आगतो खो महासमणो मागधानं गिरिब्बजं।
सब्बे सञ्जये नेत्वान कंसु दानि नयिस्सती" ति॥

अस्सोसुं खो भिक्खू तेसं मनुस्सानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "न, भिक्खवे, सो सद्दो चिरं भविस्सति, सत्ताहमेव
[N.42] भविस्सति, सत्ताहस्स अच्चयेन अन्तरधायिस्सति। तेन हि, भिक्खवे, ये तुम्हे इमाय गाथाय चोदेन्ति—

उसी समय शारिपुत्र और मौद्गल्यायन, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गये। जाकर भगवान् के श्रीचरणों में अपना शिर नवाकर बोले—"अच्छा हो, भन्ते! हम दोनों आप से प्रव्रज्या पावें, उपसम्पदा पावें।" "आओ, भिक्षुओ!"—भगवान् ऐसा कहकर फिर बोले—"आप लोगों के लिये यह धर्म सुव्याख्यात है। इसका तुम आचरण करो, इसकी साधना करो। यही तुम लोगो के दुःखक्षय का कारक होगा।" यही उन आयुष्मानों की उपसम्पदाविधि हुई।।

प्रसिद्ध जनों की प्रव्रज्या

६४. उस समय प्रसिद्ध प्रसिद्ध मगधवासी कुलपुत्र भगवान् के शिष्य होते जा रहे थे। यह देखकर मगध के नागरिक उद्विग्न होते, दुःखी होते एवं व्यग्रचित्त होते थे—"यह श्रमण तो (इस मगध देश को) अपुत्रक बनाने पर उद्यत हैं। नारियो को विधवा बनाता जा रहा है। कुलनाश के लिये सन्नद्ध है। अभी इसने हजारों जटिलों को अपना शिष्य बनाया था; अब फिर साढे बारह सौ सञ्जयमतानुयायी परिव्राजको को अपने धर्म में मिला लिया। ये प्रसिद्ध प्रसिद्ध मगधदेशवासी कुलपुत्र श्रमण गौतम के धर्म को स्वीकार करते जा रहे हैं।" भिक्षुओं को भी लोगों ने ये व्यङ्ग्य वचन कहे—

"यह महाश्रमण मागधो के गिरव्रज (राजगृह) में आया है। इसने सञ्जय के चेलों को तो अपना बना ही लिया, अब पता नही, किस किस को अपना और बनायगा!"

"भिक्षुओं ने उन लोगो की ये उद्वेग, हैरान, परेशान करने वाली बातें सुनीं। भिक्षुओं ने भगवान् के पास जाकर ये सब बातें सुनायी। (भगवान् ने कहा—) "भिक्षुओ! ये व्यङ्ग्य वचन तुम्हे बहुत

'आगतो खो महासमणो मागधानं गिरिब्बजं।
सब्बे सञ्जये नेत्वान कंसु दानि नयिस्सती''॥ ति॥

ते तुम्हे इमाय गाथाय पटिचोदेथ—

'नयन्ति वे महावीरा सद्धम्मेन तथागता।
धम्मेन नीयमानानं का उसूया विजानतं' '' ति॥

तेन खो पन समयेन मनुस्सा भिक्खू दिस्वा इमाय गाथाय चोदेन्ति—

''आगतो खो महासमणो मागधानं गिरिब्बजं।
सब्बे सञ्जये नेत्वान कंसु दानि नयिस्सती''॥ ति॥

भिक्खू ते मनुस्से'इमाय गाथाय पटिचोदेन्ति—

''नयन्ति वे महावीरा सद्धम्मेन तथागता।
धम्मेन नीयमानानं का उसूया विजानतं'' ति॥

मनुस्सा ''धम्मेन किर समणा सक्यपुत्तिया नेन्ति, नो अधम्मेना'' ति [R.44] सत्ताहमेव सो सद्दो अहोसि, सत्ताहस्स अच्चयेन अन्तरधायि।

सारिपुत्तमोग्गल्लानपब्बज्जाकथा निट्ठिता॥

चतुत्थभाणवारो निट्ठितो॥

१८. उपज्झायवत्तकथा

६५. तेन खो पन समयेन भिक्खू अनुपज्झायका अनाचरियका अनोवदिय-[B.56] माना अननुसासियमाना दुन्निवत्था दुप्पारुता अनाकप्पसम्पन्ना पिण्डाय चरन्ति; मनुस्सानं

अधिक दिन तक सुनने को नहीं मिलेंगे। कुछ दिन (सप्ताह भर) लोग ऐसा कहेंगे, फिर चुप हो जाँयेगे। इसलिये भिक्षुओ! अभी तुम इन व्यङ्गय वचनों का उत्तर यों दो। जो तुम्हें ऐसा कहते हैं—

'यह महाश्रमण मागधो के गिरिव्रज में...कितनों को अपना और बनायगा!' उन्हें तुम यह गाथा कहकर उत्तर दो—

'महावीर तथागत तो धर्मप्राण लोगों को सद्धर्म के मार्ग पर ले जा रहे है। धर्म की तरफ जाते हुओं के लिये लोगों को ईर्ष्या क्यों हो रही है!' ''

तब से जब भी कोई भिक्षुओ को यह कहता था कि ''यह महाश्रमण राजगृह में आकर सञ्जयमतानुयायी परिव्राजकों को तो नष्ट कर ही चुका है, अब पता नहीं किसकी पारी है?'' तो वे भिक्षु उसको यही उत्तर देते थे कि ''महावीर तथागत तो धर्मप्राण जनता को सद्धर्म की तरफ ले जा रहे हैं। इन सद्धर्म की तरफ बढ़ने वालों के लिये लोगों को ईर्ष्या क्यों हो रही है!''

तब जनता ने समझ लिया कि ''ये शाक्यपुत्रीय श्रमण तो लोगों को सद्धर्म की तरफ ही ले जा रहे हैं, असद्धर्म की तरफ नहीं।'' यों फिर महाश्रमण गौतम के विषय में उठाया गया वह मिथ्या प्रवाद कुछ ही दिन (सप्ताह भर) सुनायी दिया, फिर नहीं।

सारिपुत्र-मौद्गल्यायनप्रव्रज्याकथा पूर्ण।।

चतुर्थ भाणवार समाप्त।।

१८. उपाध्यायवर्तकथा

६५ उस समय भिक्षु विना किसी उपाध्याय एवं आचार्य के अनुशासन या उपदेश के ही, विना ठीक से वस्त्र पहने, विना शरीर को ठीक से ढके, चाल–ढाल में विना किसी ढग के भिक्षा के

भुञ्जमानानं, उपरिभोजने पि उत्तिट्ठपत्तं उपनामेन्ति, उपरिपानीये पि उत्तिट्ठपत्तं उपनामेन्ति; सामं सूपं पि ओदनं पि विञ्ञापेत्वा भुञ्जन्ति; भत्तग्गे पि उच्चासद्दा महासद्दा विहरन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया दुन्निवत्था दुप्पारुता अनाकप्पसम्पन्ना पिण्डाय चरिस्सन्ति; मनुस्सानं भुञ्जमानानं, उपरिभोजने पि उत्तिट्ठपत्तं उपनामेस्सन्ति, उपरिखादनीये पि उत्तिट्ठपत्तं उपनामेस्सन्ति, उपरिसायनीये पि उत्तिट्ठपत्तं उपनामेस्सन्ति, उपरिपानीये पि उत्तिट्ठपत्तं उपनामेस्सन्ति; सामं सूपं पि ओदनं [N.43] पि विञ्ञापेत्वा भुञ्जिस्सन्ति; भत्तग्गे पि उच्चासद्दा महासद्दा विहरिस्सन्ति सेय्यथापि ब्राह्मणा ब्राह्मणभोजने" ति।

अस्सोसुं खो भिक्खू तेसं मनुस्सानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा सन्तुट्ठा लज्जिनो कुक्कुच्चका सिक्खाकामा, ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम भिक्खू दुन्निवत्था दुप्पारुता अनाकप्पसम्पन्ना पिण्डाय चरिस्सन्ति; मनुस्सानं भुञ्जमानानं, उपरिभोजने पि उत्तिट्ठपत्तं उपनामेस्सन्ति, उपरिखादनीये पि उत्तिट्ठपत्तं उपनामेस्सन्ति, उपरिसायनीये पि उत्तिट्ठपत्तं उपनामेस्सन्ति, उपरिपानीये पि उत्तिट्ठपत्तं उपनामेस्सन्ति; सामं सूपं पि ओदनं पि विञ्ञापेत्वा भुञ्जिस्सन्ति; भत्तग्गे पि उच्चासद्दा महासद्दा विहरिस्सन्ती" ति। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे भिक्खुसङ्घं सन्निपातापेत्वा भिक्खू [R.45] पटिपुच्छि—"सच्चं किर, भिक्खवे, भिक्खू दुन्निवत्था...पे०....उच्चासद्दा महासद्दा [B.57] विहरन्ती" ति? "सच्चं भगवा" ति। विगरहि बुद्धो भगवा—"अननुच्छविकं,

---

लिये निकल पड़ते थे। वे भोजन करते लोगों के बीच में से भी भिक्षा के लिये आगे बढ़ जाते थे, भोजन की थाली पर से भी, उच्छिष्ट पात्रों पर से, खाने पीने की वस्तुओं के पात्रों को लाँघ कर भी चले जाते थे। वे स्वयं दाल भात माँगकर भी खाते थे, भिक्षा दिये जाते समय भी जोर जोर से बोलते रहते थे। उस समय, सभ्य पुरुष इन भिक्षुओं की ये अशोभनीय बातें देखकर दु:खी उद्विग्न तथा व्यग्र होते थे कि ये शाक्यपुत्रीय श्रमण....पूर्ववत्....भिक्षा के समय इतना चिल्लाते क्यों है! उधर, भिक्षुओं में भी जो निर्लोभ (अल्पेच्छ), यथालाभसन्तुष्ट, लज्जालु (जानकर अपराध न करने वाले, अपराध होने पर उसे न छिपाने वाले तथा अगम्य मार्ग पर न जाने वाले), सङ्कोची एवं शिक्षा हेतु लालायित रहने वाले भिक्षु थे वे भी यह सब देख-सुनकर दु:खी, उद्विग्न तथा व्यग्र होते थे कि ये (असभ्य) भिक्षु ...भिक्षा के समय चिल्लाना आदि समाज में अशोभनीय मानी जाने वाली बातें क्यों करते हैं! (अन्त में) उन भिक्षुओं ने भगवान् के सम्मुख यह प्रसङ्ग रखा।

तब भगवान् ने इस प्रसङ्ग में, इस प्रकरण में भिक्षुसङ्घ को एकत्र कर भिक्षुओं से पूछा— "भिक्षुओ! क्या वस्तुतः कुछ भिक्षु ठीक से विना वस्त्र पहने....पूर्ववत्....भिक्षा के समय चिल्लाते रहते हैं?" "हाँ, वस्तुतः, भगवन्!" तब भगवान् ने इस सब क्रिया-कलाप की गर्हणा (निन्दा) करते हुए कहा—"भिक्षुओ! उन मूर्खों का यह कार्य भिक्षुओं की शोभा के अनुकूल तथा अनुरूप नहीं है। यह श्रमणधर्म के विरुद्ध है, अकरणीय है। ऐसी बातों की इस धर्म में कल्पना भी नहीं की जा सकती। फिर कैसे ये भिक्षु मूर्खता करते हुए, विना ठीक ढंग से पहने....भिक्षा लेते समय जोर से चिल्लाते रहते हैं! भिक्षुओ! उन की यह आचरण तो उनसे अप्रसन्नों को और अधिक प्रसन्नता (अश्रद्धा) कारक नहीं सिद्ध होगा तथा यह भी हो सकता है कि आज जो श्रद्धालु हैं, उनकी, उनका यह मिथ्या आचरण

भिक्खवे, तेसं मोघपुरिसानं अननुलोमिकं अप्पटिरूपं अस्सामणकं अकप्पियं अकरणीयं। कथं हि नाम ते, भिक्खवे, मोघपुरिसा दुन्निवत्था....पे०....उच्चासद्दा महासद्दा विहरिस्सन्ति। नेतं, भिक्खवे, अप्पसन्नानं वा पसादाय, पसन्नानं वा भिय्योभावाय। अथ ख्वेतं, भिक्खवे, अप्पसन्नानं चेव अप्पसादाय, पसन्नानं च एकच्चानं अञ्ञथत्ताया'' ति। अथ खो भगवा ते भिक्खू अनेकपरियायेन विगरहित्वा दुब्भरताय दुप्पोसताय महिच्छताय असन्तुट्ठिताय सङ्गणिकाय कोसज्जस्स अवण्णं भासित्वा अनेकपरियायेन सुभरताय सुपोसताय अप्पिच्छस्स सन्तुट्ठस्स सल्लेखस्स धुतस्स पासादिकस्स अपचयस्स वीरियारम्भस्स वण्णं भासित्वा भिक्खूनं तदनुच्छविकं तदनुलोमिकं धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—

६६. ''**अनुजानामि, भिक्खवे, उपज्झायं। उपज्झायो, भिक्खवे, सद्धिविहारिकम्हि पुत्तचित्तं उपट्ठपेस्सति, सद्धिविहारिको उपज्झायम्हि पितुचित्तं उपट्ठपेस्सति। एवं ते अञ्ञमञ्ञं सगारवा सप्पतिस्सा सभागवुत्तिनो विहरन्ता इमस्मिं धम्मविनये वुड्ढिं विरुळ्हिं वेपुल्लं आपज्जिस्सन्ति।**

एवं च पन, भिक्खवे, उपज्झायो गहेतब्बो—एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा पादे वन्दित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा एवमस्स वचनीयो—'उपज्झायो मे, भन्ते, होहि; उपज्झायो मे, भन्ते, होहि; उपज्झायो मे, भन्ते, होही' ति। 'साहू' ति वा, 'लहू' ति वा, 'ओपायिकं' ति, 'पतिरूपं' ति वा, 'पासादिकेन सम्पादेही' ति वा कायेन विञ्ञापेति, वाचाय विञ्ञापेति, कायेन वाचाय विञ्ञापेति, गहितो होति उपज्झायो। न कायेन [N.44] विञ्ञापेति, न वाचाय विञ्ञापेति, न कायेन वाचाय विञ्ञापेति, न गहितो [R.46, B.58] होति उपज्झायो।

देखकर, उनके प्रति अश्रद्धा बढ़ जाय। भिक्षुओ! उन भिक्षुओं की यह असत्क्रिया तो अश्रद्धालुओं को और अधिक अश्रद्धा उत्पन्न करेगी तथा हो सकता है कि आज जो उनके प्रति श्रद्धालु हैं उन में से कुछ की श्रद्धा उनके प्रति कम हो जाय।'' तब भगवान् ने उस असदाचारी भिक्षुओ की नाना प्रकार से निन्दा करते हुए उनकी दुर्भरता, दुष्पोषता, महेच्छता (लोभ), असन्तोष, सङ्गणिका (समाज से घिरे रहने की इच्छा) एवं कौषीद्य (आलस्य) की निन्दा करते हुए नाना प्रकार से सुभरता, सुपोषता, अल्पेच्छता, सन्तोष, एकान्तप्रियता (तप), त्याग, श्रद्धा, मितव्ययिता एवं उद्योग की प्रशंसा करते हुए भिक्षुओं को तदनुकूल तथा तदनुरूप धार्मिक कथाओं का प्रवचन करते हुए सम्बोधित किया—

६६. ''भिक्षुओ! उपाध्याय करने की अनुमति देता हूँ। भिक्षुओ! उपाध्याय को सहविहारिक (अनुगामी या शिष्य) में पुत्रबुद्धि रखनी चाहिये। इसी तरह सहविहारी को उपाध्याय मे पितृबुद्धि रखनी चाहिये। इस तरह वे दोनो परस्पर गौरव तथा सहमति (ऐकमत्य) देते हुए, समान वृत्ति से रहने वाले होकर, इस (हमारे) धर्मविनय में वृद्धि, विरूढि (दृढ़मूल) एवं वैपुल्य (विशालता) प्राप्त करेंगे।

''और, भिक्षुओ! उपाध्याय का ग्रहण इस प्रकार करना चाहिये—एक कन्धे पर उत्तरासङ्ग कर, पैरों में प्रणाम कर, उकड़ूँ बैठकर, हाथ जोड़कर यो कहना चाहिये—'भन्ते! आप मेरे उपाध्याय हो जाँय, भन्ते! आप मेरे उपाध्याय हो जाँय, भन्ते! आप मेरे उपाध्याय हो जायँ।' उस समय यदि उपाध्याय शरीर के सकेत से—'ठीक है', 'अच्छा है', 'युक्त है', 'उचित है', या 'श्रद्धायुक्त होकर यह कार्य-सम्पादन करो' कहे; वाणी से; या शरीर के सकेत तथा वाणी—दोनों से सूचित करे तो समझना चाहिये कि उसका उपाध्याय के रूप में ग्रहण हो गया। यदि (उपाध्याय) न काया से, न वाणी से, न

६७. ''सद्धिविहारिकेन, भिक्खवे, उपज्झायम्हि सम्मा वत्तितब्बं। तत्रायं सम्मावत्तना—

''कालस्सेव वुट्ठाय उपाहना आमुञ्चित्वा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा दन्तकट्ठं दातब्बं, मुखोदकं दातब्बं, आसनं पञ्ञापेतब्बं। सचे यागु होति, भाजनं धोवित्वा यागु उपनामेतब्बा। यागुं पीतस्स उदकं दत्वा भाजनं पटिग्गहेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन धोवित्वा पटिसामेतब्बं। उपज्झायम्हि वुट्ठिते आसनं उद्धरितब्बं। सचे सो देसो उक्लापो होति, सो देसो सम्मज्जितब्बो।

''सचे उपज्झायो गामं पविसितुकामो होति, निवासनं दातब्बं, पटिनिवासनं पटिग्गहेतब्बं, कायबन्धनं दातब्बं, सगुणं कत्वा सङ्घाटियो दातब्बा, धोवित्वा पत्तो सउदको दातब्बो। सचे उपज्झायो पच्छासमणं आकङ्खति, तिमण्डलं पटिच्छादेन्तेन परिमण्डलं निवासेत्वा कायबन्धनं बन्धित्वा सगुणं कत्वा सङ्घाटियो पारुपित्वा गण्ठिकं पटिमुञ्चित्वा धोवित्वा पत्तं गहेत्वा उपज्झायस्स पच्छासमणेन होतब्बं। नातिदूरे गन्तब्बं, नाच्चासन्ने गन्तब्बं, पत्तपरियापन्नं पटिग्गहेतब्बं। न उपज्झायस्स भणमानस्स अन्तरन्तरा कथा ओपातेतब्बा। उपज्झायो आपत्तिसामन्ता भणमानो निवारेतब्बो।

''निवत्तन्तेन पठमतरं आगन्त्वा आसनं पञ्ञापेतब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपितब्बं, पच्चुग्गन्त्वा पत्तचीवरं पटिग्गहेतब्बं, पटिनिवासनं दातब्बं, निवासनं

काया और वाणी—दोनो से ही सूचित करता है तो उसका उपाध्याय के रूप में ग्रहण करना नहीं समझा जायगा।

सम्यग्वर्तना— ६७.''भिक्षुओ! सहविहारिक (शिष्य) को उपाध्याय के साथ निरन्तर सद्व्यहार करना चाहिये। इस सद्व्यवहार (सम्मावत्तना) का विस्तार यों है—

समय से उठ (जाग) कर, जूता उतार कर, उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर, दातुन देनी चाहिये। मुख धोने के लिये जल देना चाहिये, आसन बिछाना चाहिये। यदि खिचडी या कोई तरल पदार्थ हो तो पात्र धोकर, उसमें वह खिचड़ी या तरल पदार्थ डालना चाहिये। खिचडी पी लेने के बाद जल देकर, पात्र धोकर, उलटकर, ठीक से धोये हुए पात्र को एक तरफ रख देना चाहिये। उपाध्याय के उठ जाने पर आसन उठा देना चाहिये। स्थान (गन्दा हो गया हो तो) साफ कर देना चाहिये।

उपाध्याय यदि ग्राम में प्रविष्ट होना चाहे तो पहनने के लिये वस्त्र देने चाहिये। कायबन्धन देना चाहिये, दोहराकर सङ्घाटि देनी चाहिये। पात्र धोकर जल से भर कर देना चाहिये। यदि उपाध्याय किसी को साथ चलने की बात कहें तो तीन स्थानों को ढकते हुए घेरादार चीवर पहन कर, कायबन्धन बाँध, चौपौती सङ्घाटि पहन, गाँठ खोलकर, धोए पात्र को लेकर, उपाध्याय का अनुगामी बन जाना चाहिये। चलते समय न तो उनसे बहुत दूर चलना चाहिये, न बहुत समीप ही। मिली भिक्षा को पात्र में ग्रहण करना चाहिये। उपाध्याय द्वारा बोलते समय, बीच बीच में कोई अन्य प्रसङ्ग नहीं उठाना चाहिये। हाँ, यदि ऐसा लगे कि उपाध्याय आपत्तिजनक (सदोष) बात बोल रहे हैं तो उन्हें रोक देना चाहिये।

गाँव से पुनः आराम में लौटते समय, उपाध्याय से पहले आकर, उनका आसन विछा देना, पैर धोने का जल, पादपीठ, पादकठली (पैर घिसने के लिये लकड़ी का टुकडा) रख देना चाहिये। आगे बढ़कर उपाध्याय के हाथ से पात्र चीवर लेना चाहिये। दूसरा वस्त्र देना चाहिये। पहला वस्त्र

पटिग्गहेतब्बं। सचे चीवरं सिन्नं होति, मुहुत्तं उण्हे ओतापेतब्बं, न च उण्हे चीवरं निदहितब्बं; चीवरं सङ्घरितब्बं, चीवरं सङ्घरन्तेन चतुरङ्गुलं कण्णं उस्सादेत्वा चीवरं सङ्घरितब्बं—मा मज्झे भङ्गो अहोसी ति। ओभोगे कायबन्धनं कातब्बं।

"सचे पिण्डपातो होति, उपज्झायो च भुञ्जितुकामो होति, उदकं दत्वा पिण्डपातो उपनामेतब्बो। उपज्झायो पानीयेन पुच्छितब्बो। भुत्ताविस्स उदकं दत्वा पत्तं पटिग्गहेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन धोवित्वा वोदकं कत्वा मुहुत्तं उण्हे ओतापेतब्बो, [B.59] न च उण्हे पत्तो निदहितब्बो। पत्तचीवरं निक्खिपितब्बं। पत्तं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन पत्तं गहेत्वा एकेन हत्थेन हेट्ठामञ्चं वा हेट्ठापीठं वा परामसित्वा पत्तो निक्खिपितब्बो। [R.47] न च अनन्तरहिताय भूमिया पत्तो निक्खिपितब्बो। चीवरं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन चीवरं गहेत्वा एकेन हत्थेन चीवरवंसं वा चीवररज्जुं वा पमज्जित्वा पारतो अन्तं ओरतो भोगं कत्वा चीवरं निक्खिपितब्बं। उपज्झायम्हि वुट्ठिते आसनं उद्धरितब्बं, पादोदकं पादपीठं [N.45] पादकथलिकं पटिसामेतब्बं। सचे सो देसो उक्लापो होति, सो देसो सम्मज्जितब्बो।

"सचे उपज्झायो नहायितुकामो होति, नहानं पटियादेतब्बं। सचे सीतेन अत्थो होति, सीतं पटियादेतब्बं। सचे उण्हेन अत्थो होति, उण्हं पटियादेतब्बं।

"सचे उपज्झायो जन्ताघरं पविसितुकामो होति, चुण्णं सन्नेतब्बं, मत्तिका तेमेतब्बा, जन्ताघरपीठं आदाय उपज्झायस्स पिट्ठितो पिट्ठितो गन्त्वा जन्ताघरपीठं दत्वा चीवरं पटिग्गहेत्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं, चुण्णं दातब्बं, मत्तिका दातब्बा। सचे उस्सहति, जन्ताघरं पविसितब्बं।

ले लेना चाहिये। वस्त्र में यदि पसीना लग गया हो तो उसे छाया में सुखा देना चाहिये। वस्त्र को धूप में नहीं सुखाना चाहिये। फिर वस्त्र को समेट कर रख देना चाहिये। वस्त्र को समेटते समय चार अंगुल किनारा छोड़कर वस्त्र को समेटना चाहिये ताकि वस्त्र के बीच में कोई दोष न आ जाय। कायबन्धन को भी समेटे हुए वस्त्रों में ही रख देना चाहिये।

यदि भिक्षान्न (पिण्डपात) हो और उपाध्याय भोजन करना चाहें, तो जल रखकर भोजन परोसना चाहिये। बीच मे उपाध्याय को जल भी पूछना चाहिये। भोजन कर चुकने के बाद जल देकर उच्छिष्ट पात्र लेकर उसे औंधा कर, विना घिसे अच्छी तरह धो-पोंछकर, मुहूर्त भर धूप में सुखा देना चाहिये। धूप में पात्र अधिक गरम नही करना चाहिये। पात्र चीवर रख देना चाहिये। पात्र रखते समय एक हाथ से पात्र पकड़ कर दूसरे हाथ से मञ्च के नीचे या मञ्च के ऊपर (जहाँ पात्र रखना हो) स्थान देखकर ही पात्र रखना चाहिये। इसी तरह चीवर रखते समय एक हाथ से चीवर पकडकर दूसरे हाथ से चीवर टांगने का बाँस या रस्सी को इस किनारे से उस किनारे तक पोंछकर तब चीवर डालना चाहिये। उपाध्याय द्वारा भोजन करके उठ जाने के बाद, आसन उठा देना चाहिये। पादोदक, पादपीठिका, पादकठलिका भी पुनः यथास्थान रख देनी चाहिये। भोजन करने से वह स्थान अस्वच्छ हो गया हो तो उसे पुनः साफ कर देना चाहिये।

उपाध्याय यदि स्नान करना चाहें तो उन्हें स्नानहेतु जल रख देना चाहिये। यदि वे शीत जल चाहें तो शीत तथा उष्ण जल चाहें तो उष्ण देना चाहिये।

यदि उपाध्याय जन्ताघर (यन्त्रगृह) में जाकर वाष्पस्नान करना चाहें तो स्नानचूर्ण ले जाना चाहिये, मिट्टी ले जानी चाहिये। जन्ताघर का पीढा लेकर उपाध्याय के पीछे-पीछे जाकर जन्ताघर मे पीढ़ा रख कर, चीवर एक तरफ रख देना चाहिये। चूर्ण और मिट्टी भी दे देनी चाहिये। यदि उपाध्याय

जन्ताघरं पविसन्तेन मत्तिकाय मुखं मक्खेत्वा पुरतो च पच्छतो च पटिच्छादेत्वा जन्ताघरं पविसितब्बं। न थेरे भिक्खू अनुपखज्ज निसीदितब्बं। न नवा भिक्खू आसनेन पटिबाहेतब्बा। जन्ताघरे उपज्झायस्स परिकम्मं कातब्बं। जन्ताघरा निक्खमन्तेन जन्ताघरपीठं आदाय पुरतो च पच्छतो च पटिच्छादेत्वा जन्ताघरा निक्खमितब्बं।

"उदके पि उपज्झायस्स परिकम्मं कातब्बं। नहातेन पठमतरं उत्तरित्वा अत्तनो गत्तं वोदकं कत्वा निवासेत्वा उपज्झायस्स गत्ततो उदकं पमज्जितब्बं, निवासनं दातब्बं, सङ्घाटि दातब्बा, जन्ताघरपीठं आदाय पठमतरं आगन्त्वा आसनं पञ्ञापेतब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपितब्बं, उपज्झायो पानीयेन पुच्छितब्बो। सचे उद्दिसापेतुकामो होति, उद्दिसापेतब्बो। सचे परिपुच्छितुकामो होति, परिपुच्छितब्बो।

"यस्मिं विहारे उपज्झायो विहरति, सचे सो विहारो उक्लापो होति, सचे उस्सहति, [B.60] सोधेतब्बो। विहारं सोधेन्तेन पठमं पत्तचीवरं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं। निसीदनपच्चत्थरणं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं। भिसिबिम्बोहनं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं। मञ्चो नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असंघट्टन्तेन कवाटपिट्ठं, नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बो। पीठं नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असंघट्टन्तेन कवाटपिट्ठं, नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं। मञ्चपटिपादका नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बा। खेळमल्लको नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बो। अपस्सेनफलकं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं। भुम्मत्थरणं यथापञ्ञत्तं सल्लक्खेत्वा नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं।

चाहें तो जन्ताघर में जाना चाहिये। जन्ताघर में जाते समय मृत्तिका मुँह पर मल कर, आगे पीछे छिपाकर, जाना चाहिये। स्थविर भिक्षुओं को आगे खड़े होकर व्यवधान कर नहीं खड़े होना चाहिये। न नये भिक्षुओं को आसन से उठाना चाहिये। जन्ताघर में उपाध्याय का परिकर्म (व्यवस्था) करना चाहिये। जन्ताघर से निकलते समय जन्ताघर का पीढ़ा लेकर आगे-पीछे से बन्द करके निकलना चाहिये।

(नदी के) जल में स्नान करते समय सहविहारिक को उपाध्याय की व्यवस्था करनी चाहिये। उपाध्याय द्वारा नदी में उतरने से पहले ही अपने शरीर का जल वस्त्र से सुखाकर, कुछ वस्त्र पहनकर, उपाध्याय के शरीर को मलना पोंछना चाहिये। (पहनने के लिये) वस्त्र देना चाहिये। सङ्घाटि देनी चाहिये। जन्ताघर से पीढ़ा लेकर पहले आकर आसन बिछा देना चाहिये। पैर धोने का जल, पैर रखने के लिये पीढ़ा, पादकथलिका रख देनी चाहिये। उपाध्याय को जल पूछना चाहिये। यदि वे कुछ कहना (पढ़ाना) चाहें तो उससे सुनना चाहिये। वे कुछ पूछना चाहें तो उसे सुनना चाहिये।

जिस आवास (विहार) में उपाध्याय रहते हों वह विहार यदि मैला हो और सामर्थ्य हो तो उसे (झाड़ू आदि से) साफ कर देना चाहिये। विहार की सफाई करते समय सर्वप्रथम पात्र-चीवर को लेकर एक तरफ रख देना चाहिये। बैठने बिछाने के वस्त्र (गद्दा-चादर आदि) निकाल कर एक ओर रख देना चाहिये। तकिया भी....। चारपाई खड़ी कर सावधानी से झड़काकर, किवाड़ों से न भिड़ाते हुए बाहर निकालनी चाहिये। चारपाई पादपीठ भी....। चारपाई के पायों के नीचे लगाये काठ के टुकड़े भी निकाल कर एक तरफ रखने चाहिये। पीकदान को भी निकाल कर एक ओर रख देना चाहिये। अपाश्रयण (सहारे के लिये रखा गया) फलक भी बाहर रख देना चाहिये। दरी (भुम्मत्थरण) निकालकर बाहर रख देनी चाहिये। यदि विहार में मकड़ी के जाले लगे हों तो जाला साफ करने

सचे विहारे सन्तानकं होति, उल्लोका पठमं ओहारेतब्बं आलोकसन्धि कण्णभागः पमज्जितब्बा सचे गेरुकपरिकम्मकता भित्ति कण्णकिता होति, चोळकं तेमेत्वा पीळेत्वा पमज्जितब्बा। सचे काळवण्णकता भूमि कण्णकिता होति, चोळकं तेमेत्वा पीळेत्वा पमज्जितब्बा। सचे अकता होति भूमि, उदकेन परिप्फोसित्वा सम्मज्जितब्बा। 'मा विहारो रजेन ऊहञ्ञी'ति सङ्कारं विचिनित्वा एकमन्तं छड्डेतब्बं।

"भुम्मत्थरणं ओतापेत्वा साधेत्वा पप्फोटेत्वा अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं [N.46] पञ्ञापेतब्बं। मञ्चपटिपादका ओतापेत्वा पमज्जित्वा अतिहरित्वा यथाठाने ठपेतब्बा। मञ्चो ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असंघट्टन्तेन कवाटपिट्ठं, अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बो। पीठं ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असंघट्टन्तेन कवाटपिट्ठं, अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बं। भिसिबिम्बोहनं ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बं। खेळमल्लको ओतापेत्वा पमज्जित्वा अतिहरित्वा यथाठाने ठपेतब्बो। अपस्सेनफलकं ओतापेत्वा पमज्जित्वा अतिहरित्वा यथाठाने ठपेतब्बं। पत्तचीवरं निक्खिपितब्बं। पत्तं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन पत्तं गहेत्वा एकेन हत्थेन हेट्ठामञ्चं वा हेट्ठापीठं वा परामसित्वा पत्तो निक्खिपितब्बो। न च अनन्तरहिताय भूमिया पत्तो निक्खिपितब्बो। चीवरं [B.61] निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन चीवरं गहेत्वा एकेन हत्थेन चीवरंसं वा चीवररज्जुं वा पमज्जित्वा पारतो अन्तं ओरतो भोगं कत्वा चीवरं निक्खिपितब्बं।

"सचे पुरत्थिमा सरजा वाता वायन्ति, पुरत्थिमा वातपाना थकेतब्बा। सचे पच्छिमा सरजा वाता वायन्ति, पच्छिमा वातपाना थकेतब्बा। सचे उत्तरा सरजा वाता वायन्ति, उत्तरा वातपाना थकेतब्बा। सचे दक्खिणा सरजा वाता वायन्ति, उत्तरा वातपाना थकेतब्बा। [R.49] सचे दक्खिणा सरजा वाता वायन्ति, दक्खिणा वातपाना थकेतब्बा। सचे सीतकालो होति, दिवा वातपाना विवरितब्बा, रत्तिं थकेतब्बा। सचे उण्हकालो होति, दिवा वातपाना थकेतब्बा, रत्तिं विवरितब्बा।

वाली झाडू से पहले कोने (कोण) साफ कर देना चाहिये। यदि दीवार पर कहीं गेरु के छींटे पड़े हों या कमरे का फर्श (धरातल) गन्दा हो या फर्श पर किसी चीज के कोई काले पीले धब्बे पड़ गये हों तो उन्हें पुराना कपड़ा जल से भिगोकर उससे पोंछ देना चाहिये। यदि धरातल (फर्श) अधिक मैला हो तो उसे जल से धो देना चाहिये। विहार उड़ी हुई धूल से पुनः गन्दा न हो जाय—अतः इकट्ठे किये कूड़े को बाहर फेंक देना चाहिये।

फर्श पर बिछाने वाली दरी को धूप में सुखाकर, साफ कर, झड़का कर, लाकर, पुनः पहले की तरह बिछा देनी चाहिये। चारपाई के पायों के नीचे लगने वाले काठ को....चारपाई को....पीठ को....तकिया को....गद्दा–चादर को....पीकदान को....चारपाई के आवरण (मच्छरदानी) को....पहले की तरह रख देना चाहिये। पात्र को....समतल भूमि कर रखना चाहिये। चीवर को....समेटकर रखना चाहिये।

"यदि पूरबी धूलभरी तेज हवा चल रही हो तो पूरब की खिड़की बन्द कर देनी चाहिये। यदि पश्चिमी तेज हवा चल रही हो तो पश्चिम की खिड़की बन्द कर देना चाहिये। यदि उत्तर की....यदि

"सचे परिवेणं उक्लापं होति, परिवेणं सम्मज्जितब्बं। सचे कोट्ठको उक्लापो होति, कोट्ठको सम्मज्जितब्बो। सचे उपट्ठानसाला उक्लापा होति, उपट्ठानसाला सम्मज्जितब्बा। सचे अग्गिसाला उक्लापा होति, अग्गिसाला सम्मज्जितब्बा। सचे वच्चकुटी उक्लापा होति, वच्चकुटी सम्मज्जितब्बा। सचे पानीयं न होति, पानीयं उपट्ठापेतब्बं। सचे परिभोजनीयं न होति, परिभोजनीयं उपट्ठापेतब्बं। सचे आचमनकुम्भिया उदकं न होति, आचमनकुम्भिया उदकं आसिञ्चितब्बं।

"सचे उपज्झायस्स अनभिरति उप्पन्ना होति, सद्धिविहारिकेन वूपकासेतब्बा, वूपकासापेतब्बा, धम्मकथा वास्स कातब्बा। सचे उपज्झायस्स कुक्कुच्चं उप्पन्नं होति, सद्धिविहारिकेन विनोदेतब्बं, विनोदापेतब्बं, धम्मकथा वास्स कातब्बा। सचे उपज्झायस्स दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति, सद्धिविहारिकेन विवेचेतब्बं, विवेचापेतब्बं, धम्मकथा वास्स कातब्बा। [N.47] सचे उपज्झायो गरुधम्मं अज्झापन्नो होति परिवासारहो, सद्धिविहारिकेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किन्ति नु खो सङ्घो उपज्झायस्स परिवासं ददेय्या' ति। सचे उपज्झायो मूलाय पटिकस्सनारहो होति, सद्धिविहारिकेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किन्ति नु खो सङ्घो उपज्झायं मूलाय पटिकस्सेय्या' ति। सचे उपज्झायो मानत्तारहो होति, सद्धिविहारिकेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किन्ति नु खो सङ्घो उपज्झायस्स मानत्तं ददेय्या' ति। सचे उपज्झायो अब्भानारहो होति, सद्धिविहारिकेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किन्ति नु खो सङ्घो उपज्झायं अब्भेय्या' ति। [B.62] सचे सङ्घो उपज्झायस्स कम्मं कत्तुकामो होति तज्जनीयं वा नियस्सं वा पब्बाजनीयं वा पटिसारणीयं वा उक्खेपनीयं वा, सद्धिविहारिकेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किन्ति नु खो सङ्घो उपज्झायस्स कम्मं न करेय्य लहुकाय वा परिणामेय्या' ति। कतं वा पनस्स होति सङ्घेन कम्मं तज्जनीयं वा नियस्सं वा पब्बाजनीयं वा पटिसारणीयं वा उक्खेपनीयं वा, सद्धिविहारिकेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किन्ति नु खो उपज्झायो सम्मा वत्तेय्य, लोमं पातेय्य, नेत्थारं वत्तेय्य, सङ्घो तं कम्मं पटिप्पस्सम्भेय्या' ति।

दक्षिण की....। शरदृतु में दिन में खिड़की खोल देनी चाहिये, परन्तु रात्रि को बन्द कर देना चाहिये। यदि गर्मी के दिन हों तो दिन में खिड़की बन्द रखनी चाहिये, रात को खोल देना चाहिये।

यदि परिवेण (आवास के सामने का खुला स्थान) गन्दा हो तो उसे....यदि कोठा गन्दा हो तो....यदि उपस्थानशाला (सेवाभवन)...यदि अग्निशाला...यदि शौचालय (वच्चकुटी) गन्दा हो तो उसे साफ कर देना चाहिये। . ..यदि जल न हो तो जल रख देना चाहिये। भोज्य पदार्थ न हों तो वे भी रख देने चाहिये। यदि हाथ मुँह धोने (शौच) के घड़े में जल न हो तो उसे भी जल से भर देना चाहिये।

"यदि उपाध्याय को किसी तरह की उदासी (अनभिरति) हो, तो या कोई शङ्का (सन्देह) या कौकृत्य या कोई विरुद्धमति उत्पन्न हो जाय तो उन्हें उस प्रसङ्ग की धार्मिक कथाएँ कहकर निवृत्त कर देना चाहिये। यदि उपाध्याय से परिवासयोग्य (द्र०--चुल्लवग्ग, २--३ स्क०) गुरु प्रमाद हो गया हो तो सहविहारिक को प्रयत्न कर सङ्घ से परिवास दिलाना चाहिये। यदि उपाध्याय मूलाय प्रतिकर्षण...मानत्व...आह्वान . तर्जनीय.. न्यस्स...प्रवाजनीय. प्रतिसारणीय. ..उत्क्षेपणीय कर्म के कारण प्रमाद के घेरे में आ गये हो तो सहविहारी को प्रयास करना चाहिये कि उसका उपाध्याय सही मार्ग पकड़ ले, नम्रता स्वीकार करे उससे निस्तार (छूट) के अनुकूल व्यवहार करे जिससे सङ्घ उसको दिये जाने वाले दण्ड को स्थगित कर दे या क्षमा कर दे।

''सचे उपज्झायस्स चीवरं धोवितब्बं होति, सद्धिविहारिकेन धोवितब्बं, उस्सुक्कं वा कातब्बं—''किन्ति नु खो उपज्झायस्स चीवरं धोवियेथा' ति। सचे उपज्झायस्स [R.50] चीवरं कातब्बं होति, सद्धिविहारिकेन कातब्बं, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किन्ति नु खो उपज्झायस्स चीवरं करियेथा' ति। सचे उपज्झायस्स रजनं पचितब्बं होति, सद्धिविहारिकेन पचितब्बं, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किन्ति नु खो उपज्झायस्स चीवरं करियेथा' ति। सचे उपज्झायस्स रजनं पचितब्बं होति, सद्धिविहारिकेन पचितब्बं, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किन्ति नु खो उपज्झायस्स रजनं पचियेथा' ति। सचे उपज्झायस्स चीवरं रजितब्बं होति, सद्धिविहारिकेन रजितब्बं, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किन्ति नु खो उपज्झायस्स चीवरं रजियेथा ति। चीवरं रजन्तेन साधुकं सम्परिवत्तकं सम्परिवत्तकं रजितब्बं, न च अच्छिन्ने थेवे पक्कमितब्बं।

''न उपज्झायं अनापुच्छा एकच्चस्स पत्तो दातब्बो, न एकच्चस्स पत्तो पटिग्गहेतब्बो; न एकच्चस्स चीवरं दातब्बं, न एकच्चस्स चीवरं पटिग्गहेतब्बं; न एकच्चस्स परिक्खारो दातब्बो, न एकच्चस्स परिक्खारो पटिग्गहेतब्बो; न एकच्चस्स केसा छेदेतब्बा, न एकच्चेन केसा छेदापेतब्बा; न एकच्चस्स परिकम्मं कातब्बं, न एकच्चेन परिकम्मं कारापेतब्बं; न एकच्चस्स वेय्यावच्चो कातब्बो, न एकच्चेन वेय्यावच्चो कारापेतब्बो; न एकच्चस्स पच्छासमणेन होतब्बं, न एकच्चो पच्छासमणो आदातब्बो; न एकच्चस्स पिण्डपातो नीहरितब्बो, न एकच्चेन पिण्डपातो नीहरापेतब्बो; न उपज्झायं अनापुच्छा गामो पविसितब्बो; न सुसानं गन्तब्बं; न दिसा पक्कमितब्बा। सचे उपज्झायो गिलानो होति, यावजीवं उपट्ठातब्बो; [B.63] वुट्ठानमस्स आगमेतब्बं'' ति॥

उपज्झायवत्तं निट्ठितं॥

''यदि उपाध्याय का चीवर धुलने योग्य हो गया हो तो...धो देना चाहिये या प्रयत्न करना चाहिये कि वह धुल जाय। यदि उपाध्याय को नया चीवर कराना हो....यदि उपाध्याय को चीवर हेतु रङ्ग पकाना हो....चीवर रङ्गना हो तो उसे रङ्ग देना चाहिये। चीवर को रङ्गते समय अच्छी तरह उलट–पुलट कर पूरा रङ्गना चाहिये। कहीं बीच में खाली (विना रङ्ग के) न छूट जाय।

''उपाध्याय को विना पूछे न किसी को पात्र देना चाहिये, न किसी से पात्र लेना चाहिये।. .न किसी को चीवर देना चाहिये, न किसी से लेना चाहिये।....न किसी को परिष्कार (उपयोग की वस्तु) देना चाहिये, न लेना चाहिये।....न किसी के बाल काटने चाहिये, न किसी से कटवाने चाहिये।....न किसी के देह का मर्दन (मालिश) करना चाहिये, न किसी से करवाना चाहिये।....न किसी की सेवा करनी चाहिये, न किसी से करवानी चाहिये।.....न किसी का अनुगामी (पच्छा समण) भिक्षु बनना चाहिये, न किसी को बनाना चाहिये।....न किसी का भिक्षान्न ले आना चाहिये, न किसी से लिवा कर आना चाहिये। न उपाध्याय से पूछे विना गाँव में प्रवेश करना चाहिये, न श्मशान की तरफ जाना चाहिये।....न किसी अन्य दिशा में जाना चाहिये। यदि उपाध्याय किसी रोग से आक्रान्त हो जाय तो (जब तक वह रोग शान्त न हो तब तक) जीवनपर्यन्त उसकी सेवा करनी चाहिये। उसके रोग की शान्ति की कामना करते रहना चाहिये।।

उपाध्यायवर्त समाप्त।।

१९. सद्धिविहारिकवत्तकथा

[N.48] ६८. 'उपज्झायेन, भिक्खवे, सद्धिविहारिकम्हि सम्मा वत्तितब्बं। तत्रायं **सम्मावत्तना**

"उपज्झायेन, भिक्खवे, सद्धिविहारिको सङ्गहेतब्बो अनुग्गहेतब्बो उद्देसेन परिपुच्छाय ओवादेन अनुसासनिया। सचे उपज्झायस्स पत्तो होति, सद्धिविहारिकस्स पत्तो न होति, उपज्झायेन सद्धिविहारिकस्स पत्तो दातब्बो, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किन्ति नु खो सद्धिविहारिकस्स पत्तो उप्पज्जियेथा' ति। सचे उपज्झायस्स चीवरं होति, सद्धिविहारिकस्स चीवरं न होति, उपज्झायेन सद्धिविहारिकस्स चीवरं दातब्बं, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किन्ति नु खो सद्धिविहारिकस्स चीवरं उप्पज्जियेथा' ति। सचे उपज्झायस्स परिक्खारो होति, सद्धिविहारिकस्स परिक्खारो न होति, उपज्झायेन सद्धिविहारिकस्स परिक्खारो दातब्बो, [R.51] उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किन्ति नु खो सद्धिविहारिकस्स परिक्खारो उप्पज्जियेथा' ति।

"सचे सद्धिविहारिको गिलानो होति, कालस्सेव उट्ठाय दन्तकट्ठं दातब्बं, मुखोदकं दातब्बं, आसनं पञ्ञापेतब्बं। सचे यागु होति, भाजनं धोवित्वा यागु उपनामेतब्बा। यागुं पीतस्स उदकं दत्वा भाजनं पटिग्गहेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन धोवित्वा पटिसामेतब्बं। सद्धिविहारकम्हि वुट्ठिते आसनं उद्धरितब्बं। सचे सो देसो उक्लापो होति, सो देसो सम्मज्जितब्बो।

"सचे सद्धिविहारिको गामं पविसितुकामो होति, निवासनं दातब्बं, पटिनिवासनं पटिग्गहेतब्बं, कायबन्धनं दातब्बं, सगुणं कत्वा सङ्घाटियो दातब्बा, धोवित्वा पत्तो सउदको [B.64] दातब्बो। 'एत्तावता निवत्तिस्सती' ति आसनं पञ्ञापेतब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपितब्बं, पच्चुग्गन्त्वा पत्तचीवरं पटिग्गहेतब्बं, पटिनिवासनं दातब्बं, निवासनं पटिग्गहेतब्बं। सचे चीवरं सिन्नं होति, मुहुत्तं उण्हे ओतापेतब्बं, न च उण्हे चीवरं निदहितब्बं; चीवरं सङ्घरितब्बं, चीवरं सङ्घरन्तेन चतुरङ्गुलं कण्णं उस्सादेत्वा चीवरं सङ्घरितब्बं—मा मज्झे भङ्गो अहोसी ति। ओभोगे कायबन्धनं कातब्बं।

---

१९. सहविहारिवर्तकथा

सहविहारी के साथ आचरणनियम— ६८. "भिक्षुओ! उपाध्याय को भी अपने सहविहारी (शिष्य) के साथ सही व्यवहार (सम्यग्वर्तना) करना चाहिये। वह सही व्यवहार यह है—

भिक्षुओ! उपाध्याय द्वारा सहविहारी का संग्रह करना चाहिये। उस पर अनुग्रह (कृपा) करना चाहिये—अध्यापन कर, शङ्का सन्देह मिटा कर, उपदेश देकर या अनुशासन (धार्मिक नियन्त्रण) कर। यदि उपाध्याय के पास पात्र हो तथा सहविहारिक के पास पात्र न हो तो उसे पात्र देना चाहिये या फिर ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि उसके पास पात्र हो जाय। यदि उपाध्याय के पास चीवर हो...सहविहारी को भी चीवर मिल जाय। यदि उपाध्याय के पास दैनिक उपयोगी वस्तु हो....सहविहारी को भी वह वस्तु मिल जाय।

"यदि सहविहारी, कभी रोगाक्रान्त हो जाय तो समय से ही उठकर उसे दतुअन, मुँह धोने को जल, तथा हाथ-पैर धोने हेतु पीढ़ा देना चाहिये।...पूर्ववत्....।

"सचे पिण्डपातो होति, सद्धिविहारिको च भुञ्जितुकामो होति, उदकं दत्वा पिण्डपातो उपनामेतब्बो। सद्धिविहारिको पानीयेन पुच्छितब्बो। भुत्ताविस्स उदकं दत्वा पत्तं पटिग्गहेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन धोवित्वा वोदकं कत्वा मुहुत्तं उण्हे ओतापेतब्बो, न च उण्हे पत्तो निदहितब्बो। पत्तचीवरं निक्खिपितब्बं। पत्तं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन पत्तं गहेत्वा एकेन हत्थेन हेट्ठामञ्चं वा हेट्ठापीठं वा परामसित्वा पत्तो निक्खिपितब्बो। न च अनन्तरहिताय भूमिया पत्तो निक्खिपितब्बो। चीवरं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन चीवरं गहेत्वा एकेन हत्थेन चीवरवंसं वा चीवररज्जुं वा पमज्जित्वा पारतो अन्तं ओरतो भोगं कत्वा चीवरं निक्खिपितब्बं। सद्धिविहारिकम्हि वुट्ठिते आसनं उद्धरितब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं पटिसामेतब्बं। सचे सो देसो उक्लापो होति, सो देसो सम्मज्जितब्बो। [N.49]

"सचे सद्धिविहारिको नहायितुकामो होति, नहानं पटियादेतब्बं। सचे सीतेन अत्थो [R.52] होति, सीतं पटियादेतब्बं। सचे उण्हेन अत्थो होति, उण्हं पटियादेतब्बं।

"सचे सद्धिविहारिको जन्ताघरं पविसितुकामो होति, चुण्णं सन्नेतब्बं, मत्तिका तेमेतब्बा, जन्ताघरपीठं आदाय गन्त्वा जन्ताघरपीठं दत्वा चीवरं पटिग्गहेत्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं, चुण्णं दातब्बं, मत्तिका दातब्बा। सचे उस्सहति, जन्ताघरं पविसितब्बं। जन्ताघरं पविसन्तेन मत्तिकाय मुखं मक्खेत्वा पुरतो च पच्छतो च पटिच्छादेत्वा जन्ताघरं पविसितब्बं। न थेरे भिक्खू अनुपखज्ज निसीदितब्बं। न नवा भिक्खू आसनेन पटिबाहेतब्बा। जन्ताघरे सद्धिविहारिकस्स परिकम्मं कातब्बं। जन्ताघरा निक्खमन्तेन जन्ताघरपीठं आदाय पुरतो च पच्छतो च पटिच्छादेत्वा जन्ताघरा निक्खमितब्बं।

"उदके पि सद्धिविहारिकस्स परिकम्मं कातब्बं। नहातेन पठमतरं उत्तरित्वा [B.65] अत्तनो गत्तं वोदकं कत्वा निवासेत्वा सद्धिविहारिकस्स गत्ततो उदकं पमज्जितब्बं, निवासनं दातब्बं, सङ्घाटि दातब्बा। जन्ताघरपीठं आदाय पठमतरं आगन्त्वा आसनं पञ्ञापेतब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपितब्बं। सद्धिविहारिको पानीयेन पुच्छितब्बो।

"यस्मिं विहारे सद्धिविहारिको विहरति, सचे सो विहारो उक्लापो होति, सचे उस्सहति, सोधेतब्बो। विहारं सोधेन्तेन पठमं पत्तचीवरं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं; निसीदनपच्चत्थरणं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं; भिसिबिम्बोहनं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं; मञ्चो नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असङ्घट्टन्तेन कवाटपिट्ठं, नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं; मञ्चपटिपादका नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बा; खेळमल्लको नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बो; अपस्सेनफलकं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं; भुम्मत्थरणं यथापञ्ञत्तं सल्लक्खेत्वा नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं। सचे विहारे सन्तानकं होति, उल्लोका पठमं ओहारेतब्बं, आलोकसन्धिकण्णभागा पमज्जितब्बा। सचे काळवण्णकता भूमि कण्णकिता होति, चोळकं तेमेत्वा पीळेत्वा पमज्जितब्बा। सचे अकता होति भूमि,

---

[यहाँ से अन्त तक उपाध्यायवर्तकथा में आये हुए मूल पाठ का, प्रसङ्गानुसार 'उपाध्याय' शब्द के स्थान पर 'सहविहारी' शब्द लगाकर, सरलता से हिन्दी रूपान्तर कर लिया जाय ।]

उदकेन परिप्फोसित्वा सम्मज्जितब्बा। 'मा विहारो रजेन ऊहञ्ञी' ति सङ्कारं विचिनित्वा एकमन्तं छड्डेतब्बं।

"भुम्मत्थरणं ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बं। मञ्चपटिपादका ओतापेत्वा पमज्जित्वा अतिहरित्वा यथाठाने ठपेतब्बा। मञ्चो ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असङ्घट्टन्तेन कवाटपिट्ठं, अतिहरित्वा [N.50] यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बो। पीठं ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असङ्घट्टन्तेन कवाटपिट्ठं, अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बं। भिसि-[B.66] बिम्बोहनं ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बं। निसीदनपच्चत्थरणं ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बं। खेळमल्लको ओतापेत्वा पमज्जित्वा अतिहरित्वा यथाठाने ठपेतब्बो। अपस्सेनफलकं ओतापेत्वा पमज्जित्वा अतिहरित्वा यथाठाने ठपेतब्बं। पत्तचीवरं निक्खिपितब्बं। पत्तं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन पत्तं गहेत्वा एकेन हत्थेन हेट्ठामञ्चं वा हेट्ठापीठं वा परामसित्वा पत्तो निक्खिपितब्बो। न च अनन्तरहिताय भूमिया पत्तो निक्खिपितब्बो। चीवरं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन चीवरं गहेत्वा एकेन हत्थेन चीवरवंसं वा चीवररज्जुं वा पमज्जित्वा पारतो अन्तं ओरतो भोगं कत्वा चीवरं निक्खिपितब्बं।

"सचे पुरत्थिमा सरजा वाता वायन्ति, पुरत्थिमा वातपाना थकेतब्बा। सचे पच्छिमा सरजा वाता वायन्ति, पच्छिमा वातपाना थकेतब्बा। सचे उत्तरा सरजा वाता वायन्ति, उत्तरा वातपाना थकेतब्बा। सचे दक्खिणा सरजा वाता वायन्ति, दक्खिणा वातपाना थकेतब्बा। सचे सीतकालो होति, दिवा वातपाना विवरितब्बा, रत्तिं थकेतब्बा। सचे उण्हकालो होति, दिवा वातपाना थकेतब्बा, रत्तिं विवरितब्बा।

"सचे परिवेणं उक्लापं होति, परिवेणं सम्मज्जितब्बं। सचे कोट्ठको उक्लापो होति, कोट्ठको सम्मज्जितब्बो। सचे उपट्ठानसाला उक्लापा होति, उपट्ठानसाला सम्मज्जितब्बा। सचे अग्गिसाला उक्लापा होति, अग्गिसाला सम्मज्जितब्बा। सचे वच्चकुटी उक्लापा होति, वच्चकुटी सम्मज्जितब्बा। सचे पानीयं न होति, पानीयं उपट्ठापेतब्बं। सचे परिभोजनीयं न होति, परिभोजनीयं उपट्ठापेतब्बं। सचे आचमनकुम्भिया उदकं न होति, आचमनकुम्भिया उदकं आसिञ्चितब्बं।

"सचे सद्धिविहारिकस्स अनभिरति उप्पन्ना होति, उपज्झायेन वूपकासेतब्बा, वूपकासापेतब्बा, धम्मकथा वास्स कातब्बा। सचे सद्धिविहारिकस्स कुक्कुच्चं उप्पन्नं होति, उपज्झायेन विनोदेतब्बं, विनोदापेतब्बं, धम्मकथा वास्स कातब्बा। सचे सद्धिविहारिकस्स दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति, उपज्झायेन विवेचेतब्बं, विवेचापेतब्बं, धम्मकथा वास्स कातब्बा। सचे सद्धिविहारिको गरुधम्मं अज्झापन्नो होति परिवासारहो, उपज्झायेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किन्ति नु खो सङ्घो सद्धिविहारिकस्स मानत्तं ददेय्या' ति। सचे सद्धिविहारिको अब्भानारहो [N.51, R.53] होति, उपज्झायेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किन्ति नु खो सङ्घो सद्धिविहारिकं अब्भेय्या' ति। सचे सङ्घो सद्धिविहारिकस्स कम्मं कत्तुकामो होति, तज्जनीयं वा नियस्सं

वा पब्बाजनीयं वा पटिसारणीयं वा उक्खेपनीयं वा, उपज्झायेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किन्ति नु खो सङ्घो सद्धिविहारिकस्स कम्मं न करेय्य, लहुकाय वा परिणामेय्या' ति। कतं वा पनस्स होति सङ्घेन कम्मं, तज्जनीयं वा नियस्सं वा पब्बाजनीयं वा पटिसारणीयं वा उक्खेपनीयं वा, उपज्झायेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किन्ति नु खो सद्धिविहारिको सम्मा वत्तेय्य, लोमं पातेय्य, नेत्थारं वत्तेय्य, सङ्घो तं कम्मं पटिप्पसस्सम्भेय्या' ति।

''सचे सद्धिविहारिकस्स चीवरं धोवितब्बं होति, उपज्झायेन आचिक्खितब्बं एवं धोवेय्यासी ति, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किन्ति नु खो सद्धिविहारिकस्स चीवरं धोवियेथा' ति। सचे सद्धिविहारिकस्स चीवरं कातब्बं होति, उपज्झायेन आचिक्खितब्बं—'एवं करेय्यासी' ति, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किन्ति, नु खो सद्धिविहारिकस्स चीवरं करियेथा ति। सचे सद्धिविहारिकस्स रजनं पचितब्बं होति, उपज्झायेन आचिक्खितब्बं—'एवं पचेय्यासी' ति, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किन्ति नु खो सद्धिविहारिकस्स रजनं पचियेथा' ति। सचे सद्धिविहारिकस्स चीवरं रजितब्बं होति, उपज्झायेन आचिक्खितब्बं—'एवं रजेय्यासी' ति, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किन्ति नु खो सद्धिविहारिकस्स चीवरं रजियेथा' ति। चीवरं रजन्तेन साधुकं सम्परिवत्तकं सम्परिवत्तकं रजितब्बं। न च अच्छिन्ने थेवे पक्कमितब्बं।

सचे सद्धिविहारिको गिलानो होति, यावजीवं उपट्ठातब्बो, वुट्ठानमस्स आगमेतब्बं'' ति॥

सद्धिविहारिकवत्तं निट्ठितं॥

२०. पणामितकथा

६९. तेन खो पन समयेन सद्धिविहारिका उपज्झायेसु न सम्मा वत्तन्ति। ये [B.68] ते भिक्खू अप्पिच्छा....पे०....ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम सद्धिविहारिका उपज्झायेसु न सम्मा वत्तिस्सन्ती'' ति। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं....पे०....''सच्चं किर, भिक्खवे, सद्धिविहारिका उपज्झायेसु न सम्मा वत्तन्ती'' ति? ''सच्चं, भगवा'' ति। विगरहि बुद्धो भगवा....पे०....''कथं हि नाम, भिक्खवे,

---

यदि रुग्ण सहविहारी का चीवर (मैला होने के कारण) धोने योग्य हो गया हो तो उपाध्याय द्वारा सहविहारी को उसका सङ्केत करना चाहिये या फिर अन्यथा ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि उसका चीवर धुल जाय। ऐसे सह विहारी को चीवर पहनना हो तो उपाध्याय द्वारा वैसा सङ्केत करना चाहिये या फिर अन्यथा प्रयत्न करना चाहिये कि वह सहविहारी सरलता से चीवर पहन सके। सहविहारी का चीवर रङ्गना हो तो उपाध्याय द्वारा....पूर्ववत्...कहीं खाली (रङ्ग के विना) न रह जाय। रुग्ण सह विहारी की उसके स्वस्थ होने तक परिचर्या करनी चाहिये।।

सह विहारीवर्त समाप्त।।

२०. प्रणामितकथा

६९. उस समय (कुछ) सहविहारी उपाध्यायों के साथ ठीक व्यवहार नहीं करते थे। (यह देखकर) जो भिक्षु अल्पेच्छ....पूर्ववत्....वे उद्विग्न, व्यग्र एव दु:खी होते थे कि क्यों ये सहविहारी

सद्धिविहारिका उपज्झायेसु न सम्मा वत्तिस्सन्ती'' ति। विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''न, भिक्खवे, सद्धिविहारिकेन उपज्झायम्हि न सम्मा वत्तितब्बं। यो न सम्मा वत्तेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा'' ति।.... नेव सम्मा वत्तन्ति।.... भगवतो एतमत्थं [R.54] आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे असम्मावत्तन्तं पणामेतुं।**

[N.52] एवं च पन, भिक्खवे, पणामेतब्बो—'पणामेमि तं' ति वा, 'मायिध पटिक्कमी' ति वा, 'नीहर ते पत्तचीवरं' ति वा, 'नाहं तया उपट्ठातब्बो' ति वा, कायेन विञ्ञापेति, वाचाय विञ्ञापेति, कायेन वाचाय विञ्ञापेति; पणामितो होति सद्धिविहारिको। न कायेन विञ्ञापेति, न वाचाय विञ्ञापेति, न कायेन वाचाय विञ्ञापेति, न पणामितो होति सद्धिविहारिको ति।

तेन खो पन समयेन सद्धिविहारिका पणामिता न खमापेन्ति। भगवन्तो एतमत्थं आरोचेसुं। ''अनुजानामि, भिक्खवे, खमापेतुं'' ति। नेव खमापेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **''न, भिक्खवे, पणामितेन न खमापेतब्बो। यो न खमापेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा''** ति।

'तेन खो पन समयेन उपज्झाया खमापियमाना न खमन्ति। भगवतो भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''अनुजानामि, भिक्खवे, खमितुं'' ति। नेव खमन्ति। सद्धिविहारिका पक्कमन्ति पि विब्भमन्ति पि तित्थियेसु पि सङ्कमन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **''न, भिक्खवे, खमापियमानेन न खमितब्बं। यो न खमेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा''** ति।

उपाध्यायो के साथ ठीक से व्यवहार नहीं करते? तब उन भिक्षुओं ने भगवान् को यह बात बतायी।....पूर्ववत्.... ''भिक्षुओ! क्या सचमुच ये सहविहारी उपाध्यायों के साथ ठीक से व्यहार नहीं करते?'' ''वस्तुतः भगवन्!'' भगवान् ने निन्दा करके धार्मिक कथा कहते हुए भिक्षुओं को बताया— **''भिक्षुओ! यह अनुचित है कि कोई सहविहारी अपने उपाध्याय के साथ सम्मानजनक व्यवहार न करे। जो ठीक व्यवहार न करेगा उसको दुष्कृत की आपत्ति (दोष) होगी।''**

फिर भी ये ठीक व्यवहार नहीं ही करते थे। भगवान् से फिर कहा गया। भगवान् ने कहा— **''भिक्षुओ! उपाध्यायों के साथ असम्मानजनक व्यवहार करने वालों को हटा देने की अनुमति देता हूँ।''**

''और भिक्षुओ! उन्हें यों कह कर प्रणामित करना (दूर भगाना) चाहिये—'दूर हटाता हूँ', 'यहाँ फिर लौटकर नहीं आना', 'उठा यहाँ से अपना पात्र–चीवर', 'मुझे तेरी सेवा नहीं चाहिये'—इस प्रकार उपाध्याय शरीर से संकेत करता है, वाणी से सकेत करता है, शरीर वाणी—दोनों से संकेत करता है तो सहविहारी हटाया हुआ मान लिया जाता है। यदि उपाध्याय न शरीर से, न वाणी से, न शरीर वाणी—दोनों से उपर्युक्त प्रकार का सङ्केत करता है तो वह सहविहारी हटाया हुआ नहीं माना जायगा। (१)

उस समय (कुछ) सहविहारी प्रमाद होने पर उपाध्यायों से क्षमायाचना नहीं करते थे। भगवान् के सम्मुख यह प्रश्न गया। (भगवान् ने कहा—) **भिक्षुओ! मैं क्षमायाचना की अनुमति देता हूँ।**

फिर भी वे लोग क्षमायाचना नहीं करते थे। भगवान् के सामने फिर यह बात रखी गयी। (भगवान् ने कहा—) **''क्षमायाचना की अनुमति देता हूँ। जो न करे उसे दुष्कृत दोष लगेगा।''** (२)

''उस समय कुछ उपाध्याय क्षमायाचना करने पर भी सहविहारियों को क्षमा नहीं करते थे। भगवान् से निवेदन किया गया। (उन्होंने कहा—) **''अनुज्ञा देता हूँ, भिक्षुओ! क्षमा करने की।''** फिर भी उपाध्याय नहीं माने। सहविहारी इससे असन्तुष्ट होकर सङ्घ छोड़ देते थे, गृहस्थ हो जाते थे, या

तेन खो पन समयेन उपज्झाया सम्मावत्तन्तं पणामेन्ति, असम्मावत्तन्तं न पणामेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, सम्मावत्तन्तो पणामेतब्बो। यो पणामेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। न च, भिक्खवे, असम्मावत्तन्तो न पणामेतब्बो। यो न** [B.69] **पणामेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

"पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो सद्धिविहारिको पणामेतब्बो। उपज्झायम्हि नाधिमत्तं पेमं होति, नाधिमत्तो पसादो होति, नाधिमत्ता हिरी होति, नाधिमत्तो गारवो होति, नाधिमत्ता भावना होति—"इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतो सद्धिविहारिको पणामेतब्बो।

"पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो सद्धिविहारिको न पणामेतब्बो। उपज्झायम्हि अधिमत्तं पेमं होति, अधिमत्तो पसादो होति, अधिमत्ता हिरी होति, अधिमत्तो गारवो होति, अधिमत्ता भावना होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतो सद्धिविहारिको न पणामेतब्बो।

"पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो सद्धिविहारिको अलं पणामेतुं। उपज्झायम्हि [R.55] नाधिमत्तं पेमं होति....पे०....नाधिमत्ता भावना होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समननगतो सद्धिविहारिको अलं पणामेतुं।

"पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो सद्धिविहारिको नालं पणामेतुं। उपज्झायम्हि अधिमत्तं पेमं होति, अधिमत्तो पसादो होति, अधिमत्ता हिरी होति, अधिमत्तो गारवो होति, अधिमत्ता भावना होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतो सद्धिविहारिको नालं पणामेतुं।

फिर अन्य तीर्थिकों का साथ पकड़ लेते थे। तब भगवान् के ध्यान में फिर यह बात लायी गयी। "**भिक्षुओ! क्षमा माँगने पर क्षमा न करना उचित नहीं। जो न करे उस को 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**" (३)

उस समय कुछ उपाध्याय ऐसे सहविहारियो को हटा देते थे जो सही ढंग का व्यवहार करते थे तथा ऐसो को नहीं हटाते थे जो उनके साथ सही ढंग का व्यवहार नहीं करते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! सही ढंग से व्यवहार करने वाले को नहीं हटाना चाहिये। जो हटायगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा। और भिक्षुओ! ठीक ढंग से व्यवहार न करने वाले को हटा ही देना चाहिये; जो नहीं हटायगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**"

"भिक्षुओ! जो इन पाँच दुर्गुणो से युक्त हो ऐसे सहविहारी को हटा देना चाहिये, जैसे—१. जो उपाध्याय में अधिक प्रेम नहीं रखता, २. श्रद्धा नहीं रखता, ३. अधिक लज्जाशील नहीं होता, ४. अधिक गौरव नहीं करता एवं ५. ध्यान आदि की अधिक भावना नहीं करता। इन पाँच दुर्गुणों से युक्त को हटा देना चाहिये।

"भिक्षुओ! पाँच गुणों से युक्त सहविहारी को नहीं हटाना चाहिये; जैसे— १. जो उपाध्याय में अधिक प्रेम, २. अधिक श्रद्धा, ३. अधिक लज्जा (सङ्कोच), ४. अधिक गौरव तथा अधिक भावना रखता हो—ऐसे सहविहारी को नहीं हटाना चाहिये।

"भिक्षुओ! पाँच दुर्गुणों से युक्त सहविहारी को हटाया जा सकता है; जैसे— १. अधिक प्रेम न रखता हो....पूर्ववत्....५. अधिक भावना न करता हो।

"पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतं सद्धिविहारिकं अप्पणामेन्तो उपज्झायो [N.53] सातिसारो होति, पणामेन्तो अनतिसारो होति। उपज्झायम्हि नाधिमत्तं पेमं होति....पे०....नाधिमत्ता भावना होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चङ्गेहि समन्नागतं सद्धि-[B.70] विहारिकं अप्पणामेन्तो उपज्झायो सातिसारो होति, पणामेन्तो अनतिसारो होति।

"पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतं सद्धिविहारिकं पणामेन्तो उपज्झायो सातिसारो होति, अप्पणामेन्तो अनतिसारो होति। उपज्झायम्हि अधिमत्तं पेमं होति....पे०....अधिमत्ता भावना होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतं सद्धिविहारिकं पणामेन्तो उपज्झायो सातिसारो होति, अप्पणामेन्तो अनतिसारो होती ति।

२१. ञत्तिचतुत्थककम्मउपसम्पदा

७०. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो ब्राह्मणो (राधो नाम) भिक्खू उपसङ्कमित्वा पब्बज्जं याचि। तं भिक्खू न इच्छिंसु पब्बाजेतुं। सो भिक्खूसु पब्बज्जं अलभमानो किसो अहोसि लूखो दुब्बण्णो उप्पण्डुप्पण्डुकजातो धमनिसन्थतगत्तो। अद्दसा खो भगवा तं ब्राह्मणं किसं लूखं दुब्बण्णं उप्पण्डुप्पण्डुकजातं धमनिसन्थतगत्तं। दिस्वान भिक्खू आमन्तेसि— "किं नु खो सो, भिक्खवे, ब्राह्मणो किसो लूखो दुब्बण्णो उप्पण्डुप्पण्डुकजातो धमनिसन्थगतत्तो" ति? "एसो, भन्ते, ब्राह्मणो भिक्खू उपसङ्कमित्वा पब्बज्जं याचि। तं भिक्खू न इच्छिंसु पब्बाजेतुं। सो भिक्खूसु पब्बज्जं अलभमानो किसो लूखो दुब्बण्णो उप्पडुप्पण्डुकजातो धमनिसन्थतगत्तो" ति।

"भिक्षुओ! पाँच दुर्गुणों से युक्त को भी नहीं हटाना चाहिये– १. उपाध्याय में अधिक प्रेम रखने वाला, ...अधिक भावना...नहीं हटाना चाहिये।

"भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से युक्त सहविहारी को न हटाने वाला उपाध्याय (इस धर्मविनय की) सीमा का उल्लङ्घन करता है तथा हटा देने वाला सीमा का उल्लङ्घन नहीं करता। जैसे–१. उपाध्याय में अधिक प्रेम नहीं रखता ...पूर्ववत्....५. भावना नहीं करता—इन पाँच दुर्गुणों वाले सहविहारी को न हटाने वाला सीमोल्लङ्घक होता है तथा हटा देने वाला भी सीमोल्लङ्घक नहीं होता।

तथा भिक्षुओ! इन पाँच गुणों से युक्त सहविहारी को हटाने वाला उपाध्याय सीमोल्लङ्घक होता है; न हटाने वाला सीमोल्लङ्घन का दोषी नहीं होता। जैसे—१. जो उपाध्याय में अधिक प्रेम रखता है,....पूर्ववत्.....५. अधिक भावना करता है—इन पाँच अङ्गों से युक्त को हटाने वाला....सीमोल्लङ्घक होता है और न हटाने वाला उक्त दोषभाक् नहीं होता।

२१. ज्ञप्तिचतुर्थककर्म—उपसम्पदाकथा

उपसम्पदाविधि– ७०. उस समय कोई (राध नामक) ब्राह्मण भिक्षुओं के पास जाकर प्रव्रज्या की दीक्षा माँगने लगा। भिक्षु उसको दीक्षा नहीं देना चाहते थे। भिक्षुओं से प्रव्रज्या न पाने के कारण वह (उसका शरीर) दुर्बल, रूखा, दुर्वर्ण, पीला, हड्डी हड्डी दिखायी देने वाला तथा उभरी हुई नसों वाला हो गया। भगवान् ने ऐसी दशा में पहुँचे उस ब्राह्मण को देखा। देखकर भिक्षुओं से पूछा– "भिक्षुओ! यह ब्राह्मण ऐसा दुर्बल....क्यों दिखायी दे रहा है?" भिक्षुओं ने बताया–"यह ब्राह्मण भिक्षुओं से प्रव्रज्या की दीक्षा चाहता था, परन्तु भिक्षुओं ने इसको दीक्षित नहीं किया। तब यह प्रव्रज्या न पाने के कारण हो रही चिन्ता एवं दुःख से पीड़ित होकर इतना दुर्बल....हो गया है।"

अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"को नु खो, भिक्खवे, तस्स ब्राह्मणस्स अधिकारं सरती" ति ? एवं वुत्ते आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"अहं खो, भन्ते, तस्स ब्राह्मणस्स अधिकारं सरामी" ति। "किं पन त्वं, सारिपुत्त, तस्स ब्राह्मणस्स अधिकारं सरसी" ति ? "इध मे, भन्ते, सो ब्राह्मणो राजगहे पिण्डाय चरन्तस्स कटच्छुभिक्खं दापेसि। इमं खो अहं, भन्ते, तस्स ब्राह्मणस्स अधिकारं सरामी" ति। "साधु [R.56] साधु, सारिपुत्त, कतञ्ञुनो हि, सारिपुत्त, सप्पुरिसा कतवेदिनो। तेन हि त्वं, सारिपुत्त, तं ब्राह्मणं पब्बाजेहि उपसम्पादेही" ति। "कथाहं, भन्ते, तं ब्राह्मणं पब्बाजेमि उपसम्पादेमी" ति ? अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—. "या सा, भिक्खवे, मया तीहि सरणगमनेहि उपसम्पदा अनुञ्ञाता, ताहं अज्जतग्गे पटिक्खिपामि। **अनुजानामि, भिक्खवे, ञत्तिचतुत्थेन कम्मेन उपसम्पादेतुं।** [B.71]

एवं च पन, भिक्खवे, उपसम्पादेतब्बो। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

७१. 'सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं इत्थन्नामो इत्थन्नामस्स आयस्मतो उपसम्पदापेक्खो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो इत्थन्नामं उपसम्पादेय्य इत्थन्नामेन उपज्झायेन। [N.54] एसा ञत्ति।

'सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं इत्थन्नामो इत्थन्नामस्स आयस्मतो उपसम्पदापेक्खो। सङ्घो इत्थन्नामं उपसम्पादेति इत्थन्नामेन उपज्झायेन। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स उपसम्पदा इत्थन्नामेन उपज्झायेन, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

'दुतियं पि एतमत्थं वदामि—सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं इत्थन्नामो इत्थन्नामस्स

तब भगवान् ने भिक्षुओं (को एकत्र कर उन) से पूछा—"भिक्षुओ! तुम में से किसी को इस ब्राह्मण का किया हुआ कोई उपकार (सत्कर्म) स्मरण है?" ऐसा पूछा जाने पर आयुष्मान् सारिपुत्र ने कहा—"हाँ भन्ते! मुझे इसके द्वारा किया उपकार स्मरण है।" "सारिपुत्र! वह कौन सा उपकार है?" "भन्ते! राजगृह में भिक्षा के लिये घूमते समय, इस ब्राह्मण ने एक कलछी भर भात दिया था। भन्ते! मैं इस ब्राह्मण का यह उपकार स्मरण करता हूँ।" "साधु साधु सारिपुत्र! सत्पुरुष इसी तरह कृतज्ञ (कृतवेदी) हुआ करते हैं। तो सारिपुत्र! तुम ही इस ब्राह्मण को प्रव्रजित करो, उपसम्पन्न करो।" "तो भन्ते! मैं इस ब्राह्मण को किसी विधि से प्रव्रजित तथाउपसम्पन्न करूँ?" तब इस प्रकरण तथा प्रसङ्ग में धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओं को बताया—"भिक्षुओ! आज तक मैंने जो तुम लोगो को तीन शरणगमनो से प्रव्रज्या देने की आज्ञा दे रखी थी, उसे आज से स्थगित करता हूँ तथा उसके स्थान पर उक्त **तीनों अनुश्रावणों (सूचनाओं) में एक चतुर्थ ज्ञप्ति (घोषणा) कर्म को मिलाकर उपसम्पदा की अनुमति देता हूँ।** अब, भिक्षुओ! प्रत्याशी को इस विधि से उपसम्पन्न करना चाहिये—

ज्ञप्तिकर्म—७१. 'भन्ते! सङ्घ मेरी (बात) सुने। यह इस.....नाम का प्रत्याशी इस.....नाम के आयुष्मान् से उपसम्पदा की अपेक्षा रखता है। यदि सङ्घ चार बातों से उचित समझे तो सङ्घ अमुक नाम के प्रत्याशी को अमुक नाम के उपाध्यायत्व में उपसम्पन्न करे।'—यह **ज्ञप्ति** है।

(अनुश्रावण)— 'भन्ते सङ्घ मुझे सुने। अमुक नामक प्रत्याशी अमुक नामक के आयुष्मान् से उपसम्पदापेक्षी है। सङ्घ इस नाम वाले को इस नाम के उपाध्याय से उपसम्पन्न कराता है। जिस आयुष्मान् को इस नाम के प्रत्याशी की इस नाम के उपाध्याय से उपसम्पदा स्वीकार हो वह चुप रहे। जिसे स्वीकार न हो वह बोले।'

आयस्मतो उपसम्पदापेक्खो। सङ्घो इत्थन्नामं उपसम्पादेति इत्थन्नामेन उपज्झायेन। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स उपसम्पदा इत्थन्नामेन उपज्झायेन, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

'ततियं पि एतमत्थं वदामि—सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं इत्थन्नामो इत्थन्नामस्स आयस्मतो उपसम्पदापेक्खो। सङ्घो इत्थन्नामं उपसम्पादेति इत्थन्नामेन उपज्झायेन। यस्सायस्मतो खमतिइत्थन्नामस्स उपसम्पदा इत्था न्नामेन उपज्झायेन, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

'उपसम्पन्नो सङ्घेन इत्थन्नामो इत्थन्नामेन उपज्झायेन। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी' " ति।

७२. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु उपसम्पन्नसमनन्तरा अनाचारं आचरति। भिक्खू एवमाहंसु—"मा, आवुसो, एवरूपं अकासि, नेतं कप्पती" ति। सो एवं आह—"नेवाहं आयस्मन्ते याचिं—'उपसम्पादेथ मं' ति। किस्स मं तुम्हे अयाचित्ता उपसम्पादित्था" [B.72] ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "न, भिक्खवे, अयाचित्तेन उपसम्पादेतब्बो। यो [R.57] उपसम्पादेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। **अनुजानामि, भिक्खवे, याचितेन उपसम्पादेतुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, याचितब्बो। तेन उपसम्पदापेक्खेन सङ्घं उपसङ्कमित्वा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा भिक्खूनं पादे वन्दित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा एवमस्स वचनीयो—"सङ्घं, भन्ते, उपसम्पदं याचामि, उल्लुम्पतु मं, भन्ते, सङ्घो अनुकम्पं उपादाया" ति। दुतियं पि याचितब्बो। ततियं पि याचितब्बो। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

'दूसरी बार भी मैं यही बोल रहा हूँ– भन्ते सङ्घ मेरी सुने। यह अमुक नामक प्रत्याशी अमुक नामक आयुष्मान् का उपसम्पदापेक्षी है। जिस.....पूर्ववत्....वह बोले।'

'तीसरी बार भी मैं यही बोलता हूँ–....पूर्ववत्....वह बोले।

(धारणा–) 'अमुक नामक (प्रत्याशी) को अमुक नाम वाले उपाध्याय उपसम्पन्न करे–यह सङ्घ को स्वीकार है अतएव सङ्घ चुप है। ऐसा मैं समझता हूँ।

७२. उस समय कोई भिक्षु उपसम्पदा–प्राप्ति के बाद भी, उपसम्पदा के विरुद्ध ही आचरण करता था। (उसे देखकर) भिक्षुओं ने कहा–"आयुष्मन्! आप ऐसा न करें, यह तुम्हें शोभा नहीं देता।" वह यों बोला–"मैंने आप लोगों से उपसम्पदा की याचना नहीं की थी आप मुझे उपसम्पन्न करें। आप लोगों ने क्यो मुझे, विना याचना किये, उपसम्पन्न किया था?" भिक्षुओं ने भगवान् से जाकर यह बात कही। भगवान् ने कहा–"भिक्षुओ! अयाचित को उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। जो उपसम्पदा देगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा। अतः **आज से याच्ञा करने वाले को ही उपसम्पदा की अनुमति देता हूँ।**

और भिक्षुओ! वह याचना ऐसे करनी चाहिये–उस उपसम्पदापेक्षी पुरुष को सङ्घ के सम्मुख उपस्थित होकर, एक कन्धे पर उत्तरासङ्ग कर, भिक्षुओं की चरण–वन्दना कर, उकड़ूँ बैठकर, हाथ जोड़कर, यो निवेदन करना चाहिये–"भन्ते! सङ्घ से मैं उपसम्पदा की याचना करता हूँ। भन्ते! मुझे उपसम्पदा देकर मेरा उद्धार करें।" दूसरी बार भी....तीसरी बार भी....मेरा उद्धार करें।

तब किसी कुशल, योग्य एवं समर्थ भिक्षु द्वारा सङ्घ को यों सूचित किया जाना चाहिये–

७३. "सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं इत्थन्नामो इत्थन्नामस्स आयस्मतो उपसम्पदापेक्खो। इत्थन्नामो सङ्घं उपसम्पदं याचति इत्थन्नामेन उपज्झायेन। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो इत्थन्नामं उपसम्पादेय्य इत्थन्नामेन उपज्झायेन। एसा ञत्ति।

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं इत्थन्नामो इत्थन्नामस्स आयस्मतो उपसम्पदापेक्खो। इत्थन्नामो सङ्घं उपसम्पदं याचति इत्थन्नामेन उपज्झायेन। सङ्घो इत्थन्नामं उपसम्पादेति इत्थन्नामेन उपज्झायेन। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स उपसम्पदा इत्थन्नामेन [N.55] उपज्झायेन, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य। दुतियं पि एतमत्थं वदामि.....पे०.... ततियं पि एतमत्थं वदामि.....पे०....।

'उपसम्पन्नो सङ्घेन इत्थन्नामो इत्थन्नामेन उपज्झायेन। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी' " ति।

२२. चत्तारो निस्सया

७४. तेन खो पन समयेन राजगहे पणीतानं भत्तानं भत्तपटिपाटि अट्ठिता होति। अथ खो अञ्ञतरस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—"इमे खो समणा सक्यपुत्तिया सुखसीला सुखसमाचारा, सुभोजनानि भुञ्जित्वा निवातेसु सयनेसु सयन्ति। यन्नूनाहं समणेसु सक्यपुत्तियेसु पब्बजेय्यं" ति। अथ खो सो ब्राह्मणो भिक्खू उपसङ्कमित्वा पब्बज्जं याचि। तं भिक्खू पब्बाजेसुं उपसम्पादेसुं। तस्मिं पब्बजिते भत्तपटिपाटि खीयित्थ। भिक्खू एवं आहंसु—"एहि दानि, आवुसो, पिण्डाय चरिस्सामा" ति। सो एवं आह—"नाहं, आवुसो, एतङ्कारणा

---

७३. **ज्ञप्ति**— "भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। यह इस नाम का प्रत्याशी इस नाम के आयुष्मान् से उपसम्पदा चाहता है। इस नाम वाला प्रत्याशी सङ्घ से इस नाम के उपाध्यायत्व द्वारा उपसम्पदा चाहता है। यदि सङ्घ चार बातों से उचित (पत्तकल्ल[1]) समझे तो इस नाम वाले को सङ्घ इस नाम वाले उपाध्याय से उपसम्पन्न करावे। यह ज्ञप्ति (सूचना) है।

अनुश्रावण— 'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। अमुक नाम वाला यह अमुक नाम वाले आयुष्मान् से उपसम्पदा चाहता है। सङ्घ अमुक नाम वाले को अमुक नाम वाले भिक्षु के उपाध्यायत्व में उपसम्पदा देता है। जिसको यह (बात) स्वीकार हो वह चुप रहे, जिसको स्वीकार न हो वह बोले।"

दूसरी बार भी इस बात को बोलता हूँ—'भन्ते!.....।

तीसरी बार भी.........।

धारणा— 'सङ्घ ने अमुक नाम वाले प्रत्याशी को अमुक नाम वाले भिक्षु के उपाध्यायत्व में उपसम्पदा दे दी। सङ्घ को यह स्वीकार है, इसी लिये चुप है—ऐसा मैं मान लेता हूँ।"

भिक्षुत्व के चार निश्रय (साधन)

७४. इस समय राजगृह में (भिक्षुओं के लिये) अच्छे अच्छे उत्तम खाद्य देने का क्रम (परम्परा=परिपाटी) चल पड़ा था। यह देखकर किसी ब्राह्मण के मन में विचार आया—"ये शाक्यपुत्रीय श्रमण बहुत सुख से रहते हैं, सुन्दर सुन्दर भोजन करके एकान्त में शान्त शय्याओं पर सोते हैं। क्यों न मैं भी शाक्यपुत्रीय भिक्षुओं में मिल जाऊँ।" तब उस ब्राह्मण ने भिक्षुओं के पास जाकर भिक्षुत्व

---

१. उपोसथो[1], यावतिका[2] च भिक्खू कम्मप्पत्ता, सभागापत्तियो[3] च न विज्जन्ति।
वज्जनीया[4] च पुग्गला तस्मिं न होन्ति, पत्तकल्लं ति वुच्चति।।
(—स० पा० तृ० भा०; पृ० २१२२)

[B.73] पब्बजितो—'पिण्डाय चरिस्सामी' ति। सचे मे दस्सथ भुञ्जिस्सामि, नो चे मे दस्सथ विब्भमिस्सामी'' ति। ''किं पन त्वं, आवुसो, उदरस्स कारणा पब्बजितो'' ति? [R.58] ''एवं, आवुसो'' ति। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा...., ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम भिक्खु एवं स्वाक्खाते धम्मविनये उदरस्स कारणा पब्बजिस्सती'' ति। ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

''सच्चं किर त्वं, भिक्खु, उदरस्स कारणा पब्बजितो'' ति? ''सच्चं भगवा'' ति। विगरहि बुद्धो भगवा—''सच्चं किर त्वं, भिक्खु, उदरस्स कारणा पब्बजितो'' ति? ''सच्चं भगवा'' ति। विगरहि बुद्धो भगवा—''कथं हि नाम त्वं, मोघपुरिस, एवं स्वाक्खाते धम्मविनये उदरस्स कारणा पब्बजिस्ससि। नेतं, मोघपुरिस, अप्पसन्नानं वा पसादाय पसन्नानं वा भिय्योभावाय''....पे०....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**अनुजानामि, भिक्खवे, उपसम्पादेन्तेन चत्तारो निस्सये आचिक्खितुं—१. पिण्डियालोपभोजनं निस्साय पब्बज्जा, तत्थ ते यावजीवं उस्साहो करणीयो; अतिरेकलाभो—सङ्घभत्तं, उद्देसभत्तं, निमन्तनं, सलाकभत्तं, पक्खिकं, उपोसथिकं, पाटिपदिकं।**

२. पंसुकूलचीवरं निस्साय पब्बज्जा, तत्थ ते यावजीवं उस्साहो करणीयो; अतिरेकलाभो—खोमं, कप्पासिकं, कोसेय्यं, कम्बलं, साणं, भङ्गं।

(प्रव्रज्या) के लिये प्रार्थना की। उन भिक्षुओं ने उस को प्रव्रज्या उपसम्पदा दे दी। उसके प्रव्रजित होने के कुछ समय बाद, राजगृह में वह भोजनपरम्परा क्षीण हो गयी। किसी दिन भिक्षुओं ने उसको कहा—''आयुष्मन्! चलो भिक्षा करने चलें।'' उस ब्राह्मण ने कहा—''आयुष्मानो! मैं इसलिये तो भिक्षु नहीं बना था कि मैं भिक्षा करके खाऊँगा। यदि आप लोग लाकर न देंगे तो मैं पुनः गृहस्थ हो जाऊँगा।'' (भिक्षुओं ने उससे पूछा—) ''क्या आयुष्मन्! तुम पेट भरने के लिये भिक्षु बने हो।'' ''हाँ, आयुष्मन्''। तब (वहाँ) जो अल्पेच्छ.....थे, वे उद्विग्न, दुःखी एवं व्यग्रचित्त हुए कि कैसे कोई भिक्षु इस प्रकार के सुन्दर पद्धति से व्याख्यात धर्मविनय में प्रव्रज्या ले सकता है?'' अतः उन भिक्षुओं ने इस प्रकरण की चर्चा भगवान् से की।

भगवान् ने उस भिक्षु से पूछा—''भिक्षु! क्या वस्तुतः ही उदरपोषण के लिये तूँ भिक्षु बना है?'' ''हाँ, भगवन्''। तब भगवान् ने इस बात के लिये उसे धिक्कारते हुए कहा—''अरे मूर्ख! कैसे तू इस सुव्याख्यात धर्मविनय में उदर पोषण मात्र के लिये प्रव्रज्या लेगा! तेरा यह दुष्कृत न तो इस धर्म के प्रति अश्रद्धालुओं में श्रद्धा उत्पन्न कर पायगा, न श्रद्धालुओं की श्रद्धा बढ़ा पायगा। इसके विपरीत यह न हो कि तेरे उस दुष्कृत्य के प्रभाव से इस धर्म के प्रति अश्रद्धालुओं की अश्रद्धा और बढ़ जाय तथा श्रद्धालुओं की वर्तमान श्रद्धा भी घटने लगे।'' यों उसे धिक्कारते हुए भगवान् ने इस प्रसङ्ग में धार्मिक कथाएँ कहते आदेश दिया—''भिक्षुओ! भिक्षुत्व के अभिलाषुक को उपसम्पदा देते समय ही जीवननिर्वाह के ये चार निःश्रय (आलम्बन) बता देना चाहिये—

१. 'तुम्हारी यह प्रव्रज्या भिक्षा में मिले भोजन के सहारे से चलेगी। इसके लिये तुम्हें जीवन भर उत्साहित रहना पड़ेगा। हाँ! यह दूसरी बात है कि तुम्हें कभी यह भी मिल जाय—(क) सङ्घभोज (समष्टि भण्डारा), (ख) किसी सद्गृहस्थ के घर पर तुम्हारे निमित्त बना भोजन, (ग) निमन्त्रण, (घ) शलाका—भोजन (कुछ परिमित व्यक्तियों के लिये बना भोजन, जिसको ग्रहण करने वालों का निर्णय शलाका द्वारा निर्धारित होता था), (ङ) पाक्षिक भोजन, (च) उपोसथ निमित्त बनाया भोजन तथा प्रतिपद् के बाद (उपोसथ के दूसरे दिन) का भोजन। यह सब कुछ तुम्हारा अतिरिक्त लाभ होगा।

३. रुक्खमूलसेनासनं निस्साय पब्बज्जा, तत्थ ते यावजीवं उस्साहो करणीयो; अतिरेकलाभो—विहारो, अड्ढयोगो, पासादो, हम्मियं, गुहा।

४. पूतिमुत्तभेसज्जं निस्साय पब्बज्जा, तत्थ ते यावजीवं उस्साहो करणीयो; अतिरेकलाभो— सप्पि, नवनीतं, तेलं, मधु, फाणितं'' ति॥

उपज्झायवत्तभाणवारं निट्ठितं पञ्चमं॥

२३. आचरियवत्तकथा

७५. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो माणवको भिक्खू उपसङ्कमित्वा पब्बज्जं [N.56] याचि। तस्स भिक्खू पटिकच्चेव निस्सये आचिक्खिंसु। सो एवं आह—''सचे मे, भन्ते, पब्बजिते निस्सये आचिक्खेय्याथ, अभिरमेय्यामहं। न दानाहं, भन्ते, पब्बजिस्सामि; जेगुच्छा मे निस्सया पटिकूला'' ति। भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **''न, भिक्खवे,** [B.74] **पटिकच्चेव निस्सया आचिक्खितब्बा। यो आचिक्खेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, उपसम्पन्नसमनन्तरा निस्सये आचिक्खितुं'' ति।**

तेन खो पन समयेन भिक्खू दुवग्गेन पि तिवग्गेन पि गणेन उपसम्पादेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **''न, भिक्खवे, ऊनदसवग्गेन गणेन उपसम्पादेतब्बो। यो**

---

२. फटे चीथड़ों से बनाये चीवर के सहारे से वस्त्र का काम चलाने हेतु तुम्हें यह प्रव्रज्या दी गयी है। इसके पालन में तुम्हें जीवनपर्यन्त उत्साहित रहना है। समय समय पर गृहस्थों से मिले क्षौम (अलसी की छाल का बना कपड़ा), कौशेय (रेशमी वस्त्र) कम्बल, (ऊनी वस्त्र), सण से बने वस्त्र तथा भङ्ग (छाल, रेशम तथा रूई से मिश्रित) वस्त्र अतिरेक लाभ के रूप में माने जाँयगें।

३. इस प्रव्रज्या के बाद वृक्षों के नीचे वास करना ही तुम्हारा निद्रा या शरीरसुख के विषय में आलम्बन होगा। इसी के लिये तुम्हें जीवनपर्यन्त आशा रखनी चाहिये। यह अतिरेक लाभ के रूप में माना जायगा कि कभी तुम्हें विहार, गृहस्थों की झरोखेदार हवेलियाँ, प्रासाद (महल), दुमँजले या तिमँजले मकान अथवा पहाड़ों की कन्दराएँ रहने को मिल जायँ।

४. इस प्रवज्या के बाद कभी रोगी होने पर औषध के लिये प्रमुख रूप से गोमूत्र की औषध से ही जीवनपर्यन्त काम चलाना पड़ेगा। फिर भले ही अतिरिक्त लाभ के रूप में कभी कभी घी, मक्खन, तैल, मधु या शर्करा ही क्यों न मिलती रहे।।''

पञ्चम उपाध्यायवर्त भाणवार सम्पन्न।।

२३. आचार्यवर्तकथा

७५. इस समय कोई माणवक (ब्राह्मणकुमार) भिक्षुओं के पास आकर प्रव्रज्या की दीक्षा माँगने लगा। भिक्षुओं ने उसको दीक्षा से पूर्व ही उक्त चारों निःश्रय बता दिये। तब वह माणवक बोला—''भन्ते! ये निःश्रय मुझे दीक्षा के बाद बताये जाते तो अधिक अच्छा रहता। अब मैं प्रव्रज्या नहीं लूँगा। मुझे इन निःश्रयों से ग्लानि है; क्योंकि ये मेरे लिये अरुचिकर हैं, अतः प्रतिकूल हैं।'' भिक्षुओं ने यह बात भगवान् को बतायी। (भगवान् ने कहा—) ''भिक्षुओ! उपसम्पदापेक्षी को ये चारों निःश्रय उपसम्पदा से पूर्व नहीं बताने चाहिये। जो बतायागा वह 'दुष्कृत' दोष से ग्रस्त होगा। अतः **मैं अनुज्ञा देता हूँ दीक्षा के बाद ही प्रत्याशी को ये निःश्रय बताने की।''**

उस समय दो भिक्षुओं के समूह से भी, तीन भिक्षुओं के समूह से भी उपसम्पदा के प्रत्याशियों का दीक्षा दी जाने लगी। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने इस पर यह प्रतिबन्ध लगाया)

उपसम्पादेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, दसवग्गेन वा अतिरेकदस-
[R.59] वग्गेन वा गणेन उपसम्पादेतुं'' ति।

७६. तेन खो पन समयेन भिक्खू एकवस्सा पि दुवस्सा पि सद्धिविहारिकं उपसम्पादेन्ति। आयस्मा पि उपसेनो वङ्गन्तपुत्तो एकवस्सो सद्धिविहारिकं उपसम्पादेसि। सो वस्संवुट्ठो दुवस्सो एकवस्सं सद्धिविहारिकं आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। आचिण्णं खो पनेतं बुद्धानं भगवन्तानं आगन्तुकेहि भिक्खूहि सद्धिं पटिसम्मोदितुं। अथ खो भगवा आयस्मन्तं उपसेनं वङ्गन्तपुत्तं एतदवोच— ''कच्चि, भिक्खु, खमनीयं, कच्चि यापनीयं, कच्चि त्वं अप्पकिलमथेन अद्धानं आगतो'' ति? ''खमनीयं, भगवा, यापनीयं, भगवा। अप्पकिलमथेन मयं, भन्ते, अद्धानं आगता'' ति।

१. जानन्ता पि तथागता पुच्छन्ति, जानन्ता पि न पुच्छन्ति, २. कालं विदित्वा पुच्छन्ति, कालं विदित्वा न पुच्छन्ति; ३. अत्थसंहितं तथागता पुच्छन्ति; नो अनत्थसंहितं। अनत्थसंहिते सेतुघातो तथागतानं। ४. द्वीहि आकारेहि बुद्धा भगवन्तो भिक्खू पटिपुच्छन्ति— ''धम्मं वा देसेस्साम, सावकानं वा सिक्खापदं पञ्ञापेस्सामा'' ति।

अथ खो भगवा आयस्मन्तं उपसेनं वङ्गन्तपुत्तं एतदवोच—''कतिवस्सोसि त्वं, भिक्खू'' ति? ''दुवस्सोहं, भगवा'' ति। ''अयं पन भिक्खु कतिवस्सो'' ति? ''एकवस्सो,

---

–भिक्षुओं! दश सङ्ख्या से कम भिक्षुओं के समूह द्वारा दीक्षा नहीं देनी चाहिये। जो दीक्षा दे उसे दुष्कृत दोष लगेगा। अतः अनुमति देता हूँ– दश या दश से अधिक भिक्षुओं के समूह द्वारा ही प्रव्रज्या–उपसम्पदा की दीक्षा देने की।''

७६. उस समय ऐसे भिक्षु भी उपसम्पदा–दीक्षा देने लगे जिनको स्वयं भी इस भिक्षुसङ्घ में प्रव्रजित हुए एक वर्ष या दो वर्ष ही बीते थे। आयुष्मान् उपसेन वङ्गन्तपुत्र ने भी, जिसे कि स्वयं भिक्षुभाव प्राप्त किये एक ही वर्ष हुआ था, अपने सहविहारी को उपसम्पन्न किया। (दूसरा) वर्षावास समाप्त कर लेने पर वह (उपसेन) दो वर्ष का (भिक्षु) होकर एक वर्ष के (भिक्षु बने अपने) सहविहारी को साथ लेकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठा। आगन्तुक भिक्षुओं के साथ कुशलप्रश्न पूछना भगवान् बुद्ध का स्वभाव है। अतः (तब) भगवान् ने आयुष्मान् उपसेन से पूछा–''कहो भिक्षु! कुशल से तो हो? मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं पाये?'' ''सब कुछ ठीक ही रहा, भन्ते! मार्ग में भी कोई कष्ट नहीं हुआ।''

(१) जानते हुए भी तथागत पूछते हैं, जानते हुए तथागत नहीं भी पूछते।

(२) (पूछने का) समय जान कर पूछते हैं, (पूछने का) समय जानकर भी नहीं पूछते।

(३) तथागत सार्थक बात ही पूछते हैं, निरर्थक बात नहीं करते; क्योंकि निरर्थक बातों से तथागतों का मर्यादाभङ्ग (सेतुभङ्ग) होता है।

(४) बुद्ध भगवान् दो कारणों से प्रश्न पूछते हैं–(क) शिष्यों को धर्मोपदेश हेतु या (ख) भिक्षुओं के भिक्षुनियम (शिक्षापद) बनाने के लिये।

तब भगवान् ने आयुष्मान् उपसेन....से पूछा–''भिक्षु! तूँ कितने वर्ष का भिक्षु है?'' ''मैं दो वर्ष का हूँ, भन्ते!'' ''और यह भिक्षु कितने वर्ष का (भिक्षु) है?'' एक वर्ष का है, भन्ते!'' ''यह भिक्षु

भगवा'', ति। ''किं तायं भिक्खु होती'' ति? ''सद्धिविहारिको मे, भगवा'' ति। विगरहि बुद्धो भगवा—''अननुच्छविकं, मोघपुरिस, अननुलोमिकं अप्पटिरूपं अस्सामणकं अकप्पियं अकरणीयं। कथं हि नाम त्वं, मोघपुरिस, अञ्ञेहि ओवदियो अनुसासियो अञ्ञं ओवदितुं अनुसासितुं मञ्ञिस्ससि। अतिलहु खो त्वं मोघपुरिस, बाहुल्लाय आवत्तो, यदिदं गणबन्धिकं। नेतं, मोघपुरिस, अप्पसन्नानं वा पसादाय पसन्नानं वा भिय्योभावाय''.....पे०.....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''न, **भिक्खवे, ऊनदसवस्सेन** [B.68] **उपसम्पादेतब्बो। यो उपसम्पादेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, दसवस्सेन वा अतिरेकदसवस्सेन वा उपसम्पादेतुं**'' ति। [N.57]

७७. तेन खो पन समयेन भिक्खू—'दसवस्सम्ह दसवस्सम्हा' ति—बाला अब्यत्ता उपसम्पादेन्ति। दिस्सन्ति उपज्झाया बाला, सद्धिविहारिका पण्डिता। दिस्सन्ति उपज्झाया अब्यत्ता, सद्धिविहारिका ब्यत्ता। दिस्सन्ति उपज्झाया अप्पस्सुता, सद्धिविहारका बहुस्सुता। दिस्सन्ति उपज्झाया दुप्पञ्ञा, सद्धिविहारिका पञ्ञवन्तो। अञ्ञतरो पि अञ्ञ-[R.60] तित्थियपुब्बो उपज्झायेन सहधम्मिकं वुच्चमानो उपज्झायस्स वादं आरोपेत्वा तं येव तित्थायतनं सङ्कमि। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा....पे०....ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम भिक्खू—दसवस्सम्ह दसवस्समहा ति—बाला अब्यत्ता उपसम्पादेस्सन्ति। दिस्सन्ति उपज्झाया बाला....पे०....सद्धिविहारिका पञ्ञवन्तो'' ति। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसु। ''सच्चं किर, भिक्खवे, भिक्खू—दसवस्सम्ह दसवस्सम्हा ति—बाला अब्यत्ता उपसम्पादेन्ति। दिस्सन्ति उपज्झाया बाला....पे०....सद्धिविहारिका पञ्ञवन्तो'' ति? ''सच्चं, भगवा!'' विगरहि बुद्धो भगवा....पे०....''कथं हि नाम ते, भिक्खवे, मोघपुरिसा—दसवस्सम्ह दसवस्सम्हा ति—बाला, अब्यत्ता उपसम्पादेस्सन्ति। दिस्सन्ति

कौन है?'' ''यह मेरा शिष्य (सहविहारी) है, भन्ते!'' भगवान् ने उस (उपसेन) को धिक्कारते हुए कहा— अयोग्य पुरुष! यह तेरे लिये अनुचित है, अयोग्य है, साधुजनों के आचार से विरुद्ध है, अभव्य है, अकरणीय है, अरे अनधिकृत! कैसे तूँ (स्वयं) अभी दूसरों द्वारा उपदेश एवं अनुशासन के योग्य होते हुए भी दूसरे का उपदेशक तथा अनुशासक बनेगा! अरे! मूर्ख! यह तेरी जोड़ने–बटोरने वाली हीन प्रवृत्ति है कि अभी से तूँ सङ्घ का अगुआ बनना चाहता है! तेरा यह कृत्य न अप्रसन्नों को प्रसन्न करने के लिये होगा, न प्रसन्नों के दृढ़ीभाव के लिये।....यों निन्दा करते हुए, धार्मिक कथा कहते हुए भगवान् ने कहा— **भिक्षुओ! दश वर्ष से कम समय के बने हुए भिक्षु द्वारा उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। जो उपसम्पदा देगा उसे दुष्कृत लगेगा। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ– दश या दश से अधिक वर्ष पहले बने भिक्षु द्वारा ही उपसम्पदा–दीक्षा देने की।**

७७. उस समय भिक्षु 'हम दश वर्ष के (भिक्षु) हैं; 'हम दश वर्ष के (भिक्षु) हैं'—ऐसा सोचते हुए, स्वयं बाल (मूर्ख) तथा अव्यक्त (अयोग्य) होते हुए भी दूसरों को उपसम्पदा देते थे। ऐसे भी उपाध्याय देखे जाते थे जो स्वयं मूर्ख थे परन्तु उनके सहविहारी बुद्धिमान् तथा ऐसे भी उपाध्याय देखे जाते थे जो स्वयं अयोग्य थे परन्तु उनके सहविहारी योग्य होते थे। उपाध्याय अल्पश्रुत, सहविहारी बहुश्रुत....। उपाध्याय दुष्प्रज्ञ, सहविहारी सत्प्रज्ञ (प्रज्ञावान् उस समय कोई भिक्षु जो पहले अन्य सम्प्रदाय में दीक्षित था उपाध्याय द्वारा दी गयी धार्मिक व्यवस्था पर विवाद कर पुनः अपने पूर्व सम्प्रदाय में ही चला गया। तब जो भिक्षु अल्पेच्छ, सन्तुष्ट....व्यग्रचित्त हुए कि 'कैसे ये भिक्षु 'दश वर्ष के हो गये'....कहकर....उपसम्पदा दे रहे हैं?' उन्होंने भगवान् से निवेदन किया—

उपज्झया बाला....पे०.....सद्धिविहारिका पञ्ञवन्तो। नेतं, भिक्खवे, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, बालेन अब्यत्तेन उपसम्पादेतब्बो। यो उपसम्पादेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन दसवस्सेन वा अतिरेकदसवस्सेन वा उपसम्पादेतुं**" ति।

[B.76] ७८. तेन खो पन समयेन भिक्खू उपज्झायेसु पक्कन्तेसु पि विब्भन्तेसु पि कालङ्कतेसु पि पक्खसङ्कन्तेसु पि अनाचरियका अनोवदियमाना अननुसासियमाना दुन्निवत्था दुप्पारुता अनाकप्पसम्पन्ना पिण्डाय चरन्ति; मनुस्सानं भुञ्जमानानं उपरिभोजने पि उत्तिट्ठपत्तं उपनामेन्ति, उपरिखादनीये पि... उपरिसायनीये पि....उपरिपानीये पि उत्तिट्ठपत्तं उपनामेन्ति; सामं सूपं पि ओदनं पि विञ्ञापेत्वा भुञ्जन्ति; भत्तग्गे पि उच्चासद्दा महासद्दा विहरन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया दुन्निवत्था दुप्पारुता अनाकप्प-सम्पन्ना पिण्डाय चरिस्सन्ति; मनुस्सानं भुञ्जमानानं उपरिभोजने पि उत्तिट्ठपत्तं उपनामेस्सन्ति, उपरिखादनीये पि....उपरिसायनीये पि....उपरिपानीये पि उत्तिट्ठपत्तं उपनामेस्सन्ति; सामं सूपं पि ओदनं पि विञ्ञापेत्वा भुञ्जिस्सन्ति; भत्तग्गे पि उच्चासद्दा [N.58] महासद्दा विहरिस्सन्ति, सेय्यथापि ब्राह्मणा ब्राह्मणभोजने" ति। अस्सोसुं खो भिक्खू तेसं मनुस्सानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "सच्चं किर, भिक्खवे....पे०...." "सच्चं, भगवा" ति....पे०....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—

"**अनुजानामि, भिक्खवे, आचरियं।** आचरियो, भिक्खवे, अन्तेवासिकम्हि

भगवान् ने पूछा—"क्या सचमुच ही भिक्षु हम दश वर्ष के हैं'—सोचते हुए....सहविहारी प्रज्ञावान् थे।....भिक्षुओ! कैसे कोई मोघ पुरुष भिक्षु 'दश वर्ष के हैं'—यह सोचते हुए, स्वयं अयोग्य होते हुए दूसरों को उपसम्पदा देंगे। ...भिक्षुओं को सम्बोधित किया—**मूर्ख एवं अयोग्य भिक्षु द्वारा उपसम्पदा नहीं दी जानी चाहिये। जो देगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा। अतः भिक्षुओ, अनुमति देता हूँ, योग्य एवं पण्डित भिक्षु द्वारा ही उपसम्पदाविधि सम्पादन करने की। जो स्वयं दश वर्ष या इससे पूर्व भिक्षु बन चुका हो।**

७८. उस समय भिक्षु लोग उपाध्याय के आश्रम से चले जाने पर, विचार–परिवर्तन कर लेने पर, मर जाने पर, दूसरे पक्ष में चले जाने पर भी आचार्य के विना ही अनुशासन–उपदेश न किये जाने के कारण विना ठीक ढंग से कपड़ा पहने या ओढ़े या ढके हुए ही भिक्षा हेतु निकल पड़ते थे। वहाँ भिक्षा लेते समय, भोजन करते व्यक्तियों पर से पात्र बढ़ाते हुए खाद्य एवं पेय पदार्थों पर से पात्र बढ़ाते हुए, स्वयं ही दाल–भात की माँग करते हुए, सब तरफ उच्छिष्ट पात्र बढ़ाते रहते थे। भिक्षा लेते समय जोर–जोर से चिल्लाते रहते थे। भिक्षुओं का यह आचरण देखकर साधारण जनता उद्विग्न एवं दुःखी होती थी कि ये भिक्षु ऐसा आचरण....कैसे करते हैं? जैसे कि किसी ब्राह्मणभोजन केअवसर पर ब्राह्मण किया करते हैं? कुछ भद्र भिक्षुओं ने जनता कीउस व्यग्रता एवं उद्विग्नचित्तता को समझा और भगवान् के सम्मुख जाकर निवेदन किया....। सचमुच भिक्षुओ!....सचमुच भगवन्!....भगवान् ने भिक्षुओं को बताया—

'**भिक्षुओ! मैं आचार्य करने की अनुमति देता हूँ।** आचार्य को शिष्य में पुत्र बुद्धि रखनी

पुत्तचित्तं उपट्ठापेस्सति, अन्तेवासिको आचरियम्हि पितुचित्तं उपट्ठापेस्सति। एवं ते अञ्ञमञ्ञं सगारवा सप्पतिस्सा सभागवुत्तिनो विहरन्ता इमस्मिं धम्मविनये वुद्धिं विरुळ्हिं वेपुल्लं आपज्जिस्सन्ति। अनुजानामि, भिक्खवे, दसवस्सं निस्साय वत्थुं, दसवस्सेन निस्सयं दातुं।

एवं च पन, भिक्खवे, आचरियो गहेतब्बो। एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा पादे वन्दित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा एवमस्स वचनीयो—'आचरियो मे, भन्ते, होहि, आयस्मतो निस्साय वच्छामि; आचरियो मे, भन्ते, होहि, आयस्मतो निस्साय वच्छामि; आचरियो मे, भन्ते, होहि, आयस्मतो निस्साय वच्छामी' ति। 'साहू' ति वा, 'लहू' [R.61] ति वा, 'ओपयिकं' ति वा, 'पतिरूपं' ति वा, 'पासादिकेन सम्पादेही' ति वा कायेन विञ्ञापेति, वाचाय विञ्ञापेति, कायेन वाचाय विञ्ञापेति, गहितो होति आचरियो। न कायेन विञ्ञापेति, न वाचाय विञ्ञापेति, न कायेन वाचाय विञ्ञापेति, न गहितो होति आचरियो।

७९. "अन्तेवासिकेन, भिक्खवे, आचरियम्हि सम्मा वत्तितब्बं। तत्रायं [B.77] सम्मावत्तना—

"कालस्सेव वुट्ठाय उपाहनं ओमुञ्चित्वा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा दन्तकट्ठं दातब्बं, मुखोदकं दातब्बं, आसनं पञ्ञापेतब्बं। सचे यागु होति, भाजनं धोवित्वा यागु उपनामेतब्बा। यागुं पीतस्स उदकं दत्वा भाजनं पटिग्गहेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन धोवित्वा पटिसामेतब्बं। आचरियम्हि वुट्ठिते आसनं उद्धरितब्बं। सचे सो देसो उक्लापो होति, सो देसो सम्मज्जितब्बो।

"सचे आचरियो गामं पविसितुकामो होति, निवासनं दातब्बं, पटिनिवासनं पटिग्गहेतब्बं, कायबन्धनं दातब्बं, सगुणं कत्वा सङ्घाटियो दातब्बा, धोवित्वा पत्तो सउदको दातब्बो। सचे आचरियो पच्छासमणं आकङ्खति, तिमण्डलं पटिच्छादेन्तेन परिमण्डलं निवासेत्वा कायबन्धनं बन्धित्वा सगुणं कत्वा सङ्घाटियो पारुपित्वा गण्ठिकं पटिमुञ्चित्वा धोवित्वा पत्तं गहेत्वा आचरियस्स पच्छासमणेन होतब्बं। नातिदूरे गन्तब्बं, नाच्चासन्ने गन्तब्बं, पत्तपरियापन्नं पटिग्गहेतब्बं। न आचरियस्स भणमानस्स अन्तरन्तरा कथा ओपातेतब्बा। आचरियो आपत्तिसामन्ता भणमानो निवारेतब्बो।

"निवत्तन्तेन पठमतरं आगन्त्वा आसनं पञ्ञापेतब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपितब्बं, पच्चुग्गन्त्वा पत्तचीवरं पटिग्गहेतब्बं, पटिनिवासनं दातब्बं, निवासनं

चाहिये। और शिष्य के आचार्य में पितृबुद्धि। इस तरह वे दोनों एक दूसरे को गौरव, प्रतिष्ठा एवं सहमति देते हुए समान वृत्ति से रहने वाले होकर इस धर्मविनय में वृद्धि, दृढ़मूलता एवं विशालता प्राप्त कर पायँगें। अतः दश वर्ष पहले बने भिक्षु को आचार्य बनने की अनुमति देता हूँ।

भिक्षुओ! आचार्य का ग्रहण इस प्रकार करना चाहिये—एक कन्धे पर उत्तरासङ्ग कर....पूर्ववत्....तो उसका आचार्य के रूप में ग्रहण करना नहीं समझा जायगा।

७९. भिक्षुओं! अन्तेवासी को आचार्य से सम्यव्यवहार करना चाहिये। वह सभ्य व्यवहार यों है—समय से उठकर....पूर्ववत्....।

[N.59] पटिग्गहेतब्बं। सचे चीवरं सिन्नं होति, मुहुत्तं उण्हे ओतापेतब्बं, न च उण्हे चीवरं निदहितब्बं। चीवरं सङ्घरितब्बं। चीवरं सङ्घरन्तेन चतुरङ्गुलं कण्णं उस्सादेत्वा चीवरं सङ्घरितब्बं—'मा मज्झे भङ्गो अहोसी' ति। ओभोगे कायबन्धनं कातब्बं।

''सचे पिण्डपातो होति, आचरियो च भुञ्जितुकामो होति, उदकं दत्वा पिण्डपातो उपनामेतब्बो। आचरियो पानीयेन पुच्छितब्बो। भुत्ताविस्स उदकं दत्वा पत्तं पटिग्गहेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन धोवित्वा वोदकं कत्वा मुहुत्तं उण्हे ओतापेतब्बो, न च उण्हे पत्तो निदहितब्बो। पत्तचीवरं निक्खिपितब्बं। पत्तं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन पत्तं गहेत्वा एकेन हत्थेन हेट्ठामञ्चं वा हेट्ठापीठं वा परामसित्वा पत्तो निक्खिपितब्बो। न च [B.78] अनन्तरहिताय भूमिया पत्तो निक्खिपितब्बो। चीवरं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन चीवरं गहेत्वा एकेन हत्थेन चीवरवंसं वा चीवररज्जुं वा पमज्जित्वा पारतो अन्तं ओरतो भोगं कत्वा चीवरं निक्खिपितब्बं। आचरियम्हि वुट्ठिते आसनं उद्धरितब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं पटिसामेतब्बं। सचे सो देसो उक्लापो होति, सो देसो सम्मज्जितब्बो।

''सचे आचरियो नहायितुकामो होति, नहानं पटियादेतब्बं। सचे सीतेन अत्थो होति, सीतं पटियादेतब्बं। सचे उण्हेन अत्थो होति, उण्हं पटियादेतब्बं।

''सचे आचरियो जन्ताघरं पविसितुकामो होति, चुण्णं सन्नेतब्बं, मत्तिका तेमेतब्बा, जन्ताघरपीठं आदाय आचरियस्स पिट्ठितो पिट्ठितो गन्त्वा जन्ताघरपीठं दत्वा चीवरं पटिग्गहेत्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं, चुण्णं दातब्बं, मत्तिका दातब्बा। सचे उस्सहति, जन्ताघरं पविसितब्बं जन्ताघरं पविसन्तेन मत्तिकाय मुखं मक्खेत्वा पुरतो च पच्छतो च पटिच्छादेत्वा जन्ताघरं पविसितब्बं। न थेरे भिक्खू अनुपखज्ज निसीदितब्बं। न नवा भिक्खू आसनेन पटिबाहितब्बा। जन्ताघरे आचरियस्स परिकम्मं कातब्बं। जन्ताघरा निक्खमन्तेन जन्ताघरपीठं आदाय पुरतो च पच्छतो च पटिच्छादेत्वा जन्ताघरा निक्खमितब्बं।

''उदके पि आचरियस्स परिकम्मं कातब्बं। नहातेन पठमतरं उत्तरित्वा अत्तनो गत्तं वोदकं कत्वा निवासेत्वा आचरियस्स गत्ततो उदकं पमज्जितब्बं, निवासनं दातब्बं, सङ्घाटि दातब्बा, जन्ताघरपीठं आदाय पठमतरं आगन्त्वा आसनं पञ्ञापेतब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपितब्बं। आचरियो पानीयेन पुच्छितब्बो। सचे उद्दिसापेतुकामो होति, उद्दिसापेतब्बो। सचे परिपुच्छितुकामो होति, परिपुच्छितब्बो।

''यस्मिं, विहारे आचरियो विहरति, सचे सो विहारो उक्लापो होति, सचे उस्सहति, सोधेतब्बो। विहारं सोधेन्तेन पठमं पत्तचीवरं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं; निसीदनपच्चत्थरणं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं; भिसिबिम्बोहनं निहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं; मञ्चो नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असङ्घट्टन्तेन कवाटपिट्ठं, नीहरित्वा [N.60, B.79] एकमन्तं निक्खिपितब्बो; मञ्चपटिपादका नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बा;

(उपाध्यायवर्त की तरह, 'उपाध्याय' शब्द के स्थान पर 'आचार्य' पद रख कर अनुवाद समझ लें।)

खेळमल्लको नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बो; अपस्सेनफलकं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं; भुम्मत्थरणं यथापञ्ञत्तं सल्लक्खेत्वा नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं। सचे विहारे सन्तानकं होति, उल्लोका पठमं ओहारेतब्बं, आलोकसन्धिकण्णभागा पमज्जितब्बा। सचे गेरुकपरिकम्मकता भित्ति कण्णकिता होति, चोळकं तेमेत्वा पीळेत्वा पमज्जितब्बा। सचे काळवण्णकता भूमि कण्णकिता होति, चोळकं तेमेत्वा पीळेत्वा पमज्जितब्बा। सचे अकता होति भूमि, उदकेन परिप्फोसित्वा सम्मज्जितब्बा—'मा विहारो रजेन ऊहञ्ञी' ति। सङ्कारं विचिनित्वा एकमन्तं छड्डेतब्बं।

"भुम्मत्थरणं ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बं। मञ्चपटिपादका ओतापेत्वा पमज्जित्वा अतिहरित्वा यथाठाने ठपेतब्बा। मञ्चो ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असङ्घट्टन्तेन कवाटपिट्ठं, अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बो। पीठं ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असङ्घट्टन्तेन कवाटपिट्ठं, अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बं। भिसि-बिम्बोहनं ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बं। निसीदनपच्चत्थरणं ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बं। खेळमल्लको ओतोपेत्वा पमज्जित्वा अतिहरित्वा यथाठाने ठपेतब्बो। अपस्सेनफलकं ओतापेत्वा पमज्जित्वा अतिहरित्वा यथाठाने ठपेब्बं। पत्तचीवरं निक्खिपितब्बं। पत्तं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन पत्तं गहेत्वा एकेन हत्थेन हेट्ठामञ्चं वा हेट्ठापीठं वा परामसित्वा पत्तो निक्खिपितब्बो। न च अनन्तरहिताय भूमिया पत्तो निक्खिपितब्बो। चीवरं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन चीवरं गहेत्वा एकेन हत्थेन चीवरवंसं वा चीवररज्जुं वा पमज्जित्वा पारतो अन्तं ओरतो भोगं कत्वा चीवरं निक्खिपितब्बं।

"सचे पुरत्थिमा सरजा वाता वायन्ति, पुरत्थिमा वातपाना थकेतब्बा। सचे पच्छिमा सरजा वाता वायन्ति, पच्छिमा वातपाना थकेतब्बा। सचे उत्तरा सरजा वाता वायन्ति, उत्तरा वातपाना थकेतब्बा। सचे दक्खिणा सरजा वाता वायन्ति, दक्खिणा वातपाना [B.80] थकेतब्बा। सचे सीतकालो होति, दिवा वातपाना विवरितब्बा, रत्तिं थकेतब्बा। सचे वुण्हकालो होति, दिवा वातपाना थकेतब्बा, रत्तिं विवरितब्बा।

"सचे परिवेणं उक्लापं होति, परिवेणं सम्मज्जितब्बं। सचे कोट्ठको उक्लापो होति, कोट्ठको सम्मज्जितब्बो। सचे उपट्ठानसाला उक्लापा होति, उपट्ठानसाला सम्मज्जितब्बा। सचे अग्गिसाला उक्लापा होति, अग्गिसाला सम्मज्जितब्बा। सचे वच्चकुटी उक्लापा होति, वच्चकुटी सम्मज्जितब्बा। सचे पानीयं न होति, पानीय उपट्ठापेतब्बं। सचे परिभोजनीयं न होति, परिभोजनीयं उपट्ठापेतब्बं। सचे आचमनकुम्भिया उदकं न होति, आचमन-[N.61] कुम्भिया उदकं आसिञ्चितब्बं।

"सचे आचरियस्स अनभिरति उप्पन्ना होति, अन्तेवासिकेन वूपकासेतब्बा, वूपकासापेतब्बा, धम्मकथा वास्स कातब्बा। सचे आचरियस्स कुक्कुच्चं उप्पन्नं होति, अन्तेवासिकेन विनोदेतब्बं, विनोदापेतब्बं, धम्मकथा वास्स कातब्बा। सचे आचरियस्स

दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति, अन्तेवासिकेन विवेचेतब्बं, विवेचापेतब्बं, धम्मकथा वास्स कातब्बा। सचे आचरियो गरुधम्मं अज्झापन्नो होति परिवासारहो, अन्तेवासिकेन उस्सुक्कं कातब्बं— 'किं ति नु खो सङ्घो आचरियस्स परिवासं ददेय्या' ति। सचे आचरियो मूलाय पटिकस्सनारहो होति, अन्तेवासिकेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किं ति नु खो सङ्घो आचरियं मूलाय पटिकस्सेय्या' ति। सचे आचरियो मानत्तारहो होति, अन्तेवासिकेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किं ति नु खो सङ्घो आचरियस्स मानत्तं ददेय्या' ति। सचे आचरियो अब्भानारहो होति, अन्तेवासिकेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किं ति नु खो सङ्घो आचरियं अब्भेय्या' ति। सचे सङ्घो आचरियस्स कम्मं कत्तुकामो होति, तज्जनीयं वा नियस्सं वा पब्बाजनीयं वा पटिसारणीयं वा उक्खेपनीयं वा, अन्तेवासिकेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किं ति नु खो सङ्घो आचरियस्स कम्मं न करेय्य, लहुकाय वा परिणामेय्य' ति। कतं वा पनस्स होति सङ्घेन कम्मं, तज्जनीयं वा नियस्सं वा [B.81] पब्बाजनीयं वा पटिसारणीयं वा उक्खेपनीयं वा, अन्तेवासिकेन उस्सुक्कं कातब्बं— 'किं ति नु खो आचरियो सम्मा वत्तेय्य, लोमं पातेय्य, नेत्थारं वत्तेय्य, सङ्घो तं कम्मं पटिप्पस्सम्भेय्या' ति।

"सचे आचरियस्स चीवरं धोवितब्बं होति, अन्तेवासिकेन धोवितब्बं, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किं ति नु खो आचरियस्स चीवरं धोवियेथा' ति। सचे आचरियस्स चीवरं कातब्बं होति, अन्तेवासिकेन कातब्बं, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किं ति नु खो आचरियस्स चीवरं करियेथा' ति। सचे आचरियस्स रजनं पचितब्बं होति, अन्तेवासिकेन पचितब्बं, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किं ति नु खो आचरियस्स रजनं पचियेथा' ति। सचे आचरियस्स चीवरं रजितब्बं होति, अन्तेवासिकेन रजितब्बं, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किं ति नु खो आचरियस्स चीवरं रजियेथा ति। चीवरं रजन्तेन साधुकं सम्परिवत्तकं सम्परिवत्तकं रजितब्बं, न च अच्छिन्ने थेवे पक्कमितब्बं।

"न आचरियं अनापुच्छा एकच्चस्स पत्तो दातब्बो, न एकच्चस्स पत्तो पटिग्गहेतब्बो; न एकच्चस्स चीवरं दातब्बं; न एकच्चस्स चीवरं पटिग्गहेतब्बं; न एकच्चस्स परिक्खारो दातब्बो; न एकच्चस्स परिक्खारो पटिग्गहेतब्बो; न एकच्चस्स केसा छेदेतब्बा; न एकच्चेन केसा छेदापेतब्बा; न एकच्चस्स परिकम्मं कातब्बं; न एकच्चेन परिकम्मं कारापेतब्बं; न एकच्चस्स वेय्यावच्चो कातब्बो; न एकच्चेन वेय्यावच्चो कारापेतब्बो; न एकच्चस्स पच्छासमणेन होतब्बं; न एकच्चो पच्छासमणो आदातब्बो; न एकच्चस्स पिण्डपातो नीहरितब्बो; [N.62] न एकच्चेन पिण्डपातो नीहरापेतब्बो। न आचरियं अनापुच्छा गामो पविसितब्बो, न सुसानं गन्तब्बं, न दिसा पक्कमितब्बा। सचे आचरियो गिलानो होति, यावजीवं उपट्ठातब्बो, वुट्ठानमस्स आगमेतब्बं ति॥

आचरियवत्तं निट्ठितं॥

२४. अन्तेवासिकवत्तकथा

८०. "आचरियेन, भिक्खवे, अन्तेवासिकम्हि सम्मा वत्तितब्बं। तत्रायं सम्मावत्तना— [B.82] "आचरियेन, भिक्खवे, अन्तेवासिको सङ्गहेतब्बो अनुग्गहेतब्बो उद्देसेन परिपुच्छाय

ओवादेन अनुसासनिया। सचे आचरियस्स पत्तो होति, अन्तेवासिकस्स पत्तो न होति, आचरियेन अन्तेवासिकस्स पत्तो दातब्बो, उस्सुक्कं वा कातब्बं—किं ति नु खो अन्तेवासिकस्स पत्तो उप्पज्जियेथा ति। सचे आचरियस्स चीवरं होति, अन्तेवासिकस्स चीवरं न होति, आचरियेन अन्तेवासिकस्स चीवरं दातब्बं, उस्सुक्कं वा कातब्बं—किं ति नु खो अन्तेवासिकस्स चीवरं उप्पज्जियेथा ति। सचे आचरियस्स परिक्खारो होति, अन्तेवासिकस्स परिक्खारो न होति, आचरियेन अन्तेवासिकस्स परिक्खारो दातब्बो, उस्सुक्कं वा कातब्बं—किं ति नु खो अन्तेवासिकस्स परिक्खारो उप्पज्जियेथा ति।

"सचे अन्तेवासिको गिलानो होति, कालस्सेव वुट्ठाय दन्तकट्ठं दातब्बं, मुखोदकं दातब्बं, आसनं पञ्ञापेतब्बं। सचे यागु होति, भाजनं धोवित्वा यागु उपनामेतब्बा। यागुं पीतस्स उदकं दत्वा भाजनं पटिग्गहेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन धोवित्वा पटिसामेतब्बं। अन्तेवासिकम्हि वुट्ठिते आसनं उद्धरितब्बं। सचे सो देसो उक्लापो होति, सो देसो सम्मज्जितब्बो।

"सचे अन्तेवासिको गामं पविसितुकामो होति, निवासनं दातब्बं, पटिनिवासनं पटिग्गहेतब्बं, कायबन्धनं दातब्बं, सगुणं कत्वा सङ्घाटियो दातब्बा, धोवित्वा पत्तो सउदको दातब्बो। एत्तावता निवत्तिस्सती ति आसनं पञ्ञापेतब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपितब्बं, पच्चुग्गन्त्वा पत्तचीवरं पटिग्गहेतब्बं, पटिनिवासनं दातब्बं, निवासनं पटिग्गहेतब्बं। सचे चीवरं सिन्नं होति, मुहुत्तं उण्हे ओतापेतब्बं, न च उण्हे चीवरं निदहितब्बं। चीवरं सङ्घरितब्बं। चीवरं सङ्घरन्तेन चतुरङ्गुलं कण्णं उस्सादेत्वा चीवरं सङ्घरितब्बं—मा मज्झे भङ्गो अहोसी ति। ओभोगे कायबन्धं कातब्बं।

"सचे पिण्डपातो होति, अन्तेवासिको च भुञ्जितुकामो होति, उदकं दत्वा पिण्डपातो उपनामेतब्बो। अन्तेवासिको पानीयेन पुच्छितब्बो। भुत्ताविस्स उदकं दत्वा पत्तं पटिग्गहेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन धोवित्वा वोदकं कत्वा मुहुत्तं उण्हे ओतापेतब्बो, न च उण्हे पत्तो निदहितब्बो। पत्तचीवरं निक्खिपितब्बं। पत्तं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन [B.83] पत्तं गहेत्वा एकेन हत्थेन हेट्ठामञ्चं वा हेट्ठापीठं वा परामसित्वा पत्तो निक्खि-[N.63] पितब्बो। न च अनन्तरहिताय भूमिया पत्तो निक्खिपितब्बो। चीवरं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन चीवरं गहेत्वा एकेन हत्थेन चीवरवंसं वा चीवररज्जुं वा पमज्जित्वा पारतो अन्तं ओरतो भोगं कत्वा चीवरं निक्खिपितब्बं। अन्तेवासिकम्हि वुट्ठिते आसनं उद्धरितब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं पटिसामेतब्बं। सचे सो उक्लापो होति, सो देसो सम्मज्जितब्बो।

"सचे अन्तेवासिको नहायितुकामो होति, नहानं पटियादेतब्बं। सचे सीतेन अत्थो

---

२४. अन्तेवासिकवर्तकथा

८०. भिक्षुओ! आचार्य को अपने अन्तेवासिक के साथ सम्यगाचरण करना चाहिये। वह सम्यगाचरण यों हैं–

भिक्षुओ! आचार्य द्वारा अन्तेवासिक का संग्रह करना चाहिये ....पूर्ववत् ....।

होति, सीतं पटियादेतब्बं। सचे उण्हेन अत्थो होति, उण्हं पटियादेतब्बं।

''सचे अन्तेवासिको जन्ताघरं पविसितुकामो होति, चुण्णं सन्नेतब्बं, मत्तिका तेमेतब्बा, जन्ताघरपीठं आदाय गन्त्वा जन्ताघरपीठं दत्वा चीवरं पटिग्गहेत्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं, चुण्णं दातब्बं, मत्तिका दातब्बा। सचे उस्सहति, जन्ताघरं पविसितब्बं। जन्ताघरं पविसन्तेन मत्तिकाय मुखं मक्खेत्वा पुरतो च पच्छतो च पटिच्छादेत्वा जन्ताघरं पविसितब्बं। न च थेरे भिक्खू अनुपखज्ज निसीदितब्बं, न नवा भिक्खू आसनेन पटिबाहेतब्बा। जन्ताघरे अन्तेवासिकस्स परिकम्मं कातब्बं। जन्ताघरा निक्खमन्तेन जन्ताघरपीठं आदाय पुरतो च पच्छतो च पटिच्छादेत्वा जन्ताघरा निक्खमितब्बं।

''उदके पि अन्तेवासिकस्स परिकम्मं कातब्बं। नहातेन पठमतरं उत्तरित्वा अत्तनो गत्तं वोदकं कत्वा निवासेत्वा अन्तेवासिकस्स गत्ततो उदकं पमज्जितब्बं, निवासनं दातब्बं, सङ्घाटि दातब्बा, जन्ताघरपीठं आदाय पठमतरं आगन्त्वा आसनं पञ्ञापेतब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपितब्बं। अन्तेवासिको पानीयेन पुच्छितब्बो।

''यस्मिं विहारे अन्तेवासिको विहरति, सचे सो विहारो उक्लापो होति, सचे उस्सहति, सोधेतब्बो। विहारं सोधेन्तेन पठमं पत्तचीवरं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं; निसीदनपच्चत्थरणं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं; भिसिबिम्बोहनं नीहरित्वा एक-
[B.84] मन्तं निक्खिपितब्बं; निक्खिपितब्बं; मञ्चो नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असङ्घट्टन्तेन कवाटपिट्ठं, नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं; मञ्चपटिपादका नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बा; खेळमल्लको नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बो; अपस्सेनफलकं नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं; भुम्मत्थरणं यथापञ्ञत्तं सल्लक्खेत्वा नीहरित्वा एकमन्तं निक्खिपितब्बं। सचे विहारे सन्तानकं होति, उल्लोका पठमं ओहारेतब्बं, आलोकसन्धि-कण्णभागा पमज्जितब्बा। सचे गेरुपटिकम्मकता भित्ति कण्णकिता होति, चोळकं तेमेत्वा पीळेत्वा पमज्जितब्बा। सचे काळवण्णकता भूमि कण्णकिता होति, चोळकं तेमेत्वा पीळेत्वा पमज्जितब्बा। सचे अकता होति भूमि, उदकेन परिप्फोसित्वा सम्मज्जितब्बा—मा विहारो रजेन ऊहञ्ञी ति। सङ्कारं विचिनित्वा छड्डेतब्बं।

[N.64] ''भुम्मत्थरणं ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बं। मञ्चपटिपादका ओतापेत्वा पमज्जित्वा अतिहरित्वा यथाठाने ठपेतब्बा। मञ्चो ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असङ्घट्टन्तेन कवाटपिट्ठं, अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बो। पीठं ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा नीचं कत्वा साधुकं अप्पटिघंसन्तेन, असङ्घट्टन्तेन कवाटपिट्ठं, अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बं। भिसि-बिम्बोहनं ओतापेत्वा सोधेत्वा पप्फोटेत्वा अतिहरित्वा यथापञ्ञत्तं पञ्ञापेतब्बं। खेळमल्लको ओतापेत्वा पमज्जित्वा अतिहरित्वा यथाठाने ठपेतब्बो। अपस्सेनफलकं ओतापेत्वा पममिज्जत्वा अतिहरित्वा यथाठाने ठपेतब्बं। पत्तचीवरं निक्खिपितब्बं। पत्तं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन

(सहविहारिकवत्तकथा के समान 'उपाध्याय के स्थान पर 'आचार्य' तथा 'सहविहारिक' के स्थान पर 'अन्तेवासी' शब्द रखकर अनुवाद समझ लें।)

पत्तं गहेत्वा एकेन हत्थेन हेट्ठामञ्चं वा हेट्ठापीठं वा परामसित्वा पत्तो निक्खिपितब्बो। न च अनन्तरहिताय भूमिया पत्तो निक्खिपितब्बो। चीवरं निक्खिपन्तेन एकेन हत्थेन चीवरं गहेत्वा एकेन हत्थेन चीवरवंसं वा चीवररज्जुं वा पमज्जित्वा पारतो अन्तं ओरतो भोगं कत्वा चीवरं निक्खिपितब्बं।

''सचे पुरत्थिमा सरजा वाता वायन्ति, पुरत्थिमा वातपाना थकेतब्बा। सचे [B.85] पच्छिमा सरजा वाता वायन्ति, पच्छिमा वातपाना थकेतब्बा। सचे उत्तरा सरजा वाता वायन्ति, उत्तरा वातपाना थकेतब्बा। सचे दक्खिणा सरजा वाता वायन्ति, दक्खिणा वातपाना थकेतब्बा। सचे सीतकालो होति, दिवा वातपाना विवरितब्बा, रत्तिं थकेतब्बा। सचे उण्हकालो होति, दिवा वातपाना थकेतब्बा, रत्तिं विवरितब्बा।

''सचे परिवेणं उक्लापं होति, परिवेणं सम्मज्जितब्बं। सचे कोट्ठको उक्लापो होति, कोट्ठको सम्मज्जितब्बो। सचे उपट्ठानसाला उक्लापा होति, उपट्ठानसाला सम्मज्जितब्बा। सचे अग्गिसाला उक्लापा होति, अग्गिसाला सम्मज्जितब्बा। सचे वच्चकुटी उक्लापा होति, वच्चकुटी सम्मज्जितब्बा। सचे पानीयं न होति, पानीयं उपट्ठापेतब्बं। सचे परिभोजनीयं न होति, परिभोजनीयं उपट्ठापेतब्बं। सचे आचमनकुम्भिया उदकं न होति, आचमनकुम्भिया उदकं आसिञ्चितब्बं।

''सचे अन्तेवासिकस्स अनभिरति उप्पन्ना होति, आचरियेन वूपकासेतब्बा, वूपकासापेतब्बा, धम्मकथा वास्स कातब्बा। सचे अन्तेवासिकस्स कुक्कुच्चं उप्पन्नं होति, आचरियेन विनोदेतब्बं, विनोदापेतब्बं, धम्मकथा वास्स कातब्बा। सचे अन्तेवासिकस्स दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति, आचरियेन विवेचितब्बं, विवेचापेतब्बं, धम्मकथा वास्स कातब्बा। सचे अन्तेवासिको गरुधम्मं अज्झापन्नो होति, परिवासारहो, आचरियेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किं ति नु खो सङ्घो, अन्तेवासिकस्स परिवासं ददेय्या' ति। सचे अन्तेवासिको मूलाय पटिकस्सनारहो होति, आचरियेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किं ति नु खो सङ्घो अन्तेवासिकं मूलाय पटिकस्सेय्या' ति। सचे अन्तेवासिको मानत्तारहो होति, आचरियेन उस्सुक्कं [N.65] कातब्बं—'किं ति नु खो सङ्घो अन्तेवासिकस्स मानत्तं ददेय्या' ति। सचे अन्तेवासिको अब्भानारहो होति, आचरियेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किं ति नु खो सङ्घो अन्तेवासिकं अब्भेय्या' ति। सचे सङ्घो अन्तेवासिकस्स कम्मं कत्तुकामो होति, तज्जनीयं वा नियस्सं वा पब्बाजनीयं वा पटिसारणीयं वा उक्खेपनीयं वा, आचरियेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किं ति नु खो सङ्घो अन्तेवासिकस्स कम्मं न करेय्य, लहुकाय वा परिणामेय्या' ति। कतं वा पनस्स [B.86] होति सङ्घेन कम्मं, तज्जनीयं वा नियस्सं वा पब्बाजनीयं वा पटिसारणीयं वा उक्खेपनीयं वा, आचरियेन उस्सुक्कं कातब्बं—'किं ति नु खो अन्तेवासिको सम्मा वत्तेय्य, लोमं पातेय्य, नेत्थारं वत्तेय्य, सङ्घो तं कम्मं पटिप्पस्सम्भेय्या' ति।

''सचे अन्तेवासिकस्स चीवरं धोवितब्बं होति, आचरियेन आचिक्खितब्बं—'एवं धोवेय्यासी' ति, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किं ति नु खो अन्तेवासिकस्स चीवरं धोवियेथा' ति। सचे अन्तेवासिकस्स चीवरं कातब्बं होति, आचरियेन आचिक्खितब्बं—'एवं करेय्यासी'

ति, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किं ति नु खो अन्तेवासिकस्स चीवरं करियेथा' ति। सचे अन्तेवासिकस्स रजनं पचितब्बं होति, आचरियेन आचिक्खितब्बं—'एवं पचेय्यासी' ति, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किं ति नु खो अन्तेवासिकस्स रजनं पचियेथा' ति। सचे अन्तेवासिकस्स चीवरं रजितब्बं होति, आचरियेन आचिक्खितब्बं—'एवं रजेय्यासी' ति, उस्सुक्कं वा कातब्बं—'किं ति नु खो अन्तेवासिकस्स चीवरं रजियेथा' ति। चीवरं रजन्तेन साधुकं सम्परिवत्तकं सम्परिवत्तकं रजितब्बं, न च अच्छिन्ने थेवे पक्कमितब्बं।

सचे अन्तेवासिको गिलानो होति, यावजीवं उपट्ठातब्बो, वुट्ठानमस्स आगमेतब्बं" ति॥

अन्तेवासिकवत्तं निट्ठितं॥

छट्ठो भाणवारो निट्ठितो॥

२५. पणामना, खमापना

८१. तेन खो पन समयेन अन्तेवासिका आचरियेसु न सम्मा वत्तन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं....पे०...."**न, भिक्खवे, अन्तेवासिकेन आचरियम्हि न सम्मा वत्तितब्बं। यो न सम्मा वत्तेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति। नेव सम्मा वत्तन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं....पे०...."**अनुजानामि, भिक्खवे, असम्मावत्तन्तं पणामेतुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, पणामेतब्बो—'पणामेमि तं' ति वा, 'मायिध पटिक्कमी' ति [B.87] वा, 'नीहर ते पत्तचीवरं' ति वा, 'नाहं तया उपट्ठातब्बो' ति वा कायेन विञ्ञापेति, वाचाय विञ्ञापेति, कायेन वाचाय विञ्ञापेति, पणामितो होति अन्तेवासिको; न कायेन विञ्ञापेति, न वाचाय विञ्ञापेति, न कायेन वाचाय विञ्ञापेति, न पणामितो होति अन्तेवासिको" ति।

[N.66] तेन खो पन समयेन अन्तेवासिका पणामिता न खमापेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, खमापेतुं** ति। नेव खमापेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, पणामितेन न खमापेतब्बो। यो न खमापेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा ति।**

यदि अन्तेवासी कभी रोगी हो जाय तो जब तक वह स्वस्थ न हो जाय, (भले ही जीवनपर्यन्त) उसकी परिचर्या करनी चाहिये। उसके पूर्ण स्वास्थ्य की प्रतीक्षा करनी चाहिये।

अन्तेवासिकव्रतकथा समाप्त॥

छठा भाणवार समाप्त॥

२५. प्रणामना (निष्कासन), क्षमायाचना

८१. उस समय कुछ अन्तेवासी आचार्यों के साथ सम्यग्व्यवहार नहीं करते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी।....पूर्ववत्....। भगवान् ने कहा—"**भिक्षुओ! अन्तेवासी को आचार्य के साथ ठीक से व्यवहार करना चाहिये। जो ठीक व्यवहार न करे उसे दुष्कृत दोष लगेगा।**" फिर भी अन्तेवासी आचार्यों के साथ ठीक व्यवहार नहीं करते थे। तब फिर भगवान् के सम्मुख यह प्रश्न रखा गया तो भगवान् ने कहा—**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ठीक से व्यवहार न करनेवाले (अन्तेवासी) को निकाल देने की।**

तेन खो पन समयेन आचरिया खमापियमाना न खमन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, खमितुं** ति। नेव खमन्ति। अन्तेवासिका पक्कमन्ति पि विब्भमन्ति पि तित्थियेसु पि सङ्कमन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न भिक्खवे, खमापियमानेन न खमितब्बं। यो न खमेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

तेन खो पन समयेन आचरिया सम्मावत्तन्तं पणामेन्ति, असम्मावत्तन्तं न पणामेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सम्मावत्तन्तो पणामेतब्बो। यो पणामेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। न च, भिक्खवे, असम्मावत्तन्तो न पणामेतब्बो। यो न पणामेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स।**

८२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो अन्तेवासिको पणामेतब्बो। आचरियम्हि नाधिमत्तं पेमं होति, नाधिमत्तो पसादो होति, नाधिमत्ता हिरी होति, नाधिमत्तो गारवो होति, नाधिमत्ता भावना होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतो अन्तेवासिको पणामेतब्बो।

''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो अन्तेवासिको न पणामेतब्बो। आचरियम्हि अधिमत्तं पेमं होति, अधिमत्तो पसादो होति, अधिमत्ता हिरी होति, अधिमत्तो गारवो होति, अधिमत्ता भावना होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चङ्गेहि समन्नागतो अन्तेवासिको न पणामेतब्बो।

''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो अन्तेवासिको अलं पणामेतुं। [B.88] आचरियम्हि नाधिमत्तं पेमं होति, नाधिमत्तो पसादो होति, नाधिमत्ता हिरी होति, नाधिमत्तो गारवो होति, नाधिमत्ता भावना होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतो अन्तेवासिको अलं पणामेतुं।

''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो अन्तेवासिको नालं पणामेतुं। आचरियम्हि अधिमत्तं पेमं होति, अधिमत्तो पसादो होति, अधिमत्ता हिरी होति, अधिमत्तो गारवो होति, अधिमत्ता भावना होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतो अन्तेवासिको नालं पणामेतुं।

''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतं अन्तेवासिकं अप्पणामेन्तो आचरियो सातिसारो होति, पणामेन्तो अनतिसारो होति। आचरियम्हि नाधिमत्तं पेमं होति, नाधिमत्तो पसादो होति, नाधिमत्ता हिरी होति, नाधिमत्तो गारवो होति, नाधिमत्ता भावना होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतं अन्तेवासिकं अप्पणामेन्तो आचरियो सातिसारो होति, पणामेन्तो अनतिसारो होति।

''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतं अन्तेवासिकं पणामेन्तो आचरियो [N.67] सातिसारो होति, अप्पणामेन्तो अनतिसारो होति। आचरियम्हि अधिमत्तं पेमं होति, अधिमत्तो पसादो होति। अधिमत्ता हिरी होति, अधिमत्तो गारवो होति, अधिमत्ता भावना होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चङ्गेहि समन्नागतं अन्तेवासिकं पणामेन्तो आचरियो सातिसारो होति, अप्पणामेन्तो अनतिसारो होती ति।

२६. बालअब्यत्तवत्थु

८३. तेन खो पन समयेन भिक्खू, दसवस्सम्ह दसवस्सम्हा ति बाला अब्यत्ता [B.89] निस्सयं देन्ति। दिस्सन्ति आचरिया बाला, अन्तेवासिका पण्डिता। दिस्सन्ति आचरिया अब्यत्ता, अन्तेवासिका ब्यत्ता। दिस्सन्ति आचरिया अप्पस्सुता, अन्तेवासिका बहुस्सुता। [R.62] दिस्सन्ति आचरिया दुप्पञ्ञा, अन्तेवासिका पञ्ञवन्तो। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम भिक्खू, दसवस्सम्ह दसवस्सम्हा ति, बाला अब्यत्ता निस्सयं दस्सन्ति। दिस्सन्ति आचरिया बाला....पे०....अन्तेवासिका पञ्ञवन्तो'' ति। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''सच्चं किर, भिक्खवे, भिक्खू, दसवस्सम्ह दसवस्सम्हा ति बाला अब्यत्ता निस्सयं देन्ति....पे०.....पञ्ञवन्तो'' ति? सच्चं भगवा। विगरहि बुद्धो भगवा....पे०....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''न, भिक्खवे, बालेन अब्यत्तेन निस्सयो दातब्बो। यो ददेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। **अनुजानामि, भिक्खवे, ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन दसवस्सेन वा अतिरेकदसवस्सेन वा निस्सयं दातुं''** ति।

२७. निस्सयपटिप्पस्सद्धिकथा

८४. तेन खो पन समयेन भिक्खू आचरियुपज्झायेसु पक्कन्तेसु पि विब्भन्तेसु पि कालङ्कतेसु पि पक्खसङ्कन्तेसु पि निस्सयपटिप्पस्सद्धियो न जानन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

''पञ्चिमे, भिक्खवे, निस्सयपटिप्पस्सद्धियो उपज्झायम्हा—१. उपज्झायो पक्कन्तो वा होति, २. विब्भन्तो वा, ३. कालङ्कतो वा, ४. पक्खसङ्कन्तो वा, ५. आणत्ति येव पञ्चमी। इमा खो, भिक्खवे, पञ्च निस्सयपटिप्पस्सद्धियो उपज्झायम्हा।

भिक्षुओ! उसे निकालने (हटाने) की विधि यह है—....पूर्ववत्....अन्तेवासी निकाला हुआ नहीं समझा जाता।....सीमोल्लङ्घक नहीं होता। (पीछे पणामित कथा के पैरा क्र० ६९ के अनुसार समझें)।

२६. बाल—अव्यक्तकथा

८३. उस समय कुछ भिक्षु 'हम दश वर्ष के हो गये'—ऐसा समझकर स्वयं मूर्ख एवं असमर्थ होते हुए भी दूसरे (नवागत) प्रत्याशियों को निश्रय देते थे। .....पूर्ववत्....(पीछे आये पैरा सं० ७७ के समान अर्थ समझ लें।) **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ समर्थ एवं योग्य भिक्षु द्वारा, जो कि दश वर्ष का हो चुका हो, निश्रय देने की।**

२७. निश्रय—प्रतिप्रश्रब्धिकथा

८४. उस समय कई भिक्षु आचार्य एवं उपाध्यायों के अन्यत्र चले जाने पर भी, मतपरिवर्तन कर लेने पर पर भी, मर जाने पर भी, दूसरे पक्ष में चले जाने पर भी, निश्रय की प्रतिप्रश्रब्धि (समाप्ति) हो जाती है—यह नहीं जानते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी।

(भगवान् ने कहा—) ''भिक्षुओ! (क) उपाध्याय के विषय में ये पाँच निश्रय—प्रतिप्रश्रब्धियाँ जाननी चाहिये— (१) यदि उपाध्याय कहीं चले गये हों, (२) विचार—परिवर्तन कर लिया हो, (३) देहपात हो गया हो, (४) दूसरे पक्ष में चला गया हो, (५) स्वीकृति (आणत्ति) दे गया हो।

''छयिमा, भिक्खवे, निस्सयपटिप्पस्सद्धियो आचरियम्हा—१. आचरियो पक्कन्तो वा होति, २. विब्भन्तो वा, ३. कालङ्कतो वा, ४. पक्खसङ्कन्तो वा, ५. आणत्ति येव पञ्चमी, ६. उपज्झायेन वा समोधानगतो होति। इमा खो, भिक्खवे, छनिस्सयपटिप्पस्सद्धियो आचरियम्हा।

२८. उपसम्पादेतब्बपञ्चकं

८५. (१) ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पा-[B.90] देतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. न असेक्खेन सीलक्खन्धेन [N.68] समन्नागतो होति, २. न असेक्खेन समाधिक्खन्धेन समन्नागतो होति, ३. न असेक्खेन पञ्ञाक्खन्धेन समन्नागतो होति, ४. न असेक्खेन विमुत्तिक्खन्धेन समन्नागतो होति, ५. न असेक्खेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(२) ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. असेक्खेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति, २. असेक्खेन समाधिक्खन्धेन समन्नागतो होति, ३. असेक्खेन पञ्ञाक्खन्धेन समन्नागतो होति, ४. असेक्खेन विमुत्तिक्खन्धेन समन्नागतो होति, ५. असेक्खेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति— इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो [R.63] दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(३) ''अपरेहि पि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. अत्तना न असेक्खेन सीलक्खन्धेन

(ख) आचार्य की निश्रयप्रतिप्रश्रब्धियाँ छह जाननी चाहिये— (१) आचार्य कहीं अन्यत्र चले गये हों, (२) आचार्य ने विचारपरिवर्तन कर लिया हो, (३) आचार्य का देहपात हो गया हो, (४) आचार्य दूसरे पक्ष में चला गया हो, (५) या स्वीकृति दे गया हो, एवं (६) उपाध्याय ने ही समाधान कर दिया हो। भिक्षुओ! आचार्य के विषय में यह छह प्रतिप्रश्रब्धियाँ हैं।

२८. उपसम्पादयितव्यपञ्चक

८५. (१) भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से समन्वित भिक्षु द्वारा उपसम्पदा विधि नहीं होनी चाहिये—(क) अशैक्ष्य शीलस्कन्ध (शीलसमूह) से रहित, (ख) अशैक्ष्य समाधिस्कन्ध से रहित, (ग) अशैक्ष्य प्रज्ञास्कन्ध से रहित, (घ) अशैक्ष्य विमुक्ति (रागद्वेषहीनता) स्कन्ध से रहित एवं अशैक्ष्य विमुक्तिज्ञानदर्शन (साक्षात्कार) स्कन्ध से रहित भिक्षु को (दूसरों को) उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये, निश्रय नहीं देना चाहिये और न श्रामणेर बनाकर रखना चाहिये।

(२) भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों (गुणों) से युक्त भिक्षु ही अन्य को उपसम्पदा, निश्रय एवं श्रामणेर रखने का अधिकारी है— (क) जो अशैक्ष्य शीलस्कन्ध से, (ख) अशैक्ष्य समाधिस्कन्ध से, (ग) अशैक्ष्य प्रज्ञास्कन्ध से, (घ) अशैक्ष्य विमुक्तिस्कन्ध से एवं (ङ) अशैक्ष्य विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्ध से युक्त हो। भिक्षुओ! इन पाँच गुणों से युक्त भिक्षु ही अन्य को....।

३. भिक्षुओ! इन पाँच अन्य कारणों से समन्वित भिक्षु के द्वारा भी न किसी को उपसम्पदा देनी चाहिये, न निःश्रय और न किसी को अपना श्रामणेर ही बनाना चाहिये—(क) जो न स्वयं

समन्नागतो होति, न परं असेक्खे सीलक्खन्धे समादपेता; २. अत्तना न असेक्खेन समाधिक्खन्धेन समन्नागतो होति, न परं असेक्खे पञ्ञाक्खन्धे समादपेता; ३. अत्तना न असेक्खेन पञ्ञाक्खन्धेन समन्नागतो होति, न परं असेक्खे पञ्ञाक्खन्धे समादपेता; ४. अत्तना न असेक्खेन विमुत्तिक्खन्धेन समन्नागतो होति, न परं असेक्खे विमुत्तिक्खन्धे समादपेता; ५. अत्तना न असेक्खेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति, न परं असेक्खे विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धे समादपेता—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

[B.91] (४) "पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. अत्तना असेक्खेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति, परं असेक्खे सीलक्खन्धे समादपेता; २. अत्तना असेक्खेन समाधिक्खन्धेन समन्नागतो होति, परं असेक्खे समाधिक्खन्धे समादपेता; ३. अत्तना असेक्खेन पञ्ञाक्खन्धेन समन्नागतो होति, परं असेक्खे पञ्ञाक्खन्धे समादपेता; ४. अत्तना असेक्खेन विमुत्तिक्खन्धेन समन्नागतो होति, परं असेक्खे पञ्ञाक्खन्धे समादपेता; ५ अत्तना असेक्खेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति, परं असेक्खे विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धे समादपेता— इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(५) "अपरेहि पि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. अस्सद्धो होति, २. अहिरिको होति, ३. अनोत्तप्पी होति, ४. कुसीतो होति, ५. मुट्ठस्सति होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।
[N.69] (६) "पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो

शीलस्कन्ध से युक्त हो, न उक्त शीलस्कन्ध की प्राप्ति के लिये दूसरों को प्रोत्साहित करता हो, (ख) जो न स्वयं समाधिस्कन्ध से...(ग) जो न स्वयं प्रज्ञास्कन्ध से...(घ) जो न स्वयं विमुक्तिस्कन्ध से...(ङ) जो न स्वयं विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्ध से युक्त है न दूसरों को ही उसके लिये प्रोत्साहित करता है।....।

(४) और भिक्षुओ! इन पाँच अन्य कारणों से समन्वित भिक्षु के द्वारा दूसरों को उपसम्पदा भी दी जा सकती है, निःश्रय भी, और वह किसी को अपना श्रामणेर बनाने का भी अधिकारी है; जैसे (क) जो स्वयं शीलस्कन्ध से युक्त है तथा अन्य को भी उस शीलस्कन्ध की प्राप्ति के लिये उत्साहित करता है; (ख) जो स्वयं समाधिस्कन्ध से ...(ग) जो स्वयं प्रज्ञास्कन्ध से ...(घ) जो स्वयं विमुक्तिस्कन्ध से...(ङ) जो स्वयं विमुक्ति ज्ञानदर्शनस्कन्ध से युक्त है तथा दूसरों को भी इस स्कन्ध के लिये प्रोत्साहित करता है।....।

(५) और, भिक्षुओ! इन पाँच अन्य कारणों से समन्वित भिक्षु के द्वारा दूसरों को न उपसम्पदा दी जानी चाहिये, न निःश्रय; और न किसी को अपना श्रामणेर ही बनाना चाहिये; जैसे—(क) जो अश्रद्ध (श्रद्धाहीन) हो, (ख) जो लज्जारहित हो, (ग) जो सङ्कोचरहित हो, (घ) जो कंजूस या आलसी हो, (ङ) तथा जो स्मृतिभ्रष्ट हो।....।

(६) और भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से युक्त भिक्षु द्वारा उपसम्पदा भी दी जा सकती है, निःश्रय

दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. सद्धो होति, २. हिरिमा होति, ३. ओत्तप्पी होति, ४. आरद्धविरियो होति, ५. उपट्ठितसति होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(७) ''अपरेहि पि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. अधिसीले सीलविपन्नो होति, २. अज्झाचारे आचारविपन्नो होति, ३. अतिदिट्ठिया दिट्ठिविपन्नो होति, ४. अप्पस्सुतो होति, ५. दुप्पञ्ञो होति— इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(८) ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, [R.64] निस्सयो दातब्बो, समणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. न अधिसीले सीलविपन्नो होति, २. न [B.92] अज्झाचारे आचारविपन्नो होति, ३. न अतिदिट्ठिया दिट्ठिविपन्नो होति, ४. बहुस्सुतो होति, ५. पञ्ञवा होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(९) ''अपरेहि पि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. न पटिबलो होति अन्तेवासिं वा सद्धिविहारिं वा गिलानं उपट्ठातुं वा उपट्ठापेतुं वा, २. उप्पन्नं अनभिरतिं वूपकासेतुं वा वूपकासापेतुं वा, ३. उप्पन्नं कुक्कुच्चं धम्मतो विनोदेतुं वा विनोदापेतुं वां, ४. आपत्तिं न जानाति, ५. आपत्तिया वुट्ठानं न जानाति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(१०) ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. पटिबलो होति अन्तेवासिं वा सद्धिविहारिं वा गिलानं

भी, तथा श्रामणेर भी रखा जा सकता है; जैसे (क) श्रद्धासम्पन्न हो, (ख) लज्जालु हो, (ग) सङ्कोची हो, (घ) उद्योगी हो तथा (घ) स्मृतिमान् हो।....।

(७) भिक्षुओ! इन पाँच अन्य कारणों से समन्वित भिक्षु को उपसम्पदा तथा निःश्रय नहीं देना चाहिये, न किसी को श्रामणेर ही बनाना चाहिये; जैसे—(क) जो शीलविपन्न हो, (ख) आचार से हीन हो, (ग) मिथ्या दृष्टि (गलत धारणा) वाला हो, (घ) अल्पश्रुत हो तथा (ङ) दुष्प्रज्ञ हो।....।

(८) और, भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से युक्त भिक्षु को उपसम्पदा.....श्रामणेर बनाना चाहिये; जैसे— (क) जो शीलसम्पन्न हो, (ख) जो आचारसम्पन्न हो, (ग) सम्यग्दृष्टिसम्पन्न हो, (घ) बहुश्रुत हो, तथा (ङ) प्रज्ञावान् हो।....।

(९) भिक्षुओ! इन पाँच अन्य अङ्गों से समन्वित भिक्षु को भी उपसम्पदा ....नहीं देना चाहिये तथा श्रामणेर नहीं बनाना चाहिये; जैसे—(क) जो अन्तेवासी या सहविहारी के रुग्ण होने पर, परिचर्या करने में समर्थ न हो; (ख) धर्म के प्रति उनके मन की उदासी को हटाने का या हटवाने में समर्थ न हो; (घ)....कुकृत्य को हटाने.....; (घ) जो आपत्ति (दोष) नहीं जानता, तथा (ङ) जो आपत्ति का निराकरण नहीं जानता।....।

(१०) भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से युक्त भिक्षु को उपसम्पदा, निश्रय देना चाहिये, श्रामणेर

उपट्ठातुं वा उपट्ठापेतुं वा, २. उप्पन्नं अनभिरतिं वूपकासेतुं वा वूपकासापेतुं वा, ३. उप्पन्नं कुक्कुच्चं धम्मतो विनोदेतुं वा विनोदापेतुं वा, ४. आपत्तिं जानाति, ५. आपत्तिया वुट्ठानं जानाति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(११) "अपरेहि पि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. न पटिबलो होति अन्तेवासिं वा सद्धिविहारिं वा अभिसमाचारिकाय सिक्खाय सिक्खापेतुं, २. आदिब्रह्मचरियकाय सिक्खाय विनेतुं, अभिधम्मे विनेतुं, ४. अभिविनये विनेतुं, ५. उप्पन्नं दिट्ठिगतं धम्मतो विवचेतुं—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न [N.70] सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

[B.93] (१२) पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. पटिबलो होति अन्तेवासिं वा सद्धिविहारिं वा अभिसमाचारिकाय सिक्खाय सिक्खापेतुं, २. आदिब्रह्मचरियकाय सिक्खाय विनेतुं, ३. [R.65] अभिधम्मे विनेतुं, ४. अभिविनये विनेतुं, ५. उप्पन्नं दिट्ठिगतं धम्मतो विवेचेतुं—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(१३) "अपरेहि पि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. आपत्तिं न जानाति, २. अनापत्तिं न जानाति, ३. लहुकं आपत्तिं न जानाति, ४. गरुकं आपत्तिं न जानाति, ५. उभयानि खो पनस्स पातिमोक्खानि वित्थारेन न स्वागतानि होन्ति न सुविभत्तानि न सुप्पवत्तीनि न सुविनिच्छितानि सुत्तसो अनुब्यञ्जनसो—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

रखना चाहिये; जैसे– (क) जो अन्तेवासी वा सहविहारिक की, रुग्ण होने पर, परिचर्या कर सके; (ख) धर्म के प्रति उनकी उदासी को मिटा सके; (ग)....उत्पन्न हुए कौकृत्य को मिटा सके; (घ) जो आपत्ति को जानता हो, (ङ) तथा आपत्ति का निराकरण जानता हो।....।

(११) भिक्षुओ! इन पाँच अन्य अङ्गों से युक्त भिक्षु को भी उपसम्पदा आदि नहीं देनी चाहिये...., जैसे– (क) अन्तेवासी सहविहारी को आचारसम्बन्धी शिक्षा देने में असमर्थ (ख) धर्मसम्बन्धी शिक्षा, (ग) अभिधर्म की तरफ, (घ) विनय की तरफ बढाने में समर्थ न हो; (ङ) तथा उत्पन्न धारणाओं के विषय में धर्मानुसार विवेचन करने में समर्थ न हो।....।

(१२) भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से युक्त भिक्षु को उपसम्पदा आदि देने का अधिकार है; जैसे– (क) जो आचार सम्बन्धी या (ख) धर्मसम्बन्धी शिक्षा देने में समर्थ हो; (ग) अभिधर्म की तरफ या (घ) विनय की तरफ बढ़ाने में समर्थ हो; या (ङ) शिष्य की उत्पन्न धारणाओं में धर्मानुसार विवेचन में समर्थ हो।....।

(१३) भिक्षुओ! इन अन्य पाँच अङ्गों से समन्वित भिक्षु द्वारा भी उपसम्पदा आदि नहीं देनी चाहिये, जैसे–(क) जो न दोष को जानता है; (ख) न निर्दोषता को जानता है; (ग) न छोटे दोष को

(१४) "पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. आपत्तिं जानाति, २. अनापत्तिं जानाति, ३. लहुकं आपत्तिं जानाति, ४. गरुकं आपत्तिं जानाति, ५. उभयानि खो पनस्स पातिमोक्खानि वित्थारेन स्वागतानि होन्ति सुविभत्तानि सुप्पवत्तीनि सुविनिच्छितानि सुत्तसो अनुब्यञ्जनसो—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(१५) "अपरेहि पि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. आपत्तिं न जानाति, २. अनापत्तिं न जानाति, ३. लहुकं आपत्तिं न जानाति, ४. गरुकं आपत्तिं न जानाति, ५. ऊनदसवस्सो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(१६) "पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. आपत्तिं जानाति, २. अनापत्तिं जानाति, ३. लहुकं आपत्तिं जानाति, ४. गरुकं आपत्तिं जानाति, ५. दसवस्सो वा होति अतिरेक-[B.94] दसवस्सो वा—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो ति॥

उपसम्पादेतब्बपञ्चकसोळसवारं निट्ठितं॥

२१. उपसम्पादेतब्बछक्कं

८६. (१) "छहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पा-[N.71] देतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. न असेखेन सीलक्खन्धेन [R.66]

जानता है; (घ) न बड़े दोष को जानता है; (ङ) और जो दोनों प्रातिमोक्षों को विस्तार के साथ सूत्र एवं अर्थ से सुविभक्त एवं विनिश्चित रूप से नहीं स्मरण रखता।....।

१४. भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से युक्त भिक्षु को उपसम्पदा आदि देने का अधिकार है; जैसे—(क) जो दोष को जानता है; (ख) जो निर्दोषता को जानता है; (ग) जो न छोटे दोष को जानता है, (घ) न बड़े दोष को जानता है; तथा (ङ) जो दोनों प्रतिमोक्षों को विस्तार से जानता है।..।

(१५) भिक्षुओ! इन पाँच अन्य अङ्गों से युक्त भिक्षु द्वारा भी उपसम्पदा एवं निश्रय नहीं देना चाहिये और न अपने साथ श्रामणेर ही रखना चाहिये। जैसे– (क) जो आपत्ति (दोष) नहीं जानता, (ख) जो अनापत्ति (निर्दोषता) नहीं जानता, (ग) जो छोटी आपत्ति नहीं जानता, (घ) जो बड़ी आपत्ति नहीं जानता; तथा (ङ) जो दश वर्ष से कम समय का बना हुआ भिक्षु होता है।....।

(१६) तथा भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से युक्त भिक्षु उपसम्पदा देने का भी अधिकारी है, निःश्रय देने का भी। वह अपने साथ श्रामणेर भी रख सकता है। जैसे—(क) जो दोष को जानता है, (ख) जो निर्दोषता को भी जानता है; (ग) जो छोटे दोष को जानता है; (घ) जो बड़े दोष को भी जानता है; तथा जो दश वर्ष से अधिक समय का बना हुआ भिक्षु है। यह उपसम्पदा भी दे सकता है, निःश्रय भी दे सकता है एवं अपने साथ श्रामणेर भी रख सकता है।

उपसम्पादयितव्यपञ्चक षोडशवार समाप्त।।

समन्नागतो होति, २. न असेक्खेन समाधिक्खन्धेन समन्नागतो होति, ३. न असेक्खेन पञ्ञाक्खन्धेन समन्नागतो होति, ४. न असेक्खेन विमुत्तिक्खन्धेन समन्नागतो होति, ५. न असेक्खेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति, ६. ऊनदसवस्सो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(२) ''छहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. असेक्खेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति, २. असेक्खेन समाधिक्खन्धेन समन्नागतो होति, ३. असेक्खेन पञ्ञाक्खन्धेन समन्नागतो होति, ४. असेक्खेन विमुत्तिक्खन्धेन समन्नागतो होति, ५. असेक्खेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति, ६. दसवस्सो वा होति अतिरेकदसवस्सो वा—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(३) ''अपरेहि पि, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. अत्तना न असेक्खेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति, न परं असेखे समाधिक्खन्धे समादपेता; २. अत्तना न असेक्खेन समाधि-[B.95] क्खन्धेन समन्नागतो होति, न परं असेक्खे समाधिक्खन्धे समादपेता; ३. अत्तना न असेक्खेन पञ्ञाक्खन्धेन समन्नागतो होति, न परं असेक्खे पञ्ञाक्खन्धे समादपेता; ४. अत्तना न असेक्खेन विमुत्तिक्खन्धेन समन्नागतो होति, न परं असेक्खे विमुत्तिक्खन्धे समादपेता; ५. अत्तना न असेक्खेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति, न परं असेक्खे विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धे समादपेता; ६. ऊनदसवस्सो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(४) ''छहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. अत्तना असेक्खेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति, परं असेक्खे सीलक्खन्धे समादपेता....पे०....परं असेक्खे विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धे समादपेता; दसवस्सो वा होति अतिरेकदसवस्सो वा—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(५) ''अपरेहि पि, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपासम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. अस्सद्धो होति, २. अहिरिको होति, ३. अनोत्तप्पी होति, ४. कुसीतो होति, ५. मुट्ठस्सति होति, ६. ऊनदसवस्सो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

[N.72,R.67] (६) ''छहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं,

---

२९. षट्कों से उपसम्पदाकरणीयकथा

८६. (१) भिक्षुओ! इन छह अङ्गों से युक्त भिक्षु को न किसी की उपसम्पदा या न निःश्रय देना चाहिये; न कोई श्रामणेर ही अपने साथ रखना चाहिये; जैसे (क) जो अशैक्ष्य (उत्तम) शीलस्कन्ध से

निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. सद्धो होति, २. हिरिमा होति, ३. ओत्तप्पी होति, ४. आरद्धविरियो होति, ५. उपट्ठितस्सति होति, ६. दसवस्सो वा होति [B.96] अतिरेकदसवस्सो वा—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(७) "अपरेहि पि, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. अधिसीले सीलविपन्नो होति, २. अज्झाचारे आचारविपन्नो होति, ३. अतिदिट्ठिया दिट्ठिविपन्नो होति, ४. अप्पस्सुतो होति, ५. दुप्पञ्ञो होति, ६. ऊनदसवस्सो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(८) "छहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. न अधिसीले सीलविपन्नो होति, २. न अज्झाचारे आचारविपन्नो होति, ३. न अतिदिट्ठिया दिट्ठिविपन्नो होति, ४. बहुस्सुतो होति, ५. पञ्ञवा होति, ६. दसवस्सो वा होति अतिरेकदसवस्सो वा—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(९) "अपरेहि पि, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. न पटिबलो होति अन्तेवासिं वा सद्धिविहारिं वा गिलानं उपट्ठातुं वा उपट्ठापेतुं वा, २. उप्पन्नं अनभिरतिं वूपकासेतुं वा वूपकासापेतुं वा, ३. उप्पन्नं कुक्कुच्चं धम्मतो विनोदेतुं; ४. आपत्तिं न जानाति, ५. आपत्तिया वुट्ठानं न जानाति, ६. ऊनदसवस्सो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(१०) "छहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. पटिबलो होति अन्तेवासिं वा सद्धिविहारिं वा गिलानं उपट्ठातुं वा उपट्ठापेतुं वा, २. उप्पन्नं अनभिरतिं वूपकासेतुं वा वूपकासापेतुं वा, ३. उप्पन्नं कुक्कुच्चं धम्मतो विनोदेतुं; ४. आपत्तिं जानाति, ५. आपत्तिया वुट्ठानं जानाति, ६. दसवस्सो वा होति अतिरेकदसवस्सो वा—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन [B.97] भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(११) "अपरेहि पि, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उप- [R.68] सम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. न पटिबलो होति अन्तेवासिं वा सद्धिविहारिं वा अभिसमाचारिकाय सिक्खाय सिक्खापेतुं, २. आदिब्रह्मचरियकाय सिक्खाय विनेतुं, ३. अभिधम्मे विनेतुं, ४. अभिविनये विनेतुं, ५. उप्पन्नं दिट्ठिगतं धम्मतो विवेचेतुं, ६. ऊनदस्सवस्सो हाति—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन [N.73] भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

युक्त न हो; (ख) जो अशैक्ष्य समाधिस्कन्ध से युक्त न हो; (ग) जो अशैक्ष्य प्रज्ञास्कन्ध से युक्त न हो;

(१२) "छहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। पटिबलो होति अन्तेवासिं वा सद्धिविहारिं वा अभिसमाचारिकाय सिक्खाय सिक्खापेतुं....पे०.... उप्पन्नं दिट्ठिगतं धम्मतो विवेचेतुं, दसवस्सो वा होति अतिरेकदसवस्सो वा—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(१३) "अपरेहि पि, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. आपत्तिं न जानाति, २. अनापत्तिं न जानाति, ३. लहुकं आपत्तिं न जानाति, ४. गरुकं आपत्तिं न जानाति, ५. उभयानि खो पनस्स पातिमोक्खानि वित्थारेन न स्वागतानि होन्ति न सुविभत्तानि न सुप्पवत्तानि न सुविनिच्छितानि सुत्तसो अनुब्यञ्जनसो, ६. ऊनदसवस्सो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न उपसम्पादेतब्बं, न निस्सयो, दातब्बो, न सामणेरो उपट्ठापेतब्बो।

(१४) "छहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो [B.98] दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। १. आपत्तिं जानाति, २. अनापत्तिं जानाति, ३. लहुकं आपत्तिं जानाति, ४. गरुकं आपत्तिं जानाति, ५. उभयानि खो पनस्स पातिमोक्खानि वित्थारेन स्वागतानि होन्ति सुविभत्तानि सुप्पवत्तीनि सुविनिच्छितानि सुत्तसो अनुब्यञ्जनसो, ६. दसवस्सो वा होति अतिरेकदसवस्सो वा—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं, निस्सयो दातब्बो, सामणेरो उपट्ठापेतब्बो" ति॥

उपसम्पादेतब्बछक्कचुद्दसवारं निट्ठितं॥

३०. अञ्ञतित्थियपुब्बकथा

[R.69] ८७. तेन खो पन समयेन यो सो अञ्ञतित्थियपुब्बो उपज्झायेन सहधम्मिकं वुच्चमानो उपज्झायस्स वादं आरोपेत्वा तं येव तित्थायतनं सङ्कमि। सो पुन पच्चागन्त्वा भिक्खू उपसम्पदं याचि। भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**यो सो, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो उपज्झायेन सहधम्मिकं वुच्चमानो उपज्झायस्स वादं आरोपेत्वा तं येव तित्थायतनं**

(घ) जो अशैक्ष्य विमुक्तिस्कन्ध से युक्त न हो; (ङ) जो अशैक्ष्य विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्ध से युक्त न हो; एवं (च) जिसको भिक्षु बने हुए दश वर्ष से कम समय हुआ हो। भिक्षुओ! इन छह अङ्गों से युक्त भिक्षु को न किसी को उपसम्पदा करानी चाहिये, न किसी को निःश्रय देना चाहिये; न अपने साथ श्रामणेर ही रखना चाहिये।....पूर्ववत्.....। **[आगे के सभी षट्कों को भी पीछे पञ्चकों (२–१४) में कही गयी पाँच बातों में 'दश वर्ष से कम का हो' या 'न हो'—यह छठी बात जोड़कर सभी षट्क बना लेने चाहिये।]**

उपसम्पदाकरणीयषट्कचतुर्दशवार समाप्त।।

३०. अन्यतीर्थिकपूर्वकथा

८७. उस समय कोई भिक्षु, जो पहले कभी अन्य सम्प्रदायों में दीक्षित था, अपने उपाध्याय से धर्मचर्चा में विवाद कर पूर्व सम्प्रदाय (तीर्थायतन) में ही लौट गया। वहाँ (उस सम्प्रदाय) से लौटकर इस धर्मविनय में पुनः उपसम्पदा माँगने लगा। भिक्षुओं ने भगवान् से यह बात कही। (भगवान् ने

सङ्कन्तो, सो आगतो न उपसम्पादेतब्बो। यो, भिक्खवे, अञ्ञो पि अञ्ञतित्थियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खति पब्बज्जं, आकङ्खति उपसम्पदं, तस्स चत्तारो मासे परिवासो दातब्बो।

एवं च पन, भिक्खवे, दातब्बो—"पठमं केसमस्सुं ओहारापेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादापेत्वा एकंसं उत्तरासङ्गं कारापेत्वा भिक्खूनं पादे वन्दापेत्वा उक्कुटिकं निसीदापेत्वा अञ्जलिं पग्गण्हापेत्वा एवं वदेही ति वत्तब्बो—'बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं [N.74] गच्छामि, सङ्घं सरणं गच्छामि; दुतियं पि बुद्धं सरणं गच्छामि, दुतियं पि धम्मं सरणं गच्छामि, दुतियं पि सङ्घं सरणं गच्छामि; ततियं पि बुद्धं सरणं गच्छामि, ततियं पि धम्मं सरणं गच्छामि, ततियं पि सङ्घं सरणं गच्छामी" ति।

"तेन, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बेन सङ्घं उपसङ्कमित्वा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा भिक्खूनं पादे वन्दित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा एवमस्स वचनीयो—"अहं, भन्ते, इत्थन्नामो अञ्ञतित्थियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खामि उपसम्पदं। सोहं, भन्ते, सङ्घं चत्तारो मासे परिवासं याचामी" ति। दुतियं पि याचितब्बो। [B.99] ततियं पि याचितब्बो। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

'सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं इत्थन्नामो अञ्ञतित्थियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खति उपसम्पदं। सो सङ्घं चत्तारो मासे परिवासं याचति। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं सङ्घो इत्थन्नामस्स अञ्ञतित्थियपुब्बस्स चत्तारो मासे परिवासं ददेय्य। एसा ञत्ति।

कहा–) "**भिक्षुओ! पहले किसी अन्य सम्प्रदाय में दीक्षित हुआ जो भिक्षु इस धर्मविनय में दीक्षित होकर अपने उपाध्याय से धार्मिक चर्चा में विवाद कर अपने पूर्व सम्प्रदाय में चला जाय और कुछ समय बाद इस धर्मविनय में आने के लिये पुनः उपसम्पदा माँगे तो उसे उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। भिक्षुओ! जो कोई अन्य भी, जो पहले दूसरे सम्प्रदाय में रह चुका हो वह, यदि इस धर्मविनय में प्रव्रज्या–उपसम्पदा माँगे तो उसे तत्काल प्रव्रज्या–उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये, अपितु उसे चार मास का परिवास (प्रतीक्षाकाल) देना चाहिये।**

वह 'परिवास' इस तरह देना चाहिये–'पहले बाल–दाढ़ी मुँड़वाकर, काषाय वस्त्र पहनाकर, एक कन्धे पर उत्तरासङ्ग कराकर, भिक्षुओं के चरणों में प्रणाम कराकर, ऊकड़ूँ बिठाकर, हाथ जुड़वाकर 'यों बोलो'–कहकर उससे कहलवाना चाहिये–'मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ, मैं धर्म की शरण में जाता हूँ, मैं सङ्घ की शरण में जाता हूँ। दूसरी बार भी....तीसरी बार भी मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ, तीसरी बार भी मैं धर्म की शरण में जाता हूँ, तीसरी बार भी मैं सङ्घ की शरण में जाता हूँ।'

याचना–"भिक्षुओ! उस इतरसम्प्रदायदीक्षित को सङ्घ के सम्मुख जाकर, एक कन्धे पर उत्तरासङ्ग कर, भिक्षुओं के चरणों में प्रणाम कर, उकड़ूँ बैठकर, हाथ जोड़कर यों कहना चाहिये–'भन्ते! इस नाम वाला मैं पहले इतर सम्प्रदाय में दीक्षित था, अब इस धर्मविनय में उपसम्पदा चाहता हूँ। अतः मैं पूज्य सङ्घ से चार मास का परिवास माँगता हूँ।' दूसरी बार भी....तीसरी बार भी इसी तरह माँगना चाहिये।

ज्ञप्ति– तब किसी कुशल एवं योग्य भिक्षु द्वारा सङ्घ को बताना चाहिये–'भन्ते! सङ्घ मेरी बात सुने। यह इस नाम का (प्रत्याशी) जो पहले किसी अन्य सम्प्रदाय में दीक्षित था अब इस धर्मविनय में उपसम्पदा माँग रहा है। वह सङ्घ से (इस कार्य के सम्पादन के लिये) चार मास का परिवास चाहता है। यदि सङ्घ चार बातों से उचित समझे तो सङ्घ इस अन्यतीर्थकपूर्व को चार मास का परिवास प्रदान करे।' यह ज्ञप्ति है।

'सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं इत्थन्नामो अञ्ञतित्थियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खति उपसम्पदं। सो सङ्घं चत्तारो मासे परिवासं याचति। सङ्घो इत्थन्नामस्स अञ्ञतित्थियपुब्बस्स चत्तारो मासे परिवासं देति। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स अञ्ञतित्थियपुब्बस्स चत्तारो मासे परिवासस्स दानं, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

[R.70] 'दिन्नो सङ्घेन इत्थन्नामस्स अञ्ञतित्थियपुब्बस्स चत्तारो मासे परिवासो। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी' ति।

८८. ''एवं खो, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो आराधको होति, एवं अनाराधको।

कथं च, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो अनाराधको? इध, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो अतिकालेन गामं पविसति, अतिदिवा पटिक्कमति। एवं पि, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो अनाराधको होति। (१)

'पुन च परं, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो वेसियागोचरो वा होति, विधवागोचरो वा होति, थुल्लकुमारिकागोचरो वा होति, पण्डकगोचरो वा होति, भिक्खुनीगोचरो वा होति। एवं पि, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो अनाराधको होति। (२)

''पुन च परं, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो यानि तानि सब्रह्मचारीनं उच्चावचानि करणीयानि, तत्थ न दक्खो होति, न अनलसो, न तत्रुपायाय वीमंसाय समन्नागतो, न अलं कातुं, अलं संविधातुं। एवं पि, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो अनाराधको होति। (३)

''पुन च परं, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो न तिब्बच्छन्दो होति उद्देसे, [B.100] परिपुच्छाय, अधिसीले, अधिचित्ते, अधिपञ्ञाय। एवं पि, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो अनाराधको होति। (४)

अनुश्रावण– 'सङ्घ मेरी बात सुने। सङ्घ इस नाम वाले पहले इतर सम्प्रदाय में रहे इस पुरुष को चार मास का परिवास देता है। जिस आयुष्मान् को इस नाम वाले पहले इतर सम्प्रदाय में रहे इस पुरुष को चार मास का परिवास दिया जाना स्वीकार हो, वह चुप रहे। जिसे स्वीकार न हो वह बोले।' दूसरी बार भी....। तीसरी बार भी.....।

धारणा– सङ्घ ने इस नाम वाले, पहले इतर सम्प्रदाय में रहे इस पुरुष को चार मास का परिवास दे दिया। सङ्घ को स्वीकार है अत: चुप है–ऐसी मेरी धारणा है।

८८. भिक्षुओ! इस प्रकार से यह अन्य सम्प्रदाय में रहा पुरुष यों साध्य (आराधक) होता है, और यों असाध्य (अनाराधक)।

कैसे भिक्षुओ! वह पहले इतर सम्प्रदायदीक्षित असाध्य (अनाराधक) कहलाता है? जब ऐसा पुरुष ग्राम में असमय में प्रवेश करे या असमय में ग्राम से लौटे। यों वह पुरुष असाध्य होता है। (१)

फिर यदि वह... पुरुष वेश्यागामी हो या (व्यभिचारहेतु) विधवाओं से, बड़ी आयु की कुमारियों से, हिंजड़ों (नपुंसकों) से या चरित्रहीन भिक्षुणियों से सम्पर्क रखता हो तो वह असाध्य होता है। (२)

फिर यदि वह....पुरुष साथियों सब्रह्मचारियों के छोटे-बड़े कार्यों में सहायक होने का सामर्थ्य नहीं रखता, आलस्य करता है, उनकी कार्यपूर्ति का उपाय नहीं सोचता, उन्हें पूरा करने की तो बात ही क्या! ऐसा व्यक्ति भी असाध्य होता है। (३)

फिर वह अन्यतीर्थिकपूर्व पुरुष शील, समाधि एवं प्रज्ञा के विषय में तीव्र इच्छुक न होकर न

"पुन च परं, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो यस्स तित्थायतना सङ्कन्तो होति, तस्स सत्थुनो तस्स दिट्ठिया तस्स खन्तिया तस्स रुचिया तस्स आदायस्स अवण्णे भञ्ञमाने कुपितो होति अनत्तमनो अनभिरद्धो, बुद्धस्स वा धम्मस्स वा सङ्घस्स वा अवण्णे भञ्ञमाने अत्तमनो होति उदग्गो अभिरद्धो। यस्स वा पन तित्थायतना सङ्कन्तो होति, तस्स सत्थुनो तस्स दिट्ठिया तस्स खन्तिया तस्स रुचिया तस्स आदायस्स वण्णे भञ्ञमाने अत्तमनो होति उदग्गो अभिरद्धो, बुद्धस्स वा धम्मस्स वा सङ्घस्स वा वण्णे भञ्ञमाने कुपितो होति अनत्तमनो अनभिरद्धो। इदं, भिक्खवे, सङ्घातनिकं अञ्ञतित्थियपुब्बस्स अनाराधनीयस्मिं। एवं पि खो, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो अनाराधको होति। (५)

एवं अनाराधको खो, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो आगतो न उपसम्पादेतब्बो। (क)

"कथं च, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो आराधको होति? इध, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो नातिकालेन गामं पविसति नातिदिवा पटिक्कमति। एवं पि, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो आराधको हाति। (१)

"पुन च परं, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो न वेसियागोचरो होति, न विधवागोचरो होति, न थुल्लकुमारिकागोचरो होति, न पण्डकगोचरो होति, न भिक्खुनीगोचरो होति। एवं पि, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो आराधको होति। (२) [R.71]

"पुन च परं, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो यानि तानि सब्रह्मचारीनं उच्चावचानि करणीयानि, तत्थ दक्खो होति, अनलसो, तत्रुपायाय वीमंसाय समन्नागतो, अलं कातुं, अलं संविधातुं। एवं पि, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो आराधको होति। (३)

तो शास्त्रीय अध्ययन करता है न उपाध्याय तथा आचार्य से मीमांसा ही करता है, ऐसा पुरुष भी असाध्य (धर्म की तरफ न मोड़ा जा सकने योग्य) होता है। (४)

फिर यदि ऐसा पुरुष जिस पूर्व सम्प्रदाय से इस धर्मविनय में आया है, उसके शास्ता द्वारा उस सम्प्रदाय की दृष्टि (मत), रुचि तथा उसके दान के सम्बन्ध में बोले जाने पर कुपित होता है, असन्तुष्ट होता है, अप्रसन्न होता है; बुद्ध धर्म एवं सङ्घ की निन्दा (अप्रशंसा) किये जाने पर सन्तुष्ट प्रसन्न एवं हृष्ट होता है; या फिर किसी प्रकारण में उसके पूर्व सम्प्रदाय की रुचि, दृष्टि एवं दानविधि की प्रशंसा किये जाने पर सन्तुष्ट, हृष्ट तथा प्रसन्न होता है–ऐसा पुरुष भी असाध्य (अनाराधक) समझा जाना चाहिये। (५)

भिक्षुओ! ऐसे क्रियाकलापों वाला वह पुरुष जो पहले अन्य सम्प्रदाय में दीक्षित था, पुनः लौट कर आने पर इस धर्मविनय में उपसम्पदाप्राप्ति का अधिकारी नहीं होता। (क)

और भिक्षुओ! कैसे कोई अन्यतीर्थिक पूर्व साध्य (धर्म की तरफ झुकाया जा सकने योग्य आराधक) होता है?

....न असमय में ग्राम में प्रवेश करता है, न अतिकाल में ग्राम से निकलता है....साध्य होता है। (१)

...न वेश्यागामी, न विधवागामी, न बड़ी आयु की कुमारियों की तरफ देखने वाला...., न चरित्रहीन भिक्षुणियों को कामुक दृष्टि से देखने वाला....साध्य होता है। (२)

...सब्रह्मचारियों के छोटे बड़े काम में सहायक होता है, आलस्यरहित होता है, उनकेकार्य को पूर्ण करने के उपाय सोचता है, यों किसी न किसी तरह उनका कार्य सम्पन्न करता है.. साध्य होता है। (३)

"पुन च परं, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो तिब्बच्छन्दो होति उद्देसे, परिपुच्छाय, अधिसीले, अधिचित्ते, अधिपञ्ञाय। एवं पि, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो आराधको होति। (४)

[B.101] "पुन च परं, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो यस्स तित्थायतना सङ्कन्तो होति, तस्स सत्थुनो तस्स दिट्ठिया तस्स खन्तिया तस्स रुचिया तस्स आदायस्स अवण्णे भञ्ञमाने अत्तमनो होति उदग्गो अभिरद्धो, बुद्धस्स वा धम्मस्स वा सङ्घस्स वा अवण्णे भञ्ञमाने अत्तमनो होति उदग्गो अभिरद्धो। इदं, भिक्खवे, सङ्घातनिकं अञ्ञतित्थियपुब्बस्स आराधनीयस्मिं। एवं खो, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो आराधको होति। (५)

एवं आराधको खो, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो आगतो उपसम्पादेतब्बो। (ख)

[N.76] सचे, भिक्खवे, अञ्ञतित्थियपुब्बो नग्गो आगच्छति, उपज्झायमूलकं चीवरं परियेसितब्बं। सचे अच्छिन्नकेसो आगच्छति, सङ्घो अपलोकेतब्बो भण्डुकम्माय।

ये ते, भिक्खवे, अग्गिका जटिलका, ते आगता उपसम्पादेतब्बा, न तेसं परिवासो दातब्बो। तं किस्स हेतु? कम्मवादिनो एते, भिक्खवे, किरियवादिनो।

सचे, भिक्खवे, जातिया साकियो अञ्ञतित्थियपुब्बो आगच्छति, सो आगतो उपसम्पादेतब्बो, न तस्स परिवासो दातब्बो। इमाहं, भिक्खवे, ञातीनं आवेणिकं परिहारं दम्मी" ति।

अञ्ञतित्थियपुब्बकथा निट्ठिता॥

सत्तमभाणवारो निट्ठितो॥

...शील, शमादि एवं प्रज्ञा के विषय में तीव्र इच्छुक होकर स्वयं शास्त्रीय अध्ययन करता है, तथा उपाध्याय या आचार्य से तद्विषयक मीमांसा करता है। ऐसा पुरुष भी साध्य (धर्म की तरफ मोड़ा जा सकने योग्य) होता है। (४)

.....जिस पूर्वसम्प्रदाय से इस धर्मविनय में आया है, उसके वर्तमान शास्ता द्वारा उसकी दृष्टि, रुचि या दान के विषय में विरुद्ध बोले जाने पर हृष्ट सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होता है; बुद्ध धर्म तथा सङ्घ की अप्रशंसा किये जाने पर, कुपित, असन्तुष्ट एवं अप्रसन्न होता है; या फिर किसी प्रकरण में उसके पूर्व सम्प्रदाय की रुचि, दृष्टि या दान के विषय में प्रशंसा किये जाने पर, कुपित, असन्तुष्ट एवं अप्रसन्न होता है, ऐसा पुरुष इस धर्मविनय का आराधक होता है। (५)

भिक्षुओ! ऐसा अन्यतीर्थिकपूर्व यहाँ आकर यदि इस धर्मविनय में उपसम्पदा माँगे तो उसे धर्म की उपसम्पदा अवश्य देनी चाहिये।। (ख)

उपसम्पदा के लिये विशेष ध्यान देने योग्य पुरुष

(क) यदि, भिक्षुओ! कोई अन्य सम्प्रदाय मे दीक्षित पुरुष नग्न आवे तो (सर्वप्रथम) उसे उपाध्याय का चीवर ओढ़ना चाहिये।

(ख) यदि विना कटे केशों वाला पुरुष आवे तो उस का सर्वप्रथम सङ्घ से पूछकर मुण्डनकर्म कराना चाहिये।

(ग) भिक्षुओ! जो ये अग्निहोत्री, जटाधारी (जटिल=परिव्राजक) हों तो आते ही उनको उपसम्पदा देनी चाहिये, उन्हें परिवास नहीं देना चाहिये; क्योंकि ये कर्म के फल को मानने वाले एवं क्रियावादी हैं।

(घ) भिक्षुओ! यदि शाक्य जाति का कोई अन्यतीर्थिकपूर्व आवे तो उसको भी उपसम्पदा

३१. पञ्चाबाधवत्थु

८९. तेन खो पन समयेन मगधेसु पञ्च आबाधा उस्सन्ना होन्ति—१. कुट्ठं, २. गण्डो, ३. किलासो, ४. सोसो, ५. अपमारो। मनुस्सा पञ्चहि आबाधेहि फुट्ठा जीवकं कोमारभच्चं उपसङ्कमित्वा एवं वदन्ति—"साधु नो, आचरिय, तिकिच्छाही" ति। "अहं ख्वय्या, बहुकिच्चो बहुकरणीयो; राजा च मे मागधो सेनियो बिम्बिसारो उप-[R.72] ट्ठातब्बो, इत्थागारञ्च, बुद्धपमुखो च भिक्खुसङ्घो; नाहं सक्कोमि तिकिच्छितुं" ति। [B.102] "सब्बं सापतेय्यञ्च ते, आचरिय, होतु, मयञ्च ते दासा; साधु, नो आचरिय, तिकिच्छाही" ति! "अहं ख्वय्या, बहुकिच्चो बहुकरणीयो.....पे०....भिक्खुसङ्घो; नाहं सक्कोमि तिकिच्छितुं" ति।

अथ खो तेसं मनुस्सानं एतदहोसि—"इमे खो समणा सक्यपुत्तिया सुखसीला सुखसमाचारा, सुभोजनानि भुञ्जित्वा निवातेसु सयनेसु सयन्ति। यन्नून मयं समणेसु सक्यपुत्तियेसु पब्बजेय्याम। तत्थ भिक्खू चेव उपसङ्कमित्वा पब्बज्जं याचिंसु। ते भिक्खू पब्बाजेसुं, उपसम्पादेसुं। ते भिक्खू चेव उपट्ठहिंसु जीवको च कोमारभच्चो तिकिच्छि। तेन खो पन समयेन भिक्खू बहू गिलाने भिक्खू उपट्ठहन्ता याचनबहुला विञ्ञत्तिबहुला विहरन्ति—'गिलानभत्तं देथ, गिलानुपट्ठाकभत्तं देथ, गिलानभेसज्जं देथा' ति। जीवको पि कोमरभच्चो बहू गिलाने भिक्खू तिकिच्छन्तो अञ्ञतरं राजकिच्चं परिहापेसि।

आते ही करनी चाहिये। यह सुविधा मैं अपनी जातिवालों को परम्परा (बौद्धधर्म की स्थितिपर्यन्त) तक उपहारस्वरूप देता हूँ।।

अन्यतीर्थिकपूर्वकथा समाप्त।।

सप्तम भाणवार समाप्त।।

३१. पञ्च–आबाध (रोग) वस्तु

८९. उस समय मगध देश में पाँच रोगों का प्रसार बहुत अधिक हो गया था; जैसे–१. कुष्ठ, २. गलगण्ड (या फोडा–फुन्सी), ३. किलास (श्वेतकुष्ठ) ४. शोष एवं ५. अपस्मार (मिर्गी)। इन पाँचों रोगों से पीडित बहुत से पुरुष **जीवक** कौमारभृत्य के पास आकर ऐसा कहते थे–"अच्छा हो, आचार्य! यदि आप हमारी चिकित्सा कर दें।" (जीवक वैद्य ने कहा–) "आर्य जन! मैं तो बहुत कार्यव्यस्त हूँ, मुझे राजा.. मागध बिम्बिसार की चिकित्सा करने भी जाना पड़ता है, उसकी रानियों की चिकित्सा भी करनी पड़ती है, साथ ही बुद्धप्रमुख भिक्षुसङ्घ की चिकित्सा के लिये भी जाना पड़ता है।"

"आचार्य! मेरा सब धन में आपको दे दूँगा, मैं (जीवनपर्यन्त) आपका दास रहूँगा। अतः अच्छा हो, आचार्य! कि आप मेरी चिकित्सा करें।" तब कौमारभृत्य ने.. पूर्ववत्....उत्तर दिया।

तब उन मनुष्यों के मन में यह विचार हुआ–"ये शाक्यपुत्रीय श्रमण बहुत सुखपूर्वक जीवन बिताने वाले, सुखपूर्वक अपना सब कार्य करने वाले हैं। ये सुन्दर एवं रुचिकर भोजन कर एकान्त में शय्याओं पर सोते रहते हैं। तो क्यों न हम भी प्रव्रजित होकर इन शाक्यपुत्रीय श्रमणों में मिल जाँय। तब ये भिक्षु भी सेवा करेंगे तथा जीवक कौमारभृत्य भी हमारी चिकित्सा करेगा।" तब वे मनुष्य भिक्षुओं के पास जाकर प्रव्रज्या माँगने लगे। भिक्षुओं ने उनको प्रव्रजित एवं उपसम्पन्न कर लिया। तब पुराने भिक्षुओं ने उनकी सेवा (परिचर्या) की तथा जीवक कौमारभृत्य ने उन लोगों की चिकित्सा करनी प्रारम्भ की। उस समय पुराने भिक्षु नये रोगी भिक्षुओं की सेवा के लिये गृहस्थों से औषधसामग्री

९०. अञ्ञतरो पि पुरिसो पञ्चहि आबाधेहि फुट्ठो जीवकं कोमारभच्चं उपसङ्कमित्वा एतदवोच—"साधु मं, आचरिय, तिकिच्छाही" ति। "अहं ख्वय्य, बहुकिच्चो....पे०... भिक्खुसङ्घो; नाहं सक्कोमि तिकिच्छितुं" ति। "सब्बं सापतेय्यञ्च ते, आचरिय, होतु, अहं च ते दासो; साधु मं, आचरिय, तिकिच्छाही" ति। "अहं ख्वय्य, बहुकिच्चो....पे०....नाहं सक्कोमि तिकिच्छितुं" ति। अथ खो तस्स पुरिसस्स एतदहोसि—"इमे खो समणा सक्यपुत्तिया सुखसीला सुखसमाचारा, सुभोजनानि भुञ्जित्वा निवातेसु सयनेसु सयन्ति। [N.77] यन्नूनाहं समणेसु सक्यपुत्तियेसु पब्बजेय्यं। तत्थ भिक्खू चेव उपट्ठहिस्सन्ति, जीवको च कोमारभच्चो तिकिच्छिस्सति। सोहं अरोगो विब्भमिस्सामी" ति। अथ खो सो पुरिसो [B.103] भिक्खू उपसङ्कमित्वा पब्बज्जं याचि। तं भिक्खू पब्बाजेसुं, उपसम्पादेसुं। तं भिक्खू चेव उपट्ठहिंसु, जीवको च कोमारभच्चो तिकिच्छि। सो अरोगो विब्भमि। अद्दसा [R.73] खो जीवको कोमारभच्चो तं पुरिसं विब्भन्तं, दिस्वान तं पुरिसं एतदवोच—"ननु त्वं, अय्य, भिक्खूसु पब्बजितो अहोसी" ति? "एवं, आचरिया" ति। "किस्स पन त्वं, अय्य, एवरूपं अकासी" ति? अथ खो सो जीवकस्स कोमारभच्चस्स एतमत्थं आरोचेसि। जीवको कोमारभच्चो उज्झायति खिय्यति विपाचेति—"कथं हि नाम भदन्ता पञ्चहि आबाधेहि फुट्ठं पब्बाजेस्सन्ती" ति! अथ खो जीवको कोमारभच्चो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो जीवको कोमारभच्चो भगवन्तं एतदवोच—"साधु, भन्ते, अय्या पञ्चहि आबाधेहि फुट्ठं न पब्बाजेय्युं" ति। अथ खो भगवा जीवकं कोमारभच्चं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो जीवको कोमारभच्चो भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो भगवा

एवं परिचर्या के लिये वस्तुसामग्री माँगने लगे थे। जीवक कौमारभृत्य से भी इन रोगियों की चिकित्सा में व्यस्त रहकर कई बार कितने ही महत्त्वपूर्ण राजकार्य छूट जाते थे।

९०. कोई पुरुष पाँच रोगों मे किसी रोग से आक्रान्त होकर जीवक कौमारभृत्य के पास गया और बोला—....पूर्ववत्....। तब उस पुरुष ने सोचा—....क्यों न मैं इन शाक्यपुत्रीय श्रमणों में प्रव्रजित हो जाऊँ। प्रव्रजित होने पर ये श्रमण सेवा करेंगे तथा जीवन कौमारभृत्य भी मेरा चिकित्सा करेगा। चिकित्सा के बाद स्वस्थ होकर पुनः गृहस्थ हो जाऊँगा।" तब उस पुरुष ने शाक्यपुत्रीय श्रमणों के पास प्रव्रज्या माँगी। उन भिक्षुओं ने उसको प्रव्रज्या, उपसम्पदा दे दी। साथ ही उन भिक्षुओं ने उसकी परिचर्या तथा जीवक कौमारभृत्य ने चिकित्सा भी आरम्भ कर दी। वह स्वस्थ होकर पुनः गृहस्थ हो गया। जीवक कौमारभृत्य ने उसको गृहस्थधर्म स्वीकार करते हुए देख लिया। देखकर जीवक ने उससे पूछा—"अरे तुम तो प्रव्रजित हो गये थे न?" "हाँ, आचार्य!" "फिर तुमने प्रव्रज्या क्यों छोड दी? उस पुरुष ने सच्ची घटना बता दी। यह सुनकर जीवक कौमारभृत्य बहुत व्यग्रचित्त, दु:खी एव उद्विग्न हुए कि "ये भिक्षु इन पाँच रोगों से आक्रान्तों को प्रव्रज्या क्यों देते है!" तब जीवक कौमारभृत्य भगवान् के पास गये। वहाँ जाकर उन्हें प्रणाम—अभिवादन कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे हुए उन्होंने भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! अच्छा हो कि आर्यजन पाँच रोगों से आक्रान्तों को प्रव्रज्या की दीक्षा न दें। तब भगवान् ने जीवक....को धार्मिक कथाओं से समुत्तेजित....किया।

एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, पञ्चहि आबाधेहि फुट्ठो पब्बाजेतब्बो। यो पब्बाजेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

३२. राजभटवत्थु

९१. तेन खो पन समयेन रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स पच्चन्तो कुपितो होति। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो सेनानायके महामत्ते आणापेसि—"गच्छथ, भणे, पच्चन्तं उच्चिनथा" ति। "एवं, देवा", ति खो सेनानायका महामत्ता रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स पच्चस्सोसुं। अथ खो अभिञ्ञातानं अभिञ्ञातानं योधानं एतदहोसि—"मयं खो युद्धाभिनन्दिनो गच्छन्ता पापं च कम्मं करोम, बहुं च अपुञ्ञं पसवाम। केन नु खो मयं उपायेन पापा च विरमेय्याम, कल्याणं च करेय्यामा" ति? अथ खो तेसं योधानं एतदहोसि—"इमे खो समणा सक्यपुत्तिया धम्मचारिनो समचारिनो ब्रह्मचारिनो सच्चवादिनो सीलवन्तो कल्याणधम्मा। सचे खो मयं समणेसु सक्यपुत्तियेसु [B.104] पब्बजेय्याम, एवं मयं पापा च विरमेय्याम कल्याणं च करेय्यामा" ति। अथ खो ते योधा भिक्खू उपसङ्कमित्वा पब्बज्जं याचिंसु। ते भिक्खू पब्बाजेसुं, उपसम्पादेसुं। सेनानायका महामत्ता राजभटे पुच्छिंसु—"किं नु खो, भणे, इत्थन्नामो च इत्थन्नामो च योधा न [R.74] दिस्सती" ति? "इत्थन्नामो च इत्थन्नामो च, सामि, योधा भिक्खूसु पब्बजितो" ति। सेनानायका महामत्ता उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम समणा [N.78] सक्यपुत्तिया राजभटं पब्बाजेस्सन्ती" ति। सेनानायका महामत्ता रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स एतमत्थं आरोचेसुं। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो वोहारिके

तब वह आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम प्रदशिणा कर पुनः अपने आवास को लौट गया। तब भगवान् ने इस प्रकरण में, इस प्रकरण में भिक्षुओं को एक त्र कर आदेश किया—**भिक्षुओ! उक्त कुष्ठ आदि पाँच रोगों से आक्रान्त पुरुष को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। जो देगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा॥**

३२. राजभटवस्तु

९१. उस समय मगधराज श्रेणिय बिम्बिसार के अधीनस्थ राज्य का सीमाप्रदेश विद्रोहग्रस्त हो गया था। तब राजा....बिम्बिसार ने अपने सेनानायकों को आज्ञा दी—"जाओ! आप लोग सीमान्त देश का विद्रोह कुचल दो।" "अच्छा देव!" कहकर वे सेनानायक महामात्य विद्रोह कुचलने की तय्यारी में लगे। तब उस सेना के प्रख्यात योद्धाओं के मन में यह विचार आया—"हम युद्ध का अभिनन्दन करके एक तरह से पापकर्म की तरफ ही बढ़ रहे हैं, इससे हमें बहुत अपुण्य ही मिलेगा! किस उपाय से पापकर्म से विरत हों और अपुण्य से बचें? तथा कल्याण की तरफ अग्रसर हों?" तब योद्धाओं को यह विवेक हुआ—"ये शाक्यपुत्रीय श्रमण धर्म का उत्तम आचरण करने वाले तथा सतत धर्मसाधनारत रहते हैं, सत्यवादी, शीलवान् एवं कल्याणकर्मों के सम्पादक हैं। यदि हम भी इन शाक्यपुत्रीय श्रमणों में प्रव्रजित हो जाँय तो हम भी पापों से विरत रहेंगे और कल्याणधर्मों के सम्पादक बन जाँयगें।" तब वे योद्धा भिक्षुओं के पास जाकर प्रव्रज्या माँगने लगे। भिक्षुओं ने उनको प्रव्रज्या, उपसम्पदा दे दी। उधर सेनानायक महामात्यों ने अवशिष्ट उन राजपुरुषो से पूछा—"अमुक अमुक नाम वाले योद्धा दिखायी नहीं दे रहे हैं?" "स्वामिन्! इस इस नाम वाले योद्धा भिक्षुओं में प्रव्रजित हो गये।" (यह सुनकर) सेनानायक महामात्य बहुत व्यग्र, उद्विग्न एवं दुःखी हुए कि "कैसे ये शाक्यपुत्रीय श्रमण हमारे योद्धाओ का प्रव्रज्या के रहे हैं!" उन सेनानायक महामात्यों ने राजा....बिम्बिसार को

महामत्ते पुच्छि—"यो, भणे, राजभटं पब्बाजेति, किं सो पसवती" ति? "उपज्झायस्स, देव, सीसं छेत्तब्बं, अनुस्सावकस्स जिव्हा उद्धरितब्बा, गणस्स उपड्ढफासुका भञ्जितब्बा" ति।

अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो भगवन्तं एतदवोच—"सन्ति, भन्ते, राजानो अस्सद्धा अप्पसन्ना। ते अप्पमत्तकेन पि भिक्खू विहेठेय्युं। साधु, भन्ते, अय्या राजभटं न पब्बाजेय्युं" ति। अथ खो भगवा राजानं मागधं सेनियं बिम्बिसारं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, राजभटो पब्बाजेतब्बो। यो पब्बाजेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

३३. अङ्गुलिमालचोरवत्थु

९२. तेन खो पन समयेन चोरो अङ्गुलिमालो भिक्खूसु पब्बजितो होति। मनुस्सा पस्सित्वा उब्बिज्जन्ति पि, उत्तसन्ति पि, पलायन्ति पि, अञ्ञेन पि गच्छन्ति, अञ्ञेन पि मुखं करोन्ति, द्वारं पि थकेन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम [B.105] समणा सक्यपुत्तिया धजबन्धं चोरं पब्बाजेस्सन्ती" ति! अस्सोसुं खो भिक्खू तेसं मनुस्सानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं

जाकर यह बात कही। तब राजा....बिम्बिसार ने अपने न्यायाधीशों से यह निर्णय माँगा—"मान्यवर! जो योद्धाओं को प्रव्रजित करे वह किस दण्ड का भागी होता है?" (न्यायाधीशों ने उत्तर दिया—) "देव! उपाध्याय (प्रव्रज्या दीक्षा देने वाले) का शिर काट देना चाहिये। सङ्घ से अनुश्रावण करने वाले की जीभ काट लेनी चाहिये। और सङ्घ की पँसुलियाँ (पार्श्व की हड्डियाँ) तोड़ देनी चाहिये।"

तब राजा....बिम्बिसार जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गये। जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे राजा ने भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! राज्य के कुछ अधिकारी सङ्घ की इस क्रिया के प्रति श्रद्धावान् नहीं है, अपितु वे अप्रसन्न भी हैं। ऐसा न हो, कि इस छोटी सी बात के लिये कोई दण्ड दे बैठें। उचित तो यही होगा, भन्ते! कि आर्य जन सैनिकों (योद्धाओं) को प्रव्रजित न करें।" तब भगवान् ने राजा...बिम्बिसार को धार्मिक कथाओं....पूर्ववत्....प्रदक्षिणा कर पुनः लौट गया। तब भगवान् ने इस प्रकरण तथा प्रसङ्ग में धार्मिक कथा कहते हुए भिक्षुओं को आदेश दिया—"**भिक्षुओ! राजा के सैनिकों को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। जो देगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा।**"

३३. अङ्गुलिमालचौरवस्तु

९२. उस समय अङ्गुलिमाल चौर (डाकू) आकर भिक्षुओं में प्रव्रजित हो गया। मनुष्य उसे देखकर उद्विग्न भी होते थे, भय भी खाते थे, भयभीत होकर भाग भी जाते थे, दूर से ही उसे देखकर दूसरा रास्ता पकड़ लेते थे, या मुँह फेर लेते थे, या घर का दरवाजा बन्द कर लेते थे। यह सब देखकर साधारण जनता उद्विग्न, व्यग्र एवं दुःखित होती थी कि कैसे ये शाक्यपुत्रीय श्रमण ध्वजा उड़ाकर (पहले से स्पष्ट घोषणा कर) चौरी करने वालों को प्रव्रज्या दे डालते हैं! वृद्ध भिक्षुओं ने

आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, धजबन्धो चोरो पब्बाजेतब्बो। यो पब्बाजेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

३४. कारभेदकचोरवत्थु

९३. तेन खो पन समयेन रञ्ञा मागधेन सेनियेन बिम्बिसारेन अनुञ्ञातं [R.75] होति—"ये समणेसु सक्यपुत्तियेसु पब्बजन्ति, न ते लब्भा किञ्चि कातुं; स्वाक्खातो धम्मो, चरन्तु ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया" ति। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो पुरिसो चोरिकं कत्वा काराय बद्धो होति। सो कारं भिन्दित्वा पलायित्वा भिक्खूसु पब्बजितो होति। मनुस्सा पस्सित्वा एवं आहंसु—"अयं सो कारभेदको चोरो। हन्द, नं नेमा" ति। एकच्चे एवं आहंसु—"माय्या, एवं अवचुत्थ। अनुञ्ञातं रञ्ञा मागधेन सेनियेन बिम्बिसारेन—'ये समणेसु सक्यपुत्तियेसु पब्बजन्ति, न ते लब्भा किञ्चि कातुं; स्वाक्खातो धम्मो, चरन्तु ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया" ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"अभयूवरा इमे समणा सक्यपुत्तिया, न यिमे लब्भा किञ्चि कातुं। कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया कारभेदकं चोरं पब्बाजेस्सन्ती" ति! भगवतो एतमत्थं [N.79] आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, कारभेदको चोरो पब्बाजेतब्बो। यो पब्बाजेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा" ति।**

३५. लिखितकचोरवत्थु

९४. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो पुरिसो चोरिकं कत्वा पलायित्वा भिक्खूसु

जनता का यह दुःख, उद्वेग एवं व्यग्रभाव देखा। उन्होंने भगवान् से यह बात कही। (भगवान् ने आदेश दिया–) "**भिक्षुओ! "ध्वजबन्ध चौर को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। जो दे उसे दुष्कृत दोष हो।**"

३४. कारभेदकचौरवस्तु

९३. उस समय राजा....बिम्बिसार ने अपने सम्पूर्ण राज्य में यह घोषणा कर रखी थी–"जो शाक्यपुत्रीय श्रमणों के पास जाकर प्रव्रजित हो जाय उसे राज्य की तरफ से किसी प्रकार का आपराधिक दण्ड नहीं दिया जाय; क्योंकि भगवान् का धर्म स्वाख्यात है, लोग अपने दुःखो का अन्त करने के लिये उसका आचरण करते हुए सुखपूर्वक धर्मसाधना करें।"

उस समय कोई पुरुष चौरी करके कारागार (जेल) में पड़ा था। वह कभी अवसर पाकर, जेल के बन्धन ताड़कर, वहाँ से भाग कर भिक्षुओं में जाकर प्रव्रजित हो गया। राजपुरुषों ने देखकर कहा–"यह जेल तोडकर भागा हुआ चौर है, आओ, इसे ले चलें।" तब दूसरे लोगों ने कहा– "आर्यो! ऐसा न कहो। क्या आप लोग नहीं जानते कि राजा....बिम्बिसार ने यह घोषणा...पूर्ववत्....धर्मसाधना करें।" यह देखकर लोग व्यग्र एवं दुःखी होते थे–"ये शाक्यपुत्रीय श्रमण भय से ऊपर उठकर (निर्भीक होकर) कैसे इन जेल तोड़कर भागने वाले चौरों को भी प्रव्रज्या दे देते हैं।"

भिक्षुओ ने भगवान् से यह बात कहीं। भगवान् ने आदेश दिया–"**भिक्षुओ! जेल तोड़कर भागने वाले को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। जो देगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**

३५. लिखितकचौरवस्तु

९४ उस समय कोई पुरुष चौरी करके, यहाँ से भाग कर भिक्षुओं में जाकर प्रव्रजित हो

पब्बजितो होति। सो च रञ्ञो अन्तेपुरे लिखितो होति—"यत्थ पस्सितब्बो तत्थ हन्तब्बो" ति। मनुस्सा पस्सित्वा एवं आहंसु—"अयं सो लिखितको चोरो। हन्द, नं हनामा" ति। एकच्चे एवं आहंसु—"माय्या, एवं अवचुत्थ। अनुञ्ञातं रञ्ञा....पे०....अन्तकिरियाया" ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"अभयूवरा इमे समणा सक्यपुत्तिया, [B.106] न यिमे लब्भा किञ्चि कातुं। कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया लिखितकं चोरं पब्बाजेस्सन्ती" ति! भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, लिखितको चोरो पब्बाजेतब्बो। यो पब्बाजेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" **ति।**

३६. कसाहतवत्थु

९५. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो पुरिसो कसाहतो कतदण्डकम्मो भिक्खूसु पब्बजितो होति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया कसाहतं कतदण्डकम्मं पब्बाजेस्सन्ती" ति! भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, कसाहतो कतदण्डकम्मो पब्बाजेतब्बो। यो पब्बाजेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" **ति।**

३७. लक्खणाहतवत्थु

[R.76] ९६. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो पुरिसो लक्खणाहतो कतदण्डकम्मो भिक्खूसु पब्बजितो होति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया लक्खणाहतं कतदण्डकम्मं पब्बाजेस्सन्ती" ति! भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे लक्खणाहतो कतदण्डकम्मो पब्बाजेतब्बो। यो पब्बाजेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" **ति।**

गया। उस का नाम राजा के न्यायालय में अङ्कित था—"यह जहाँ देखा जाय वहीं मार डाला जाय।" जब मनुष्यों ने देखा कि यह वही लिखितक चौर है तो उसको मारने का विचार किया। परन्तु कुछ लोगों ने कहा—"आर्यो! ऐसा न करो; क्योंकि राजा....बिम्बिसार ने घोषणा कर रखी है.....पूर्ववत् .। यह देखकर साधारण जनता उद्विग्न....हुई कि कैसे ये श्रमण शाक्यपुत्रीय.....! भिक्षुओं ने भगवान् को यह घटना बतायी। भगवान् ने आदेश दिया—"**भिक्षुओ! राजा द्वारा लिखितक चौर को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। जो देगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा।**

३६. कसाहतवस्तु

९५. उस समय कोई पुरुष, जिसे शासन द्वारा कोडों (=कसा) से पीटे जाने का दण्ड मिल चुका था, भागकर भिक्षुओं मे प्रव्रजित हो गया। यह.... मनुष्य खिन्न एवं उद्विग्न हुए कि कैसे ये शाक्यपुत्रीय श्रमण कोड़ों से पीटे जाने का दण्ड पाये हुए लोगों को भी प्रव्रजित कर लेते हैं!" भगवान् को यह बात कही गयी। भगवान् ने आदेश दिया— "**भिक्षुओ! कोड़ों से पीटे जाने का दण्ड प्राप्त पुरुष को प्रव्रजित नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा।**"

३७. लक्षणाहतवस्तु

९६. उस समय कोई पुरुष राज्य द्वारा अग्नि में तपाये गये लौह से दागा जाने का दण्ड पाकर भी भिक्षुओं में आकर प्रव्रजित हो गया। मनुष्य खिन्न व दु:खी हुए कि कैसे ये शाक्यपुत्रीय श्रमण अग्नि में तपाये गये लौह से दागा जाने का दण्ड प्राप्त पुरुष को भी प्रव्रजित कर लेते हैं? भगवान् को

३८. इणायिकवत्थु

९७. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो पुरिसो इणायिको पलायित्वा भिक्खूसु पब्बजितो होति। धनिया पस्सित्वा एवं आहंसु—"अयं सो अम्हाकं इणायिको। हन्द, नं नेमा" ति। एकच्चे एवं आहंसु—"माय्या, एवं अवचुत्थ। अनुञ्ञातं रञ्ञा मागधेन सेनियेन बिम्बिसारेन—'ये समणेसु सक्यपुत्तियेसु पब्बजन्ति, न ते लब्भा किञ्चि कातुं; स्वाक्खातो धम्मो, चरन्तु ब्रह्मचरियं सम्मा दुक्खस्स अन्तकिरियाया' " ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"अभयूवरा इमे समणा सक्यपुत्तिया। न यिमे लब्भा किञ्चि कातुं। कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया इणायिकं पब्बाजेस्सन्ती" ति! भगवतो एतमत्थं [B.107] आरोचेसुं। "**न भिक्खवे इणायिको पब्बाजेतब्बो। यो पब्बाजेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

३९. दासवत्थु

९८. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो दासो पलायित्वा भिक्खूसु पब्बजितो [N.80] होति। अय्यका पस्सित्वा एवं आहंसु—"अयं सो अम्हाकं दासो। हन्द, नं नेमा" ति। एकच्चे एवं आहंसु—"माय्या, एवं....पे०....अन्तकिरियाया" ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"अभयूवरा इमे समणा सक्यपुत्तिया, न यिमे लब्भा किञ्चि कातुं। कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया दासं पब्बाजेस्सन्ती" ति! भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, दासो पब्बाजेतब्बो। यो पब्बाजेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

४०. कम्मारभण्डुवत्थु

९८. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो कम्मारभण्डु मातापितूहि सद्धिं भण्डित्वा

यह बात बतायी गयी। भगवान् ने आदेश दिया—"**भिक्षुओ! लक्षणाहत पुरुष को प्रव्रजित नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**"

३८. ऋणिपुरुषवस्तु

९७. उस समय कोई पुरुष किसी से ऋण लेकर (उसे न चुका सकने के कारण) भागकर भिक्षुओं में प्रव्रजित हो गया। ऋण देने वाले धनिक पुरुषों ने उसे देखकर कहा—"अरे! यह तो वही पुरुष है जिसने हमसे ऋण लिया था। इसे तो हम पकडकर (न्यायालय में) ले जाँयगें।" तब उनसे दूसरे लोगों ने कहा—"आर्यो! ऐसा न कहो; क्योंकि राजा....बिम्बिसार ने घोषणा कर रखी है....पूर्ववत्....। यह सुनकर वे धनिक पुरुष खिन्न एवं दुःखित चित्त हुए कि कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण ...। भगवान् से यह बात कही गयी। तब भगवान् ने आदेश दिया—"**भिक्षुओ! ऋणग्रस्त पुरुष को प्रव्रजित नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**"

३९. दासवस्तु

९८. उस समय कोई दास (=गुलाम) भागकर भिक्षुओं में प्रव्रजित हो गया। उसके स्वामियों ने जब उसको वहाँ देखा तो वे बहुत खिन्न....हुए कि कैसे ये शाक्यपुत्रीय श्रमण.... । भगवान् को यह बात बतायी गयी। भगवान् ने आदेश दिया -"**भिक्षुओ! दास को प्रव्रजित नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा।**"

आरामं गन्त्वा भिक्खूसु पब्बजितो होति। अथ खो तस्स कम्मारभण्डुस्स मातापितरो तं कम्मारभण्डुं विचिनन्ता आरामं गन्त्वा भिक्खू पुच्छिंसु—"अपि, भन्ते, एवरूपं दारकं पस्सेय्याथा" ति? भिक्खू अजानन्ता येव आहंसु—"न जानामा" ति, अपस्सन्ता येव [R.77] आहंसु—"न पस्सामा" ति। अथ खो तस्स कम्मारभण्डुस्स मातापितरो तं कम्मारभण्डुं विचिनन्ता भिक्खूसु पब्बजितं दिस्वा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"अलज्जिनो इमे समणा सक्यपुत्तिया, दुस्सीला मुसावादिनो। जानन्ता येव आहंसु—'न जानामा' ति, पस्सन्ता येव आहंसु—'न पस्सामा' ति। अयं दारको भिक्खूसु पब्बजितो" ति। अस्सोसुं खो भिक्खू तस्स कम्मारभण्डुस्स मातापितून्नं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, सङ्घं अपलोकेतुं भण्डुकम्माया**" ति।

४१. उपालिदारकवत्थु

[B.108] १००. तेन खो पन समयेन राजगहे सत्तरसवग्गिया दारका सहायका होन्ति। उपालि दारको तेसं पामोक्खो होति। अथ खो उपालिस्स मातापितून्नं एतदहोसि—"केन नु खो उपायेन उपालि अम्हाकं अच्चयेन सुखं च जीवेय्य, न च किलमेय्या" ति? अथ खो उपालिस्स मातापितून्नं एतदहोसि—"सचे खो उपालि लेखं सिक्खेय्य, एवं खो उपालि अम्हाकं अच्चयेन सुखं च जीवेय्य, न च किलमेय्या" ति। अथ खो उपालिस्स मातापितून्नं

---

४०. कर्म्मारभण्डुवस्तु

९९. उस समय कोई कर्मार (सुवर्णकार) पुत्र अपने माता पिता से घर में कलह कर, शिर मुडाकर, भिक्षुओं में आकर प्रव्रजित हो गया। तब उस शिर मुँड़े लड़के को खोजते हुए उस के माता पिता भिक्षुविहार में आकर भिक्षुओं से पूछने लगे—"भन्ते! क्या आप लोगों ने ऐसी ऐसी आकृति वाले किसी लड़के को देखा है?" भिक्षुओं ने, न जानने के कारण, कह दिया—"नहीं जानते", न देखने के कारण कह दिया—"नहीं देखा।" फिर भी उन माता पिता को विश्वास नहीं हुआ। वे उसे विहार में और अधिक सूक्ष्मता से खोजते ही रहे। खोजते खोजते उन को वह लडका मिल गया। तब वे उसे भिक्षुओं में प्रव्रजित हुआ देखकर खिन्न एव उद्विग्न होकर भिक्षुओं को धिक्कारते हुए कहने लगे—"ये शाक्यपुत्रीय श्रमण कितने निर्लज्ज, असत्यवादी एवं दुःशील है कि इन्होंने जानते हुए भी कह दिया—'हम नही जानते; देखते हुए भी कह दिया—'हमने नहीं देखा'; जबकि यह लडका हमें इन्हीं भिक्षुओं में प्रव्रजित हुआ मिला!" वृद्ध भिक्षुओं ने उस दम्पती की खिन्नता एवं व्यग्रता देखी। उन्होंने जाकर भगवान् से यह घटना बतायी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! आज्ञा देता हूँ कि मुण्डनकर्म से पूर्व सङ्घ से इसकी अनुमति ली जाय।**"

४१. उपालिदारकवस्तु

१००. उस समय राजगृह में सत्तरह पुरुषों वाले समूह (सप्तदशवर्गीय) के लड़के परस्पर मित्र बने हुए रहते थे। **उपालि** नामक लडका उनका प्रधान था। उस उपालि के माता पिता ने सोचा—"किस उपाय से हमारा यह लड़का, हमारे मरने के बाद भी, सुख से रह पायगा? दुःख न पायगा?" तब उनके ध्यान में यह बात आयी—"यदि यह उपालि लिखना (लेखा) सीखेगा तो इसकी अङ्गुलियाँ दूखेंगीं। हाँ, यदि यह गणना सीख ले तो इसे यह कष्ट न होगा।" फिर उन्हें ध्यान में आया—"यदि

एतदहोसि—"सचे खो उपालि लेखं सिक्खिस्सति, अङ्गुलियो दुक्खा भविस्सन्ति। सचे खो उपालि गणनं सिक्खेय्य, एवं खो उपालि अम्हाकं अच्चयेन सुखं च जीवेय्य, न च किलमेय्या" ति। अथ खो उपालिस्स मातापितुन्नं एतदहोसि—"सचे खो उपालि गणनं सिक्खिस्सति, उरस्स दुक्खो भविस्सति। सचे खो उपालि रूपं सिक्खेय्य, एवं खो उपालि अम्हाकं अच्चयेन सुखं च जीवेय्य, न च किलमेय्या" ति। अथ खो उपालिस्स मातापितुन्नं एतदहोसि—"सचे खो उपालि रूपं सिक्खिस्सति, अक्खीनि दुक्खानि भविस्सन्ति। इमे खो समणा सक्यपुत्तिया सुखसीला सुखसमाचारा, सुभोजनानि भुञ्जित्वा निवातेसु [N.81] सयनेसु सयन्ति। सचे खो उपालि समणेसु सक्यपुत्तियेसु पब्बजेय्य, एवं खो उपालि अम्हाकं अच्चयेन सुखं च जीवेय्य, न च किलमेय्या" ति।

अस्सोसि खो उपालि दारको मातापितुन्नं इमं कथासल्लापं। अथ खो उपालि दारको येन ते दारका तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा ते दारके एतदवोच—"एथ मयं, अय्या, समणेसु सक्यपुत्तियेसु पब्बजिस्सामा" ति। "सचे खो त्वं, अय्य, पब्बजिस्ससि, एवं मयं पि पब्बजिस्सामा" ति। अथ खो ते दारका एकमेकस्स मातापितरो उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं—"अनुजानाथ मं अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जाया" ति।

अथ खो तेसं दारकानं मातपितरो—"सब्बे पिमे दारका समानच्छन्दा [R.78] कल्याणाधिप्पाया" ति—अनुजानिंसु। ते भिक्खू उपसङ्कमित्वा पब्बज्जं याचिंसु। ते भिक्खू पब्बाजेसुं, उपसम्पादेसुं। ते रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय रोदन्ति—"यागुं देथ, भत्तं देथ, खादनीयं देथा" ति। भिक्खू एवं आहंसु—"आगमेथ, आवुसो, याव रत्ति विभायति। सचे यागु भविस्सति पिविस्सथ, सचे भत्तं भविस्सति भुञ्जिस्सथ, सचे खादनीयं भविस्सति खादिस्सथ; नो चे भविस्सति यागु वा भत्तं वा खादनीयं वा, पिण्डाय चरित्वा [B.109]

यह गणना सीखेगा तो यह कार्य करते करते निरन्तर बैठे रहने के कारण जाँघें दूखने लगेगी। अतः इसे चित्रकला सिखानी चाहिये।" तब उन्हें यह बात ध्यान में आयी कि "यदि यह चित्रकला सीखेगा तो इसकी आँखें दूखेगी। हाँ, ये शाक्यपुत्रीय श्रमण विना कुछ किये धरे सुख से जीवन–यापन कर रहे हैं। ये प्रतिदिन उत्तम भोजन कर अच्छे आवासों मे रहते तथा अच्छी शय्याओ पर सोते हैं। तो, क्यों न उपालि भी इन शाक्यपुत्रीय श्रमणों में जाकर भिक्षु बन जाय। इस प्रकार यह, हमारे मरने के बाद भी सुखी रहेगा, कोई दुःख नहीं पायगा।"

उपालि दारक ने जब अपने माता–पिता का यह विचार (बातचीत) सुना तो वह अपने साथी लड़कों के पास गया और बोला—"आर्य! आओ हम भिक्षुओं से प्रवज्या ले लें।" लड़कों ने कहा "आर्य यदि तुम प्रव्रज्या लोगे तब तो हम भी लेंगे।" तब वे सभी लड़के अपने अपने माता पिता के पास जाकर यों बोले—"आप हमें घर से बेघर होकर प्रव्रजित होने की अनुमति दीजिये।"

तब उन लड़कों के माता पिताओं ने सोचा—"ये सभी लड़के एक ही विचार के हैं, इनका यह चिन्तन भी कल्याणकर है", अतः उन्होंने अपने अपने लड़कों को पव्रज्या की अनुमति दे दी। वे भी भिक्षुओं के पास जाकर प्रव्रजित हो गये। वे लड़के रात बीतते न बीतते, बहुत प्रातः ही उठकर रो रोकर यह कहने लगे—"भूख लगी है, हमें खिचडी दो, भात दो, भोजन दो।" भिक्षु उन्हे आश्वासन देने लगे—"आयुष्मानो! कुछ समय प्रतीक्षा करो। अभी तो रात्रिकाल है, प्रातःकाल होने पर यदि खिचडी होगी तो तुम्हे खिचड़ी पिला देंगे, भात होगा तो भात खिला देंगे। भोजन होगा तो भोजन करा

भुञ्जिस्सथा'' ति। एवं पि खो ते भिक्खू भिक्खूहि वुच्चमाना रोदन्तेव—''यागुं देथ, भत्तं देथ, खादनीयं देथा'' ति; सेनासनं ऊहदन्ति पि उम्मिहन्ति पि।

अस्सोसि खो भगवा रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय दारकसद्दं। सुत्वान आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—''किं नु खो सो, आनन्द, दारकस्स सद्दो'' ति? अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवतो एतमत्थं आरोचेसि। ''सच्चं किर, आनन्द! भिक्खू जानं ऊनवीसतिवस्सं पुग्गलं उपसम्पादेन्ती'' ति? ''सच्चं, भगवा'' ति। विगरहि बुद्धो भगवा—''कथं हि नाम ते, भिक्खवे, मोघपुरिसा जानं ऊनवीसतिवस्सं पुग्गलं उपसम्पादेस्सन्ति। ऊनवीसतिवस्सो, भिक्खवे, पुग्गलो अक्खमो होति सीतस्स उण्हस्स जिघच्छाय पिपासाय, डंसमकसवातातपसिरिंसपसम्फस्सानं दुरुत्तानं दुरागतानं वचनपथानं उप्पन्नानं सारीरिकानं वेदनानं दुक्खानं तिब्बानं खरानं कटुकानं असातानं अमनापानं पाणहरानं अनधिवासकजातिको होति। वीसतिवस्सो व खो, भिक्खवे, पुग्गलो खमो होति सीतस्स उण्हस्स....पे०....पाणहरानं अधिवासकजातिको होति। नेतं, भिक्खवे, अप्पसन्नानं वा पसादाय, पसन्नानं वा भिय्योभावाय....पे०....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि— ''**न, भिक्खवे जानं ऊनवीसतिवस्सो पुग्गलो उपसम्पादेतब्बो।** यो उपसम्पादेय्य, यथाधम्मो कारेतब्बो'' ति।

४२. अहिवातकरोगवत्थु

१०१. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरं कुलं अहिवातकरोगेन कालङ्कतं होति। [N.82] तस्स पितापुत्तका सेसा होन्ति। ते भिक्खूसु पब्बजित्वा एकतो व पिण्डाय चरन्ति।

देंगे। यदि वह भी न हुआ तो भिक्षा में जो कुछ मिलेगा उसे तुम्हें खाने के लिये दे देंगे।'' भिक्षुओं के इस आश्वासन से भी वे लडके चुप नहीं हुए, रोते ही रहे। खाने के लिये कुछ न कुछ माँगते ही रहे।

भगवान् ने प्रात. उठकर उन लडको का रोना चिल्लाना सुना। सुनकर आयुष्मान् आनन्द को बुलाकर पूछा—''आनन्द! यह लडको का रोना चिल्लाना कैसा है?'' तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को सम्पूर्ण घटना सुनायी। (तब भगवान् ने पूछा—) ''क्या सचमुच आनन्द! भिक्षु लोग जानते बुझते हुए बीस वर्ष से कम आयुवालो को प्रव्रज्या दे रहे हैं?'' ''हाँ, भगवन्!'' भगवान् ने भिक्षुओं को धिक्कारते हुए कहा—''कैसे वे मूर्ख भिक्षु जानते हुए बीस वर्ष से कम आयु वालो को उपसम्पदा देंगे। भिक्षुओ! बीस वर्ष से कम आयु का पुरुष तो सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास, मच्छर–मक्खी, कीडे–मकोड़ों के दश को सहन करने मे, विरोधियो के कठोर वचनों को सुनने में, दु:खमय तीव्र रूक्ष कटु प्रतिकूल अप्रिय एव प्राणहर वेदनाओं (पीडाओ) को सहन करने मे असमर्थ होते है। इसके विपरीत बीस वर्ष या उससे अधिक की आयु के पुरुष सर्दी–गर्मी ..वेदनाओ को सहन करने मे समर्थ होते हैं। उन भिक्षुओ का यह कार्य अश्रद्धालुओ मे श्रद्धोत्पादक . .नहीं है। यो धिक्कारते हुए भगवान् ने भिक्षुओ को आदेश दिया—''**भिक्षुओ! जानते हुए बीस वर्ष से कम आयु के पुरुष को प्रव्रज्या, उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। जो देगा उसे धर्मानुसार (नियमानुसार) प्रतीकार करना चाहिये।''**

४२. अहिवातकरोगवस्तु

१०१. उस समय किसी भयङ्कर सक्रामक रोग (महामारी) के फैलने से एक समग्र परिवार का ही अन्त हो गया। उस परिवार मे एक पिता और एक उसका छोटा पुत्र—दो ही बचे। वे दोनों

अथ खो सो दारको पितुनो भिक्खाय दिन्नाय उपधावित्वा एतदवोच—"मय्हं पि, तात, देहि; मय्हं पि, तात, देही" ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"अब्रह्मचारिनो इमे समणा सक्यपुत्तिया। अयं पि दारको भिक्खुनिया जातो" ति। अस्सोसुं खो [R.79] भिक्खू तेसं मनुस्सानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। न, भिक्खवे, ऊनपन्नरसवस्सो दारको पब्बाजेतब्बो। यो [B.110] पब्बाजेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा ति।

तेन खो पन समयेन आयस्मतो आनन्दस्स उपट्ठाककुलं सद्धं पसन्नं अहिवातकरोगेन कालङ्कतं होति, द्वे च दारका सेसा होन्ति। ते पोराणकेन आचिण्णकप्पेन भिक्खू पस्सित्वा उपधावन्ति। भिक्खू अपसादेन्ति। ते भिक्खूहि अपसादियमाना रोदन्ति। अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं 'न ऊनपन्नरसवस्सो दारको पब्बाजेतब्बो' ति। इमे च दारका ऊनपन्नरसवस्सा। केन नु खो उपायेन इमे दारका न विनस्सेय्युं" ति? अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवतो एतमत्थं आरोचेसि। "उस्सहन्ति पन ते, आनन्द, दारका काके उड्डापेतुं' ति? "उस्सहन्ति, भगवा" ति। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**अनुजानामि, भिक्खवे, ऊनपन्नरसवस्सं दारकं काकुड्डेपकं पब्बाजेतुं**" ति।

४३. कण्डकवत्थु

१०२. तेन खो पन समयेन आयस्मतो उपनन्दस्स सक्यपुत्तस्स द्वे समाणेरा होन्ति

भिक्षुओं में प्रव्रजित हो कर एक साथ ही भिक्षा करने लगे। भिक्षा के समय पिता के पात्र में ज्यों ही कोई भिक्षान्न डालता, त्योंही वह छोटा लड़का दौडकर पिता से कहता था—"पिता जी! मुझे भी दीजिये, कुछ मुझे भी दीजिये।" मनुष्य यह सुनकर खिन्न एवं उद्विग्न होकर कहते थे—"ये शाक्यपुत्रीय श्रमण भी अब्रह्मचारी हो गये दीखते हैं। हो सकता है, यह लडका किसी भिक्षुणी से ही उत्पन्न हुआ हो। भिक्षुओं ने उन राह चलते मनुष्यों को खिन्न एवं उद्विग्न होते देखा। भिक्षुओं ने भगवान् को यह बात बतायी। (भगवान् ने आज्ञा दी) "**भिक्षुओ! पन्द्रह वर्ष से कम आयु के बालक को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। जो देगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**

उस समय आयुष्मान् आनन्द के प्रति श्रद्धालु एवं उनसे प्रसन्न कोई परिवार संक्रामक रोग से आक्रान्त होकर पूर्णतः विनष्ट हो गया। उसमें केवल दो बालक बचे रहे। वे अपने घर की परम्परा के अनुसार भिक्षुओं के पास आते थे। परन्तु भिक्षु उन्हें भगा देते थे। तब आयुष्मान् आनन्द के मन में यह विचार उठा—"भगवान् को यह आदेश है कि बीस वर्ष से कम आयु वालों को (श्रामणेर की) प्रव्रज्या न दी जाय। ये बच्चे अभी पन्द्रह वर्ष से भी कम हैं। किस उपाय से इन बच्चों को नाश (मृत्यु) से बचाया जाय।" आयुष्मान् आनन्द ने तब यह स्थिति भगवान् को बतायी। (भगवान् ने कहा—) "आनन्द! क्या वे बच्चे कौआ उड़ाने योग्य है?" "ऐसा तो है, भगवन्!"

तब भगवान् ने इसी सम्बन्ध में, इसी प्रकरण में, धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"**भिक्षुओ! कौआ उड़ाने में समर्थ, पन्द्रह वर्ष से कम आयु के बच्चे को श्रामणेर बनाने की अनुमति देता हूँ।**"

४३. कण्डकवस्तु

१०२. उस समय आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र को दो श्रामणेर थे—१. कण्डक एवं २.

कण्डको च महको च। ते अञ्ञमञ्ञं दूसेसुं। भिक्खू उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति— ''कथं हि नाम सामणेरा एवरूपं अनाचारं आचरिस्सन्ती'' ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **''न, भिक्खवे, एकेन द्वे सामणेरा उपट्ठापेतब्बा। यो उपट्ठापेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा'' ति।**

४४. आहुन्दरिकवत्थु

१०३. तेन खो पन समयेन भगवा तत्थेव राजगहे वस्सं वसि, तत्थ हेमन्तं, तत्थ गिम्हं। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''आहुन्दरिका समणानं सक्यपुत्तियानं दिसा अन्धकारा, न इमेसं दिसा पक्खायन्ती'' ति। अस्सोसुं खो भिक्खू तेसं मनुस्सानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। अत खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। अथ [B.111] खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—''गच्छानन्द, अवापुरणं आदाय अनुपरिवेणियं भिक्खूनं आरोचेहि—''इच्छतावुसो, भगवा दक्खिणागिरिं चारिकं पक्कमितुं। [N.83] यस्सायस्मतो अत्थो, सो आगच्छतू'' ति। एवं, भन्ते, ति खो आयस्मा आनन्दो [R.80] भगवतो पटिस्सुणित्वा अवापुरणं आदाय अनुपरिवेणियं भिक्खूनं आरोचेसि— ''इच्छतावुसो भगवा दक्खिणागिरिं चारिकं भविस्सति, निस्सयो च गहेतब्बो भविस्सति, इत्तरो च वासो भविस्सति, पुन च पच्चागन्तब्बं भविस्सति, पुन च निस्सयो गहेतब्बो भविस्सति। सचे अम्हाकं आचरियुपज्झाया गमिस्सन्ति, मयं पि गमिस्साम; नो चे अम्हाकं

महक। ये परस्पर बहुत अधिक कटुवचन (गाली-गलौज) बोलते थे। भिक्षु यह सुनकर खिन्न एवं उद्विग्न होते थे कि कैसे ये श्रामणेर परस्पर इतने अधिक कटुवचन बोलते है। परस्पर अनाचार करते हैं। उन्होंने भगवान् को यह बात बतायी। (भगवान् ने आदेश दिया–) **''भिक्षुओ! एक भिक्षु को दो श्रामणेर नहीं रखने चाहियें। जो रखेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।''**

४४. आहुन्दरिकवस्तु

१०३. उस समय भगवान् ने राजगृह में वर्षावास ही नहीं किया, अपितु हेमन्त एवं ग्रीष्म ऋतु का पूरा समय भी वहीं बिता दिया। भगवान् के इतने दीर्घकाल तक राजगृह में ही रह जाने से चारों तरफ के भिक्षु भी लम्बे समय तक, भगवान् का उपदेश सुनने हेतु राजगृह में ही टिक गये। इससे राजगृह में भिक्षुओं की भीड़ बहुत बढ़ गयी। इस भीड़ को देखकर वहाँ की जनता खिन्न एवं उद्विग्न होने लगी। कुछ लोग कह ही बैठे कि ''क्या इन भिक्षुओं के लिये अन्य सब दिशाएँ अन्धकारपूर्ण हो गयी है कि इन्होंने राजगृह को अपना स्थायी निवास बना लिया!'' कुछ भिक्षुओ ने लोगों की इस खिन्नता एवं उद्विग्नता पर ध्यान दिया। उन्होंने भगवान् से इस बात की चर्चा की। तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को सम्बोधित किया–''आनन्द! जाओ और जलछनना ले कर एक तरफ से सभी भिक्षुओं से कहो–''आयुष्मानो! भगवान् दक्षिणागिरि की तरफ चारिका हेतु निकल रहे हैं। जिस आयुष्मान् की इच्छा हो वह साथ चले।''अच्छा, भन्ते!'' कहकर भगवान् को उत्तर देकर आयुष्मान् आनन्द ने जलछनना लेकर एक ओर से सभी भिक्षुओं को सूचित किया– ''आयुष्मानो! भगवान्.....पूर्ववत्.....।'' भिक्षुओ ने आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दिया–''आयुष्मन् आनन्द! भगवान् ने स्वयं आज्ञा दी है दश वर्ष तक निःश्रय लेकर बसने की, तथा दश वर्ष का निःश्रय देने की। अब भगवान् के साथ यदि हम चलेंगे तो हमें यहाँ से निःश्रय लेना पडेगा। और भगवान् के साथ वहाँ थोड़ा (=इत्तर) ही ठहरना पड़ेगा, फिर हमें यहीं लौटकर आना पड़ेगा तब हमें पुनः निश्रय लेना होगा।

आचरियुपज्झाया गमिस्सन्ति, मयं पि न गमिस्साम। लहुचित्तकता नो, आवुसो आनन्द, पञ्ञायिस्सती'' ति। अथ खो भगवा ओगणेन भिक्खुसङ्घेन दक्खिणागिरिं चारिकं पक्कामि।

४५. निस्सयमुच्चनककथा

१०४. अथ खो भगवा दक्खिणागिरिस्मिं यथाभिरन्तं विहरित्वा पुनदेव राजगहं पच्चागच्छि। अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—''किं नु खो, आनन्द, तथागतो ओगणेन भिक्खुसङ्घेन दक्खिणागिरिं चारिकं पक्कन्तो'' ति? अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवतो एतमत्थं आरोचेसि। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**अनुजानामि, भिक्खवे, ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन पञ्च वस्सानि निस्साय वत्थुं, अब्यत्तेन यावजीवं।**

(१) ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं। न असेक्खेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति....पे०..... न असेक्खेन विमुत्तिञाण-दस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं।

(२) ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन [B.112] वत्थब्बं असेक्खेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति....पे०....असेक्खेन विमुत्तिञाण-दस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं।

(३) ''अपरेहि पि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन

इसलिये यदि हमारे आचार्य या उपाध्याय चलेंगे तो हम भी चलेंगे। वे न चलेंगे तो हम भी नहीं चलेंगे। हमारा यों अकेले चलना हमारी हीन वृत्ति (लघुचित्तता) समझी जायगी।'' तब भगवान् बहुत अल्प सङ्ख्या वाले भिक्षुसङ्घ के साथ दक्षिणागिरि की तरफ चारिका हेतु चल पड़े।

४५. निःश्रयमोचनकथा

१०४. कुछ समय बाद, भगवान् दक्षिणागिरि में इच्छानुकूल चारिका करते हुए पुनः राजगृह में लौट आये। तब भगवान् ने आनन्द से पूछा—''आनन्द! क्या बात हुई कि भगवान् दक्षिणागिरि की चारिका मे बहुत अल्प सङ्ख्या वाले भिक्षुसङ्घ के साथ गये। तब भगवान् को आनन्द ने सारी बातें सुनायी।....तो भगवान् ने इस प्रकरण में....यह आज्ञा दी—''**भिक्षुओ! समर्थ एवं कुशल भिक्षु को पाँच वर्ष का ही निश्रय लेकर एक जगह बसने की अनुज्ञा करता हूँ। तथा अयोग्य को जीवनपर्यन्त निःश्रय लेकर बसने की।''**

(१) भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से युक्त को निःश्रय के विना वास नहीं करना चाहिये—(क) जो समग्र अशैक्ष्य शीलस्कन्ध से युक्त न हो, (ख) जो समग्र अशैक्ष्य समाधिस्कन्ध से युक्त न हो; (ग) जो समग्र अशैक्ष्य प्रज्ञास्कन्ध से युक्त न हो, (घ) विमुक्तिस्कन्ध से युक्त न हो, (ङ) जो समग्र अशैक्ष्य विमुक्ति-ज्ञानदर्शनस्कन्ध से युक्त न हो।....

(२) पाँच अङ्गों से युक्त को निःश्रय के विना ही वास करना चाहिये—(क) जो समग्र अशैक्ष्य शीलस्कन्ध से युक्त हो....पूर्ववत् (ङ) जो समग्र अशैक्ष्य विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्ध से युक्त हो।...

(३) इन दूसरे पाँच अङ्गों से युक्त को भी निःश्रय के विना वास नहीं करना चाहिये— (क)

वत्थब्बं। १. अस्सद्धो होति, २. अहिरिको होति, ३. अनोत्तप्पी होति, ४. कुसीतो होति, ५. मुट्ठस्सति होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं। [R.81] १. सद्धो होति, २. हिरिमा होति, ३. ओत्तप्पी होति, ४. आरद्धवीरियो होति, ५. उपट्ठितस्सति होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं।

४. "पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं। १. [R.81] १. सद्धो होति, २. हिरिमा होति, ३. ओत्तप्पी होति, ४. आरद्धवीरियो होति, ५. उपट्ठितस्सति हाति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं।

[N.84] (५) "अपरेहि पि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं। १. अधिसीले सीलविपन्नो होति, २. अज्झाचारे आचारविपन्नो होति, ३. अतिदिट्ठिया दिट्ठिविपन्नो होति, ४. अप्पस्सुतो होति, ५. दुप्पञ्ञो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं।

(६) "पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं। १. न अधिसीले सीलविपन्नो होति, २. न अज्झाचारे आचारविपन्नो, ३. न अतिदिट्ठिया दिट्ठिविपन्नो होति, ४. बहुस्सुतो होति, ५. पञ्ञवा होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं।

(७) "अपरेहि पि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं। १. आपत्तिं न जानाति, २. अनापत्तिं न जानाति, ३. लहुकं आपत्तिं न जानाति, ४. गरुकं आपत्तिं न जानाति, ५. उभयानि खो पनस्स पातिमोक्खानि वित्थारेन न स्वागतानि होन्ति न सुविभत्तानि न सुप्पवत्तीनि न सुविनिच्छितानि सुत्तसो अनुब्यञ्जनसो—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं।

जो अश्रद्ध हो, (ख) जो अह्रीक हो, (ग) जो सङ्कोची न हो, (घ) जो कुशीद हो, (ङ) जो स्मृतिभ्रष्ट हो।....

(४) और इन पाँच अङ्गों से युक्त भिक्षु को निःश्रय के विना भी वास करना चाहिये—(क) जो श्रद्धावान् हो, (ख) लज्जावान् हो, (ग) सङ्कोची हो, (घ) उदयोगी हो तथा (ङ) जो स्मृतिमान् हो। ...

(५) इन दूसरे पाँच अङ्गों से युक्त भिक्षु को भी निःश्रय के विना वास नहीं करना चाहिये—(क) शीलशिक्षा में शीलविपन्न हो, (ख) आचार-शिक्षा में आचारविपन्न हो, (ग) दृष्टि के विषय में दृष्टिविपन्न हो, (घ) अल्पश्रुत हो तथा (ङ) दुष्प्रज्ञ हो।.....

(६) और इन पाँच अङ्गों से युक्त भिक्षु को निःश्रय के विना भी वास करना चाहिये—(क) जो शीलशिक्षा में शीलविपन्न न हो, (ख) आचार-शिक्षा में आचारहीन न हो, (ग) दृष्टि के विषय में दृष्टिविपन्न (गलत धारणा वाला) न हो, (घ) बहुश्रुत हो तथा (ङ) प्रज्ञावान् हो।

(७) इन दूसरे पाँच अङ्गों से युक्त को भी निःश्रय के विना वास नहीं करना चाहिये—(क) जो आपत्ति (दोष) को नहीं जानता, (ख) जो अनापत्ति को नहीं जानता, (ग) छोटी आपत्ति नहीं जानता, (घ) बड़ी आपत्ति नहीं जानता, (ङ) जिसे दोनों प्रातिमोक्ष विस्तार से न स्वयं आते हों, न दूसरों को बता पाने की सामर्थ्य रखता हो।.....

(८) "पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन [B.113] वत्थब्बं। १. आपत्तिं जानाति, २. अनापत्तिं जानाति, ३. लहुकं आपत्तिं जानाति, ४. गरुकं आपत्तिं जानाति, ५. उभयानि खो पनस्स पातिमोक्खानि वित्थारेन स्वागतानि होन्ति सुविभत्तानि सुप्पवत्तीनि सुविनिच्छितानि सुत्तसो अनुब्यञ्जनसो—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं।

(९) "अपरेहि पि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं। १. आपत्तिं न जानाति, २. अनापत्तिं न जानाति, ३. लहुकं आपत्तिं न जानाति, ४. गरुकं आपत्तिं न जानाति, ५. ऊनपञ्चवस्सो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं।

(१०) "पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं। १. आपत्तिं जानाति, २. अनापत्तिं जानाति, ३. लहुकं आपत्तिं जानाति, ४. गरुकं आपत्तिं जानाति, ५. पञ्चवस्सो वा होति अतिरेकपञ्चवस्सो वा—इमेहि खो भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं।

पञ्चकदसवारो निट्ठितो॥

१०५. (१) "छहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं। १. न असेक्खेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति, २. न असेक्खेन समाधिक्खन्धेन, ३. न असेक्खेन पञ्ञाक्खन्धेन, ४. न असेक्खेन विमुत्तिक्खन्धेन, ५. न असेक्खेन विमुत्तिञाणदस्स-नक्खन्धेन समन्नागतो होति, ६. ऊनपञ्चवस्सो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं। [N.85]

(२) "छहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं। १. असेक्खेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति, २. असेक्खेन समाधिक्खन्धेन, ३. असेक्खेन पञ्ञाक्खन्धेन, ४. असेक्खेन विमुत्तिक्खन्धेन, ५. असेक्खेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन

---

(८) इन पाँच अङ्गों से युक्त को निश्रय के विना ही वास करना चाहिये। (क) आपत्ति को जानता है, (ख) अनापत्ति को...., (ग) छोटी आपत्ति को...., (घ) बड़ी आपत्ति को जानता है तथा (ङ) दोनों प्रातिमोक्षों को विस्तार से स्वयं जानता है, दूसरों को निश्चित रूप से अर्थतः व्यञ्जनतः बताने की सामर्थ्य रखता है। .....

(९) इन दूसरे पाँच अङ्गो से युक्त भिक्षु को भी निःश्रय के विना वासन नहीं करना चाहिये—(क) आपत्ति को न.....(क) अनापत्ति को न ..(ग) छोटी आपत्ति को न...(घ) बड़ी आपत्ति को न जानता हो तथा जिसको भिक्षु बने हुए पाँच वर्ष से कम हों। .

(१०) इन पाँच अङ्गो से युक्त भिक्षु को निःश्रय के विना भी वास करना चाहिये—(क) जो आपवि को जानता है, (क) जो अनापत्ति को जानता है, (ग) जो छोटी आपत्ति या (घ) बडी आपत्ति को जानता है तथा (ङ) जो पाँच वर्ष से अधिक समय का भिक्षु बना हो। इन पॉच अङ्गों से युक्त भिक्षु को निःश्रय के विना भी वास करना चाहिये।

पञ्चकदशवार पूर्ण॥

१०५. (क) .....पूर्ववत्....।

समन्नागतो होति, ६. पञ्चवस्सो वा होति अतिरेकपञ्चवस्सो वा—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं।

[B.114] (३) "अपरेहि पि, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सिततेन वत्थब्बं। १. अस्सद्धो होति, २. अहिरिको होति, ३. अनोत्तप्पी होति, ४. कुसीतो होति, ५. मुट्ठस्सति होति, ६. ऊनपञ्चवस्सो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं।

(४) "छहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं। १. सद्धो होति, २. हिरिमा होति, ३. ओत्तप्पी होति, ४. आरद्धवीरियो होति, ५. उपट्ठितस्सति होति, ६. पञ्चवस्सो वा होति अतिरेकपञ्चवस्सो वा—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं।

(५) "अपरेहि पि, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं। १. अधिसीले सीलविपन्नो होति, २. अज्झाचारे आचारविपन्नो होति, ३. अतिदिट्ठिया दिट्ठिविपन्नो होति, ४. अप्पस्सुतो होति, ५. दुप्पञ्ञो होति, ६. ऊनपञ्चवस्सो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं।

(६) "छहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं। १. न अधिसीले सीलविपन्नो होति, २. न अज्झाचारे आचारविपन्नो होति, ३. न अतिदिट्ठिया दिट्ठिविपन्नो होति, ४. बहुस्सुतो होति, ५. पञ्ञवा होति, ६. पञ्चवस्सो वा होति अतिरेकपञ्चवस्सो वा—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं।

(७) "अपरेहि पि, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं। १. आपत्तिं न जानाति, २. अनापत्तिं न जानाति, ३. लहुकं आपत्तिं न जानाति, ४. गरुकं आपत्तिं न जानाति, ५. उभयानि खो पनस्स पातिमोक्खानि वित्थारेन न स्वागतानि होन्ति न सुविभत्तानि न सुप्पवत्तीनि न सुविनिच्छितानि सुत्तसो अनुब्यञ्जनसो, ६. ऊनपञ्चवस्सो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना न अनिस्सितेन वत्थब्बं।

(८) "छहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं। १. आपत्तिं जानाति, २. अनापत्तिं जानाति, ३. लहुकं आपत्तिं जानाति, ४. गरुकं आपत्तिं जानाति, ५. उभयानि खो पनस्स पातिमोक्खानि वित्थारेन स्वागतानि होन्ति सुविभत्तानि सुप्पवत्तीनि सुविनिच्छितानि सुत्तसो अनुब्यञ्जनसो, ६. पञ्चवस्सो वा होति अतिरेकपञ्चवस्सो [N.86, B.115] वा— इमेहि खो, भिक्खवे, छहङ्गेहि समन्नागतेन भिक्खुना अनिस्सितेन वत्थब्बं" ति।

अभयूवरभाणवारे निट्ठितो अट्ठमो॥

[ऊपर कहे पञ्चकवार के प्रत्येक पञ्चक में जो बातें कहीं हैं उनमें 'पाँच वर्ष से कम या पाँच वर्ष से अधिक'—यह छठी बात जोड़कर षट्कदशावतार बना लेने चाहिये।]

अष्टम अभयोपरिभाणवार समाप्त॥

४६. राहुलवत्थु

१०६. अथ खो भगवा राजगहे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन कपिलवत्थु तेन [R.82] चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन कपिलवत्थु तदवसरि। तत्र सुदं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं निग्रोधारामे। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरं आदाय येन सुद्धोदनस्स सक्कस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो राहुलमाता देवी राहुलं कुमारं एतदवोच—"एसो ते, राहुल, पिता। गच्छस्सु, दायज्जं याचाही" ति। अथ खो राहुलो कुमारो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवतो पुरतो अट्ठासि—"सुखा ते, समण, छाया" ति। अथ खो भगवा उट्ठायासना पक्कामि। अथ खो राहुलो कुमारो भगवन्तं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धि—"दायज्जं मे, समण, देहि; दायज्जं मे, समण, देही" ति। अथ खो भगवा आयस्मन्तं सारिपुत्तं आमन्तेसि—"तेन हि त्वं, सारिपुत्त, राहुलं कुमारं पब्बाजेही" ति। "कथाहं, भन्ते, राहुलं कुमारं पब्बाजेमी" ति? अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**अनुजानामि, भिक्खवे, तीहि सरणगमनेहि सामणेरपब्बज्जं। एवं च पन, भिक्खवे, पब्बाजेतब्बो—**

पठमं केसमस्सुं ओहारापेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादापेत्वा एकंसं उत्तरासङ्गं कारापेत्वा भिक्खूनं पादे वन्दापेत्वा उक्कुटिकं निसीदापेत्वा अञ्जलिं पग्गण्हापेत्वा "एवं वदेही" ति वत्तब्बो—"बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, सङ्घं सरणं गच्छामि; दुतियं पि बुद्धं सरणं गच्छामि, दुतियं पि धम्मं सरणं गच्छामि, दुतियं पि सङ्घं सरणं

---

४६. राहुलवस्तु

१०६. उस समय, भगवान् राजगृह में इच्छानुकूल चारिका करते हुए, कपिलवस्तु की तरफ चारिका के लिये निकल पड़े। तथा क्रमशः चारिका करते हुए कपिलवस्तु पहुँचे। वहाँ भगवान् शाक्यो द्वारा निर्मापित न्यग्रोधाराम में साधनहेतु विराजे। तब भगवान् पूर्वाह्णकाल मे ठीक से वस्त्र पहिन कर, पात्र-चीवर लेकर जहाँ शुद्धोदन शाक्य का आवास था, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर बिछे आसन पर विराजे। तब राहुलमाता देवी राहुल कुमार को यों बोली—"राहुल! ये तुम्हारे पिता हैं, जाओ! इनसे अपना उत्तराधिकार (दायाद्य) माँगो।" तब राहुल कुमार जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान् के आगे खड़े हो गये। और बोले—"श्रमण! आप की छाया सुखप्रद है।" तब भगवान् आसन से उठकर चलने लगे। तब राहुल कुमार भगवान् के पीछे-पीछे चलने लगे, और कहते रहे—"श्रमण! मुझे मेरा उत्तराधिकार दो। श्रमण! मुझे मेरा उत्तराधिकार दो।" तब भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्र से कहा—"तो सारिपुत्र! इस राहुल कुमार को प्रव्रज्या दो" "भन्ते! मै राहुल कुमार को कैसे प्रव्रज्या दूँ?" तब भगवान् ने इस प्रकरण में, इस प्रसङ्ग में धार्मिक कथाएँ कहकर भिक्षुओं को बताया—"**भिक्षुओ! मैं तीन शरण-गमनों से श्रामणरों को प्रव्रज्या की अनुमति देता हूँ।** भिक्षुओ! इस (श्रामणेर) को यो प्रव्रजित करना चाहिये—

"पहले उसके (शिर के) बाल एवं दाढ़ी कटवाकर, काषाय वस्त्र पहनाकर, एक कन्धे पर उत्तरासङ्ग कराकर, भिक्षुओ की चरणवन्दना कराकर, उकड़ूँ बैठाकर, हाथ जुडवाकर 'यों बोलो' कहकर, फिर कहलवाना चाहिये—"बुद्ध की शरण जाता हूँ, धर्म की शरण जाता हूँ, सङ्घ की शरण जाता है।" दूसरी बार भी—'बुद्ध की शरण जाता हूँ, धर्म की शरण जाता हूँ, सङ्घ की शरण जाता

[B.1.16] गच्छामि; ततियं पि बुद्धं सरणं गच्छामि, ततियं पि धम्मं सरणं गच्छामि, ततियं पि सङ्घं सरणं गच्छामी'' ति। अनुजानामि, भिक्खवे, इमेहि तीहि सरणगमनेहि सामणेरपब्बज्जं'' ति। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो राहुलं कुमारं पब्बाजेसि।

अथ खो सुद्धोदनो सक्को येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सुद्धोदनो सक्को भगवन्तं एतदवोच—''एकाहं, भन्ते, भगवन्तं वरं याचामी'' ति। ''अतिक्कन्तवरा खो, गोतम, तथागता'' ति। ''यं च, भन्ते, कप्पति, यं च अनवज्जं'' ति। ''तं वदेहि, गोतमा'' ति। ''भगवति मे, भन्ते, पब्बजिते अनप्पकं दुक्खं अहोसि, तथा नन्दे, अधिमत्तं राहुले। पुत्तपेमं, भन्ते, छविं छिन्दति, [R.83] छविं छेत्वा चम्मं छिन्दति, चम्मं छेत्वा मंसं छिन्दति, मंसं छेत्वा न्हारुं छिन्दति, [N.87] न्हारुं छेत्वा अट्ठिं छिन्दति, अट्ठिं छेत्वा अट्ठिमिञ्जं आहच्च तिट्ठति। साधु, भन्ते, अय्या अननुञ्ञातं मातापितूहि पुत्तं न पब्बाजेय्युं'' ति। अथ खो भगवा सुद्धोदनं सक्कं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो सुद्धोदनो सक्को भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**न, भिक्खवे, अननुञ्ञातो मातापितूहि पुत्तो पब्बाजेतब्बो। यो पब्बाजेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**'' ति।

अथ खो भगवा कपिलवत्थुस्मिं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन सावत्थि तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन सावत्थि तदवसरि। तत्र सुदं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन आयस्मतो सारिपुत्तस्स

हूँ।'' तीसरी बार भी—बुद्ध की शरण जाता हूँ, धर्म की शरण जाता हूँ, सङ्घ की शरण जाता हूँ। भिक्षुओ! इन तीन शरणगमनों से श्रामणेर की प्रव्रज्या की अनुज्ञा देता हूँ।'' तब आयुष्मान् सारिपुत्र ने राहुल कुमार को प्रव्रजित किया।

तब शुद्धोदन शाक्य जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे शुद्धोदन शाक्य यों बोले—''भन्ते! मैं भगवान् से एक वर माँगना चाहता हूँ।'' ''भो गौतम! तथागत तो वर देने से दूर हो चुके हैं।'' ''भन्ते! मेरी माँग तो उचित भी है और निर्दोष भी।'' ''तो बोलो, गोतम!'' ''भन्ते! भगवान् के प्रव्रजित होने पर मेरा चित्त अत्यधिक क्लान्त हुआ था, उसी तरह नन्द के प्रव्रजित होने पर भी; इस राहुल के प्रव्रजित होने पर तो बहुत ही अधिक कष्ट हुआ। भन्ते! पुत्रवियोग मेरी छवि विनष्ट (छिन्न–भिन्न) कर रहा है। छवि विनष्ट होने से चर्म, चर्म से मांस, मांस से स्नायु, स्नायु से अस्थि, अस्थि से मज्जा तक छेदता हुआ यह चला जा रहा है। अच्छा हो, भन्ते! आर्य जन (आप लोग) माता–पिता की विना अनुज्ञा (अनुमति) लिये किसी पुत्र को प्रव्रजित न करें।'' तब शुद्धोदन शाक्य को भगवान् ने धार्मिक कथाएँ कहकर सन्दृष्ट... किया। फिर वह भगवान् को प्रणाम तथा प्रदक्षिणा कर अपने आवास को वापस लौट गये। इसी प्रसङ्ग में धार्मिक कथाएँ सुनाते हुए भिक्षुओं को सम्बोधित किया—''भिक्षुओ! माता–पिता की अनुमति के विना पुत्र को प्रव्रजित नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसको दुष्कृत (पाप) दोष लगेगा।''

तब भगवान् कपिलवस्तु में इच्छानुसार साधना करते हुए पुनः श्रावस्ती की तरफ चारिका हेतु चल पडे। क्रमशः चारिका करते हुए श्रावस्ती पहुँचे। श्रावस्ती में भगवान् अनाथपिण्डक द्वारा

उपट्ठाककुलं आयस्मतो सारिपुत्तस्स सन्तिके दारकं पाहेसि—"इमं दारकं थेरो पब्बाजेतू" ति। अथ खो आयस्मतो सारिपुत्तस्स एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं 'न एकेन द्वे सामणेरा उपट्ठापेतब्बा' ति। अयं च मे राहुलो सामणेरो। कथं नु खो मया पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसि। "**अनुजानामि, भिक्खवे, ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन एकेन द्वे सामणेरे उपट्ठापेतुं, यावतके वा पन उस्सहति ओवदितुं अनुसासितुं तावतके उपट्ठापेतुं**" ति। [B.117]

४७. सिक्खापदकथा

१०७. अथ खो सामणेरानं एतदहोसि—"कति नु खो अम्हाकं सिक्खापदानि, कत्थ च अम्हेहि सिक्खितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, सामणेरानं दस सिक्खापदानि, तेसु च सामणेरेहि सिक्खितुं—**

१. पाणातिपाता वेरमणी, २. अदिन्नादाना वेरमणी, ३. अब्रह्मचरिया वेरमणी, ४. मुसावादा वेरमणी, ५. सुरामेरयमज्जमादपट्ठाना वेरमणी, ६. विकालभोजना वेरमणी, ७. नच्चगीतवादितविसूकदस्सना वेरमणी, ८. मालागन्धविलेपनधारणमण्डनविभूसनट्ठाना वेरमणी, ९. उच्चासयनमहासयना वेरमणी, १०. जातरूपरजतपटिग्गहणा वेरमणी। [R.84] **अनुजानामि, भिक्खवे, सामणेरानं इमानि दस सिक्खापदानि, इमेसु च सामणेरेहि सिक्खितुं**" ति।

४८. दण्डकम्मवत्थु

१०८. तेन खो पन समयेन सामणेरा भिक्खूसु अगारवा अप्पतिस्सा असभागवुत्तिका विहरन्ति। भिक्खू उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम सामणेरा भिक्खूसु अगारवा अप्पतिस्सा असभागवुत्तिका विहरिस्सन्ती" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

निर्मापित जेतवनाराम मे आ विराजे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र के पास उनके एक उपस्थायक कुल ने एक बालक श्रामणेर-प्रव्रज्या के लिये भेजा। तब सारिपुत्र के मन मे यह विचार आया—"भगवान् का आदेश है—'एक ही भिक्षु को दो श्रामणेर सेवा में नहीं रखने चाहिये।' उन्होंने भगवान् के सम्मुख अपनी यह समस्या रखी। (भगवान् ने कहा—) "**अनुज्ञा देता हूँ, कुशल एवं समर्थ भिक्षु को एक या दो श्रामणेर रखने की। या जितनों को वह एक साथ शिक्षा दे सके या अनुशासन में रख सके, उतने श्रामणेर रखने की।**"

४७. शिक्षापदकथा

१०७. तब श्रामणेरों को यह विचार हुआ—"हम लोगों के कितने शिक्षापद (आचार-नियम) हैं, हमें क्या-क्या सीखना चाहिये?"

भिक्षुओं ने भगवान् से यह बात कही। (भगवान् ने कहा—)

"**भिक्षुओं! अनुमति देता हूँ, श्रामणेरों को ये दश शिक्षापद सीखने की, जिन्हें श्रामणेर सीखें।**

१. प्राणिहिंसा से दूर रहना; २. अदत्तादान (चौरी) से दूर रहना; ३. व्यभिचार से दूर रहना; ४. मृषावाद (असत्यभाषण) से दूर रहना; ५. सर्वविध मद्यपान से दूर रहना; ६. विकाल भोजन से दूर रहना; ७ नृत्य-गीत-वादित्र-नाटक आदि से दूर रहना; ८. माला-गन्ध-विलेपन-मण्डन से दूर

"**अनुजानामि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतस्स सामणेरस्स दण्डकम्मं कातुं।** १. [N.88] भिक्खूनं अलाभाय परिसक्कति, २. भिक्खूनं अनत्थाय परिसक्कति, ३. भिक्खूनं अवासाय परिसक्कति, ४. भिक्खू अक्कोसति परिभासति, ५. भिक्खू भिक्खूहि भेदेति— **अनुजानामि, भिक्खवे, इमेहि पञ्चहङ्गेहि समन्नागतस्स सामणेरस्स दण्डकम्मं कातुं"** ति।

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि— "किं नु खो दण्डकम्मं कातब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, आवरणं कातुं**" ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू सामणेरानं सब्बं सङ्घारामं आवरणं करोन्ति। सामणेरा [B.118] आरामं पविसितुं अलभमाना पक्कमन्ति पि, विब्भमन्ति पि, तित्थियेसु पि सङ्कमन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सब्बो सङ्घारामो आवरणं कातब्बो। यो करेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, यत्थ वा वसति, यत्थ वा पटिक्कमति, तत्थ आवरणं कातुं** ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू सामणेरानं मुखद्वारिकं आहारं आवरणं करोन्ति। मनुस्सा यागुपानं पि सङ्घभत्तं पि करोन्ता सामणेरे एवं वदेन्ति—"एथ, भन्ते, यागुं पिवथ; एथ भन्ते, भत्तं भुञ्जथा" ति। सामणेरा एवं वदेन्ति—"नावुसो, लब्भा। भिक्खूहि आवरणं

रहना; ९. ऊँची और मँहगी शय्याओं पर न सोना; १०. सोना–चान्दी आदि के ग्रहण का सर्वथा परित्याग। अनुमति देता हूँ श्रामणेरों को इन दश शिक्षापदों को सीखने की।"

४८. दण्डकर्मवस्तु

१०८. उस समय श्रामणेर भिक्षुओं के साथ गौरव और प्रतिष्ठा का व्यवहार न रखते हुए विरुद्धवृत्तिक हो रहे थे। भिक्षु यह देखकर खिन्न, व्यग्र एवं उद्विग्न होते थे कि कैसे ये श्रामणेर भिक्षुओं के साथ अभद्र व्यवहार कर रहे हैं? भगवान् से यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा–)

"भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से युक्त ऐसे श्रामणेर को दण्ड देने की अनुमति देता हूँ, (१) जो भिक्षुओं के अलाभ का प्रयास करता है, (२)....अनर्थ का...., (३) भिक्षुओं को उजाडने (आवासरहित करने) का...., (४) भिक्षुओं की निन्दा करता है; (५) भिक्षुओं में परस्पर वैमनस्य फैलाता है। **भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से युक्त श्रामणेर को दण्ड देने की अनुमति देता हूँ।**

तब भिक्षुओं को यह ध्यान आया–"यह दण्ड कर्म क्या होना चाहिये?" (भगवान् से पूछा गया; भगवान् ने बताया–) "**अनुमति देता हूँ ऐसे श्रामणेरों को आवास में न घुसने देने की।**"

तब भिक्षुओं ने ऐसे श्रामणेरों का अपने सम्पूर्ण आवासों (आरामों) में प्रवेश निषिद्ध कर दिया। प्रवेश निषिद्ध हो जाने से उन श्रामणेरों में से कुछ जहाँ तहाँ चले जाते थे, या गृहस्थ हो जाते थे या फिर दूसरे सम्प्रदायों में मिल जाते थे। भिक्षु इन बातों से भी दु:खी होने लगे। उन्होंने भगवान् को यह बात बतायी। (भगवान् ने कहा–) "**भिक्षुओ! श्रामणेरों के लिये समग्र सङ्घाराम में प्रवेश निषिद्ध नहीं करना चाहिये। जो करे वह दुष्कृत दोषग्रस्त होगा। केवल वहाँ का प्रवेश निषिद्ध करने की अनुमति देता हूँ जहाँ वह भिक्षु रहता हो या जहाँ चंक्रमण करता हो।**

उस समय कुछ भिक्षु श्रामणेरों को भोजन करते समय मुख भी बन्द कर देते थे। जब कोई मनुष्य उन श्रामणेरों को यागुपान या भात खाने के लिये श्रामणेरों को लाकर देते और उन्हें पीने खाने के लिये कहते तो श्रामणेर उन्हें बताते थे कि भिक्षुओं ने उन का मुख बन्द कर रखा है। तब वे मनुष्य व्यग्र खिन्न तथा उद्विग्न होते थे कि कैसे ये माननीय भदन्त श्रामणेरों पर खाने पीने का भी प्रतिबन्ध

कतं'' ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम भदन्ता सामणेरानं मुखद्वारिकं आहारं आवरणं करिस्सन्ती'' ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**न, भिक्खवे, मुखद्वारिको आहारो आवरणं कातब्बो। यो करेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति॥

दण्डकम्मवत्थु निट्ठितं॥

४९. अनापुच्छावरणवत्थु

१०९. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू उपज्झाये अनापुच्छा [R.85] सामणेरानं आवरणं करोन्ति। उपज्झाया गवेसन्ति—कथं नु खो अम्हाकं सामणेरा न दिस्सन्ती ति। भिक्खू एवमाहंसु—''छब्बग्गियेहि, आवुसो, भिक्खूहि आवरणं कतं'' ति। उपज्झाया उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम छब्बग्गिया भिक्खू अम्हे अनापुच्छा अम्हाकं सामणेरानं आवरणं करिस्सन्ती'' ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**न, भिक्खवे, उपज्झाये अनापुच्छा आवरणं कातब्बं। यो करेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

५०. अपलाळनवत्थु

११०. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू थेरानं भिक्खूनं सामणेरे अपळाळेन्ति। थेरा सामं दन्तकट्ठं पि मुखोदकं पि गण्हन्ता किलमन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न भिक्खवे, अञ्ञस्स परिसा अपलाळेतब्बा। यो अपलाळेय्य, आपत्ति** [B.119] **दुक्कटस्सा** ति।

५१. कण्डकसामणेरवत्थु

१११. तेन खो पन समयेन आयस्मतो उपनन्दस्स सक्यपुत्तस्स कण्डको [N.89] नाम सामणेरो कण्डकिं नाम भिक्खुनिं दूसेसि। भिक्खू उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—

लगा सकते हैं! उन मनुष्यों ने भगवान् से निवेदन किया। (भगवान् ने कहा—) ''**भिक्षुओ! श्रामणेरों का, भोजन के लिये; मुखद्वार बन्द नहीं करना चाहिये। जो करे उसको 'दुष्कृत' दोष लगेगा॥**

दण्डकर्मवस्तुवर्णन समाप्त॥

४९. अनापृच्छावरणवस्तु

१०९. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु उपाध्यायों से विना पूछे ही, श्रामणेरो का आराम में प्रवेश निषिद्ध कर देते थे। उपाध्याय उन्हें न देखकर उद्विग्न होते थे कि श्रामणेर कहाँ गये? दिखायी नहीं दे रहे हैं? उन्होंने भगवान् से यह घटना कही। (भगवान् ने आज्ञा दी—) ''**भिक्षुओ! उपाध्यायों से पूछे विना श्रामणरों का आराम में प्रवेश निषेध नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसको 'दुष्कृत' दोष होगा॥**

५०. अपलालनवत्थु

११०. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओं के श्रामणेरों को बहका-फुसला लेते थे।.....भगवान् से यह बात कही।.....**भिक्षुओ! दूसरों के श्रामणेरों (अनुगामियों) को नहीं बहकाना चाहिये। जो बहकायगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**

५१. कण्डकश्रामणेरवस्तु

१११. उस समय आयुष्मान् शाक्यपुत्र **उपनन्द** के **कण्डक** नामक श्रामणेर ने कण्डकी नाम की भिक्षुणी को दूषित किया। जब वृद्ध भिक्षुओं ने यह सुना तो वे बहुत व्यग्र एवं खिन्न हुए कि

"कथं हि नाम सामणेरो एवरूपं अनाचारं आचरिस्सती" ति! भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, दसहङ्गेहि समन्नागतं सामणेरं नासेतुं**। १. पाणातिपाती होति, २. अदिन्नादायी होति, ३. अब्रह्मचारी होति, ४. मुसावादी होति, ५. मज्जपायी होति, ६. बुद्धस्स अवण्णं भासति, ७. धम्मस्स अवण्णं भासति, ८. सङ्घस्स अवण्णं भासति, ९. मिच्छादिट्ठिको होति, १०. भिक्खुनीदूसको होति—**अनुजानामि भिक्खवे, इमेहि दसहङ्गेहि समन्नागतं सामणेरं नासेतुं**" ति।

५२. पण्डकवत्थु

११२. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो पण्डको भिक्खूसु पब्बजितो होति। सो दहरे दहरे भिक्खू उपसङ्कमित्वा एवं वदेति—"एथ, मं आयस्मन्तो दूसेथा" ति। भिक्खू अपसादेन्ति—"नस्स, पण्डक, विनस्स, पण्डक, को तया अत्थो" ति। सो भिक्खूहि अपसादितो महन्ते महन्ते मोळिगल्ले सामणेरे उपसङ्कमित्वा एवं वदेति—"एथ, मं आयस्मन्तो दूसेथा" ति। सामणेरो अपसादेन्ति—"नस्स, पण्डक, विनस्स, पण्डक, को तया अत्थो" [R.86] ति। सो सामणेरेहि अपसादितो हत्थिभण्डे अस्सभण्डे उपसङ्कमित्वा एवं वदेति—"एथ, मं, आवुसो, दूसेथा" ति। हत्थिभण्डा अस्सभण्डा दूसेसुं। ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"पण्डका इमे समणा सक्यपुत्तिया। ये पि इमेसं न पण्डका, ते पि इमे पण्डके दूसेन्ति। एवं इमे सब्बे व अब्रह्मचारिनो" ति। अस्सोसुं खो भिक्खू तेसं हत्थिभण्डानं अस्सभण्डानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**पण्डको, भिक्खवे, अनुपसम्पन्नो न उपसम्पादेतब्बो, उपसम्पन्नो नासेतब्बो** ति।

(न-उपसम्पादेतब्बं-वारं १)

कैसे कोई श्रामणेर किसी भिक्षुणी को दूषित कर रहा है! उन्होंने भगवान् से यह बात कही। भगवान् ने अनुज्ञा दी—"भिक्षुओ! इन दश अङ्गो से युक्त भिक्षु को सङ्घ से निकाल देना चाहिये; जैसे— (१) प्राणिहिंसाकारक को, (२) अदत्तादायी (चौर) को, (३) व्यभिचारी को, (४) मृषावादी को, (५) मद्यपायी को, (६) बुद्ध की निन्दा करने वाले को, (७) धर्म की निन्दा करने वाले को, (८) सङ्घ की निन्दा करने वाले को, (९) मिथ्यादृष्टि को एव (१०) भिक्षुणीदूषक को। **भिक्षुओ! इन दश अङ्गों से युक्त श्रामणेर को सङ्घ से निकालने की अनुमति देता हूँ॥**"

५२. पण्डकवस्तु

११२. उस समय एक पण्डक (नपुंसक=तृतीया प्रकृति) भिक्षुओं में (आकर) प्रव्रजित हो गया। वह युवा भिक्षुओं के पास जाकर कहता—"आओ! मेरे साथ दुराचार (मैथुनधर्म) करो।" वे भिक्षु उसे फटकार देते थे कि "भाग जा नपुसक! हट जा नपुंसक! हमसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है!" भिक्षुओं के फटकारने पर वह श्रेष्ठ श्रामणेरों के पास.....। श्रामणेरो के फटकारने पर वह हाथीवानों एव साइसों के पास गया,....उन्होंने उसको दूषित किया। परन्तु उन हाथीवानों और साईसों को भी ग्लानि हुई कि "ये श्रमणशाक्यपुत्रीय पण्डक हैं, इनमें जो पण्डक नहीं हैं उनको भी ये पण्डक जाकर दूषित करते होंगे। यों ये सभी व्यभिचारी हैं।" जब भिक्षुओं ने यह सब कुछ सुना तो बहुत दुःखी हुए। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! पण्डकों (नपुंसकों) को सङ्घ में प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। यदि प्रव्रज्या दे दी गयी हो तो उसे भगा देना चाहिये।**"

नउपसम्पादयितव्यवार समाप्त १॥

५३. थेय्यसंवासकवत्थु

११३. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो पुराणकुलपुत्तो खीणकोलञ्ञो [B.120] सुखुमालो होति। अथ खो तस्स पुराणकुलपुत्तस्स खीणकोलञ्ञस्स एतदहोसि—"अहं खो सुकुमालो, न पटिबलो अनधिगतं वा भोगं अधिगन्तुं, अधिगतं वा भोगं फातिं कातुं। केन नु खो अहं उपायेन सुखं च जीवेय्यं, न च किलमेय्यं" ति? अथ खो तस्स पुराणकुलपुत्तस्स खीणकोलञ्ञस्स एतदहोसि—"इमे खो समणा सक्यपुत्तिया सुखसीला सुखसमाचारा, सुभोजनानि भुञ्जित्वा निवातेसु सयनेसु सयन्ति। यन्नूनाहं सामं पत्तचीवरं पटियादेत्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा आरामं गन्त्वा भिक्खूहि सद्धिं संवसेय्यं" ति। अथ खो सो पुराणकुलपुत्तो खीणकोलञ्ञो सामं पत्तचीवरं पटियादेत्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा आरामं गन्त्वा भिक्खू अभि-[N.90] वादेति। भिक्खू एवमाहंसु—"कतिवस्सो सि त्वं, आवुसो" ति? "किं एतं, आवुसो, 'कतिवस्सो नामा' " ति? "को पन ते, आवुसो, उपज्झायो" ति? "किं एतं, आवुसो, 'उपज्झायो नामा' " ति? भिक्खू आयस्मन्तं उपालिं एतदवोचुं—"इङ्घावुसो उपालि, इमं पब्बजितं अनुयुञ्जाही" ति। अथ खो सो पुराणकुलपुत्तो खीणकोलञ्ञो आयस्मता उपालिना अनुयुञ्जियमानो एतमत्थं आरोचेसि। आयस्मा उपालि भिक्खूनं एतमत्थं आरोचेसि। भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**थेय्यसंवासको, भिक्खवे, अनुपसम्पन्नो न उपसम्पादेतब्बो, उपसम्पन्नो नासेतब्बो**" ति। "**तित्थियपक्कन्तको, भिक्खवे, अनुपसम्पन्नो न उपसम्पादेतब्बो, उपसम्पन्नो नासेतब्बो**" ति।

(न उपसम्पादेतब्ब वारं २-३)

---

५३. स्तेयसंवासकवस्तु

११३. उस समय कोई पुराणकुलपुत्र, जो अपनी कुलीनता (सम्पत्ति) से च्युत हो चुका था, अत्यन्त सुकुमार था। उस क्षीणकौलीन्य पुराणकुलपुत्र के मन में कभी यह विचार उठा—"मैं अत्यन्त सुकुमार हूँ, मैं कोई परिश्रम का कार्य नहीं कर सकता। क्यों न मैं भी इन सुखप्रकृति, सुखजीवी श्रमण शाक्यपुत्रीयों में मिलकर सुख से जीवन बिताऊँ। अच्छे आरामों में वास करूँ और प्रतिदिन उत्तम भोजन करूँ। इसका एक ही उपाय है कि मैं बाल-दाढ़ी मुँड़वाकर, काषायवस्त्र पहनकर, पात्र-चीवर लेकर आराम में जाकर इन भिक्षुओ के साथ रहता हुआ सुखमय जीवन-निर्वाह करूँ।" तब उस क्षीणकौलीन्य पुराणकुलपुत्र ने स्वयं ही पात्र चीवर लेकर बाल दाढ़ी मुँड़वाकर, काषाय वस्त्र पहनकर किसी आराम में जाकर भिक्षुओं को प्रणाम किया। भिक्षुओं ने पूछा—"आयुष्मन्! तुम कितने वर्ष के हो?" उसने कहा—"कितने वर्ष' से आप का क्या तात्पर्य है?" फिर किसी भिक्षु ने उससे पूछा—"आयुष्मन्! तुम्हारा उपाध्याय कौन है?" उसने कहा—"उपाध्याय' से आपका क्या तात्पर्य है?" तब भिक्षुओं ने आयुष्मान् उपालि से कहा—"तुम इस प्रवजित से वास्तविकता का पता लगाओ।" आयुष्मान् उपालि द्वारा उससे पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि वह तो कोई पुराण कुलपुत्र अपने कौलीन्य से च्युत होकर चौरी से काषाय वस्त्र पहन कर भिक्षुभाव का आडम्बर (अभिनय) कर रहा है। आयुष्मान् उपालि ने भिक्षुओं को सब बातें बतायीं। भिक्षुओं ने भगवान् के पास जाकर बताया। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! ऐसे स्तेयसंवासक (चौरी से काषाय वस्त्र धारण कर**

५४. तिरच्छानगतवत्थु

[R.87] ११४. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो नागो नागयोनियो अट्टीयति हरायति जिगुच्छति। अथ खो तस्स नागस्स एतदहोसि—"केन नु खो अहं उपायेन नागयोनिया च परिमुच्चेय्यं खिप्पं च मनुस्सत्तं पटिलभेय्यं" ति। अथ खो तस्स नागस्स एतदहोसि—"इमे खो समणा [B.121] सक्यपुत्तिया धम्मचारिनो ब्रह्मचारिनो सच्चवादिनो सीलवन्तो कल्याणधम्मा। सचे खो अहं समणेसु सक्यपुत्तियेसु पब्बजेय्यं, एवाहं नागयोनिया च परिमुच्चेय्यं, खिप्पं च मनुस्सत्तं पटिलभेय्यं" ति। अथ खो सो नागो माणवकवण्णेन भिक्खू उपसङ्कमित्वा पब्बज्जं याचि। तं भिक्खू पब्बाजेसुं, उपसम्पादेसुं।

तेन खो पन समयेन सो नागो अञ्ञतरेन भिक्खुना सद्धिं पच्चन्तिमे विहारे पटिवसति। अथ खो सो भिक्खु रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय अज्झोकासे चङ्कमति। अथ खो सो नागो तस्स भिक्खुनो निक्खन्ते विस्सट्ठो निद्दं ओक्कमि। सब्बो विहारो अहिना पुण्णो, वातपानेहि भोगा निक्खन्ता होन्ति। अथ खो सो भिक्खु 'विहारं पविसिस्सामी' ति कवाटं पणामेन्तो अद्दस सब्बं विहारं अहिना पुण्णं, वातपानेहि भोगे निक्खन्ते, दिस्वान भीतो विस्सरं अकासि। भिक्खू उपधावित्वा तं भिक्खुं एतदवोचुं—"किस्स त्वं, आवुसो, विस्सरं अकासी" ति? "अयं, आवुसो, सब्बो विहारो अहिना पुण्णो, वातपानेहि भोगा निक्खन्ता" ति। अथ खो

भिक्षु बनने वाले) को उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। यदि (प्रमादवश) उसे उपसम्पदा मिल ही जाय तो भी उसे सङ्घ से निकाल देना चाहिये।"

"भिक्षुओ! अन्य सम्प्रदाय के अनुयायी के पास चले जाने वाले अनुपसम्पन्न को भी उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। यदि भूल से उसे उपसम्पदा दी जा चुकी हो तो भी उसे सङ्घ से निकाल देना चाहिये।"

न उपसम्पादयितव्य वार–२–३ ।।

५४. तिर्यग्गतवस्तु

११४. उस समय किसी नाग (सर्प) को अपनी नागयोनि से ही ग्लानि, सङ्कोच, एवं घृणा हो गयी। तब उस नाग के मन में विचार आया—"किस उपाय से मैं अपनी इस नाग योनि से मुक्त होकर शीघ्र ही मनुष्य योनि प्राप्त कर पाऊँ" तब उस नाग को सूझा—"ये शाक्यपुत्रीय श्रमण धर्म का सतत आचरण करने वाले ..शीलवान् शुभकर्मकारी हैं। यदि मैं शाक्यपुत्रीय श्रमणों में प्रव्रजित हो जाऊँ तो शीघ्र ही अपनी इस हीन नागयोनि से मुक्त हो सकता हूँ।" तब उस नाग ने माणवक (तरुण ब्राह्मण) का रूप धारण कर भिक्षुओं के पास जाकर प्रव्रज्या माँगी। भिक्षुओ ने उसको प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा दी।

उस समय वह नाग एक भिक्षु के साथ प्रत्यन्त (सीमान्त के) विहार में रहता था। वह भिक्षु (कभी) रात्रि बीतने पर प्रातःकाल उठकर चंक्रमण करने लगा। उस भिक्षु के बाहर निकल जाने पर वह नाग अपने वास्तविक रूप में प्रकट होकर सुख की नींद सोने लगा। और समग्र विहार साँपों से भर गया। खिडकियों (वातपानो) से फण ही फण निकले दिखायी देने लगे। उस भिक्षु ने भी विहार में पुनः प्रवेश करते ही देखा कि सारा विहार साँपों से भरा हुआ है। और साँप खिडकियों से फण निकाल रहे है। भिक्षु यह सब देखकर चिल्लाया। चिल्लाहट सुनकर अन्य भिक्षु भी वहाँ एकत्र हुए। और पूछने लगे—"आयुष्मन्! तुम क्यों चिल्ला रहे हो?" "आयुष्मानो! मेरा यह सम्पूर्ण विहार सापो से भरा

सो नागो तेन सद्देन पटिबुज्झित्वा सके आसने निसीदि। भिक्खू एवं आहंसु—"कोसि त्वं, आवुसो" ति? "अहं, भन्ते, नागो" ति। "किस्स पन त्वं, आवुसो, एवरूपं अकासी" ति? अथ खो सो नागो भिक्खूनं एतमत्थं आरोचेसि। भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे भिक्खुसङ्घं सन्निपातापेत्वा तं नागं एतदवोच— "तुम्हे खत्थ नागा अविरुळ्हिधम्मा इमस्मिं धम्मविनये। गच्छ त्वं, नाग, तत्थेव, चातुद्दसे पन्नरसे अट्ठमिया च पक्खस्स उपोसथं उपवस, एवं त्वं नागयोनिया च परिमुच्चिस्ससि, खिप्पं च मनुस्सत्तं पटिलभिस्ससी" ति। अथ खो सो नागो अविरुळ्हिधम्मो [N.91] किराहं इमस्मिं धम्मविनये ति दुक्खी दुम्मनो अस्सूनि पवत्तयमानो विस्सरं करित्वा पक्कामि। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"द्वेमे, भिक्खवे, पच्चया नागस्स सभावपातुकम्माय। यदा च सजातिया मेथुनं धम्मं पटिसेवति, यदा च विस्सट्ठो निद्दं ओक्कमति—इमे खो, भिक्खवे, द्वे पच्चया नागस्स सभावपातुकम्माय। **तिरच्छानगतो, भिक्खवे, अनुपसम्पन्नो न उपसम्पादेतब्बो, उपसम्पन्नो नासेतब्बो**" ति। [R.88]

(न उपसम्पादेतब्बं वारं ४)

५५. मातुघातकवत्थु

११५. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो माणवको मातरं जीविता वोरोपेसि। सो तेन पापकेन कम्मेन अट्टीयति हरायति जिगुच्छति। अथ खो तस्स माणवकस्स [B.122] एतदहोसि—"केन नु खो अहं उपायेन इमस्स पापकस्स कम्मस्स निक्खन्तिं करेय्यं" ति?

हुआ है।" तब वह नाग उस भिक्षु की चिल्लाहट सुनकर पुनः मानवरूप में अपने आसन पर गया। भिक्षुओं ने उससे पूछा—"आयुष्मन्! तुम कौन हो?" (नाग ने कहा—) " मैं नाग हूँ।" "आयुष्मन्! तुमने ऐसा क्यों किया?" तब उस नाग ने उन भिक्षुओं को नागयोनि के प्रति अपनी ग्लानि वाली बात बता दी। भिक्षुओं ने भगवान् के पास जाकर यह बात बतायी। भगवान् ने इस सम्बन्ध में इस प्रकरण में भिक्षुसङ्घ को एकत्र कर नाग से यह कहा—

"तुम इस धर्मविनय के योग्य नहीं; क्योंकि तुम नाग हो। जाओ नाग! वहीं अपने लोक में। चतुर्दशी, पूर्णिमा और अष्टमी तथा पक्ष के उपोसथ के दिन उपवास करो। इस प्रकार तुम नागयोनि से मुक्त हो जाओगे। तथा शीघ्र ही मनुष्यत्व प्राप्त कर लोगे।"

तब वह नाग—"मैं मनुष्य योनि के योग्य नहीं हूँ"—यह सोच दुःखी, दुर्मना हो कर आँसू बहाता हुआ चीत्कार कर चला गया। तब भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! नाग अपना स्वभाव दो समय में प्रकट करते है— (१) मैथुन के समय, तथा (२) निर्भीकता से (खुलकर) नींद लेते समय। भिक्षुओ! ये दो समय नाग के स्वभाव प्रकट करने के है। **भिक्षुओ! तिर्यग्गत (सर्प आदि) योनियों को यदि वे अनुपसम्पन्न हों तो उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। यदि किसी कारणवश वे उपसम्पन्न हो चुके हों तो उन्हें सङ्घ से निकाल (भगा) देना चाहिये।**

(न उपसम्पादयितव्य वार ४)

५५. मातृघातकवस्तु

११५. उस समय किसी माणवक ने अपनी माता को जान से मार डाला। उस पाप कर्म से मन में अत्यधिक ग्लानि एव पश्चात्ताप करने लगा। तब उस माणवक को यह विचार आया—"किस

अथ खो तस्स माणवकस्स, तदहोसि—"इमे खो समणा सक्यपुत्तिया धम्मचारिनो समचारिनो ब्रह्मचारिनो सच्चवादिनो सीलवन्तो कल्याणधम्मा। सचे खो अहं समणेसु सक्यपुत्तियेसु पब्बजेय्यं, एवाहं इमस्स पापकस्स कम्मस्स निक्खन्तिं करेय्यं" ति। अथ खो सो माणवको भिक्खू उपसङ्कमित्वा पब्बज्जं याचि। भिक्खू आयस्मन्तं उपालिं एतदवोचुं—"पुब्बे पि खो, आवुसो उपालि, नागो माणवकवण्णेन भिक्खूसु पब्बजितो। इङ्घावुसो उपालि, इमं माणवकं अनुयुञ्जाही" ति। अथ खो सो माणवको आयस्मता उपालिना अनुयुञ्जियमानो एतमत्थं आरोचेसि। आयस्मा उपालि भिक्खूनं एतमत्थं आरोचेसि। भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**मातुघातको, भिक्खवे, अनुपसम्पन्नो न उपसम्पादेतब्बो, उपसम्पन्नो नासेतब्बो**" ति।

(न उपसम्पादेतब्बं वारं ५)

५६. पितुघातकवत्थु

११६. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो माणवको पितरं जीविता वोरोपेसि। सो तेन पापकेन कम्मेन अट्टीयति हरायति जिगुच्छति....पे०....भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**पितुघातको, भिक्खवे, अनुपसम्पन्नो न उपसम्पादेतब्बो, उपसम्पन्नो नासेतब्बो**" ति।

(न उपसम्पादेतब्बं वारं ६)

५७. अरहन्तघातकवत्थु

[B.123] ११७. तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खू साकेता सावत्थिं अद्धानमग्ग-पटिपन्ना होन्ति। अन्तरामग्गे चोरा निक्खमित्वा एकच्चे भिक्खू अच्छिन्दिंसु, एकच्चे भिक्खू

उपाय से मैं इस पापकर्म से मुक्त होऊँ।" तब उसने यह निश्चय किया—"ये शाक्यपुत्रीय श्रमण धर्मपूर्वक आचरण करने वाले...कल्याणकारी हैं। क्यों न मैं भी इन शाक्यपुत्रीय श्रमणों में प्रव्रजित हो जाऊँ। तभी मेरा इस पाप से प्रायश्चित्त हो पायगा!" तब वह माणवक भिक्षुओं के पास जाकर प्रव्रज्या माँगने लगा। तब भिक्षुओं ने आयुष्मान् उपालि से कहा—"आयुष्मन्! अभी कुछ समय पूर्व एक नाग (रूप बदल कर) भिक्षु आ बना था। अब यह माणवक आया है। इससे पूछकर देखो कि वस्तुतः यह कौन है?" तब उस माणवक ने आयुष्मान् उपालि द्वारा पूछे जाने पर सचाई बता दी। आयुष्मान् उपालि ने भिक्षुओं को बताया। भिक्षुओं ने भगवान् के पास जाकर बताया। (भगवान् ने कहा—) **"भिक्षुओ! अनुपसम्पन्न मातृघातक को, उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। यदि किसी कारण वह उपसम्पदा प्राप्त कर ले, तो (उस का दोष ज्ञात होने पर) उसे सङ्घ से निकाल देना चाहिये।"**

(न उपसम्पादयितव्यवार ५)

५६. पितृघातकवस्तु

११६. उस समय किसी माणवक ने अपने पिता का जान से मार डाला। वह उस पापकर्म स मन में...पूर्ववत्....। भिक्षुओं ने भगवान् से यह बात कही। (भगवान् ने कहा—) **"भिक्षुओ! अनुपसम्पन्न पितृघातक को उपसम्पन्न नहीं करना चाहिये। यदि किसी कारण से वह उपसम्पन्न हो जाय तो (उसका पाप कर्म ज्ञात होने पर) उसे सङ्घ से निकाल देना चाहिये।**

(न उपसम्पादयितव्य वार ६)

हनिंसु। सावत्थिया राजभटा निक्खमित्वा एकच्चे चोरे अग्गहेसुं, एकच्चे चोरा [N.92] पलायिंसु। ये ते पलायिंसु ते भिक्खूसु पब्बाजिंसु, ये ते गहिता ते वधाय ओनीयन्ति। अद्दसंसु खो ते पब्बजिता ते चोरे वधाय ओनीयमाने, दिस्वान एवमाहंसु—"साधु खो मयं पलायिम्हा, सचज्ज मयं गहेय्याम, मयं पि एवमेव हञ्ञेय्यामा" ति। भिक्खू [R.89] एवमाहंसु—"किं पन तुम्हे, आवुसो, अकत्था" ति? अथ खो ते पब्बजिता भिक्खूनं एतमत्थं आरोचेसुं। भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "अरहन्तो एते, भिक्खवे, भिक्खू। **अरहन्तघातको, भिक्खवे, अनुपसम्पन्नो न उपसम्पादेतब्बो, उपसम्पन्नो नासेतब्बो**" ति।

(न उपसम्पादेतब्बं वारं ७)

५८. भिक्खुनीदूसकादिवत्थूनि

११८. तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खुनियो साकेता सावत्थिं अद्धानमग्गपटिपन्ना होन्ति। अन्तरामग्गे चोरा निक्खमित्वा एकच्चा भिक्खुनियो अच्छिन्दिंसु, एकच्चा भिक्खुनियो दूसेसुं। सावत्थिया राजभटा निक्खमित्वा एकच्चे चोरे अग्गहेसुं.... पे०...भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**भिक्खुनीदूसको, भिक्खवे, अनुपसम्पन्नो न उपसम्पादेतब्बो, उपसम्पन्नो नासेतब्बो**" ति।

"**सङ्घभेदको, भिक्खवे, अनुपसम्पन्नो न उपसम्पादेतब्बो, उपसम्पन्नो नासे-**

---

५७. अर्हद्घातकवस्तु

११७. उस समय बहुत से भिक्षु साकेत से श्रावस्ती की तरफ रास्ते में जा रहे थे। रास्ते में चोरों ने निकल कर उनमें से कुछ भिक्षुओं को काट डाला, तथा कुछ को मार डाला। तब श्रावस्ती के राजपुरुषों (सिपाहियों) ने आकर उनमें से कुछ चौरों को पकड़ लिया और कुछ चौर भागने में सफल हो गये। वे भागे हुए चौर भिक्षुओं में जाकर प्रव्रजित हो गये। उधर जो चौर राजपुरुषों द्वारा पकड़े गये थे उन्हें वध के लिये ले जाते हुए उन प्रव्रजित चौरों ने देखा। उन्हें देखकर उन (प्रव्रजित) चौरों ने परस्पर में कहा—"अच्छा हुआ कि उस दिन हम भाग आये और इन राजपुरुषों की पकड़ में न आ सके। अन्यथा आज हमारा भी इसी प्रकार वध हो जाता।" तब, भिक्षुओं ने उनके इस वार्तालाप को सुन लिया। भिक्षुओं के पूछने पर उन चौर प्रव्रजितों ने सब घटना सुना दी। भिक्षुओं ने भगवान् से यह सब बताया। (भगवान् ने आज्ञा दी—) "**भिक्षुओ! अनुपसम्पन्न अर्हद्–घातक को उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। यदि वह उपसम्पन्न हो जाय तो उसे सङ्घ से निकाल देना चाहिये।**

(नउपसम्पादयितव्य वार ७ पूर्ण।।)

५८. भिक्षुणीदूषकादिवस्तुएँ

११८. उस समय कुछ भिक्षुणियाँ साकेत से श्रावस्ती जाने वाले मार्ग पर जा रही थीं। मार्ग में चौरों ने निकल कर उनमें से कुछ (भिक्षुणियों) को लूटा और किन्हीं को मार डाला। श्रावस्ती के राजपुरुषों ने आकर उनमें कुछ चौरों को पकड़ लिया; परन्तु कुछ चौर भाग गये। वे भागे हुए चौर भिक्षुओं में जाकर प्रव्रजित हो गये। जो चौर पकड़े गये थे उन्हें राजपुरुष वध के लिये ले जाने लगे।....पूर्ववत्....। "**भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षुणीदूषक अनुपसम्पन्न हो तो उसे उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। तथा यदि वह उपसम्पन्न हो जाय तो उसे सङ्घ से निकाल देना चाहिये।**"

तब्बो'' ति। **''लोहितुप्पादको, भिक्खवे, अनुपसम्पन्नो न उपसम्पादेतब्बो, उपसम्पन्नो नासेतब्बो''** ति।

(न उपसम्पादेतब्बं वारं ८-१०)

५९. उभतोब्यञ्जनकवत्थु

[B.124] ११९. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो उभतोब्यञ्जनको भिक्खूसु पब्बजितो होति। सो करोति पि कारापेति पि। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **उभतोब्यञ्जनको, भिक्खवे, अनुपसम्पन्नो न उपसम्पादेतब्बो, उपसम्पन्नो नासेतब्बो''** ति।

(न उपसम्पादेतब्बं वारं ११)

६०. अनुपज्झायकादिवत्थूनि

१२०. तेन खो पन समयेन भिक्खू अनुपज्झायकं उपसम्पादेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, अनुपज्झायको उपसम्पादेतब्बो। यो उपसम्पादेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू सङ्घेन उपज्झायेन उपसम्पादेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सङ्घेन उपज्झायेन उपसम्पादेतब्बो। यो उपसम्पादेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

[N.93] तेन खो पन समयेन भिक्खू गणेन उपज्झायेन उपसम्पादेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, गणेन उपज्झायेन उपसम्पादेतब्बो। यो उपसम्पादेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

...''भिक्षुओ! यदि सङ्घभेदक अनुपसम्पन्न हो तो उसे उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। यदि वह किसी कारणवश उपसम्पन्न हो जाय तो उसे सङ्घ से निकाल देना चाहिये।''

....''भिक्षुओ! यदि लोहितोत्पादक अनुपसम्पन्न हो तो उसे उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। और यदि वह किसी कारणवश उपसम्पन्न हो जाय तो उसे सङ्घ से निकाल देना चाहिये।

(न उपसम्पादयितव्य वार ८-१०)

५९. उभतोव्यञ्जनकवस्तु

११९. उस समय कोई स्त्री-पुरुष दो के चिह्नों वाला पुद्गल भिक्षुओं में प्रव्रजित हो गया था। वह (व्यभिचार) करता भी था कराता भी था।....भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा-) **''भिक्षुओ! स्त्री-पुरुष के दोनों चिह्नों वाले पुद्गल को, यदि वह उपसम्पन्न न हुआ हो तो उसे उपसम्पन्न नहीं करना चाहिये। यदि उपसम्पन्न हुआ हो तो उसे सङ्घ से निकाल देना चाहिये।**

६०. अनुपाध्यायकादि वस्तुएँ

१२०. उस समय भिक्षु किसी किसी को उपाध्याय के विना ही उपसम्पदा करा देते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा-) **''भिक्षुओ! उपाध्याय के विना किसी की भी उपसम्पदा नहीं करनी चाहिये। जो उपसम्पदा करे उसको 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**

उस समय भिक्षु समग्र सङ्घ को 'उपाध्याय' बनाकर किसी को उपसम्पदा दे देते थे।..(भगवान् ने कहा-) **''भिक्षुओ! सङ्घ को उपाध्याय बना कर उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। जो उपसम्पदा देगा उसे दुष्कृत दोष होगा।**

तेन खो पन समयेन भिक्खू पण्डकुपज्झायेन उपसम्पादेन्ति....पे०....थेय्यसंवासकुपज्झायेन उपसम्पादेन्ति....पे०....तिरच्छानगतुपज्झायेन उपसम्पादेन्ति....पे०....मातुघातकुपज्झायेन उपसम्पादेन्ति....पे०.... पितुघातकुपज्झायेन उपसम्पादेन्ति....पे०....अरहन्तघातकुपज्झायेन उपसम्पादेन्ति....पे०....भिक्खुनीदूसकुपज्झायेन उपसम्पादेन्ति...पे०.... उभतोब्यञ्जनकुपज्झायेन उपसम्पादेन्ति....पे०....भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, पण्डकुपज्झायेन उपसम्पादेतब्बो....पे०.....न, भिक्खवे, थेय्यसंवासकुपज्झायेन उपसम्पादेतब्बो....पे०....न, भिक्खवे, तित्थियपक्कन्तकुपज्झायेन उपसम्पादेतब्बो.... पे०....न भिक्खवे, तिरच्छानगतुपज्झायेन उपसम्पादेतब्बो....पे०....न, भिक्खवे, मातुघातकुपज्झायेन उप सम्पादेतब्बो....पे०....न, भिक्खवे, पितुघात-**[B.90] **कुपज्झायेन उपसम्पादेतब्बो....पे०....न, भिक्खवे, अरहन्तघातकुपज्झायेन उपसम्पादेतब्बो.....पे०.....न, भिक्खवे, भिक्खुनीदूसकुपज्झायेन उपसम्पादेतब्बो.... पे०.....न, भिक्खवे, सङ्घभेदकुपज्झायेन उपसम्पादेतब्बो ..... पे०.... न, भिक्खवे,**

उस समय भिक्षु किसी गण (भिक्षुसमूह) को उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा देते थे।....! (भगवान् ने कहा—)

''भिक्षुओ! गण को उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। जो उपसम्पदा देगा उसे दुष्कृत दोष होगा।''

उस समय भिक्षु पण्डक को भी उपाध्याय बनाकर किसी को उपसम्पदा देते थे।....।

''भिक्षुओ! पण्डक को उपाध्याय बनाकर किसी को उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये।.....।

उस समय भिक्षु स्तेयसवासक को भी उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा देते थे।.....

''भिक्षुओ! स्तेयसंवासक को उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये।....

उस समय भिक्षु अन्य सम्प्रदाय में गये (तीर्थिक) को भी उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा....।

''भिक्षुओ! अन्य सम्प्रदाय में गये भिक्षु को उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये....।''

...तिर्यग्गत को भी उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा....।

''भिक्षुओ! तिर्यग्गत को उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा नहीं.....।

....मातृघातक को भी उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा .. ।

''भिक्षुओ! मातृघातक को उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा नहीं.....।

... पितृघातक को भी उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा......।

''भिक्षुओ! पितृघातक को उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा नहीं....।

.....अर्हद्घातक को भी उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा....।

''भिक्षुओ! अर्हद्घातक को उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा नहीं.....।

.. ..भिक्षुणीदूषक को भी उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा.....।

''भिक्षुओ! भिक्षुणीदूषक को भी उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा नहीं.....।

....सङ्घभेदक को भी उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा.. ...।

''भिक्षुओ! सङ्घभेदक को उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा नहीं....।

...लोहितोत्पादक को भी उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा.....।

''भिक्षुओ! लोहितोत्पादक को उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा नहीं.....।

[B.125] **लोहितुप्पादकुपज्झायेन उपसम्पादेतब्बो....पे०....न, भिक्खवे, उभतोब्यञ्जनकुपज्झायेन उपसम्पादेतब्बो। यो उपसम्पादेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

(न उपसम्पादेतब्बवारं १२-१५)

६१. अपत्तकादिवत्थु

१२१. तेन खो पन समयेन भिक्खू अपत्तकं उपसम्पादेन्ति। हत्थेसु पिण्डाय चरन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"सेय्यथापि तित्थिया" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, अपत्तको उपसम्पादेतब्बो। यो उपसम्पादेय्य, आपत्ति, दुक्कटस्सा** ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू अचीवरकं उपसम्पादेन्ति। नग्गा पिण्डाय चरन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—सेय्यथापि तित्थिया ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, अचीवरको उपसम्पादेतब्बो। यो उपसम्पादेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू अपत्तचीवरकं उपसम्पादेन्ति। नग्गा हत्थेसु पिण्डाय चरन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—" ....सेय्यथापि तित्थिया ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, अपत्तचीवरको उपसम्पादेतब्बो। यो उपसम्पादेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

[N.94] तेन खो पन समयेन भिक्खू याचितकेन पत्तेन उपसम्पादेन्ति। उपसम्पन्ने पत्तं पटिहरन्ति। हत्थेसु पिण्डाय चरन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—सेय्यथापि तित्थिया ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, याचितकेन पत्तेन उपसम्पादेतब्बो। यो उपसम्पादेय्य आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

.....उभतोव्यञ्जनक को भी उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा....।

"भिक्षुओ! उभतोव्यञ्जनक को उपाध्याय बनाकर उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। जो देगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।"

(न उपसम्पादेतब्ब वार ११-१५)

६१. अपात्रकादिवस्तु

१२१ उस समय भिक्षु विना पात्र वाले को भी उपसम्पदा दे देते थे। वे अन्य सम्प्रदाय वालों की तरह हाथ में ही भिक्षा लेते थे। यह देखकर मनुष्य खिन्न तथा उद्विग्न चिव होते थे। वे कहते थे कि ये तो अन्य सम्प्रदाय वालों की तरह भिक्षा करने लग गये।....। (भगवान् ने कहा—) **"भिक्षुओ! विना पात्रवाले को उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। जो देगा उसे 'दुष्कृत' (पाप) दोष लगेगा।**

उस समय कुछ भिक्षु (प्रत्याशी को) चीवर के विना ही उपसम्पदा देते थे।.... **"भिक्षुओ! चीवर के विना (प्रत्याशी को) उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। जो देगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा।**

उस समय कुछ भिक्षु उपसम्पदा चाहने वालों को पात्र एवं चीवर के विना ही उपसम्पदा देते थे।....(भगवान् ने आज्ञा दी—) **"भिक्षुओ! पात्र–चीवर के विना उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये।.....।**

उस समय कुछ भिक्षु माँगे हुए पात्र के सहारे से उपसम्पदा लेते थे। उपसम्पदा के बाद भिक्षु अपना पात्र लौटा लेते थे। अतः नवक भिक्षु को हाथों में ही भिक्षा लेनी पड़ती थी।.....।

तेन खो पन समयेन भिक्खू याचितकेन चीवरेन उपसम्पादेन्ति। उपसम्पन्ने चीवरं पटिहरन्ति। नग्गा पिण्डाय चरन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—सेय्यथापि तित्थिया ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, याचितकेन चीवरेन उपसम्पादेतब्बो।** यो उपसम्पादेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू याचितकेन पत्तचीवरेन उपसम्पादेन्ति। [B.126] उपसम्पन्ने पत्तचीवरं पटिहरन्ति। नग्गा हत्थेसु पिण्डाय चरन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति [R.91] खिय्यन्ति विपाचेन्ति—सेय्यथापि तित्थिया ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, याचितकेन पत्तचीवरेन उपसम्पादेतब्बो।** यो उपसम्पादेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा ति।

(न-उपसम्पादेतब्ब-वारं १६-२१)

न-उपसम्पादेतब्बेकवीसति-वारं निट्ठितं॥

६२. न-पब्बाजेतब्ब-द्वत्तिंसवारं

१२२. तेन खो पन समयेन भिक्खू हत्थच्छिन्नं पब्बाजेन्ति....पे०....पादच्छिन्नं पब्बाजेन्ति....पे०....हत्थपादच्छिन्नं पब्बाजेन्ति....पे०....कण्णच्छिन्नं पब्बाजेन्ति....पे०.... नासच्छिन्नं पब्बाजेन्ति.....पे०.....कण्णनासच्छिन्नं पब्बाजेन्ति....पे०....अङ्गुलिच्छिन्नं पब्बाजेन्ति ....पे०....अळच्छिन्नं पब्बाजेन्ति..... पे०.....कण्डरच्छिन्नं पब्बाजेन्ति.....

"भिक्षुओ! माँगे हुए पात्र के सहारे उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये.....।

उस समय कुछ भिक्षु माँगे हुए चीवर के सहारे से उपसम्पदा......।

"भिक्षुओ! माँगे हुए चीवर के सहारे से उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये.....।

उस समय कुछ भिक्षु माँगे हुए पात्र–चीवरों के सहारे से.....।"भिक्षुओ! माँगे हुए पात्र–चीवर के सहारे से उपसम्पदा नहीं.....।

(न उपसम्पादयितव्य वार १६–२१)

(न उपसम्पादयितव्य–एकवीसतिवार निष्ठित)

६२. न प्रवाजयितव्यद्वात्रिंशद्वार

१२२. (१) उस समय भिक्षु हाथ कटे हुए को भी प्रव्रज्या देते थे।.....

"भिक्षुओ! हाथ कटे हुए को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये।.....

(२) उस समय भिक्षु पैर कटे हुए को भी प्रव्रज्या देते थे......

"भिक्षुओ! पैर कटे हुए को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये।.....

(३) उस समय भिक्षु हाथ–पैर कटे हुए को भी प्रव्रज्या देते थे. ...

"भिक्षुओ! हाथ–पैर कटे हुए को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये.....।

(४) उस समय भिक्षु कान कटे हुए को भी प्रव्रज्या देते थे.....

"भिक्षुओ! कान कटे हुए को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये......।

(५) उस समय नाक कटे हुए को प्रव्रज्या दे देते थे......

"भिक्षुओ! नाक कटे हुए को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये....।

(६) उस समय भिक्षु कान–नाक कटे हुए को भी प्रव्रज्या दे दिया करते थे ....

"भिक्षुओ! कान–नाक कटे हुए प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये....।

(७) उस समय भिक्षु अङ्गुलि कटे हुए को भी प्रव्रज्या देतेथे

पे०....फणहत्थकं पब्बाजेन्ति....पे०....खुज्जं पब्बाजेन्ति....पे०....वामनं पब्बाजेन्ति....पे०.... गलगण्डिं पब्बाजेन्ति....पे०....लक्खणाहतं पब्बाजेन्ति....पे०....कसाहतं पब्बाजेन्ति....पे०.... लिखितकं पब्बाजेन्ति....पे०....सीपदिं पब्बाजेन्ति....पे०....पापरोगिं पब्बाजेन्ति....पे०.... परिसदूसकं पब्बाजेन्ति....पे०....काणं पब्बाजेन्ति....पे०....कुणिं पब्बाजेन्ति....पे०....खञ्जं पब्बाजेन्ति....पे०....पक्खहतं पब्बाजेन्ति...पे०...छिन्निरियापथं पब्बाजेन्ति....पे०....जरादुब्बलं

''भिक्षुओ! अङ्गुलि कटे हुए को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये.....।

(८) उस समय भिक्षु अङ्गुलियों के पोर कटे हुए को भी प्रवज्या देते थे.....

''भिक्षुओ! अङ्गुलियों के पोर कटे हुए को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये।.....

(९) उस समय भिक्षु अङ्गुलियों के नोक कटे हुए को प्रवज्या दे देते थे ....

''भिक्षुओ! अङ्गुलियों के नोक कटे हुए को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये....।

(१०) उस समय फण जैसे (अङ्गुलिरहित) हाथ वाले को भी प्रव्रज्या देते थे.....

''भिक्षुओ! फण जैसे हाथ वाले को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये....।

(११) उस समय भिक्षु कुब्ज (कुबड़े) पुरुष को प्रव्रज्या दे देते थे.....

''भिक्षुओ! कुब्ज को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये.....।

(१२) उस समय वामन (बौने) पुरुष को भी प्रव्रज्या दे देते थे....

''भिक्षुओ! वामन (बौने) पुरुष को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये.....।

(१३) उस समय गलगण्ड (घेंघा) रोग वाले को भी प्रव्रज्या दे देते थे......

''भिक्षुओ! गलगण्ड रोगी को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये.....।

(१४) उस समय भिक्षु तपे लोहे से दागे गये (लक्षणाहत) को भी प्रव्रज्या दे देते थे.....

''भिक्षुओ! तपे लौह से दागे गये (लक्षणाहत) को प्रव्रज्या नहीं.....।

(१५) उस समय भिक्षु कोड़ों से पीटे गये (कशाहत) को भी प्रव्रज्या दे देते थे.....

''भिक्षुओ! कशाहत को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये....।

(१६) उस समय भिक्षु नामी चौर (लिखितक) को भी प्रव्रज्या दे देते थे......

''भिक्षुओ! लिखितक को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये......।

(१७) उस समय भिक्षु श्लीपद (फील पाँव) रोगी को भी प्रव्रज्या दे देते थे. ....

''भिक्षुओ! श्लीपद रोगी को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये......।

(१८) उस समय भिक्षु पाप रोगी (असाध्य रोगी) को भी प्रव्रज्या दे देते थे....

''भिक्षुओ! पापरोगी को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये....।

(१९) उस समय भिक्षु परिषद्– दूषक (वितण्डावादी) को भी प्रव्रज्या दे देते थे.....

''भिक्षुओ! वितण्डावादी को प्रव्रज्या नहीं देना चाहिये.....।

(२०) उस समय एक आँख से काणे को भी भिक्षु प्रव्रज्या दे देते थे....

''भिक्षुओ! एक आँख से काणे को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये.....।

(२१) उस समय भिक्षु दोनों हाथो से लूले को प्रव्रज्या दे देते थे. ...

''भिक्षुओ! दोनों हाथों से लूले को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये.....।

(२२) उस समय भिक्षु लंगड़े को प्रव्रज्या दे देते थे......

''भिक्षुओ! लंगड़े को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये.....।

(२३) उस समय पक्षाघातरोगी को भी प्रव्रज्या दे देते थे...

''भिक्षुओ! पक्षाघाती को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये......।

पब्बाजेन्ति....पे०....अन्धं पब्बाजेन्ति....पे०....मूगं पब्बाजेन्ति....पे०....बधिरं पब्बाजेन्ति....पे०....अन्धमूगं पब्बाजेन्ति...पे०....अन्धबधिरं पब्बाजेन्ति....पे०....मूगबधिरं पब्बाजेन्ति....पे०....अन्धमूगबधिरं पब्बाजेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, हत्थच्छिन्नो पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न, भिक्खवे, पादच्छिन्नो पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न, भिक्खवे, हत्थपादच्छिन्नो पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न, भिक्खवे कण्णच्छिन्नो पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न, भिक्खवे, नासच्छिन्नो पब्बाजेतब्बो**...पे०....**न, भिक्खवे, कण्णनासच्छिन्नो पब्बाजेतब्बो**....पे०.... **न, भिक्खवे, अङ्गुलिच्छिन्नो पब्बाजेतब्बो** ....पे०.... [N.95] **न, भिक्खवे, अळच्छिन्नो पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न, भिक्खवे, कण्डरच्छिन्नो पब्बाजेतब्बो** ....पे०....**न, भिक्खवे, फणहत्थको पब्बाजेतब्बो**.....पे०....**न, भिक्खवे, खुज्जो पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न, भिक्खवे, वामनो पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न, भिक्खवे, गलगण्डी पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न, भिक्खवे, लक्खणाहतो पब्बाजेतब्बो** [B.127] ....पे०....**न, भिक्खवे, कसाहतो पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न भिक्खवे, लिखितको पब्बाजेतब्बो**.....पे०.... **न, भिक्खवे, सीपदी पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न, भिक्खवे, पापरोगी पब्बाजेतब्बो**...पे०.... **न, भिक्खवे, कुणी पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न, भिक्खवे, खञ्जो पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न, भिक्खवे, पक्खहतो पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न, भिक्खवे, छिन्निरियापथो पब्बाजेतब्बो** ....पे०....**न, भिक्खवे, मूगो पब्बाजेतब्बो** ....पे०....**न, भिक्खवे, बधिरो पब्बाजेतब्बो** ....पे०....**न, भिक्खवे, अन्धमूगो पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न, भिक्खवे, अन्धबधिरो पब्बाजेतब्बो**....पे०....**न, भिक्खवे,**

---

(२४) उस समय भिक्षु ईर्यापथरहित (गन्दी चालचलन वाले) को भी प्रव्रज्या दे देते थे.....

''भिक्षुओ! ईर्यापथरहित को प्रव्रज्या नहीं देना चाहिये......।

(२५) उस समय भिक्षु बुढापे से दुर्बल को भी प्रव्रज्या दे देते थे.....

''भिक्षुओ! बुढापे से दुर्बल को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये.....।

(२६) उस समय भिक्षु अन्धे को भी प्रव्रज्या दे देते थे.....

''भिक्षुओ! अन्धे को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये.....।

(२७) उस समय भिक्षु गूँगे पुरुष को भी प्रवज्या दे देते थे ....

''भिक्षुओ! गूँगे पुरुष को प्रव्रज्या नहीं देना चाहिये.....।

(२८) उस समय भिक्षु बहरे पुरुष को भी प्रव्रज्या दे देते थे.... .।

''भिक्षुओ! बहरे पुरुष को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये.....।

(२९) उस समय भिक्षु अन्धे–गूँगे पुरुष को भी प्रव्रज्या दे देते थे....

''भिक्षुओ! अन्धे–गूँगे पुरुष को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये....।

(३०) उस समय भिक्षु अन्धे और बहरे पुरुष को भी प्रव्रज्या देते थे....

''भिक्षुओ! अन्धे–बहरों को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये....।

(३१) उस समय भिक्षु गूँगे और बहरों को भी प्रव्रज्या दे देते थे

''भिक्षुओ! गूँगे और बहरो को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये.....।

(३२) उस समय भिक्षु अन्धे–गूँगे–बहरो को भी प्रव्रज्या दे देते थे

मूगबधिरो पब्बाजेतब्बो....पे०....**न, भिक्खवे, अन्धमूगबधिरो पब्बाजेतब्बो। यो पब्बाजेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

न पब्बाजेतब्ब-द्वत्तिसवारं निट्ठितं॥

दायज्जभाणवारो निट्ठितो नवमो॥

६३. अलज्जिनिस्सयवत्थूनि

१२३. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू अलज्जीनं निस्सयं देन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, अलज्जीनं निस्सयो दातब्बो। यो ददेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू अलज्जीनं निस्साय वसन्ति। ते पि न चिरस्सेव अलज्जिनो होन्ति पापभिक्खू। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, अलज्जीनं निस्साय वत्थब्बं। यो वसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं—'न अलज्जीनं निस्सयो दातब्बो, न अलज्जीनं निस्साय वत्थब्बं' ति। कथं नु खो मयं जानेय्याम लज्जिं वा अलज्जिं वा" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, चतूहपञ्चाहं आगमेतुं याव भिक्खुसभागतं जानामी** ति।

६४. गमिकादिनिस्सयवत्थूनि

[N.96, B.128, R.92] १२४. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु कोसलेसु जनपदे

"भिक्षुओ! अन्धे–गूँगे–बहरों को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। जो प्रव्रज्या देगा उसे को 'दुष्कृत ' दोष लगेगा।"

नप्रव्राजयितव्यद्वित्रिंशद्वार निष्ठित।।

नवम दायाद्य भाणवार समाप्त।।

६३. अलज्जिनिःश्रयवस्तु

१२३. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अलज्जियों (जान कर अपराध करने वाले, अपराध को छिपाने वाले, अगम्य मार्गों पर जाने वाले) को निःश्रय देते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा–) **भिक्षुओ! अलज्जियों को निःश्रय नहीं देना चाहिये। जो दे उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**

उस समय भिक्षु लज्जाहीनों (अलज्जियों) का निःश्रय लेकर वास करते थे।....(भगवान् ने कहा–) **"भिक्षुओ! लज्जाहीनों का निःश्रय लेकर वास नहीं करना चाहिये। जो वास करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**

तब भिक्षुओं को यह विचार हुआ–"भगवान् का आदेश है कि अलज्जियों को निश्रय नहीं देना चाहिये। और यह भी कहा है–लज्जाहीनों का निःश्रय लेकर वास नहीं करना चाहिये।

परन्तु हम इन लज्जाशील तथा लज्जाहीनों को कैसे जानेंगे?" तब भिक्षुओ ने यही बात भगवान् से पूछी। (भगवान् ने कहा–) **"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चार पाँच दिन प्रतीक्षा करनी चाहिये, ताकि उनके स्वभाव का ज्ञान हो जाय।**

६४. गमिकादिनिःश्रयवस्तुएँ

१२४ उस समय कोई भिक्षु कोसल देश में रास्ते चला जा रहा था। उस समय उस भिक्षु

अद्धानमग्गपटिपन्नो होति। अथ खो तस्स भिक्खुनो एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं—'न अनिस्सितेन वत्थब्बं' ति। अहं चम्हि निस्सयकरणीयो अद्धानमग्गपटिपन्नो, कथं नु खो मया पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, अद्धानमग्गपटिपन्नेन भिक्खुना निस्सयं अलभमानेन अनिस्सितेन वत्थुं**" ति। (१)

तेन खो पन समयेन द्वे भिक्खू कोसलेसु जनपदे अद्धानमग्गपटिपन्ना होन्ति। ते अञ्ञतरं आवासं उपगच्छिंसु। तत्थ एको भिक्खु गिलानो होति। अथ खो तस्स गिलानस्स भिक्खुनो एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं—'न अनिस्सितेन वत्थब्बं' ति। अहं चम्हि निस्सयकरणीयो गिलानो, कथं नु खो मया पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, गिलानेन भिक्खुना निस्सयं अलभमानेन अनिस्सितेन वत्थुं**" ति। (२)

अथ खो तस्स गिलानुपट्ठाकस्स भिक्खुनो एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं—'न अनिस्सितेन वत्थब्बं' ति। अहं चम्हि निस्सयकरणीयो, अयं च भिक्खु गिलानो, कथं नु खो मया पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, गिलानुपट्ठाकेन भिक्खुना निस्सयं अलभमानेन याचियमानेन अनिस्सितेन वत्थुं**" ति। (३)

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु अरञ्ञे विहरति। तस्स च तस्मिं सेनासने फासु होति। अथ खो तस्स भिक्खुनो एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं—'न अनिस्सितेन वत्थब्बं' ति। अहं चम्हि निस्सयकरणीयो अरञ्ञे विहरामि, मय्हं च इमस्मिं सेनासने फासु

के मन में यह हुआ—"भगवान् का आदेश है कि किसी को निःश्रय लिये विना वास नहीं करना चाहिये; जबकि मैं अभी मार्ग में चल रहा हूँ, निःश्रययोग्य होते हुए भी किससे निःश्रय लूँ? अब मुझे क्या करना चाहिये?" भगवान् ने इस विषय में निवेदन किया गया। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ—रास्ते में चलते (यात्रा करते) समय, भिक्षु को निःश्रय न पाने पर निःश्रय के विना ही वास करने की।** (१)

उस समय दो भिक्षु कोसल देश में रास्ते पर चल रहे थे। वे (यात्रा के बीच में ही) एक आवास पर गये। वहाँ एक भिक्षु किसी रोग से पीड़ित हो गया। तब उस रोगी के भिक्षु के मन में यह विचार उठा—"भगवान् का आदेश है कि निःश्रय के विना वास नहीं करना चाहिये। और मुझे निःश्रय चाहिये, परन्तु मैं रोगाक्रान्त हूँ। अब मुझे क्या करना चाहिये?" भिक्षुओं ने भगवान् के सम्मुख यह प्रश्न रखा। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! रास्ते में जाते हुए रोगी भिक्षुको, निःश्रय न पाने पर निःश्रय पाये विना भी आवास में रहने की अनुमति देता हूँ।**" (२)

तब उस रोगी के उपस्थापक (परिचारक) भिक्षु को विचार हुआ—"भगवान् का आदेश है—'अनिःशृत को वास नहीं करना चाहिये।' और मैं निःश्रय करना चाहता हूँ तथा यह भिक्षु रोगी है, यहाँ मुझे अब क्या करना चाहिये?" समय आने पर भगवान् के सामने यह समस्या रखी गयी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रोगी के परिचारक भिक्षु को, इच्छा रखते हुए भी निःश्रय न पाने पर, निःश्रय के विना ही रहने की।**" (३)

उस समय एक भिक्षु जङ्गल में रहता था। यद्यपि वहाँ रहना उसको अनुकूल पड़ रहा था। तब उस भिक्षु के मन में यह विचार आया—"भगवान् का आदेश है—"अनिःशृत को वास नहीं करना

होति, कथं नु खो मया पटिपज्जितब्बं'' ति ? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**अनुजानामि, भिक्खवे, आरञ्ञिकेन भिक्खुना फासुविहारं सल्लक्खेन्तेन निस्सयं अलभमानेन अनिस्सितेन वत्थुं— यदा पटिरूपो निस्सयदायको आगच्छिस्सति, तदा तस्स निस्साय वसिस्सामी**'' ति। (४)

६५. गोत्तेन अनुस्सावनानुजानना

[B.129] १२५. तेन खो पन समयेन आयस्मतो महाकस्सपस्स उपसम्पदापेक्खो होति। अथ खो आयस्मा महाकस्सपो आयस्मतो आनन्दस्स सन्तिके दूतं पाहेसि—''आगच्छतु आनन्दो इमं अनुस्सावेस्सतू'' ति। आयस्मा आनन्दो एवमाह—''नाहं उस्सहामि थेरस्स [R.93] नामं गहेतुं, गरु मे थेरो'' ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**अनुजानामि, भिक्खवे, गोत्तेन पि अनुस्सावेतुं**'' ति।

६६. द्वेउपसम्पदापेक्खादिवत्थु

१२६. तेन खो पन समयेन आयस्मतो महाकस्सपस्स द्वे उपसम्पदापेक्खा होन्ति। [N.97] ते विवदन्ति—''अहं पठमं उपसम्पज्जिस्सामि, अहं पठमं उपसम्पज्जिस्सामी'' ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**अनुजानामि, भिक्खवे, द्वे एकानुस्सावने कातुं**'' ति। (१)

तेन खो पन समयेन सम्बहुलानं थेरानं उपसम्पदापेक्खा होन्ति। ते विवदन्ति— ''अहं पठमं उपसम्पज्जिस्सामि, अहं पठमं उपसम्पज्जिस्सामी'' ति। थेरा एवं आहंसु—

चाहिये।' मुझे निश्रय चाहिये और यद्यपि यह स्थान मुझे अनुकूल है परन्तु यह साथ का भिक्षु रोगी है। मुझे ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिये?'' भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा–) **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आरण्यक (जङ्गल में रहने वाले) भिक्षु को जङ्गल में रहना अनुकूल होने पर, निःश्रय न पाने पर अनिःशृत रूप में ही रहने की।''** (४)

६५. स्थविर भिक्षु को गोत्रनाम से आह्वान की अनुमति

१२५. उस समय आयुष्मान् महाकाश्यप को किसी को उपसम्पदा दिलवानी थी। अतः उन्होंने आयुष्मान् आनन्द के पास दूत भेजा–''आनन्द आवें और इस उपसम्पदापेक्षी का अनुश्रावण (सङ्घ के सम्मुख उसपसम्पदापेक्षी, उपाध्याय तथा आचार्य का नाम उच्च स्वर से लेना) करें।'' यह सुनकर आयुष्मान् आनन्द ने कहा–''आयुष्मान् महाकाश्यप मुझ से ज्येष्ठ हैं, अतः परिषद् (सङ्घ) में उनका विना विशेषण के नाम लेने का मुझमें साहस नहीं है।'' भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् न कहा–) ''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ– (ज्येष्ठ भिक्षु को) गोत्र–नाम से आह्वान करने की।**''

६६. अनेकउपसम्पदापेक्षवस्तु

१२६. उस समय आयुष्मान् महाकाश्यप के पास एक साथ दो उपसम्पदा चाहने वाले आ गये। पहले किसका उपसम्पदा दिलायी जाय–इस पर वे दोनों विवाद करने लगे। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा–)

''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ एक साथ दो के अनुश्रावण की।**'' (१)

उस समय बहुत से स्थविर भिक्षुओं के पास एक साथ ही बहुत से उपसम्पदापेक्षी आ गये। वे ''मैं पहले उपसम्पदा लूँगा, मैं पहले उपसम्पदा लूँगा'–इस तरह विवाद करने लगे।'' भगवान् के सम्मुख यह विवाद रखा गया। (भगवान् ने कहा–)

"हन्द, मयं, आवुसो, सब्बेव एकानुस्सावने करोमा" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **"अनुजानामि, भिक्खवे, द्वे तयो एकानुस्सावने कातुं, तं च खो एकेन उपज्झायेन, न त्वेव नानुपज्झायेना"** ति। (२)

६७. गब्भवीसूपसम्पदानुजानना

१२७. तेन खो पन समयेन आयस्मा कुमारकस्सपो गब्भवीसो उपसम्पन्नो अहोसि। अथ खो आयस्मतो कुमारकस्सपस्स एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं—'न ऊनवीसतिवस्सो पुग्गलो उपसम्पादेतब्बो' ति। अहं चम्हि गब्भवीसो उपसम्पन्नो। उपसम्पन्नो नु खोम्हि, न नु खो उपसम्पन्नो" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **"यं, भिक्खवे, मातुकुच्छिस्मिं पठमं चित्तं उप्पन्नं, पठमं विञ्ञाणं पातुभूतं, तदुपादाय सा वस्स जाति। अनुजानामि, भिक्खवे, गब्भवीसं उपसम्पादेतुं"** ति।

६८. उपसम्पदाविधि

१२८. तेन खो पन समयेन उपसम्पन्ना दिस्सन्ति कुट्ठिका, पि, गण्डिका [B.130] पि, किलासिका पि, सोसिका पि, अपमारिका पि। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, उपसम्पादेन्तेन तेरस[1] अन्तरायिके धम्मे पुच्छितुं।** एवं च पन, भिक्खवे, पुच्छितब्बो—

"सन्ति ते एवरूपा आबाधा—कुट्ठं, गण्डो, किलासो, सोसो, अपमारो? मनुस्सोसि? पुरिसोसि? भुजिस्सोसि? अनणोसि? नसि राजभटो? अनुञ्ञातोसि मातापितूहि?

"अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! एक ही अनुश्रावण में दो या तीन उपसम्पदापेक्षियों के अनुश्रावण की; यदि उन दोनों या तीनों का एक ही उपाध्याय हो, अनेक न हों।"

६७. गर्भ में बीस वर्ष वाले को उपसम्पदा की अनुज्ञा

१२७. उस समय आयुष्मान् कुमारकाश्यप गर्भ में आने से बीस वर्ष गिनकर ही उपसम्पन्न हो गये। तब आयुष्मान् कुमारकाश्यप को यह विचार हुआ—"भगवान् का आदेश है—बीस वर्ष से कम आयु वाले को उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। जबकि मेरी उपसम्पदा गर्भ से बीस वर्ष गिनकर हुई है। अतः मेरी यह उपसम्पदा वैध (भगवान् की प्रज्ञप्ति के अनुसार) है, या नहीं?" भगवान् से यह बात पूछी गयी।.....

"भिक्षुओ! जब माता की कोंख में सर्वप्रथम चित्त तथा विज्ञान उत्पन्न हुआ तभी से जन्म माना जाता है। अतः, भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गर्भ से बीस वर्ष वाले को उपसम्पदा देने की।"

६८. उपसम्पदाविधि

१२८. उस समय (सङ्घ) में कई (गलित) कुष्ठ के रोगी भी उपसम्पन्न दिखायी देते थे, कई गण्डमाल के रोगी भी, कई किलास (श्वेत कुष्ठ) के रोगी और कई शोष (क्षय) के रोगी भी तथा कई अपस्मार रोगी भी। भगवान् के सामने यह समस्या रखी गयी। (भगवान् ने उत्तर दिया—) **"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उपसम्पदा चाहने वाले से ये तेरह आन्तरायिक (विघ्नकारक) बातें पूछने की।**

भिक्षुओ! उस उपसम्पदापेक्षी से यों पूछना चाहिये—क्या तुम्हें ऐसा कोई रोग है, जैसे— (१) गलित कुष्ठ, (२) गण्डमाल, (३) किलास (त्वचा पर स्थान–स्थान पर सफेद चिह्न), (४) शोष (क्षय

---

१. तस्स—रो. पोत्थके पाठो।

परिपुण्णवीसतिवस्सोसि ? परिपुण्णं ते पत्तचीवरं ? किन्नामोसि ? कोनामो ते उपज्झायो''ति ?

तेन खो पन समयेन भिक्खू अननुसिट्ठे उपसम्पदापेक्खे अन्तरायिके धम्मे पुच्छन्ति। उपसम्पदापेक्खा वित्थायन्ति, मङ्कू होन्ति, न सक्कोन्ति विस्सज्जेतुं। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। [R.94] **अनुजानामि, भिक्खवे, पठमं अनुसासित्वा पच्छा अन्तरायिके धम्मे पुच्छितुं** ति।

तत्थेव सङ्घमज्झे अनुसासन्ति। उपसम्पदापेक्खा तथेव वित्थायन्ति, मङ्कू होन्ति, न सक्कोन्ति विस्सज्जेतुं। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, एकमन्तं अनुसासित्वा सङ्घमज्झे अन्तरायिके धम्मे पुच्छितुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, अनुसासितब्बो—

१२९. पठमं उपज्झं गाहापेतब्बो। उपज्झं गाहापेत्वा पत्तचीवरं आचिक्खितब्बं— [N.98] 'अयं ते पत्तो, अयं सङ्घाटि, अयं उत्तरासङ्गो, अयं अन्तरवासको। गच्छ, अमुम्हि ओकासे तिट्ठाही' ति।

बाला अब्यत्ता अनुसासन्ति। दुरनुसिट्ठा उपसम्पदापेक्खा वित्थायन्ति, मङ्कू होन्ति, न सक्कोन्ति विस्सज्जेतुं। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, बालेन अब्यत्तेन अनुसासितब्बो। यो अनुसासेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति। **अनुजानामि, भिक्खवे, ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन अनुसासितुं** ति।

रोग) तथा (५) अपस्मार (मृगी)? (६) तूँ मनुष्य है (नाग आदि तो नहीं)? (७) तूँ पुरुष है? (८) तूँ स्वतन्त्र (भुजिष्य) है (दास तो नहीं)?, (९) तुझ पर किसी का ऋण तो नहीं? (१०) तू राजा का भट (सैनिक) तो नहीं है?, (११) तेरे माता–पिता ने तुझको प्रव्रजित होने की आज्ञा दे दी है? (१२) तूँ पूरे बीस वर्ष का है? (१३) तेरे पास पात्र चीवर हैं, तेरा क्या नाम है और तेरे उपाध्याय का क्या नाम है?

उस समय भिक्षु लोग अनुशासन किये विना ही उपसम्पदापेक्षको से ये आन्तरायिक बातें पूछने लगे। तब उपसम्पदापेक्षक या तो चुप हो जाते थे, या मूक रह जाते थे या फिर इनका उत्तर नहीं देना चाहते थे। भगवान् से इस विषय में निवेदन किया। (भगवान् ने उत्तर दिया–)

''भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पहले अनुशासन (शिक्षा) देकर पीछे इन आन्तरायिक (उपसम्पदा में बाधक) बातों को पूछने की।''

भिक्षु उपसम्पदापेक्षकों को सङ्घ के बीच में ही अनुशासन (शिक्षा) करने लगे। वे उपसम्पदा चाहने वाले फिर उसी तरह चुप रह जाते थे। .....उत्तर नहीं दे पाते थे।...... **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, उपसम्पदापेक्षक को एक तरफ ले जाकर इन आन्तरायिक बातों को बताने की। तब फिर सङ्घ के बीच में पूछने की।**

भिक्षुओ! शिक्षा (अनुशासन) देने का क्रम यह है–

१२९. पहले उपाध्याय ग्रहण कराना चाहिये। उपाध्याय का ग्रहण कराकर पात्र–चीवर के विषय में बताना चाहिये कि यह तेरा पात्र है, यह सङ्घाटी है, यह उत्तरासङ्ग है, यह अन्तरवासक है। जा, उस स्थान पर जाकर खड़ा हो।

उस समय बाल (मूर्ख) एवं अव्यक्त (अकुशल) भिक्षु भी अनुशासन करने लगे थे। (परिणाम

असम्मता अनुसासन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, असम्मतेन अनुसासितब्बो। यो अनुसासेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति। **अनुजानामि,** [B.131] **भिक्खवे, सम्मतेन अनुसासितुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, सम्मन्नितब्बो—अत्तना व अत्तानं सम्मन्नितब्बं, परेन वा परो सम्मन्नितब्बो।

कथं च अत्तना व अत्तानं सम्मन्नितब्बो? ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। इत्थन्नामो इत्थन्नामस्स आयस्मतो उपसम्पदापेक्खो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, इत्थन्नामो इत्थन्नामं अनुसासेय्या" ति। एवं अत्तना व अत्तानं सम्मन्नितब्बं।

कथं च पन परेन परो सम्मन्नितब्बो? ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। इत्थन्नामो इत्थन्नामस्स आयस्मतो उपसम्पदापेक्खो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, अहं इत्थन्नामं अनुसासेय्या" ति। एवं परेन परो सम्मन्नितब्बो।

तेन सम्मतेन भिक्खुना उपसम्पदापेक्खो उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—"सुणसि, इत्थन्नाम, अयं ते सच्चकालो भूतकालो। यं जातं तं सङ्घमज्झे पुच्छन्ते सन्तं अत्थीति वत्तब्बं, असन्तं नत्थीति वत्तब्बं। मा खो वित्थासि, मा खो मङ्कु अहोसि। एवं तं पुच्छिस्सन्ति—

यह हुआ कि) ठीक से अनुशासन न होने के कारण उपसम्पदापेक्षी (पूछने पर) या तो चुप रह जाते या मूक बन जाते थे। भगवान् को यह स्थिति बतायी गयी।....

"भिक्षुओ! मूर्ख एवं अकुशल भिक्षु अनुशासन न करें। जो अनुशासन करेंगे उनको दुष्कृत दोष होगा। अतः **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चतुर एवं कुशल भिक्षुओं द्वारा अनुशासन करने की।**

उस समय कुछ भिक्षु सम्मति के विना ही अनुशासन करने लगे। भगवान् के सामने यह बात रखी गयी।...

"भि॰ • ' **सम्मति के विना कोई भिक्षु अनुशासन न करे। जो करेगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा। अतः भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सम्मति प्राप्त भिक्षु को ही अनुशासन करने की।**

"भिक्षुओ! यह सम्मति दो प्रकार से प्राप्त की जा सकती है; (१) अपने लिये या फिर (२) दूसरे के लिये। अपने लिये सम्मति प्राप्त करने की यह विधि है—चतुर व समर्थ भिक्षु सङ्घ को यों सूचित करे—

'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने—यह अमुक नाम वाला, अमुक नाम वाले आयुष्मान् से उपसम्पदापेक्षी है। यदि सङ्घ उचित समझे तो मैं इस नाम वाला भिक्षु इस नाम वाले पुरुष का अनुशासन करूँ।'

कैसे दूसरे के लिये सम्मति लेनी चाहिये? चतुर और समर्थ भिक्षु सङ्घ को यों सूचित करे—

ज्ञप्ति— 'भन्ते! सङ्घ मेरी बात सुने। यह इस नाम वाला पुरुष इस नाम वाले आयुष्मान् का उपसम्पदापेक्षी (शिष्य) है। यदि सङ्घ उचित समझे तो इस नाम वाला भिक्षु इस नाम वाले पुरुष को उपसम्पदा का अनुशासन करे।'—इस प्रकार दूसरे के लिये सम्मति लेनी चाहिये।

तब उस सम्ममति प्राप्त भिक्षु उपसम्पदापेक्षी के पास जाकर यों कहना चाहिये—

अनुशासन— 'भो अमुक नाम वाले! सुनते हो! यह सत्य बोलने का समय है। जैसा हुआ हो वैसा ही कह देने का समय है। जो हुआ—उसे सङ्घ के बीच में, तुमसे पूछे जाते समय, तुम्हे बताना

"सन्ति ते एवरूपा आबाधा—कुट्ठं, गण्डो, किलासो, सोसो, अपमारो ? मनुस्सोसि ? पुरिसोसि ? भुजिस्सोसि ? अनणोसि ? नसि राजभटो ? अनुञ्ञातोसि मातापितूहि ? परिपुण्णवीसतिवस्सोसि ? परिपुण्णं ते पत्तचीवरं ? किन्नामोसि ? कोनामो ते उपज्झायो" ति ?

एकतो आगच्छन्ति। न, भिक्खवे, एकतो आगन्तब्बं। अनुसासकेन पठमतरं आगन्त्वा सङ्घो ञापेतब्बो—'सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। इत्थन्नामो इत्थन्नामस्स आयस्मतो उपसम्पदापेक्खो। अनुसिट्ठो सो मया। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, इत्थन्नामो आगच्छेय्या' ति। 'आगच्छाही' [B.95] ति वत्तब्बो।

एकंसं उत्तरासङ्गं कारापेत्वा भिक्खूनं पादे वन्दापेत्वा उक्कुटिकं निसीदापेत्वा अञ्जलिं पग्गण्हापेत्वा उपसम्पदं याचापेतब्बो—"सङ्घं, भन्ते, उपसम्पदं याचामि। उल्लुम्पतु मं, भन्ते, सङ्घो अनुकम्पं उपादाय। दुतियं पि, भन्ते, सङ्घं उपसम्पदं याचामि। उल्लुम्पतु मं, भन्ते, सङ्घो अनुकम्पं उपादाय। ततियं पि, भन्ते, सङ्घं उपसम्पदं याचामि। उल्लुम्पतु मं, [N.99, B.132] भन्ते, सङ्घो अनुकम्पं उपादाया" ति। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

"सुणातु मे,भन्ते, सङ्घो। अयं इत्थन्नामो इत्थन्नामस्स आयस्मतो उपसम्पदापेक्खो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, अहं इत्थन्नामं अन्तरायिके धम्मे पुच्छेय्यं" ति ? सुणसि, इत्थन्नाम, अयं ते सच्चकालो भूतकालो। यं जातं तं पुच्छामि। सन्तं अत्थीति वत्तब्बं, असन्तं नत्थी ति

चाहिये। यदि हुआ हो तो 'हाँ' कहना। यदि न हुआ हो तो 'ना' कहना। झूठ नहीं बोलना, न चुप ही रहना। वे तुम से यह पूछेंगे—तुम्हें ऐसा कोई रोग तो नहीं है; जैसे— कुष्ठ, गलगण्ड, किलास, शोष या अपस्मार? तुम मनुष्य तो हो? तुम पुरुष हो (हिंजड़े तो नहीं)? तुम स्वतन्त्र हो (दास तो नहीं)? तुम ऋणमुक्त तो हो? तुम राजसेवक तो नहीं रहे हो? माता–पिता ने तुमक को प्रव्रजित होने की अनुज्ञा दे दी है? तुम बीस वर्ष के हो चुके हो? तुम्हारे पास पूरे पात्र–चीवर हैं? तुम्हारा क्या नाम है? तथा तुम्हारे उपाध्याय का क्या नाम है?'

उस समय उपसम्पदापेक्षी एवं उपाध्याय—दोनों एक साथ आते थे। (भगवान् ने कहा—) "भिक्षुओ! दोनों को एक साथ नहीं आना चाहिये। (अपितु) अनुशासक पहले आकर सङ्घ को सूचित करे—'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। यह इस नाम का पुरुष इस नाम वाले आयुष्मान् से उपसम्पदा चाहता है। मैंने उसको अनुशासन किया है। यदि सङ्घ चार बातों से उचित समझे तो इस नाम वाला (उपसम्पदापेक्षी) पुरुष सङ्घ के बीच आवे।'

तब सङ्घ को 'आओ' कहना चाहिये। फिर एक कन्धे पर उत्तरासङ्ग कराकर, भिक्षुओं के चरण–वन्दन कराकर, उकड़ूँ बैठा कर, हाथ जुड़वाकर, उससे यों उपसम्पदा मँगवानी चाहिये— "भन्ते! सङ्घ से मैं उपसम्पदा (दीक्षा) चाहता हूँ। पूज्य सङ्घ कृपा करके मेरा उद्धार करें।' दूसरी बार भी.. तीसरी बार भी याचना करवानी चाहिये—'पूज्य सङ्घ से मैं उपसम्पदा चाहता हूँ। पूज्य सङ्घ कृपा कर मेरा उद्धार करे।'

फिर चतुर एवं समर्थ भिक्षु सङ्घ को ज्ञापित करे—'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने—यह इस नाम वाला पुरुष इस नाम वाले आयुष्मान् का उपसम्पदा चाहनेवाला (शिष्य) है। यदि सङ्घ चार बातों से उचित समझे तो इस नामवाले इस प्रत्याशी से तेरह आन्तरायिक बातो के विषय में प्रश्न करूँ?

वत्तब्बं। सन्ति ते एवरूपा आबाधा—'कुट्ठं, गण्डो,....पे०...कोनामो ते उपज्झायो ति? ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

१३०. "सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं इत्थन्नामो इत्थन्नामस्स आयस्मतो उपसम्पदा-पेक्खो, परिसुद्धो, अन्तरायिकेहि धम्मेहि, परिपुण्ण स्स पत्तचीवरं। इत्थन्नामो सङ्घं उपसम्पदं याचति इत्थन्नामेन उपज्झायेन। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो इत्थन्नामं उपसम्पादेय्य इत्थन्नामेन उपज्झायेन। एसा ञत्ति।

'सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं इत्थन्नामो इत्थन्नामस्स आयस्मतो उपसम्पदापेक्खो, परिसुद्धो अन्तरायिकेहि धम्मेहि, परिपुण्णस्स पत्तचीवरं। इत्थन्नामो सङ्घं उपसम्पदं याचति इत्थन्नामेन उपज्झायेन। सङ्घो इत्थन्नामं उपसम्पादेति इत्थन्नामेन उपज्झायेन। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स उपसम्पदा इत्थन्नामेन उपज्झायेन, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

"दुतियं पि एतमत्थं वदामि—सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं इत्थन्नामो इत्थन्नामस्स आयस्मतो उपसम्पदापेक्खो, परिसुद्धो अन्तरायिकेहि धम्मेहि, परिपुण्णस्स पत्तचीवरं। इत्थन्नामो सङ्घं उपसम्पदं याचति इत्थन्नामेन उपज्झायेन। सङ्घो इत्थन्नामं उपसम्पादेति इत्थन्नामेन उपज्झायेन। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स उपसम्पदा इत्थन्नामेन उपज्झायेन, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

"ततियं पि एतमत्थं वदामि—सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं इत्थन्नामो [B.133] इत्थन्नामस्स आयस्मतो उपसम्पदापेक्खो, परिसुद्धो अन्तरायिकेहि धम्मेहि, परिपुण्णस्स पत्तचीवरं। इत्थन्नामो सङ्घं उपसम्पदं याचति इत्थन्नामेन उपज्झायेन। सङ्घो इत्थन्नामं उपसम्पादेति इत्थन्नामेन उपज्झायेन। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स उपसम्पदा इत्थन्नामेन उपज्झायेन, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

सुनते हो अमुक नाम वाले!....पूर्ववत्....तुम्हारे उपाध्याय का क्या नाम है?

फिर समर्थ एवं चतुर भिक्षु सङ्घ को सूचित करे—

१३०. (ज्ञप्ति—) 'भन्ते! सङ्घ मेरी बात सुने। यह इस नाम वाला पुरुष इस नाम आयुष्मान् का उपसम्पदापेक्षी तेरह विघ्नकारक बातों से परिशुद्ध है। इसके पात्र–चीवर परिपूर्ण हैं। यह इस नाम वाला इस नाम वाले को उपाध्याय बनाकर सङ्घ से उपसम्पदा चाहता है। यदि सङ्घ चार बातों से उचित समझे तो इस नाम वाले पुरुष को इस नाम वाले आयुष्मान् के उपाध्यायत्व मे उपसम्पदा दे'—यह सूचना है।

(अनुश्रावण—) 'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। यह इस नामवाला पुरुष इस नाम वाले आयुष्मान् का उपसम्पदापेक्षी शिष्य तेरह आन्तरायिक बातों से परिशुद्ध है। इसके पात्र–चीवर पूर्ण है। इस नाम वाला पुरुष इस नामवाले आयुष्मान् द्वारा सङ्घ से उपसम्पदा चाहता है। सङ्घ इस नाम वाले को इस नाम के उपाध्याय द्वारा उपसम्पन्न करता है। जिस आयुष्मान् को इस नाम वाले पुरुष की इस नाम के उपाध्याय द्वारा उपसम्पदा स्वीकार हो वह चुप रहे तथा जिसे स्वीकार न हो वह बोले।'

'दूसरी बार भी यह कहता हूँ—....पूर्ववत्....वह बोले।'

तीसरी बार भी कहता हूँ—. ...पूर्ववत्.....वह बोले।'

''उपसम्पन्नो सङ्घेन इत्थन्नामो इत्थन्नामेन उपज्झायेन। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी'' ति॥

उपसम्पदाकम्मं निट्ठितं॥

६९. चत्तारो निस्सया

[N.100] १३१. तावदेव छाया मेतब्बा, उतुपमाणं आचिक्खितब्बं, दिवसभागो आचि-
[R.96] क्खितब्बो, सङ्गीति आचिक्खितब्बा, चत्तारो निस्सया आचिक्खितब्बा—

(१) ''पिण्डियालोपभोजनं निस्साय पब्बज्जा। तत्थ ते यावजीवं उस्साहो करणीयो। अतिरेकलाभो—सङ्घभत्तं, उद्देसभत्तं, निमन्तनं, सलाकभत्तं, पक्खिकं, उपोसथिकं, पाटिपदिकं।

(२) ''पंसुकूलचीवरं निस्साय पब्बज्जा। तत्थ ते यावजीवं उस्साहो करणीयो। अतिरेकलाभो—खोमं, कप्पासिकं, कोसेय्यं, कम्बलं, साणं, भङ्गं।

(३) ''रुक्खमूलसेनासनं निस्साय पब्बज्जा। तत्थ ते यावजीवं करणीयो। अतिरेकलाभो—विहारो, अड्ढयोगो, पासादो, हम्मियं, गुहा।

(४) ''पूतिमुत्तभेसज्जं निस्साय मब्बज्जा। तत्थ ते यावजीवं उस्साहो करणीयो। अतिरेकलाभो—सप्पि, नवनीतं, तेलं, मधु, फाणितं'' ति।

चत्तारो निस्सया निट्ठिता॥

(धारणा—) सङ्घ ने इस नाम वाले पुरुष को इस नाम के उपाध्याय द्वारा उपसम्पदा दे दी—यह सङ्घ को स्वीकार है, अतएव चुप है—ऐसी मेरी धारणा है।।

उपसम्पदाकर्मवर्णन समाप्त।।

६९. चार निःश्रय

उपसम्पन्न के लिये आवश्यक ज्ञातव्य बातें— १३१. (उपसम्पन्न को समय जानने के लिये) (१) छाया नापना बताना चाहिये; (२) ऋतुओ का प्रमाण बताना चाहिये; (३) दिन का भाग बताना चाहिये; (४) इन सब (चारों) को मिला कर—जिसे 'सङ्गीति' कहते हैं—भी गताना चाहिये। (५) चारों निःश्रय बताने चाहिये। चार निःश्रय ये हैं—

(१) यह प्रव्रज्या भिक्षा में मिले भोजन के सहारे से ही चलेगी। इसके लिये तुम्हे जीवनपर्यन्त उत्साहित रहना चाहिये। हो सकता है तुम्हें ये अतिरिक्त लाभ भी मिलते रहें— १. सङ्घ–भोज, २ कहीं तुम्हारे उद्देश्य से बना भोजन, ३. निमन्त्रण, ४. शलाका–भोजन, ५. पाक्षिक भोजन, ६. उपोसथ के दिन का भोजन, ७. प्रतिपद् का भोजन।

(२) रास्ते में पडे फटे–पुराने चिथड़ों से बनाये गये चीवर के निःश्रय से तुम्हारी यह प्रव्रज्या है। यहाँ तुम्हें....। हाँ, तुम्हें यह अतिरिक्त लाभ भी मिल सकता है— क्षौम, कपास, कौषेय, कम्बल, सण तथा इन सबके मिश्रण (भङ्ग) से बने हुए वस्त्र।

(३) वृक्षमूल के नीचे शयनासन के निःश्रय से ही तुम्हारी यह प्रव्रज्या है। इसके पालन में तुम्हें जीवनभर उत्साहित रहना चाहिये। यह दूसरी बात है कि तुम्हें इस शयनासन के लिये यह अतिरिक्त लाभ भी मिलता रहे; जैसे— विहार, बरामदे वाले मकान, हवेली, प्रासाद या पर्वत की गुफाएँ।

७०. चत्तारि अकरणीयानि

१३२. तेन खो पन समयेन भिक्खू अञ्ञतरं भिक्खुं उपसम्पादेत्वा एककं [B.134] ओहाय पक्कमिंसु। सो पच्छा एकको व आगच्छन्तो अन्तरामग्गे पुराणदुतियिकाय समागच्छि। सा एवं आह—"किं दानि पब्बजितोसी" ति? "आम, पब्बजितोम्ही" ति। "दुल्लभो खो पब्बजितानं मेथुनो धम्मो; एहि, मेथुनं धम्मं पटिसेवा" ति। सो तस्सा मेथुनं धम्मं पटिसेवित्वा चिरेन अगमासि। भिक्खू एवं आहंसु—"किस्स त्वं, आवुसो, एवं चिरं अकासी" ति? अथ खो सो भिक्खु भिक्खूनं एतमत्थं आरोचेसि। भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, उपसम्पादेत्वा दुतियं दातुं, चत्तारि च अकरणीयानि आचिक्खितुं—**

"उपसम्पन्नेन भिक्खुना मेथुनो धम्मो न पटिसेवितब्बो, अन्तमसो तिरच्छानगताय पि। यो भिक्खु मेथुनं धम्मं पटिसेवति, अस्समणो होति असक्यपुत्तियो। सेय्यथापि नाम पुरिसो सीसच्छिन्नो अभब्बो तेन सरीरबन्धेन जीवितुं, एवमेव भिक्खु मेथुनं धम्मं पटिसेवित्वा अस्समणो होति असक्यपुत्तियो। तं ते यावजीवं अकरणीयं। (१)

"उपसम्पन्नेन भिक्खुना अदिन्नं थेय्यसङ्खातं न आदातब्बं, अन्तमसो तिणसलाकं उपादाय। यो भिक्खु पादं वा पादारहं वा अतिरेकपादं वा अदिन्नं थेय्यसङ्खातं आदियति, अस्समणो होति असक्यपुत्तियो। सेय्यथापि नाम पण्डुपलासो बन्धना पमुत्तो अभब्बो हरितत्ताय,

---

(४) गोमूत्र की ओषधि के सहारे से तुम्हें यह प्रव्रज्या निभानी है। जीवन भर इस नियम के पालन में तुम्हें उत्साहित रहना है। हाँ, कभी-कभी तुम्हें इस विषय में अतिरिक्त लाभ भी मिल सकता है; जैसे—१. घी, २. मक्खन, ३. तैल, ४. मधु एवं ५. शर्करा (चीनी)।

चार निःश्रय समाप्त॥

७०. चार अकर्तव्य

१३२. उस समय कुछ भिक्षु किसी को उपसम्पदा देकर उसे एकाकी (अकेला) छोड़कर (अन्यत्र) चले गये। बाद में वह अकेला ही जब रास्ते जा रहा था, वहाँ उसे उसकी पुरानी स्त्री मिली। उसने पूछा— "क्या प्रव्रजित हो गये हो?" "हाँ, प्रव्रजित हो गया हूँ।" "प्रव्रजितों के लिये स्त्री-समागम बहुत दुर्लभ है, आओ, (एक बार तो) मैथुन धर्म का सेवन कर लो।" वह उसके साथ मैथुन धर्म सेवन कर विलम्ब से गन्तव्य स्थल पर पहुँचा। भिक्षुओं ने पूछा—"आयुष्मन्! इतना विलम्ब कहाँ और कैसे लग गया? तब उस नव उपसम्पन्न भिक्षु ने सत्य घटना बता दी। भिक्षुओं ने भगवान् के सम्मुख यह बात रखी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ— उपसम्पन्न कर एक दूसरा साथी देने की और उसे चार अकर्तव्यों के विषय में बताने की।**" वे चार अकर्तव्य ये हैं—

(१) उपसम्पन्न भिक्षु को पशु तक से भी मैथुन धर्म का सेवन नहीं करना चाहिये। जो भिक्षु मैथुन धर्म का सेवन करेगा वह शाक्यपुत्रीय श्रमण कहलाने योग्य नहीं रह जायगा। जैसे शिर कटा हुआ पुरुष जीवित नहीं रह पाता, उसी तरह मैथुन धर्म सेवन करने वाला, पुरुष 'शाक्यपुत्रीय श्रमण' कहलाने की योग्यता खो बैठता है। अतः तेरे लिये यह (मैथुन धर्म का सैवन) जीवनपर्यन्त न करने योग्य है।

(२) उपसम्पन्न भिक्षु को न दी हुई वस्तु को, जिसे चौरी की ही कहा जायगा, नहीं लेना चाहिये। जो भिक्षु पाद (पाँच मासा) या पाद के बराबर या उससे कुछ ही अधिक वस्तु को भी, जिसे

एवमेव भिक्खु पादं वा पादारहं वा अतिरेकपादं वा अदिन्नं थेय्यसङ्खातं आदियित्वा अस्समणो [R.97] होति असक्यपुत्तियो। तं ते यावजीवं अकरणीयं। (२)

[N.101] ''उपसम्पन्नेन भिक्खुना सञ्चिच्च पाणो जीविता न वोरोपेतब्बो, अन्तमसो कुन्थकिपिल्लिकं उपादाय। यो भिक्खु सञ्चिच्च मनुस्सविग्गहं जीविता वोरोपेति, अन्तमसो गब्भपातनं उपादाय, अस्समणो होति असक्यपुत्तियो। सेय्यथापि नाम पुथुसिला द्वेधा भिन्ना अप्पटिसन्धिका होति, एवमेव भिक्खु सञ्चिच्च मनुस्सविग्गहं जीविता वोरोपेत्वा अस्समणो होति असक्यपुत्तियो। तं ते यावजीवं अकरणीयं। (३)

[B.135] ''उपसम्पन्नेन भिक्खुना उत्तरिमनुस्सधम्मो न उल्लपितब्बो, अन्तमसो 'सुञ्ञागारे अभिरमामी' ति। यो भिक्खु पापिच्छो इच्छापकतो असन्तं अभूतं उत्तरिमनुस्सधम्मं उल्लपति झानं वा विमोक्खं वा समाधिं वा समापत्तिं वा मग्गं वा फलं वा, अस्समणो होति असक्यपुत्तियो। सेय्यथापि नाम तालो मत्थकच्छिन्नो अभब्बो पुन विरुळ्हिया, एवमेव भिक्खु पापिच्छो इच्छापकतो असन्तं अभूतं उत्तरिमनुस्सधम्मं उल्लपित्वा अस्समणो होति असक्यपुत्तियो। तं ते यावजीवं अकरणीयं'' ति। (४)

चत्तारि अकरणीयानि निट्ठितानि॥

७१. आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तकवत्थूनि

१३३. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तको विब्भमि। सो पुन पच्चागन्त्वा भिक्खू उपसम्पदं याचि। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तको विब्भमति। सो पुन

चोरी की ही समझा जायगा, यदि विना स्वामी के दिये लेता है जो वह शाक्यपुत्रीय श्रमण नहीं रह जायगा। जैसे वृक्ष का पीला पत्ता शाखावृन्त से पृथक् होने पर फिर कभी हरा नहीं हो पाता, उसी तरह कोई भिक्षु भी पाद या पाद के समान या उससे कुछ ही अधिक विना स्वामी के दी हुई वस्तु को ले कर, जो कि चौरी की कहलाती है, शाक्यपुत्रीय श्रमण कहलाने योग्य नहीं रह जाता। अतः यह कर्म (विना दी हुई चीज को लेना) तुम्हें जीवन भर नहीं करना है।

(३) उपसम्पन्न भिक्षु को जान–बूझ कर किसी प्राणी का प्राण नहीं हरना चाहिये, भले ही फिर वह छोटी चींटी ही क्यों न हो। जो भिक्षु जान–बूझकर किसी मनुष्य के प्राणो को हरता है या फिर कोई गर्भपात करता है तो वह शाक्यपुत्रीय श्रमण कहलाने योग्य नहीं रह जायगा। जैसे–कोई मोटी शिला दो टुकड़े में हो जाने पर पुनः नहीं जुड़ पाती; इसी तरह भिक्षु जान–बूझ कर किसी प्राणी के प्राण हरकर, शाक्यपुत्रीय (श्रमण) नहीं रह जाता। अतः यह (दूसरे प्राणी के प्राण लेना) कर्म जीवन भर के लिये न करने योग्य है।

(४) उपसम्पन्न भिक्षु को अपने ध्यान, समाधि आदि में प्राप्त सिद्धि की साधारण मनुष्यों में वृथा आत्मप्रशंसा नहीं करनी चाहिये। यहाँ तक कि लोगों के सामने यह भी नहीं कहना चाहिये कि 'मैं तो शून्यागार में रहता हूँ।' जो भिक्षु पाप की इच्छा से या लोभ के वश में होकर अपने में अविद्यमान, अतएव असत्य दिव्यशक्ति, ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति, मार्ग या फल को अपने में विद्यमान बताता है वह शाक्यपुत्रीय श्रमण नहीं रह जाता। जैसे– शिर कटा ताड पुनः बढ़ने योग्य नहीं रह जाता, वैसे ही पापेच्छुक, लोभी एवं असत्यभाषी भिक्षु लोगो में अपनी दिव्य शक्ति का ढिंढोरा पीटने

पच्चागन्त्वा भिक्खू उपसम्पदं याचति। सो एवमस्स वचनीयो—"पस्सिस्ससि तं आपत्तिं" ति? सचाहं पस्सिस्सामी ति, पब्बाजेतब्बो। सचाहं न पस्सिस्सामी ति, न पब्बाजेतब्बो। पब्बाजेत्वा वत्तब्बो—'पस्सिस्ससि तं आपत्तिं' ति? सचाहं पस्सिस्सामी ति, उपसम्पादेतब्बो। सचाहं न पस्सिस्सामी ति, न उपसम्पादेतब्बो। उपसम्पादेत्वा वत्तब्बो—'पस्सिस्ससि तं आपत्तिं' ति? सचाहं पस्सिस्ससामी ति, ओसारेतब्बो। सचाहं न पस्सिस्सामी ति, न ओसारेतब्बो। ओसारेत्वा वत्तब्बो—'पस्ससि तं आपत्तिं' ति? सचे पस्सति, इच्चेतं कुसलं। नो चे पस्सति, लब्भमानाय सामग्गिया पुन उक्खिपितब्बो। अलब्भमानाय सामग्गिया अनापत्ति सम्भोगे संवासे। (१)

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खित्तको विब्भमति। सो पुन पच्चागन्त्वा भिक्खू उपसम्पदं याचति। सो एवमस्स वचनीयो—'पटिकरिस्ससि तं आपत्तिं' ति? सचाहं पटिकरिस्सामी ति, पब्बाजेतब्बो। सचाहं न पटिकरिस्सामी [R.98] ति, न पब्बाजेतब्बो। पब्बाजेत्वा वत्तब्बो—"पटिकरिस्ससि तं आपत्तिं" ति? स चाहं पटिकरिस्सामी ति, उपसम्पादेतब्बो। सचाहं न पटिकरिस्सामी ति, न उपसम्पादेतब्बो। उपसम्पादेत्वा वत्तब्बो—"पटिकरिस्ससि तं आपत्तिं" ति? सचाहं पटिकरिस्सामी [B.136] ति, ओसारेतब्बो। सचाहं न पटिकरिस्सामी ति, न ओसारेतब्बो। ओसारेत्वा वत्तब्बो—"पटिकरोही तं आपत्तिं" ति। सचे पटिकरोति, इच्चेतं कुसलं। नो चे पटिकरोति [N.102] लब्भमानाय सामग्गिया पुन उक्खिपितब्बो। अलब्भमानाय सामग्गिया अनापत्ति सम्भोगे संवासे। (२)

वाला 'शाक्यपुत्रीय श्रमण' कहलाने योग्य नहीं रह जाता। अतः यह तेरे लिये जीवनपर्यन्त न करने योग्य कार्य है।

चार अकर्त्तव्यों का वर्णन समाप्त।।

आपत्ति के अभाव में उत्क्षिप्तक वस्तुएँ

१३३. उस समय कोई भिक्षु आपत्ति (दोष) को न मानने के अपराध में उत्क्षिप्तक (आरोपित) होकर सङ्घ छोड़कर चला गया। कुछ समय बाद उसने फिर आकर सङ्घ से उपसम्पदा माँगी। भगवान् से उसकी यह स्थिति बतायी गयी। (भगवान् ने कहा—)

"भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु आपत्ति को न मानने के कारण भिक्षुओं द्वारा उत्क्षिप्तक होकर सङ्घ छोड़कर चला जाय। वह पुनः आकर यदि भिक्षुओं से उपसम्पदा माँगें तो उसे यह कहना चाहिये—"तुम अपने दोष को मान रहे हो?" यदि वह कहे—'मान रहा हूँ', तो उसे प्रव्रज्या देनी चाहिये। यदि वह कहे—'नहीं मान रहा हूँ' तो उसको प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। प्रव्रजित होने के बाद भी उससे पूछना चाहिये—'वह उस आपत्ति (दोष) को मान रहा है?'। यदि वह कहे—"मैं मान रहा हूँ' तो उसे उपसम्पदा देनी चाहिये। यदि वह कहे कि मैं नहीं मान रहा हूँ' तो उसे उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। उपसम्पदा देकर भी उससे पूछना चाहिये—'तुम अपना वह दोष मान रहे हो?'। यदि वह कहे—'मान रहा हूँ' तो उस का अवसारण (पुनर्नियुक्ति) करनी चाहिये; यदि कहे—'नहीं मान रहा हूँ' तो उसकी पुनर्नियुक्ति नहीं करनी चाहिये। अवसारण करके भी पूछना चाहिये—क्या तुम उस आपत्ति को मान रहे हो? यदि वह कहे कि 'मान रहा हूँ', तब तो ठीक है। यदि कहे—'नहीं मानता हूँ', तो

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खित्तको विब्भमति। सो पुन पच्चागन्त्वा भिक्खू उपसम्पदं याचति। सो एवमस्स वचनीयो– 'पटिनिस्सज्जिस्ससि तं पापिकं दिट्ठिं' ति? सचाहं पटिनिस्सज्जिस्सामी ति, पब्बाजेतब्बो। सचाहं न पटिनिस्सज्जिस्सामी ति, न पब्बाजेतब्बो। पब्बाजेत्वा वत्तब्बो–'पटिनिस्सज्जिस्ससि तं पापिकं दिट्ठिं' ति? सचाहं पटिनिस्सज्जिस्सामी ति, उपसम्पादेतब्बो। सचाहं न पटिनिस्सज्जिस्सामी ति, न उपसम्पादेतब्बो। उपसम्पादेत्वा वत्तब्बो–'पटिनिस्सज्जिस्ससि तं पापिकं दिट्ठिं' ति? सचाहं पटिनिस्सज्जिस्सामी ति, ओसारेतब्बो। सचाहं न पटिनिस्सज्जिस्सामी ति, न ओसारेतब्बो। ओसारेत्वा वत्तब्बो–'पटिनिस्सज्जेहि तं पापिकं दिट्ठिं' ति। सचे पटिनिस्सज्जति, इच्चेतं कुसलं। नो चे पटिनिस्सज्जति, लब्भमानाय सामग्गिया पुन उक्खिपितब्बो। अलब्भमानाय सामग्गिया अनापत्ति सम्भोगे संवासे ति॥ (३)

महाखन्धको पठमो॥

७२. तस्सुद्दानं

१३४. विनयम्हि महत्थेसु पेसलानं सुखावहे।
निग्गहानं च पापिच्छे लज्जीनं पग्गहेसु च॥ १॥

एकमत (सामग्री) होने पर उसे पुनः उत्क्षिप्त (आरोपित) कर देना चाहिये। यदि सङ्घ में एकमत न हो तो उसके साथ भोजन और निवास में दोष नहीं।

"भिक्षुओ! लगायी गयी आपत्ति (दोष) का प्रतिकार न करने पर आरोपित (उत्क्षिप्तक) भिक्षु यदि सङ्घ छोड़कर चला जाय और पुनः समय पाकर भिक्षुओं से प्रव्रज्या माँगे तो उससे पूछना चाहिये– 'क्या तुम उस आपत्ति का प्रतिकार करोगे?"; यदि वह कहे–'हाँ, प्रतिकार करूँगा', तब तो प्रव्रज्या देनी चाहिये। यदि कहे कि 'नहीं प्रतिकार करूँगा' तो प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। प्रव्रज्या देकर भी पूछना चाहिये–'क्या तुम उस दोष का प्रतिकार करोगे?'; यदि वह कहे 'हाँ', तो उसको उपसम्पदा देनी चाहिये; यदि 'नाँ' कहे तो नही देनी चाहिये। उपसम्पदा देकर पूछना चाहिये–'क्या तुम लगाये दोष का प्रतिकार करोगे?'; यदि वह 'हाँ' कहे तो उसका अवसारण करना चाहिये; यदि 'ना' कहे तो नहीं करना चाहिये। अवसारण करके भी....यदि वह प्रतिकार करना चाहे तो ठीक है; यदि न करना चाहे तो उसे एकमत होकर सङ्घ द्वारा पुनः उत्क्षिप्त कर देना चाहिये। यदि सङ्घ एकमत न हो तो उसके साथ भोजन और वास में दोष नहीं।

"भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु पापमय दृष्टि (धारणा) का त्याग न करने के कारण, आरोपित होकर सङ्घ से निकल (चला) जाता है और कुछ समय बाद वह पुनः आकर उपसम्पदा माँगता है तो पहले उससे पूछना चाहिये–'क्या तुम अपनी उस पापमय दृष्टि का त्याग करोगे? यदि वह 'हाँ' कहे तो उसको प्रव्रज्या देनी चाहिये; यदि 'ना' कहे तो नहीं देनी चाहिये। प्रव्रज्या देने के बाद उससे फिर पूछना चाहिये–'क्या तुम अपनी.....पूर्ववत्....उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। उपसम्पदा देकर भी उससे फिर पूछना चाहिये–क्या तुम....पूर्ववत्....अवसारण नहीं करना चाहिये। अवसारण करने के बाद भी उससे फिर पूछना चाहिये....यदि वह 'ना' कहे तो सङ्घ के एकमत होने पर उसे सङ्घ से पुनः उत्क्षिप्त कर देना चाहिये। यदि सङ्घ एकमत न हो पाये तो उसके साथ भोजन तथा वास में कोई आपत्ति नहीं है॥

महास्कन्धक प्रथम समाप्त॥

सासनाधारणे चेव सब्बञ्ञुजिनगोचरे।
अनञ्ञविसये खेमे सुपञ्ञत्ते असंसये॥ २॥
खन्धके विनये चेव परिवारे च मातिके।
यथात्थकारी कुसलो पटिपज्जति योनिसो॥ ३॥
यो गवं न विजानाति न सो रक्खति गोणं। [B.137]
एवं सीलं अजानन्तो किं सो रक्खेय्य संवरं॥ ४॥
पमुट्ठम्हि च सुत्तन्ते अभिधम्मे च तावदे। [R.99]
विनये अविनट्ठम्हि पुन तिट्ठति सासनं॥ ५॥
तस्मा सङ्गाहणाहेतुं उद्दानं अनुपुब्बसो।
पवक्खामि यथाञायं सुणाथ मम भासतो॥ ६॥
वत्थु निदानं आपत्ति नया पेय्यालमेव च।
दुक्करं तं असेसेतुं, नयतो तं विजानथा' ति॥ ७॥
बोधि राजायतनं च अजपालो सहम्पति। [N.103]
ब्रह्मा आळारो उदको भिक्खु च उपको इसि॥ ८॥

---

७२. उसका उदान

१३४. सदाचारी भिक्षुओं के बड़े से बड़े प्रयोजनों की सिद्धि में सुखदायक (सरलता लाने वाले), पापात्माओं के लिये निग्रहकारक तथा लज्जी (पाप को न छिपाने वाले) भिक्षुओं को सहारा देने वाले इस विनय (धर्मानुशासन) में।। १।।

जो कि इस शासन का आधार है, तथा सर्वतोभावेन केवल सर्वज्ञ एवं सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा ही साक्षात्कृत है, दूसरों द्वारा याथातथ्येन अज्ञेय, क्षेमङ्कर, (भगवान् द्वारा) सुप्रज्ञप्त एवं असन्दिग्ध है।। २।।

स्कन्धक, परिवार एवं मातृकाओं में विभक्त इस विनयपिटक में अर्थ को यथातथ रूप से जानने वाला कुशल साधक ही सूक्ष्मतया विश्लेषण कर सकता है।। ३।।

जो गौओं के विषय में सब कुछ भलीभाँति नहीं जानता वह गौओं की रक्षा क्या कर पायगा! इसी तरह शील को न जानने वाला उसके संवर (संयम) को क्या रख पायगा! ।। ४।।

सूत्रपिटक को विरोधियों (अज्ञानियों) द्वारा प्रमृष्ट कर (मसल) दिये जाने पर या इसी तरह अभिधर्मपिटक के प्रमृष्ट होने पर भी, यदि विनयपिटक यथास्थित (सुरक्षित) है तो समझो कि शासन सुरक्षित है! ।। ५।।

अतः उसका क्रमशः भलीभाँति संग्रह करने हेतु मैं इसमें वर्णित उदानों (भगवान् की अनुज्ञाओं) का सूचीसमूह यथाविधि आप लोगों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसे आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें।। ६।।

(यद्यपि) वस्तु (कथा), निदान (उत्पत्ति), आपत्ति (दोष), नय (विधि), पेय्याल (पाठ की पुनरावृत्ति) आदि का भी सूचीसमूह बनाना चाहिये। परन्तु इन सब विषयों का सूचीसमूह बनाना बहुत दुष्कर है उसे तो नय से ही जानना पड़ेगा।। ७।।

इस स्कन्ध में आगत वे उदान (भगवान् की अनुज्ञाएँ=भगवदुक्तियाँ) क्रमशः इस प्रकार हैं—

बोधि, राजायतन, अजपाल, सहम्पति, ब्रह्मयाचन, आळार (कालाम), उद्दक, भिक्षु (पञ्चवर्गीय), उपक (आजीवक), ऋषिपतन।। ८।।

कोण्डञ्ञो वप्पो भद्दियो महानामो च अस्सजि।
यसो चत्तारो पञ्ञास सब्बे पेसेसि सो दिसा॥ ९॥
वत्थु मारेहि तिंसा च उरुवेलं तयो जटी।
अग्यागारं महाराजा सक्को ब्रह्मा च केवला॥ १०॥
पंसुकूलं पोक्खरणी सिला च ककुधो सिला।
जम्बु अम्बो च आमलो पारिपुप्फं च आहरि॥ ११॥
फालियन्तु उज्जलन्तु विज्झायन्तु च कस्सप।
निमुज्जन्ति मुखी मेघो गया लट्ठि च मागधो॥ १२॥
उपतिस्सो कोलितो च अभिञ्ञाता च पब्बजुं।
दुन्निवत्था पणामना किसो लूखो च ब्राह्मणो॥ १३॥
अनाचारं आचरति उदरं माणवो गणो।
वस्सं बालेहि पक्कन्तो दस वस्सानि निस्सयो॥ १४॥
न वत्तन्ति पणामेतुं बाला पस्सद्धि पञ्च छ।
यो सो अञ्ञो च नग्गो च अच्छिन्नजटिलसाकियो॥ १५॥
मगधेसु पञ्चाबाधा एको राजा च अङ्गुलि।
मागधो च अनुञ्ञासि कारा लिखि कसाहतो॥ १६॥
लक्खणा इणा दासो च भण्डुको उपालि अहि। [B.138]
सद्धं कुलं कण्डको च आहुन्दरिकमेव च॥ १७॥

कौण्डिन्य, वप्र, भद्रिय, महानाम, अश्वजित्, यश तथा उसके विमल सुबाहु आदि ये चार, पचास (यश के गृहस्थ साथी)–इन सबको भगवान् ने अपने अमृतमय वचनों से निर्वाणमार्ग की तरफ प्रेरित कर जनोपदेश हेतु चारों दिशाओं में भेजा।। ९।।

वस्तु, मार (के साथ दो संवाद), तीस भद्रवर्गीय, उरुवेल (में प्रातिहार्य), तीनों जटिल, अग्न्यागार, चार महाराज (दिक्पाल), देवेन्द्र शक्र, ब्रह्मा।। १०।।

पंसुकूल, पुष्करिणी, शिला (पंसुकूल धोने के लिये), ककुध वृक्ष, शिला (पांशुकूल सुखाने के लिये), जम्बुफल, आम्रफल, आमलकी फल, पारिजातपुष्प का लाना।। ११।।

लकड़ियाँ फटें, अग्नियाँ जलें, अग्नियों का शमन, मन्दामुखी (अंगीठी), मेघ, गयाशीर्ष, यष्टिवन (राजगृह), मागध (राजा बिम्बिसार) ।। १२।।

उपतिष्य (सारिपुत्र), कौलित (मौद्गल्यायन), प्रख्यात भिक्षुओं की प्रव्रज्या, ठीक ढंग से वस्त्र पहनना, संघ से निष्कासन (प्रणामना), कृश, रूक्ष (राध) ब्राह्मण।। १३।।

अनाचार का आचरण, उदर–पोषण के लिये प्रव्रज्या, माणवक प्रव्रज्या, गणप्रव्रज्या, उपसम्पदा में वर्ष की सीमा।। १४।।

बाल–अव्यक्त की प्रव्रज्या, श्रमणों को न निकालना, पाँच निःश्रयप्रतिप्रश्रब्धि, छह निश्रयप्रतिप्रब्धि, नग्न, अमुण्डित, जटिल एवं शाक्य की प्रव्रज्या।। १५।।

पाँच महारोग, राजभट, अङ्गुलिमाल, बिम्बिसार की आज्ञा, कारभेदक चौर, लिखितक, कसाहत।। १६।।

वत्थुम्हि दारको सिक्खा विहरन्ति च किं नु खो।
सब्बं मुखं उपज्झायो अपलाळन कण्डको॥ १८॥
पण्डको थेय्यपक्कन्तो अहि च मातरी पिता।
अरहन्तभिक्खुनीभेदा रुहिरेन च व्यञ्जनं॥ १९॥
अनुपज्झाय सङ्घेन गणपण्डकपत्तको।
अचीवरं तदुभयं याचितेन पि ये तयो॥ २०॥
हत्था पादा हत्थपादा कण्णा नासा तदूभयं।
अङ्गुलि अळकण्डरं फणं खुज्जं च वामनं॥ २१॥
गलगण्डी लक्खणा चेव कसा लिखितसीपदी। [N.104]
पापरिसदूसी च काणं कुणि तथेव च॥ २२॥
खञ्जं पक्खहतं चेव सच्छिन्नइरियापथं। [R.100]
जरान्धमूगबधिरं अन्धमूगं च यं तहिं॥ २३॥
अन्धबधिरं यं वुत्तं मूगबधिरमेव च।
अन्धमूगबधिरं च अलज्जीनं च निस्सयं॥ २४॥
वत्थब्बं च तथाद्धानं याचमानेन पेक्खना।
आगच्छतु विवदन्ति एकुपज्झायेन कस्सपो॥ २५॥
दिस्सन्ति उपसम्पन्ना आबाधेहि च पीळिता।
अननुसिट्ठा वित्थेन्ति तत्थेव अनुसासना॥ २६॥

लक्षणाहत, ऋणग्रस्त, दास (गुलाम), कर्मारभण्डु, उपालि, अहिवातक (महामारी) से ग्रस्त श्रद्धालु कुल का श्रामणेर, कण्डक, आहुन्दरिक (भिक्षुओं का अधिक जमाव)।। १७।।

निःश्रयमोचन, राहुल (दारक), शिक्षापद, भोजन (मुख) का आवरण, उपाध्याय से पूछे विना श्रामणेरों का आवरण, अपलाडन, कण्डकश्रामणेर।। १८।।

पण्डक, स्तेयसंवासक, नाग (सर्प), मातृघातक, पितृघातक, अर्हद्-घातक, भिक्षुणीदूषक, लोहितोत्पादक, उभयतोव्यञ्जनक।। १९।।

अनुपाध्याय, सङ्घ, गण, पण्डक, अपत्तक, अचीवरक, अपात्र-अचीवरक, याचितक (पात्र), याचितक चीवर, याचितक (पात्र-चीवर)।। २०।।

हस्तछिन्न, पादच्छिन्न, हस्त-पादच्छिन्न, कर्णछिन्न, नासाच्छिन्न, कर्ण-नासाच्छिन्न, अङ्गुलिच्छिन्न, अडच्छिन्न, कण्डरा (स्नायु) च्छिन्न, फण जैसे हाथ वाला, कुब्ज, वामन।। २१।।

गलगण्डरोगी, लक्षणाहत, कशाहत, लिखितक (इनामी चौर), श्लीपदरोगी (फीलपाँव वाला), पापरोगी, परिषद्-दूषक, काण, कुणी (लूला)।। २२।।

खन् (लँगड़ा), पक्षहत (पक्षाघात), टेढ़ी-मेढ़ी चालवाला, बुढ़ापे से दुर्बल, अन्धा, मूक (गूंगा), बहरा, अन्धमूक।। २३।।

अन्ध-वधिर, मूकबधिर, अन्धमूक-वधिर, अलज्जि-निःश्रय।। २४।।

प्रतीक्षा करना, गमिकादिनिश्रय, गोत्र से अनुश्रावणा, प्रथम उपसम्पदा का विवाद, सामूहिक उपसम्पदा, कुमारकाश्यप का वर्षजन्म।। २५।।

पाँच महारोगों से आक्रान्त के प्रति देशना, अनुशासनविहीन उपसम्पन्नों के प्रति देशना।। २६।।

सङ्घे पि च अथो बाला असम्मता च एकतो।
उल्लुम्पतुपसम्पदा निस्सयो एकको तयो ति॥ २७॥
इमम्हि खन्धके वत्थूनि एकसतं च द्वासत्तति।

महाखन्धकं निट्ठितं॥

बाल अव्यक्तों द्वारा उपसम्पदा, भिक्षुद्वारा...., सम्मत भिक्षुओ द्वारा उपसम्पदा, साथ में (एकत) आना, अनुकम्पापूर्वक उद्धारउपसम्पदा, चार निश्रय, नवभिक्षु को एकाकी छोड़ना, एवं तीन उत्क्षिप्तक वस्तुएँ।। २७।।

इस तरह इस स्कन्धक में एक सौ बहत्तर वस्तु (कथाएँ) हैं।

प्रथम महास्कन्धक पूर्ण हुआ।।

२. उपोसथक्खन्धकं

१. सन्निपातानुजानना

१. तेन खो पन समयेन बुद्धो भगवा राजगहे विहरति [N.105, B.139, R.101] गिज्झकूटे पब्बते। तेन खो पन समयेन अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका चातुद्दसे पन्नरसे अट्ठमिया च पक्खस्स सन्निपतित्वा धम्मं भासन्ति। ते मनुस्सा उपसङ्कमन्ति धम्मस्सवनाय। ते लभन्ति अञ्ञतित्थियेसु परिब्बाजकेसु पेमं, लभन्ति पसादं, लभन्ति अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका पक्खं।

अथ खो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"एतरहि खो अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका चातुद्दसे पन्नरसे अट्ठमिया च पक्खस्स सन्निपतित्वा धम्मं भासन्ति। ते मनुस्सा उपसङ्कमन्ति धम्मस्सवनाय। ते लभन्ति अञ्ञतित्थियेसु परिब्बाजकेसु पेमं, लभन्ति पसादं, लभन्ति अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका पक्खं। यन्नून अय्या पि चातुद्दसे पन्नरसे अट्ठमिया च पक्खस्स सन्निपतेय्युं" ति। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो भगवन्तं एतदवोच—"इध मय्हं, भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि 'एतरहि खो अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका चातुद्दसे पन्नरसे अट्ठमिया च पक्खस्स सन्निपतित्वा धम्मं भासन्ति। ते मनुस्सा उपसङ्कमन्ति धम्मस्सवनाय। ते लभन्ति अञ्ञतित्थियेसु परिब्बाजकेसु पेमं, लभन्ति पसादं, लभन्ति अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका पक्खं। यन्नून अय्या पि चातुद्दसे पन्नरसे अट्ठमिया च पक्खस्स सन्निपतेय्युं' ति। साधु, भन्ते, अय्या पि चातुद्दसे पन्नरसे अट्ठमिया च पक्खस्स सन्निपतेय्युं" ति।

---

२. उपोसथस्कन्धक

१. सन्निपातानुजानना

१. एकत्र होकर उपोसथकर्म की अनुमति

१. उस समय भगवान् बुद्ध राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय दूसरे सम्प्रदायों के परिव्राजक चतुर्दशी, पूर्णिमा एवं पक्ष की अष्टमी के दिन एकत्र होकर धर्मचर्चा करते थे। उस धर्मचर्चा को सुनने के लिये श्रद्धालु जन उनके पास आते थे। इससे उस साधारण जनता का उन अपर सम्प्रदाय वालों में प्रेम एवं श्रद्धा बढ़ती थी, तथा वे अन्य सम्प्रदाय वाले उस जनता में से अपने मत के लिये अनुयायी भी प्राप्त कर लेते थे।

तब कभी एकान्त में बैठे राजा मागध....बिम्बिसार के मन में यह विचार उठा—"आज कल ये दूसरे सम्प्रदायों के परिव्राजक चतुर्दशी...पूर्ववत्...अनुयायी भी प्राप्त कर लेते हैं। तो क्यों न हमारे आर्य (पूज्य बौद्ध भिक्षु) जन भी चतुर्दशी, पूर्णिमा एवं पक्ष की अष्टमी को एकत्र होकर धर्मचर्चा करें।" तब राजा ..बिम्बिसार जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे राजा....बिम्बिसार ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! आज

अथ खो भगवा राजानं मागधं सेनियं बिम्बिसारं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो भगवता [R.102] धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे [B.140] धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**अनुजानामि, भिक्खवे, चातुद्दसे पन्नरसे अट्ठमिया च पक्खस्स सन्निपतितुं**"ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू–भगवता अनुञ्ञातं चातुद्दसे पन्नरसे अट्ठमिया च पक्खस्स सन्निपतितुं ति—चातुद्दसे पन्नरसे अट्ठमिया च पक्खस्स सन्निपतित्वा तुण्हीनिसीदन्ति। ते मनुस्सा उपसङ्कमन्ति धम्मस्सवनाय। ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया चातुद्दसे पन्नरसे अट्ठमिया च पक्खस्स सन्निपतित्वा तुण्ही निसीदिस्सन्ति, सेय्यथापि मूगसूकरा। ननु नाम सन्निपतितेहि धम्मो भासितब्बो" ति। [N.106] अस्सोसुं खो भिक्खू तेसं मनुस्सानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**अनुजानामि, भिक्खवे, चातुद्दसे पन्नरसे अट्ठमिया च पक्खस्स सन्निपतित्वा धम्मं भासितुं**" ति।

२. पातिमोक्खुद्देसानुजानना

२. अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि— "यन्नूनाहं यानि मया भिक्खूनं पञ्ञत्तानि सिक्खापदानि, तानि नेसं पातिमोक्खुद्देसं अनुजानेय्यं।

एकान्त में बैठे मुझको यह विचार....पूर्ववत्....एकत्र होकर धर्म–चर्चा करें।' अच्छा हो, भन्ते! आप आर्यजन भी इन्हीं दिनों में धर्मचर्चा हेतु एकत्र, हुआ करें।"

तब भगवान् ने राजा....बिम्बिसार का धार्मिक चर्चा द्वारा सन्दर्शन, समुत्तेजन, समादपन एवं सम्प्रहर्षण किया। यों वह राजा....बिम्बिसार धार्मिक चर्चा से....सम्प्रहृष्ट होकर, आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम–प्रदक्षिणा कर (अपने प्रासाद को पुनः) लौट गया। तब भगवान् ने इसी कारण से, इसी प्रसङ्ग में धर्मचर्चा करते हुए भिक्षुओं को आदेश दिया—"**भिक्षुओ! मैं आदेश देता हूँ कि आज से आप लोग चतुर्दशी, पूर्णिमा एवं पक्ष की अष्टमी के दिन (एक स्थान पर) एकत्र हुआ करें।**" (१)

तब भिक्षु लोग; क्योंकि भगवान् की अनुज्ञा थी कि चतुर्दशी, पूर्णिमा एवं पक्ष की अष्टमी के दिन एक स्थान पर एकत्र होवें, अतः वे उन दिनों में एकत्र होकर बैठ तो जाते थे, परन्तु चुपचाप बैठे रहते थे। उस समय जनता उनसे धर्मश्रवण हेतु आने लगी। परन्तु वहाँ भिक्षुओं को चुप बैठे देखकर बहुत व्यग्र, खिन्न तथा उद्विग्न होने लगी कि "कैसे ये भिक्षु धर्मचर्चा के लिये.....एकत्र होकर भी चुप–चाप बैठे रहते हैं। जैसे कोई मूक सूअर बैठे हों। अरे! भिक्षुओं के यों एकत्र होकर बैठने पर धर्मचर्चा तो होनी ही चाहिये!" तब उन श्रद्धालु जनों की व्यग्रता एवं खिन्नता भरी ये बातें भिक्षुओं ने भी सुनी। भिक्षुओं ने भगवान् से यह सब कहा। तब भगवान् ने इसी प्रकरण में धर्मचर्चा करते हुए उन भिक्षुओं को आदेश दिया—"**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चतुर्दशी, पूर्णिमा एवं पक्ष की अष्टमी के दिन एकत्र होकर धर्मचर्चा करने की।**" (२)

२. प्रातिमोक्ष की आवृत्ति की अनुज्ञा

२. तब एकान्त में ध्यानमग्न बैठे भगवान् के मन में यह विचार उठा—"क्यों न मैं भिक्षुओं को

सो नेसं भविस्सति उपोसथकम्मं'' ति। अथ खो भगवा सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''इध मय्हं, भिक्खवे, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'यन्नूनाहं यानि मया भिक्खूनं पञ्ञत्तानि सिक्खापदानि, तानि नेसं पातिमोक्खुद्देसं अनुजानेय्यं। सो नेसं भविस्सति उपोसथकम्मं' ति। **अनुजानामि, भिक्खवे, पातिमोक्खं उद्दिसितुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, उद्दिसितब्बं।

३. ''ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो उपोसथं करेय्य, पातिमोक्खं उद्दिसेय्य। किं सङ्घस्स [R.103] पुब्बकिच्चं? पारिसुद्धिं आयस्मन्तो आरोचेथ। पातिमोक्खं उद्दिसिस्सामि। तं सब्बेव [B.141] सन्ता साधुकं सुणोम मनसि करोम। यस्स सिया आपत्ति, सो आविकरेय्य। असन्तिया आपत्तिया तुण्हीभवितब्बं। तुण्हीभावेन खो पनायस्मन्ते, 'परिसुद्धा' ति वेदिस्सामि। यथा खो पन पच्चेकपुट्ठस्स वेय्याकरणं होति, एवमेव एवरूपाय परिसाय यावततियं अनुस्सावितं होति। यो पन भिक्खु यावततियं अनुस्सावियमाने सरमानो सन्तिं आपत्तिं नाविकरेय्य, सम्पजानमुसावादस्स होति। सम्पजानमुसावादो खो पनायस्मन्तो अन्तरायिको धम्मो वुत्तो भगवता। तस्मा, सरमानेन भिक्खुना आपन्नेन विसुद्धापेक्खेन सन्ती आपत्ति आविकातब्बा; आविकता हिस्स फासु होती'' ति।

४. **पातिमोक्खं** ति आदिमेतं मुखमेतं पमुखमेतं कुसलानं धम्मानं। तेन वुच्चति

उन शिक्षापदो (भिक्षुनियमों) की आवृत्ति करने की अनुमति दूँ, जिनका कि मैंने इनके लिये प्रज्ञापन किया है। यही इनका उपोसथकर्म हो जायगा।'' तब भगवान् सायङ्काल ध्यानभावना से उठकर, इसी निदान में, इसी प्रकरण में धार्मिक कथाएँ कहते हुए भिक्षुओं से बोले—''भिक्षुओ! अभी आज ध्यानभावना करते हुए मेरे मन में विचार उठा कि क्यों न मैं....पूर्ववत्....कर्म हो जायगा। अत. **भिक्षुओ! मेरी अनुज्ञा है कि तुम लोग प्रातिमोक्ष की आवृत्ति किया करो।**

और, भिक्षुओ! यह प्रातिमोक्ष की आवृत्ति इस प्रकार करनी चाहिये—

३. चतुर एवं समर्थ भिक्षु सङ्घ को ज्ञापित करें—

ज्ञप्ति— ''भन्ते सङ्घ मेरी सुने। यदि सङ्घ उचित समझे तो उपोसथ करे तथा प्रातिमोक्ष की आवृत्ति करे। सङ्घ का पूर्वकृत्य क्या है? आयुष्मानो! आप लोग अपनी परिशुद्धि (मन-कर्म-वचन की निर्दोषता) पर ध्यान दें। अब मैं प्रातिमोक्ष की आवृत्ति करूँगा। हम सब शान्तचित्त होकर भलीभाँति सुनें और मन में धारण करें। हममें से जिस भिक्षु से भी इन नियमों के विरुद्ध कोई भूल (प्रमाद) हुई हो तो वह उसे सङ्घ के सम्मुख स्पष्ट करे। यदि न हुई हो तो चुप रहे। (आप लोगों के) चुप रहने से, 'आप लोग परिशुद्ध हैं'—ऐसा मैं मान लूँगा।

जैसे प्रत्येक पुरुष से प्रश्न करने पर एक एक पुरुष को ही पृथक् पृथक् उत्तर देना आवश्यक होता है, उसी प्रकार ऐसी परिषदों में तीन बार तक पूछा (समूहरूप मे पुकारा) जाता है। जो भिक्षु तीन बार तक पूछे जाने पर, स्मरण रहते हुए भी, स्वयङ्कृत किसी प्रमाद को सङ्घ के सम्मुख प्रकट नहीं करता, उस को 'जान बूझकर असत्य भाषण' का दोष लगता है। (आप लोग जानते ही हैं कि) भगवान् ने 'जान बूझकर असत्य भाषण' निर्वाण प्राप्ति में अत्यधिक विघ्नकारक दोष बताया है। अतः भिक्षु को स्वकृत प्रमाद का स्मरण करते हुए, उससे मुक्त होने की भावना से, उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। यों स्वकृत प्रमाद को स्वीकार कर लेना उसके अपने लिये हितकर ही होगा।

पातिमोक्खं ति। **आयस्मन्तो** ति पियवचनमेतं गरुवचनमेतं सगारवसप्पतिस्साधिवचनमेतं आयस्मन्तो ति। **उद्दिसिस्सामी** ति आचिक्खिस्सामि देसेस्सामि पञ्ञापेस्सामि पट्ठपेस्सामि विवरिस्सामि विभजिस्सामि उत्तानीकरिस्सामि पकासेस्सामि। **तं** ति पातिमोक्खं वुच्चति। **सब्बेव सन्ता** ति यावतिका तस्सा परिसाय थेरा च नवा च मज्झिमा च, एते वुच्चन्ति सब्बेव सन्ता ति। **साधुकं सुणोमा** ति अट्ठिं कत्वा मनसिकत्वा सब्बं चेतसा समन्नाहराम। [N.107] **मनसिकरोमा** ति एकग्गचित्ता अविक्खित्तचित्ता अविसाहटचित्ता निसामेम। **यस्स सिया आपत्ती** ति थेरस्स वा नवस्स वा मज्झिमस्स वा, पञ्चन्नं वा आपत्तिक्खन्धानं अञ्ञतरा आपत्ति, सत्तन्नं वा आपत्तिक्खन्धानं अञ्ञतरा आपत्ति। **सो आविकरेय्या** ति सो देसेय्य, सो विवरेय्य, सो उत्तानीकरेय्य, सो पकासेय्य सङ्घमज्झे वा गणमज्झे वा एकपुग्गले वा। **असन्ती** नाम **आपत्ति** अनज्झापन्ना वा होति, आपज्जित्वा वा वुट्ठिता। **तुण्ही भवितब्बं** ति अधिवासेतब्बं न ब्याहरितब्बं। **परिसुद्धा ति वेदिस्सामी** ति जानिस्सामि धारेस्सामि। **यथा खो पन पच्चेकपुट्ठस्स वेय्याकरणं होती** ति तथा एकेन एको पुट्ठो ब्याकरेय्य. एवमेव तस्सा परिसाय जानितब्बं-मं पुच्छती ति। **एवरूपा** नाम **परिसा** भिक्खुपरिसा वुच्चति। **यावततियं अनुस्सावितं होती** ति सकिं पि अनुस्सावितं होति, दुतियं पि अनुस्सावितं [B.142] होति, ततियं पि अनुस्सावितं होति। **सरमानो** ति जानमानो सञ्जानमानो। **सन्ती**

---

४. (व्याख्या-) **पातिमोक्ख** का अर्थ है– यह कुशल धर्मों का आदि है, मुख्य है, प्रमुख है। इसलिये इसे 'प्रातिमोक्ष' कहते हैं। **आयस्मन्तो**– यह प्रिय (स्नेह) बोधक एवं गौरवबोधक शब्द है। यह उसके लिये प्रयुक्त होता है जिसके लिये श्रद्धा या प्रतिष्ठा द्योतित करनी हो। **उद्दिसिस्सामीति**– कहूँगा, देशना करूँगा, प्रज्ञपित करूँगा, प्रस्थापित करूँगा, इसका विस्तार करूँगा, विभाजन करूँगा, स्पष्ट करूँगा, प्रकाशित करूँगा। **तं**– **'प्रातिमोक्ष'** के लिये प्रयुक्त हुआ है। **सब्बे व सन्ता**– (सभी शान्तचित्त रहते हुए)। इस शब्द के द्वारा उस समग्र परिषद् को समझना चाहिये जहाँ उस प्रातिमोक्ष के पाठ (आवृत्ति) हेतु जो नये या पुराने (स्थविर) भिक्षु एकत्र हुए हों। वे सभी 'सब्बे' में परिगणित हो जाते हैं। **साधुकं सुणोम**– ध्यान देकर सुनें। मन लगाकर सुनें। पाठ में आये हुए सब कुछ को मन से ग्रहण कर लें। **मनसि करोम**– एकाग्रचित्त दूसरे किसी विषय में अव्यापृतचित्त होकर तथा अविक्षिप्तचित्त होकर सुनें। **यस्स सिया आपत्ति**– जिसके (मन में) दोष हो। फिर भले ही वह स्थविर भिक्षु हो, नया भिक्षु हो या फिर मध्यम भिक्षु हो। 'आपत्ति' से तात्पर्य है विनय में बताये गये पाँच या सात आपत्तिस्कन्धों में से कोई आपत्ति। **सो आविकरेय्य**– वह सङ्घ के सामने, गण (समूह) के सामने या फिर एक ही भिक्षु के सामने कह दे, स्पष्ट कर दे, विस्तारपूर्वक बता दे, प्रकाशित कर दे (छिपाये नहीं)। **असन्तिया आपत्तिया**– अर्थात् ऐसी आपत्ति जो या तो हुई न हो या फिर होकर विस्मृत हो गयी हो। **तुण्हीभवितब्बं**– सुन लेना चाहिये, उसका उत्तर नहीं देना (चुप रहना) चाहिये। **परिसुद्धा ति वेदिस्सामि**– 'आप लोग परिशुद्ध हैं'–ऐसा जानूँगा, समझूँगा। **यथा खो पन पच्चेकपुट्ठस्स वेय्याकरणं होति**– जैसे किसी एक के द्वारा किसी एक को पूछने पर वह उत्तर देता है, इसी तरह उस परिषद् से जानने के लिये यह पूछा जा रहा है। **एवरूपा परिसा**– ऐसी परिषद्, अर्थात् भिक्षुपरिषद् (सङ्घ)। **यावततियं अनुस्सावितं होति**– सकृत् (एक बार) भी सुनाया जाता है, दूसरी बार भी....तीसरी बार भी सुनाया जाता है। **सरमानो**– स्मरण करता हुआ, जानता हुआ, सही ढग से जानता हुआ। **सन्ती आपत्ति**– ऐसी आपत्ति जो या तो हुई हो और या होकर विस्मृत न हुई हो। **नाविकरेय्य**– वह सङ्घ

नाम **आपत्ति** अज्झापन्ना वा होति, आपज्जित्वा वा अवुट्ठिता। **नाविकरेय्या** ति न देसेय्य, न विवरेय्य, न उत्तानीकरेय्य, न पकासेय्य सङ्घमज्झे वा गणमज्झे वा एकपुग्गले [R.104] वा। **सम्पजानमुसावादस्स होती** ति। सम्पजानमुसावादे किं होति? दुक्कटं होति। **अन्तरायिको धम्मो वुत्तो भगवता** ति। किस्स अन्तरायिको? पठमस्स झानस्स अधिगमाय अन्तरायिको, दुतियस्स झानस्स अधिगमाय अन्तरायिको, ततियस्स झानस्स अधिगमाय अन्तरायिको, चतुत्थस्स झानस्स अधिगमाय अन्तरायिको, झानानं विमोक्खानं समाधीनं समापत्तीनं नेक्खम्मानं निस्सरणानं पविवेकानं कुसलानं धम्मानं अधिगमाय अन्तरायिको। **तस्मा** ति तङ्कारणा। **सरमानेना** ति जानमानेन सञ्जानमानेन। **विसुद्धापेक्खेना** ति वुट्ठातुकामेन विसुज्झितुकामेन। **सन्ती** नाम **आपत्ति** अज्झापन्ना वा होति, आपज्जित्वा वा अवुट्ठिता। **आविकातब्बा** ति आविकातब्बा सङ्घमज्झे वा गणमज्झे वा एकपुग्गले वा। **आविकता हिस्स फासु होती** ति। किस्स फासु होति? पठमस्स झानस्स अधिगमाय फासु होति, दुतियस्स झानस्स अधिगमाय फासु होति, ततियस्स झानस्स अधिगमाय फासु होति, चतुत्थस्स झानस्स अधिगमाय फासु होति, झानानं विमोक्खानं समाधीनं समापत्तीनं नेक्खम्मानं निस्सरणानं पविवेकानं कुसलानं धम्मानं अधिगमाय फासु होती ति।

५. तेन खो पन समयेन भिक्खू—भगवता पातिमोक्खुद्देसो अनुञ्ञातो ति—देवसिकं पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, देवसिकं पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। यो उद्दिसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, उपोसथे पातिमोक्खं उद्दिसितुं** ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू—'भगवता उपोसथे पातिमोक्खुद्देसो अनुञ्ञातो' ति—पक्खस्स तिक्खत्तुं पातिमोक्खं उद्दिसन्ति, चातुद्दसे पन्नरसे अट्ठमिया च पक्खस्स। भगवतो

के सम्मुख, गण के सम्मुख या एक ही भिक्षु के सम्मुख न कहे, न स्पष्ट करे, न विस्तारपूर्वक बतावे, न प्रकाशित करे (छिपा ले)। **सम्पजानमुसावादस्स होति**—इसको 'जानबूझ कर असत्य-भाषण' का आरोप लगता है। यह 'सम्प्रजानन मृषावाद' क्या होता है? दुष्कृत (पापदोष) होता है। **अन्तरायिको धम्मो वुत्तो भगवता**— भगवान् ने विघ्नकारक धर्म बतलाया है। किस का विघ्नकारक? प्रथम ध्यान की प्राप्ति के लिये विघ्नकारक होता है, द्वितीय ध्यान की....तृतीय ध्यान की....चतुर्थ ध्यान की प्राप्ति के विघ्नकारक होता है; ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति, नैष्कर्म्य, निःसरण (त्याग), प्रविवेक आदि कुशल धर्मों की अधिगति (प्राप्ति) के लिये विघ्नकारक है। **तस्मा**—उस कारण से। **सरमानेन**— स्मरण करते हुए, जानते हुए, भलीभाँति जानते हुए से। **विसुद्धापेक्खेन**— विशुद्धि चाहने वाले द्वारा, ऊपर उठने की चाह रखने वाले द्वारा। **सन्ती आपत्ति**— ऐसी आपत्ति जो या तो हो चुकी हो, या होकर विस्मृत न हुई हो। **आविकातब्बा**— सङ्घ या समूह या एक पुद्गल के सामने कह दे, स्पष्ट कर दे, विस्तारपूर्वक बता दे, प्रकाशित कर दे (छिपाये नहीं)। **आविकता हिस्स फासु होति।** इसके स्वीकार कर लेने से भिक्षु का हित ही सम्पादित होगा। कैसे इसका हित होगा? प्रथम ध्यान...द्वितीय ध्यान.....,तृतीय ध्यान....चतुर्थ ध्यान की प्राप्ति के लिये हितकर होगा। ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति, नैष्कर्म्य, निःसरण एवं प्रविवेक आदि कुशल धर्मों की प्राप्ति के लिये हितकर होगा। (व्याख्या पूर्ण)

५. उस समय भिक्षुजन— 'भगवान् ने प्रातिमोक्ष के पाठ की आज्ञा दी है'—इसलिये प्रतिदिन प्रातिमोक्ष की आवृत्ति करने लगे।....भगवान् से यह बात कही गयी। ....''**भिक्षुओ! दैनिक प्रातिमोक्ष**

[N.108] एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, पक्खस्स तिक्खत्तुं पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। यो उद्दिसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, सकिं पक्खस्स चातुद्दसे वा पन्नरसे वा पातिमोक्खं उद्दिसितुं** ति।

[B.143] तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू यथापरिसाय पातिमोक्खं उद्दिसन्ति [R.105] सकाय सकाय परिसाय। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, यथापरिसाय पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं सकाय सकाय परिसाय। यो उद्दिसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, समग्गानं उपोसथकम्मं** ति।

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं—'समग्गानं उपोसथकम्मं' ति। कित्तावता नु खो समग्गी होति, यावता एकावासो, उदाहु सब्बा पठवी" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, एत्तावता सामग्गी यावता एकावासो** ति।

३. महाकप्पिनवत्थु

६. तेन खो पन समयेन आयस्मा महाकप्पिनो राजगहे विहरति मद्दकुच्छिम्हि मिगदाये। अथ खो आयस्मतो महाकप्पिनस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"गच्छेय्यं वाहं उपोसथं न वा गच्छेय्यं, गच्छेय्यं वाहं सङ्घकम्मं न वा गच्छेय्यं, अथ ख्वाहं विसुद्धो परमाय विसुद्धिया" ति?

का पाठ नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुष्कृत दोष लगेगा। **अतः भिक्षुओ! उपोसथ के दिन ही प्रातिमोक्ष की आवृत्ति करने की आज्ञा देता हूँ।** (५)

उस समय भिक्षुजन–'भगवान् ने उपोसथ के दिन प्रातिमोक्ष का पाठ करना चाहिये'– ऐसी आज्ञा दी है, अतः वे पक्ष में तीन बार प्रातिमोक्ष की आवृत्ति करने लगे–चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा पक्ष की अष्टमी के दिन। भगवान् के सम्मुख यह प्रश्न रखा गया। (भगवान् ने कहा–) भिक्षुओ! पक्ष में तीन बार प्रातिमोक्ष की आवृत्ति नहीं करनी चाहिये। जो करे उसको 'दुष्कृत' दोष हो। अतः **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ–पक्ष में एक बार (सकृत्) चतुर्दशी या पूर्णिमा को ही प्रातिमोक्ष की आवृत्ति करो।** (६)

उक्त समय षड्वर्गीय भिक्षु परिषदों के अनुसार अपनी अपनी परिषद् बनाकर प्रातिमोक्ष की आवृत्ति करने लगे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा–) "भिक्षुओ! परिषद् बनाकर अपनी–अपनी परिषद् के लिये प्रातिमोक्ष की आवृत्ति नहीं करनी चाहिये। जो करे उसको दुष्कृत दो लगेगा। **अतः भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ–सङ्घ को एकत्र (समग्र) होकर उपोसथ कर्म करने की।** (७)

तब भिक्षुओं को यह हुआ–"भगवान् ने एकत्र (समग्र) होकर सङ्घ को उपोसथ कर्म की अनुमति दी है, तो यह समग्रता क्या है, कहाँ तक हम 'समग्रता' समझें? क्या एक भिक्षु–आवास में जितने भिक्षु रहते हों उनकी समग्रता? या समस्त पृथ्वी पर रहने वाले भिक्षुओं की समग्रता? भगवान् के सम्मुख यह प्रश्न रखा गया (भगवान् ने कहा–) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ एक वासस्थान में जितने भिक्षु हों उन्हीं को 'समग्र' मानने की।** (८)

३. महाकप्पिनवस्तु

६. उस समय आयुष्मान् महाकप्पिन राजगृह के मद्रकुक्षि नामक मृगदाव (मृगारण्य) में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब कभी एकान्त में ध्यानमग्न बैठे आयुष्मान् महाकप्पिन को मन में यह

अथ खो भगवा आयस्मतो महाकप्पिनस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य, एवमेव—गिज्झकूटे पब्बते अन्तरहितो मद्दकुच्छिम्हि मिगदाये आस्मतो महाकप्पिनस्स सम्मुखे पातुरहोसि। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। आयस्मा पि खो महाकप्पिनो भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं महाकप्पिनं भगवा एतदवोच—"ननु ते, कप्पिन, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—गच्छेय्यं वाहं उपोसथं न वा गच्छेय्यं, गच्छेय्यं वाहं सङ्घकम्मं न वा गच्छेय्यं, अथ ख्वाहं विसुद्धो परमाय विसुद्धिया" ति ?"एवं, भन्ते।""तुम्हे चे ब्राह्मणा उपोसथं न सक्करिस्सथ न गरुकरिस्सथ न मानेस्सथ न पूजेस्सथ, अथ को चरहि उपोसथं सक्करिस्सति गरुकरिस्सति मानेस्सति पूजेस्सति ? गच्छ त्वं, ब्राह्मण, उपोसथं, मा नो अगमासि। गच्छत्वं सङ्घकम्मं, मा नो अगमासी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा महाकप्पिनो भगवतो [B.140] पच्चस्सोसि।

अथ खो भगवा आयस्मन्तं महाकप्पिनं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य, एवमेव—मद्दकुच्छिम्हि मिगदाये आयस्मतो महाकप्पिनस्स पमुखे अन्तरहितो गिज्झकूटे पब्बते पातुरहोसि। [N.109]

४. सीमानुजानना

७. अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं—'एत्तावता सामग्गी [R.106]

विचार हुआ—"मैं उपोसथ में सम्मिलित होऊँ, या न होऊँ? सङ्घकर्म के लिये जाऊँ या न जाऊँ? क्योंकि मैं तो अब परम विशुद्धि से सम्पन्न हो चुका हूँ।"

तब आयुष्मान् महाकप्पिन के इस चिन्तन को अपने मन से वैसे ही जानकर, जैसे कोई बलवान् पुरुष अपनी पसरी हुई बाँह को सिकोड़ ले, या सिकुड़ी हुई बाहु को पसार दे, इस प्रकार भगवान् गृध्रकूट पर्वत से अन्तर्हित होकर मद्रकुक्षि मृगदाव में आयुष्मान् महाकप्पिन के सम्मुख प्रकट हुए....भगवान् प्रज्ञप्त आसन पर विराजे। आयुष्मान् महाकप्पिन भी भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् महाकप्पिन से भगवान् ने पूछा—"क्या कप्पिन एकान्त में ध्यानमग्न बैठे हुए तुम्हारे मन में वस्तुतः यह विचार उठा था कि मैं उपोसथ में....पूर्ववत्....सम्पन्न हो चुका हूँ?" (कप्पिन ने कहा—) "हाँ, भन्ते!"

(भगवान् ने कहा—) (कप्पिन!) यदि तुम्हारे जैसे (प्रतिष्ठित) ब्राह्मण उपोसथ का सत्कार, गौरव, सम्मान एवं पूजा नहीं करेंगे तो फिर कौन उपोसथ का सत्कार.....पूजा करेगा? ब्राह्मण! तुम भी उपोसथ में जाया करो! ऐसा न हो कि तुम न जाओ! सङ्घकर्म में भी सम्मिलित हुआ करो! ऐसा न हो कि तुम उसमें सम्मिलित न होओ।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर आयुष्मान् महाकप्पिन ने भगवान् को उत्तर दिया।

तब भगवान् आयुष्मान् महाकप्पिन को धार्मिक कथाओं द्वारा सन्दृष्ट.... सम्प्रहृष्ट कर....मद्रकुक्षि मृगदाव में आयुष्मान् महाकप्पिन के सामने अन्तर्हित होकर पुनः गृध्रकूट पर्वत पर प्रकट हुए।

४. उपोसथ—सीमा की अनुज्ञा

७. तब भिक्षुओ के मन में यह विचार उठा—"भगवान् ने एक आवास में जितने भिक्षु हो

यावता एकावासो' ति, कित्तावता नु खो एकावासो होती'' ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सीमं सम्मन्नितुं।** एवं च पन, भिक्खवे, सम्मन्नितब्बा—

पठमं निमित्ता कित्तेतब्बा—पब्बतनिमित्तं, पासाणनिमित्तं, वननिमित्तं, रुक्खनिमित्तं, मग्गनिमित्तं, वम्मिकनिमित्तं, नदीनिमित्तं, उदकनिमित्तं। निमित्ते कित्तेत्वा ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

८. ''सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यावता समन्ता निमित्ता कित्तिता। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो एतेहि निमित्तेहि सीमं सम्मन्नेय्य समानसंवासं एकुपोसथं। एसा ञत्ति।

''सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यावता समन्ता निमित्ता कित्तिता। सङ्घो एतेहि निमित्तेहि सीमं सम्मन्नति समानसंवासं एकुपोसथं। यस्सायस्मतो खमति एतेहि निमित्तेहि सीमाय सम्मुति समानसंवासाय एकुपोसथाय, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य। सम्मता सीमा सङ्घेन एतेहि निमित्तेहि समानसंवासा एकुपोसथा। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी'' ति।

९. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू—भगवता सीमासम्मुति अनुञ्ञाता ति—अतिमहतियो सीमायो सम्मन्नन्ति, चतुयोजनिका पि, पञ्चयोजनिका पि, छयोजनिका पि। भिक्खू उपोसथं आगच्छन्ता उद्दिस्समाने पि पातिमोक्खे आगच्छन्ति, उद्दिट्ठमत्ते पि [B.145] आगच्छन्ति, अन्तरा पि परिवसन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।''**न, भिक्खवे,**

उतनों को 'समग्र' कहा जाय, किन्तु यह एक 'आवास' कितने (भिक्षुओं) का होता है?'' भगवान् के सम्मुख यह प्रश्न रखा गया। (भगवान् ने आज्ञा दी—) ''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सीमा का निर्णय करने की।** (९)

''भिक्षुओ! इस सीमा का निर्णय इस प्रकार करना चाहिये— (१) सर्वप्रथम कोई चिह्न, निर्धारित करना चाहिये; जैसे कोई पर्वतचिह्न, शिलाचिह्न, वनचिह्न, विशालवृक्षचिह्न, मार्ग (सड़क) चिह्न, वल्मीक-(दीमकों के बिल की मिट्टी का ढेर) चिह्न, नदीचिह्न, या काई उदक (जलप्रताप आदि) का चिह्न। इन चिह्नों में से कोई चिह्न बताकर चतुर तथा समर्थ भिक्षु सङ्घ को यों सूचित (ज्ञापित) करें—

८. **ज्ञप्ति**— 'भन्ते! सङ्घ मेरी बात सुने। सीमाबोधक चारों तरफ के चिह्न बता दिये गये हैं। यदि सङ्घ उचित समझे तो इन चिह्नों वाली सीमा को एक उपोसथ हेतु एक 'वासस्थान' स्वीकार करे।' यह ज्ञप्ति (सूचना) है।

अनुश्रावण— 'भन्ते! सङ्घ मेरी बात सुने। (सीमाबोधक) जितने चारों तरफ चिह्न बतलाये गये हैं, सङ्घ इन चिह्नों वाली सीमा को एक उपोसथ वाला एक 'वासस्थान' स्वीकार करता है। जिस आयुष्मान् को ऐसी चिह्नित सीमा का एक उपोसथवाला एक 'वासस्थान' मानना उचित लगता हो वह चुप रहे। परन्तु जिसको उचित न लगता हो वह बोले—

धारणा— एक उपोसथ के लिये एक 'आवास' वाली इन चिह्नों से युक्त सीमा से सङ्घ सहमत है। सङ्घ को यह स्वीकार है, इसीलिये चुप है। ऐसी मेरी धारणा है।

९. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु, यह सोचकर कि, भगवान् ने सीमानिर्णय की अनुमति दे दी है, बहुत लम्बी—चार योजन, पाँच योजन या छह योजन तक की सीमाएँ निर्धारित कर देते थे। तब, दूर होने के कारण, भिक्षु प्रातिमोक्ष के लिये चल देने पर भी पाठ के प्रारम्भ होने के बाद पहुँचते थे;

अति महती सीमा सम्मन्नितब्बा, चतुयोजनिका वा पञ्चयोजनिका वा छयोजनिका वा। यो सम्मन्नेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, तियोजनपरमं सीमं सम्मन्नितुं ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू नदीपारं सीमं सम्मन्नन्ति। उपोसथं आगच्छन्ता भिक्खू पि वुय्हन्ति, पत्ता पि वुय्हन्ति, चीवरानि पि वुय्हन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, नदीपारसीमा सम्मन्नितब्बा। यो सम्मन्नेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, यत्थस्स धुवनावा वा, धुवसेतु वा, एवरूपं नदीपारं सीमं सम्मन्नितुं**" ति।

५. उपोसथागारकथा

१०. तेन खो पन समयेन भिक्खू अनुपरिवेणियं पातिमोक्खं उद्दिस्सन्ति [R.107] असङ्केतेन आगन्तुका भिक्खू न जानन्ति—'कत्थ वा अज्जुपोसथो करीयिस्सती' ति। [N.110] भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, अनुपरिवेणियं पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं असङ्केतेन। यो उद्दिसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, उपोसथागारं सम्मन्नित्वा उपोसथं कातुं, यं सङ्घो आकङ्खति विहारं वा अड्ढयोगं वा पासादं वा हम्मियं वा गुहं वा।**

एवं च पन, भिक्खवे, सम्मन्नितब्बं। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

या अन्त में पहुँचते थे, या फिर दूर होने के कारण बीच में ही रुक जाते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! चार, पाँच, छह योजन लम्बी सीमाएँ नहीं रखनी चाहिये। जो रखेगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा। अधिक से अधिक तीन योजन की सीमा रखनी चाहिये—ऐसी मैं अनुमति देता हूँ।**" (१०)

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नदी के उस पार तक की सीमा निश्चित कर देते थे। (इस कारण) उपोसथ में सम्मिलित होने के लिये आते हुए भिक्षु या तो स्वयं या उनके पात्र या चीवर नदी में डूब जाते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! प्रातिमोक्ष उद्देश्य के लिये नदी पार की सीमा नहीं रखनी चाहिये। जो रखेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा। अतः भिक्षुओ! मैं वहाँ के लिये ही नदी-पार की सीमानिर्धारण की अनुमति देता हूँ जहाँ नदी पर कोई स्थायी दृढ़ पुल बना हो, या नदी-पार आने जाने के लिये किसी नाव का स्थायी प्रबन्ध हो।**" (११)

५. उपोसथागारकथा

१०. उस समय भिक्षु क्रमशः परिवेणों (विशाल आँगनों) में, विना कोई सूचना (सङ्केत) दिये प्रातिमोक्ष का पाठ करने लगे। उस क्षेत्र में नये आने वाले भिक्षु नहीं जान पाते थे कि 'आज कहाँ प्रातिमोक्ष का पाठ होगा?' भगवान् के सामने यह समस्या रखी गयी। (भगवान् ने कहा—) "भिक्षुओ! परिवेणों में विना कोई सूचना दिये प्रातिमोक्ष का पाठ नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसको दुष्कृत दोष लगेगा। अतः **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ— विहार, अटारी (हवेली), प्रासाद (महल) हर्म्य या गुफा—इनमें से जिस किसी को सङ्घ चाहे, उपोसथागार के लिये सम्मति लेकर उसमें उपोसथ करने की।** (१२)

"भिक्षुओ! यह सम्मति इस तरह लेनी चाहिये—वहाँ कोई चतुर एवं समर्थ भिक्षु सङ्घ को ज्ञापित (सूचित) करे—

"सुणातु मे, भन्ते सङ्घो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो इत्थन्नामं विहारं उपोसथागारं सम्मन्नेय्य। एसा ञत्ति।

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। सङ्घो इत्थन्नामं विहारं उपोसथागारं सम्मन्निति। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स विहारस्स उपोसथागारस्स सम्मुति, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य। सम्मतो सङ्घेन इत्थन्नामो विहारो उपोसथागारं। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी" ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे द्वे उपोसथागारानि सम्मतानि होन्ति। भिक्खू उभयत्थ सन्निपतन्ति—इध उपोसथो करीयिस्सति, इध उपोसथो करीयिस्सती ति। [B.146] भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, एकस्मिं आवासे द्वे उपोसथागारानि सम्मन्नितब्बानि। यो सम्मन्नेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, एकं समूहनित्वा एकत्थ उपोसथं कातुं।**

"एवं च पन, भिक्खवे, समूहन्तब्बं। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो इत्थन्नामं उपोसथागारं समूहनेय्य। एसा ञत्ति।

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। सङ्घो इत्थन्नामं उपोसथागारं समूहनति। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स उपोसथागारस्स समुग्घातो, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

"समूहतं सङ्घेन इत्थन्नामं उपोसथागारं। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धायामी" ति।

ज्ञप्ति— 'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने—यदि सङ्घ उचित समझे तो इस नाम वाले विहार को उपोसथागार घोषित करे।—यह ज्ञप्ति है।

अनुश्रावण— भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। सङ्घ इस नाम वाले विहार को उपोसथागार घोषित करता है। जिस आयुष्मान् को इस नाम वाले विहार का उपोसथागार घोषित करना अनुकूल प्रतीत हो रहा हो, वह चुप रहे। जिसे अनुकूल प्रतीत न हो रहा हो वह बोले।

धारणा— सङ्घ को इस नाम वाले विहार का उपोसथागार घोषित करना अनुकूल है, अतः चुप हैं— मैं ऐसा समझता हूँ।'

उस समय एक ही आवास (भिक्षुविहार) में दो उपोसथागार घोषित कर दिये जाते थे। भिक्षु दोनों स्थानों पर एकत्र हाते थे कि यहाँ उपोसथ करेंगे और यहाँ भी। भगवान् के सम्मुख यह बात रखी गयी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! एक ही आवास में दो उपोसथागार नहीं घोषित किये जाने चाहिये। जो घोषित करे उसे 'दुष्कृत' दोष हो। अतः भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उनमें से एक उपोसथागार के त्याग की।**" (१३)

और, भिक्षुओ! उनमें से एक उपोसथागार के त्याग की विधि यह है— चतुर या समर्थ कोई भिक्षु सङ्घ को सूचित करे—

ज्ञप्ति— भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। यदि सङ्घ उचित समझे तो इस नाम वाले उपोसथागार को त्याग दे। यह ज्ञप्ति है।

अनुश्रावण— भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। सङ्घ इस नाम वाले उपोसथागार को त्यागता है। जिस आयुष्मान् को यह त्याग अनुकूल हो वह चुप रहे। जिसको अनुकूल न हो वह बोले।

६. उपोसथप्पमुखानुजानना

११. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे अतिखुद्दकं उपोसथागारं सम्मतं होति। तदहुपोसथे महाभिक्खुसङ्घो सन्निपतितो होति। भिक्खु असम्मताय भूमिया निसिन्ना पातिमोक्खं अस्सोसुं। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं—'उपोसथागारं सम्मन्नित्वा उपोसथो कातब्बो' ति। मयं चम्हा असम्मताय भूमिया निसिन्ना [R.108] पातिमोक्खं अस्सुम्हा। कतो नु खो अम्हाकं उपोसथो, अकतो नु खो" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **सम्मताय वा, भिक्खवे, भूमिया निसिन्नो असम्मताय वा, यतो पातिमोक्खं सुणाति कतो वस्स उपोसथो। तेन हि, भिक्खवे, सङ्घो याव महन्तं उपोसथप्पमुखं आकङ्खति तावमहन्तं उपोसथप्पमुखं सम्मन्नतु।** एवं च पन, भिक्खवे, सम्मन्नितब्बं। पठमं निमित्ता कित्तेतब्बा। निमित्ते कित्तेत्वा ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन [N.111] सङ्घो ञापेतब्बो—

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यावता समन्ता निमित्ता कित्तिता। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो एतेहि निमित्तेहि उपोसथप्पमुखं सम्मन्नेय्य। एसा ञत्ति।

सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यावता समन्ता निमित्ता कित्तिता। सङ्घो एतेहि निमित्तेहि उपोसथप्पमुखं सम्मन्नति। यस्सायस्मतो खमति एतेहि निमित्तेहि उपोसथप्पमुखस्स [B.147] सम्मुत्ति, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

सम्मतं सङ्घेन एतेहि निमित्तेहि उपोसथप्पमुखं। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी" ति।

धारणा— मैं समझता हूँ कि इस नाम वाले उपोसथागार का सङ्घ ने त्याग कर दिया है, इसीलिये चुप है—ऐसी मेरी धारणा है।

६. उपोसथ के प्रमुख (स्थान) के लिये अनुज्ञा

११. उस समय, किसी आवास में बहुत छोटा उपोसथागार घोषित किया जाता था। उपोसथ के दिन बहुत अधिक भिक्षु एकत्र हो जाते थे। तो कुछ भिक्षु असम्मत स्थान में बैठकर भी प्रातिमोक्ष का पाठ सुनते थे। तब उन भिक्षुओं को यह विचार हुआ—"भगवान् का आदेश है कि उपोसथागार की सम्मति लेकर ही उसमें उपोसथ करना चाहिये। जबकि हमने असम्मत भूमि में बैठकर प्रातिमोक्ष का पाठ सुना। क्या हमारा यह उपोसथ शुद्ध (उचित) हुआ या अशुद्ध?" भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! उपोसथागार में सम्मत या असम्मत किसी भी भूमि में बैठकर प्रातिमोक्ष का पाठ पुण्यफलप्रद ही होता है। परन्तु, भिक्षुओ! सङ्घ जितना लम्बा चौड़ा स्थान (बरामदा) उपोसथ के लिये चाहता है उतना स्थान (बरामदा=लम्बा स्थान) पहले से ही निश्चित कर लेना चाहिये।** (१४)

स्थान—निश्चय की विधि यह है—वहाँ पहले चिह्नों को घोषित करना चाहिये। इन चिह्नों को घोषित कर चतुर एवं समर्थ भिक्षु सङ्घ को सूचित करे—

ज्ञप्ति—'भन्ते! सङ्घ मेरी बात सुने। चारों ओर जिन चिह्नों की सीमा बतायी गयी है उन चिह्नों से अङ्कित स्थान को सङ्घ यदि उपोसथ के योग्य समझे तो उसे वैसा घोषित करे। यह सूचना है।

अनुश्रावण— 'भन्ते! सङ्घ मेरी बात सुने। चारों ओर जिन चिह्नों की सीमा बतायी गयी है उन चिह्नों से अङ्कित स्थान को सङ्घ उपोसथ के उपयुक्त घोषित करता है। यह....घोषणा जिसको उचित लगे वह चुप रहे। जिसको उचित न लगे वह बोले।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे नवका भिक्खू पठमतरं सन्निपतित्वा—न ताव थेरा आगच्छन्ती ति—पक्कमिंसु। उपोसथो विकाले अहोसि। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, तदहुपोसथे थेरेहि भिक्खूहि पठमतरं सन्निपतितुं**" ति।

तेन खो पन समयेन राजगहे सम्बहुला आवासा समानसीमा होन्ति। तत्थ भिक्खू विवदन्ति—'अम्हाकं आवासे उपोसथो करीयतु, अम्हाकं आवासे उपोसथो करीयतू' ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "इध पन, भिक्खवे, सम्बहुला आवासा समानसीमा होन्ति। तत्थ भिक्खू विवदन्ति—'अम्हाकं आवासे उपोसथो करीयतु', 'अम्हाकं आवासे उपोसथो करीयतू' ति। **तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि सब्बेहेव एकज्झं सन्निपतित्वा उपोसथो कातब्बो। यत्थ वा पन थेरो भिक्खु विहरति, तत्थ सन्निपतित्वा उपोसथो कातब्बो, न त्वेव वग्गेन सङ्घेन उपोसथो कातब्बो। यो करेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

७. अविप्पवाससीमानुजानना

[R.109] १२. तेन खो पन समयेन आस्मा महाकस्सपो अन्धकविन्दा राजगहं उपोसथं आगच्छन्तो अन्तरामग्गे नदिं तरन्तो मनं वूळ्हो अहोसि, चीवरानिस्स अल्लानि। भिक्खू आयस्मन्तं महाकस्सपं एतदवोचुं—"किस्स ते, आवुसो, चीवरानि अल्लानी" ति? "इधाहं, आवुसो, अन्धकविन्दा राजगहं उपोसथं आगच्छन्तो अन्तरामग्गे नदिं तरन्तो मनम्हि वूळ्हो। तेन मे चीवरानि अल्लानी" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**या सा, भिक्खवे, सङ्घेन**

धारणा— 'इन चिह्नों से युक्त स्थान को उपोसथ के लिये उपयुक्त घोषित करना सङ्घ को स्वीकार है, अतः चुप है—ऐसी मेरी धारणा है।' "

उस समय किसी एक आवास में, उपोसथ के दिन नये भिक्षु पहले आ गये वे पुराने (स्थविर) भिक्षुओं की कुछ समय प्रतीक्षा कर, पुनः अपने आवास में लौट गये। यों उपोसथ विकाल (अनुचित समय) में हुआ। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् का आदेश हुआ—) "**भिक्षुओ! आदेश देता हूँ कि उपोसथ में स्थविर भिक्षु पहले से उपस्थित रहा करें।** (१५)

उस समय राजगृह में बहुत से आवासों की एक सीमा थी, जिसके लिये भिक्षु विवाद करते थे कि हमारे आवास में ही उपोसथ किया जाय। भगवान् के सामने यह विवाद रखा गया। (भगवान् ने निर्णय दिया—) "**यदि, भिक्षुओ! बहुत से आवासों की एक सीमा हो, जिससे भिक्षु—'हमारे आवास में ही उपोसथ किया जाय'—यह विवाद करने लगे तो भिक्षुओ! उन सभी भिक्षुओं को एक स्थान पर एकत्र हो उपोसथ करना चाहिये। अथवा जहाँ स्थविर भिक्षु रहते हों वहाँ एकत्र होकर उपोसथ करना चाहिये। पृथक् पृथक् समूह में सङ्घ को उपोसथ नहीं करना चाहिये। जो करे उसको 'दुष्कृत' दोष लगे।** (१६)

७. अविप्रवाससीमानुज्ञा

१२. उस समय आयुष्मान् महाकाश्यप उपोसथ के लिये अन्धकविन्द से राजगृह आते हुए, रास्ते में नदी—पार करते समय फिसल गये, जिससे उनके चीवर गीले हो गये। भिक्षुओं ने आयुष्मान् महाकाश्यप से पूछा—"भन्ते! आप के ये चीवर क्यों गीले हो गये?" "आयुष्मानो! मैं उपोसथ के लिये अन्धकविन्द से राजगृह आ रहा था। नदी—पार करते समय मैं उसमें फिसल गया। इसी कारण मेरे ये चीवर गीले हो गये।" भिक्षुओं ने भगवान् को यह घटना बतायी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ!**

सीमा सम्मता समानसंवासा एकुपोसथा, सङ्घो तं सीमं तिचीवरेन अविप्पवासं सम्मन्नतु। एवं च पन, भिक्खवे, सम्मन्नितब्बा। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। या सा सङ्घेन सीमा सम्मता समानसंवासा [B.148] एकुपोसथा, यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं सङ्घो तं सीमं तिचीवरेन अविप्पवासं सम्मन्नेय्य। एसा ञत्ति।

सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। या सा सङ्घेन सीमा सम्मता समानसंवासा एकुपोसथा, सङ्घो तं सीमं तिचीवरेन अविप्पवासं सम्मन्नति। यस्सायस्मतो खमति एतिस्सा [N.112] सीमाय तिचीवरेन अविप्पवासाय सम्मुति, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य। सम्मता सा सीमा सङ्घेन तिचीवरेन अविप्पवासा। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी" ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू 'भगवता तिचीवरेन अविप्पवाससम्मुति अनुञ्ञाता' ति अन्तरघरे चीवरानि निक्खिपन्ति। तानि चीवरानि नस्सन्ति पि डय्हन्ति पि उन्दुरेहि पि खज्जन्ति। भिक्खू दुच्चोळा होन्ति लूखचीवरा। भिक्खू एवमाहंसु—"किस्स तुम्हे, आवुसो, दुच्चोळा लूखचीवरा" ति? "इध मयं, आवुसो, भगवता तिचीवरेन अविप्पवाससम्मुति अनुञ्ञाता ति अन्तरघरे चीवरानि निक्खिपिम्हा। तानि चीवरानि नट्ठानि पि दड्ढानि पि, उन्दुरेहि पि खायितानि, तेन मयं दुच्चोळा लूखचीवरा" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

एक उपोसथ वाले एक वासस्थान की जो सीमा सङ्घ ने घोषित की है, सङ्घ उस सीमा को तीन चीवरों का नियम न रखकर घोषित करे। (१७)

भिक्षुओ! यह घोषणा इस प्रकार करें— चतुर एवं समर्थ भिक्षु द्वारा सङ्घ ज्ञापित किया जाना चाहिये—

ज्ञप्ति— 'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। यह जो सङ्घ ने एक उपोसथ वाले एक निवासस्थान की सीमा घोषित की है, यदि सङ्घ उचित समझे तो वह उस सीमा को तीन चीवर का नियम न रखकर घोषित करे। यह ज्ञप्ति है।

अनुश्रावण— 'भन्ते! सङ्घ ....तीन चीवर का नियम न रखकर घोषित करता है। जिसको ....वह चुप रहे।

धारणा— 'सङ्घ को उस सीमा को तीन चीवर का नियम न रख कर घोषित करना स्वीकार है। इसी लिये सङ्घ चुप है— ऐसी मेरी धारणा है।' "

उस समय कुछ भिक्षु यह सोचकर कि भगवान् ने तीन चीवर के नियम का न होना घोषित कर दिया है, तो वे अपने चीवरों को गृहस्थो के घर मे छोड़ आते थे जहाँ वे चीवर खो भी जाते थे, या उन्हें चूहे भी काट देते थे। तब भिक्षुओं के पास चीवर रह ही नहीं जाते थे, या फिर चूहों द्वारा कटे–फटे होते थे। जब दूसरे भिक्षु उनसे इस विषय में पूछते कि आयुष्मानो! आप लोग कम या रूखे चीवरों वाले क्यों हैं? तो उनका उत्तर यह होता था—

"आयुष्मानो! हमने सोचा कि भगवान् ने तीन चीवर वाला नियम शिथिल कर दिया है, अतः हम अपने चीवर गृहस्थों के घर छोड़ जाते थे। वहाँ वे चीवर या तो खो गये, या जल गये या फिर चूहो ने खा डाले। यों, हम कम या रूखे चीवरों वाले हो गये।"

भगवान् को यह बात स्थविर भिक्षुओं द्वारा बतायी गयी। (भगवान् बोले) "**भिक्षुओ! सङ्घ**

"या सा, भिक्खवे, सङ्घेन सीमा सम्मता समानसंवासा एकुपोसथा, सङ्घो तं सीमं तिचीवरेन अविप्पवासं सम्मन्नतु, ठपेत्वा गामं च गामूपचारं च। एवं च पन, भिक्खवे, सम्मन्नितब्बा। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

१३. "सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। या सा सङ्घेन सीमा सम्मता समानसंवासा एकुपोसथा, यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो तं सीमं तिचीवरेन अविप्पवासं सम्मन्नेय्य, ठपेत्वा गामं च गामूपचारं च। एसा ञत्ति।

[R.110] सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। या सा सङ्घेन सीमा सम्मता समानसंवासा एकुपोसथा, [B.149] सङ्घो तं सीमं तिचीवरेन अविप्पवासं सम्मन्नति, ठपेत्वा गामं च गामूपचारं च। यस्सायस्मतो खमति एतिस्सा सीमाय तिचीवरेन अविप्पवासाय सम्मुति, ठपेत्वा गामं च गामूपचारं च, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

सम्मता सा सीमा सङ्घेन तिचीवरेन अविप्पवासा, ठपेत्वा गामं च गामूपचारं च। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी" ति।

८. सीमासमूहननं

१४. "सीमं, भिक्खवे, सम्मन्नन्तेन पठमं समानसंवाससीमा सम्मन्नितब्बा, पच्छा तिचीवरेन अविप्पवासो सम्मन्नितब्बो। सीमं, भिक्खवे, समूहनन्तेन पठमं तिचीवरेन अविप्पवासो समूहन्तब्बो, पच्छा समानसंवाससीमा समूहन्तब्बा।

एवं च पन, भिक्खवे, तिचीवरेन अविप्पवासो समूहन्तब्बो।

ने जो यह एक उपोसथ वाले एक वासस्थान की सीमा घोषित की है, सङ्घ उस सीमा को ग्राम या ग्राम के किसी मोहल्ले को अपवाद बनाकर ही तीन चीवर का नियम न होने की घोषणा करे। (१८)

भिक्षुओ! यह घोषणा इस प्रकार करनी चाहिये। कोई चतुर तथा समर्थ भिक्षु सङ्घ को यों सूचित करे—

१३. **ज्ञप्ति**— 'भन्ते! सङ्घ मेरी बात सुने। सङ्घ ने जो एक उपोसथ वाले एक वासस्थान की सीमा निर्धारित की है, यदि सङ्घ उचित समझे तो गाँव या गाँव के किसी मोहल्ले को अपवाद मानकर ही उस सीमा को तीन चीवर के नियम–बन्धन से मुक्त करने की घोषणा करे—यह सूचना है।

अनुश्रावण— 'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने—सङ्घ ने जो....नियम–बन्धन से मुक्त करने की घोषणा की है, जिसे यह घोषणा उचित लग रही हो, वह चुप रहे। जिसे उचित न लग रही हो, वह बोले।

धारणा— 'सङ्घ को अमुक गाँव या गाँव के अमुक मोहल्ले को अपवाद मान कर ही उस सीमा को तीन चीवर के नियम–बन्धन से मुक्त करना स्वीकार है, अतः चुप है—ऐसी मेरी धारणा है।' "

८. सीमा का समूहनन (त्याग)

१४. भिक्षुओ! सीमा की घोषणा करते समय, पहले एक निवास की सीमा की घोषणा करनी चाहिये, फिर तीन चीवर का नियम न रहने की घोषणा करनी चाहिये। और इसी तरह, भिक्षुओ! सीमा के त्याग की घोषणा करते समय पहले तीन चीवर का नियम न रहने का त्याग करना चाहिये, तब फिर एक निवासस्थान की सीमा के त्याग की घोषणा करनी चाहिये। (१९)

"भिक्षुओ! तीन चीवर का नियम न रहने को इस प्रकार त्यागना चाहिये। कोई चतुर एवं समर्थ भिक्षु सङ्घ को यों सूचित करे—

ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यो सो सङ्घेन तिचीवरेन अविप्पवासो सम्मतो, यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो तं तिचीवरेन अविप्पवासं समूहनेय्य। एसा ञत्ति।

सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यो सो सङ्घेन तिचीवरेन अविप्पवासो सम्मतो, सङ्घो तं तिचीवरेन अविप्पवासं समूहनति। यस्सायस्मतो खमति एतस्स तिचीवरेन अविप्पवासस्स समुग्घातो, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

समूहतो सो सङ्घेन तिचीवरेन अविप्पवासो। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी" ति।

१५. एवं च पन, भिक्खवे, सीमा समूहन्तब्बा। [N.113]

ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। या सा सङ्घेन सीमा सम्मता समानसंवासा एकुपोसथा, यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो तं सीमं समूहनेय्य समानसंवासं एकुपोसथं। एसा ञत्ति।

सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। या सा सङ्घेन सीमा सम्मता समानसंवासा एकुपोसथा, सङ्घो तं सीमं समूहनति समानसंवासं एकुपोसथं। यस्सायस्मतो खमति एतिस्सा सीमाय समानसंवासाय एकुपोसथाय समुग्घातो, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य। समूहता सा सीमा सङ्घेन समानसंवासा एकुपोसथा। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी" ति।

९. गामसीमादि

१६. "असम्मताय, भिक्खवे, सीमाय अट्ठपिताय, यं गामं वा निगमं वा [B.150] उपनिस्साय विहरति, या तस्स वा गामस्स गामसीमा, निगमस्स वा निगमसीमा, [R.111]

ज्ञप्ति— "भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। जो वह सङ्घ ने तीन चीवर के नियम के न रहने की घोषणा की थी, यदि सङ्घ उचित समझे तो उसे त्याग दे।' यह सूचना है।

अनुश्रावण— 'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। जो वह सङ्घ ने तीन चीवर का नियम न रहने की घोषणा की थी सङ्घ उसे त्यागता है। जिस आयुष्मान् को यह तीन चीवरों के नियम न रहने का त्याग स्वीकार है वह चुप रहे। जिसे स्वीकार न हो वह बोले।'

धारणा— सङ्घ को....त्याग स्वीकार है अतः चुप है। इस मौन से ऐसा समझा जाता है।

१५. "और इस तरह तब भिक्षुओ! सीमा का त्याग करना चाहिये— चतुर एवं समर्थ भिक्षु सङ्घ को सूचित करे—

ज्ञप्ति— 'सङ्घ मेरा निवेदन सुने। जो यह सङ्घ ने एक उपोसथ के लिये एक वासस्थान की सीमा की घोषणा की थी, यदि सङ्घ उचित समझे तो उस.....सीमा का त्याग कर दे। यह ज्ञप्ति है।

अनुश्रावण— 'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। सङ्घ ने जो वह एक उपोसथ के लिये एक वासस्थान की सीमा की घोषणा की थी, सङ्घ उस सीमा का त्याग करता है। जिस आयुष्मान् को....वह बोले।'

धारणा— 'संङ्घ ने उस....सीमा को त्याग दिया। सङ्घ को यह रुचिकर है इसीलिये चुप है— ऐसी मेरी धारणा है।' "

९. ग्रामसीमादि

१६. भिक्षुओ! सङ्घ द्वारा सीमा के असम्मत एवं अस्थापित होने पर, भिक्षु (क) जिस ग्राम या निगम का सहारा लेकर साधना कर रहा हो वही उसकी ग्राम की ग्रामसीमा या निगम की

अयं तत्थ सामनसंवासा एकुपोसथा। सब्बा, भिक्खवे, नदी असीमा; सब्बो समुद्दो असीमो; सब्बो जातस्सरो असीमो। नदिया वा, भिक्खवे, समुद्दे वा जातस्सरे वा यं मज्झिमस्स पुरिसस्स समन्ता उदकुक्खेपा, अयं तत्थ समानसंवासा एकुपोसथा ति।

१७. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सीमाय सीमं सम्भिन्दन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "येसं, भिक्खवे, सीमा पठमं सम्मता तेसं तं कम्मं धम्मिकं अकुप्पं ठानारहं। येसं, भिक्खवे, सीमा पच्छा सम्मता तेसं तं कम्मं अधम्मिकं कुप्पं अट्ठानारहं। **न, भिक्खवे, सीमाय सीमा सम्भिन्दितब्बा। यो सम्भिन्देय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सीमाय सीमं अज्झोत्थरन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "येसं, भिक्खवे, सीमा पठमं सम्मता तेसं तं कम्मं धम्मिकं अकुप्पं ठानारहं। येसं, भिक्खवे, सीमा पच्छा सम्मता तेसं तं कम्मं अधम्मिकं कुप्पं अट्ठानारहं। **न, भिक्खवे, सीमाय सीमा अज्झोत्थरितब्बा। यो अज्झोत्थरेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति। **अनुजानामि, भिक्खवे, सीमं सम्मन्नन्तेन सीमन्तरिकं ठपेत्वा सीमं सम्मन्नितुं"** ति।

१०. उपोसथभेदादि

१८. अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि— "कति नु खो उपोसथा" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**द्वेमे, भिक्खवे, उपोसथा—चातुद्दसिको च पन्नरसिको च। इमे, खो, भिक्खवे, द्वे उपोसथा"** ति।

निगमसीमा है। वही एक उपोसथवाला एकवासस्थान है। (ख) ग्राम में न रहकर अरण्य में रहने वाले के लिये, अरण्य के चारों ओर जो सात अवकाश हैं वे ही वहाँ एक उपोसथ के लिये एक आवास की सीमा है। (ग) भिक्षुओ! सभी नदियाँ असीम हैं, सभी समुद्र असीम हैं, सभी स्वाभाविक सरोवर (झील) असीम हैं। भिक्षुओ! नदी, समुद्र या झील में मध्यम (न अधिक छोटा न अधिक बड़ा) पुरुष के चारों तरफ जो जल का घिराव होता है वही वहाँ एक उपोसथ के लिये एक आवास की सीमा है। (२०)

१७. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सीमा के अन्दर (एक अन्य) सीमा का आरोप कर देते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा—) "भिक्षुओ! जिनकी सीमा पहले घोषित की गयी है उनका कार्य धर्मानुकूल, स्थिर एवं यथार्थ है। तथा जिनकी सीमा बाद में (पश्चात्) निर्धारित की गयी है उनका वह कार्य धर्मप्रतिकूल, अस्थिर एवं अयथार्थ है। अतः **भिक्षुओ! सीमा में सीमा आरोपित नहीं करनी चाहिये। जो करे उसे दुष्कृत दोष होगा।** (२१)

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अपनी सीमा को दूसरों की सीमा के अन्दर तक बढ़ाकर घोषित कर देते थे। भगवान् को उनके इस कर्म की सूचना दी गयी। (भगवान् निर्णय दिया—) "भिक्षुओ! जिनकी सीमा पहले घोषित हुई है उसके अनुसार उनके द्वारा किया गया कार्य ही धार्मिक, स्थिर एवं यथार्थ है। तथा जिनकी सीमा बाद में घोषित हुई है, तदनुसार कृत कार्य धर्मप्रतिकूल, अस्थिर एवं अयथार्थ होता है। अतः **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ—सीमा बनाते समय दोनों सीमाओं के मध्य कुछ अन्तर रख कर ही सीमा के निर्धारण करो।"** (२२)

१०. उपोसथभेद आदि

१८. तब भिक्षुओं को यह विचार हुआ—"उपोसथ कितने हैं?" भगवान् से यह बात पूछी गयी। "**भिक्षुओ! उपोसथ दो होते हैं— (१) चतुर्दशी का एवं (२) पञ्चदशी (पूर्णिमा) का। भिक्षुओ! ये दो उपोसथ हैं।** (२३)

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"कति नु खो उपोसथकम्मानी" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

"चत्तारिमानि, भिक्खवे, उपोसथकम्मानि—१. अधम्मेन वग्गं उपोसथकम्मं, अधम्मेन समग्गं उपोसथकम्मं, ३. धम्मेन वग्गं उपोसथकम्मं, ४. धम्मेन समग्गं [N.114] उपोसथकम्मं ति। तत्र, भिक्खवे, यदिदं अधम्मेन वग्गं उपोसथकम्मं, न, भिक्खवे, [B.151] एवरूपं उपोसथकम्मं, कातब्बं। न च मया एवरूपं उपोसथकम्मं अनुञ्ञातं। तत्र, भिक्खवे, यदिदं अधम्मेन समग्गं उपोसथकम्मं, न, भिक्खवे, एवरूपं उपोसथकम्मं कातब्बं। [R.112] न च मया एवरूपं उपोसथकम्मं अनुञ्ञातं। तत्र, भिक्खवे, यदिदं धम्मेन समग्गं उपोसथकम्मं, एवरूपं, भिक्खवे, उपोसथकम्मं कातब्बं, एवरूपं च मया उपोसथकम्मं अनुञ्ञातं। तस्मातिह, **भिक्खवे, 'एवरूपं उपोसथकम्मं करिस्साम यदिदं धम्मेन समग्गं' ति—एवञ्हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं**" ति।

११. सङ्खित्तेन पातिमोक्खुद्देसादि

१९. अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"कति नु खो पातिमोक्खुद्देसा" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**पञ्चिमे, भिक्खवे, पातिमोक्खुद्देसा—१. निदानं उद्दिसित्वा अवसेसं सुतेन सावेतब्बं। अयं पठमो पातिमोक्खुद्देसो। २. निदानं उद्दिसित्वा चत्तारि पाराजिकानि उद्दिसित्वा अवसेसं सुतेन सावेतब्बं। अयं दुतियो पातिमोक्खुद्देसो। ३. निदानं उद्दिसित्वा चत्तारि पाराजिकानि उद्दिसित्वा तेरस सङ्घादिसेसे उद्दिसित्वा अवसेसं**

तब भिक्षुओं को उपोसथ कर्मों के विषय में चिन्ता हुई कि "उपोसथकर्म कितने हैं?" भगवान् से यह बात पूछी गयी। (भगवान् ने उत्तर दिया—) "**भिक्षुओ! ये चार उपोसथकर्म हैं—**

(१) सङ्घ के कुछ भाग का धर्म(नियम)विरुद्ध उपोसथकर्म;

(२) समग्र सङ्घ का धर्म(नियम)विरुद्ध उपोसथ कर्म;

(३) सङ्घ के कुछ भाग का धर्मानुकूल उपोसथ कर्म; तथा

(४) समग्र सङ्घ का धर्मानुकूल उपोसथ कर्म।

(१) भिक्षुओ! सङ्घ के कुछ भाग का इनमें जो यह प्रथम धर्मविरुद्ध उपोसथ कर्म है, भिक्षुओं को ऐसा उपोसथ कर्म नहीं करना चाहिये; क्योंकि मैंने ऐसे उपोसथ कर्म की अनुमति नहीं दी है। (२) और भिक्षुओ! समग्र सङ्घ द्वारा कृत धर्माविरुद्ध उपोसथ कर्म भी निषिद्ध है; क्योकि इसकी अनुमति भी मैंने नहीं दी है। (३) और भिक्षुओ! सङ्घ के कुछ भाग द्वारा कृत धर्मानुकूल उपोसथकर्म भी नियमविरुद्ध ही समझो; क्योंकि इसकी अनुमति भी मैंने नहीं दी है। तथा (४) भिक्षुओ! जो समग्र सङ्घ द्वारा कृत धर्मानुकूल उपोसथकर्म है, वही करना चाहिये; क्योंकि इसकी अनुमति मैंने दी है।

अतः **भिक्षुओ! तुम्हें 'यह धर्मानुकूल समग्र सङ्घ का उपोसथकर्म ही करूँगा'—ऐसा सीखना चाहिये।** (२४)

११. संक्षेप में प्रातिमोक्षपाठ आदि

१९. तब भिक्षुओं के मन में विचार आया—"प्रातिमोक्ष के कितने पाठ हैं?" भगवान् से यह पूछा गया। (भगवान् ने कहा—)

"भिक्षुओ! प्रातिमोक्ष की पाँच पाठ–विधि है— (१) निदान का पाठ कर अवशिष्ट को सुने के अनुसार सुनाना चाहिये—यह प्रथम प्रातिमोक्ष–पाठ है। (२) निदान तथा पाराजिक का पाठ कर अवशिष्ट को सुने के अनुसार सुनाना चाहिये। यह द्वितीय प्रातिमोक्ष–पाठ विधि है। (३) निदान,

सुतेन सावेतब्बं। अयं ततियो पातिमोक्खुद्देसो। ४. निदानं उद्दिसित्वा चत्तारि पाराजिकानि उद्दिसित्वा तेरस सङ्घादिसेसे उद्दिसित्वा द्वे अनियते उद्दिसित्वा अवसेसं सुतेन सावेतब्बं। अयं चतुत्थो पातिमोक्खुद्देसो। वित्थारेनेव पञ्चमो। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च पातिमोक्खुद्देसा ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू—भगवता सङ्खित्तेन पातिमोक्खुद्देसो अनुञ्ञातो' ति—सब्बकालं सङ्खित्तेन पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सङ्खित्तेन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। यो उद्दिसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

[B.152] तेन खो पन समयेन कोसलेसु जनपदे अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सवरभयं अहोसि। भिक्खू नासक्खिसु वित्थारेन पातिमोक्खं उद्दिसितुं। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **"अनुजानामि, भिक्खवे, सति अन्तराये सङ्खित्तेन पातिमोक्खं उद्दिसितुं"** ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू असति पि अन्तराये सङ्खित्तेन पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "न, भिक्खवे, असति अन्तराये सङ्खित्तेन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। यो उद्दिसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। **अनुजानामि, भिक्खवे, सति अन्तराये सङ्खित्तेन पातिमोक्खं उद्दिसितुं।** तत्रिमे अन्तराया—१. राजन्तरायो, २. चोरन्तरायो, ३. अग्यन्तरायो, ४. उदकन्तरायो, ५. मनुस्सन्तरायो, ६. अमनुस्सन्तरायो, ७. बाळन्तरायो, ८. [R.113] सरीसपन्तरायो, ९. जीवितन्तरायो, १०. ब्रह्मचरियन्तरायो ति। **अनुजानामि,**

पाराजिक तथा तेरह सङ्घादिशेष का पाठ करके अवशिष्ट को सुने के.....। यह तृतीय प्रातिमोक्ष-पाठविधि है। (४) निदान, पाराजिक तेरह सङ्घादिशेष एवं दो अनियतों का पाठ करके अवशिष्ट को....। यह चतुर्थ प्रातिमोक्ष-पाठविधि है। (५) और पाँचवीं विधि है—प्रातिमोक्ष का विस्तार से पाठ। भिक्षुओ! ये पाँच प्रातिमोक्ष-पाठविधियाँ हैं। (२५)

उस समय भिक्षु—'भगवान् से संक्षेप में प्रातिमोक्ष का पाठ करने का आदेश दे रखा है'—ऐसा सोचकर सर्वदा संक्षेप में ही प्रातिमोक्ष का पाठ किया करते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने आदेश दिया—) **"भिक्षुओ! प्रातिमोक्ष का पाठ (सर्वदा) संक्षेप में ही नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।** (२६)

उस समय कोसल प्रदेश के किसी भिक्षु आवास में उपोसथ के दिन शबरों (किरातों=भीलों) के आक्रमण का भय उपस्थित हो गया था। इसलिये वहाँ भिक्षुओं द्वारा विस्तार से प्रातिमोक्ष का पाठ नहीं हो पाया। भगवान् को यह कारण बताया गया। (भगवान् ने आदेश दिया—) **"भिक्षुओ! किसी विघ्न के उपस्थित होने पर संक्षेप में भी प्रातिमोक्षपाठ की अनुमति देता हूँ।** (२७)

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु कोई विघ्न का कारण उपस्थित न होने पर भी, प्रातिमोक्ष का पाठ संक्षेप में ही करने लगे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने आदेश दिया—) **"भिक्षुओ! कोई विघ्न का कारण न होने पर, प्रातिमोक्ष-पाठ संक्षेप में नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा। अतः कोई विघ्न उपस्थित होने पर ही प्रातिमोक्ष का पाठ संक्षेप में करना चाहिये।** ये दश विघ्न कारण हैं— १. राजा द्वारा उपस्थित की गयी बाधा, २. चौरों द्वारा उपस्थित की गयी बाधा, ३. अग्नि द्वारा...., ४. जल द्वारा....५. मनुष्यों द्वारा...., ६. अमनुष्यों (भूत-प्रेत, देवता आदि) द्वारा...., ७. हिंसक जन्तुओं द्वारा....., ८. साँप-विच्छु आदि द्वारा....., ९. जीवन पर आये सङ्कट द्वारा बाधा, १०. ब्रह्मचर्य (धर्मपालन) में आयी बाधा। **भिक्षुओ! ऐसे विघ्नों के उपस्थित होने पर संक्षेप में ही**

भिक्खवे, एवरूपेसु अन्तरायेसु सङ्खित्तेन पातिमोक्खं उद्दिसितुं, असति [N.115] **अन्तराये वित्थारेना''** ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सङ्घमज्झे अनज्झिट्ठा धम्मं भासन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**न, भिक्खवे, सङ्घमज्झे अनज्झिट्ठेन धम्मो भासितब्बो। यो भासेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, थेरेन भिक्खुना सामं वा धम्मं भासितुं परं वा अज्झेसितुं**'' ति।

१२. विनयपुच्छनकथा

२०. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सङ्घमज्झे असम्मता विनयं पुच्छन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''न, भिक्खवे, सङ्घमज्झे असम्मतेन विनयो पुच्छितब्बो। यो पुच्छेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। **अनुजानामि, भिक्खवे, सङ्घमज्झे सम्मतेन विनयं पुच्छितुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, सम्मन्नितब्बो— अत्तना अत्तानं सम्मन्नितब्बं, परेन वा परो सम्मन्नितब्बो—

कथं च अत्तना व अत्तानं सम्मन्नितब्बं? ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—''सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, अहं इत्थन्नामं विनयं [B.153] पुच्छेय्यं'' ति। एवं अत्तना व अत्तानं सम्मन्नितब्बं।

कथं च परेन परो सम्मन्नितब्बो? ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

''सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, इत्थन्नामो इत्थन्नामं विनयं पुच्छेय्या'' ति। एवं परेन परो सम्मन्नितब्बो ति।

प्रातिमोक्ष के पाठ की अनुमति देता हूँ। तथा ऐसी बाधाएँ न होने पर, विस्तार से ही पाठ करना चाहिये। (२८)

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सम्मति के विना ही सङ्घ को बीच में धर्मोपदेश करने लगते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने आदेश दिया–) ''**भिक्षुओ! याच्ञा किये विना सङ्घ के बीच में धर्मोपदेश नहीं करना चाहिये। जो करे उसे 'दुष्कृत' दोष लगे। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षु द्वारा स्वयं उपदेश करने की, या दूसरों से इसकी याच्ञा करने की।**'' (२९)

१२. विनयपृच्छाकथा

२०. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु विना सम्मति के सङ्घ के बीच में विनय–विषयक प्रश्न पूछने लगते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा–) ''**भिक्षुओ! विना सम्मति के सङ्घ के बीच में विनयविषयक प्रश्न नहीं करना चाहिये। जो करे उसको 'दुष्कृत' दोष हो। भिक्षुओ! सहमति होने पर ही सङ्घ के बीच में विनयविषयक प्रश्न पूछने की अनुमति देता हूँ।**'' (३०)

और भिक्षुओ! यह सहमति इस प्रकार लेनी चाहिये– (१) स्वयं अपने लिये या (२) दूसरे को दूसरे के लिये।

(१) कैसे स्वय अपने लिये सम्मति लेनी चाहिये? चतुर एवं समर्थ भिक्षु सङ्घ को सूचित करे–

ज्ञप्ति– 'भन्ते! सङ्घ मेरी बात सुने। यदि सङ्घ उचित समझे तो यह इस नाम का भिक्षु इस नाम के भिक्षु से विनयविषयक प्रश्न पूछे।'

(२) इसी तरह दूसरे को दूसरे के लिये सहमति लेनी चाहिये।

तेन खो पन समयेन पेसला भिक्खू सङ्घमज्झे सम्मता विनयं पुच्छन्ति। छब्बग्गिया भिक्खू लभन्ति आघातं, लभन्ति अप्पच्चयं, वधेन तज्जेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सङ्घमज्झे सम्मतेन पि परिसं ओलोकेत्वा पुग्गलं तुलयित्वा विनयं पुच्छितुं** ति।

१३. विनयविस्सज्जनकथा

२१. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सङ्घमज्झे असम्मता विनयं विस्सज्जेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, सङ्घमज्झे असम्मतेन विनयो विस्सज्जेतब्बो। यो विस्सज्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स।** "**अनुजानामि, भिक्खवे, सङ्घमज्झे सम्मतेन विनयं विस्सज्जेतुं।** 'एवं च पन, भिक्खवे, सम्मन्नितब्बो। अत्तना व अत्तानं सम्मन्नितब्बं, परेन वा परो वा परो सम्मन्नितब्बो।

[R.114] कथं च अत्तना व अत्तानं सम्मन्नितब्बं? ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, अहं इत्थन्नामेन विनयं पुट्ठो विस्सज्जेय्यं" ति। एवं अत्तना व अत्तानं सम्मन्नितब्बं।

[N.116] कथं च परेन परो सम्मन्नितब्बो? ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, इत्थन्नामो इत्थन्नामेन विनयं पुट्ठो विस्सज्जेय्या" ति। एवं परेन परो सम्मन्नितब्बो ति।

उस समय अच्छे (सदाचारी) भिक्षु सङ्घ के बीच में सहमति ले कर ही विनयविषयक प्रश्न पूछने लगे। इससे षड्वर्गीय भिक्षुओं को प्रतिकूलता, अप्रसन्नता होने लगी जिससे कारण वे सङ्घ के बीच में ही उन भिक्षुओ को मारने–पीटने का भय दिखाने लगे। तब भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा–) **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ–सङ्घ के बीच में उस की सम्मति लेकर भी, परिषद् का भाव समझते हुए, सामने वाले व्यक्ति को तौलते हुए ही विनयविषयक प्रश्न पूछा जाय।**" (३१)

१३. वि[illegible]विसर्जनकथा

२१. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सङ्घ के बीच मे, सहमति के विना ही, विनयविषयक प्रश्न का उत्तर देने लगते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने आज्ञा दी–) **भिक्षुओ! सङ्घ के बीच में, विना सहमति के किसी को विनयविषयक प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहिये। जो देगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा। अतः अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! सहमति के बाद ही विनयविषयक प्रश्न का उत्तर देने की।**

यहाँ स्वयं के लिये भी स्वयं सहमति [illegible] सक[illegible] है, या फिर दूसरे के लिये दूसरा भी सहमति ले सकता है।

(१) "कैसे स्वयं को स्व के लिये सहमति लेनी चाहिये? कुशल एवं समर्थ भिक्षु सङ्घ इस तरह ज्ञापित किया जाना चाहिये–'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। यदि सङ्घ उचित समझे तो मैं इस नाम के भिक्षु द्वारा पूछे गये विनय–विषयक प्रश्न का उत्तर दूँ।' इस तरह स्वयं को स्व के लिये अनुमति लेनी चाहिये।

(२) दूसरे को दूसरे के लिये कैसे अनुमति लेनी चाहिये? कुशल एवं समर्थ भिक्षु द्वारा सङ्घ को यों सूचित किया जाना चाहिये–'पूज्य सङ्घ मेरी सुने। यदि सङ्घ उचित समझे तो यह इस नाम का भिक्षु इस नाम के भिक्षु द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर दे।' इस प्रकार दूसरे को दूसरे के लिये सङ्घ से सहमति लेनी चाहिये। (३२)

तेन खो पन समयेन पेसला भिक्खू सङ्घमज्झे सम्मता विनयं विस्सज्जेन्ति। [B.154] छब्बग्गिया भिक्खू लभन्ति आघातं, लभन्ति अप्पच्चयं, वधेन तज्जेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सङ्घमज्झे सम्मतेन पि परिसं ओलोकेत्वा पुग्गलं तुलयित्वा विनय विस्सज्जेतुं** ति।

१४. चोदनाकथा

२२. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू अनोकासकतं भिक्खुं आपत्तिया चोदेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, अनोकासकतो भिक्खु आपत्तिया चोदेतब्बो।** यो चोदेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। **अनुजानामि, भिक्खवे, ओकासं कारापेत्वा आपत्तिया चोदेतुं—करोतु आयस्मा ओकासं, अहं तं वत्तुकामो** ति।

तेन खो पन समयेन पेसला भिक्खू छब्बग्गिये भिक्खू ओकासं कारापेत्वा आपत्तिया चोदेन्ति। छब्बग्गिया भिक्खू लभन्ति आघातं, लभन्ति अप्पच्चयं, वधेन तज्जेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, कते पि ओकासे पुग्गलं तुलयित्वा आपत्तिया चोदेतुं** ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू—पुरम्हाकं पेसला भिक्खू ओकासं कारापेन्ती' ति—पटिकच्चेव सुद्धानं भिक्खूनं अनापत्तिकानं अवत्थुस्मिं अकारणे ओकासं कारापेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सुद्धानं भिक्खूनं अनापत्तिकानं अवत्थुस्मिं**

उस समय अच्छे भिक्षु सहमति लेकर ही सङ्घ के बीच में पूछे गये विनयविषयक प्रश्नों का उत्तर देते थे। इससे षड्वर्गीय भिक्षुओ को प्रतिकूलता एवं अप्रसन्नता होती ..। (भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् बोले–) **''भिक्षुओ! मेरी अनुज्ञा है कि सहमति प्राप्त भिक्षु भी पूछे गये विनयविषयक प्रश्न का उत्तर, परिषद् की मनोदशा जाँच–परख कर, भलीभाँति तुलना करके ही दे।''** (३३)

१४. प्रेरणाकथा

२२. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु विना अवसर दिये ही सीधे भिक्षुओं पर किसी भी तरह का दोषारोपण कर देते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने आज्ञा दी–) ''भिक्षुओ! विना अवसर दिये भिक्षुओ पर दोषारोप नहीं करना चाहिये। जो करे उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा। **अतः भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अवसर प्राप्त करके ही दोषारोप करने की।** (३४)

अवसर लेने की विधि यह है कि उसे (आरोपी को) कहना चाहिये कि 'आयुष्मन्! मुझे इसके लिये अवकाश दें, मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ।''

उस समय भले भिक्षु षड्वर्गीय भिक्षुओ से अवकाश करा कर ही उन पर दोषारोमण करते थे। इतने पर भी उन षड्वर्गीयों को कुण्ठा, प्रतिकूलता एवं अप्रसन्नता होने लगी और वे उन भिक्षुओं को मारने–पीटने का भय दिखाने लगे। भगवान् से फिर यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा–) **''भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ–अवकाश मिल जाने पर भी परिषद् का रुख देखकर और आरोप्य भिक्षु की सही ढंग से समीक्षा करके ही उसे आरोपित करने की।** (३५)

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु,यह सोचकर कि–भले भिक्षु हमसे पहले ही अवकाश करा लेते है, उनसे भी पूर्व आपत्तिरहित शुद्ध भिक्षुओ को व्यर्थ निष्कारण अवकाश करा लेते थे। भगवान् से यह बात भी कही गयी। (भगवान् ने कहा–) **भिक्षुओ! आपत्तिरहित शुद्ध भिक्षुओं को व्यर्थ, निष्कारण**

अकारणे ओकासो कारापेतब्बो। यो कारापेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, पुग्गलं तुलयित्वा ओकासं कारापेतुं ति।

१५. अधम्मकम्मपटिक्कोसनादि

२३. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सङ्घमज्झे अधम्मकम्मं करोन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न,भिक्खवे, सङ्घमज्झे अधम्मकम्मं कातब्बं। यो करेय्य,** [R.115] **आपत्ति दुक्कटस्सा** ति। करोन्ति येव अधम्मकम्मं। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, अधम्मकम्मे कयिरमाने पटिक्कोसितुं**" ति।

[B.155] तेन खो पन समयेन पेसला भिक्खू छब्बग्गियेहि भिक्खूहि अधम्मकम्मे कयिरमाने पटिक्कोसन्ति। छब्बग्गिया भिक्खू लभन्ति आघातं, लभन्ति अप्पच्चयं, वधेन तज्जेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, दिट्ठिं पि आविकातुं**" ति।

[N.117] तेसं येव सन्तिके दिट्ठिं आविकरोन्ति। छब्बग्गिया भिक्खू लभन्ति आघातं, लभन्ति अप्पच्चयं, वधेन तज्जेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, चतूहि पञ्चहि पटिक्कोसितुं, द्वीहि तीहि दिट्ठिं आविकातुं, एकेन अधिट्ठातुं—'न मेतं खमती'** ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सङ्घमज्झे पातिमोक्खं उद्दिसमाना सञ्चिच्च न सावेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, पातिमोक्खुद्देसकेन सञ्चिच्च न सावेतब्बं। यो न सावेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

अवकाश नहीं करना चाहिये। जो करायेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा। (अत:) भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ व्यक्ति की भलीभाँति समीक्षा करके ही अवकाश कराने की।" (३६)

१५. नियमविरुद्ध कार्य के लिये धिक्कार आदि

२३. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सङ्घ के बीच में परिषद् के नियमों के विरुद्ध (अधार्मिक) कार्य करते थे। भगवान् को यह बात भी बतायी गयी। (भगवान् ने आदेश दिया–) **भिक्षुओ! नियमविरुद्ध कार्य नहीं करना चाहिये। जो करेगा, उसे दुष्कृत दोष लगेगा।** (३७)

उतने पर भी वे नहीं माने। नियमविरुद्ध कार्य करते ही रहे। भगवान् को ज्ञात हुआ। (भगवान् ने कहा–) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ नियमविरुद्ध कार्य करने वाले को धिक्कारने (फटकारने) की।** (३८)

उस समय शुद्ध भिक्षु, नियमविरुद्ध कार्य करने पर षड्वर्गीय भिक्षुओं को धिक्कारने लगे। तब षड्वर्गीय उन शुद्ध भिक्षुओं को मारने–पीटने का भय दिखाने लगे। भगवान् से यह बात भी कही गयी। (भगवान् ने आदेश दिया–) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ देखे को प्रकट करने की।** (३९)

तब वे शुद्ध भिक्षु उन षड्वर्गीयों का पास उनके द्वारा किये गये दृष्ट कार्यों को प्रकट करने लगे, उससे वे षड्वर्गीय भिक्षु अप्रसन्न होने लगे, उनसे द्रोह करने लगे तथा वध या मारपीट का भय दिखाने लगे। तब भगवान् से यह भी बात कही गयी। **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चार पाँच भिक्षुओं द्वारा धिक्कारने की, दो तीन द्वारा देखे को प्रकट करने की तथा एक को यह कहने की कि आपका यह कार्य मुझे अच्छा नहीं लगा।** (४०)

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सङ्घ के बीच में प्रातिमोक्ष का पाठ करते हुए (बीच बीच में) जानबूझ कर नहीं सुनाते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा–) **भिक्षुओ!**

तेन खो पन समयेन आयस्मा उदायी सङ्घस्स पातिमोक्खुद्देसको होति काकस्सरको। अथ खो आयस्मतो उदायिस्स एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं—'पातिमोक्खुद्देसकेन सावेतब्बं' ति, अहं चम्हि काकस्सरको, कथं नु खो मया पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, पातिमोक्खुद्देसकेन वायमितुं—'कथं सावेय्यं' ति। वायमन्तस्स अनापत्ती** ति।

तेन खो पन समयेन देवदत्तो सगहट्ठाय परिसाय पातिमोक्खं उद्दिसति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सगहट्ठाय परिसाय पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। यो उद्दिसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सङ्घमज्झे अनज्झिट्ठा पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, सङ्घमज्झे अनज्झिट्ठेन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। यो उद्दिसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स।** "**अनुजानामि, भिक्खवे, थेराधिकं पातिमोक्खं**" ति।

अञ्ञतितित्थिय (एकादसम) भाणवारो निट्ठितो।

१६. पातिमोक्खुद्देसकअज्झेसनादि

२४. अथ खो भगवा राजगहे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन चोदनावत्थु तेन [B.156] चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन चोदनावत्थु तदवसरि। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे सम्बहुला भिक्खू विहरन्ति। तत्थ थेरो भिक्खु बालो होति

प्रातिमोक्ष का पाठ करने वाले को जानबूझ कर ऐसा नहीं करना चाहिये कि वह बीच बीच में प्रातिमोक्ष का पाठ न सुनावे। जो ऐसा करेगा वह 'दुष्कृत' दोष का भागी होगा। (४१)

उस समय आयस्मा उदायी सङ्घ को प्रातिमोक्ष का पाठ सुनाने वाले थे। उनका स्वर कौए जैसा था। तब आयुष्मान् उदायी को यह विचार हुआ—"भगवान् ने प्रातिमोक्ष का पाठ करने वाले को जोर से सुनाने का विधान किया है। और मेरा स्वर कौए की तरह का है। मुझे क्या करना चाहिये? भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा—) **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ—प्रातिमोक्ष पाठ करने वाले को उच्च स्वर से सुनाने का प्रयास करने की। ऐसा प्रयास करनेवाले का कोई दोष नहीं।** (४२)

उस समय देवदत्त गृहस्थसहित परिषद् में बैठकर प्रातिमोक्ष का पाठ करता था। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा—) **भिक्षुओ! गृहस्थयुक्त परिषद् में बैठकर प्रातिमोक्ष का पाठ नहीं करना चाहिये। जो करे उसे 'दुष्कृत' दोष लगे।** (४३)

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु विना प्रार्थना किये ही सङ्घ के बीच में प्रातिमोक्ष का पाठ करने लगते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् बोले—) "**भिक्षुओ! सङ्घ के बीच में विना प्रार्थना किये प्रातिमोक्ष का पाठ नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुष्कृत दोष लगे। अतः भिक्षुओ! किसी स्थविर के सहारे से ही प्रातिमोक्ष का पाठ करना चाहिये—यह अनुमति देता हूँ।** (४४)

अन्यतीर्थिक (एकादशम) भाणवार समाप्त।।

१६. प्रातिमोक्षपाठक से प्रार्थना आदि

२४. उस समय भगवान् राजगृह में इच्छानुकूल साधना करने के बाद, चारिका करते हुए चोदनावस्तु में पहुँचे। उस समय वहाँ किसी आवास में बहुत से भिक्षु साधना हेतु ठहरे हुए थे। वहाँ

[R.116] अब्यत्तो। सो न जानाति उपोसथं वा उपोसथकम्मं वा, पातिमोक्खं वा पातिमोक्खुद्देसं वा। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं—'थेराधिकं पातिमोक्खं' ति, अयं च अम्हाकं थेरो बालो अब्यत्तो, न जानाति उपोसथं वा उपोसथकम्मं वा, पातिमोक्खं वा पातिमोक्खुद्देसं वा। कथं नु खो अम्हेहि पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **"अनुजानामि, भिक्खवे, यो तत्थ भिक्खु ब्यत्तो पटिबलो तस्साधेय्यं पातिमोक्खं"** ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला भिक्खू विहरन्ति बाला अब्यत्ता। ते न जानन्ति उपोसथं वा उपोसथकम्मं वा, पातिमोक्खं वा पातिमोक्खुद्देसं वा। ते थेरं अज्झेसिंसु—"उद्दिसतु, भन्ते, थेरो पातिमोक्खं" ति। सो एवमाह—"न मे, आवुसो, वत्तती" ति। दुतियं थेरं अज्झेसिंसु—"उद्दिसतु, भन्ते, थेरो पातिमोक्खं" ति। सो पि एवमाह—"न मे, आवुसो वत्तती" ति। ततियं थेरं अज्झेसिंसु—"उद्दिसतु, भन्ते, थेरो [N.118] पातिमोक्खं" ति। सो पि एवमाह—"न मे, आवुसो, वत्तती" ति। एतेनेव उपायेन याव सङ्घनवकं अज्झेसिंसु—"उद्दिसतु आयस्मा पातिमोक्खं" ति। सो पि एवमाह—"न मे, भन्ते, वत्तती" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला भिक्खू विहरन्ति बाला अब्यत्ता। ते न जानन्ति उपोसथं वा उपोसथकम्मं वा, पातिमोक्खं वा पातिमोक्खुद्देसं वा। ते थेरं अज्झेसन्ति—"उद्दिसतु, भन्ते, थेरो पातिमोक्खं" ति। सो एवं वदेति—"न मे, आवुसो, वत्तती" ति। दुतियं थेरं अज्झेसन्ति—"उद्दिसतु, भन्ते, थेरो पातिमोक्खं" ति। सो पि एवं वदेति—"न मे, आवुसो, वत्तती" ति। ततियं थेरं अज्झेसन्ति—"उद्दिसतु,

---

सबसे स्थविर भिक्षु मूर्ख एवं अयोग्य था। वह न उपोसथ जानता था, न उपोसथकर्म। न प्रातिमोक्ष के विषय में कुछ जानता था, न प्रातिमोक्ष के पाठ के विषय में। तब उन भिक्षुओं को यह विचार हुआ—"भगवान् का आदेश है—प्रातिमोक्ष के पाठ में कम से कम एक स्थविर भिक्षु रहना चाहिये, जबकि हमारा यह स्थविर भिक्षु मूर्ख .पूर्ववत्.... पात के विषय में। अब हमें इस विषय मे क्या करना चाहिये?" उन्होने भगवान् के सम्मुख अपनी समस्या रखी। (भगवान् ने कहा—) **"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, उस आवास में जो भी चतुर एवं समर्थ भिक्षु हो उसी के आश्रय में प्रातिमोक्ष हो।"** (४५)

उस समय किसी आवास मे उपोसथ के दिन बहुत से मूर्ख एवं अव्यक्त भिक्षु ठहरे हुए थे। वे उपोसथ या उपोसथकर्म....प्रातिमोक्ष–पाठ भी नहीं जानते थे। उन्होंने स्थविर से प्रार्थना की—"भन्ते! आप स्थविर प्रातिमोक्ष पाठ करें। उसने उत्तर दिया—"मुझे यह सब स्मरण नहीं है।" दूसरे स्थविर से....तीसरे स्थविर से प्रार्थना की—"भन्ते! आप स्थविर ...स्मरण नही है। इसी प्रकार सङ्घ में जो सबसे नया भिक्षु था उससे भी प्रार्थना की गयी—"आयुष्मन्! आप ही प्रातिमोक्ष पाठ करें।" तो उसने भी वही उत्तर दिया—"मुझे स्मरण नहीं है।" अन्त में, भगवान् के सम्मुख यह समस्या रखी गयी। (भगवान् ने कहा—)

"यदि भिक्षुओ! एक आवास में बहुत से मूर्ख एवं अव्यक्त भिक्षु रहते हो, और वे सभी उपोसथ.....प्रातिमोक्षपाठ से अनभिज्ञ हों। वे स्थविर भिक्षु से प्रार्थना करते हैं—'भन्ते! आप प्रातिमोक्ष पाठ करें', और वह ऐसा कहे—'मुझे यह सब स्मरण नहीं है।' इसी प्रकार सङ्घ के सब से नये भिक्षु

भन्ते, थेरो पातिमोक्खं'' ति। सो पि एवं वदेति—''न मे, आवुसो, वत्तती'' ति। [B.157] एतेनेव उपायेन याव सङ्घनवकं अज्झेसन्ति—''उद्दिसतु आयस्मा पातिमोक्खं'' ति। सो पि एवं वदेति—''न मे, भन्ते, वत्तती'' ति। **तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि एको भिक्खू सामन्ता आवासा सज्जुकं पाहेतब्बो—गच्छावुसो, सङ्खित्तेन वा वित्थारेन वा पातिमोक्खं परियापुणित्वान आगच्छाही** ति।

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—''केन नु खो पाहेतब्बो'' ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, थेरेन भिक्खुना नवं भिक्खुं आणापेतुं** ति। थेरेन आणत्ता नवा भिक्खू न गच्छन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, थेरेन आणत्तेन अगिलानेन न गन्तब्बं। यो न गच्छेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति। [R.117]

१७. पक्खगणनादिउग्गहणानुजानना

२५. अथ खो भगवा चोदनावत्थुस्मिं यथाभिरन्तं विहरित्वा पुनदेव राजगहं पच्चागञ्छि।

तेन खो पन समयेन मनुस्सा भिक्खू पिण्डाय चरन्ते पुच्छन्ति—''कतिमी, भन्ते, पक्खस्सा'' ति? भिक्खू एवमाहंसु—''न खो मयं, आवुसो, जानामा'' ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''पक्खगणनमत्तमपिमे समणा सक्यपुत्तिया न जानन्ति, किं पनिमे अञ्ञं किञ्चि कल्याणं जानिस्सन्ती'' ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, पक्खगणनं उग्गहेतुं ति।**

से प्रार्थना करते हैं—'आयुष्मन्! आप प्रातिमोक्ष-पाठ करें', यदि वह भी कहे—'मुझे यह सब स्मरण नहीं है', तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओं को एक भिक्षु को यह कहकर चारों ओर के किसी आवास में भेजना चाहिये—'जाओ, आयुष्मन्! वहाँ संक्षेप या विस्तार से प्रातिमोक्ष को कण्ठस्थ करके आओ।''

तब भिक्षुओं को यह विचार हुआ—''किस के द्वारा यह भेजा जाना चाहिये?'' भगवान् से पूछा गया। (भगवान् ने कहा—) **''भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षु द्वारा नये भिक्षु को आज्ञा देने की।''** (४६)

स्थविर के द्वारा ऐसी आज्ञा देने पर भी नये भिक्षु नहीं जाते थे। भगवान् को यह सूचित किये जाने पर, भगवान् ने कहा—''**भिक्षुओ! स्थविर भिक्षु द्वारा आज्ञा दी जाने पर, यदि नया भिक्षु रोगाक्रान्त न हो तो उसको वहाँ जाना अनिवार्य है।** जो जाने से 'ना' करे उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा। (४७)

१७. पक्षगणनादि का ज्ञान आवश्यक

२५. तब भगवान् चोदनावस्तु में इच्छानुकूल साधनारत रह कर पुनः राजगृह पधारे। उस समय भिक्षाटन करने वाले भिक्षुओ से उपासक पूछते थे— ''भन्ते! आज पक्ष की कौन तिथि है?'' भिक्षु कहतेथे—''आयुष्मानो! हमें ज्ञात नहीं है।'' यह सुनकर लोग हैरान होते थे—''ये शाक्यपुत्रीय श्रमण पक्ष की तिथिगणना तक भी नही जानते तो अन्य अच्छी बात क्या जानेंगे?'' अन्त में भगवान् के सम्मुख यह बात रखी गयी। (भगवान् ने कहा—) **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पक्ष की गणना सीखने की।** (४८)

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"केन नु खो पक्खगणना उग्गहेतब्बा" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सब्बेहेव पक्खगणनं उग्गहेतुं** ति।

२६. तेन खो पन समयेन मनुस्सा भिक्खू पिण्डाय चरन्ते पुच्छन्ति—"कीवतिका, भन्ते, भिक्खू" ति? भिक्खू एवमाहंसु—"न खो मयं, आवुसो, जानामा" ति। मनुस्सा [N.119] उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"अञ्ञमञ्ञं पिमे समणा सक्यपुत्तिया न जानन्ति, किं पनिमे अञ्ञं किञ्चि कल्याणं जानिस्सन्ती" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, भिक्खू गणेतुं** ति।

[B.158] अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"कदा नु खो भिक्खू गणेतब्बा" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, तदहुपोसथे नामग्गेन वा गणेतुं, सलाकं वा गाहेतुं** ति।

२७. तेन खो पन समयेन भिक्खू अजानन्ता 'अज्जुपोसथो' ति दूरं गामं पिण्डाय चरन्ति। ते उद्दिस्समाने पि पातिमोक्खे आगच्छन्ति, उद्दिट्ठमत्ते पि आगच्छन्ति। भगवतो एतमत्तं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, आरोचेतुं—'अज्जुपोसथो'** ति।

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि— "केन नु खो आरोचेतब्बो" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, थेरेन भिक्खुना कालवतो आरोचेतुं** ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो थेरो कालवतो नस्सरति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, भत्तकाले पि आरोचेतुं।**

भत्तकाले पि नस्सरति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, यं कालं सरति, तं कालं आरोचेतुं** ति।

उस समय भिक्षुओं को यह विचार हुआ कि पक्षगणना किसे सीखनी चाहिये? भगवान् से यह बात कही गयी। **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सभी को पक्षगणना सीखने की।** (४९)

२६. उस समय लोग भिक्षाटन करते भिक्षुओं से पूछते थे—"भन्ते! भिक्षु कितने हैं?" भिक्षु कहते थे—"आयुष्मानो! हमें ज्ञात नहीं"। लोगों ने व्यग्र एव उद्विग्न भव से भगवान् के सम्मुख यह बात रखी। (भगवान् ने) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सभी को गणना सीखने की।**" (५०)

तब भिक्षुओ को यह विचार हुआ—"भिक्षुगणना कब करनी चाहिये?"....(भगवान् ने बताया) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उपोसथ के दिन नाम लेकर या शलाका बाँटकर गणना कराने की।** (५१)

२७. उस समय भिक्षु यह न जानते हुए कि आज उपोसथ है—दूर के ग्राम में भिक्षाहेतु चले जाते थे। वे भिक्षा लेकर, प्रातिमोक्ष के पाठ के समय भी वहाँ पहुँचते थे, या फिर पाठ पूरा होने पर पहुँच पाते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा—)

"**भिक्षुओ! 'आज उपोसथ है'— यह बात सबको बताने की अनुमति देता हूँ।** (५२)

तब भिक्षुओं को यह विचार हुआ कि "यह बात सबको कौन बतावे?" भगवान् से यह पूछा गया। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! स्थविर भिक्षु को अनुमति देता हूँ कि वह सबको यह बात बता दे।**" (५३)

उस समय एक अतिवृद्ध स्थविर भिक्षु स्मरणशक्ति दुर्बल होने के कारण उपोसथ का समय स्मरण नहीं रख पाता था। भगवान् के सम्मुख यह बात रखी गयी। (भगवान् ने कहा—) "**उसे भोजन के समय बताने की अनुमति देता हूँ।**" (५४)

१८. पुब्बकरणानुजानना

२८. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे उपोसथागारं उक्लापं [R.118] होति। आगन्तुका भिक्खू उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम भिक्खू उपोसथागारं न सम्मज्जिस्सन्ती'' ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, उपोसथागारं सम्मज्जितुं** ति।

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—''केन नु खो उपोसथागारं सम्मज्जितब्बं'' ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, थेरेन भिक्खुना नवं भिक्खुं आणापेतुं** ति।

थेरेन आणत्ता नवा भिक्खू न सम्मज्जन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, थेरेन आणत्तेन अगिलानेन न सम्मज्जितब्बं। यो न सम्मज्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

२९. तेन खो पन समयेन उपोसथगारे आसनं अपञ्ञत्तं होति। भिक्खू [B.159] छमायं निसीदन्ति, गत्तानि पि चीवरानि पि पंसुकितानि होन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, उपोसथागारे आसनं पञ्ञापेतुं** ति।

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—''केन नु खो उपोसथागारे आसनं पञ्ञापेतब्बं'' ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, थेरेन भिक्खुना नवं भिक्खुं आणापेतुं** ति।

....भोजन के समय बताने पर भी वह स्मरण नहीं रख पाता था। भगवान् से पूछा गया कि अब क्या उपाय किया जाय? (भगवान् ने बताया—) '' ....**जिस समय बताने पर उसे स्मरण रहता हो तभी उसे बताने की अनुमति देता हूँ।''** (५५)

१८. उपोसथ के पूर्वकृत्यों की अनुमति

२८. उस समय किसी आवास का उपोसथागार कूड़े-कर्कट से भरा पड़ा था। आगन्तुक भिक्षु, यह देखकर, बहुत खिन्न एवं उद्विग्न होते थे कि ये यहाँ रहने वाले भिक्षु उपोसथागार में झाड़ू-बुहारू भी नहीं करते! भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने आज्ञा दी—) ''**भिक्षुओ! उपोसथागार को निर्मल (स्वच्छ) रखने की (झाड़ू बुहारू करने की) अनुज्ञा करता हूँ।''** (५६)

तब भिक्षुओ! को यह विचार हुआ कि उपोसथागार की यह स्वच्छता किसे करनी चाहिये? भगवान् से इस विषय में पूछा गया। (भगवान् ने कहा—)

''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ—स्थविर भिक्षु द्वारा किसी नये भिक्षु को इस स्वच्छता के लिये आदेश देने की।''** (५७)

स्थविर भिक्षुओ द्वारा आज्ञा किये जाने पर भी नये भिक्षु उपोसथागार की स्वच्छता पर ध्यान नहीं देते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा—) **भिक्षुओ! स्थविर भिक्षु द्वारा आदेश दिये जाने पर, नीरोग (अग्लान) नव भिक्षु को उपोसथागार का सम्मार्जन (स्वच्छता) करना ही चाहिये। जो यह नहीं करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष होगा।** (५८)

२९. उस समय उपोसथागार मे (भिक्षुओं के बैठने के लिये) आसन नहीं बिछे रहते थे। भिक्षु भूमि पर ही बैठते थे, इससे उनके चीवर मैले हो जाते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी।

''**भिक्षुओ! आज्ञा देता हूँ उपोसथागार में आसन बिछाने की।** (५९)

तब भिक्षुओं को यह विचार हुआ कि उपोसथागार में आसन बिछाने का कार्य कौन करे?

[N.120] थेरेन आणत्ता नवा भिक्खू न आसनं पञ्ञापेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, थेरेन आणत्तेन अगिलानेन न पञ्ञापेतब्बं। यो न पञ्ञापेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

३०. तेन खो पन समयेन उपोसथागारे पदीपो न होति। भिक्खू अन्धकारे कायं पि चीवरं पि अक्कमन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, उपोसथागारे पदीपं कातुं** ति।

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"केन नु खो उपोसथागारे पदीपो कातब्बो" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, थेरेन भिक्खुना नवं भिक्खुं आणापेतुं** ति।

थेरेन आणत्ता नवा भिक्खू न पदीपेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, थेरेन आणत्तेन अगिलानेन न पदीपेतब्बो। यो न पदीपेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

३१. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे आवासिका भिक्खू नेव पानीयं उपट्ठापेन्ति, न परिभोजनीयं उपट्ठापेन्ति। आगन्तुका भिक्खू उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम आवासिका भिक्खू नेव पानीयं उपट्ठापेस्सन्ति, न परिभोजनीयं उपट्ठापेस्सन्ती" [R.119] ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेतुं** ति।

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"केन नु खो पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेतब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, थेरेन भिक्खुना नवं भिक्खुं आणापेतुं** ति।

थेरेन आणत्ता नवा भिक्खू न उपट्ठापेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न,** [B.160] **भिक्खवे, थेरेन आणत्तेन अगिलानेन न उपट्ठापेतब्बं। यो न उपट्ठापेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

१९. दिसङ्गमिकादिवत्थु

३२. तेन खो पन समयेन सम्बहुला बाला अब्यत्ता दिसङ्गमिका आचरियुपज्झाये न

भगवान् से पूछा गया। (भगवान् ने बताया—) "**अनुमति देता हूँ कि इस कार्य के लिये स्थविर भिक्षु द्वारा नवक भिक्षु को आज्ञा करने की।**" (६०)

स्थविर भिक्षु द्वारा आज्ञा करने पर भी नये भिक्षु आसन नहीं बिछाते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा—) **भिक्षुओ! स्थविर भिक्षु द्वारा आज्ञा की जाने पर नव भिक्षु यदि वह रोगी न हो तो, आसन बिछाने का कार्य अवश्य करना चाहिये। जो न करे उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**" (६१)

३०. उस समय उपोसथागार में दीपक न होने से भिक्षु अन्धकार में दूसरों के शरीर के किसी अङ्ग या चीवर को कुचलते हुए चलते थे। भगवान् से यह बात कहीं गयी। (भगवान् ने कहा—) **अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! उपोसथागार में दीपक जलाने की।**" ....पूर्ववत्....। (६२)

३१. उस समय किसी भिक्षु–आवास में रहने वाले भिक्षु उपोसथ के दिन न तो वहाँ जल की व्यवस्था करते थे, न उस समय उपयोग में आने वाली वस्तुओ की।....पूर्ववत्. . । (६३ -६४)

आपुच्छिंसु। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "इध पन, भिक्खवे, सम्बहुला भिक्खू बाला अब्यत्ता दिसङ्गमिका आचरियुपज्झाये न आपुच्छन्ति। तेहि, भिक्खवे, आचरियुपज्झायेहि पुच्छितब्बा—"कहं गमिस्सथ, केन सद्धिं गमिस्सथा" ति ? ते चे, भिक्खवे, बाला अब्यत्ता अञ्ञे बाले अब्यत्ते अपदिसेय्युं, न भिक्खवे, आचरियुपज्झायेहि अनुजानितब्बा। अनुजानेय्युं चे, आपत्ति दुक्कटस्स। ते च, भिक्खवे, बाला अब्यत्ता अननुञ्ञाता आचरियुपज्झायेहि गच्छेय्युं चे, आपत्ति दुक्कटस्स।

"इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे सम्बहुला भिक्खू विहरन्ति बाला अब्यत्ता। ते न जानन्ति उपोसथं वा उपोसथकम्मं वा, पातिमोक्खं वा पातिमोक्खुद्देसं वा। तत्थ अञ्ञो भिक्खु आगच्छति बहुस्सुतो आगतागमो धम्मधरो विनयधरो मातिकाधरो पण्डितो ब्यत्तो मेधावी लज्जी कुक्कुच्चको सिक्खाकामो। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि सो भिक्खू सङ्गहेतब्बो अनुग्गहेतब्बो उपलापेतब्बो उपट्ठापेतब्बो–चुण्णेन मत्तिकाय दन्तकट्ठेन मुखोदकेन। नो चे सङ्गण्हेय्युं अनुग्गण्हेय्युं उपलापेय्युं [N.121] उपट्ठापेय्युं—चुण्णेन मत्तिकाय दन्तकट्ठेन मुखोदकेन, आपत्ति दुक्कटस्स।

"इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला भिक्खू विहरन्ति बाला अब्यत्ता। ते न जानन्ति उपोसथं वा उपोसथकम्मं वा, पातिमोक्खं वा पातिमोक्खुद्देसं वा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि एको भिक्खु समान्ता आवासा सज्जुकं

---

१९. लम्बी यात्रा आदि वस्तुएँ

३२. उस समय बहुत से मूर्ख एवं अयोग्य भिक्षु लम्बी यात्रा पर जाते समय अपने आचार्य या उपाध्याय से अनुमति नहीं लेते थे। इस विषय में भगवान् से निवेदन किया गया। (भगवान् ने कहा–) "यहाँ, भिक्षुओ! जो बहुत से मूर्ख एवं अयोग्य भिक्षु दूर यात्रा पर जाते समय अपने आचार्य–उपाध्यायों से अनुमति नहीं लेते; आचार्य उपाध्यायों द्वारा उनको यह पूछना चाहिये–'तुम कहाँ जाओगे? किसके साथ जाओगे?' यदि उनका मूर्ख और अयोग्य भिक्षुओ का साथ हो तो उन्हें किसी दशा में भी अनुमति नहीं देना चाहिये। यदि अनुमति देंगे तो उन्हें 'दुष्कृत' दोष लगेगा। और यदि वे मूर्ख और अयोग्य भिक्षु अपने आचार्य–उपाध्यायों की इस आज्ञा को न मानेंगे तो उन्हें भी दुष्कृत दोष लगेगा। (६५)

यहाँ भिक्षुओ! किसी दूसरे भिक्षु आवास में वैसे ही मूर्ख एवं अयोग्य भिक्षु ठहरे हुए हों। वे न उपोसथ (का नाम) जानते हों, न उपोसथ कर्म ही। न वे प्रातिमोक्ष (का नाम) जानते हों, न प्रातिमोक्ष का पाठ ही। वहाँ कोई अन्य भिक्षु आये, जो उपोसथ भी....प्रातिमोक्ष का पाठ भी। बहुश्रुत हो, धर्माचारी हो, आगम का ज्ञाता हो, विनय एवं मातृकाओं (शिक्षापदों) का पण्डित हो, व्यक्त, मेधावी, लज्जी कुकृत्य से दूर, और शिक्षा में रुचि रखता हो। भिक्षुओ! उन भिक्षुओं को ऐसे भिक्षु का संग्रह करना चाहिये। उससे स्नेह करना चाहिये। उसको सम्मान देना चाहिये। उसकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये– स्नानादि के समय चूर्ण, मिट्टी, दतउन एवं मुख प्रक्षालनार्थ जल देकर। यदि वे ऐसा न करेंगे तो उन्हें दुष्कृत दोष लगेगा।

"यहाँ, भिक्षुओ! यदि किसी भिक्षु–आवास में उपोसथ के दिन बहुत से मूर्ख एवं अयोग्य भिक्षु रहते हों और वे सभी उपोसथ एवं उपोसथकर्म या प्रातिमोक्ष एवं प्रातिमोक्ष–पाठ के विषय में कुछ भी न जानते हों तो, भिक्षुओ! उन भिक्षुओं को, अपने में से एक भिक्षु को समीपवर्ती किसी

पाहेतब्बो—'गच्छावुसो, सङ्खित्तेन वा वित्थारेन वा पातिमोक्खं परियापुणित्वा [B.161] आगच्छा' ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, तेहि, भिक्खवे, [R.120] भिक्खूहि सब्बेहेव यत्थ जानन्ति उपोसथं वा उपोसथकम्मं वा पातिमोक्खं वा पातिमोक्खुद्देसं वा, सो आवासो गन्तब्बो। नो चे गच्छेय्युं, आपत्ति दुक्कटस्स।

"इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे सम्बहुला भिक्खू वस्सं वसन्ति बाला अब्यत्ता। तेन न जानन्ति उपोसथं वा उपोसथकम्मं वा, पातिमोक्खं वा पातिमोक्खुद्देसं वा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि एको भिक्खु सामन्ता आवासा सज्जुकं पाहेतब्बो—'गच्छावुसो, सङ्खित्तेन वा वित्थारेन वा पातिमोक्खं परियापुणित्वा आगच्छा' ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, एको भिक्खु सत्ताहकालिकं पाहेतब्बो—'गच्छावुसो, सङ्खित्तेन वा वित्थारेन वा पातिमोक्खं परियापुणित्वा आगच्छा' ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, न, भिक्खवे, तेहि भिक्खूहि तस्मिं आवासे वस्सं वसितब्बं। वसेय्युं चे, आपत्ति दुक्कटस्सा" ति।

२०. पारिसुद्धिदानकथा

३३. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"सन्निपतथ, भिक्खवे, सङ्घो उपोसथं करिस्सती" ति। एवं वुत्ते अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"अत्थि, भन्ते, भिक्खु गिलानो, सो अनागतो" ति। **अनुजानामि, भिक्खवे, गिलानेन भिक्खुना पारिसुद्धिं दातुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, दातब्बा—तेन गिलानेन भिक्खुना एकं भिक्खुं उपसङ्कमित्वा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा एवमस्स वचनीयो—"पारिसुद्धिं दम्मि, पारिसुद्धिं मे हर, पारिसुद्धिं मे आरोचेही" ति। कायेन विञ्ञापेति, वाचाय विञ्ञापेति, कायेन वाचाय विञ्ञापेति, दिन्ना होति पारिसुद्धि। न कायेन विञ्ञापेति,

---

अन्य आवास में यह कह कर भेजना चाहिये—"जाओ, आयुष्मन्! संक्षेप या विस्तार से प्रातिमोक्ष-पाठ सीखकर आओ।' इस प्रकार यदि कार्य सिद्ध हो जाय तो ठीक है; अन्यथा उन सभी भिक्षुओं को उस आवास में चले जाना चाहिये जहाँ उपोसथ के दिन....प्रतिमोक्षपाठ भलीभाँति होता हो। जो नहीं जायगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।

और यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु आवास में बहुत से ऐसे भिक्षु वर्षावास कर रहे हों जो स्वयं मूर्ख एवं धर्म के विषय में अयोग्य हों। वे न उपोसथ या....प्रातिमोक्ष-पाठ के विषय में ही कुछ जानते हों। तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओं को अपने में किसी एक भिक्षु को समीपवर्ती आवास में भेजना चाहिये—'जाओ आयुष्मन्! संक्षेप या विस्तार से प्रातिमोक्ष-पाठ सीखकर आओ।' यदि ऐसा हो जाय तो ठीक, अन्यथा किसी अन्य भिक्षु को सप्ताहपर्यन्त समय देकर वहाँ भेजना चाहिये—'जाओ, आयुष्मन्! प्रातिमोक्ष का पाठ सीखकर आओ।' यदि ऐसा भी हो जाय तो ठीक; अन्यथा भिक्षुओं को वहाँ वर्षावास नहीं करना चाहिये। जो वर्षावास करे उसे दुष्कृत दोष लगेगा। (६६)

२०. परिशुद्धिदानकथा

३३ तब भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! सभी एकत्र हो जाओ। सङ्घ उपोसथ करेगा।" ऐसा कहे जाने पर, एक भिक्षु ने बताया—"भन्ते! अमुक भिक्षु रोगाक्रान्त है, अतः

न वाचाय विञ्ञापेति, न कायेन वाचाय विञ्ञापेति, न दिन्ना होति पारिसुद्धि। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, सो, भिक्खवे, गिलानो भिक्खु मञ्चेन वा पीठेन वा सङ्घमज्झे आनेत्वा उपोसथो कातब्बो।

सचे, भिक्खवे, गिलानुपट्ठाकानं भिक्खूनं एवं होति—"सचे खो मयं गिलानं ठाना चावेस्साम, आबाधो वा अभिवड्ढिस्सति कालङ्किरिया वा भविस्सती" ति, **न भिक्खवे, गिलानो भिक्खु ठाना चावेतब्बो। सङ्घेन तत्थ गन्त्वा उपोसथो कातब्बो। न त्वेव वग्गेन सङ्घेन उपोसथो कातब्बो। करेय्य चे, आपत्ति दुक्कटस्स।** [N.122, B.162]

पारिसुद्धिहारको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पारिसुद्धिया तत्थेव पक्कमति, अञ्ञस्स दातब्बा पारिसुद्धि। पारिसुद्धिहारको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पारिसुद्धिया तत्थेव बिब्भमति,....पे०....कालं करोति—सामणेरो पटिजानाति—सिक्खं पच्चक्खातको पटिजानाति—अन्तिमवत्थुं अज्झापन्नको पटिजानाति—उम्मत्तको पटिजानाति—खित्तचित्तो [R.121] पटिजानाति—वेदनट्टो पटिजानाति—आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तको पटिजानाति—आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खित्तको पटिजानाति—पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खित्तको पटिजानाति—पण्डको पटिजानाति—थेय्यसंवासको पटिजानाति—तित्थियपक्कन्तको पटिजानाति—तिरच्छानगतो पटिजानाति—मातुघातको पटिजानाति—पितुघातको पटिजानाति—अरहन्तघातको पटिजानाति—भिक्खुनीदूसको पटिजानाति—सङ्घभेदको पटिजानाति—लोहितुप्पादको पटिजानाति—उभयतोब्यञ्जनको पटिजानाति, अञ्ञस्स दातब्बा पारिसुद्धि।

पारिसुद्धिहारको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पारिसुद्धिया अन्तरामग्गे पक्कमति, अनाहटा

वह नहीं आ पाया है।" (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रोगी को अपनी शुद्धि (निर्दोषता) की बात भेजने की।**"

और भिक्षुओ! उस रोगी भिक्षु को (उपोसथ में उपस्थित न होने की) अपनी निर्दोषता की बात सङ्घ के पास इस तरह भेजनी चाहिये—

वह रोगी भिक्षु किसी भिक्षु के पास जाकर उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर, उकडूँ बैठकर, हाथ जोडकर, यों कहना चाहिये—'मैं अपनी यह शुद्धि (निर्दोषता का प्रमाण) दे रहा हूँ। मेरी इस परिशुद्धि को ले जाओ, और सङ्घ में जाकर बता दो।" यदि वह रोगी भिक्षु काया से, वाणी से तथा काय, वाक्—दोनों (के सङ्केतों) से सूचित करे तो वह 'परिशुद्धि' ठीक कहलाती है। यदि वह न काया से, न वाणी से, न काय वाक्—दोनों से ही सूचित करता है तो वह 'परिशुद्धि' ठीक से दी हुई नहीं कहलाती। यदि सङ्घ द्वारा इस तरह परिशुद्धि मिल जाय तो ठीक है। अन्यथा उस भिक्षु को मञ्चसहित सङ्घ में लाकर उपोसथ में सम्मिलित करना चाहिये।

यदि, भिक्षुओ! उस रोगी के परिचारकों को यह समझ में आये कि "रोगी को मञ्चसहित ले जाने से इस का रोग और अधिक बढ़ जायगा, या यह इसका देहावसान हो जायगा" तो उस रोगी भिक्षु को स्थान से नहीं हटाना चाहिये। अपितु सम्पूर्ण सङ्घ को वहाँ जाकर प्रातिमोक्षपाठ करना चाहिये। केवल एक समूह को जाकर ही वहाँ उपोसथ नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा।

होति पारिसुद्धि। पारिसुद्धिहारको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पारिसुद्धिया अन्तरामग्गे विब्भमति, ...पे०....उभतोब्यञ्जनको पटिजानाति, अनाहटा होति पारिसुद्धि।

पारिसुद्धिहारको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पारिसुद्धिया सङ्घप्पत्तो पक्कमति, आहटा होति पारिसुद्धि। पारिसुद्धिहारको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पारिसुद्धिया सङ्घप्पत्तो बिब्भमति, ...पे०....उभतोब्यञ्जनको पटिजानाति, आहटा होति पारिसुद्धि।

पारिसुद्धिहारको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पारिसुद्धिया सङ्घप्पत्तो सुत्तो न आरोचेति, पमत्तो न आरोचेति, समापन्नो न आरोचेति, आहटा होति पारिसुद्धि। पारिसुद्धिहारकस्स अनापत्ति।

पारिसुद्धिहारको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पारिसुद्धिया सङ्घप्पत्तो सञ्चिच्च न आरोचेति, आहटा होति पारिसुद्धि। पारिसुद्धिहारकस्स आपत्ति दुक्कटस्सा ति।

२१. छन्ददानकथा

[B.163] ३४. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''सन्निपतथ, भिक्खवे, सङ्घो कम्मं करिस्सती'' ति। एवं वुत्ते अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''अत्थि,भन्ते, भिक्खु गिलानो, सो अनागतो'' ति। **अनुजानामि, भिक्खवे, गिलानेन भिक्खुना छन्दं दातुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, दातब्बो। तेन गिलानेन भिक्खुना एकं भिक्खुं उपसङ्कमित्वा

यदि, भिक्षुओ! रोगी भिक्षु द्वारा शुद्धि की बात कह देने पर शुद्धि लेजाने वाला (सङ्घ में न जाकर) वहीं से कहीं अन्यत्र चला जाय, तो शुद्धि दूसरे के द्वरा भिजवानी चाहिये। यदि शुद्धि की बात कह देने पर, शुद्धि ले जाने वाला भिक्षुभाव त्याग दे, उसका देहपात हो जाय, या श्रामणेर बन जाय, भिक्षुनियमों को त्याग दे, पाराजिकदोषापन्न हो जाय, या पागल, विक्षिप्तचित्त या मूर्च्छित हो जाय, या दोष (आपत्ति) स्वीकार न करने से उत्क्षिप्तक (निष्कासित) माना जाय, पापदृष्टि के न त्यागने से उत्क्षिप्तक हो जाय, पण्डक माना जाय, चौरी से भिक्षुवस्त्र पहनने वाला (स्तेयसवासक) माना जाय, अन्य सम्प्रदाय में चला जाय, तिर्यग्योनि का सिद्ध हो जाय, मातृघातक, पितृघातक, अर्हद्घातक, भिक्षुणीदूषक, सङ्घ में फूट डालने वाला (सङ्घसामग्रीभेदक) हो, बुद्ध के शरीर से लोहितोत्पादक हो, स्त्री -पुरुष—दोनों लिङ्गों वाला हो तो किसी अन्य को शुद्धि देनी चाहिये।

''भिक्षुओ! यदि शुद्धि ले जाने वाला शुद्धि दे देने के बाद (सङ्घ तक न पहुँचकर) बीच रास्ते में ही अन्यत्र चला जाय .पूर्ववत्. तो परिशुद्धि नहीं ले जायी गयी समझनी चाहिये।

''भिक्षुओ! यदि शुद्धि ले जाने वाला सङ्घ मे सूचना देने के बाद कहीं अन्यत्र चला जाय या सो जाय. .पूर्ववत्. तो शुद्धि ले जायी गयी समझनी चाहिये। शुद्धि लाने वाले को कोई दोष नहीं है।

''यदि. भिक्षुओ! शुद्धि ले जाने वाला रोगी द्वारा शुद्धि दे देने के बाद, जानबूझ कर (सञ्चिच्च) नही बतलाता तो भी शुद्धि ले जायी गयी मानी जानी चाहिये। और इस शुद्धि ले जाने वाले को 'दुष्कृत' दोष लगता है। (६७)

२१. छन्द (=मत) दानकथा

३४. तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—''भिक्षुओ! एकत्र होओ। सङ्घ (विवाद-निर्णय आदि) कर्म करेगा।'' ऐसा कहने पर (सब भिक्षु एकत्र हो गये। तब) एक भिक्षु ने भगवान् से निवेदन किया—''भन्ते! एक भिक्षु नहीं आये है, वे रोगाक्रान्त हैं।'' (भगवान् ने कहा—) **''भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रोगी भिक्षु को अपना छन्द (=सम्मति) भेजने की।''** (६८)

एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा एवमस्स वचनीयो—"छन्दं दम्मि, छन्दं मे हर, छन्दं मे आरोचेही" ति। कायेन विञ्ञापेति, वाचाय विञ्ञापेति, कायेन वाचाय विञ्ञापेति, दिन्नो होति छन्दो। न कायेन विञ्ञापेति, न वाचाय विञ्ञापेति, न कायेन वाचाय विञ्ञापेति, न दिन्नो होति छन्दो। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, सो, भिक्खवे, गिलानो भिक्खु मञ्चेन वा पीठेन वा सङ्घमज्झे आनेत्वा [N.123] कम्मं कातब्बं। सचे, भिक्खवे, गिलानुपट्ठाकानं भिक्खूनं एवं होति—"सचे खो [R.122] मयं गिलानं ठाना चावेस्साम, आबाधो वा अभिवड्डिस्सति कालङ्किरिया वा भविस्सती" ति, न, भिक्खवे, गिलानो भिक्खु ठाना चावेतब्बो। सङ्घेन तत्थ गन्त्वा कम्मं कातब्बं। न त्वेव वग्गेन सङ्घेन कम्मं कातब्बं। करेय्य चे, आपत्ति दुक्कटस्स।

छन्दहारको चे, भिक्खवे, दिन्ने छन्दे तत्थेव पक्कमति, अञ्ञस्स दातब्बो छन्दो। छन्दहारको चे, भिक्खवे, दिन्ने छन्ने तत्थेव विब्भमति, ...पे०....कालं करोति—सामणेरो पटिजानाति—सिक्खं पच्चक्खातको पटिजानाति—अन्तिमवत्थुं अज्झापन्नको पटिजानाति—उम्मत्तको पटिजानाति—खित्तचित्तो पटिजानाति—वेदनट्टो पटिजानाति—आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तको पटिजानाति—आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खित्तको पटिजानाति—पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खित्तको पटिजानाति—पण्डको पटिजानाति—थेय्यसंवासको पटिजानाति—तित्थियपक्कन्तको पटिजानाति—तिरच्छानगतो पटिजानाति—मातुघातको पटिजानाति—पितुघातको पटिजानाति—अरहन्तघातको पटिजानाति—भिक्खुनीदूसको पटिजानाति—सङ्घभेदको पटिजानाति—लोहितुप्पादको पटिजानाति—उभतोब्यञ्जनको पटिजानाति, अञ्ञस्स दातब्बो छन्दो।

छन्दहारको चे, भिक्खवे, दिन्ने छन्दे अन्तरामग्गे पक्कमति, अनाहटो होति [B.164] छन्दो। छन्दहारको चे, भिक्खवे, दिन्ने छन्दे अन्तरामग्गे विब्भमति....पे०....उभतोब्यञ्जनको पटिजानाति, अनाहटो होति छन्दो।

छन्दहारको चे, भिक्खवे, दिन्ने छन्दे सङ्घप्पत्तो पक्कमति, आहटो होति छन्दो छन्दहारको चे, भिक्खवे, दिन्ने छन्दे सङ्घप्पत्तो सुत्तो न आरोचेति, पमत्तो न आरोचेति, समापन्नो न आरोचेति, आहटो होति छन्दो। छन्दहारकस्स अनापत्ति।

छन्दहारको चे, भिक्खवे, दिन्ने छन्दे सङ्घप्पत्तो सञ्चिच्च न आरोचेति, आहटो होति छन्दो। छन्दहारकस्स आपत्ति दुक्कटस्स। **अनुजानामि, भिक्खवे, तदहुपोसथे पारिसुद्धिं देन्तेन छन्दं पि दातुं, सन्ति सङ्घस्स करणीयं** ति।

"छन्द भेजने की यह पद्धति इस प्रकार होगी—

"उस रोगी भिक्षु को एक भिक्षु के पास जाकर एक कन्धे पर उत्तरासङ्ग कर...पूर्ववत्...(परिशुद्धिदान के पाठ की तरह अनुवाद समझें)।

"छन्द ले जानेवाला सङ्घ में जाकर भी यदि जानबूझ कर नहीं बतलाता है तो भी छन्द लाया हुआ माना जायगा। छन्दहारक दुष्कृत दोष का भागी होगा। **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उपोसथ के दिन, शुद्धि देते समय छन्द के देने की भी; यदि सङ्घ को कुछ विवाद-निर्णय आदि करणीय हो।** (६९)

२२. ञातकादिग्गहणकथा

३५. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरं भिक्खुं तदहुपोसथे ञातका गण्हिंसु। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

[N.124] इध पन, भिक्खवे, भिक्खुं तदहुपोसथे ञातका गण्हन्ति। ते ञातका भिक्खूहि एवमस्सु वचनीया– "इङ्घ, तुम्हे आयस्मन्तो इमं भिक्खुं मुहुत्तं मुञ्चथ, यावायं भिक्खु उपोसथं करोती" ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, ते ञातका भिक्खूहि एवमस्सु वचनीया–"इङ्घ, तुम्हे आयस्मन्तो मुहुत्तं एकमन्तं होथ, यावायं भिक्खु पारिसुद्धिं देती" ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, ते ञातका भिक्खूहि एवमस्सु वचनीया–"इङ्घ, तुम्हे आयस्मन्तो इमं भिक्खुं मुहुत्तं निस्सीमं नेथ, याव सङ्घो उपोसथं करोती" ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, न त्वेव वग्गेन सङ्घेन उपोसथो कातब्बो। करेय्य चे, आपत्ति दुक्कटस्स।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुं तदहुपोसथे राजानो गण्हन्ति,....पे०....चोरा [B.165] गण्हन्ति–धुत्ता गण्हन्ति–भिक्खुपच्चत्थिका गण्हन्ति, ते भिक्खुपच्चत्थिका भिक्खूहि एवमस्सु वचनीया–"इङ्घ, तुम्हे आयस्मन्तो इमं भिक्खुं मुहुत्तं मुञ्चथ, यावायं भिक्खु उपोसथं करोती" ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, ते भिक्खुपच्चत्थिका भिक्खूहि एवमस्सु वचनीया–"इङ्घ, तुम्हे आयस्मन्तो मुहुत्तं एकमन्तं होथ, यावायं भिक्खु पारिसुद्धिं देती" ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, ते भिक्खुपच्चत्थिका भिक्खूहि एवमस्सु वचनीया–"इङ्घ, तुम्हे आयस्मन्तो इमं भिक्खुं मुहुत्तं निस्सीमं नेथ, याव सङ्घो उपोसथं करोती" ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, न त्वेव वग्गेन सङ्घेन उपोसथो कातब्बो। करेय्य चे, आपत्ति दुक्कटस्सा ति।

---

२२. ज्ञाति (सम्बन्धिजन) आदि द्वारा पकड़े जाने की कथा

३५. उस समय एक भिक्षु को, उपोसथ के दिन, उसके नाते-रिश्तेदारों ने पकड़ लिया। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा–)

"भिक्षुओ! यदि उपोसथ के दिन किसी भिक्षु को उसके नाते-रिश्तेदार पकड़ लें तो अन्य भिक्षुओं को उन नाते-रिश्तेदारों से यह कहना चाहिये–"अच्छा हो, आयुष्मानो! तुम मुहूर्त भर इस भिक्षु को छोड दो, इतने में यह भिक्षु उपोसथ कर्म कर लेगा। यदि ऐसा हो सके तो अच्छा; यदि न हो सके तो भिक्षुओं को उन नाते-रिश्तेदारों से कहना चाहिये–'आयुष्मानो! मुहूर्तमात्र के लिये आप लोग एक तरफ हो जाँय, ताकि यह भिक्षु अपनी शुद्धि दे दे।' इस प्रकार यदि हो सके तो अच्छा, अन्यथा भिक्षु उन नाते-रिश्तेदारों से कहे–'आयुष्मानो! तुम लोग मुहूर्तमात्र के लिये इस भिक्षु को सीमा के बाहर ले जाओ, जितने में कि सङ्घ उपोसथ कर ले।' इस प्रकार यदि हो सके तो ठीक, अन्यथा सङ्घ के एक भाग को उपोसथ नहीं करना चाहिये, यदि करे तो 'दुष्कृत' दोष हो। (७०)

"भिक्षुओ! उपोसथ के दिन यदि राजा किसी भिक्षु को पकड़वा ले,....पूर्ववत्....चौर पकड़ लें....धूर्त (गुण्डे) पकड़ लें....भिक्षुओं के शत्रु पकड़ लें; उन शत्रुओं से कहना

२३. उम्मत्तकसम्मुति

३६. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"सन्निपतथ, भिक्खवे, अत्थि [B.165] सङ्घस्स करणीयं" ति। एवं वुत्ते अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"अत्थि, भन्ते, गग्गो नाम भिक्खु उम्मत्तको, सो अनागतो" ति।

"द्वेमे, भिक्खवे, उम्मत्तका—अत्थि, भिक्खवे, भिक्खु उम्मत्तको सरति पि उपोसथं न पि सरति, सरति पि सङ्घकम्मं न पि सरति, अत्थि नेव सरति; आगच्छति पि उपोसथं न पि आगच्छति, आगच्छति पि सङ्घकम्मं न पि आगच्छति, अत्थि नेव आगच्छति। तत्र, भिक्खवे, य्वायं उम्मत्तको सरति पि उपोसथं न पि सरति, सरति पि सङ्घकम्मं न पि सरति, आगच्छति पि उपोसथं न पि आगच्छति, आगच्छति पि सङ्घकम्मं न पि आगच्छति, **अनुजानामि, भिक्खवे, एवरूपस्स उम्मत्तकस्स उम्मत्तकसम्मुत्तिं दातुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, दातब्बा। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो आपेतब्बो—

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। गग्गो भिक्खु उम्मत्तको—सरति पि उपोसथं न पि सरति, सरति पि सङ्घकम्मं....पे०....सङ्घकम्मं न पि आगच्छति। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो गग्गस्स भिक्खुनो उम्मत्तकस्स उम्मत्तकसम्मुतिं ददेय्य। सरेय्य वा गग्गो [B.166] भिक्खु उपोसथं न वा सरेय्य, सरेय्य वा सङ्घकम्मं न वा सरेय्य, आगच्छेय्य वा [N.125] उपोसथं न वा आगच्छेय्य, आगच्छेय्य वा सङ्घकम्मं न वा आगच्छेय्य, सङ्घो सह वा गग्गेन विना वा गग्गेन, उपोसथं करेय्य, सङ्घकम्मं करेय्य। एसा ञत्ति।

सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। गग्गो भिक्खु उम्मत्तको—सरति पि उपोसथं....पे०....ना

चाहिये...पूर्ववत्...अन्यथा सङ्घ के एक भाग को उपोसथ नहीं करना चाहिये। जो करे उसे 'दुष्कृत' दोष हो। (७१–७४)

२३. उन्मत्तक (पागल) घोषित करने के लिये स्वीकृति

३६. तब भगवान् ने भिक्षुओ का सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! एकत्र होओ। सङ्घ का कुछ कर्त्तव्य कर्म (उपस्थित) हो गया है।" ऐसा कहे जाने पर (भिक्षु एकत्र हुए।) एक भिक्षु ने निवेदन किया—"भन्ते! गर्ग नामक भिक्षु पागल हो गया है, वह नहीं आया।" (भगवान् ने कहा—) "भिक्षुओ! उन्मत्तकों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है; (१) पहला वह जो साधारण बातें तो स्मरण रखता है, परन्तु उपोसथ का स्मरण नहीं रखता; (२) दूसरा वह भिक्षु (भी उन्मत्त माना जायगा जो) सङ्घकर्म को स्मरण रखता भी है, नहीं भी रखता, या स्मरण नहीं ही रखता; अन्य बातें स्मरण रखता भी हो, परन्तु उपोसथ स्मण नहीं रखता, वह उसमें सम्मिलित होता भी है, नहीं भी होता या फिर सम्मिलित नहीं ही होता; सङ्घकर्म में सम्मिलित होता भी है, नहीं भी होता, या फिर नहीं ही होता।

"भिक्षुओ! इनमें जो उन्मत्त उपोसथ का स्मरण रखता भी है, नहीं भी रखता, सङ्घकर्म को स्मरण रखता भी है, नहीं भी रखता; उपोसथ में आता भी है, नहीं भी आता, सङ्घकर्म में आता भी है नहीं भी आता; **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ऐसे उन्मत्तक को 'उन्मत्तक' घोषित करने की।** (७५)

और भिक्षुओ! इस घोषणा की पद्धति यह है। चतुर एवं समर्थ भिक्षु सङ्घ को सूचित करे—

ज्ञप्ति— 'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने— गर्ग भिक्षु उन्मत्त है, वह उपोसथ कर्म को स्मरण करता भी है नहीं भी करता, सङ्घ कर्म को स्मरण रखता भी है नहीं भी रखता; उपोसथ में आता भी है नहीं भी आता; सङ्घकर्म में आता भी है नहीं भी आता। (अत:) सङ्घ यदि उचित समझे तो गर्ग भिक्षु को उन्मत्त

पि आगच्छति। सङ्घो गग्गस्स भिक्खुनो उम्मत्तकस्स उम्मत्तकसम्मुतिं देति। सरेय्य वा गग्गो....पे०....सङ्घो सह वा गग्गेन, विना वा गग्गेन उपोसथं करिस्सति, सङ्घकम्मं करिस्सति। यस्सायस्मतो खमति गग्गस्स भिक्खुनो उम्मत्तकस्स उम्मत्तकसम्मुतिया दानं—सरेय्य वा गग्गो भिक्खु....पे०....सङ्घो सह वा गग्गेन, विना वा गग्गेन उपोसथं करिस्सति, सङ्घकम्मं करिस्सति, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

दिन्ना सङ्घेन गग्गस्स भिक्खुनो उम्मत्तकस्स उम्मत्तकसम्मुति। सरेय्य वा गग्गो भिक्खु उपोसथं न वा सरेय्य, सरेय्य वा सङ्घकम्मं....पे०....सङ्घकम्मं करिस्सति खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी" ति।

२४. सङ्घुपोसथादिप्पभेदो

[R.124] ३७. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे चत्तारो भिक्खू विहरन्ति। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं 'उपोसथो कातब्बो' ति, मयं चम्हा [B.167] चत्तारो जना, कथं नु खो अम्हेहि उपोसथो कातब्बो" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, चतुन्नं पातिमोक्खं उद्दिसितुं**" ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे तयो भिक्खू विहरन्ति। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवता अनुञ्ञातं चतुन्नं पातिमोक्खं उद्दिसितुं, मयं चम्हा तयो जना, कथं नु खो अम्हेहि उपोसथो कातब्बो" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, तिण्णं अञ्ञमञ्ञं पारिसुद्धिउपोसथं कातुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, कातब्बो। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन ते भिक्खू ञापेतब्बा—

घोषित कर दे। गर्ग भिक्षु भले ही उपोसथ का स्मरण रखे या न रखे, सङ्घकर्म का स्मरण करे या न करे, उपोसथ में या सङ्घकर्म में वह सम्मिलित हो या न हो; तो भी सङ्घ गर्ग भिक्षु के साथ या उसके विना भी उपोसथ एवं सङ्घकर्म करे—यह सूचना (ज्ञापन) है।

अनुश्रावण— "भन्ते! सङ्घ मेरी सुने—गर्ग नाम का भिक्षु उन्मत्त है। वह उपोसथ को....पूर्ववत्....। (अतः) सङ्घ गर्ग भिक्षु को उन्मत्त घोषित करता है।

गर्ग भिक्षु भले ही उपोसथ का....गर्ग भिक्षु के विना भी सङ्घ उपोसथ तथा सङ्घकर्म करेगा। जिस आयुष्मान् को....वह बोले।

धारणा— सङ्घ ने गर्ग भिक्षु का उन्मत्त होना मान लिया है....इसी लिये सङ्घ चुप है—ऐसी मेरी धारणा (समझ) है।

२४. सङ्घोपोसथादिप्रभेद

३७. उस समय किसी आवास में उपोसथ के दिन चार भिक्षु रह गये। तब उन भिक्षुओं को यह विचार आया—"भगवान् का आदेश है—'उपोसथ करना ही चाहिये। हम संख्या में चार हैं, हमें उपोसथ कैसे करना चाहिये।" तब उन्होंने यह समस्या भगवान् के सामने रखी। (भगवान् ने कहा—)

"**भिक्षुओ! चार भिक्षुओं को भी सङ्घ के रूप में उपोसथ करने की अनुमति देता हूँ।**" (७६)

उस समय किसी आवास में उपोसथ के दिन तीन भिक्षु....पूर्ववत्....। "**अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! तीन भिक्षुओं को भी परस्पर शुद्धि वाले उपोसथ कर्म की।**"

इस शुद्धिवाले उपोसथकर्म की यह पद्धति है—किसी चतुर एवं समर्थ भिक्षु द्वारा उन भिक्षुओं को यों सूचित करना चाहिये—

"सुणन्तु मे आयस्मन्ता। अज्जुपोसथो पन्नरसो। यदायस्मन्तानं पत्तकल्लं, मयं अञ्ञमञ्ञं पारिसुद्धिउपोसथं करेय्यामा" ति।

थेरेन भिक्खुना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा ते भिक्खू एवमस्सु वचनीया—"परिसुद्धो अहं, आवुसो; परिसुद्धो ति मं धारेथ। परिसुद्धो अहं, आवुसो; परिसुद्धो ति मं धारेथ। परिसुद्धो अहं, आवुसो; परिसुद्धो ति मं धारेथा" ति।

नवकेन भिक्खुना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा ते भिक्खू एवमस्सु वचनीया—"परिसुद्धो अहं, भन्ते; परिसुद्धो ति मं धारेथ। परिसुद्धो अहं, भन्ते; परिसुद्धो ति मं धारेथ। परिसुद्धो अहं, भन्ते; परिसुद्धो ति मं धारेथा" ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे द्वे भिक्खू विहरन्ति। अथ [N.126] खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवता अनुञ्ञातं चतुन्नं पातिमोक्खं उद्दिसितुं, तिण्णन्नं अञ्ञमञ्ञं पारिसुद्धिउपोसथं कातुं। मयं चम्हा द्वे जना। कथं नु खो अम्हेहि उपोसथो कातब्बो" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, द्विन्नं पारिसुद्धिउपोसथं कातुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, कातब्बो। थेरेन भिक्खुना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा नवो भिक्खु एवमस्स वचनीयो—'परिसुद्धो अहं, आवुसो; परिसुद्धो ति मं धारेहि। परिसुद्धो अहं, आवुसो; परिसुद्धो ति मं धारेहि। परिसुद्धो [R.125] अहं, आवुसो; परिसुद्धो ति मं धारेही' " ति।

नवकेन भिक्खुना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं [B.168] पग्गहेत्वा थेरो भिक्खु एवमस्स वचनीयो—"परिसुद्धो अहं, भन्ते; 'परिसुद्धो' ति मं धारेथ। परिसुद्धो अहं, भन्ते; 'परिसुद्धो' ति मं धारेथ। परिसुद्धो अहं, भन्ते; 'परिसुद्धो' ति मं धारेथा" ति।

"आयुष्मानो! सुनो। आज पूर्णिमा का उपोसथ है। यदि हम लोग उचित समझें तो हम एक दूसरे के साथ शुद्धि वाला उपोसथ करें।"

("तब) उनमें से स्थविर भिक्षु द्वारा उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर उकड़ूँ बैठकर, हाथ जोड़कर, उन अवशिष्ट भिक्षुओं से यों निवेदन करे—'आयुष्मानो! मैं परिशुद्ध हूँ; मुझे आप लोग परिशुद्ध समझें।' (इसी तरह तीन बार बोले।)

"नये भिक्षु द्वारा भी, उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर....हाथ जोड़कर उन भिक्षुओं से यों कहना चाहिये—'भन्ते! मैं परिशुद्ध हूँ; मुझे आप लोग परिशुद्ध समझें।' (यों तीन बार बोले।) (७७)

उस समय किसी आवास में उपोसथ के दिन दो भिक्षु रह गये। तब उन भिक्षुओं को यह विचार हुआ—"भगवान् ने चार के सङ्घ को प्रातिमोक्ष-पाठ की आज्ञा दी है, तीन को भी शुद्धिवाला उपोसथ करने की आज्ञा दी है; परन्तु हम तो यहाँ दो ही हैं, हम को अब क्या और कैसे करना चाहिये? भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! दो भिक्षुओं को भी अनुमति देता हूँ शुद्धिवाला उपोसथ करने की।** (७८)

और भिक्षुओ! वहाँ इस विधि से कार्य करना चाहिये—(पहले) स्थविर भिक्षु को.....पूर्ववत्....मुझे परिशुद्ध समझें।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे एको भिक्खु विहरति। अथ खो तस्स भिक्खुनो एतदहोसि—"भगवता अनुञ्ञातं चतुन्नं पातिमोक्खं उद्दिसितुं, तिण्णन्नं अञ्ञमञ्ञं पारिसुद्धिउपोसथं कातुं, द्विन्नं पारिसुद्धिउपोसथं कातुं। अहं चम्हि एकको कथं नु खो मया उपोसथो कातब्बो" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे एको भिक्खु विहरति। तेन, भिक्खवे, भिक्खुना यत्थ भिक्खू पटिक्कमन्ति उपट्ठानसालाय वा, मण्डपे वा, रुक्खमूले वा, सो देसो सम्मज्जित्वा पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेत्वा आसनं पञ्ञापेत्वा पदीपं कत्वा निसीदितब्बं। सचे अञ्ञे भिक्खू आगच्छन्ति, तेहि सद्धिं उपोसथो कातब्बो। नो चे आगच्छन्ति, "अज्ज मे उपोसथो" ति अधिट्ठातब्बं। नो चे अधिट्ठहेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स।

तत्र, भिक्खवे, यत्थ चत्तारो भिक्खू विहरन्ति, न एकस्स पारिसुद्धिं आहरित्वा तीहि पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। उद्दिसेय्युं चे, आपत्ति दुक्कटस्स। तत्र, भिक्खवे, यत्थ तयो भिक्खू विहरन्ति, न, एकस्स पारिसुद्धिं आहरित्वा द्वीहि पारिसुद्धिउपोसथो कातब्बो। करेय्युं चे, आपत्ति दुक्कटस्स। तत्र, भिक्खवे, यत्थ द्वे भिक्खू विहरन्ति, न एकस्स पारिसुद्धिं आहरित्वा एकेन अधिट्ठातब्बं। अधिट्ठहेय्य चे, आपत्ति दुक्कटस्सा ति।

२५. आपत्तिपटिकम्मविधि

३८. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु तदहुपोसथे आपत्तिं आपन्नो होति। अथ खो तस्स भिक्खुनो एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं 'न सापत्तिकेन उपोसथो कातब्बो' ति। अहं चम्हि आपत्तिं आपन्नो। कथं नु खो मया पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

उस समय किसी आवास में उपोसथ के दिन एक ही भिक्षु वास कर रहा था। उस भिक्षु को ऐसा विचार हुआ—"भगवान् ने अनुमति दी है चार को प्रातिमोक्ष का पाठ करने की; तीन एवं दो को शुद्धि वाला उपोसथ करने की; परन्तु मै तो यहाँ एकाकी हूँ, मुझे कैसे उपोसथ करना चाहिये?" भगवान् के सम्मुख यह समस्या रखी गयी। (भगवान् बोले—)

"यदि, भिक्षुओ! किसी आवास में एक ही भिक्षु रहे तो भिक्षुओ! उस भिक्षु को भिक्षु जिस उपस्थानशाला में या मण्डप एवं वृक्षों की छाया में आकर बैठते हैं, उस स्थान को झाड़ू से साफ कर, वहाँ जल तथा उपयोग की वस्तुएँ रखकर आसन बिछाकर तथा दीपक जलाकर बैठना चाहिये। यदि दूसरे भिक्षु आवें तो उनके साथ उपोसथ करना चाहिये। यदि न आवे, तो 'आज मेरा उपोसथ है'—ऐसा दृढ़ सङ्कल्प (अधिष्ठान) करना चाहिये। यदि अधिष्ठान न करे तो 'दुष्कृत' दोष लगेगा। (७९)

भिक्षुओ! जहाँ चार भिक्षु रहें वहाँ एक की शुद्धि लाकर तीन को या जहाँ तीन भिक्षु रहते हों वहाँ एक की शुद्धि लाकर बाकी दो को प्रातिमोक्ष पाठ नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा। इसी तरह भिक्षुओ! जहाँ दो भिक्षु रहते हों वहाँ एक की शुद्धि लाकर अवशिष्ट एक को अधिष्ठान नहीं करना चाहिये। यदि ऐसा करे तो उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।" (८०)

२५. आपत्ति(दोष)प्रतीकारविधि

३८. उस समय कोई भिक्षु उपोसथ के दिन आपत्ति (दोष)—ग्रस्त हो गया। तब उस भिक्षु को

इध पन, भिक्खवे, भिक्खु तदहुपोसथे आपत्तिं आपन्नो होति। तेन, भिक्खवे, भिक्खुना एकं भिक्खुं उपसङ्कमित्वा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं [N.127, R.126] निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा एवमस्स वचनीयो—"अहं, आवुसो, इत्थन्नामं [B.169] आपत्तिं आपन्नो, तं पटिदेसेमी" ति। तेन वत्तब्बो—"पस्ससी" ति। "आम पस्सामी" ति। "आयतिं संवरेय्यासी" ति।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खु तदहुपोसथे आपत्तिया वेमतिको होति। तेन, भिक्खवे, भिक्खुना एकं भिक्खुं उपसङ्कमित्वा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा एवमस्स वचनीयो—"अहं, आवुसो, इत्थन्नामाय आपत्तिया वेमतिको; यदा निब्बेमतिको भविस्सामि, तदा तं आपत्तिं पटिकरिस्सामी" ति वत्वा उपोसथो कातब्बो, पातिमोक्खं सोतब्बं, न त्वेव तप्पच्चया उपोसथस्स अन्तरायो कातब्बो ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सभागं आपत्तिं देसेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, सभागा आपत्ति देसेतब्बा। यो देसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सभागं आपत्तिं पटिग्गण्हन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सभागा आपत्ति पटिग्गहेतब्बा। यो पटिग्गण्हेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

यह विचार हुआ—"भगवान् का आदेश है—'सदोष (अपराधी) भिक्षु को उपोसथ नहीं करना चाहिये। जबकि मैं भी सदोष हूँ तो मुझे अब क्या करना चाहिये?" भगवान् के सम्मुख यह प्रश्न रखा गया। (भगवान् ने कहा—)

भिक्षुओ! यदि किसी भिक्षु को उपोसथ के दिन अपनी आपत्तिग्रस्तता (अपराध होना) स्मरण आ गयी हो तो उस भिक्षु को एक भिक्षु के पास जाकर उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर, उकडूँ बैठ, हाथ जोड़, ऐसे कहना चाहिये—'आयुष्मन्! मुझसे अमुक आपत्ति (दोष) हो गया है उसकी मैं प्रतिदेशना (अपराधस्वीकृति=पश्चात्ताप) करता हूँ।' तब उस दूसरे भिक्षु को उससे पूछना चाहिये—'क्या तुम अपनी की हुई आपत्ति को स्वीकार करते हो?' 'हाँ, स्वीकार करता हूँ।' 'भविष्य में इससे बचकर रहना।' " (८१)

"**यदि भिक्षुओ! किसी भिक्षु को उपोसथ के दिन अपने किये हुए दोष में सन्देह (विमति) हो तो भिक्षुओ, वह भिक्षु दूसरे भिक्षु के पास जाकर...हाथ जोड़कर ऐसे कहे—'आयुष्मन्! मैं अमुक दोष से आपन्न हूँ या नहीं, इसको मुझे सन्देह है; जब मेरा यह सन्देह निवृत्त हो जायगा तो मैं सङ्घ के सम्मुख इस आपत्ति का प्रतीकार कर लूँगा"—ऐसा कहकर उपोसथ करना चाहिये। प्रातिमोक्ष-पाठ सुनना चाहिये। उसके कारण उपोसथ में विघ्न नहीं डालना चाहिये।**" (८२)

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु आधी-अधूरी आपत्ति की देशना (अपराध-स्वीकार) करते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! आधी अधूरी आपत्ति की देशना नहीं करनी चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**" (८३)

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु आधे-अधूरे दोष की देशना स्वीकार करते थे। भगवान् को यह बात बता दी गयी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! आधे-अधूरे दोष की देशना स्वीकार नहीं करनी चाहिये। जो करे उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**" (८४)

२६. आपत्तिआविकरणविधि

३९. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु पातिमोक्खे उद्दिस्समाने आपत्तिं सरति। अथ खो तस्स भिक्खुनो एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं—'न सापत्तिकेन उपोसथो कातब्बो' ति। अहं चम्हि आपत्तिं आपन्नो। कथं नु खो मया पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु पातिमोक्खे उद्दिस्समाने आपत्तिं सरति। तेन, भिक्खवे, भिक्खुना सामन्तो भिक्खु एवमस्स वचनीयो—'अहं, आवुसो, इत्थन्नामं आपत्तिं आपन्नो। इतो वुट्ठहित्वा तं आपत्तिं पटिकरिस्सामी' ति वत्वा उपोसथो कातब्बो, पातिमोक्खं सोतब्बं, न त्वेव तप्पच्चया उपोसथस्स अन्तरायो कातब्बो।

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु पातिमोक्खे उद्दिस्समाने आपत्तिया वेमतिको होति। तेन, भिक्खवे, भिक्खुना सामन्तो भिक्खु एवमस्स वचनीयो—'अहं, आवुसो, [B.170] **इत्थन्नामाय आपत्तिया वेमतिको। यदा निब्बेमतिको भविस्सामि, तदा तं आपत्तिं पटिकरिस्सामी' ति वत्वा उपोसथो कातब्बो, पातिमोक्खं सोतब्बं; न त्वेव तप्पच्चया उपोसथस्स अन्तरायो कातब्बो ति।**

२७. सभागापत्तिपटिकम्मविधि

४०. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सब्बो सङ्घो सभागं आपत्तिं आपन्नो होति। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं—'न सभागा आपत्ति देसेतब्बा, न सभागा आपत्ति पटिग्गहेतब्बा' ति। अयं च सब्बो सङ्घो सभागं

---

२६. आपत्ति प्रकट करने की विधि

३९. उस समय किसी भिक्षु को प्रातिमोक्ष पाठ के समय अपना कोई अपराध स्मरण हो आया। तब उस भिक्षु को यह विचार आया—"भगवान् ने कहा है—'अपराधी (सापत्तिक) को उपोसथ नहीं करना चाहिये।' जबकि मुझे इस समय अपराध स्मरण हो आया। अब मुझे क्या करना चाहिये?" भगवान् के सम्मुख यह समस्या रखी गयी। (भगवान् ने कहा—)

"यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु प्रातिमोक्ष–पाठ होते समय अपना अपराध स्मरण करे तो भिक्षुओ! उस भिक्षु को पाठ में अपने पास बैठे भिक्षु से यों कहना चाहिये—'आयुष्मन्! मैं उस नाम की आपत्ति से ग्रस्त हूँ। यहाँ से उठकर मैं उस दोष का प्रतीकार करूँगा'—यह कहकर प्रातिमोक्ष–पाठ सुनते रहना चाहिये। उसके कारण प्रातिमोक्ष में विघ्न नहीं डालना चाहिये। (८५)

"यदि भिक्षुओ! किसी भिक्षु को प्रातिमोक्ष–पाठ के समय अपने किसी सन्दिग्ध अपराध का स्मरण हो आया। तब भिक्षुओ! उसे अपने पास बैठे भिक्षु से यह कहना चाहिये—'आयुष्मन्' मैं इस नाम के अपराध से ग्रस्त हूँ—ऐसा मुझे सन्देह हो रहा है। जब मेरा सन्देह निवृत्त हो जायगा तो मैं इस अपराध का प्रतीकार कर लूँगा।' ऐसा कहकर उपोसथ करते रहना तथा प्रातिमोक्ष का पाठ सुनते रहना चाहिये। उसके कारण उपोसथ में किसी प्रकार का विघ्न नहीं डालना चाहिये।" (८६)

२७. आधे–अधूरे दोष के प्रतीकार की विधि

४०. उस समय किसी आवास में उपोसथ के दिन समग्र सङ्घ आधी–अधूरी आपत्ति से ग्रस्त था। तब वहाँ उपस्थित भिक्षुओं को यह विचार हुआ—"भगवान का आदेश है कि आधी–अधूरी

आपत्तिं आपन्नो। कथं नु खो अम्हेहि पटिपज्जितब्बं'' ति? भगवतो एतमत्थं [R.127] आरोचेसुं।

''**इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सब्बो सङ्घो** [N.128] **सभागं आपत्तिं आपन्नो होति। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि एको भिक्खु सामन्तो आवासा सज्जुकं पाहेतब्बो—'गच्छावुसो, तं आपत्तिं पटिकरित्वा आगच्छ; मयं ते सन्तिके आपत्तिं पटिकरिस्सामा'** ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

''सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं सब्बो सङ्घो सभागं आपत्तिं आपन्नो। यदा अञ्ञं भिक्खुं सुद्धं अनापत्तिकं पस्सिस्सति, तदा तस्स सन्तिके तं आपत्तिं पटिकरिस्सती' ति वत्वा उपोसथो कातब्बो, पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं, न त्वेव तप्पच्चया उपोसथस्स अन्तरायो कातब्बो।

इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सब्बो सङ्घो सभागाय आपत्तिया वेमतिको होति। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

''सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं सब्बो सङ्घो सभागाय आपत्तिया वेमतिको। यदा निब्बेमतिको भविस्सति, तदा तं आपत्तिं पटिकरिस्सती'' ति वत्वा उपोसथो कातब्बो, पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं; न त्वेव तप्पच्चया उपोसथस्स अन्तरायो कातब्बो।

इध पन भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे वस्सूपगत्तो सङ्घो सभागं आपत्तिं [B.171] आपन्नो होति। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि एको भिक्खु सामन्ता आवासा सज्जुकं पाहेतब्बो—

आपत्ति की देशना नहीं करनी चाहिये, न स्वीकार ही करना चाहिये।' जबकि यह समग्र सङ्घ आधी-अधूरी आपत्ति से ग्रस्त है। अब हमें क्या करना चाहिये?'' भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा)—

''**भिक्षुओ! यदि किसी आवास में, उपोसथ के दिन, समग्र सङ्घ से सभाग दोष (आपत्ति) हुआ हो तो उन भिक्षुओं को अपने में से एक भिक्षु को तत्काल समीपवर्ती आवासों में यह कहकर भेजना चाहिये—'आयुष्मन्, जाओ! इस दोष का प्रतीकार कर आओ। फिर हम तुम्हारे पास दोष का प्रतीकार कर लेंगे।'** यदि ऐसा हो सके तो बहुत ठीक; यदि न हो सके तो कोई समर्थ एवं चतुर भिक्षु सङ्घ को सूचित करे—'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने—'इस समग्र सङ्घ से सभाग आपत्ति हुई है; सङ्घ जब दूसरे निर्दोष (शुद्ध) भिक्षु को देखेगा तो उसके पास उस आपत्ति का प्रतीकार करेगा।' यह कहकर उपोसथ करना चाहिये, प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। उसके कारण उपोसत को छोड़ना नहीं चाहिये।'' (८७)

''**यदि, भिक्षुओ! किसी आवास में उपोसथ के दिन समग्र सङ्घ को सभाग आपत्ति के होने में सन्देह हो गया हो तो चतुर एवं समर्थ भिक्षु सङ्घ को सूचित करे—'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। इस समग्र सङ्घ को सभाग आपत्ति के विषय में सन्देह है। जब वह सन्देहरहित होगा तो उस दोष का प्रतीकार करेगा।' यह कहकर उपोसथ करना चाहिये, प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। उसके कारण उपोसथ को छोड़ना नहीं चाहिये।''** (८८)

''**भिक्षुओ! किसी आवास में वर्षावास करते समय समग्र सङ्घ से सभाग आपत्ति होने का सन्देह हो गया हो तो उन भिक्षुओं को अपने में से किसी एक भिक्षु को यह कहकर समीपवर्ती**

'गच्छावुसो, तं आपत्तिं पटिकरित्वा आगच्छ; मयं ते सन्तिके तं आपत्तिं पटिकरिस्सामा' ति।

एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, एको भिक्खु सत्ताहकालिकं पाहेतब्बो—'गच्छावुसो, तं आपत्तिं पटिकरित्वा आगच्छ; मयं ते सन्तिके तं आपत्तिं पटिकरिस्सामा' ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे सब्बो सङ्घो सभागं आपत्तिं आपन्नो होति। सो न जानाति तस्सा आपत्तिया नामगोत्तं। तत्थ अञ्ञो भिक्खु आगच्छति बहुस्सुतो आगतागमो धम्मधरो विनयधरो मातिकाधरो पण्डितो ब्यत्तो मेधावी लज्जी कुक्कुच्चको सिक्खाकामो। तमेनं अञ्ञतरो भिक्खु येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं एतदवोच—"यो नु खो, आवुसो, एवं चेवं च करोति, किं नाम सो आपत्तिं आपज्जती" ति? सो एवं आह—"यो खो, आवुसो, एवं चेवं च करोति, इमं नाम सो आपत्तिं आपज्जति। इमं नाम त्वं, आवुसो, आपत्तिं आपन्नो; पटिकरोहि तं आपत्तिं" ति। सो एवं आह—"न [R.128] खो अहं, आवुसो, एको व इमं आपत्तिं आपन्नो; अयं सब्बो सङ्घो इमं आपत्तिं आपन्नो" ति। सो एवं आह—"किं ते, आवुसो, करिस्सति परो आपन्नो वा अनापन्नो वा। इङ्घ, त्वं, आवुसो, सकाय आपत्तिया वुट्ठाही" ति। अथ खो सो भिक्खु तस्स भिक्खुनो वचनेन तं आपत्तिं पटिकरित्वा येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एतदवोच—"यो किर, आवुसो, एवं चेवं च करोति, इमं नाम सो आपत्तिं आपज्जति। इमं [N.129] नाम तुम्हे, आवुसो, आपत्तिं आपन्ना; पटिकरोथ तं आपत्तिं" ति। अथ खो ते भिक्खू न इच्छिंसु तस्स भिक्खुनो वचनेन तं आपत्तिं पटिकातुं। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

"इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे सब्बो सङ्घो सभागं आपत्तिं आपन्नो होति। सो न जानाति तस्सा आपत्तिया नामगोत्तं। तत्थ अञ्ञो भिक्खु आगच्छति बहुस्सुतो [B.172] ....पे०....सिक्खाकामो। तमेनं अञ्ञतरो भिक्खु येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि,

---

आवास में तत्काल भेजना चाहिये–'जाओ, आयुष्मन्! तुम इस दोष का प्रतीकार करके चले आओ। फिर हम तुम्हारे सामने इस दोष का प्रतीकार कर लेंगे।'

यदि ऐसा हो जाय तो अच्छा है। यदि न हो तो किसी अन्य भिक्षु को सप्ताहपर्यन्त काल के लिये यह कहकर भेजना चाहिये–जाओ, आयुष्मन्! तुम इस दोष का प्रतीकार कर चले आओ। फिर हम तुम्हारे सामने इस आपत्ति का प्रतीकार कर लेंगे।'' (८९)

उस समय किसी आवास में समग्र सङ्घ सभाग आपत्तियुक्त हो गया था, वह उस आपत्ति के विषय में कुछ भी नहीं जानता था, यहाँ तक कि उसका नाम या गोत्र (कुल) तक नहीं जानता था। वहाँ कोई अन्य भिक्षु आया जो बहुश्रुत, आगमज्ञ, धर्मधर, विनयधर, मात्रिकाधर, पण्डित, चतुर, मेधावी, लज्जाशील, सङ्कोची, और धर्म के विषय में और अधिक सीखना चाहने वाला था। उसके पास एक भिक्षु गया। जाकर वह भिक्षु उस पण्डित से बोला–"आयुष्मन्! कोई भिक्षु यदि ऐसा ऐसा कर बैठे तो उसे किस आपत्ति से ग्रस्त माना जायगा?" उस पण्डित भिक्षु ने उत्तर दिया–'जो ऐसा ऐसा कर बैठे वह इस नाम की आपत्ति से ग्रस्त माना जायगा। आयुष्मन्! तुम इस नाम की आपत्ति से ग्रस्त हो, अतः इस आपत्ति का प्रतीकार करो।' तब वह भिक्षु बोला–'आयुष्मन्! मैं एकाकी ही इस दोष से

उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं एवं वदेति—'यो नु खो, आवुसो, एवं चेवं च करोति, किं नाम सो आपत्तिं आपज्जती' ति? सो एवं वदेति—'यो खो, आवुसो,एवं चेवं च करोति, इमं नाम सो आपत्तिं आपज्जति। इमं नाम त्वं, आवुसो, आपत्तिं आपन्नो; पटिकरोहि तं आपत्तिं'' ति। सो एवं वदेति—'न खो अहं, आवुसो, एको व इमं आपत्तिं आपन्नो। अयं सब्बो सङ्घो इमं आपत्तिं आपन्नो' ति। सो एवं वदेति—'किं ते, आवुसो, करिस्सति परो आपन्नो वा अनापन्नो वा। इङ्घ, त्वं आवुसो, सकाय आपत्तिया वुट्ठाही' ति। सो चे, भिक्खवे, भिक्खु तस्स भिक्खुनो वचनेन तं आपत्तिं पटिकरित्वा येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एवं वदेति—'यो किर, आवुसो, एवं चेवं च करोति.....पे०.....पटिकरोथ तं आपत्तिं' ति। ते चे, भिक्खवे, भिक्खू तस्स भिक्खुनो वचनेन तं आपत्तिं पटिकरेय्युं, इच्चेतं कुसलं। नो चे पटिकरेय्युं, न ते, भिक्खवे, भिक्खू तेन भिक्खुना अकामा वचनीया'' ति।

चोदनावत्थु (बारसम) भाणवारो निट्ठितो।।

२८. अनापत्तिपन्नरसकं

४१. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतिंसु चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानिंसु-'अत्थञ्ञे आवासिका [R.129] भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो उपोसथं अकंसु, पातिमोक्खं उद्दिसिंसु। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छिंसु बहुतरा। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

ग्रस्त नहीं हूँ, यहाँ का समग्र सङ्घ इससे ग्रस्त है।' पण्डित भिक्षु ने कहा—'आयुष्मन्! तुम्हें समग्र सङ्घ से क्या प्रयोजन? आयुष्मन्! तुम इस दोष से ग्रस्त हो, तुम तो इससे मुक्त हो जाओ।' तब वह भिक्षु उस पण्डित भिक्षु के कहने से अपने दोष का प्रतीकार कर जहाँ वे अन्य भिक्षु थे वहाँ गया, जाकर बोला—'आयुष्मानो! जो भिक्षु ऐसा ऐसा कर बैठता है वह इस नाम की आपत्ति से ग्रस्त होता है। आप लोग इस नाम की आपत्ति से युक्त हो अतः इसका प्रतीकार करो।' तब उन भिक्षुओं ने उस भिक्षु के कहने से उस आपत्ति का प्रतीकार नहीं करना चाहा। यह बात भगवान् के सामने रखी गयी। (भगवान् ने कहा—)

''यहाँ, भिक्षुओ किसी आवास में....पूर्ववत्....आप लोग इस आपत्ति से ग्रस्त हो, अतः इस का प्रतीकार करो। यदि वे भिक्षु उस भिक्षु के कहने से प्रतीकार कर लें तो ठीक हैं, अन्यथा उन भिक्षुओं को उस भिक्षु से अकाम (अनिच्छुक) नहीं रहना चाहिये।'' (९०)

चोदनावस्तु (द्वादश) भाणवार समाप्त।।

२८. अनापत्तिपञ्चदशक

४१. उस समय किसी आवास में बहुत से (चार या इनसे अधिक) भिक्षु उपोसथ के दिन एकत्र थे। वे नहीं जानते थे कि कुछ दूसरे भिक्षु अभी नहीं आये हैं। उन्होंने धर्मानुकूल एवं विनयानुकूल समझकर, सङ्घ का एक भाग होते हुए भी, अपने को समग्र सङ्घ समझ कर उपोसथ करते हुए प्रातिमोक्ष का पाठ प्रारम्भ कर दिया। प्रातिमोक्ष का पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु भी आ पहुँचे, जो सङ्ख्या में उनसे अधिक थे। भगवान् के सम्मुख यह बात रखी गयी कि ऐसे समय में क्या किया जाय? (भगवान् ने कहा—)

(१) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका [B.173] भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। उद्देसकानं अनापत्ति।

(२) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो उपोसथं करोन्ति, [N.130] पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, अवसेसं सोतब्बं। उद्देसकानं अनापत्ति।

(३) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, अवसेसं सोतब्बं। उद्देसकानं अनापत्ति।

(४) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। उद्देसकानं अनापत्ति।

(५) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। उद्दिट्ठं [B.174] सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं अनापत्ति।

---

(१) यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास में उपोसथ के दिन ...पूर्ववत्... उनके द्वारा प्रातिमोक्ष-पाठ प्रारम्भ कर देने के बाद, दूसरे भिक्षु, जो उनसे सङ्ख्या में अधिक हों, वहाँ आ पहुँचें तो सबको प्रातिमोक्ष पाठ पुनः प्रारम्भ करना चाहिये। पुन पाठ प्रारम्भ करने वालों को कोई दोष नहीं लगता।

(२) यहाँ भिक्षुओ! किसी आवास में पूर्ववत् भिक्षु आ पहुँचें जो सङ्ख्या में आश्रमवासियों के समान हों, तो जितना पाठ हो चुका हो, वह धर्मानुकूल हुआ। अवशिष्ट पाठ आने वालों को सुनना चाहिये। पाठ करने वालों को कोई दोष नहीं लगता।

(३) यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास में पूर्ववत् भिक्षु आ पहुँचें, जो आश्रमवासियों से सङ्ख्या में कम हों तो जितना पाठ हो चुका वह धर्मानुकूल है, अवशिष्ट पाठ आने वालों को सुनना चाहिये।....।

(४) यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास मे उपोसथ के दिन.. पूर्ववत्....। उनके प्रातिमोक्ष-पाठ पूर्ण करने के बाद यदि कुछ अन्य भिक्षु आ जाँय जो विहारवासी भिक्षुओं से सङ्ख्या में अधिक हों तो पाठ पुनः प्रारम्भ करना चाहिये।....।

(५) यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास मे पूर्ववत् ...उनके प्रातिमोक्ष-पाठ पूर्ण करते करते यदि

(६) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं अनापत्ति।

(७) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, अवुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। उद्देसकानं अनापत्ति।

(८) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति....पे०.....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, अवुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू [R.130] आगच्छन्ति समसमा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं अनापत्ति।

(९) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति.....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, अवुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका [N.131, B.175] भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं अनापत्ति।

(१०) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। उद्देसकानं अनापत्ति।

कुछ भिक्षु और आ जाँय जो सङ्ख्या में विहारवासी भिक्षुओं के बराबर हों (समसमा) तो जितना पाठ किया जा चुका वह धर्मानुकूल है,अविशिष्टो को अपनी शुद्धि बतलानी चाहिये।

(६) यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास में.. पूर्ववत् ..उनके प्रातिमोक्ष-पाठ पूर्ण करते करते यदि अन्य भिक्षु आ जाँय तो सङ्ख्या में कम हों तो ...पूर्ववत्....(पैरा सं. ५ के समान)।....

(७) यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवासे में .पूर्ववत्. . .उनके प्रातिमोक्ष-पाठ पूर्ण करते-करते, जबकि परिषद् उठी नहीं थी, यदि अन्य भिक्षु जो उनसे अधिक हों, आ जाँय तो उन पहले के भिक्षुओं पुनः प्रारम्भ से प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये।....।

(८) यहाँ, भिक्षुओ. पूर्ववत् ....जो उनके बराबर हों तो जितना पाठ हो चुका वह धर्मानुकूल है, अवशिष्ट पाठ आगन्तुकों को सुनना चाहिये।

(९) यहाँ भिक्षुओ! किसी आवास में.. .पूर्ववत् जो आश्रमवासियों से सङ्ख्या में कम हों तो, जो पाठ हो चुका वह धर्मानुकूल हुआ। अब आगन्तुकों को अपनी परिशुद्धि देनी चाहिये।... ।

(१०) यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास मे पूर्ववत् प्रातिमोक्ष का पाठ अभी पूर्ण ही हुआ हो,

(११) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं अनापत्ति।

(१२) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं अनापत्ति।

(१३) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति...पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। उद्देसकानं अनापत्ति।

[B.176] (१४) इध पन, भिक्खवे अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं अनापत्ति॥

(१५) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। उद्दिट्ठं, सुउद्दिट्ठं तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं अनापत्ति।

अनापत्तिपन्नरसकं निट्ठितं॥

परन्तु परिषद् का कुछ भाग ही उठा हो इसी समय कुछ नये भिक्षु आ जाँय जो सङ्ख्या में अधिक हो तो पाठ पुनः प्रारम्भ करना चाहिये।....।

(११) यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास में....पूर्ववत्.....इसी समय कुछ नये भिक्षु आ जाँय जो सङ्ख्या में आश्रमवासियों के समान हों तो जितना पाठ हो चुका वह धर्मानुकूल हुआ, आगन्तुकों को परिशुद्धि देनी चाहिये।....।

(१२) यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास में....पूर्ववत्...जो सङ्ख्या में कम हो तो जो पाठ हो चुका वह धर्मानुकूल हुआ। आगन्तुकों को परिशुद्धि ही देनी चाहिये।

(१३) यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास में,... पूर्ववत् ...सभी पाठ पूर्ण हो चुका हो परिषद् उठ चुकी हो इसी समय दूसरे भिक्षु आ पहुँचे तो समग्र सङ्घ को पुनः प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये।....

१४. यहाँ भिक्षुओ! किसी आवास में....पूर्ववत्.. परिषद् के उठ जाने पर कुछ अन्य भिक्षु आ जाँय जो सङ्ख्या में बराबर के हों तो जो पाठ हो चुका वह धर्मानुकूल हुआ। आगन्तुको को अपनी परिशुद्धि देनी चाहिये।...।

(१५) यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास मे. पूर्ववत् ..जो सङ्ख्या में कम हों तो जो पाठ हो चुका

२९. वग्गावग्गसञ्ञिपन्नरसकं

४२. (१) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला [N.132] आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा वग्गसञ्ञिनो उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। उद्देसकानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(२) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। [B.177] उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, अवसेसं सोतब्बं। उद्देसकानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(३) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, अवसेसं सोतब्बं। उद्देसकानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(४-१५) इध पन, भिक्खवे अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू

वह धर्मानुकूल माना जाय। आने वालों को अपनी परिशुद्धि देनी चाहिये। पाठ करने वाले भिक्षुओं का कोई दोष नहीं।

अनापत्तिपञ्चदशक समाप्त।।

२९. वर्गावर्गसंज्ञक पञ्चदशक

४२ (१) ''यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास में बहुत से—चार से अधिक—आवासवासी भिक्षु उपोसथ के दिन एकत्र हों। और वे जानें कि कुछ आवासवासी भिक्षु नहीं आये। वे इसे धर्मानुकूल एवं विनयानुकूल समझते हुए वर्ग (सङ्घ का एक भाग) होते हुए भी अपने को समग्र (सङ्घ) समझकर उपोसथ करें, प्रातिमोक्ष का पाठ करें तथा उनके प्रातिमोक्षपाठ करते हुए ही दूसरे आवासवासी भिक्षु भी आ जाँय, जो सङ्ख्या मे उनसे अधिक हों, तो, भिक्षुओ! उन भिक्षुओं को पुनः प्रातिमोक्ष-पाठ आरम्भ करना चाहिये। और पहले पाठ प्रारम्भ करने वालों को 'दुष्कृत' दोष होगा।

(२) यदि, भिक्षुओ! किसी आवास में बहुत से—चार या उससे अधिक—....पूर्ववत् ..जो सङ्ख्या में उनके समान हों, तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक ही हुआ, अवशिष्ट को वे सुनें। पाठ प्रारम्भ करने वालों को 'दुष्कृत' दोष लगता है।

(३) यदि भिक्षुओ! ..यदि वे जाने कि ....उनके पाठ करते समय दूसरे आवासवासी भिक्षु भी आ जाँय जो सङ्ख्या में उनसे कम हो, तो जो पाठ हो गया वह ठीक. ..पूर्ववत् ...।

(४) भिक्षुओ! यदि.. उनके पाठ पूर्ण कर चुकने के बाद दूसरे....भिक्षु भी आ जाँय, जो सङ्ख्या में उनसे अधिक हों, तो भिक्षुओ! पाठ प्रारम्भ करने वाले भिक्षुओं को पुनः पाठ प्रारम्भ करना चाहिये।...दुष्कृत दोष है।

(५) ....जो सङ्ख्या में समान हों....पूर्ववत्....।

अनागता ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा वग्गसञ्ञिनो उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे...पे०....अवुट्ठिताय परिसाय... पे०....एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय....पे०....सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय अथञ्ञे आवासिका [R.131] भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा... पे०....समसमा....पे०....थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं आपपत्ति दुक्कटस्स॥

वग्गावग्गसञ्ञिपन्नरसकं निट्ठितं॥

३०. वेमतिकपन्नरसकं

४३. (१) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता ति। ते, कप्पति नु खो अम्हाकं उपोसथो कातुं न नु खो कप्पती ति, वेमतिका उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। उद्देसकानं आपत्ति दुक्कटस्स।

[N.133, B.178] (२) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं

---

(६) .... जो सङ्ख्या में कम हों....पूर्ववत्....।

(७) ....प्रातिमोक्षपाठ कर चुकने पर, परन्तु परिषद् के न उठने पर.....। सङ्ख्या में अधिक हों....पूर्ववत्....।

(८) ....सङ्ख्या में समान हों....पूर्ववत्.....।

(९) ....सङ्ख्या में कम हों....पुर्ववत्....।

(१०) ....परिषद् के कुछ भाग के उठ जाने पर....सङ्ख्या में अधिक हो....पूर्ववत्....।

(११) .....संङ्ख्या में बराबर हों....पूर्ववत्.....।

(१२) .... सङ्ख्या में कम हों....पूर्ववत्....।

(१३) ....समग्र परिषद् के उठ जाने पर....जो सङ्ख्या में अधिक हों....पूर्ववत्....।

(१४) .....जो सङ्ख्या में समान हों....पूर्ववत्....।

(१५) ......जो सङ्ख्या में कम हों तो जो पाठ हो चुका वह हो चुका। आने वाले भिक्षुओं को अपनी शुद्धि बतानी चाहिये। पहले पाठ प्रारम्भ करने वाले 'दुष्कृत' दोष के भागी होंगे।''

वर्गावर्गसञ्ज्ञकपञ्चदशक समाप्त।।

३०. वैमतिक (सन्देहयुक्त) पञ्चदशक

४३. (१) ''यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास में उपोसथ के दिन बहुत से भिक्षु एकत्र थे–चार या इससे अधिक। वे जानते थे कि दूसरे भिक्षु भी इस उपोसथ में सम्मिलित होने वाले हैं जो अभी नहीं आये हैं। वे–'हम लोगों का ऐसी अवस्था में उपोसथ करना चाहिये कि नहीं?'–इस सन्देहास्पद अवस्था में उपोसथ–प्रक्रिया में प्रातिमोक्ष–पाठ प्रारम्भ कर देते थे, पाठ प्रारम्भ किये जाने के बाद अन्य भिक्षु भी आ जाते हैं जो कि विहारवासियों से अधिक हों तो ऐसी अवस्था में उन भिक्षुओं को पाठ पुनः प्रारम्भ करना चाहिये। पहले प्रारम्भ करने वालों को दुष्कृत दोष लगेगा।

उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, अवसेसं सोतब्बं। उद्देसकानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(३) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, अवसेसं सोतब्बं। उद्देसकानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(४-१५) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति-'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते, कप्पति नु खो अम्हाकं उपोसथो कातुं ननु खो कप्पती ति, वेमतिका उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे,....पे०....अवुट्ठिताय परिसाय....पे०....एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय....पे०....सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा....पे०...सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा....पे०....समसमा....पे०....थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं आपत्ति दुक्कटस्स॥

वेमतिकपन्नरसकं निट्ठितं॥

---

(२) यहाँ भिक्षुओ! किसी आवास में....पूर्ववत्....जो कि विहारवासियों के समानसङ्ख्यक हों, तो जो पाठ हो गया वह धर्मानुकूल ही हुआ, अवशिष्ट पाठ सुनना चाहिये।....।

(३) ....सङ्ख्या में कम हों, तो जो पाठ हो गया वह धर्मानुकूल ही हुआ, अवशिष्ट पाठ सुनना चाहिये।.....

(४) यदि....प्रातिमोक्ष–पाठ कर चुकने पर अन्य भिक्षु आवें जो सङ्ख्या में उनसे अधिक हों तो....फिर से पाठ प्रारम्भ करना चाहिये।....।

(५) यदि....सङ्ख्या में समान हों, तो जितना पाठ हो चुका वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतानी चाहिये। पाठ करने वालों को 'दुष्कृत' दोष होगा।

(६) यदि....सङ्ख्या में कम हों तो....शुद्धि बतानी चाहिये।....।

(७) यदि.....प्रातिमोक्ष का पाठ कर चुकने पर, परन्तु परिषद् के न उठने पर कुछ अन्य भिक्षु आ जाँय जो सङ्ख्या में अधिक हों तो पुनः प्रातिमोक्ष पाठ प्रारम्भ करना चाहिये।....।

(८) यदि....पूर्ववत्.....सङ्ख्या में समान हों तो जितना पाठ हो गया वह धर्मानुकूल हुआ, अवशिष्ट ही उन्हें सुनना चाहिये।....।

(९) यदि ..पूर्ववत्.. ..सङ्ख्या में कम हो तो जितना पाठ हो चुका वह धर्मानुकूल हुआ, आने वालों को अपनी शुद्धि ज्ञापित करनी चाहिये।....।

(१०) यदि....प्रातिमोक्ष का पाठ कर चुकने पर, परन्तु परिषद् का कुछ भाग उठ चुका हो, इसी बीच नये भिक्षु आ जाँय जो सङ्ख्या में अधिक हो तो उन भिक्षुओं को पुनः प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये।.....।

(११) यदि....जो सङ्ख्या में समान हों तो जो पाठ हो गया वह ठीक हुआ, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये।....।

(१२) यदि....सङ्ख्या में कम हों....शुद्धि बतलानी चाहिये।....

३१. कुक्कुच्चपकतपन्नरसकं

४४. (१) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू [B.179] अनागता ति। ते— 'कप्पतेव अम्हाकं उपोसथो कातुं नाम्हाकं न कप्पती' ति कुक्कुच्चपकता उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। उद्देसकानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(२) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता ति। ते— 'कप्पतेव अम्हाकं उपोसथो कातुं नाम्हाकं न कप्पती' ति, कुक्कुच्चपकता उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, अवसेसं सोतब्बं। उद्देसकानं आपत्ति दुक्कटस्स।

[N.134] (३) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति....पे०....पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, अवसेसं सोतब्बं। उद्देसकानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(४-१५) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता ति। ते— 'कप्पतेव अम्हाकं उपोसथो कातुं नाम्हाकं न कप्पती' ति,

---

(१३–१५) यदि....प्रातिमोक्षपाठ पूर्ण हो चुका हो तथा परिषद् भी उठ चुकी हो....सङ्ख्या में अधिक हों....पूर्ववत्.....सङ्ख्या में समान हों....सङ्ख्या में कम हों तो जो पाठ हुआ, धर्मानुकूल हुआ। उनके सम्मुख परिशुद्धि ही देनी चाहिये। पाठ करने वालों को 'दुष्कृत' दोष होगा।

वैमतिकपञ्चदशक समाप्त।।

३१. सङ्कोच के साथ कृत पञ्चदशक

४४. (१) यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास में, उपोसथ के दिन बहुत से भिक्षु (उस आवास में) रहते हों–चार या चार से अधिक। वे जानते हों कि कुछ इस आवास के रहने वाले भिक्षु और भी है जो अभी आये नहीं है। वे, 'ऐसी स्थिति में हमारा उपोसथ प्रारम्भ करना उचित है या नहीं?'–इस सङ्कोच के साथ उपोसथ प्रारम्भ कर प्रातिमोक्षपाठ करते हैं। उनके द्वारा पाठ प्रारम्भ किये जाने पर बाहर गये कुछ दूसरे भिक्षु भी आ जायँ, जो कि सङ्ख्या में उनसे अधिक हों। ऐसी स्थिति में उन पाठ करने वाले भिक्षुओं को पुनः पाठ प्रारम्भ करना चाहिये। पहले पाठ प्रारम्भ करने वालों को 'दुष्कृत' दोष लगेगा।

(२) यहाँ, भिक्षुओ!.....पूर्ववत्.....जो सङ्ख्या में पाठ प्रारम्भ करने वाले के समान हों। ऐसी स्थिति में जो पाठ हो चुका वह धर्मानुकूल हुआ, अवशिष्ट पाठ आगन्तुकों को सुनना चाहिये। ....।

(३) यहाँ, भिक्षुओ!....पूर्ववत्....जो सङ्ख्या में पाठ प्रारम्भ करने वालों के समान हों। ऐसी स्थिति में जो पाठ हो चुका वह धर्मानुकूल हुआ, अवशिष्ट पाठ आगन्तुकों को सुनना चाहिये।....।

कुक्कुच्चपकता उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे,.... पे०....अवुट्ठिताय परिसाय....पे०....एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय....पे०....सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा....पे०.... समसमा....पे०..... थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं आपत्ति दुक्कटस्स॥

कुक्कुच्चपकतपन्नरसकं निट्ठितं॥

३२. भेदपुरेक्खारपन्नरसकं

४५. (१) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला [B.180] आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। [R.132] उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(२) इध पन, भिक्खवे , अञ्ञतरस्मिं आवासे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति-'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता'

---

(३) यहाँ, भिक्षुओ!....पूर्ववत्....जो सङ्ख्या में. .कम हों....।

(४-६) यहाँ, भिक्षुओ!....पूर्ववत्....पाठ के पूर्ण होने पर सङ्ख्या में अधिक....।....सङ्ख्या में बराबर....। ....सङ्ख्या में कम भिक्षु आ जाँय....।

(७-९) यहाँ, भिक्षुओ!. .पूर्ववत्... पाठ के पूर्ण होने पर परन्तु परिषद् के न उठने पर . .सङ्ख्या में अधिक भिक्षु....पूर्ववत्....सङ्ख्या मे समान भिक्षु ...पूर्ववत्....सङ्ख्या में कम भिक्षु.. .पूर्ववत् . ।

(१०-१२) यहाँ, भिक्षुओ!.. पूर्ववत्.. .पाठ पूर्ण होने पर परन्तु परिषद् के कुछ ही भाग के उठने पर तथा बाकी भाग के बैठे रहने पर सङ्ख्या में अधिक. ..पूर्ववत्.. सङ्ख्या में समान... पूर्ववत् ...सङ्ख्या में कम भिक्षु. ...पूर्ववत्....।

(१३-१५) यहाँ, भिक्षुओ!.. पूर्ववत्....पाठ पूर्ण होने तथा परिषद् के उठ जाने पर सङ्ख्या में अधिक भिक्षु आ जाँय. पूर्ववत् . सङ्ख्या में समान. ..पूर्ववत्.... .सङ्ख्या में कम भिक्षु आ जाँय तो जो पाठ हो चुका वह धर्मानुकूल हुआ, अवशिष्ट भिक्षुओं को परिशुद्धि देनी चाहिये। पहले पाठ करने वालों को 'दुष्कृत' दोष लगेगा।

कौकृत्यपञ्चदशक समाप्त॥

३२. भेद (कटूक्ति) पुरस्कृत पञ्चदशक

४५. (१) यहाँ भिक्षुओ! किसी आवास में बहुत से—चार या इनसे अधिक, भिक्षु रहते हों, वे जानते हों कि 'अभी इसी विहार के रहने वाले कुछ और भी भिक्षु आने वाले हैं' तो (वे ऐसा जानते हुए भी उनके विषय में) ''वे नष्ट हो जाँय, विनष्ट हो जाँय, हमको उनसे क्या प्रयोजन!'—ऐसे कटुवचन बोलते हुए उपोसथ करें, प्रातिमोक्ष-पाठ प्रारम्भ करें, यो उनके पाठ करते समय, बीच मे ही, अन्य आश्रमवासी भी आ जाँय जो उनसे सङ्ख्या में अधिक हों तो, भिक्षुओ! उन भिक्षुओं को पुनः पाठ प्रारम्भ करना चाहिये। पहले पाठ प्रारम्भ करने वालो को 'स्थूलात्यय' (बडा अपराध) का दोष लगता है।

(२) यहाँ, भिक्षुओ! . पूर्ववत्. जो सङ्ख्या में समान हो तो जो पाठ हो चुका वह धर्मानुकूल हुआ, अवशिष्ट पाठ आगन्तुकों को सुनना चाहिये।....।

ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, अवसेसं सोतब्बं। उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(३) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, अवसेसं सोतब्बं। उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(४) इध पन, भिक्खवे अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

[B.181] (५) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति....पे०....भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(६) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(७) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति भेदपुरेक्खारा उपोसथं

---

(३) यहाँ, भिक्षुओ!....पूर्ववत्...जो सङ्ख्या में कम हों...पूर्ववत्.....।

(४) यहाँ, भिक्षुओ!.....पूर्ववत्....पाठ पूर्ण हो चुका हो, तब अन्य भिक्षु आ जाँय जो सङ्ख्या में अधिक हों तो....पूर्ववत्....।

(५) यहाँ भिक्षुओ! पूर्ववत्....अन्य भिक्षु आ जाँय जो सङ्ख्या में समान हों ..पूर्ववत्....।

(६) यहाँ भिक्षुओ!...पूर्ववत्....सङ्ख्या मे कम हों तो ...परिशुद्धि बतानी चाहिये।..।

(७-८-९) यहाँ, भिक्षुओ!. पाठ पूर्ण हो चुका हो, परन्तु परिषद् उठी न हो, इसी समय

करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, अवुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(८) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, अवुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(९) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला [B.182] आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति-'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति भेद-[N.136] पुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, अवुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(१०) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(११) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(१२) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू

अन्य भिक्षु आ जाँय जो सङ्ख्या में अधिक हो...पूर्ववत्...जो सङ्ख्या मे समान हों....पूर्ववत्.....जो सङ्ख्या में कम हों....पूर्ववत्.....शुद्धि बतलानी चाहिये।....।

(१०–११–१२) यहाँ, भिक्षुओ!...पाठ पूर्ण हो चुका हो परन्तु परिषद् का कुछ भाग ही उठा हो अधिक भाग बैठा हो और इसी समय अन्य भिक्षु आ जाँय जो सङ्ख्या में अधिक हों....पूर्ववत्....।

अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय, [B.183] अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(१३) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(१४) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति भेदपुरेक्खारा उपोसथं [N.137] करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(१५) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिसन्ति। तेहि उद्दिट्ठमत्ते पातिमोक्खे, सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। उद्दिट्ठं सुउद्दिट्ठं, तेसं सन्तिके पारिसुद्धि आरोचेतब्बा। उद्देसकानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स॥

भेदपुरेक्खारपन्नरसकं निट्ठितं॥

पञ्चवीसतिका निट्ठिता॥

३३. सीमोक्कन्तिकपेय्यालं

[B.184] ४६. इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपोसथे सम्बहुला आवासिका

(१३–१४–१५) हाँ, भिक्षुओ! ...पाठ पूर्ण हो चुकने पर तथा परिषद् के उठ जाने के बाद यदि अन्य भिक्षु आ जाँय जो सङ्ख्या में अधिक हों ..पूर्ववत्....जो सङ्ख्या में समान हों....पूर्ववत् ...जो सङ्ख्या मे कम हों तो जो पाठ हो चुका वह धर्मानुकूल हुआ, अवशिष्ट को अपनी परिशुद्धि बतानी चाहिये। पाठ प्रारम्भ करने वालों को स्थूलात्यय दोष लगता है।

भेदपुरस्कृत पञ्चदशक समाप्त॥

पञ्चविंशतिका समाप्त॥

३३. सीमावक्रान्तिकपेय्याल

४६. यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास में उपोसथ के दिन बहुत से विहारवासी भिक्षु एकत्र हो

भिक्खू सन्निपतन्ति चत्तारो वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अञ्ञे आवासिका भिक्खू अन्तोसीमं ओक्कमन्ती' ति.....पे०.....ते न जानन्ति—'अञ्ञे आवासिका भिक्खू अन्तोसीमं ओक्कन्ता' ति....पे०.....ते न पस्सन्ति—'अञ्ञे आवासिके भिक्खू अन्तोसीमं ओक्कमन्ते.... पे०.... ते न पस्सन्ति-अञ्ञे आवासिका भिक्खू अन्तोसीमं ओक्कमन्ती' ति....पे०....'ते न सुणन्ति अञ्ञे आवासिका भिक्खू अन्तोसीमं ओक्कन्ता' ति....पे०.... ।

[आवासिकेन आवासिका एकसतपञ्चसत्तति तिकनयतो, आवासिकेन आगन्तुका, आगन्तुकेन आवासिका, आगन्तुकेन आगन्तुका पेय्यालमुखेन सत्ततिकसतानि होन्ति।]

४७. इध पन, भिक्खवे, आवासिकानं भिक्खूनं चातुद्दसो होति, आगन्तुकानं पन्नरसो। सचे आवासिका बहुतरा होन्ति, आगन्तुकेहि आवासिकानं अनुवत्तितब्बं। सचे समसमा होन्ति, आगन्तुकेहि आवासिकानं अनुवत्तितब्बं। सचे आगन्तुका बहुतरा होन्ति, आवासिकेहि आगन्तुकानं अनुवत्तितब्बं।

इध पन, भिक्खवे, आवासिकानं भिक्खूनं पन्नरसो होति, आगन्तुकानं चातुद्दसो। सचे आवासिका बहुतरा होन्ति, आगन्तुकेहि आवासिकानं अनुवत्तितब्बं। सचे समसमा होन्ति, अगन्तुकेहि आवासिकानं अनुवत्तितब्बं। सचे आगन्तुका बहुतरा होन्ति, आवासिकेहि आगन्तुकानं अनुवत्तितब्बं।

सङ्ख्या में चार या उससे अधिक। वे नहीं जानते—'अन्य भिक्षु भी इस आवास की सीमा में आ रहे हैं', ...पूर्ववत्....अन्य भिक्षु भी इस आवास की सीमा में आ गये हैं....पूर्ववत्..... वे नहीं देखते—'अन्य भिक्षु भी इस सीमा में आ रहे हैं'....पूर्ववत्....'अन्य भिक्षु भी इस सीमा में आ गये हैं....पूर्ववत्....वे नहीं सुनते—'अन्य भिक्षु भी इस सीमा में आ रहे है....पूर्ववत्....'अन्य भिक्षु भी इस सीमा में आ गये हैं'....पूर्ववत्....।

[इस सीमा–पञ्चविंशतित्रिक को भी पहले (आवासपञ्चविंशतित्रिक) की तरह– १.'प्रातिमोक्ष–पाठ करते समय', २.'प्रातिमोक्ष–पाठ पूर्ण हो चुकने पर', ३.'प्रातिमोक्षपाठ पूर्ण हो जाने पर भी परिषद् के न उठने से पहले', ४.'प्रातिमोक्षपाठ पूर्ण हो जाने पर, परिषद् के कुछ भाग के उठ जाने के बाद', एवं ५.'प्रातिमोक्षपाठ पूर्ण हो जाने पर तथा परिषद् के भी उठ जाने पर'—इन पाँचों को १. 'न जानने', २.'जानने', ३.'सन्देहयुक्त', ४.'सङ्कोचयुक्त' एव ५.'कटुवचनपूर्वक' के साथ पढ़ने पर पच्चीस भेद हो जाँयगें।]

[यों आवासिक (आश्रमवासी) द्वारा आश्रमवासी की उपेक्षा के त्रिकों से १७५, आवासिक द्वारा आगन्तुक की उपेक्षा, आगन्तुक द्वारा आवासिक की उपेक्षा तथा आगन्तुक द्वारा आगन्तुक की उपेक्षा द्वारा पेय्याल (पूर्ववत्) के सहारे से ७०० त्रिकों की गणना हो जायगी।]

४७. यहाँ, भिक्षुओ! (कभी यह समस्या भी उपस्थित हो सकती है कि आश्रमवासी भिक्षुओं का उपोसथ चतुर्दशी का हो और आगन्तुको का पूर्णिमा का, तो (ऐसी स्थिति में) आश्रमवासी यदि सङ्ख्या में अधिक हों तो आगन्तुओं का उनको अनुसरण करना चाहिये। तथा यदि आगन्तुक ही सङ्ख्या में अधिक हों तो आश्रमवासियो को उनका अनुसरण करना चाहिये।

और यदि, भिक्षुओ! आवासिकों की दृष्टि में पूर्णिमा हो तथा आगन्तुकों की दृष्टि मे चतुर्दशी; इस स्थिति मे यदि आवासिकों की सङ्ख्या अधिक हो या बराबर हो तो आगन्तुकों को आवासिकों का अनुवर्तन (अनुसरण) करना चाहिये। और यदि आगन्तुक सङ्ख्या में अधिक हों तो आवासिकों को उनका अनुवर्तन करना चाहिये।

इध पन, भिक्खवे, आवासिकानं भिक्खूनं पाटिपदो होति, आगन्तुकानं पन्नरसो। [N.138] सचे आवासिका बहुतरा होन्ति, आवासिकेहि आगन्तुकानं नाकामा दातब्बा सामग्गी। आगन्तुकेहि निस्सीमं गन्त्वा उपोसथो कातब्बो। सचे समसमा होन्ति, आवासिकेहि [B.185] आगन्तुकानं नाकामा दातब्बा सामग्गी। आगन्तुकेहि निस्सीमं गन्त्वा उपोसथो कातब्बो। सचे आगन्तुका बहुतरा होन्ति, आवासिकेहि आगन्तुकानं सामग्गी वा दातब्बा निस्सीमं वा गन्तब्बं।

[R.133] इध पन, भिक्खवे, आवासिकानं भिक्खूनं पन्नरसो होति, आगन्तुकानं पटिपदो। सचे आवासिका बहुतरा होन्ति, आगन्तुकेहि आवासिकानं सामग्गी वा दातब्बा निस्सीमं वा गन्तब्बं। सचे समसमा होन्ति, आगन्तुकेहि आवासिकानं सामग्गी वा दातब्बा निस्सीमं वा गन्तब्बं। सचे आगन्तुका बहुतरा होन्ति, आगन्तुकेहि आवासिकानं नाकामा दातब्बा सामग्गी। आवासिकेहि निस्सीमं गन्त्वा उपोसथो कातब्बो।

३४. लिङ्गादिदस्सनं

४८. (१) इध पन, भिक्खवे, आगन्तुका भिक्खू पस्सन्ति आवासिकानं भिक्खूनं आवासिकाकारं, आवासिकलिङ्गं, आवासिकनिमित्तं, आवासिकुद्देसं, सुपञ्ञत्तं मञ्चपीठं, भिसिबिम्बोहनं, पानीयं परिभोजनीयं सुपट्ठितं, परिवेणं सुसम्मट्ठं; पस्सित्वा वेमतिका होति— "अत्थि नु खो आवासिका भिक्खू नत्थि नु खो" ति। ते वेमतिका न विचिनन्ति; अविचिनित्वा उपोसथं करोन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिनन्ति; विचिनित्वा पस्सन्ति; परिसत्वा एकतो उपोसथं करोन्ति। अनापत्ति। ते वेमतिका विचिननन्ति; विचिनित्वा पस्सन्ति; पस्सित्वा

इसी तरह यदि आवासिक उस दिन प्रतिपद् मान बैठे हों तथा आगन्तुक पूर्णिमा मान रहे हों तो ऐसी स्थिति में यदि आवासिकों की सङ्ख्या अधिक हो तो आवासिको को विना इच्छा के अपने को देकर नवागन्तुको के सङ्घ की पूर्णता नहीं करनी चाहिये', अपितु नवागन्तुकों को सीमा से बाहर जाकर उपोसथ करना चाहिये। यदि समानसङ्ख्याक हो तो भी उन्हे नवागन्तुकों के सङ्घ की पूर्णता नही करनी चाहिये। हाँ, यदि सङ्ख्या में नवागन्तुक अधिक हो तो आवासिकों को आगन्तुकों के सङ्घ की पूर्णता कर देनी या सीमा से बाहर चले जाना चाहिये।

जब, भिक्षुओ! आवासिक भिक्षु उपोसथ की पूर्णिमा मान रहे हों और नवागन्तुक प्रतिपद्, तो सङ्ख्या में आवासिक भिक्षु अधिक हों तो नवागन्तुको को आवासिकों के सङ्घ की पूर्णता करनी चाहिये, या सीमा से बाहर जाना चाहिये। यदि सङ्ख्या मे समान हो तो भी नवागन्तुकों को ही आवासिकों के सङ्घ की पूर्णता करनी चाहिये। या सीमा से बाहर जाना चाहिये। यदि सङ्ख्या में नवागन्तुक अधिक हों तो उन्हें, विना इच्छा के, आवासिकों के सङ्घ की पूर्णता नही करनी चाहिये; अपितु आवासिकों को सीमा के बाहर जाकर उपोसथ करना चाहिये।

३४. लिङ्गादिदर्शन

४८ (१) "यहाँ, भिक्षुओ! जब आगन्तुक भिक्षु आवासिक भिक्षुओ के आकार, लिङ्ग,निमित्त, उद्देश (स्वाध्याय), भलीभाँति बिछे मञ्चपीठ (चौकी), तकिया-बिछौना, पीने-धोने का जल, तथा स्वच्छ आँगन देखें। देखकर सन्देह मे पड़े—क्या यहाँ आश्रमवासी भिक्षु है भी या नहीं? (क) सन्देह में पड़कर भी वे खोज न करे और विना खोजे ही, उपोसथ प्रारम्भ करे तो दुष्कृत दोष है। (ख) यदि

पाटेक्कं उपोसथं करोन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिनन्ति; विचिनित्वा पस्सन्ति; पस्सित्वा—''नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो'' ति—भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति। आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(२) इध पन, भिक्खवे, आगन्तुका भिक्खू सुणन्ति आवासिकानं भिक्खूनं आवासिकाकारं, आवासिकलिङ्गं, आवासिकनिमित्तं, आवासिकुद्देसं, चङ्कमन्तानं पदसद्दं, सज्झायसद्दं, उक्कासितसद्दं, खिपितसद्दं; सुत्वा वेमतिका होन्ति—'अत्थि नु खो आवासिका भिक्खू, नत्थि नु खो' ति। ते वेमतिका न विचिनन्ति; अविचिनित्वा उपोसथं करोन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिनन्ति; विचिनित्वा न पस्सन्ति; अपस्सित्वा उपोसथं करोन्ति। अनापत्ति। ते वेमतिका विचिनन्ति; विचिनित्वा पस्सन्ति; पस्सित्वा एकतो [B.186] उपोसथं करोति। अनापत्ति। ते वेमतिका विचिनन्ति; विचिनित्वा पस्सन्ति; पस्सित्वा पाटक्कं उपोसथं करोन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिनन्ति; विचिनित्वा पस्सन्ति; पस्सित्वा—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति। आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(३) इध पन, भिक्खवे, आवासिका भिक्खू पस्सन्ति आगन्तुकानं भिक्खूनं आगन्तुकाकारं, आगन्तुकलिङ्गं, आगन्तुकनिमित्तं, आगन्तुकुद्देसं, अञ्ञातकं पत्तं अञ्ञातकं [N.139] चीवरं, अञ्ञातकं निसीदनं, पादानं धोतं, उदकनिस्सेकं; पस्सित्वा वेमतिका होन्ति—'अत्थि नु खो आगन्तुका भिक्खू नत्थि नु खो' ति। ते वेमतिका न विचिनन्ति; अविचिनित्वा उपोसथं करोन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिनन्ति; विचिनित्वा न पस्सन्ति; अपस्सित्वा उपोसथं करोन्ति। अनापत्ति। ते वेमतिका विचिनन्ति; विचिनित्वा पस्सन्ति; पस्सित्वा एकतो उपोसथं करोन्ति। अनापत्ति। ते वेमतिका....पूर्ववत्....पाटेक्कं उपोसथं करोन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिनन्ति; विचिनित्वा पस्सन्ति; पस्सित्वा—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति। आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

सन्देह होने पर खोज करे और खोज करने पर आवासिकों को न देखें तथा उपोसथ प्रारम्भ कर दें तो दुष्कृत दोष नहीं। (ग) सन्देह में पड़ कर वे खोजें, खोजने पर देखें, देखने पर 'नष्ट हों या विनष्ट हों, हम को क्या प्रयोजन!' ऐसे कटुवचनपूर्वक उपोसथ करें तो स्थूलात्यय (महान् अपराध) दोष होगा।

(२) (क) ''यहाँ, भिक्षुओ! जब आगन्तुक भिक्षु....पूर्ववत् उद्देश, चलने-फिरने के शब्द, स्वाध्यायशब्द, खांसने और थूकने का शब्द सुनें। सुनकर सन्देहापन्न हो जाँय—'यहाँ आवासिक भिक्षु है भी कि नहीं?' सन्देह करके भी न खोजें एवं विना खोजे ही उपोसथ प्रारम्भ कर दें तो दुष्कृत दोष लगेगा। (ख) पूर्ववत्.. (ग).... पूर्ववत्.. (घ).. पूर्ववत्.. स्थूलात्यय दोष होगा।

(३) (क) ''जब आश्रमवासी भिक्षु आगन्तुक भिक्षुओं के आकार, लिङ्ग, उद्देश, अज्ञात पात्र, अज्ञात चीवर, अज्ञात आसन, पैरों का धोना, जल का डालना आदि देखें, देखकर सन्देह में पड़ें—'क्या नवागन्तुक है या नहीं?' सन्देह में पड़कर वे खोज न करे.. पूर्ववत् .(ख) पूर्ववत्....(ग)....पूर्ववत्.... स्थूलात्यय दोष होगा।

(४) इध पन, भिक्खवे, आवासिका भिक्खू सुणन्ति आगन्तुकानं भिक्खूनं आगन्तुकाकारं, आगन्तुकलिङ्गं, आगन्तुकनिमित्तं, आगन्तुकुद्देसं, आगच्छन्तानं पदसद्दं, उपाहनपप्फोटनसद्दं, उक्कासितसद्दं, खिपितसद्दं; सुत्वा वेमतिका होन्ति—'अत्थि नु खो आगन्तुका भिक्खू नत्थि खो' ति? ते वेमतिका न विचिनन्ति; अविचिनित्वा उपोसथं करोन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिनन्ति; विचिनित्वा न पस्सन्ति; अपस्सित्वा उपोसथं करोन्ति। अनापत्ति। ते वेमतिका विचिनन्ति; विचिनित्वा पस्सन्ति; पस्सित्वा एकतो उपोसथं करोन्ति। अनापत्ति। ते वेमतिका विचिनन्ति; विचिनित्वा पस्सन्ति; पस्सित्वा पाटेक्कं उपोसथं करोन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिननन्ति; विचिनित्वा पस्सन्ति; पस्सित्वा—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा उपोसथं करोन्ति। [R.134] आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

३५. नानासंवासकादीहि उपोसथकरणं

[B.187] ४९. (१) "इध पन, भिक्खवे, आगन्तुका भिक्खू पस्सन्ति आवासिके भिक्खू नाना संवासके। ते समानसंवासकदिट्ठिं पटिलभन्ति; समानसंवासकदिट्ठिं पटिलभित्वा न पुच्छन्ति; अपुच्छित्वा एकतो उपोसथं करोन्ति। अनापत्ति। ते पुच्छन्ति; पुच्छित्वा नाभिवितरन्ति; अनभिवितरित्वा एकतो उपोसथं करोन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते पुच्छन्ति; पुच्छित्वा नाभिवितरन्ति; अनभिवितरित्वा पाटेक्कं उपोसथं करोन्ति। अनापत्ति।

(२) " इध पन, भिक्खवे, आगन्तुका भिक्खू पस्सन्ति आवासिके भिक्खू समानसंवासके। ते नानासंवासकदिट्ठिं पटिलभन्ति; नानासंवासकदिट्ठिं पटिलभित्वा न पुच्छन्ति; अपुच्छित्वा एकतो उपोसथं करोन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते पुच्छन्ति; पुच्छित्वा अभिवितरन्ति; अभिवितरित्वा पाटेक्कं उपोसथं करोन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते पुच्छन्ति; पुच्छित्वा अभिवितरन्ति; अभिवितरित्वा एकतो उपोसथं करोन्ति। अनापत्ति।

(३) "इध पन, भिक्खवे, आवासिका भिक्खू पस्सन्ति आगन्तुके भिक्खू

---

(४) (क) "जब भिक्षुओ! आवासिक भिक्षु नवागन्तुकों के आकार....पूर्ववत्.. सुनें, सुनकर सन्देहापन्न हों—'क्या नवागन्तुक है या नहीं?'....पूर्ववत्....(ख)....पूर्ववत्.. .(ग)....पूर्ववत् ..(घ)....... स्थूलात्यय दोष होता है।

३५. नानासंवासकादि भिक्षुओं के साथ उपोसथक्रिया

४९. (क) यहाँ, भिक्षुओ! आगन्तुक भिक्षु नानाविध सहआवास वाले आवासिक भिक्षुओं को देखते हैं तो उन्हें उनमें एक प्रकार के सहनिवास का ध्यान आता है। ऐसा ध्यान आने पर भी वे उनसे कुछ पूछते—जाँचते नहीं। विना पूछे—जाँचे ही एक तरफ बैठकर उपोसथ करें तो उन्हें कोई दोष नहीं है। यदि वे पूछते हैं, और पूछकर भी विना जाँचे ही एक तरफ बैठकर उपोसथ करते हैं तो 'दुष्कृत' दोष होगा। और वे पूछते हैं तथा पूछकर जाँच नहीं करते तो भी प्रत्येक पृथक्—पृथक् उपोसथ करते हैं तो कोई दोष नहीं है।

(२) (क) यहाँ, भिक्षुओ! आगन्तुक भिक्षु एक तरफ के सहआवास वाले आवासिक भिक्षुओं को देखें और 'ये भिन्न सहवास वाले हैं' का ध्यान कर लें, भिन्न सहवास का ध्यान करके भी इस विषय की पूछ ताछ न करें और एकाकी उपोसथ करें तो उन्हें 'दुष्कृत' दोष होगा। (ख) यदि वे पूछें

नानासंवासके। ते समानसंवासकदिट्ठिं पटिलभन्ति; समानसंवासकदिट्ठिं पटिलभित्वा न पुच्छन्ति; अपुच्छित्वा एकतो उपोसथं करोन्ति। अनापत्ति। ते पुच्छन्ति; पुच्छित्वा नाभिवितरन्ति; अनभिवितरित्वा एकतो उपोसथं करोन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते [N.140] पुच्छन्ति; पुच्छित्वा नाभिवितरन्ति; अनभिवितरित्वा पाटेक्कं उपोसथं करोन्ति। अनापत्ति।

(४) इध पन, भिक्खवे, आवासिका भिक्खू पस्सन्ति आगन्तुके भिक्खू समानसंवासके। ते नानासंवासकदिट्ठिं पटिलभन्ति; नानासंवासकदिट्ठिं पटिलभित्वा न पुच्छन्ति; अपुच्छित्वा एकतो उपोसथं करोन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते पुच्छन्ति; पुच्छित्वा अभिवितरन्ति; अभिवितरित्वा पाटेक्कं उपोसथं करोन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते पुच्छन्ति; पुच्छित्वा अभिवितरन्ति; अभिवितरित्वा एकतो उपोसथं करोन्ति। अनापत्ति।

३६. नगन्तब्बवारं

५०. न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा अभिक्खुके आवासो गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा [B.188] अभिक्खुको अनावासो गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा अभिक्खुको आवासो वा अनावासो वा गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। (१–३)

न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका अनावासा अभिक्खुको आवासो गन्तब्बो,

---

और पूछकर निश्चय करें, निश्चय करने के बाद पृथक् उपोसथ करें तो 'दुष्कृत' का दोष होता है। (ग) वे पूछें, पूछने के बाद निश्चय करें, निश्चय करके एक उपोसथ करें तो दोष नहीं।

(३) (क) यहाँ, भिक्षुओ! आवासिक भिक्षु नवागन्तुकों को नाना प्रकार के वस्त्र पहने देखें और वे उन्हें एक तरह के ही वस्त्र पहने हुए समझें और ऐसा समझ कर भी विशेष पूछताछ न करें, ऐसा पूछताछ किये विना ही, अकेले उपोसथ करें तो कोई दोष नहीं; (ख) वे पूछें, पूछ कर, निश्चय न करें और निश्चय किये विना एकाकी उपोसथ करें तो 'दुष्कृत' दोष होगा। (ग) वे पूछें, पूछकर निश्चय किये विना प्रत्येक उपोसथ करें तो दोष नहीं।

(४) यहाँ आश्रमवासिक भिक्षु नवागन्तुक भिक्षुओं को समान वस्त्र वाला देखें और वे उन्हें नानाविध वस्त्रों वाला समझें, ऐसा समझकर पूछताछ न करें, इसके विना ही निश्चय कर बैठें तथा पृथक् उपोसथ करें तो 'दुष्कृत' दोष होगा। (क) वे पूछताछ कर पृथक् उपोसथ करें तो 'दुष्कृत' दोष होगा। (ख) वे पूछताछ करें, पूछताछ कर निश्चय करें, निश्चय करके प्रत्येक उपोसथ करें तो 'दुष्कृत' दोष होगा। (ग) तथा वे पूछें, पूछकर निश्चय करें, निश्चय करके एक साथ उपोसथ करें तो कोई दोष नहीं।

३६. उपोसथ के दिन आवासत्याग का निषेध

(१) भिक्षुओ! सङ्घ का साथ होने या किसी विघ्न–बाधा होने के अतिरिक्त, उपोसथ के दिन भिक्षु को आवास को छोड़कर भिक्षुरहित आवास में नहीं जाना चाहिये।

(२) भिक्षुओ!...उपोसथ के दिन, सभिक्षुक आवास को छोड़कर (क) जो आवास नहीं है और (ख) जहाँ भिक्षु भी नहीं हैं, वहाँ नहीं जाना चाहिये।

(३) भिक्षुओ!.. सभिक्षुक आवास से भिक्षुरहित आवास में न जाना चाहिये और न वहाँ जहाँ भिक्षु कभी न रहते हों।

अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका अनावासा अभिक्खुको अनावासो गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका अनावासा अभिक्खुको आवासो वा अनावासो वा गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। (४-६)

न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा वा अनावासा वा अभिक्खुको [R.135] आवासो गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा वा अनावासा वा अभिक्खुको अनावासो गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा वा अनावासा वा अभिक्खुको आवासो वा अनावासो वा गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। (७-९)

न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा सभिक्खुको आवासो गन्तब्बो, यत्थस्सु भिक्खू नानासंवासका, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा सभिक्खुको अनावासो गन्तब्बो, यत्थस्सु भिक्खू नानासंवासका, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा सभिक्खुको आवासो वा अनावासो वा गन्तब्बो, यत्थस्सु भिक्खू नानासंवासका, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। (१०-१२)

न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका अनावासा सभिक्खुको आवासो गन्तब्बो, [N.141] यत्थस्सु भिक्खू नानासंवासका, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे,

---

(४) भिक्षुओ!.....भिक्षु आवास न होने पर भी जहाँ भिक्षु रहते हों ऐसे स्थान से उस स्थान पर नहीं जाना चाहिये जो आवास भिक्षुरहित हो।

(५) भिक्षुओ!....भिक्षुआवास न होने पर भी जहाँ भिक्षु रहते हों ऐसे स्थान से उस स्थान पर नहीं जाना चाहिये जो न भिक्षु आश्रय हो और न जहाँ भिक्षु रहते हों।

(६) भिक्षुओ!....भिक्षुआवास न होने पर भी जहाँ भिक्षु हों ऐसे स्थान से उस स्थान पर नहीं जाना चाहिये जो भिक्षुरहित भिक्षुआश्रम हो या जो आश्रम भी न कहलाता हो और वहाँ भिक्षु भी न रहते हों।

(७) ''भिक्षुओ! ..सभिक्षुक आवास या आश्रम के रूप में अविख्यात आवास से अनाश्रम या भिक्षुरहित आवास में नहीं जाना चाहिये।

(८) ''भिक्षुओ! . सभिक्षुक आवास या आश्रम के रूप में अप्रसिद्ध आवास से भिक्षुरहित अनाश्रम (आवास) में नहीं जाना चाहिये।

(९) ''भिक्षुओ! . सभिक्षुक आवास से या अनाश्रम से भिक्षुरहित आवास या अनाश्रम (अनावास) में नहीं जाना चाहिये।

(१०) ''भिक्षुओ! .. सभिक्षुक आवास से उस भिक्षु–आवास में नहीं जाना चाहिये जहाँ नाना सहनिवास वाले भिक्षु हों।

(११) ''भिक्षुओ!....सभिक्षुक आवास से अनाश्रम के रूप में प्रख्यात आवास में नहीं जाना चाहिये, जहाँ नाना सहनिवास वाले भिक्षु रहते हों।

(१२) भिक्षुओ!.. सभिक्षुक आवास से ऐसे आश्रम या अनाश्रम में नहीं जाना चाहिये जहाँ नाना सहनिवास वाले भिक्षु रहते हों।

तदहुपोसथे सभिक्खुका अनावासा सभिक्खुको अनावासो गन्तब्बो, यत्थस्सु भिक्खू नानासंवासका, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभि- [B.189] क्खुका अनावासा सभिक्खुको आवासो वा अनावासो वा गन्तब्बो, यत्थस्सु भिक्खू नानासंवासका, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। (१३-१५)

न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा वा अनावासा वा सभिक्खुको आवासो गन्तब्बो, यत्थस्सु भिक्खू नानासंवासका, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा वा अनावासा वा सभिक्खुको अनावासो गन्तब्बो, यत्थस्सु भिक्खू नानासंवासका, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा वा अनावासा वा सभिक्खुको आवासो वा गन्तब्बो, यत्थस्सु भिक्खू नानासंवासका, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया। (१६-१८)

३७. गन्तब्बवारं

५१. गन्तब्बो, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा सभिक्खुको आवासो, यत्थस्सु भिक्खू समानसंवासका, यं जञ्ञा—'सक्कोमि अज्जेव गन्तुं' ति। गन्तब्बो, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा सभिक्खुको अनावासो....पे०....सभिक्खुको आवासो वा अनावासो वा, यत्थस्सु समानसंवासका, यं जञ्ञा—'सक्कोमि अज्जेव गन्तुं' ति। (१-३)

---

(१३) ''भिक्षुओ!..... सभिक्षुक अनाश्रम (आवास) से भी ऐसे भिक्षुओं वाले आश्रम में नहीं जाना चाहिये जहाँ नाना सहनिवास वाले भिक्षु रहते हों।

(१४) ''भिक्षुओ!...सभिक्षुक अनाश्रम (अनावास) से भिक्षुओं वाले आवास या अनावास में नहीं जाना चाहिये, जहाँ नाना सहनिवास वाले भिक्षु रहते हों।

(१५) ''भिक्षुओ!....समिक्षुक अनाश्रम (अनावास) से भिक्षुओं वाले आवास या अनावास में नहीं जाना चाहिये, जहाँ नाना सहनिवास वाले भिक्षु रहते हों।

(१६) ''भिक्षुओ!.....सभिक्षुक आवास या अनावास से सभिक्षुक आवास या अनावास में नहीं जाना चाहिये, जहाँ नाना सहनिवास वाले भिक्षु रहते हों।

(१७) भिक्षुओ!.....सभिक्षुक आवास या अनावास से सभिक्षुक अनावास में नहीं जाना चाहिये जहाँ नाना सहनिवास वाले भिक्षु रहते हों।

(१८) भिक्षुओ! सभिक्षुक आवास या अनावास से ऐसे सभिक्षुक आवास या अनावास में नहीं जाना चाहिये जहाँ नाना सहनिवास वाले भिक्षु रहते हों।

३७. उपोसथ के दिन गन्तव्य आवास

५१ (१) भिक्षुओ! उपोसथ के दिन सभिक्षुक आवास से, जहाँ समान सहनिवास वाले भिक्षुओं के आवास में जाना चाहिये, जहाँ जाने में जानेवाले को यह विश्वास हो कि वह वहाँ उसी दिन पहुँच जायगा।

(२) भिक्षुओ! उपोसथ के दिन सभिक्षुक आवास से भिक्षुरहित उस आवास में भी जाना उचित है जहाँ समान सहनिवास वाले भिक्षु ठहरे हों और जहाँ जाने में जानेवाले को विश्वास हो कि वह उसी दिन वहाँ पहुँच जायगा।

(३) भिक्षुओ! उपोसथ के दिन सभिक्षुक आवास या अभिक्षुक आवास से सभिक्षुक या अभिक्षुक आवास में....पूर्ववत्....।

गन्तब्बो, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका अनावासा सभिक्खुको आवासो....पे०.... सभिक्खुको अनावासो....पे०....सभिक्खुको आवासो वा अनावासो वा, यत्थस्सु भिक्खू सामनसंवासका, यं जञ्ञा—'सक्कोमि अज्जेव गन्तुं' ति। (४-६)

गन्तब्बो, भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा वा अनावासा वा सभिक्खुको आवासो....पे०....सभिक्खुको अनावासो.....पे०......सभिक्खुको आवासो वा अनावासो वा, यत्थस्सु भिक्खू समानसंवासका, यं जञ्ञा—'सक्कोमि अज्जेव गन्तुं' ति। (७-९)

३८. वज्जनीयपुग्गलसन्दस्सना

५२. न, भिक्खवे, भिक्खुनिया निसिन्नपरिसाय पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। यो उद्दिसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। न सिक्खमानाय....पे०....न सामणेरस्स....पे०....न सामणेरिया... [B.190] पे०....न सिक्खापच्चक्खातकस्स....पे०....न अन्तिमवत्थुं अज्झापन्नकस्स निसिन्नपरिसाय पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। यो उद्दिसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स।

न आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तकस्स निसिन्नपरिसाय पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। यो [N.142] उद्दिसेय्य, यथाधम्मो कारेतब्बो। न आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खित्तकस्स निसिन्नपरिसाय....पे०....न पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खित्तकस्स निसिन्नपरिसाय पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। यो उद्दिसेय्य, यथाधम्मो कारेतब्बो।

न पण्डकस्स निसिन्नपरिसाय पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। यो उद्दिसेय्य, आपत्ति

---

(४) भिक्षुओ! उपोसथ के दिन सभिक्षुक अनावास से सभिक्षुक आवास में जाना चाहिये...।

(५) भिक्षुओ!.... सभिक्षुक आवास या सभिक्षुक अनावास से सभिक्षुक आवास में जाना चाहिये....।

(६) भिक्षुओ!....सभिक्षुक आवास या सभिक्षुक अनावास से सभिक्षुक या अभिक्षुक आवास में जाना चाहिये, जहाँ समान सहनिवासक भिक्षु रहते हों तथा जिसकी दूरी के विषय में उसे विश्वास हो कि वह आज ही वहाँ पहुँच जायगा।

(७) भिक्षुओ!... सभिक्षुक या अभिक्षुक आवास से सभिक्षुक आवास में जाना चाहिये...।

(८) भिक्षुओ!.....सभिक्षुक या अभिक्षुक आवास से सभिक्षुक अनावास में जाना चाहिये....।

(९) भिक्षुओ!. ..सभिक्षुक या अभिक्षुक आवास से सभिक्षुक या अभिक्षुक आवास में जाना चाहिये।....पूर्ववत्....वह आज ही पहुँच जायगा।

३८. प्रातिमोक्षपाठ में अयोग्य पुद्गलों की सूची

५२. (१) "भिक्षुओ! जिस परिषद् में भिक्षुणी बैठी हो, उसमें प्रातिमोक्ष पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उस को 'दुष्कृत' दोष लगे।

(२) "भिक्षुओ! जिस परिषद् में शिक्षमाणा बैठी हो....।.....।

(३) "भिक्षुओ! जिस परिषद् मे श्रामणेर बैठा हो....।.....।

(४) "भिक्षुओ! जिस परिषद् में श्रामणेरी बैठी हो...।....।

(५) "भिक्षुओ! जिस परिषद् में शिक्षापदों का प्रत्याख्यान करने वाला बैठा हो....।....।

(६) "भिक्षुओ! जिस परिषद् में अन्तिम (पाराजिक) दोष का दोषी बैठा हो। ... ।. ...।

(७) "भिक्षुओ! जिस परिषद् में स्वकृत दोष को न मानने के कारण दण्डित (उत्क्षिप्तक) पुरुष बैठा हो....।.. ..।

दुक्कटस्स। न थेय्यसंवासकस्स....पे०....न तित्थियपक्कन्तकस्स....पे०....न [R.136] तिरच्छानगतस्स.... पे०.....न मातुघातकस्स....पे०....न पितुघातकस्स....पे०....न अरहन्तघातकस्स....पे०....न भिक्खुनीदूसकस्स....पे०....न सङ्घभेदकस्स....पे०....न लोहितुप्पादकस्स...पे०....न उभतोब्यञ्जनकस्स निसिन्नपरिसाय पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं। यो उद्दिसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स।

''न, भिक्खवे, पारिवासिकपारिसुद्धिदानेन उपोसथो कातब्बो, अञ्ञत्र अवुट्ठिताय परिसाय।''

''न च, भिक्खवे, अनुपोसथे उपोसथो कातब्बो, अञ्ञत्र सङ्घसामग्गिया'' ति।

ततियभाणवारं निट्ठितं॥

उपोसथक्खन्धकं दुतियं॥

३९. तस्सुद्दानं

तित्थिया बिम्बिसारो च सन्निपतितुं तुण्हिका।
धम्मं रहो पातिमोक्खं देवसिकं तदा सकिं॥ १॥

---

(८) ''भिक्षुओ! जिस परिषद् स्वकृत दोष का प्रतीकार न करने वाला (उत्क्षिप्तक) पुरुष पैठा हो....।....।

(९) ''भिक्षुओ! जिस परिषद् में ऐसा मिथ्यादृष्टि पुरुष जो अपनी दृष्टि न त्यागने के कारण दण्डित हुआ हो....।....।

(१०) '''भिक्षुओ! जिस परिषद् में पण्डक (नपुंसक) बैठा हो....।.....।

(११) ''भिक्षुओ! जिस परिषद् में चौरी से स्वयं चीवर पहनने वाला (स्तेयसंवासक)....।

(१२) ''भिक्षुओ! जिस परिषद् में अन्य तीर्थिकों मे मिला कोई पुरुष बैठा हो... ।

(१३) ''भिक्षुओ! जिस परिषद् में कोई तिर्यग्योनि (नाग आदि) वाला बैठा हो....।

(१४) ''भिक्षुओ!..... .... मातृघातक पुरुष....।......।

(१५) ''भिक्षुओ! .... पितृघातक पुरुष.. ...।.......।

(१६) ''भिक्षुओ! ....अर्हद्घातक पुरुष....।......।

(१७) ''भिक्षुओ! .... भिक्षुणीदूषक पुरुष.....।......।

(१८) ''भिक्षुओ! ....सङ्घभेदक पुरुष.....। ......।

(१९) ''भिक्षुओ! ....बुद्ध–देहलोहितोत्पादक पुरुष बैठा हो।

(२०) ''भिक्षुओ! .... उभतोव्यञ्जनक (स्त्रीपुरुषोभयचिह्नों वाला) बैठा हो. ..।

(२१) ''भिक्षुओ! परिषद् के न उठने के अतिरिक्त उसमें परिशुद्धि देकर उपोसथ नहीं करना चाहिये।

(२२) ''भिक्षुओ! सङ्घ की समग्रता को छोड़कर उपोसथ से भिन्न दिनों में उपोसथ नहीं करना चाहिये।

तृतीय भाणवार समाप्त।।

उपोसथस्कन्धसमाप्त

३९. इस स्कन्ध का उदान (विषयसूची)

मगधसम्राट् बिम्बसार द्वारा अन्य तीर्थिकों को गृहस्थों के प्रति धर्मोपदेश करते हुए देखकर

यथापरिसा समग्गं सामग्गी मद्दकुच्छि च।
सीमा महती नदिया अनु द्वे खुद्दकानि च॥ २॥
नवा राजगहे चेव सीमा अविप्पवासना।
सम्मन्ने पठमं सीमं पच्छा सीमं समूहने॥ ३॥
[B.191] असम्मता गामसीमा नदिया समुद्दे सरे।
उदकुक्खेपो भिन्दन्ति तथेवज्झोत्थरन्ति च॥ ४॥
कति कम्मानि उद्देसो सवरा असती पि च।
धम्मं विनयं तज्जेन्ति· पुन विनयतज्जना॥ ५॥
चोदना कते ओकासे अधम्मपटिक्कोसना।
चतुपञ्चपरा आवि सञ्चिच्च चे पि वायमे॥ ६॥
सगहट्ठा अनज्झिट्ठा चोदनम्हि न जानति।
सम्बहुला न जानन्ति सज्जुकं न च गच्छरे॥ ७॥
[N.143] कतिमी कीवतिका दूरे आरोचेतुञ्च नस्सरि।
उक्लापं आसनं दीपो दिसा अञ्ञो बहुस्सुतो॥ ८॥

भिक्षुओं को भी ऐसी ही धर्मोपदेश की परिपाटी चलाने का निर्देश देने हेतु भगवान् से निवेदन; भगवान् के आदेश से भिक्षुओं का पक्ष की चतुर्दशी, अमावस्या (पूर्णिमा) तथा अष्टमी तिथि को एकत्र होकर मौन भाव से बैठना; उस समय उनको भगवान् द्वारा प्रतिमोक्षपाठ का आदेश; तदनन्तर भिक्षुओं द्वारा उक्त तीनो दिन प्रातिमोक्षपाठ करने पर केवल अमावस्या (या पूर्णिमा) को ऐसा पाठ करने का आदेश।। १।।

परिषद् (सङ्घ) के रूप में एकत्र होकर धर्मपाठ का आदेश मद्रकुक्षि में भिक्षु महाकपिन को नियमतः धर्मपाठ मे सम्मिलित रहने की आज्ञा; धर्मपाठ में सम्मिलित होने वाले भिक्षुओं द्वारा भिक्षुआवासों का सीमाबन्धन; नदी आदि के पार की सीमाओं का कुछ प्रतिबन्धों के साथ निर्देश।। २।।

सङ्घ द्वारा निश्चित उपोसथागार मे ही किसी स्थविर भिक्षु की प्रधानता में ही प्रातिमोक्षपाठ का आदेश, उक्त समय के लिये त्रिचीवरविषयक नियमो में शिथिलता, विशेष सङ्कट के अवसर पर उक्त सीमा के त्याग पर भी औचित्य।। ३।।

उपोसथपाठ में सम्मिलित होने के लिये नदी, समुद्र, सरोवर या झील आदि से ग्रामसीमाओं का बन्धन अनुचित।। ४।।

उपोसथ के कर्मभेद, उपोसथ का उद्देश, उपोसथ का संक्षिप्तपाठ; तथा विनयविषयक प्रश्न–उत्तर विधि का निर्धारण।। ५।।

दोषारोपण के विधि–निषेध, नियमविरुद्ध कर्म के लिये अपराधी को धिक्कार; बीच बीच मे प्रतिमोक्ष छोड़ने का निषेध; प्रतिमोक्षपाठ सीखने के लिये स्थविर की आज्ञा होने पर अन्य भिक्षु आवास में जाना आवश्यक, रूक्ष (कर्कश) स्वर होने पर भी उच्च स्वर मे प्रातिमोक्ष पाठ की स्वीकृति।। ६।।

गृहस्थो की उपस्थिति मे प्रातिमोक्षपाठ का निषेध, सङ्घ की अनुमति के विना जिस किसी भिक्षु द्वारा प्रातिमोक्षपाठ का भी निषेध, चोदनावस्तुग्राम मे साधना के अवसर पर भगवान् द्वारा बहुत या एक भिक्षु को अन्य भिक्षु आवास मे तत्काल भेज कर प्रामाणिक प्रातिमोक्षपाठ सीखने का आदेश।। ७।।

सज्जुकं वस्सुपोसथो सुद्धिकम्मञ्च ञातका।
गग्गो चतुतयो द्वेको आपत्तिसभागा सरि॥ ९॥
सब्बो सङ्घो वेमतिको न जानन्ति बहुस्सुतो।
बहू समसमा थोका परिसा अवुट्ठिताय च॥ १०॥
एकच्चा वुट्ठिता सब्बा जानन्ति च वेमतिका।
कप्पतेवा ति कुक्कुच्चा जानं पस्सं सुणन्ति च॥ ११॥
आवासिकेन आगन्तु चातुपन्नरसो पुन।
पटिपदो पन्नरसो लिङ्गसंवासका उभो॥ १२॥
पारिवासानुपोसथो अञ्ञत्र सङ्घसामग्गिया।
एते विभत्ता उद्दाना वत्थुविभूतकारणा ति॥ १३॥

इमस्मिं खन्धके वत्थूनि छ असीति।

उपोसथक्खन्धकं निट्ठितं॥

स्थविर भिक्षु द्वारा आवासीय सब भिक्षुओं को प्रातिमोक्षपाठ के दिन की सूचना देना; विस्मरणशील स्थविरभिक्षु को इस सूचना के लिये स्मरण कराना आवश्यक, उपोसथागार का मार्जन, आसन विछाना, दीपक जलाना आदि का निर्देश; नव भिक्षु को उपाध्याय या आचार्य से पूछे विना आवास से बाहर न जाने का विधान; प्रातिमोक्ष के ज्ञाता धर्मधर भिक्षु का अन्य भिक्षुओं द्वारा सम्मान।। ८।।

वर्षावास करने वाले भिक्षुओं में कोई भी प्रातिमोक्षपाठ करना न जानता हो तो उनमें से किसी एक को एतदर्थ तत्काल पास के किसी भिक्षु आवास में जाना चाहिये। यदि यह व्यवस्था न बैठे तो वर्षावास के समय वह भिक्षुआवास त्यागने की अनुमति; रोगी भिक्षु को उपोसथ के समय अपनी परिशुद्धि भेजने का प्रकार; उपोसथ में सम्मिलन हेतु आते समय किसी भिक्षु का उसके नाते रिश्तेदारों, राजपुरुषों, चौरों या धूर्तों द्वारा अपहरण किये जाने पर उसको उनसे छुड़ाने की विधि; उन्मत्त गर्ग भिक्षु को सङ्घ द्वारा उन्मत्त घोषित करना; उपोसथपाठ में चार, तीन, दो या एक भिक्षु की उपस्थिति भी वैध; उपोसथ के समय आपत्ति (दोष) प्रकट करने की विधि; स्मृत या विस्मृत आपत्ति के प्रतीकार की विधि; पन्द्रह (१५) प्रकार की निर्दोषता।। ९।।

सङ्घ द्वारा कृत उपोसथपाठ के वर्ग तथा समग्र भेद से पन्द्रह भेद; अन्य दो पन्द्रह भेद; तिथि विषयक सन्देह निराकरणविधि।। १०।।

परिषद्–भेद से प्रातिमोक्षपाठ की प्रामाणिकता जानने का प्रकार।। ११।।

उपोसथ–पाठ के समय उपस्थिति, आवासिक एवं आगन्तुक भिक्षुओं की वैधानिक स्थिति; लिङ्ग, आकार, निमित्त, मञ्चपीठ आदि देखकर भिक्षुआवास पहचानने की विधि।। १२।।

सङ्घ की अनुमति के विना उपोसथ के दिन भिक्षु–आवास से अन्यत्र गमन निषिद्ध; सङ्घ की सामूहिक अनुमति से अन्यत्र गमन वैध।

इस तरह, इस उपोसथस्कन्धक की विषय (प्रकरण–सूची) बना दी गयी कि इसके सहारे, सङ्घ की चिरस्थिति बनी रहे।। १३।।

इस स्कन्ध मे ८६ अवान्तर प्रकरण है। **उपोसथस्कन्ध समाप्त॥**

३. वस्सूपनायिकक्खन्धकं

१. वस्सूपनायिकानुजानना

[N.144, B. 192, R. 137] १. तेन समयेन बुद्धो भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन भगवता भिक्खूनं वस्सावासो अपञ्ञत्तो होति। ते इध भिक्खू हेमन्तं पि गिम्हं पि वस्सं पि चारिकं चरन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया हेमन्तं पि गिम्हं पि वस्सं पि चारिकं चरिस्सन्ति, हरितानि तिणानि सम्मद्दन्ता, एकिन्द्रियं जीवं विहेठेन्ता, बहू खुद्दके पाणे सङ्घातं आपादेन्ता। इमे हि नाम अञ्ञतित्थिया दुरक्खातधम्मा वस्सावासं अल्लीयिस्सन्ति सङ्कसायिस्सन्ति। इमे हि नाम सकुन्तका रुक्खग्गेसु कुलावकानि करित्वा वस्सावासं अल्लीयिस्सन्ति सङ्कसायिस्सन्ति। इमे पन समणा सक्यपुत्तिया हेमन्तं पि गिम्हं पि वस्सं पि चारिकं चरन्ति, हरितानि तिणानि सम्मद्दन्ता, एकिन्द्रियं जीवं विहेठेन्ता, बहू खुद्दके पाणे सङ्घातं आपादेन्ता" ति।

अस्सोसुं खो भिक्खू तेसं मनुस्सानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**अनुजानामि, भिक्खवे, वस्सं उपगन्तुं**" ति।

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"कदा नु खो वस्सं उपगन्तब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, वस्साने वस्सं उपगन्तुं**" ति।

---

३. वर्षोपनायिकस्कन्धक

१. वर्षावास की अनुमति

१. उस समय भगवान् बुद्ध राजगृह के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय तक भगवान् ने भिक्षुओं को वर्षावास (वर्षाऋतु में एक स्थान पर ठहर कर साधना करना) की अनुमति (आदेश) नहीं दे रखी थी। अतः उस समय भिक्षु लोग हेमन्त ग्रीष्म और वर्षा—तीनों ही ऋतुओं में चारिका करते रहते थे। यह देखकर श्रद्धालु जनता खिन्न एवं उद्विग्न होती थी कि 'कैसे ये शाक्यपुत्रीय श्रमण हेमन्त, ग्रीष्म और वर्षा में भी हरे घास को रौंदते रहते हैं! एकेन्द्रिय जीवों (पेड़–पौधों) का मर्दन करते, छोटे–बड़े प्राणियों को पैरों से कुचलते हुए चारिका करते रहते हैं। ये दूसरे सम्प्रदायों (तीर्थों) वाले साधु भी, जिनका धर्म इतना सुव्याख्यात नहीं है, वर्षावास में एक स्थान पर चुप होकर बैठते हैं, एक ही जगह स्थिर रहते हैं। यहाँ तक कि पक्षी भी इस काल में वृक्षों पर घोसले बना कर एक ही स्थान पर स्थिर होकर चुप होकर बैठे रहते हैं।' भिक्षुओं ने उन श्रद्धालुजनों की यह उद्वेगकर पीड़ा सुनी। सुनकर उन भिक्षुओ ने भगवान् के सम्मुख यह प्रकरण रखा। तब भगवान् ने इस प्रसङ्ग में, धार्मिक कथाएँ कहते हुए भिक्षुओं को सम्बोधित किया—

"**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तुम्हें वर्षावास करने की।**" (१)*

तब भिक्षुओं के मन में विचार आया कि "भगवान् द्वारा प्रज्ञप्त यह वर्षावास कब करना चाहिये?" भगवान् से यह पूछा गया। (भगवान् ने उत्तर दिया—)

"**भिक्षुओ! मैं तुम्हें वर्षा ऋतु में वर्षावास करने की अनुमति देता हूँ।**" (२)

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"कति नु खो वस्सूपनायिका" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **द्वेमा, भिक्खवे, वस्सूपनायिका—पुरिमिका, पच्छिमिका ति। १. अपरज्जुगताय आसाळ्हिया पुरिमिका उपगन्तब्बा, २. मासगताय आसाळ्हिया पच्छिमिका उपगन्तब्बा—इमा खो, भिक्खवे, द्वे वस्सूपनायिका ति।**

२. वस्साने चारिकापटिक्खेपादि

२. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू वस्सं उपगन्त्वा अन्तरावस्सं चारिकं चरन्ति। मनुस्सा तथेव उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया हेमन्तं पि गिम्हं पि वस्सं पि चारिकं चरिस्सन्ति, हरितानि तिणानि सम्मद्दन्ता, एकिन्द्रियं जीवं विहेठेन्ता, बहू खुद्दके पाणे सङ्घातं आपादेन्ता। इमे हि नाम अञ्ञतित्थिया दुरक्खातधम्मा वस्सावासं अल्लीयिस्सन्ति सङ्कसायिस्सन्ति। इमे हि नाम सकुन्तका रुक्खग्गेसु कुलावकानि करित्वा वस्सावासं अल्लीयिस्सन्ति सङ्कसायिस्सन्ति। इमे पन समणा सक्यपुत्तिया हेमन्तं पि गिम्हं पि वस्सं पि चारिकं चरन्ति, हरितानि तिणानि सम्मद्दन्ता, एकिन्द्रियं जीवं [N.144] विहेठेन्ता, बहू खुद्दके पाणे अपादेन्ता" ति।

अस्सोसुं खो भिक्खू तेसं मनुस्सानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम छब्बग्गिया भिक्खू वस्सं उपगन्त्वा अन्तरावस्सं चारिकं चरिस्सन्ती" ति? अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, वस्सं उपगन्त्वा पुरिमं वा तेमासं पच्छिमं वा तेमासं अवसित्वा चारिका पक्कमितब्बा। यो पक्कमेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

तब भिक्षुओं को यह शङ्का हुई– "ये वर्षोपनायिका (वर्षा ऋतु प्रारम्भ करने वाली) तिथियाँ कौन सी मानी जाँय?" भगवान् के सम्मुख यह बात रखी गयी। (भगवान् ने कहा–) "**भिक्षुओ! पहली और पिछली–ये दो वर्षोपनायिका तिथियाँ हैं। जिनमें १. आषाढ़ पूर्णिमा के दूसरे दिन (अपरेद्युगता) से पहला वर्षावास प्रारम्भ करना चाहिये। तथा २. आषाढ़ पूर्णिमा के एक मास बाद पिछला (पश्चिमक) वर्षावास प्रारम्भ करना चाहिये। यों, भिक्षुओ! ये दो (श्रावणकृष्ण प्रतिपद् तथा भाद्रपद कृष्ण प्रतिपद्) वर्षोपनायिका तिथियाँ हैं।** (३)

२. वर्षाऋतु में चारिका पर प्रतिबन्ध

२. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वर्षावास का सङ्कल्प लेकर भी वर्षाकाल के बीच में ही चारिका हेतु चल देते थे। यह देखकर श्रद्धालु जनता त्रस्त एवं उद्विग्न होती थी कि कैसे ये शाक्यपुत्रीय श्रमण हेमन्त में भी....पूर्ववत्.....। इस वर्षाकाल में पक्षी भी वृक्षों पर घोसले बनाकर चुपचाप स्थिर होकर एक जगह बैठते हैं जबकि ये शाक्यपुत्रीय श्रमण तीनों ऋतुओं में हरे घास को रोंदते हुए, पेड़–पौधों का मर्दन करते हुए, छोटे–बड़े प्राणियों को पैरों से दबाते हुए चलते–फिरते रहते हैं। भिक्षुओं ने श्रद्धालु जनता की यह पीड़ा सुनी। सुनकर उनमें जो अल्पेच्छ भिक्षु थे वे त्रस्त व उद्विग्न हुए कि कैसे ये षड्वर्गीय भिक्षु.....पूर्ववत्.....। तब उन अल्पेच्छ भिक्षुओं ने भगवान् से यह बात कही। भगवान् ने इस प्रसङ्ग में धार्मिक कथाएँ सुनाते हुए भिक्षुओं को बताया–"**भिक्षुओ! वर्षावास का प्रारम्भ करने के बाद, पहले तीन (श्रावण, भाद्रपद एवं आश्विन) मास या पिछले तीन (भाद्रपद, आश्विन एवं**

३. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू न इच्छन्ति वस्सं उपगन्तुं। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, वस्सं न उपगन्तब्बं। यो न उपगच्छेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू तदहुवस्सूपनायिकाय वस्सं अनुपगन्तुकामा सञ्चिच्च आवासं अतिक्कमन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, तदहुवस्सूपनायिकाय वस्सं अनुपगन्तुकामेन सञ्चिच्च आवासो अतिक्कमितब्बो। यो अतिक्कमेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

तेन खो पन समयेन राजा मागधो सेनियो **बिम्बिसारो** वस्सं उक्कड्डितुकामो भिक्खूनं सन्तिके दूतं पाहेसि—यदि पनाय्या आगमे जुण्हे वस्सं उपगच्छेय्युं ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, राजूनं अनुवत्तितुं**" ति।

३. सत्ताहकरणीयानुजानना

[R.139] ४. अथ खो भगवा राजगहे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन सावत्थि तेन चारिकं [B.194] पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन सावत्थि तदवसरि। तत्र सुदं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे।

तेन खो पन समयेन कोसलेसु जनपदे **उदेनेन** उपासकेन सङ्घं उद्दिस्स विहारो कारापितो होति। सो भिक्खूनं सन्तिके दूतं पाहेसि—"आगच्छन्तु भदन्ता, इच्छामि दानं च

कार्तिक) मास विना एक जगह बसे चारिका नहीं करनी चाहिये। जो करेगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा।" (४)

३. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वर्षावास हेतु एक स्थान पर नहीं रहना चाहते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा–) "**भिक्षुओ! वर्षाकाल में एक जगह न रहने की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। जो वर्षावास के लिये एक जगह न रहे उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**" (५)

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वर्षावास न रखने की इच्छा से वर्षोपनायिका तिथि को ही जान बूझकर (सञ्चित्य) भिक्षु–आवास छोड़ देते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा–) "**भिक्षुओ! वर्षाकाल न करने की इच्छा से वर्षोपनायिका के दिन जानबूझकर भिक्षु–आवास नहीं छोडना चाहिये। जो छोड़ेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**" (६)

उस समय राजा मागध श्रेणिय **बिम्बिसार** ने अधिक मास बढाने के लिये दूत भेजकर सङ्घ को कहलवाया कि अच्छा हो आर्य लोग आगामी वर्षावास में एक मास अधिक जोड़ दें। भगवान् से इस विषय में अनुमति माँगी गयी। (भगवान् ने कहा–) "**भिक्षुओ! (इस विषय में) राजाज्ञा मानने की मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ।**" (७)

३. सप्ताहमात्र के लिये वर्षावास में शिथिलता

४. तब भगवान् राजगृह में इच्छानुसार साधना के बाद, **श्रावस्ती** की तरफ चारिका हेतु निकल पड़े। वे क्रमशः चारिका करते हुए श्रावस्ती नगरी पहुँचे। श्रावस्ती में भगवान् जेतवन में **अनाथपिण्डक** श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवन जाकर विराजे।

उस समय कोसल जनपद में **उदयन** उपासक ने सङ्घ के लिये एक विहार (साधनास्थल=आश्रम) बनवाया था। उसने भिक्षुओं के पास दूत भेजकर कहलावाया–"भदन्त आवें।

दातुं, धम्मं च सोतुं, भिक्खू च पस्सितुं'' ति। भिक्खू एवमाहंसु—''भगवता, आवसो, पञ्ञत्तं—'न वस्सं उपगन्त्वा पुरिमं वा तेमासं पच्छिमं वा तेमासं अवसित्वा चारिका पक्कमितब्बा' ति। आगमेतु उदेनो उपासको, याव भिक्खू वस्सं वसन्ति। वस्सं वुत्था आगमिस्सन्ति। सचे पनस्स अच्चायिकं करणीयं, तत्थेव आवासिकानं भिक्खूनं सन्तिके विहारं पतिट्ठापेतू'' ति। उदेनो उपासको उज्झायति खिय्यति विपाचेति—''कथं हि नाम भदन्ता मया पहिते न आगच्छिस्सन्ति! अहं हि दायको कारको सङ्घुपट्ठाको'' ति। अस्सोसुं खो भिक्खू उदेनस्स उपासकस्स उज्झायन्तस्स खिय्यन्तस्स विपाचेन्तस्स। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं [N.146] पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**अनुजानामि, भिक्खवे, सत्तन्नं सत्ताहकरणीयेन पहिते गन्तुं, न त्वेव अप्पहिते। भिक्खुस्स, भिक्खुनिया, सिक्खमानाय, सामणेरस्स, सामणेरिया, उपासकस्स, उपासिकाय—अनुजानामि, भिक्खवे, इमेसं सत्तन्नं सत्ताहकरणीयेन पहिते गन्तुं, न त्वेव अप्पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**''

५. ''इध पन, भिक्खवे, उपासकेन सङ्घं उद्दिस्स विहारो कारापितो होति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—''आगच्छन्तु भदन्ता, इच्छामि दानं च दातुं, धम्मं च सोतुं, भिक्खू च पस्सितुं'' ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, पहिते, न त्वेव अप्पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

मैं धर्मोपदेश सुनना चाहता हूँ, भिक्षुओं को दान भी देना चाहता हूँ तथा भिक्षुओं के दर्शन भी करना चाहता हूँ।'' भिक्षुओ ने उत्तर दिया—''आयुष्मन्! भगवान् का आदेश है कि 'वर्षावास प्रारम्भ करने के बाद पहले या बाद के तीन मास तक उसे पूर्ण करके ही पुनः चारिका प्रारम्भ करनी चाहिये।' अतः **उदयन** उपासक को तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिये जब तक कि वर्षावास पूर्ण नहीं हो जाता। वर्षाकाल समाप्त करके ही भिक्षु आ पायँगें। यदि उनका कोई धार्मिक कृत्य रुक रहा हो तो वहाँ (कोसल) के भिक्षुओं से पूर्ण करा लें।''

(यह सुनकर) उदयन उपासक के दुःखी व उद्विग्न हुआ—''क्यो भदन्त मेरे सन्देश भेजने पर भी नहीं आये! मैं दानदायक, धर्मकारक एवं सङ्घ का उपासक हूँ।'' भिक्षुओं ने उदयन उपासक का दुःखित होना सुना। तब उन भिक्षुओं ने भगवान् को यह बात बतायी। तब भगवान् ने इस विषय में इस प्रकरण में धार्मिक कथाएँ कहते हुए भिक्षुओं को आदेश दिया— **''भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इन सात व्यक्तियों को, सन्देश आने पर न कि विना सन्देश आये, सप्ताह मात्र के लिये वर्षावास छोडकर कार्य हेतु जाने की। भले ही इनमें से जिस किसी का भी कार्य हो— १. भिक्षु का, २. भिक्षुणी का, ३. शिक्षमाणा का, ४. श्रामणेर का, ५. श्रामणेरी का, ६. उपासक का या ७. उपासिका का। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ— इन सातों का सप्ताह मात्र का कार्य उपस्थित होने पर सन्देश आने पर जाने की, किन्तु सन्देश आये विना नहीं जाना चाहिये। सप्ताहमात्र रहकर पुनः लौट आना चाहिये।''**(८)

५. ''जब, भिक्षुओ! किसी उपासक ने सङ्घ के लिये विहार बनवाया हो और यदि वह भिक्षुओं के पास सन्देश भेजे—'भदन्त आवें, मैं दान देता चाहता हूँ, धर्मोपदेश सुनना चाहता हूँ तथा सङ्घ के दर्शन करना चाहता हूँ' तो भिक्षुओ! ऐसा सन्देश आने पर, सप्ताहमात्र के लिये उक्त

"इध पन, भिक्खवे, उपासकेन **सङ्घं उद्दिस्स अड्ढयोगो कारापितो** होति।....पे०.... पासादो कारापितो होति.....हम्मियं कारापितं होति.....गुहा कारापिता होति.....परिवेणं कारापितं होति......कोट्ठको कारापितो होति.....उपट्ठानसाला कारापिता होति.....अग्गिसाला कारापिता होति.....कप्पियकुटि कारापिता होति.....वच्चकुटि कारापिता होति.....चङ्कमो कारापितो होति.....चङ्कमनसाला कारापिता होति.....उदपानो कारापितो होति.....उदपानसाला [B.195] कारापिता होति....जन्ताघरं कारापितं होति....जन्ताघरसाला कारापिता होति.... [R.140] पोक्खरणी कारापिता होति.....मण्डपो कारापितो होति....आरामो कारापितो होति....आरामवत्थु कारापितं होति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"आगच्छन्तु भदन्ता, इच्छामि दानं च दातुं, धम्मं च सोतुं, भिक्खू च पस्सितुं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, पहिते, न त्वेव अप्पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

"इध पन, भिक्खवे, उपासकेन **सम्बहुले भिक्खू उद्दिस्स**.....पे०....।

एकं उद्दिस्स विहारो कारापितो होति.....अड्ढयोगो कारापितो होति....पासादो कारापितो होति....हम्मियं कारापितं होति....गुहा कारापिता होति....परिवेणं कारापितं होति....कोट्ठको कारापितो होति.....उपट्ठानसाला कारापिता होति....अग्गिसाला कारापिता होति....कप्पियकुटि कारापिता होति.....उदपानो कारापितो होति....उदपानसाला कारापिता होति....जन्ताघरं कारापितं होति...जन्ताघरसाला कारापिता होति....पोक्खरणी कारापिता होति....मण्डपो कारापितो होति.....आरामो कारापितो होति....आरामवत्थु कारापितं होति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"आगच्छन्तु भदन्ता, इच्छामि दानं च दातुं, धम्मं च सोतुं, भिक्खू च पस्सितुं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, पहिते, न त्वेव अप्पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

कार्य हेतु जाने की अनुमति देता हूँ। किन्तु सन्देश न आने पर नहीं जाना चाहिये। और जाने पर सप्ताह भर में लौट आना चाहिये।" (९)

यहाँ, भिक्षुओ! किसी उपासक ने सङ्घ के लिये हवेली (आढ्ययोग) बनवायी हो....प्रासाद (महल)....हर्म्य ..गुफा....परिवेण....कोठा.....उपस्थानशाला....अग्निशाला.....कल्प्य (हजामत) कुटी.... शौचालय.....चंक्रमण.....चंक्रमणशाला.....उदपान (प्याऊ)....स्नानगृह.....(जन्ताघर), पुष्करिणी....मण्डप....आराम (उद्यान)...तथा उद्यान में आवास बनवाया हो और वह भिक्षुओं के पास सन्देश भेजे—'भदन्त आवें, मैं दानकर्म, धर्मकर्म तथा सङ्घकर्म करना चाहता हूँ'। तो, भिक्षुओ! सप्ताहमात्र समय के लिये जाना चाहिये। सप्ताह के बाद तत्काल पुनः लौट आना चाहिये।" (१०)

यहाँ, भिक्षुओ! किसी उपासक ने बहुत से भिक्षुओं के निमित्त हवेली (अड्ढयोग)...पूर्ववत्... .। सप्ताह के बाद तत्काल लौट आना चाहिये।

....किसी उपासक ने एक भिक्षु के निमित्त विहार....हवेली.....प्रासाद.....हर्म्य (कई मंजिल का मकान)......गुहा .....परिवेण.....कोठा.... उपस्थानशाला.....अग्निशाला.....कल्प्यकुटी (हजामत बनाने का स्थान).....शौचालय (वच्चकुटी)....चङ्कमण ....चङ्कमणशाला.... प्याऊ......स्थान स्थान पर अनेक प्याऊ..... स्नानगृह......स्थान स्थान पर अनेक स्नानगृह ....पुष्करिणी.. .मण्डप.....उद्यान ....उद्यान में आवास स्थान बनवाया हो। वह यदि भिक्षुओं के पास दूत भेजे......पूर्ववत्.....सप्ताह के बाद तत्काल पुनः लौट आना चाहिये।

"इध पन, भिक्खवे, उपासकेन **भिक्खुनीसङ्घं उद्दिस्स....**पे०....सम्बहुला [N.147] भिक्खुनियो उद्दिस्स...पे०....एकं भिक्खुनिं उद्दिस्स...पे०.....सम्बहुला सिक्खमानायो उद्दिस्स....पे०....एकं सिक्खमानं उद्दिस्स....पे०....सम्बहुले सामणेरे उद्दिस्स...पे०....एकं सामणेरं उद्दिस्स....पे०....सम्बहुला सामणेरियो उद्दिस्स....पे०.... एकं सामणेरिं उद्दिस्स विहारो कारापितो होति.....पे०.....अड्ढयोगो कारापितो होति....पासादो कारापितो होति....हम्मियं कारापितं होति.....गुहा कारापिता होति....परिवेणं कारापितं होति.... [B.196] कोट्ठको कारापितो होति.....उपट्ठानसाला कारापिता होति.....अग्गिसाला कारापिता होति....कप्पियकुटि कारापिता होति....चङ्कमो कारापितो होति.....चङ्कमनसाला कारापिता होति.....उदपानो कारापितो होति....उदपानसाला कारापिता होति.....पोक्खरणी कारापिता होति.....मण्डपो कारापितो होति....आरामो कारापितो होति.....आरामवत्थु कारापितं होति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"आगच्छन्तु भदन्ता, इच्छामि दानं च दातुं, धम्मं च सोतुं, भिक्खू च पस्सितुं" ति **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, पहिते, न त्वेव अप्पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

६. "इध पन, भिक्खवे, **उपासकेन अत्तनो अत्थाय निवेसनं कारापितं होति....**पे०. ..सयनिघरं कारापितं होति....उदोसितो कारापितो होति....अट्टो कारापितो होति....माळो कारापितो होति....आपणो कारापितो होति....आपणसाला कारापिता होति.....पासादो कारापितो होति....हम्मियं कारापितं होति....गुहा कारापिता होति....परिवेणं कारापितं होति....कोट्ठको कारापितो होति....उपट्ठानसाला कारापिता होति......अग्गिसाला कारापिता होति....रसवती कारापिता होति....चङ्कमो कारापितो होति.....चङ्कमनसाला कारापिता होति.....उदपानो कारापितो होति.....उदपानसाला कारापिता होति.....पोक्खरणी कारापिता होति.....मण्डपो कारापितो होति.....आरामो कारापितो होति.....आरामवत्थु कारापितं होति.....पुत्तस्स वा वारेय्यं होति....धीतुया वा वारेय्यं होति.....गिलानो वा

.....किसी उपासक ने भिक्षुणीसङ्घ के निमित्त......।

......किसी उपासक ने बहुत सी भिक्षुणियों के निमित्त......।

....किसी उपासक ने एक भिक्षुणी के निमित्त......।

.....किसी उपासक ने बहुत सी शिक्षमाणाओ के निमित्त......।

. ..एक शिक्षमाणा के निमित्त......

......बहुत से श्रामणेरों के लिये......।

......बहुत सी श्रामणेरियों के निमित्त.....।

.....एक श्रामणेरी के निमित्त......। सप्ताह के बाद तत्काल पुनः लौट आना चाहिये।

६. यहाँ, भिक्षुओ[1] किसी उपासक ने अपने लिये घर (आवास) बनवाया हो....पूर्ववत्....। शयनीय गृह.....उद्दोषित (रात्रिनिवास) अट्टालिका....माल (सड़क पर ऊँचा मकान).....दुकान.....अनेक दुकानें.... प्रासाद.....हर्म्य.....गुफा....परिवेण.....कोठा.....उपस्थानशाला.....अग्निशाला....रसवती (रसोईघर).....चंक्रम.....चक्रमणशाला..... प्याऊ.....स्थान स्थान पर अनेक प्याऊ.....पुष्करणी.. मण्डप..... उद्यान......उद्यान में आवास बनवाया हो....पुत्र का विवाह हो....पुत्री का विवाह हो....उपासक रोगी

होति.....अभिञ्ञातं वा सुत्तन्तं भणति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"आगच्छन्तु भदन्ता, इमं सुत्तन्तं परियापुणिस्सन्ति, पुरायं सुत्तन्तो न पलुज्जती" ति। अञ्ञतरं वा पनस्स [R.141] किच्चं होति—करणीयं वा, सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"आगच्छन्तु भदन्ता, इच्छामि दानं च दातुं धम्मं च सोतुं, भिक्खू च पस्सितुं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, पहिते, न त्वेव अप्पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

[N.148, B.197] ७. "इध पन, भिक्खवे, **उपासिकाय सङ्घं उद्दिस्स विहारो कारापितो** होति। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि दानं च दातुं, धम्मं च सोतुं, भिक्खू च पस्सितुं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, पहिते, न त्वेव अप्पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

"इध पन, भिक्खवे, **उपासिकाय सङ्घं उद्दिस्स अड्ढयोगो कारापितो** होति .....पे०....पासादो कारापितो होति....हम्मियं कारापितं होति....गुहा कारापिता होति....परिवेणं कारापितं होति....कोट्ठको कारापितो होति.....उपट्ठानसाला कारापिता होति.....अग्गिसाला कारापिता होति.....कप्पियकुटि कारापिता होति.....वच्चकुटि कारापिता होति....चङ्कमो कारापितो होति....चङ्कमनसाला कारापिता होति.....उदपानो कारापितो होति.....उदपानसाला कारापिता होति....जन्ताघरं कारापितं होति....जन्ताघरसाला कारापिता होति.....आरामवत्थु कारापितं होति। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि दानं च दातुं, धम्मं च सोतुं, भिक्खू च पस्सितुं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, पहिते, न त्वेव अप्पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

"इध पन, भिक्खवे, **उपासिकाय सम्बहुले भिक्खू उद्दिस्स**....पे०....एकं भिक्खुं उद्दिस्स.....पे०....भिक्खुनीसङ्घं उद्दिस्स....पे०....सम्बहुला भिक्खुनियो उद्दिस्स....पे०....एकं भिक्खुनिं उद्दिस्स.....पे०....सम्बहुला सिक्खमानायो उद्दिस्स....पे०.....एकं सिक्खमानं

हो ..उपासक उत्तम सूत्रान्त (बुद्धोपदेश) का पाठ करता हो। वह भिक्षुओं के पास सन्देशहर भेजे—"आइये, भन्ते, इस सूत्रान्त को सीखें, अन्यथा ऐसा न हो कि यह सूत्रान्त धारण न करने के कारण लुप्त हो जाय। या उसका कोई अन्य कार्य करणीय हो और वह भिक्षुओ के पास सन्देश भेजे—'आर्य (भदन्त) जन मेरे यहाँ पधारें, मैं दान भी करना चाहता हूँ, धर्म भी सुनना चाहता हूँ, तथा सङ्घ के दर्शन भी करना चाहता हूँ।' तो भिक्षुओ! (समय निकाल कर) सप्ताह मात्र के लिये जाना चाहिये। यह भी सन्देश आने पर ही; विना सन्देश आये नहीं जाना चाहिये। यहाँ से सप्ताह मात्र समय में लौटना अनिवार्य है।

७. यहाँ, भिक्षुओ! किसी उपासिका ने सङ्घ के निमित्त विहार (बड़ा आश्रम) बनवाया हो...पूर्ववत्.....।

यहाँ, भिक्षुओ! किसी उपासिका ने सङ्घ के निमित्त अट्टालिका (हवेली).....सप्ताहमात्र में लौट आना चाहिये।

यहाँ, भिक्षुओ! किसी उपासिका ने बहुत से भिक्षुओं के निमित्त....एक भिक्षु के निमित्त....भिक्षुणीसङ्घ के निमित्त.....बहुत सी भिक्षुणियों के निमित्त.....एक भिक्षुणी के निमित्त.... बहुत सी शिक्षमाणाओं के निमित्त.....एक शिक्षमाणा के निमित्त.....बहुत से श्रामणेरों के निमित्त.....एक

उद्दिस्स....पे०....सम्बहुले सामणेरे उद्दिस्स....पे०....एकं सामणेरं उद्दिस्स....पे०....सम्बहुला सामणेरियो उद्दिस्स....पे०.....एकं सामणेरिं उद्दिस्स....पे०....।

८. ''इध पन, भिक्खवे, उपासिकाय अत्तनो अत्थाय निवेसनं कारापितं होति ....पे०....सयनिघरं कारापितं होति....उदोसितो कारापितो होति....अट्टो कारापितो होति....माळो कारापितो होति.....आपणो कारापितो होति....आपणसाला कारापिता होति... पासादो कारापितो होति.....हम्मियं कारापितं होति....गुहा कारापिता होति....परिवेणं [B.198] कारापितं होति....कोट्ठको कारापितो होति.....उपट्ठानसाला कारापिता होति....अग्गिसाला कारापिता होति.....रसवती कारापिता होति....चङ्कमो कारापितो होति.....चङ्कमनसाला कारापिता होति....उदपानो कारापितो होति.....उदपानसाला कारापिता होति.....पोक्खरणी कारापिता होति....मण्डपो कारापितो होति....आरामो कारापितो होति....आरामवत्थु कारापितं होति....पुत्तस्स वा वारेय्यं होति....धीतुया वा वारेय्यं होति....गिलाना वा होति....अभिञ्ञातं वा सुत्तन्तं भणति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—''आगच्छन्तु अय्या, इमं सुत्तन्तं परियापुणिस्सन्ति, पुरायं सुत्तन्तो न पलुज्जती ति। अञ्ञतरं वा पनस्सा [N.149] किच्चं होति करणीयं वा, सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि, दानं च दातुं, धम्मं च सोतुं, भिक्खू च पस्सितुं ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, पहिते, न त्वेव अप्पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

९. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना सङ्घं उद्दिस्स....पे०....भिक्खुनिया सङ्घं उद्दिस्स....सिक्खमानाय सङ्घं उद्दिस्स....सामणेरेन सङ्घं उद्दिस्स....सामणेरिया सङ्घं उद्दिस्स.... सम्बहुले भिक्खू उद्दिस्स.....एकं भिक्खुं उद्दिस्स....भिक्खुनीसङ्घं उद्दिस्स.....सम्बहुला भिक्खुनियो उद्दिस्स....एकं भिक्खुनिं उद्दिस्स.....सम्बहुला सिक्खमानायो उद्दिस्स....एकं सिक्खमानं उद्दिस्स....सम्बहुले सामणेरे उद्दिस्स....एकं सामणेरं उद्दिस्स.... सम्बहुला सामणेरियो उद्दिस्स...एकं सामणेरिं उद्दिस्स....अत्तनो अत्थाय विहारो कारापितो [R.142] होति.... पे०....अड्डयोगो कारापितो होति....पासादो कारापितो होति.....हम्मियं कारापितं होति....गुहा कारापिता होति.....परिवेणं कारापितं हाति....कोट्ठको कारापितो होति.... उपट्ठानसाला कारापितो होति....अग्गिसाला कारापिता होति....कप्पियकुटि कारापितो होति....चङ्कमो कारापितो होति....चङ्कमनसाला कारापिता होति.....उदपानो कारापितो होति....उदपानसाला कारापिता होति....पोक्खरणी कारापिता होति....मण्डपो कारापितो होति....आरामो कारपितो होति...आरामवत्थु कारापितं होति। सा चे भिक्खूनं सन्तिके

श्रामणेर के निमित्त... बहुत सी श्रामणेरियों के निमित्त... एक श्रामणेरी के निमित्त....सप्ताह मे लौट आना आवश्यक है।

८. यहाँ, भिक्षुओ! किसी उपासिका ने अपने लिये घर बनवाया हो. ..शयनीय गृह ..रात्रिनिवास . . पूर्ववत् .उपासिका रोगी हो ..उत्तम सूत्रान्त (बुद्धोपदेश) का पाठ करती हो। वह यदि भिक्षुओं के पास दूत.....पूर्ववत्.....लौट आना आवश्यक है।

९ यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु ने सङ्घ के निमित्त भिक्षुणी से सङ्घ के निमित्त .पूर्ववत्. .अपने

[B.199] दूतं पहिणेय्य—"आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि, दानं च दातुं, धम्मं च सोतुं, भिक्खू च पस्सितुं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, पहिते; न त्वेव अप्पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो** ति।

४. पञ्चन्नं अप्पहिते पि अनुजानना

१०. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु गिलानो होति। सो भिक्खूनं सन्तिके दूतं पाहेसि—"अहं हि गिलानो, आगच्छन्तु भिक्खू, इच्छामि भिक्खूनं आगतं" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, पञ्चन्नं सत्ताहकरणीयेन अप्पहिते पि गन्तुं, पगेव पहिते। भिक्खुस्स, भिक्खुनिया, सिक्खमानाय, सामणेरस्स, सामणेरिया—अनुजानामि, भिक्खवे, इमेसं पञ्चन्नं सत्ताहकरणीयेन अप्पहिते पि गन्तुं, पगेव पहिते।" सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु गिलानो होति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"अहं हि गिलानो, आगच्छन्तु भिक्खू, इच्छामि भिक्खूनं आगतं ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—गिलानभत्तं वा परियेसिस्सामि, गिलानुपट्ठाकभत्तं वा परियेसिस्सामि, गिलानभेसज्जं वा परियेसिस्सामि, पुच्छिस्सामि वा, उपट्ठहिस्सामि वा" ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो। (क)**

[N.150] "इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स अनभिरति उप्पन्ना होति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"अनभिरति मे उप्पन्ना, आगच्छन्तु भिक्खू, इच्छामि भिक्खूनं आगतं ति,

---

लिये विहार....अड्ढयोग....प्रासाद.....पूर्ववत्....उद्यान में आवास बनवाया हो....सप्ताह में पुनः लौट आना आवश्यक है।

४. विना सन्देश आये भी जाने की अनुमति

१०. (१) उस समय कोई भिक्षु रोगाक्रान्त था। उसने भिक्षुओं के पास यह कहकर दूत भेजा—"मैं रोगाक्रान्त हूँ। भिक्षु आवें। मै भिक्षुओं के दर्शन चाहता हूँ।" भगवान् को यह स्थिति बतायी गयी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ विना सन्देश आये भी इन पाँचों के पास जाने की। सन्देश आने पर तो कहना ही क्या है! जैसे— १. भिक्षु के (कार्यहेतु), २. भिक्षुणी के, ३. शिक्ष्यमाण के, ४. श्रामणेर के एवं ५. श्रामणेरी के कार्य हेतु। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इन पाँचों के कार्य के निमित्त वर्षावास छोडकर सप्ताहमात्र के लिये जाने की; भले ही इस कार्य के लिये कोई सन्देश आये या न आये। हाँ, सप्ताह के बाद अवश्य लौट आना चाहिये।**

(१) "यहाँ, भिक्षुओ! कोई **भिक्षु** रोगाक्रान्त हो। वह यदि दूत द्वारा सन्देश भेजे—'मैं रोगाक्रान्त हूँ, भिक्षु लोग आवें, मै भिक्षुओं के दर्शन करना चाहता हूँ।' तो भिक्षुओ! सप्ताहमात्र के लिये, सन्देश आये या न आये, उसको देखने के लिये जाना ही चाहिये। उस रोगी के पास भिक्षु को इस सङ्कल्प से जाना चाहिये कि मैं वहाँ जाकर रोगी के परिचारक का, रोगी के लिये ओषधि का प्रबन्ध करूँगा, उसका कुशल—मङ्गल पूछूँगा, उसकी सेवा—शुश्रूषा करूँगा। सप्ताह के बाद लौट आना चाहिये। (क)

"यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु को संन्यास (प्रव्रज्या) से अनभिरुचि (मन उचटना) हो गयी हो। वह सन्देश भेजे—'मेरा मन उचट गया है, भिक्षु लोग आवें, मैं भिक्षुओं के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा

गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—अनभिरतं वूपकासेस्सामि वा, वूपकासापेस्सामि वा, धम्मकथं वास्स करिस्सामी'' ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातबो। (ख)

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स कुक्कुच्चं उप्पन्नं हाति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—''कुक्कुच्चं मे उप्पन्नं, आगच्छन्तु भिक्खू, इच्छामि भिक्खूनं आगतं ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—कुक्कुच्चं विनोदेस्सामि वा, विनोदापेस्सामि वा, धम्मकथं करिस्सामी'' ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो। (ग)**

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति। सो चे [B.200, R.143] भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—''दिट्ठिगतं मे उप्पन्नं, आगच्छन्तु भिक्खू, इच्छामि भिक्खूनं आगतं ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—दिट्ठिगतं विवेचेस्सामि वा, विवेचापेस्सामि वा, धम्मकथं वास्स करिस्सामी'' ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो। (घ)**

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु गरुधम्मं अज्झापन्नो होति परिवासारहो। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—''अहं हि गरुधम्मं अज्झापन्नो परिवासारहो, आगच्छन्तु भिक्खू, इच्छामि भिक्खूनं आगतं ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते-परिवासदानं उस्सुकं करिस्सामि वा, अनुस्सावेस्सामि वा, गणपूरको वा भविस्सामी'' ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो। (ङ)**

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु मूलाय पटिकस्सनारहो होति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—''अहं हि मूलाय पटिकस्सनारहो, आगच्छन्तु भिक्खू, इच्छामि भिक्खूनं आगतं ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—मूलाय पटिकस्सनं उस्सुकं करिस्सामि वा, अनुस्सावेस्सामि वा, गणपूरको वा भविस्सामी'' ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो। (च)**

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु मानत्तारहो होति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—''अहं हि मानत्तारहो, आगच्छन्तु भिक्खू, इच्छामि भिक्खूनं आगतं ति, **गन्तब्बं,**

हूँ।' तो भिक्षुओ! विना सन्देश आये भी सप्ताह मात्र के लिये इस सङ्कल्प के साथ उस के पास जाना चाहिये कि मै उसके मन के उचाट को दूर करूँगा या दूर करवाऊँगा, उसे एतदर्थ धार्मिक कथा कहूँगा।.....।(ख)

''यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु को सन्देह (कौकृत्य) उत्पन्न हो। वह सन्देश भेजे–.....पूर्ववत्...('सन्देह' शब्द लगाकर)।....। (ग)

''यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु को मिथ्या धारणा (दृष्टि) उत्पन्न हो गयी हो....पूर्ववत्.....'मिथ्या धारणा को दूर करूँगा या कराऊँगा, धर्मकथा सुनाऊँगा'.... । (घ)

''यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु को परिवास (प्रतीक्षा) योग्य महान् दोष लग गया हो . पूर्ववत् ..'परिवास सहने योग्य यत्न करूँगा, या प्रयत्न कराऊँगा, धर्मकथा सुनाऊँगा, या गणपूरक होऊँगा'.....।.....। (ङ)

''यहाँ, भिक्षुओ! भिक्षु मूलप्रतिकर्षण दण्ड के योग्य हो ..पूर्ववत् ..। (च)

भिक्खवे, **सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—मानत्तदानं उस्सुक्कं करिस्सामि वा, अनुस्सावेस्सामि वा, गणपूरको वा भविस्सामी'' ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।** (छ)

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु अब्भानारहो होति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—''अहं हि अब्भानारहो, आगच्छन्तु भिक्खू, इच्छामि भिक्खूनं आगतं ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—अब्भानं उस्सुक्कं करिस्सामि वा, अनुस्सावेस्सामि वा, गणपूरको वा भविस्सामी'' ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।** (ज)

[B.201] ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स सङ्घो कम्मं कत्तुकामो होति तज्जनीयं वा, [N.151] नियस्सं वा, पब्बाजनीयं वा, पटिसारणीयं वा, उक्खेपनीयं वा। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—''सङ्घो मे कम्मं कत्तुकामो, आगच्छन्तु भिक्खू, इच्छामि भिक्खूनं [R.144] आगतं ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—किं ति नु खो सङ्घो कम्मं न करेय्य, लहुकाय वा परिणामेय्या'' ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।** (झ)

कतं वा पनस्स होति सङ्घेन कम्मं तज्जनीयं वा नियस्सं वा पब्बाजनीयं वा पटिसारणीयं वा उक्खेपनीयं वा। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—''सङ्घो मे कम्मं अकासि, आगच्छन्तु भिक्खू, इच्छामि भिक्खूनं आगतं ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—किं ति नु खो सम्मा वत्तेय्य, लोमं पातेय्य, नेत्थारं वत्तेय्य, सङ्घो तं कम्मं पटिप्पस्सम्भेय्या'' ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।** (ञ)

११. इध पन, भिक्खवे, **भिक्खुनी** गिलाना होति। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—''अहं हि गिलाना, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं'' ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—गिलानभत्तं वा परियेसिस्सामि, गिलानुपट्ठाकभत्तं वा परियेसिस्सामि, गिलानभेसज्जं वा परियेसिस्सामि, पुच्छिस्सामि वा, उपट्ठहिस्सामि वा' ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।** (क)

''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु मानत्व दण्ड के योग्य हो ....पूर्ववत् ....। ....। (छ)

''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु आह्वान के योग्य हो . पूर्ववत्. . ।. . । (ज)

''यहाँ, भिक्षुओ! सङ्घ किसी भिक्षु का दण्डकर्म–तर्जनीय न्यासयोग्य, प्रव्राजनीय, प्रतिसारणीय, उत्क्षेपणीय–करना चाहे और वह.. पूर्ववत्.....'सङ्घ यह कठोर दण्डकर्म न करे, या अपेक्षाकृत कम दण्ड दें', . ..।. . । (झ)

''या भिक्षुओ! सङ्घ ने किसी भिक्षु को तर्जनीय ..दण्डकर्म कर दिया हो, और वह भिक्षु भिक्षुओं के पास.....पूर्ववत् ...। ऐसा प्रयत्न करने के लिये वह (दण्ड्य) भिक्षु भिक्षुओं के साथ सद्व्यवहार करे, नम्रता रखे, छुटकारे के लिये ऐसा व्यवहार करे कि उस व्यवहार से प्रभावित होकर सङ्घ उस दण्ड से मुक्त कर दे।.....। (ञ)

११. (२) यहाँ, भिक्षुओ! कोई **भिक्षुणी** रोगाक्रान्ता हो पूर्ववत् । (क)

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुनिया अनभिरति उप्पन्ना होति। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—अनभिरति मे उप्पन्ना, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—अनभिरतं वूपकासेस्सामि वा, वूपकासापेस्सामि वा, धम्मकथं वास्सा करिस्सामी ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।** (ख)

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुनिया कुक्कुच्चं उप्पन्नं हाति। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—कुक्कुच्चं मे उप्पन्नं, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—कुक्कुच्चं विनोदेस्सामि वा, वा, विनोदापेस्सामि वा, धम्मकथं वास्सा करिस्सामी ति। सत्ताहं सन्निवत्तो** [B.202] **कातब्बो।** (ग)

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुनिया दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—दिट्ठिगतं मे उप्पन्नं, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—दिट्ठिगतं विवेचेस्सामि वा, विवेचापेस्सामि वा, धम्मकथं वास्सा करिस्सामी ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।** (घ)

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुनी गरुधम्मं अज्झापन्ना होति मानत्तारहा। सा चे [R.145] भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—अहं हि गरुधम्मं अज्झापन्ना मानत्तारहा, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—मानत्तदानं उस्सुक्कं करिस्सामी ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।** (ङ)

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुनी मूलाय पटिकस्सनारहा होति। सा चे भिक्खूनं [N.152] सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"अहं हि मूलाय पटिकस्सनारहा, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—मूलाय पटिकस्सनं उस्सुक्कं करिस्सामी ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।** (च)

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुनी अब्भानारहा होति। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"अहं हि अब्भानारहा, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—अब्भानं उस्सुक्कं करिस्सामी ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।** (छ)

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुनिया सङ्घो कम्मं कत्तुकामो होति—तज्जनीयं वा, नियस्सं

....किसी भिक्षुणी को अनभिरुचि हुई हो.....पूर्ववत्....। (ख)
....किसी भिक्षुणी को सन्देह उत्पन्न हुआ हो.....पूर्ववत्....। (ग)
. ....किसी भिक्षुणी को मिथ्या धारणा उत्पन्न हुई हो.....पूर्ववत्.....। (घ)
....किसी भिक्षुणी को मानत्वार्ह गुरु धर्म उत्पन्न. . .पूर्ववत्.....। (ङ)
....किसी भिक्षुणी को मूल प्रतिकर्षण दण्ड.....पूर्ववत्.....। (च)
.....किसी भिक्षुणी को आह्वानयोग्य......पूर्ववत्......। (छ)

वा, पब्बाजनीयं वा, पटिसारणीयं वा, उक्खेपनीयं वा। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य— "सङ्घो मे कम्मं कत्तुकामो, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—किं ति नु खो सङ्घो कम्मं न करेय्य, लहुकाय वा परिणामेय्या ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो। (ज)**

[B.203] कतं वा पनस्सा होति सङ्घेन कम्मं—तज्जनीयं वा, नियस्सं वा, पब्बाजनीयं वा, पटिसारणीयं वा, उक्खेपनीयं वा। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य— "सङ्घो मे कम्मं अकासि, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—'किं ति नु खो सम्मा वत्तेय्य, लोमं पातेय्य, नेत्थारं वत्तेय्य, सङ्घो तं कम्मं पटिप्पस्सम्भेय्या' ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो। (झ)**

१२. इध पन, भिक्खवे, **सिक्खमाना** गिलाना होति। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"अहं हि गिलाना, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं" ति—**गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—गिलानभत्तं वा परियेसिस्सामि, गिलानुपट्ठाकभत्तं वा परियेसिस्सामि, गिलानभेसज्जं वा परियेसिस्सामि, पुच्छिस्सामि वा, उपट्ठहिस्सामि वा ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो। (क)**

[R.146] इध पन, भिक्खवे, सिक्खमानाय अनभिरति उप्पन्ना होति....पे०.... सिक्खमानाय कुक्कुच्चं उप्पन्नं होति....सिक्खमानाय दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति....सिक्खमानाय सिक्खा कुपिता होति। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"सिक्खा मे कुपिता, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—सिक्खासमादानं उस्सुक्कं करिस्सामी ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो। (ख-ङ)**

इध पन, भिक्खवे, सिक्खमाना उपसम्पज्जितुकामा होति। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"अहं हि उपसम्पज्जितुकामा, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते**—[N.153]

.......किसी भिक्षुणी के विरुद्ध सङ्घ को दण्डकर्म करना हो..... पूर्ववत्.....। (ज)

....कोई भिक्षुणी सङ्घ द्वारा दत्त दण्ड छुड़ाना चाहे ....पूर्ववत्....। (झ)

१२. (३) यहाँ, भिक्षुओ! कोई **शिक्षमाणा** रोगिणी हो.....पूर्ववत्....। (क)

.....किसी शिक्षमाणा को अनभिरुचि....पूर्ववत्....। (ख)

......सन्देह उत्पन्न हुआ हो......पूर्ववत् ....। (ग)

.....मिथ्या धारणा उत्पन्न.....पूर्ववत्.....। (घ)

.....किसी शिक्षमाणा की शिक्षा (आचार–नियम) टूट गयी हो,....'उसे शिक्षा ग्रहण कराने में प्रयत्न करूँगा'....पूर्ववत्....(ङ)

...कोई शिक्षमाणा उपसम्पदा लेना चाहती हो ....पूर्ववत् ...'उपसम्पदा ग्रहण कराने में उत्सुकता पैदा करूँगा' सुनाऊँगा या गण के सामने होऊँगा'.....।.....। (च)

[अनुपद में आये भिक्षुणी–पाठ की तरह अर्थ कर लेना चाहिये।]

उपसम्पदं उस्सुक्कं करिस्सामि वा, अनुस्सावेस्सामि वा, गणपूरको वा भविस्सामी" ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो। (च)

१३. इध पन, भिक्खवे, सामणेरो गिलानो होति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"अहं हि गिलानो, आगच्छन्तु भिक्खू, इच्छामि भिक्खूनं आगतं" ति, [B.204] **गन्तब्बं भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—गिलानभत्तं वा परियेसिस्सामि, गिलानुपट्ठाकभत्तं वा परियेसिस्सामि, गिलानभेसज्जं वा परियेसिस्सामि, पुच्छिस्सामि वा, उपट्ठहिस्सामि वा ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो। (क)**

इध पन, भिक्खवे, सामणेरस्स अनभिरति उप्पन्ना होति....पे०....सामणेरस्स कुक्कुच्चं उप्पन्नं होति....सामणेरस्स दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति....सामणेरो वस्सं पुच्छितुकामो होति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"अहं हि वस्सं पुच्छितुकामो, आगच्छन्तु भिक्खू, इच्छामि भिक्खूनं आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—पुच्छिस्सामि वा, आचिक्खिस्सामि वा ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो। (ख-ङ)**

इध पन, भिक्खवे, सामणेरो उपसम्पज्जितुकामो होति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य— "अहं हि उपसम्पज्जितुकामो, आगच्छन्तु भिक्खू, इच्छामि भिक्खूनं आगतं" ति, गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—उपसम्पदं उस्सुक्कं करिस्सामि वा, अनुस्सावेस्सामि वा, गणपूरको वा भविस्सामी ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो। (च)

१४. इध पन, भिक्खवे, सामणेरी गिलाना होति। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं [R.147] पहिणेय्य—"अहं हि गिलाना, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—गिलानभत्तं वा परियेसिस्सामि, गिलानुपट्ठाकभत्तं वा परियेसिस्सामि, गिलानभेसज्जं वा परियेसिस्सामि, पुच्छिस्सामि वा, उपट्ठहिस्सामि वा ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो। (क)**

इध पन, भिक्खवे, सामणेरिया अनभिरति उप्पन्ना होति...पे०....सामणेरिया कुक्कुच्चं

---

१३. (४) "यहाँ, भिक्षुओ! कोई **श्रामणेर** रोगी हो, वह भिक्षुओं के पास अपना सन्देशवाहक भेज कर कहे—'मैं रोगी हूँ....पूर्ववत्.....। वहाँ सप्ताह भर रह कर लौट आना चाहिये। (क)

"यहाँ किसी श्रामणेर को अनभिरति उत्पन्न हो.....। (ख)

"यहाँ किसी श्रामणेर को कौकृत्य उत्पन्न हो....। (ग)

"यहाँ किसी श्रामणेर को मिथ्या धारणा उत्पन्न हो....(घ)

"यहाँ कोई श्रामणेर उपसम्पन्न होना चाहे.. (सप्ताह)भर रह कर लौट आना चाहिये।

[अनुपद में भिक्षु के लिये आये पाठ को यहाँ भी पढ़ लें।]

१४. (५) "यहाँ कोई **श्रामणेरी** रोगाक्रान्त हो.....। (क)

उप्पन्नं होति.....सामणेरिया दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति...सामणेरी वस्सं पुच्छितुकामा होति। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य— "अहं हि वस्सं पुच्छितुकामा, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते— पुच्छिस्सामि वा, आचिक्खिस्सामि वा ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।** (ख-ङ)

[B.205] इध पन, भिक्खवे सामणेरी सिक्खं समादियितुकामा होति। सा चे भिक्खूनं सन्तिके दूतं पहिणेय्य—'अहं हि सिक्खं समादियितुकामा, आगच्छन्तु अय्या, इच्छामि अय्यानं आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते— सिक्खासमादानं उस्सुक्कं करिस्सामी ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो ति।** (च)

५. सत्तन्नं अप्पहिते पि अनुजानना

[N.154] १५. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो माता गिलाना होति। सा पुत्तस्स सन्तिके दूतं पाहेसि—"अहं हि गिलाना, आगच्छतु मे पुत्तो, इच्छामि पुत्तस्स आगतं" ति। अथ खो तस्स भिक्खुनो एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं सत्तन्नं सत्ताहकरणीयेन पहिते गन्तुं, न त्वेव अप्पहिते; पञ्चन्नं सत्ताहकरणीयेन अप्पहिते पि गन्तुं, पगेव पहिते ति। अयं च मे माता गिलाना, सा च अनुपासिका, कथं नु खो मया पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, सत्तन्नं सत्ताहकरणीयेन अप्पहिते पि गन्तुं, पगेव पहिते। भिक्खुस्स, भिक्खुनिया, सिक्खमानाय, सामणेरस्स, सामणेरिया, मातुया च पितुस्स च—अनुजानामि, भिक्खवे, इमेसं सत्तन्नं सत्ताहकरणीयेन अप्पहिते पि गन्तुं, पगेव पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**"

"यहाँ किसी श्रामणेरी को अनभिरति उत्पन्न हो.....। (ख)

".....कौकृत्य उत्पन्न हो......। (ग)

".....मिथ्या धारणा उत्पन्न हो.....। (घ)

".......वर्ष पूछना चाह......। (ङ)

"यहाँ कोई श्रामणेरी शिक्षा ग्रहण करना चाहे.....वहाँ सप्ताहभर रहकर ही पुन. लौट आना चाहिये। (च)

५. सात व्यक्तियों द्वारा न बुलाने पर भी जाने की अनुमति

१५ उस समय किसी भिक्षु की माँ रोगाक्रान्त हो गयी थी। उसने अपने पुत्र (भिक्षु) के पास दूत द्वारा सन्देश भेजा–'मैं रुग्ण हूँ, मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे आकर एक बार मिल जाओ।' तब उस भिक्षु को विचार हुआ–"भगवान् ने सन्देश भेजने पर पाँच जनों के पास सात दिन तक जाने की अनुमति दी है। उनमें माता की गणना तो है नहीं। फिर यहाँ मेरी माता का ही सन्देश आया है। मेरी यह माता (बुद्ध–धर्म की) उपासिका भी नहीं है। अब इस विषय में मुझे क्या करना चाहिये?" उसने भगवान् के सामने अपनी यह समस्या रखी। (भगवान् ने कहा–) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, इन सात जनों के पास सप्ताहपर्यन्त विना सन्देश भेजे भी, सन्देश आने पर तो कहना ही क्या है! वे सात ये हैं– १. भिक्षु, २. भिक्षुणी, २. शिक्ष्यमाणा, ४. श्रामणेर, ५. श्रामणेरी, ६. माता एवं ७.पिता। भिक्षुओ! इन सातों के पास, कार्य उपस्थित होने पर, विना बुलाये भी जाना चाहिये, बुलाने पर तो**

"इध पन, भिक्खवे माता गिलाना होति। सा चे पुत्तस्स सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"अहं हि गिलाना, आगच्छतु मे पुत्तो, इच्छामि पुत्तस्स आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते— गिलानभत्तं वा परियेसिस्सामि, गिलानुपट्ठाकभत्तं वा परियेसिस्सामि, गिलानभेसज्जं वा परियेसिस्सामि, पुच्छिस्सामि वा, उपट्ठहिस्सामि वा ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स पिता गिलानो होति। सो चे पुत्तस्स [R.148] सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"अहं हि गिलनो, आगच्छतु मे पुत्तो, इच्छामि पुत्तस्स आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, अप्पहिते पि, पगेव पहिते—गिलानभत्तं वा परियेसिस्सामि, गिलानुपट्ठाकभत्तं वा परियेसिस्सामि, गिलानभेसज्जं वा परियेसिस्सामि, पुच्छिस्सामि वा, उपट्ठहिस्सामि वा ति। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

६. पहितेयेव अनुजानना

१६. "इध पन, भिक्खवे, **भिक्खुस्स भाता** गिलानो होति। सो चे भातुनो [B.206] सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"अहं हि गिलानो, आगच्छतु मे भाता, इच्छामि भातुनो आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, पहिते, न त्वेव अप्पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

इध पन, भिक्खवे, **भिक्खुस्स भगिनी** गिलाना होति। सा चे भातुनो सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"अहं हि गिलाना, आगच्छतु मे भाता, इच्छामि, भातुनो आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, पहिते, न त्वेव अप्पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स ञातको गिलानो होति। सो चे भिक्खुस्स सन्तिके दूतं पहिणेय्य—"अहं हि गिलानो, आगच्छतु भदन्तो, इच्छामि भदन्तस्स आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, पहिते, न त्वेव अप्पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

कहना ही क्या है! (तब तो अवश्य जाना ही चाहिये।) वहाँ सप्ताहपर्यन्त ही रहकर लौट आना चाहिये।

(इन सातों में से प्रथम पाँच की चर्चा ऊपर हो चुकी है। अतः अब माता–पिता के ही विषय में विस्तार किया जा रहा है–)

"भिक्षुओ! किसी भिक्षु की माता रोगिणी हो, वह अपने (भिक्षु हुए) पुत्र को सन्देश भेजे–'मैं रुग्ण हूँ, मैं चाहती हूँ कि मेरा पुत्र मेरे पास आये।' भिक्षुओ! ऐसी अवस्था में (माता के रुग्ण होने पर) सप्ताहपर्यन्त तो उसके पास, विना बुलाये भी जाना चाहिये, बुलाने पर तो अनुमति की बात ही क्या है! हाँ, सप्ताह के बाद अवश्य लौट आना चाहिये।" (च)

"भिक्षुओ! किसी भिक्षु का पिता रुग्ण हो....सप्ताह पर्यन्त रहकर लौट आना चाहिये।" (छ)

६. पाँच के लिये, बुलाने पर ही, जाने की अनुमति

१६. "भिक्षुओ! यहाँ कभी किसी भिक्षु का भाई रुग्ण हो जाय, वह यदि अपने (भिक्षु हुए) भाई के पास किसी दूत द्वारा सन्देश भेजे.....पूर्ववत्...'तो भिक्षुओ! ऐसी परिस्थिति में बुलाने पर ही सप्ताहपर्यन्त के लिये जाना चाहिये, विना बुलाये नहीं। जाने पर भी सप्ताह में ही लौट आना चाहिये। (क)

इध पन, भिक्खवे, **भिक्खुभतिको**[१] गिलानो होति। सो चे भिक्खूनं सन्तिके [N.155] दूतं पहिणेय्य—"अहं हि गिलानो, आगच्छन्तु भदन्ता, इच्छामि भदन्तानं आगतं" ति, **गन्तब्बं, भिक्खवे, सत्ताहकरणीयेन, पहिते, न त्वेव अप्पहिते। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो।**

तेन खो पन समयेन सङ्घस्स विहारो उन्द्रियति। अञ्ञतरेन उपासकेन अरञ्ञे भण्डं छेदापितं होति। सो भिक्खूनं सन्तिके दूतं पाहेसि—"इचे भदन्ता तं भण्डं आवहापेय्युं, दज्जाहं तं भण्डं" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सङ्घकरणीयेन गन्तुं। सत्ताहं सन्निवत्तो कातब्बो** ति॥

वस्सावासभाणवारं निट्ठितं॥

७. अन्तराये अनापत्तिवस्सच्छेदवारं

१७. तेन खो पन समयेन कोसलेसु जनपदे अञ्ञतरस्मिं आवासे वस्सूपगता भिक्खू **वाळेहि** उब्बाळ्हा होन्ति। गण्हिंसु पि परितापिंसु पि। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। [B.207] **इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगता भिक्खू वाळेहि उब्बाळ्हा होन्ति। गण्हन्ति पि परिपातेन्ति पि। एसेव अन्तरायो ति पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स। (१)**

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगता भिक्खू **सरीसपेहि** उब्बाळ्हा होन्ति। डंसन्ति पि परिपातेन्ति पि। एसेव अन्तरायो ति पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स। (२)

"यदि, भिक्षुओ! किसी भिक्षु की बहन रुग्ण हो....। (ख)

"यदि, भिक्षुओ! किसी भिक्षु का रिश्तेदार (जाति भाई).....। (ग)

"यदि, भिक्षुओ! किसी भिक्षु का भृतिक (विहार का नौकर) रुग्ण हो....सप्ताह भर रहकर लौट आना चाहिये। (घ)

उस समय (वर्षा के समय) सङ्घ का कोई विहार टूट रहा था। उधर किसी उपासक ने जङ्गल में लकड़ियाँ कटवा रखी थीं। उसने भिक्षुओं को सन्देश भिजवाया कि यदि आप लोग यहाँ से यह सामान ले जा सकें तो मैं आपको यह दे सकता हूँ।' भिक्षुओं ने भगवान् के सम्मुख यह बात रखी। (भगवान् ने कहा—) **सङ्घ के कार्य से वर्षावास के बीच में भी अन्यत्र जाने की अनुमति देता हूँ; परन्तु जाने वाले भिक्षु को यह कार्य कर सप्ताह के अन्दर लौट आना चाहिये।"**

वर्षावास भाणवार समाप्त।।

७. विघ्न पड़ने पर वर्षावास व्रत छोड़ने की अनुमति

१७. उस समय कोसल देश के किसी भिक्षु—आवास में वर्षावास करते हुए भिक्षुओं को द्वेषी (ईर्ष्यालु) लोग कष्ट देने लगे। वे उन्हें पकड़ते भी थे और पीटते भी थे। भगवान् को यह बात बतायी. गयी। (भगवान् ने कहा—)

यदि, भिक्षुओ! वर्षावासी भिक्षु ऐसे ईर्ष्यालु लोगों से पीडित होने लगे तो उन भिक्षुओं को अपने वर्षावास में यह विघ्न मानकर उस स्थान को छोड़ देना चाहिये। इससे वर्षावास व्रत का भङ्ग नहीं माना जायगा। (१)

"भिक्षुओ! यहाँ कुछ भिक्षु वर्षावास करते समय जमीन पर रेगने वाले कीड़ों (साँप—विच्छु

---

१. भिक्खुगतिको—म०।

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगता भिक्खू **चोरेहि** उब्बाळ्हा होन्ति। [R.149] विलुम्पन्ति पि आकोटेन्ति पि। एसेव अन्तरायो ति पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स। (३)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगता भिक्खू **पिसाचेहि** उब्बाळ्हा होन्ति। अविसन्ति पि हनन्ति पि। एसेव अन्तरायो ति पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स। (४)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतानं भिक्खूनं **गामो अग्गिना दड्ढो** होति। भिक्खू पिण्डकेन किलमन्ति। एसेव अन्तरायो ति पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स। (५)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतानं भिक्खूनं सेनासनं अग्गिना दड्ढं होति। भिक्खू सेनासनेन किलमन्ति। एसेव अन्तरायो ति पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स। (६)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतानं भिक्खूनं गामो उदकेन वुळ्हो होति। भिक्खू पिण्डकेन किलमन्ति। एसेव अन्तरायो ति पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स। (७)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतानं भिक्खूनं सेनासनं उदकेन वुळ्हं होति। भिक्खू सेनासनेन किलमन्ति। एसेव अन्तरायो ति पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्सा ति। (८)

१८. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे भिक्खूनं गामो चोरेहि वुट्ठासि। [N.156] भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, येन गामो तेन गन्तुं ति।** (९)

[B.208] गामो द्वेधा भिज्जित्थ। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, येन बहुतरा तेन गन्तुं** ति। (१०)

बहुतरा अस्सद्धा होन्ति अप्पसन्ना। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, येन सद्धा पसन्ना तेन गन्तुं** ति। (११)

आदि) से त्रस्त रहते थे। वे उन्हें डसते भी थे, काटते भी थे। **इस दंश को भी वर्षावास में विघ्न मानकर भिक्षु को वहाँ से चल देना चाहिये। इसे भिक्षुओं का वर्षावासव्रत भङ्ग हुआ नहीं माना जायगा।** (२)

".....चोरों द्वारा पीड़ित किये जाते थे।.....(३)

'.....पिशाचों द्वारा पीड़ित किये जाते थे।.....(४)

...वर्षावास करने वाले भिक्षुओं का समग्र ग्राम ही अग्नि से जल जाय, इस कारण भिक्षुओं को भिक्षा मिलने का ही कोई सहारा न रह जाय तो इसे विघ्न मानकर वह स्थान छोड देना चाहिये.....(५)

.....रहने का स्थान ही जल जाय.....।......। (६)

....समग्र ग्राम नदी की बाढ़ में बह जाय कि उन्हें भिक्षा मिलना ही दुर्लभ हो जाय,...। (७)

.....रहने का स्थान ही बाढ़ में बह जाय कि उनका निर्विघ्न रहना ही कठिन हो जाय.....। इसे वर्षावास में विघ्न नहीं माना जायगा। (८)

१८. उस समय किसी आवास में वर्षावास कर रहे भिक्षुओं के पास का ग्राम ही चोरों ने उजाड़ दिया। भगवान् से यह बात कही गयी। भगवान् ने **ग्रामवासियों के साथ जाकर ही वर्षावास करने की अनुमति दी।** (९)

वर्षावास करने वाले भिक्षुओं के आवास के समीपस्थ ग्राम मे फूट पड गयी। ग्राम के वासी दो भागों में बँट गये। भगवान् से यह बात कही गयी (भगवान् ने कहा—) **"अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! ऐसे अवसर आने पर, जिधर उस ग्रामवासियों की अधिक सङ्ख्या है उसी के साथ जाने की।"** (१०)

तेन खो पन समयेन कोसलेसु जनपदे अञ्ञतरस्मिं आवासे वस्सूपगता भिक्खू न लभिंसु लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरिं। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगता भिक्खू न लभन्ति लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरिं। एसेव अन्तरायो ति पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स॥ (१२)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगता भिक्खू न लभन्ति लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरिं, न लभन्ति सप्पायानि भोजनानि। एसेव अन्तरायो ति पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स। (१३)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगता भिक्खू लभन्ति लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स वावदत्थं पारिपूरिं, लभन्ति, सप्पायानि भोजनानि, न लभन्ति सप्पायानि भेसज्जानि। एसेव अन्तरायो ति पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स। (१४)

[R.150] इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगता भिक्खू लभन्ति लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरिं, लभन्ति सप्पायानि भोजनानि, लभन्ति सप्पायानि भेसज्जानि। न लभन्ति पतिरूपं उपट्ठाकं एसेव अन्तरायो ति पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स। (१५)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतं भिक्खुं इत्थी निमन्तेति—"एहि, भन्ते, हिरञ्ञं वा ते देमि, सुवण्णं वा ते देमि, खेत्तं वा ते देमि, वत्थुं वा ते देमि, गावुं वा ते देमि, गाविं वा

वे अधिक सङ्ख्या वाले ग्रामवासी भिक्षुसङ्घ के प्रति श्रद्धान्वित नहीं थे। यह बात भगवान् को बताये जाने पर उन्होंने कहा—"**अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! ऐसे अवसर पर जिधर श्रद्धावान् एवं सङ्घ के प्रति प्रीतिमय व्यवहार रखने वाले ग्रामवासी हों, उन के साथ जाने की।**" (११)

उस समय कोसल जनपद के किसी भिक्षुआवास में रहने वाले भिक्षुओं को रुखे-सूखे भोजन की भिक्षा पेट भर नहीं मिल पाती थी। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा-) **यदि ऐसे स्थानों पर, जहाँ भिक्षुजन रुखा-सूखा भोजन भी न प्राप्त कर पावें, उस स्थान को उन्हें तत्काल छोड देने की अनुमति देता हूँ। ऐसे में वर्षावास-व्रतभङ्ग नहीं माना जायगा।** (१२)

भिक्षुओ! कहीं वर्षावास करने वाले भिक्षु रूखी-सूखी भिक्षा तो पा जाते थे, परन्तु ऐसा भोजन नहीं प्राप्त कर पाते थे कि जिससे शरीर से स्वस्थ रह कर भलीभाँति धर्म-साधना कर सकें। भगवान् ने अनुमति दी कि **ऐसे स्थान को भी साधना में अन्तराय समझकर छोड़ देना चाहिये। इससे वर्षावास व्रत-भङ्ग नहीं जाना जायगा।** (१३)

"भिक्षुओ! कहीं कहीं वर्षावास करने वाले भिक्षु रूखी-सूखी या शरीर को बलदायक भिक्षा तो पा जाते थे, परन्तु वे रोगाक्रान्त होने पर वहाँ कोई रोगनिवारक ओषधि प्राप्त नहीं प्राप्त कर पाते थे। भगवान् से निवेदन करने पर उन्होने कहा—'**भिक्षुओ!, ओषधि न मिलने को ही अन्तराय समझ कर भिक्षुओं को वह स्थान छोड देना चाहिये।** .....। (१४)

भिक्षुओ! कहीं कहीं वर्षावास करने वाले भिक्षु.... ओषधि भी पा जाते थे परन्तु उन्हें अनुकूल उपस्थायक (अन्न-भोजनादि देने वाला सद्गृहस्थ) नही मिल पाता था। भगवान् ने **इसे भी वर्षावास में अन्तराय बताकर वह स्थान छोडने की अनुमति दे दी।** (१५)

भिक्षुओ यहाँ वर्षावास करने वाले किसी भिक्षु को कोई स्त्री यह कहकर निमन्त्रण दे— 'आओ, भिक्षु, मै तुम्हे सोना, चान्दी, खेत, रहने के लिये आवास, बैल, गौ, दास -दासी, भार्या बनाने

ते देमि, दासं वा ते देमि, दासिं वा ते देमि, धीतरं वा ते देमि भरियत्थाय, अहं वा ते भरिया होमि, अञ्ञं वा ते भरियं आनेमी'' ति। तत्र चे भिक्खुनो एवं होति, 'लहुपरिवत्तं खो चित्तं वुत्तं भगवता, सिया पि मे ब्रह्मचरियस्स अन्तरायो' ति, **पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स।** (१६)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतं भिक्खुं वेसी निमन्तेति....पे०....। थुल्लकुमारी [B.209] निमन्तेति....पण्डको निमन्तेति....ञातका निमन्तेन्ति....राजानो निमन्तेन्ति....चोरा निमन्तेन्ति...धुत्ता निमन्तेन्ति—''एहि, भन्ते, हिरञ्ञं वा ते देम, सुवण्णं वा ते देम, खेत्तं वा ते देम, वत्थुं वा ते देम, गावुं वा ते देम, गाविं वा ते देम, दासं वा ते देम, दासिं वा [N.157] ते देम, धीतरं वा ते देम भरियत्थाय, अञ्ञं वा ते भरियं आनेमा'' ति। तत्र चे भिक्खुनो एवं होति— 'लहुपरिवत्तं खो चित्तं वुत्तं भगवता, सिया पि मे ब्रह्मचरियस्स अन्तरायो' ति, **पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स।** (२४)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतो भिक्खु अस्सामिकं निधिं पस्सति। तत्र चे भिक्खुनो एवं होति–'लहुपरिवत्तं खो चित्तं वुत्तं भगवता, सिया पि मे ब्रह्मचरियस्स अन्तरायो' ति, पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स। (२४)

८. सङ्घभेदे अनापत्तिवस्सच्छेदवारं

१९. इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतो भिक्खु पस्सति सम्बहुले भिक्खू सङ्घभेदाय परक्कमन्ते। तत्र चे भिक्खूनो एवं होति—'गरुको खो सङ्घभेदो वुत्तो भगवता; मा मयि सम्मुखीभूते सङ्घो भिज्जी' ति, **पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स।** (१)

के लिये कन्या दूँगी, या तुम चाहोगे तो मैं ही तुम्हारी हो जाऊँगी, या तुम्हारे लिये तुम जैसे चाहोगे वैसी भार्या ला दूँगी, तुम मेरे साथ रहो।' यह सुनकर उस भिक्षु के मन में ऐसा विचार उठे—'भगवान् ने मनुष्य के मन को शीघ्र ही बदल जाने वाला बताया है, क्या पता कि इसके बाद इसके कहने पर मेरी धर्मसाधना में भी अन्तराय आ जाय' तो **ऐसी स्थिति मे उस भिक्षु को वहाँ से चल देना चाहिये। इससे वर्षावास का भङ्ग नहीं माना जायगा।** (१६)

''यहाँ कोई वेश्या किसी वर्षावास कर रहे भिक्षु को......। (१७)

यहाँ कोई स्थूलकुमारी.......। (१८)

''यहाँ कोई पण्डक (हिंजड़ा) वर्षावास कर रहे.....। (१९)

''यहाँ कोई रिश्तेदार वर्षावास कर रहे भिक्षु को.....। (२०)

''यहाँ कोई राजा वर्षावास कर रहे भिक्षु को....। (२१)

''यहाँ कोई चौर वर्षावास कर रहे भिक्षु को.....। (२२)

''यहाँ कोई धूर्त वर्षावास कर रहे भिक्षु को....। (२३)

''भिक्षुओ! यहाँ कोई वर्षावासव्रती भिक्षुआवास में या आवास के आस–पास ऐसा खजाना पाये, जिसका कोई स्वामी न हो। तब उस भिक्षु को ऐसा विचार हो कि भगवान् ने....धर्मसाधना में विघ्न होगा, तो उसे वह स्थान त्याग देना चाहिये। इस से वर्षावास–व्रतभङ्ग होने का भय नहीं है। (२४)

८. सङ्घभेद रोकने के लिये वर्षावासस्थान का त्याग

१९. ''भिक्षुओ! फिर यहाँ किसी वर्षावास में बैठे भिक्षु को उस आवास में रहने वाले भिक्षुओं को परस्पर कलह करते देख कर यह समझ में आवे कि 'इस तरह के कलह से अन्त में सङ्घ में फूट

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतो भिक्खु सुणाति—"असुकस्मिं किर आवासे सम्बहुला भिक्खू सङ्घभेदाय परक्कमन्ती" ति। तत्र चे भिक्खुनो एवं होति—'गरुको खो सङ्घभेदो वुत्तो भगवता; मा मयि सम्मुखीभूते सङ्घो भिज्जी' ति, **पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स।** (२)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतो भिक्खु सुणाति—"असुकस्मिं किर आवासे सम्बहुला भिक्खू सङ्घभेदाय परक्कमन्ती" ति। तत्र चे भिक्खुनो एवं होति—"ते खो मे भिक्खू मित्ता। त्याहं वक्खामि—'गरुको खो, आवुसो, सङ्घभेदो वुत्तो भगवता; मायस्मन्तानं सङ्घभेदो रुच्चित्था' ति। करिस्सन्ति मे वचनं, सुस्सूसिस्सन्ति, सोतं ओदहिस्सन्ती" ति, **पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स।** (३)

[B.210] इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतो भिक्खु सुणाति—"असुकस्मिं किर आवासे सम्बहुला भिक्खू सङ्घभेदाय परक्कमन्ती" ति। तत्र चे भिक्खुनो एवं होति—"ते खो मे [R.151] भिक्खू न मित्ता; अपि च ये तेसं मित्ता, ते मे मित्ता। त्याहं वक्खामि। ते वुत्ता ते वक्खन्ति—'गरुको खो, आवुसो, सङ्घभेदो वुत्तो भगवता; मायस्मन्तानं सङ्घभेदो रुच्चित्था' ति। करिस्सन्ति तेसं वचनं, सुस्सूसिस्सन्ति, सोतं ओदहिस्सन्ती" ति, **पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स।** (४)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतो भिक्खू सुणाति—"असुकस्मिं किर आवासे सम्बहुलेहि भिक्खूहि सङ्घो भिन्नो" ति। तत्र चे भिक्खुनो एवं होति—"ते खो मे भिक्खू मित्ता। त्याहं वक्खामि—'गरुको खो, आवुसो, सङ्घभेदो वुत्तो भगवता; मायस्मन्तानं सङ्घभेदो रुच्चित्था' ति। करिस्सन्ति मे वचनं, सुस्सूसिस्सन्ति, सोतं ओदहिस्सन्ती" ति, **पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स।** (५)

पड़ जायगी और सङ्घ में ऐसी फूट को भगवान् ने बहुत बड़ा पाप बताया है। अतः मेरे रहते सङ्घ में फूट न पड़े,' तो उस भिक्षु को वह आवास तत्काल छोड़ देना चाहिये।.....। (१)

"भिक्षुओ! कोई वर्षावासव्रती भिक्षु किसी अन्य आवास में रहने वाले भिक्षुओं के विषय में ऐसा सुने कि.....पूर्ववत्..... (२)

"भिक्षुओ! कोई वर्षावासव्रती भिक्षु किसी अन्य आवास में रहने वाले भिक्षुओं के विषय में ऐसा सुने कि वे भिक्षु परस्पर कलह करते हुए सङ्घ में फूट डालने का प्रयास कर रहे हैं, जबकि भगवान् ने सङ्घ में फूट डालना बहुत बड़ा अपराध बताया है, तो क्यों न मैं चलकर उन्हें इस विषय में समझाऊँ कि उन्हें ऐसा करना उचित नहीं है! वे मेरी बात सुनेंगे, उसे मान भी लेंगे। तो उसे वहाँ जाना चाहिये। ऐसा करने से उसके वर्षावासव्रत का भङ्ग नहीं होगा। (३)

"भिक्षुओ! यहाँ कोई वर्षावासव्रती भिक्षु किसी अन्य....फूट डालने का प्रयास कर रहे हैं। उस समय उस भिक्षु को यह विचार हो कि वे भिक्षु तो मेरे मित्र नहीं हैं, अतः वे मेरी बात नहीं मानेंगे, परन्तु उनके जो अन्य मित्र हैं वे मेरे मित्र हैं उनकी बात वे मान लेंगे। तो क्यों न मैं उनको साथ लेकर सङ्घ में फूट डालने से रोकूँ। ऐसे में उस भिक्षु को वर्षावास व्रत बीच में छोड़कर भी ऐसा प्रयत्न करने हेतु जाना चाहिये। इससे वर्षावासव्रत भङ्ग होने का कोई भय नहीं है। (४)

"भिक्षुओ! यहाँ कोई वर्षावासव्रती भिक्षु यह सुने कि किसी अन्य आवास में रहने वाले भिक्षुओं ने सङ्घ मे फूट डाल दी है। तब उस भिक्षु को यदि यह लगे कि वे भिक्षु तो उसके मित्र हैं तो

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतो भिक्खू सुणाति—"असुकस्मिं किर आवासे सम्बहुलेहि भिक्खूहि सङ्घो भिन्नो" ति। तत्र चे भिक्खुनो एवं हाति—"ते खो मे [N.158] भिक्खू न मित्ता; अपि च, ये तेसं मित्ता ते मे मित्ता। त्याहं वक्खामि। ते वुत्ता ते वक्खन्ति—'गरुको खो, आवुसो, सङ्घभेदो वुत्तो भगवता; मायस्मन्तानं सङ्घभेदो रुच्चित्था' ति। करिस्सन्ति तेसं वचनं, सुस्सूसिस्सन्ति, सोतं ओदहिस्सन्ती" ति, **पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स।** (६)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतो भिक्खु सुणाति—"अमुकस्मिं किर आवासे सम्बहुला भिक्खुनियो सङ्घभेदाय परक्कमन्ती" ति। तत्र चे भिक्खुनो एवं होति—"ता खो मे भिक्खुनियो मित्ता। ताहं वक्खामि—'गरुको खो भगिनियो, सङ्घभेदो वुत्तो भगवता; मा भगिनीनं सङ्घभेदो रुच्चित्था' ति। करिस्सन्ति में वचनं, सुस्सूसिस्सन्ति, सोतं ओदहिस्सन्ती" ति, **पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्स।** (७)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतो भिक्खु सुणाति—"अमुकस्मिं किर आवासे सम्बहुला भिक्खुनियो सङ्घभेदाय परक्कमन्ती" ति। तत्र चे भिक्खुनो एवं होति—"ता खो मे भिक्खुनियो [B.211] न मित्ता। अपि च, या ताएं मित्ता, ता मे मित्ता। ताहं वक्खामि। ता वुत्ता ता वक्खन्ति—'गरुको खो, भगिनियो, सङ्घभेदो वुत्तो भगवता। मा भगिनीनं सङ्घभेदो रुच्चित्था' ति। करिस्सन्ति तासं वचनं, सुस्सूसिस्सन्ति, सोतं ओदहिस्सन्ती" ति, **पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्सा ति।** (८)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतो भिक्खु सुणाति—"अमुकस्मिं किर आवासे सम्बहुलाहि भिक्खुनीहि सङ्घो भिन्नो" ति। तत्र चे भिक्खुनो एवं होति—"ता खो मे भिक्खुनियो मित्ता। ताहं वक्खामि—'गरुको खो, भगिनियो, सङ्घभेदो वुत्तो भगवता। मा भगिनीनं सङ्घभेदो रुच्चित्था' ति। करिस्सन्ति मे वचनं, सुस्सूसिस्सन्ति, सोतं ओदहिस्सन्ती" ति, **पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्सा ति।** (९)

क्यों न उन को समझाया जाय, वे उसकी बात अवश्य मानेंगे। ऐसी स्थिति में इस गुरुतर कार्य के लिये उस भिक्षु को अपना वर्षावास छोड़कर भी वहाँ अवश्य जाना चाहिये। (५)

"भिक्षुओ! यहाँ कोई....भिक्षु यह सुने कि किसी अन्य आवास मे रहने वाले भिक्षुओं ने सङ्घ में फूट डाल दी है। और उसे यह विचार हो कि यद्यपि वे तो मेरे मित्र नहीं है, परन्तु उनके मित्र मेरे भी मित्र हैं तो क्यों न मैं उनको साथ लेकर उनके द्वारा उनको सङ्घ में फूट डालने से रोकूँ। वे उनकी बात मान लेंगे। ऐसी स्थिति में उस भिक्षु को इस कार्य के लिये वर्षावास व्रत तोडकर भी जाना पड़े तो जाना चाहिये। इसमें वर्षावास व्रत भङ्ग का भी कोई दोष नहीं है। (६)

भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु सुने कि किसी आवास में भिक्षुणियाँ सङ्घ में फूट डालने का प्रयास कर रही हैं। वहाँ यदि उस भिक्षु को ऐसा विचार आवे कि वे भिक्षुणियाँ मेरे प्रति मैत्रीभाव रखती हैं। वे मेरी बात मान लेगीं। क्यों न मैं उन्हें चलकर .....समझाऊँ। तो भिक्षुओ! उसे वर्षावास छोड़कर भी वहाँ जाना चाहिये।.....। (७)

"यहाँ, भिक्षुओ! किसी वर्षावासव्रती भिक्षु को यह सुनने में आये कि अमुक आवास में भिक्षुणियाँ....**पूर्ववत्**.....वहाँ जाना चाहिये। (८)

इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगतो भिक्खु सुणाति—"अमुकस्मिं किर आवासे सम्बहुलादि भिक्खुनीहि सङ्घो भिन्नो" ति। तत्र चे भिक्खुनो एवं होति—"ता खो मे भिक्खुनियो न मित्ता। अपि च, या तासं मित्ता ता मे मित्ता। ताहं वक्खामि। ता वुत्ता ता वक्खन्ति 'गरुको खो, भगिनियो, सङ्घभेदो वुत्तो भगवता; मा भगिनीनं सङ्घभेदो रुच्चित्था' ति। करिस्सन्ति तासं वचनं, सुस्सूसिस्सन्ति, सोतं ओदहिस्सन्ती" ति, **पक्कमितब्बं। अनापत्ति वस्सच्छेदस्सा ति।** (१०)

९. वजादीसु वस्सूपगमनं

[R.152] २०. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु वजे वस्सं उपगन्तुकामो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, वजे वस्सं उपगन्तुं**" ति। वजो वुट्ठासि। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, येन वजो तेन गन्तुं**" ति। (१-२)

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु उपकट्ठाय वस्सूपनायिकाय सत्थेन गन्तुकामो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "अनुजानामि, भिक्खवे, **सत्थे** [N.159] **वस्सं उपगन्तुं**" ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु उपकट्ठाय वस्सूपनायिकाय नावाय गन्तुकामो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, नावाय वस्सं उपगन्तुं।** ति।

"यहाँ, भिक्षुओ! कोई वर्षावासव्रती भिक्षु सुने कि अमुक आवास में भिक्षुणियाँ .....पूर्ववत्.....वहाँ जाना चाहिये। (९)

"यहाँ, भिक्षुओ! कोई वर्षावासी व्रती भिक्षु सुने—अमुक आवास में बहुत सी भिक्षुणियों ने सङ्घ में फूट डाल दी है। उस समय भिक्षु को मन में यह हो कि वे भिक्षुणियाँ तो मेरी मित्र नहीं है, परन्तु उनको जानने वाली कुछ अन्य भिक्षुणियाँ मेरी मित्र हैं। उन्हें साथ लेकर जाने पर मैं उन भिक्षुणियों द्वारा किये जा रहे सङ्घभेद को रोक पाऊँगा। तो उस भिक्षु को इस कार्य के लिये वर्षावास छोड़कर भी जाना चाहिये। इससे वह वर्षावासव्रतभङ्ग का दोषी नहीं होगा। (१०)

९. व्रज आदि में वर्षावास की अनुमति

२०. उस समय कोई भिक्षु ग्वालों के झुण्ड के साथ रहकर वर्षावास करना चाहता था) भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने आज्ञा दी—) **व्रज के साथ वर्षावास करने की अनुमति देता हूँ।** (१)

वह व्रज कुछ ही दिनों के बाद दूसरी जगह जाने को तैयार हुआ। उस वर्षावासव्रती भिक्षु के सम्मुख व्रतभङ्ग की समस्या आ गयी। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा—) **व्रज के साथ जाने की अनुमति देता हूँ।** (२)

उस समय कोई भिक्षु वर्षोपनापिका का दिन समीप आने पर, सार्थवाह (यात्रिसमूह) के साथ जाना चाहता था। भगवान् से यह बात कही गयी। भगवान् ने उसको **यात्रिसमूह के साथ जाने की अनुमति दे दी।** (३)

उस समय कोई भिक्षु वर्षोपनायिकादिवस समीप आने पर, नाव से जाना चाहने लगा। भगवान् से इस समस्या की समाधान पूछे जाने पर उन्होंने **उस भिक्षु को नाव से जाने की अनुमति दे दी।** (४)

१०. वस्सं अनुपगन्तब्बट्ठानानि

२१. तेन खो पन समयेन भिक्खू रुक्खसुसिरे वस्सं उपगच्छन्ति। मनुस्सा [B.212] उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—सेय्यथापि पिसाचिल्लिका ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, रुक्खसुसिरे वस्सं उपगन्तब्बं। यो उपगच्छेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति। (१)

तेन खो पन समयेन भिक्खू रुक्खविटभिया वस्सं उपगच्छन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—सेय्यथापि मिगलुद्दका ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, रुक्खविटभिया वस्सं उपगन्तब्बं। यो उपगच्छेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति। (२)

तेन खो पन समयेन भिक्खू अज्झोकासे वस्सं उपगच्छन्ति। देवे वस्सन्ते रुक्खमूलं पि निब्बकोसं पि उपधावन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, अज्झोकासे वस्सं उपगन्तब्बं। यो उपगच्छेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति। (३)

तेन खो पन समयेन भिक्खू असेनासनिका वस्सं उपगच्छन्ति। सीतेन पि किलमन्ति, उण्हेन पि किलमन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, असेनासनिकेन वस्सं उपगन्तब्बं। यो उपगच्छेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति। (४)

तेन खो पन समयेन भिक्खू छवकुटिकाय वस्सं उपगच्छन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—सेय्यथापि छवडाहका ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, छवकुटिकाय वस्सं उपगन्तब्बं। यो उपगच्छेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति। (५)

---

१०. वर्षावास के लिये अनुपयुक्त स्थान

२१. उस समय कुछ भिक्षु (अतिवैराग्य के कारण) पुराने वृक्षों के सूखे कोटरों (खाली स्थानों) में रहकर वर्षावास करने लगे। भगवान् के सम्मुख यह बात रखी गयी। (भगवान् ने कहा–) **''भिक्षुओ! वृक्षों के कोटरों में रहकर वर्षावास नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे दुष्कृत दोष (आपत्ति) लगेगा।** (१)

उस समय कुछ भिक्षु वृक्षों के झुरमुट में रहकर वर्षावास करने लगे। यह देखकर लोग हैरान–परेशान होने लगे कि कैसे ये शाक्यपुत्रीय श्रमण जङ्गली शिकारियों की तरह वर्षावास के लिये वृक्षों के झुरमुट का सहारा लेते हैं। उन्होंने भगवान् को यह बात बतायी। (भगवान् ने कहा–) **नहीं, भिक्षुओ! वृक्षों के झुरमुट में रहकर भी वर्षावास नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे दुष्कृत दोष (अपराध) लगेगा।** (२)

उस समय कुछ भिक्षु खुले मैदान में वर्षावास करते थे। और वर्षा होने पर इधर उधर (छिपने के लिये) किसी वृक्ष या नीम के झुरमुट की तरफ भागते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा–) **भिक्षुओ! खुले मैदान में वर्षावास नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुष्कृत दोष लगे।** (३)

उस समय कुछ भिक्षु विना ही शयनासन के वर्षावास करने लगे। जिस कारण वे सर्दी से भी गर्मी से भी पीड़ित होने लगे। (भगवान् को इस बात का पता लगने पर उन्होंने आदेश दिया–) **''भिक्षुओ! विना शयनासन के वर्षावास नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।''** (४)

उस समय कुछ भिक्षु श्मशान में जाकर शव रखने के स्थान पर वर्षावास करने लगे। यह

[R.153] तेन खो पन समयेन भिक्खू छत्ते वस्सं उपगच्छन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—सेय्यथापि गोपालका ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे छत्ते वस्सं उपगन्तब्बं।** यो उपगच्छेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा ति। (६)

तेन खो पन समयेन भिक्खू चाटिया वस्सं उपगच्छन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—सेय्यथापि तित्थिया ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, चाटिया वस्सं उपगन्तब्बं।** यो उपगच्छेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा ति। (७)

११. अधम्मिककतिका

[B.213] २२. तेन खो पन समयेन सावत्थिया सङ्घेन एवरूपा कतिका कता होति—"अन्तरावस्सं न पब्बाजेतब्बं" ति। विसाखाय मिगारमातुया नत्ता भिक्खू उपसङ्कमित्वा [N.160] पब्बज्जं याचि। भिक्खू एवमाहंसु—"सङ्घेन खो, आवुसो, एवरूपा कतिका कता 'अन्तरावस्सं न पब्बाजेतब्बं' ति। आगमेहि, आवुसो, याव भिक्खू वस्सं वसन्ति। वस्संवुट्ठा पब्बाजेस्सन्ती" ति। अथ खो ते भिक्खू वस्संवुट्ठा विसाखाय मिगारमातुया नत्तारं एतदवोचुं—"एहि, दानि, आवुसो, पब्बजाही" ति। सो एवमाह—"सचाहं, भन्ते, पब्बजितो अस्सं, अभिरमेय्यामहं। न दानाहं, भन्ते, पब्बजिस्सामी" ति। विसाखा मिगारमाता उज्झायति खिय्यति विपाचेति—"कथं हि नाम अय्या एवरूपं कतिकं करिस्सन्ति—'न अन्तरावस्सं पब्बाजेतब्बं' ति। कं कालं धम्मो न चरितब्बो" ति? अस्सोसुं खो भिक्खू विसाखाय

देखकर जनता हैरान होने लगी कि कैसे ये श्रमण शाक्यपुत्रीय शव जलाने वालों की तरह श्मशान में आकर वर्षावास करते हैं। उन्होंने भगवान् को यह बात बतायी। (भगवान् ने कहा–) **"भिक्षुओ! श्मशान स्थल की शवकुटी में रहकर वर्षावास नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।** (५)

उस समय कुछ भिक्षु झोपड़ियों में रहकर वर्षावास करते थे। यह देखकर मनुष्य खिन्न होने लगे। उन्होंने भगवान् से इसकी चर्चा की। (भगवान् ने कहा–) **भिक्षुओ! झोपड़ों में रहकर वर्षावास नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।** (६)

उस समय कुछ भिक्षु चाटि (अनाज रखने का मिट्टी का बना कुण्डा) में रहकर वर्षावास करने लगे। यह देखकर जनता खिन्न होने लगी कि ये शाक्यपुत्रीय श्रमण भी तीर्थिकों (आजीवकों) की तरह कुण्डों में बैठकर वर्षावास करने लगे! भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने उत्तर दिया–) **भिक्षुओ! चाटि में बैठकर वर्षावास नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।** (७)

११. धर्मविरुद्ध निश्चय

२२. उस समय श्रावस्ती के सङ्घ ने ऐसा निश्चय किया कि वर्षावास के बीच में किसी को भी प्रव्रज्या नहीं दी जायगी। इसी अवसर पर मृगारमाता का नाती भिक्षुओ के पास आकर भिक्षुओं से प्रव्रज्या देने की याचना करने लगा। भिक्षुओं ने कहा–"आयुष्मन्! सङ्घ ने निश्चय कर रखा है कि वर्षावासकाल में किसी नवागन्तुक को प्रव्रज्या न दी जाय। अतः तुम प्रतीक्षा करो। वर्षावासकाल बीत जाने कर ही तुम्हें प्रव्रज्या या दीक्षा मिल पायगी"। यों, भिक्षुओं ने वर्षावास व्यतीत होने पर भिक्षुओं ने मृगारमाता के उस नाती को बुलाया और कहा–"आयुष्मन्! अब तुम चाहो तो प्रवज्या की दीक्षा ले सकते हो।" नाती ने कहा–"भन्ते! यदि मैं पहले प्रव्रजित होता तो भिक्षु–जीवन का सात्त्विक आनन्द उठाता। किन्तु अब मेरी प्रव्रजित होने की इच्छा नहीं है। इस घटना से विशाखा मृगारमाता को बहुत खेद हुआ कि "कैसे आर्यजन प्रव्रज्या के विषय में ऐसा बन्धनयुक्त निश्चय कर बैठे; क्योंकि वह कौन

मिगारमातुया उज्झायन्तिया खिय्यन्तिया विपाचेन्तिया। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **"न, भिक्खवे, एवरूपा कतिका कातब्बा—'न अन्तरावस्सं पब्बाजेतब्बं' ति। यो करेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

१२. पटिस्सवदुक्कटापत्ति

२३. तेन खो पन समयेन आयस्मता उपनन्देन सक्यपुत्तेन रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स वस्सावासो पटिस्सुतो होति पुरिमिकाय। सो तं आवासं गच्छन्तो अद्दस अन्तरामग्गे द्वे आवासे बहुचीवरके। तस्स एतदहोसि—"यन्नूनाहं इमेसु द्वीसु आवासेसु वस्सं वसेय्यं। एवं मे बहुचीवरं उप्पज्जिस्सती" ति। सो तेसु द्वीसु आवासेसु वस्सं वसि। राजा पसेनदि कोसलो उज्झायति खिय्यति विपाचेति—"कथं हि नाम अय्यो उपनन्दो सक्यपुत्तो अम्हाकं वस्सावासं पटिस्सुणित्वा विसंवादेस्सति। ननु भगवता अनेकपरियायेन मुसावादो गरहितो, मुसावादा वेरमणी पसत्था" ति। अस्सोसुं खो भिक्खू रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स उज्झायन्तस्स खिय्यन्तस्स विपाचेन्तस्स। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति [R.154] विपाचेन्ति—"कथं हि नाम आयस्मा उपनन्दो सक्यपुत्तो रञ्ञो पसेनदिस्स [B.214] कोसलस्स वस्सावासं पटिस्सुणित्वा विसंवादेस्सति। ननु भगवता अनेकपरियायेन मुसावादो गरहितो, मुसावादा वेरमणी पसत्था" ति। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे भिक्खुसङ्घं सन्निपातापेत्वा आयस्मन्तं उपनन्दं सक्यपुत्तं पटिपुच्छि—"सच्चं किर त्वं, उपनन्द, रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स वस्सावासं पटिस्सुणित्वा विसंवादेसी" ति? "सच्चं, भगवा" ति। विगरहि बुद्धो

समय है जब धर्म–ग्रहण न किया जा सकता हो।" विशाखा मृगारमाता को भिक्षुओं ने दुःखी एवं खिन्न होते देखा तो उन्होंने इस घटना का वर्णन भगवान् से किया। (भगवान् ने कहा–) **"भिक्षुओ! (सङ्घ को) ऐसा निश्चय नहीं करना चाहिये कि वर्षावासकाल में किसी को प्रव्रज्या–दीक्षा नहीं दी जायगी। जो ऐसा निश्चय करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।"**

१२. प्रतिज्ञापालन न करने पर दुष्कृत दोष

२३. उस समय आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र ने कोसल देश के राजा प्रसेनजित् को पहली वर्षोपनायिका तिथि से (उसके यहाँ) वर्षावास करने का वचन (=प्रतिश्रव) दिया था। परन्तु उसने उस आवास में जाते समय बीच में ऐसे दो आवास देखे जहाँ अधिक चीवर मिलने की आशा थी। यह देखकर उसे यह विचार आया—'क्यों न मैं इन दोनों ही आवासों में वर्षावास करूँ, इस प्रकार मुझे अधिक चीवर मिल सकेगा। तब वह यों सोचकर दूसरे आवासो में वर्षावास करने लगा। यह देखकर कौसलनरेश प्रसेनजित् अत्यधिक दुःखी तथा खिन्न हुए कि कैसे आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र हमारे यहाँ वर्षावास करने की प्रतिज्ञा करके भी अब दूसरी जगह वर्षावास करके अपने वचन से ही झूठे पड़ रहे हैं! भगवान् ने ऐसे झूठ बोलने की कई तरह से निन्दा की है। अपितु उन्होंने तो असत्य भाषण के परित्याग की ही प्रशंसा की है। भिक्षुओं ने राजा की इस खिन्नता एवं दुःखमनस्कता को देखा। देखकर वे अल्पेच्छु भिक्षु भी.....खिन्न हुए। उन्होंने भगवान् के सम्मुख यह घटना कही।

तब भगवान् ने इस प्रसङ्ग में भिक्षुसङ्घ को एकत्र कराकर उसके बीच में आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र से पूछा—"क्या वस्तुतः ही, उपनन्द! तुम ..अपने वचन को झूठा प्रतिपादित कर रहे हो?" "हाँ, भगवन्!" तब भगवान् ने....कैसे तूँ मूर्ख आदमी राजा प्रसेनजित् को प्रथम वर्षोपनायिका से

भगवा...पे०.... कथं हि नाम त्वं, मोघपुरिस, रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स वस्सावासं पटिस्सुणित्वा विसंवादेस्ससि। ननु मया, मोघपुरिस, अनेकपरियायेन मुसावादो गरहितो, मुसावादा वेरमणी पसत्था। नेतं, मोघपुरिस, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—

२४. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पुरिमिकाय। सो [N.161] तं आवासं गच्छन्तो पस्सति अन्तरामग्गे द्वे आवासे बहुचीवरके। तस्स एवं होति—''यन्नूनाहं इमेसु द्वीसु आवासेसु वस्सं वसेय्यं। एवं मे बहुं चीवरं उप्पज्जिस्सती'' [B.215] ति। सो तेसु द्वीसु आवासेसु वस्सं वसति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पुरिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्कटस्स।

(अ) इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पुरिमिकाय। सो तं आवासं गच्छन्तो **बहिद्धा** उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो तदहेव **अकरणीयो** पक्कमति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पुरिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्कटस्स। (१)

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पुरिमिकाय। सो तं आवासं गच्छन्तो बहिद्धा उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। तो तदहेव **सकरणीयो** पक्कमति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पुरिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्कटस्स। (२)

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पुरिमिकाय। सो तं आवासं गच्छन्तो बहिद्धा उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति,

---

वर्षावास का वचन देकर भी अन्य आवास में वर्षावास कर अपने वचन को ही मिथ्या कर रहा है! मैंने तो कितनी ही बार तुम लोगों के सामने असत्य वचन की नाना प्रकार से निन्दा की है। सत्यभाषण के प्रति तुम लोगो का उत्साहवर्धन किया है। रे मूर्ख! मेरा यह उपदेश इस धर्म के प्रति अश्रद्धालुओं में श्रद्धोत्पाद के लिये नहीं.....पूर्ववत्.....निन्दा कर प्रासङ्गिक धार्मिक कथा कहते हुए भगवान् ने भिक्षुओं को यों समझाया—

दोष— २४. ''यदि, भिक्षुओ! किसी भिक्षु ने किसी को पहली वर्षोपनायिका तिथि से वर्षावास का वचन (प्रतिज्ञा) दिया हो, परन्तु वह उस आवास में जाते समय मार्ग में कोई बहुत चीवर मिलने वाले दो आवास देखे; तब उसके मन में यह विचार उठे—'क्यों न मैं इन दोनों आवासों में वर्षावास करूँ जिससे मुझे अधिक चीवर मिल सकेगा।' यों सोचकर वह उन दोनों आवासो में वर्षावास करे। यहाँ भिक्षुओ! उस भिक्षु को प्रतिज्ञात वर्षोपनायिका वाली पहली तिथि न भी ज्ञात हो तो भी उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।

(अ) ''भिक्षुओ! यहाँ किसी भिक्षु ने पहली वर्षोपनायिका तिथि से कहीं वर्षावास करने का वचन दे रखा है। वह उस आवास में जाने से पहले **बाहर** उपोसथ करे, पीछे उस विहार में जाय, वहाँ आसन बिछाये, पीने–धोने का जल यथास्थान रखे, आँगन में झाड़ू–बुहारी दे। और अन्य कार्य न होने पर उसी दिन पुनः लौट जाय। भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु को भले ही पहली वर्षोपनायिका तिथि स्मरण न हो तो भी उसे प्रतिज्ञा–हानि (प्रतिश्रव) का दुष्कृत दोष लगेगा ही। (१)

''भिक्षुओ! यहाँ किसी भिक्षु ने.....पूर्ववत्....और वह अन्य कार्य होने पर भी उसी दिन पुनः लौट जाय।.....पूर्ववत्....। (२)

पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो **द्वीहतीहं वसित्वा अकरणीयो** पक्कमति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पुरिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्कटस्स। (३)

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पुरिमिकाय। सो तं आवासं गच्छन्तो बहिद्धा उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो **द्वीहतीहं वसित्वा सकरणीयो** पक्कमति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पुरिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्कटस्स। (४)

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुनो वस्सावासो पटिस्सुतो होति पुरिमिकाय। सो तं आवासं गच्छन्तो बहिद्धा उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो **द्वीहतीहं वसित्वा सत्ताह**- [B.216] **करणीयेन** पक्कमति। सो तं सत्ताहं **बहिद्धा** वीतिनामेति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पुरिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्कटस्स। (५)

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुनो वस्सावासो पटिस्सुतो होति पुरिमिकाय। सो तं आवासं गच्छन्तो बहिद्धा उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो द्वीहतीहं वसित्वा सत्ताहकरणीयेन पक्कमति। सो तं सत्ताहं **अन्तो** सन्निवत्तं करोति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो [R.155] पुरिमिका च पञ्ञायति, पटिस्सवे च अनापत्ति। (१)

[N.162] इध पन, भिक्खवे, भिक्खुनो वस्सावासो पटिस्सुतो होति पुरिमिकाय। सो तं आवासं गच्छन्तो बहिद्धा उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो सत्ताहं अनागताय पवारणाय सकरणीयो पक्कमति। आगच्छेय्य, तस्स भिक्खवे, भिक्खुनो पुरिमिका च पञ्ञायति, पटिस्सवे च अनापत्ति। (२)

"भिक्षुओ! यहाँ किसी भिक्षु ने....पूर्ववत्.. .और वह दो तीन दिन बिताकर अन्य कार्य न होने पर पुनः लौट जाय... पूर्ववत्.....। (३)

"भिक्षुओ! यहाँ किसी भिक्षु ने.....पूर्ववत्....अन्य कार्य अवशिष्ट रहने पर भी दो तीन दिन बिता कर पुनः चला जाय....। (४)

"भिक्षुओ! यहाँ किसी भिक्षु ने.....पूर्ववत्.....सप्ताह भर के कार्य के अवशिष्ट रहते हुए दो-तीन-दिन बिताकर पुनः चला जाय और वह उस सप्ताह को बाहर (दूसरे आवास में) ही बितावे; उस भिक्षु को भले ही पहली वर्षोपनायिका तिथि का स्मरण न भी हो तो भी उसे प्रतिज्ञा-हानि दोष लगेगा ही। (५)

दोषाभाव- "भिक्षुओ! यहाँ किसी भिक्षु ने.....पूर्ववत्.....। वह दो तीन दिन रह कर भी यदि अपने इस आवास में आकर सप्ताह भर करणीय कर्त्तव्यों को पूरा कर ले तो भिक्षुओ! उस भिक्षु को प्रतिज्ञाहानि का दोष नहीं। (१)

"भिक्षुओ! यहाँ किसी भिक्षु ने.. .पूर्ववत्. ..। और वह प्रवारण (आश्विन मास की पूर्णिमा) के दिन आने से एक सप्ताह पूर्व ही करने योग्य कार्यों को छोड़कर चला जाय और वह सप्ताह बाहर बितावे तो भिक्षुओ! उस भिक्षु को....दुष्कृत दोष नहीं। (२)

(आ) इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पुरिमिकाय। सो **तं आवासं गन्त्वा** उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो तदहेव अकरणीयो पक्कमति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पुरिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्कटस्स। (१)

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पुरिमिकाय। सो तं आवासं गन्त्वा उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो तदहेव **सकरणीयो** पक्कमति....पे०.....सो द्वीहतीहं वसित्वा **अकरणीयो** पक्कमति.....पे०....सो द्वीहतीहं वसित्वा **सकरणीयो** पक्कमति ....पे०....सो द्वीहतीहं वसित्वा सत्ताहकरणीयेन पक्कमति। सो तं सत्ताहं बहिद्धा वीतिनामेति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पुरिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्कटस्स....पे०..... सो द्वीहतीहं वसित्वा सत्ताहकरणीयेन पक्कमति। सो तं सत्ताहं **अन्तो** सन्निवत्तं करोति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पुरिमिका च पञ्ञायति, पटिस्सवे च अनापत्ति....पे०....सो सत्ताहं अनागताय पवारणाय सकरणीयो पक्कमति। आगच्छेय्य वा सो, भिक्खवे, भिक्खु तं आवासं न वा आगच्छेय्य, तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पुरिमिका च पञ्ञायति, पटिस्सवे च अनापत्ति।

२५. इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पच्छिमिकाय। सो तं **आवासं गच्छन्तो** बहिद्धा उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो तदहेव **अकरणीयो** पक्कमति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पच्छिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्कटस्स।

दोष– (आ) यहाँ किसी भिक्षु ने.....आवास में ही उपोसथ कर.....झाड़ू दे। फिर वह करने योग्य कार्य को अवशिष्ट न रखकर उसी दिन पुनः चला जाता है तो, भिक्षुओ! उस भिक्षु को.....दुष्कृत दोष हो। (१)

"और यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु ने.....आवास में ही उपोसथ कर.....झाड़ू दे। फिर करणीय कार्य को अवशिष्ट छोड़कर उसी दिन.....। (२)

.....दो तीन दिन रहकर करणीय कार्य को अवशिष्ट न छोड़कर....। (३)

.....दो तीन दिन रहकर करणीय कार्य को अवशिष्ट छोड़कर....(४)

.....सप्ताह भर के कार्य के अवशिष्ट रहते हुए–तीन दिन बिताकर पुनः चला जाय और वह उस सप्ताह को बाहर (दूसरे आवास में) ही बितावे। ऐसे उस भिक्षु को......प्रतिज्ञाहानिदोष लगेगा ही। (५)

दोषाभाव– .....दो तीन दिन बाहर रहकर भी यदि अपने इस आवास में आकर सप्ताह के करणीय कर्त्तव्यों को पूर्ण कर ले तो, भिक्षुओ! उस भिक्षु को प्रतिज्ञाहानि–दोष नहीं लगेगा। (१)

......प्रवारणा के दिन अपने से पूर्व ही करने योग्य कार्यों को छोड़कर चला जाय और वह सप्ताह बाहर ही बितावे तो, भिक्षुओ! उस भिक्षु को......दुष्कृत दोष नहीं। (२)

दोष– २५. यहाँ भिक्षुओ! किसी भिक्षु ने बाद की वर्षोपनायिका तिथि के लिये वर्षावास हेतु वचन दिया हो और वह उस आवास में जाते हुए बाहर ही उपोसथ कर ले तब प्रतिश्रुत विहार में जाकर वहाँ शयनासन बिछाये, पीने–धोने का जल यथास्थान रखे, झाड़ू–बुहारू करे और वह उसी

(अ) इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पच्छिमि-[B.217] काय। सो तं **आवासं गच्छन्तो बहिद्धा उपोसथं करोति,** पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो तदहेव **सकरणीयो** पक्कमति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पच्छिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्कटस्स।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पच्छिमिकाय। सो तं आवासं गच्छन्तो बहिद्धा उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो द्वीहतीहं वसित्वा [N.163] **अकरणीयो** पक्कमति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पच्छिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्खटस्स।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुनो वस्सावासो पटिस्सुतो होति पच्छिमिकाय। सो तं आवासं गच्छन्तो बहिद्धा उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो द्वीहतीहं वसित्वा **सकरणीयो** पक्कमति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पच्छिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्कटस्स।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पच्छिमिकाय। सो तं आवासं गच्छन्तो बहिद्धा उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो द्वीहतीहं वसित्वा **सत्ताहकरणीयेन** पक्कमति। सो तं सत्ताहं **बहिद्धा** वीतिनामेति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पच्छिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्कटस्स।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पच्छिमिकाय। सो तं आवासं गच्छन्तो बहिद्धा उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो द्वीहितीहं वसित्वा सत्ताहकरणीयेन पक्कमति। सो तं सत्ताहं **अन्तो** सन्निवत्तं करोति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पच्छिमिका च पञ्ञायति, पटिस्सवे च अनापत्ति।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पच्छिमिकाय। [B.218] सो तं आवासं गच्छन्तो बहिद्धा उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो सत्ताहं अनागताय कोमुदिया चातुमासिनिया सकरणीयो पक्कमति। आगच्छेय्य वा सो, भिक्खवे, भिक्खु तं आवासं न वा आगच्छेय्य, तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पच्छिमिका च पञ्ञायति, पटिस्सवे च अनापत्ति।

(आ) इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पच्छिमिकाय। सो तं **आवासं गन्त्वा उपोसथं करोति,** पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति,

---

दिन करणीय कार्य को अवशिष्ट न रखकर वापस लौट जाय तो ऐसे भिक्षु को भले ही बाद की वर्षोपनायिका तिथि स्मरण न रहे तब भी उसे दुष्कृत दोष लगेगा।

[एतदनन्तर (अ) तथा (आ) उपबन्धों के समग्र पालिपाठ का हिन्दी रूपान्तर २४वें पैरा के (अ) तथा

पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो तदहेव **अकरणीयो** पक्कमति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पच्छिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्कटस्स।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति, पच्छिमिकाय। सो तं आवासं गन्त्वा उपोसथं करोति, पाटिपदे, विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो तदहेव **सकरणीयो** पक्कमति....पे०....सो द्वीहतीहं वसित्वा **अकरणीयो** पक्कमति...पे०....सो द्वीहतीहं वसित्वा **सकरणीयो** पक्कमति....पे०....सो द्वीवहतीहं वसित्वा सत्ताहकरणीयेन पक्कमति। सो तं सत्ताहं बहिद्धा वीतिनामेति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पच्छिमिका च न पञ्ञायति, पटिस्सवे च आपत्ति दुक्कटस्स....पे०....सो द्वीहतीहं वसित्वा सत्ताहकरणीयेन पक्कमति। सो तं सत्ताहं **अन्तो** सन्निवत्तं करोति। तस्स भिक्खवे, भिक्खुनो पच्छिमिका च पञ्ञायति, पटिस्सवे च अनापत्ति।

[N.164] इध पन, भिक्खवे, भिक्खुना वस्सावासो पटिस्सुतो होति पच्छिमिकाय। सो तं आवासं गन्त्वा उपोसथं करोति, पाटिपदे विहारं उपेति, सेनासनं पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, परिवेणं सम्मज्जति। सो सत्ताहं अनागताय कोमुदिया चातुमासिनिया सकरणीयो पक्कमति। आगच्छेय्य वा सो, भिक्खवे, भिक्खु तं आवासं न वा आगच्छेय्य, तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो पच्छिमिका च पञ्ञायति, पटिस्सवे च अनापत्ती ति॥

वस्सूपनायिकक्खन्धकं ततियं॥

१३. तस्सुद्दानं

उपगन्तुं कदा चेव कति अन्तरावस्स च। [B.219]
न इच्छन्ति च सञ्चिच्च उक्कड्डितुं उपासको॥ १॥
गिलानो माता च पिता भाता च अथ ञातको। [R.156]
भिक्खुभतिको विहारो वाळा चापि सरीसपा॥ २॥

(आ) उपबन्धों की तरह कर लेना चाहिये। केवल २४वे पैरा में आये 'पहली वर्षोपनायिका तिथि' के स्थान पर २५वे पैरा के सभी उपबन्धों मे 'बाद की वर्षोपनायिका तिथि' रखते चलें। बाकी सब कुछ समान है।]

वर्षोपनायिकास्कन्ध तृतीय समाप्त।।

इस स्कन्ध का उदान (विषयक्रम)

वर्षावास के सम्बन्ध में भगवान् द्वारा उपदिष्ट शिक्षापदों में पहले शिक्षापद से वर्षावास अनुमति दी गयी है। दूसरे में वर्षा ऋतु में वर्षावास करने का विधान है। तीसरे में वर्षावाष के कितने भेद हो सकते हैं— यह बताया गया है। चतुर्थ शिक्षापद में वर्षावास बीच में छोड़कर जानेवालों को चारिका करने का निषेध है। पाँचवें में वर्षावासकाल मे जानबूझ कर भिक्षुआवास छोड़ने पर प्रतिबन्ध है। छठे शिक्षाप्रद मे वर्षावासकाल निर्धारण में राजाज्ञा मानना अनिवार्य किया गया है। सातवें शिक्षापद में उपासक आदि द्वारा धर्मश्रवण हेतु बुलाये जाने पर वर्षावासकाल में भी अधिक से अधिक सात दिन तक वहाँ जाना विहित किया गया है।। १ ।।

आगे के शिक्षापदों में बताया गया है कि रोगी भिक्षुः माता, पिता, भाई, ज्ञाति (रिश्तेदार), बिहार के भृतिक (नौकर) द्वारा बुलाये जाने पर वर्षावास काल में भी जाना चाहिये। या फिर भिक्षुआवास में द्वेषी पुरुषों द्वारा, साँप विच्छुओं द्वारा, चौरों अथवा पिशाचों द्वारा वर्षावास में बाधा पहुँचायी जाने लगे तो उक्त आवास में वर्षावास छोड़ देना चाहिये।। २।।

चोरो चेव पिसाचो च दड्ढा तदुभयेन च।
वुळ्होदकेन वुट्ठासि बहुतरा च दायका॥ ३॥
लूखप्पणीतसप्पायभेसज्जुपट्ठकेन च।
इत्थी वेसी कुमारी च पण्डको ञातकेन च॥ ४॥
राजा चोरा धुत्ता निधि भेदअट्ठविधेन च।
वजसत्था च नावा च सुसिरे विटभिया च॥ ५॥
अज्झोकासे वस्सावासो असेनासनिकेन च।
छवकुटिका छत्ते च चाटिया च उपेन्ति ते॥ ६॥
कतिका पटिस्सुणित्वा बहिद्धा च उपोसथा।
पुरिमिका पच्छिमिका यथाञायेन योजये॥ ७॥
अकरणी पक्कमति सकरणी तथेव च।
द्वीहतीहा च पुन च सत्ताहकरणीयेन च॥ ८॥
सत्ताहनागता चेव आगच्छेय्य न एय्य वा।
वत्थुद्दाने अन्तरिका तन्तिमग्गं निसामये ति॥ ९॥

इमम्हि खन्धके वत्थूनि द्वेपण्णास॥

वस्सूपनायिकक्खन्धकं निट्ठितं॥

इसी तरह आवास बाढ़ में डूबने लगे, ग्रामवासी लोग किसी कारण से ग्राम छोड़ जायँ कि भिक्षा मिलने में ही कठिनाई होने लगे तो वह आवास छोड़ देना चाहिये।। ३।।

या जिस गाँव में रूखा सूखा ही भोजन मिले, स्वास्थ्यवर्धक भोजन या औषध उपलब्ध न हो, अथवा व्यभिचारिणी स्त्रियाँ, वेश्याएँ, दुष्ट कुमारियाँ, हिंजड़े या दुराचारी रिश्तेदार आ कर घिराव करने लगें तो वर्षावास में भी वह आवास छोड़ देना चाहिये।। ४।।

अथवा राजा, चौर, धूर्त लोग या गड़ा खजाना साधना में विघ्न उपस्थित करे तो भी वह आवास छोड देना चाहिये। वज्र, व्यापारिसमूह तथा नौका में वर्षावास विहित है। परन्तु वृक्षों के कोटर या वर्षावास करना निषिद्ध किया गया है।। ५।।

इसी तरह, खुले आकाश के नीचे, शयनासनरहित तथा श्मशान में बनी किसी कुटी में या झोपड़ी में वर्षावास करना भगवान् ने निषिद्ध किया है।। ६।।

वर्षावासकाल में प्रव्रज्या देना भगवान् ने उचित बताया है। परन्तु किसी स्थान की प्रतिज्ञा कर किसी दूसरे स्थान में वर्षावास करना भगवान् ने अपराध घोषित किया है। इसी का पुरिमक एवं पश्चिमक भेद से तथा अकरणीय भेद से अनेक प्रकार का व्याख्यान विस्तार से किया गया है। आगे चलकर दो दिन, तीन दिन तथा सप्ताह के भेद से इसका व्याख्यान हुआ है।। ७-८।।

अन्त में निश्चित किया गया है, कि वर्षावास के अन्त में सप्ताहपर्यन्त यदि पश्चिमक आवास में ही रहकर सब कार्य पूर्ण करे तो यह वर्षावास भगवान् सम्मत है।। ९।।

इस स्कन्धक में ५२ वस्तुओं का विस्तार किया गया है।।

वर्षोपनायिकास्कन्धक समाप्त।।

४. पवारणाक्खन्धकं

१. अफासुकविहारो

[N.165, B.220, R.157] १. तेन समयेन बुद्धो भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन सम्बहुला सन्दिट्ठा सम्भत्ता भिक्खू कोसलेसु जनपदे अञ्ञतरस्मिं आवासे वस्सं उपगच्छिंसु। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"केन नु खो मयं उपायेन समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना फासुकं वस्सं वसेय्याम, न च पिण्डकेन किलमेय्यामा" ति। अथ खो तेसं भिक्खूनं एदहोसि—"सचे खो मयं अञ्ञमञ्ञं नेव आलपेय्याम न सल्लपेय्याम—यो पठमं गामतो पिण्डाय पटिक्कमेय्य सो आसनं पञ्ञापेय्य, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपेय्य, अवक्कारपातिं धोवित्वा उपट्ठापेय्य, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेय्य; यो पच्छा गामतो पिण्डाय पटिक्कमेय्य, सचस्स भुत्तावसेसो, सचे आकङ्खेय्य भुञ्जेय्य, नो चे आकङ्खेय्य अपहरिते वा छड्डेय्य, अप्पाणके वा उदके ओपिलापेय्य; सो आसनं उद्धरेय्य, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं पटिसामेय्य, अवक्कारपातिं धोवित्वा पटिसामेय्य, पानीयं परिभोजनीयं पटिसामेय्य, भत्तग्गं सम्मज्जेय्य; यो पस्सेय्य पानीयघटं वा परिभोजनीयघटं वा वच्चघटं वा रित्तं तुच्छं सो उपट्ठापेय्य; सचस्स होति अविसय्हं, हत्थविकारेन दुतियं आमन्तेत्वा हत्थविलङ्घकेन उपट्ठापेय्य; न त्वेव तप्पच्चया वाचं भिन्देय्य—एवं खो मयं समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना फासुकं वस्सं वसेय्याम, न च पिण्डकेन किलमेय्यामा" ति। अथ खो ते भिक्खू अञ्ञमञ्ञं नेव आलपिंसु, न सल्लपिंसु। यो पठमं गामतो पिण्डाय पटिक्कमति, सो आसनं पञ्ञापेति, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं [R.158] उपनिक्खिपति, अवक्कारपात्तिं धोवित्वा उपट्ठापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति;

---

४. प्रवारणास्कन्धक

१. सरलता से साधना

१. एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय बहुत से प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित भिक्षु कोसल प्रदेश के एक भिक्षु-आवास में धर्मसाधनाहेतु ठहरे हुए थे। किसी समय उन भिक्षुओं में ऐसी चर्चा चली—"हम लोग ऐसा क्या उपाय करें कि हम सब एकतापूर्वक, परस्पर प्रसन्न रहते हुए, विना किसी विवाद के सरलतापूर्वक धर्मसाधना भी कर सकें तथा हमें भिक्षा आदि में भी कोई कठिनाई न हो।" तब उन भिक्षुओं ने सोचा—"यदि हम परस्पर कोई बातचीत न करें; अपितु हम में से जो भी ग्राम से भिक्षा करके आश्रम में पहले आवे वही (भिक्षुओं के लिये) आसन विछावे, पैर धोने के लिये जल, पीढ़ा एवं पैर रगड़ने की कठली रखे, कूड़ा रखने के पात्र को धोकर रखे, पीने खाने के लिये जल एवं भोजन रखे। तथा जो भिक्षु ग्राम से भिक्षा करके सबसे पीछे आवे वह जो कुछ भी भिक्षुओं द्वारा खाने के बाद बचा हुआ हो, यदि चाहे तो उसे खाये, न चाहे तो उसे तृणरहित स्थान पर रख दे या प्राणिरहित जल में बहा दे; वह विछे हुए आसन उठावे, पैर धोने का जल, पीढ़ा एवं कठली एक तरफ रखे, कूड़े का पात्र धोकर रखे; बची हुई खाने पीने की वस्तुओं को ढककर रख दे; और भोजन के स्थान पर कुछ जूठा पड़ा हो तो उसे उठा दे, साफ कर दे; यदि देखे कि पैर धोने या पीने के लिये या शौचालय के जल वाले

यो पच्छा गामतो पिण्डाय पटिक्कमति, सचे होति भुत्तावसेसो, सचे आकङ्खति भुञ्जति, नो चे आकङ्खति अपहरिते वा छड्डेति, अप्पाणके वा उदके ओपिलापेति; सो आसनं उद्धरति, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं पटिसामेति, अवक्कारपातिं धोवित्वा पटिसामेति, पानीयं परिभोजनीयं पटिसामेति, भत्तग्गं सम्मज्जति। यो पस्सति पानीयघटं वा [B. 221] परिभोजनीयघटं वा वच्चघटं वा रित्तं तुच्छं सो उपट्ठापेति। सचस्स होति अविसय्हं, हत्थविकारेन दुतियं आमन्तेत्वा हत्थविलङ्घकेन उपट्ठापेति, न त्वेव तप्पच्चया वाचं भिन्दति।

२. आचिण्णं खो पनेतं वस्संवुट्ठानं भिक्खूनं भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमितुं। अथ खो ते भिक्खू वस्संवुट्ठा तेमासच्चयेन सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय येन सावत्थि तेन पक्कमिंसु। अनुपुब्बेन येन सावत्थि जेतवनं अनाथपिण्डिकस्स आरामो येन [N. 116] भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। आचिण्णं खो पनेतं बुद्धानं भगवन्तानं आगन्तुकेहि भिक्खूहि सद्धिं पटिसम्मोदितुं। अथ खो भगवा ते भिक्खू एतदवोच—"कच्चि, भिक्खवे, खमनीयं, कच्चि यापनीयं, कच्चि समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना फासुकं वस्सं वसित्थ, न च पिण्डकेन किलमित्था" ति? "खमनीयं, भगवा, यापनीयं, भगवा। समग्गा च मयं, भन्ते, सम्मोदमाना अविवदमाना फासुकं वस्सं वसिम्हा, न च पिण्डकेन किलमिम्हा" ति

जानन्ता पि तथागता पुच्छन्ति, जानन्ता पि न पुच्छति। कालं विदित्वा पुच्छन्ति, कालं विदित्वा न पुच्छन्ति। अत्थसंहितं तथागता पुच्छन्ति, नो अनत्थसंहितं। अनत्थसंहिते

घड़े खाली हैं तो उनमें जल भर दे। यदि उससे इनमें से कोई कार्य अकेले न हो सके तो हाथ के सङ्केत से दूसरे भिक्षु को बुला ले और हाथ के सङ्केत से ही उसे यथास्थान रखने को कहे। यदि वह दूसरा भिक्षु कोई कार्य न कर पाये तो उस कारण उसे दुर्वचन न बोले। इस तरह हम एकतापूर्वक प्रसन्न मन से, विना किसी विवाद के, सुखपूर्वक धर्मसाधना कर पायेंगे और भोजन–प्राप्ति में भी कोई कष्ट न होगा।" इस, निश्चय के बाद वे भिक्षु न परस्पर बात करते थे, न किसी विषय पर लम्बी चर्चा के लिये प्रयत्न करते थे। उन भिक्षुओं में जो भिक्षु ग्राम से पहले ही भिक्षा करके आ जाता था वह सबके लिये आसन बिछाता.....पूर्ववत्....दुर्वचन नहीं बोलता था।

२. उस समय यह (साम्प्रदायिक) परम्परा थी कि वर्षावास पूर्ण करने के बाद भिक्षुजन सर्वप्रथम भगवान् के दर्शन करने जाते थे। अतः उन कोसल देश के वर्षावासव्रती भिक्षुओं ने भी तीन मास के बाद अपना शयनासन समेट कर, पात्र चीवर साथ लेकर श्रावस्ती की तरफ प्रस्थान किया था। क्रमशः वे लोग श्रावस्ती के जेतवन में, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ, पहुँचे। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। भगवान् बुद्ध का यह नियम था कि वे प्रत्येक आगन्तुक भिक्षु से कुशल–मङ्गल अवश्य पूछते थे। अतः भगवान् ने उन भिक्षुओं से भी पूछा—"भिक्षुओ! आप लोग कुशलक्षेमपूर्वक, एकतापूर्वक, परस्पर कोई विवाद न करते हुए तथा सुखपूर्वक धर्मसाधना में लगे रहे? भिक्षाप्राप्ति में तो तुम्हें किसी तरह की कठिनाई नहीं हुई?" (भिक्षु बोले—) "हाँ, भगवन्! सब कुछ कुशलक्षेमपूर्वक ही बीता। हमने, एकमत रहते हुए, विना किसी विवाद के सुखपूर्वक वर्षावास सम्पन्न किया। भिक्षाप्राप्ति में भी हमें कोई कठिनाई नहीं हुई।

तथागत कभी जानते हुए भी कोई बात पूछते हैं और कभी कभी जानते हुए भी कोई बात नहीं पूछते। वे काल जानकर पूछते हैं और काल जानकर नहीं भी पूछते। तथागत सार्थक बात ही

सेतुघातो तथागतानं। द्वीहाकारेहि बुद्धा भगवन्तो भिक्खू पटिपुच्छन्ति—'धम्मं वा देसेस्साम, सावकानं वा सिक्खापदं पञ्ञापेस्सामा' ति। अथ खो भगवा ते भिक्खू एतदवोच— "यथाकथं पन तुम्हे, भिक्खवे, समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना फासुकं वस्सं वसित्थ, न च पिण्डकेन किलमित्था" ति?

३. "इध मयं, भन्ते, सम्बहुला सन्दिट्ठा सम्भत्ता भिक्खू कोसलेसु जनपदे अञ्ञतरस्मिं [R.159]आवासे वस्सं उपगच्छिम्हा। तेसं नो, भन्ते, अम्हाकं एतदहोसि—'केन नु खो मयं उपायेन समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना फासुकं वस्सं वसेय्याम, न च पिण्डकेन किलमेय्यामा" ति? तेसं नो, भन्ते, अम्हाकं एतदहोसि—"सचे खो मयं अञ्ञमञ्ञं नेव आलपेय्याम न सल्लपेय्याम—यो पठमं गामतो पिण्डाय पटिक्कमेय्य सो आसनं पञ्ञापेय्य, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपेय्य, अवक्कारपातिं धोवित्वा उपट्ठापेय्य, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेय्य; यो पच्छा गामतो पिण्डाय पटिक्कमेय्य, सचस्स भुत्तावसेसो, [B.222] सचे आकङ्खेय्य भुञ्जेय्य, नो चे आकङ्खेय्य अपहरिते वा छड्डेय्य, अप्पाणके वा उदके ओपिलापेय्य; सो आसनं उद्धरेय्य. पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं पटिसामेय्य, अवक्कारपातिं धोवित्वा पटिसामेय्य, पानीयं परिभोजनीयं पटिसामेय्य, भत्तग्गं सम्मज्जेय्य; यो पस्सेय्य पानीयघटं वा परिभोजनीयघटं वा वच्चघटं वा रित्तं तुच्छं सो उपट्ठापेय्य; सचस्स होति अविसय्हं, हत्थविकारेन दुतियं आमन्तेत्वा हत्थविलङ्घकेन उपट्ठापेय्य; न त्वेव तप्पच्चया वाचं भिन्देय्य—एवं खो मयं समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना फासुकं वस्सं वसेय्याम, न च पिण्डकेन किलमेय्यामा' ति। अथ खो मयं, भन्ते, अञ्ञमञ्ञं नेव आलपिम्हा न सल्लपिम्हा। यो पठमं गामतो पिण्डाय पटिक्कमति सो आसनं पञ्ञापेति, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपति, अवक्कारपातिं धोवित्वा उपट्ठापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति। यो पच्छा गामतो पिण्डाय पटिक्कमति, सचे होति भुत्तावसेसो, सचे आकङ्खति भुञ्जति, नो चे आकङ्खति अपहरिते वा छड्डेति, अप्पाणके वा उदके [N.167] ओपिलापेति, सो आसनं उद्धरति, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं पटिसामेति, अवक्कारपातिं धोवित्वा पटिसामेति, पानीयं परिभोजनीयं पटिसामेति, भत्तग्गं सम्मज्जति। यो पस्सति पानीयघटं वा परिभोजनीयघटं वा वच्चघटं वा रित्तं तुच्छं सो उपट्ठापेति। सचस्स होति अविसय्हं, हत्थविकारेन दुतियं आमन्तेत्वा हत्थविलङ्घकेन उपट्ठापेति, न त्वेव तप्पच्चया वाचं भिन्दति। एवं खो मयं, भन्ते, समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना फासुकं वस्सं वसिम्हा, न च पिण्डकेन किलमिम्हा" ति।

पूछते है। व्यर्थ बात नहीं पूछते; क्योंकि व्यर्थ बात पूछना तथागतों की मर्यादा से बाहर (=सेतुघात) है। तथागत दो कारणों से भिक्षुओं से प्रश्न करते हैं— (१) या तो कोई उन्हें, धर्मोपदेश करना हो या (२) फिर किसी विशेष शिक्षापद (अनुशासन) का विधान करना हो। (अत:) भगवान् ने उन भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ! कैसे तुम लोगों ने एकतापूर्वक. ..रहते हुए वर्षावास सम्पन्न किया?"

३. "भन्ते! हम बहुत से सम्भ्रान्त एवं प्रसिद्ध भिक्षु कोसल देश के एक भिक्षुआवास में वर्षावास करने लगे।....पूर्ववत्....भिक्षाप्राप्ति मे भी कोई कठिनाई नही हुई।"

४. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"अफासुञ्ञेव किरमे, भिक्खवे, मोघपुरिसा वुट्ठा समाना 'फासुम्हा वुट्ठा' ति पटिजानन्ति। पसुसंवासञ्ञेव किरमे, भिक्खवे, मोघपुरिसा वुट्ठा समाना 'फासुम्हा वुट्ठा' ति पटिजानन्ति। एळकसंवासञ्ञेव किरमे, भिक्खवे, मोघपुरिसा वुट्ठा समाना 'फासुम्हा वुट्ठा' ति पटिजानन्ति। सपत्तसंवासञ्ञेव किरमे, भिक्खवे, मोघपुरिसा वुट्ठा समाना 'फासुम्हा वुट्ठा' ति पटिजानन्ति। कथं हि नाम, भिक्खवे, मोघपुरिसा मूगब्बतं तित्थियसमादानं समादियिस्सन्ति। नेतं, भिक्खवे, अप्पसन्नानं वा पसादाय, पसन्नानं वा भिय्योभावाय; अथ ख्वेतं, भिक्खवे, अप्पसन्नानं चेव अप्पसादाय, पसन्नानं च एकच्चानं अञ्ञथत्ताया" ति। अथ खो भगवा ते भिक्खू अनेकपरियायेन विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, मूगब्बतं तित्थियसमादानं** [B.223] **समादियितब्बं**। यो समादियेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। **अनुजानामि, भिक्खवे, वस्संवुट्ठानं भिक्खूनं तीहि ठानेहि पवारेतुं—दिट्ठेन वा, सुतेन वा, परिसङ्काय वा। सा वो भविस्सति अञ्ञमञ्ञानुलोमता, आपत्तिवुट्ठानता, विनयपुरेक्खारता।**

एवं च पन, भिक्खवे, पवारेतब्बं। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

५. "सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अज्ज पवारणा। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो पवारेय्या" ति।

थेरेन भिक्खुना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा एवमस्स वचनीयो—"सङ्घं, आवुसो, पवारेमि दिट्ठेन वा सुतेन वा परिसङ्काय वा। वदन्तु मं आयस्मन्तो अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामि। दुतियं पि, आवुसो, सङ्घं

---

४ तब भगवान् ने वहाँ उपस्थित भिक्षुओं को समझाया—"भिक्षुओ! ये कोसलप्रवासी मूर्ख भिक्षु कष्टपूर्वक वर्षावास बिता कर भी समझ रहे हैं कि इन्होने सुखपूर्वक वर्षावास किया। भिक्षुओ! इन्होंने पशुओ की तरह, भेड़ों की तरह या पक्षियों की तरह एक साथ रहते हुए भी कष्टपूर्वक ही वर्षावास सम्पन्न किया। फिर भी ये समझते हैं कि इन्होंने वह वर्षावास बहुत सुखपूर्वक सम्पन्न किया। भिक्षुओ! कैसे इन मूर्ख भिक्षुओं ने तीर्थिको द्वारा ग्रहण करने योग्य मूक (मौन) व्रत को ग्रहण कर डाला। भिक्षुओ! मै यह बात इस धर्म के प्रति अप्रसन्न रहने वालों के श्रद्धोत्पाद के लिये या श्रद्धालुओं की इस धर्म के प्रति और अधिक श्रद्धा बढ़ाने के लिये यह बात नहीं कर रहा हूँ, अपितु भिक्षुओ! अश्रद्धालुओ की ओर अधिक अश्रद्धा बढ़ाने के लिये तथा श्रद्धालुओं को और अधिक समग्र भाव से धर्मसाधना हेतु कह रहा हूँ।" तब भगवान् ने उन भिक्षुओं की नानाप्रकार से गर्हणा करते हुए तथा इस प्रसङ्ग की धार्मिक कथाएँ कहते हुए भिक्षुओं को बताया—"**भिक्षुओ! मूकव्रत, जिसे तीर्थिक लोग ग्रहण करते हैं, नहीं ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे उसे 'दुष्कृत' दोष हो। भिक्षुओ! मैं वर्षावास समाप्त किये भिक्षुओ को अनुमति देता हूँ कि वे देखे, सुने एवं सन्देह वाले— इन तीनों तरह के अपराधों (दोषों) की प्रवारणा (=मार्जन, परिशुद्धि) करने की। यह तुम्हें परस्पर अनुकूल, दोषनिवारक एवं विनय (धर्म) से अनुमोदित होगी।** भिक्षुओ! यह प्रवारणा इस तरह करनी चाहिये— चतुर एव समर्थ भिक्षु द्वारा सर्वप्रथम सङ्घ को यों ज्ञापित करना चाहिये—

५ "भन्ते सङ्घ! मेरी बात सुने। आज प्रवारणा (शुद्धि) दिवस है। यदि सङ्घ उचित समझे तो यह प्रवारणा (शुद्धि) दिवस मनावे।"

तब स्थविर भिक्षु को उत्तरासङ्ग एक कन्धे पर करके उकड़ू बैटकर, हाथ जोडकर (सङ्घ

पवारेमि दिट्ठेन वा सुतेन वा परिसङ्काय वा। वदन्तु मं आयस्मन्तो अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामि। ततियं पि, आवुसो, सङ्घं पवारेमि दिट्ठेन वा सुतेन वा परिसङ्काय वा। वदन्तु मं आयस्मन्तो अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामी'' ति।

नवकेन भिक्खुना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा [N.168] एवमस्स वचनीयो—''सङ्घं, भन्ते, पवारेमि दिट्ठेन वा सुतेन वा परिसङ्काय वा। वदन्तु मं आयस्मन्तो अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामि। दुतियं पि, भन्ते, [R.160] सङ्घं....पे०....ततियं पि, भन्ते, सङ्घं पवारेमि दिट्ठेन वा सुतेन वा परिसङ्काय वा। वदन्तु मं आयस्मन्तो अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामी'' ति।

६. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू थेरेसु भिक्खूसु उक्कुटिकं निसिन्नेसु पवारय-मानेसु आसनेसु अच्छन्ति। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा, ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम छब्बग्गिया भिक्खू थेरेसु भिक्खूसु उक्कुटिकं निसिन्नेसु पवारयमानेसु आसनेसु अच्छिस्सन्ती'' ति। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं....पे०....''सच्चं किर, भिक्खवे, छब्बग्गिया भिक्खू थेरेसु भिक्खूसु उक्कुटिकं [B.224] निसिन्नेसु पवारयमानेसु आसनेसु अच्छन्ती'' ति? ''सच्चं, भगवा'' ति। विगरहि बुद्धो भगवा....पे०....कथं हि नाम ते, भिक्खवे, मोघपुरिसा थेरेसु भिक्खूसु उक्कुटिकं निसिन्नेसु पवारयमानेसु आसनेसु अच्छिस्सन्ति। नेतं, भिक्खवे, अप्पसन्नानं वा पसादाय, पसन्नानं वा भिय्योभावाय.....पे०.....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि— **''न, भिक्खवे, थेरेसु भिक्खूसु उक्कुटिकं निसिन्नेसु पवारयमानेसु आसनेसु अच्छितब्बं। यो अच्छेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, सब्बेहेव उक्कुटिकं निसिन्नेहि पवारेतुं**'' ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो थेरो जरादुब्बलो याव सब्बे पवारेन्ती ति उक्कुटिकं

के प्रति) यों कहना चाहिये—''आयुष्मनो! मैं सङ्घ के सम्मुख—दृष्ट, श्रुत एवं सन्दिग्ध—इन त्रिविध अपराधों की प्रवारणा करता हूँ। आयुष्मन्! कृपा करके मेरे इन त्रिविध अपराधों को बतावें, देखने पर मैं उनका प्रतीकार करूँगा।' दूसरी बार भी......तीसरी बार भी....मैं उनका प्रतीकार करूँगा।'

फिर नये भिक्षु को भी उत्तरासङ्ग का एक कन्धे पर कर....पूर्ववत्....तीसरी बार भी—'भन्ते! मैं सङ्घ के सम्मुख दृष्ट, श्रुत एवं सन्दिग्ध—इन त्रिविध अपराधों की प्रवारणा करता हूँ। आयुष्मन्! कृपा करके मेरे इन त्रिविध अपराधों को बतावें। देखने पर मैं उनका प्रतीकार करूँगा।'

वृद्धों के सम्मुख बैठने का नियम— ६. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओं द्वारा उकड़ू बैठकर प्रवारणा करते समय भी अपने आसनों पर ही बैठे रहते थे। इससे वहाँ जो अल्पेच्छ भिक्षु थे उन्हें खेद और क्लेश होता था कि कैसे ये षड्वर्गीय भिक्षु स्थविरों के ऊकड़ू बैठने पर स्वयं आसनों पर ही बैठे रहते हैं! तब उन भिक्षुओं ने भगवान् से उन षड्वर्गीय भिक्षुओं का यह दुष्कृत्य बताया।....पूर्ववत्.....। ''वस्तुतः, भिक्षुओ! ये षड्वर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओं के....आसनों पर ही बैठे रहते हैं?'' ''हाँ, भन्ते!''

भगवान् ने षड्वर्गीय भिक्षुओं के इस व्यवहार की निन्दा कर.....भिक्षुओं को धार्मिक कथाएँ कहते हुए आदेश दिया—''**भिक्षुओ! स्थविर भिक्षु द्वारा उकड़ू बैठकर प्रवारणा करते समय किसी**

निसिन्नो आगमयमानो मुच्छितो पपति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, तदमन्तरा उक्कुटिकं निसीदितुं याव पवारेति, पवारेत्वा आसने निसीदितुं** ति।

२. पवारणाभेदा

७. अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"कति नु खो पवारणा" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। द्वेमा, भिक्खवे, पवारणा—१. चातुद्दसिका च, २. पन्नरसिका च। इमा खो, भिक्खवे, द्वे पवारणा ति।

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"कति नु खो पवारणकम्मानी" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। चत्तारिमानि, भिक्खवे, पवारणकम्मानि—१. अधम्मेन वग्गं पवारणकम्मं, २. अधम्मेन समग्गं पवारणकम्मं, ३. धम्मेन वग्गं पवारणकम्मं, ४. धम्मेन समग्गं पवारणकम्मं। तत्र, भिक्खवे, यदिदं अधम्मेन वग्गं पवारणकम्मं, न, भिक्खवे, एवरूपं पवारणकम्मं कातब्बं; न च मया एवरूपं पवारणकम्मं अनुञ्ञातं। तत्र, भिक्खवे, यदिदं अधम्मेन समग्गं पवारणकम्मं, न भिक्खवे, एवरूपं पवारणकम्मं कातब्बं; न च मया एवरूपं पवारणकम्मं अनुञ्ञातं। तत्र, भिक्खवे, यदिदं धम्मेन वग्गं पवारणकम्मं, न, भिक्खवे, एवरूपं पवारणकम्मं कातब्बं; न च मया एवरूपं पवारणकम्मं अनुञ्ञातं। तत्र, भिक्खवे, यदिदं धम्मेन समग्गं पवारणकम्मं, एवरूपं, भिक्खवे, पवारणकम्मं [N.169] कातब्बं; एवरूपं च मया पवारणकम्मं अनुञ्ञातं। **तस्मातिह, भिक्खवे, एवरूपं पवारणकम्मं करिस्साम यदिदं धम्मेन समग्गं ति, एवञ्हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं ति।**

को भी आसन पर नहीं बैठे रहना चाहिये। जो बैठा रहे उसे 'दुष्कृत' दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सभी को उकड़ू बैठकर ही प्रवारणा करने की।" (१)

उस समय कोई भिक्षु, जो कि बुढ़ापे के कारण शरीर से अत्यधिक दुर्बल था, सबके प्रवारणा कर लेने की प्रतीक्षा में उकड़ू बैठे–बैठे मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा–) "**अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! तब तक उकड़ू बैठने की जब तक कि उसके पासवाला भिक्षु प्रवारणा न कर ले और अनुमति देता हूँ कि प्रवारणा कर लेने के बाद आसन पर बैठने की।**" (२)

२. प्रवारणाभेद

प्रवारणा की तिथि– ७. तब भिक्षुओं के मन में यह सन्देह उठा कि कितनी प्रवारणाएँ होनी चाहिये? अन्त में भगवान् से इस विषय में पूछा गया। (भगवान् ने कहा–) भिक्षुओ! प्रवारणा की तिथियाँ दो मानी जाँय–१. चतुर्दशी और २. पञ्चदशी। "भिक्षुओ! ये दो प्रवारणा–तिथियाँ हैं।

प्रवारणा के चतुर्विध कर्म– तब भिक्षुओं के मन में यह विचार उठा कि "प्रवारणाकर्म कितने होते हैं?" भगवान् से पूछने पर उन्होंने बताया–भिक्षुओ! ये चार प्रवारणाकर्म होते हैं; जैसे–१. धर्मविरुद्ध वर्ग (=अपूर्ण सङ्घ) का प्रवारणाकर्म, २. धर्मविरुद्ध सम्पूर्ण (सङ्घ) का प्रवारणाकर्म; ३. धर्मानुसार वर्ग (अपूर्ण सङ्घ) का प्रवारणाकर्म एवं ४. धर्मानुसार सम्पूर्ण (सङ्घ) का प्रवारणाकर्म। वहाँ, भिक्षुओ! पहला जो धर्मविरुद्ध वर्ग–प्रवारणाकर्म है ऐसा प्रवारणाकर्म नहीं करना चाहिये। ऐसे प्रवारणाकर्म की मैंने अनुमति नहीं दी है। दूसरा जो धर्मविरुद्ध सङ्घ –प्रवारणाकर्म है वह प्रवारणा कर्म भी नहीं करना चाहिये। इसकी अनुमति भी मैंने नहीं दी है। और भिक्षुओ! तीसरा जो धर्मानुसार वर्ग–प्रवारणाकर्म है वह भी नहीं करना चाहिये। इसकी अनुमति भी मैंने नहीं दी है। हाँ, भिक्षुओ! यहाँ जो

३. पवारणादानानुजानना

[B.225] ८. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"सन्निपतथ, भिक्खवे। सङ्घो पवारेस्सती" ति। एवं वुत्ते अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"अत्थि, भन्ते, भिक्खु गिलानो, सो अनागतो" ति। **अनुजानामि, भिक्खवे, गिलानेन भिक्खुना पवारणं दातुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, दातब्बा—तेन गिलानेन भिक्खुना एकं भिक्खुं उपसङ्कमित्वा [R.161] एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा एवमस्स वचनीयो—"पवारणं दम्मि, पवारणं मे हर, पवारणं मे आरोचेहि, ममत्थाय पवारेही" ति कायेन विञ्ञापेति, वाचाय विञ्ञापेति, कायेन वाचाय विञ्ञापेति, दिन्ना होति पवारणा:, न कायेन विञ्ञापेति, न वाचाय विञ्ञापेति, न कायेन वाचाय विञ्ञापेति न दिन्ना होति पवारणा। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, सो, भिक्खवे, गिलानो भिक्खु मञ्चेन वा पीठेन वा सङ्घमज्झे आनेत्वा पवारेतब्बो। सचे, भिक्खवे, गिलानुपट्ठाकानं भिक्खूनं एवं होति—"सचे खो मयं गिलानं ठाना चावेस्साम, आबाधो वा अभिवड्ढिस्सति, कालकिरिया वा भविस्सती" ति न, भिक्खवे, गिलानो भिक्खु ठाना चावेतब्बो। सङ्घेन तत्थ गन्त्वा पवारेतब्बं; न त्वेव वग्गेन सङ्घेन पवारेतब्बं। पवारेय्य चे, आपत्ति दुक्कटस्स।

यह चतुर्थ प्रकार का धर्मानुसार सङ्घ-प्रवारणाकर्म है, ऐसा प्रवारणाकर्म ही तुम्हें करना चाहिये। ऐसे प्रवारणाकर्म की ही मैंने अनुमति दी है। इसलिये, भिक्षुओ! ऐसा प्रवारणाकर्म करने की ही तुम्हें प्रतिज्ञा करनी चाहिये जो धर्मानुसार समग्र सङ्घ का प्रवारणाकर्म हो। भिक्षुओ! ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये।"

३. प्रवारणादान की अनुज्ञा

८. कभी भगवान् ने भिक्षुओं का आदेश भेजा—"भिक्षुओ! तुम लोग एकत्र हो जाओ, सङ्घ प्रवारणा कर्म करेगा।" कुछ देर बाद किसी भिक्षु ने भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! एक भिक्षु रोगी है, वह नहीं आ पाया है।" (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! मेरी अनुज्ञा है कि रोगी भिक्षु अपनी प्रवारणा दूसरे भिक्षु के द्वारा भेज सकता है।** भिक्षुओ! उस रोगी भिक्षु द्वारा अपनी प्रवारणा यों देनी चाहिये—उस रोगी भिक्षु को किसी भिक्षु के पास जाकर एक कधे पर उत्तरासङ्ग कर, उकड़ू बैठकर, हाथ जोड़कर यों कहना चाहिये—'मैं आपको प्रवारणा दे रहा हूँ। आप इसे सङ्घ के पास ले जाँय। उसे मेरी ओर से सुना दें। मेरी ओर से प्रवारणा करें।' इस प्रकार काय और वचन से पृथक् पृथक् विज्ञापन करे, काय-वचन से विज्ञापन करे तो प्रवारणा दी हुई मानी जायगी। यदि न काय से विज्ञापन करे न वचन से तो प्रवारणा दी हुई नहीं मानी जायगी। इस तरह उस रोगी को प्रवारणा मिल सके तो ठीक है। अन्यथा, भिक्षुओ! उस रोगी भिक्षु को चारपाई या कुर्सी पर बैठा कर सङ्घ के बीच लाना चाहिये। और उसे स्वयं प्रवारणा करनी चाहिये। यदि रोगी के परिचारकों को यह हो कि यदि रोगी को उसके शयनासन (बिस्तर) से हटाया जायगा तो उसका रोग बढ जायगा या इसकी मृत्यु हो जायगी। तब (ऐसी स्थिति में) उस रोगी भिक्षु को अपने स्थान से नहीं उठा कर लाना चाहिये, अपितु समग्र सङ्घ को ही वहाँ जाकर उससे प्रवारणा लेनी चाहिये। वर्ग (सङ्घ में से एक-दो भिक्षु) को जाकर यह प्रवारणा नहीं लेनी चाहिये। अन्यथा दुष्कृत दोष लगेगा।

पवारणाहरको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पवारणाय तत्थेव पक्कमति, अञ्ञस्स दातब्बा पवारणा। पवारणाहारको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पवारणाय तत्थेव विब्भमति....पे०....कालं करोति.....सामणेरो पटिजानाति.....सिक्खं पच्चक्खातको पटिजानाति.....अन्तिमवत्थुं अज्झापन्नको पटिजानाति....उम्मत्तको पटिजानाति.....खित्तचित्तो पटिजानाति....वेदनट्टो पटिजानाति.....आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तको पटिजानाति....आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खित्तको पटिजानाति.....पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खित्तको पटिजानाति..... पण्डको पटिजानाति.....थेय्यसंवासको पटिजानाति.....तित्थियपक्कन्तको पटिजानाति.... तिरच्छानगतो पटिजानाति.....मातुघातको पटिजानाति....पितुघातको [B.226] पटिजानाति.... अरहन्तघातको पटिजानाति......भिक्खुनिदूसको पटिजानाति....सङ्घभेदको पटिजानाति....लोहितुप्पादको पटिजानाति....उभयतोब्यञ्जनको पटिजानाति, अञ्ञस्स दातब्बा पवारणा।

पवारणाहारको च, भिक्खवे, दिन्नाय पवारणाय अन्तरामग्गे पक्कमति, अनाहटा होति पवारणा। पवारणाहारको च, भिक्खवे, दिन्नाय पवारणाय अन्तरामग्गे [N.170] विब्भमति.... पे०.....कालं करोति....सामणेरो पटिजानाति....सिक्खं पच्चक्खातको पटिजानाति....अन्तिमवत्थुं अज्झापन्नको पटिजानाति.....उम्मत्तको पटिजानाति....खित्तचित्तो पटिजानाति....वेदनट्टो पटिजानाति.....आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तको पटिजानाति..... आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खित्तको पटिजानाति....पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खित्तको पटिजानाति....पण्डको पटिजानाति....थेय्यसंवासको पटिजानाति..... तित्थियपक्कन्तको पटिजानाति....तिरच्छानगतो पटिजानाति....मातुघातको पटिजानाति..... पितुघातको पटिजानाति.... अरहन्तघातको पटिजानाति....भिक्खुनिदूसको पटिजानाति... सङ्घभेदको पटिजानाति.....लोहितुप्पादको पटिजानाति....उभयतोब्यञ्जनको पटिजानाति, अनाहटा होति पवारणा।

पवारणाहारको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पवारणाय सङ्घप्पत्तो पक्कमति, आहटा होति पवारणा। पवारणाहारको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पवारणाय सङ्घप्पत्तो विब्भमति....पे०.....कालं करोति.....सामणेरो पटिजानाति.....सिक्खं पच्चक्खातको पटिजानाति....अन्तिमवत्थुं अज्झापन्नको पटिजानाति....उम्मत्तको पटिजानाति....खित्तचित्तो पटिजानाति.....वेदनट्टो पटिजानाति.....आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तको पटिजानाति.....आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खित्तको पटिजानाति....पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खित्तको पटिजानाति.... पण्डको पटिजानाति....थेय्यसंवासको पटिजानाति....तित्थियपक्कन्तको पटिजानाति.... तिरच्छानगतो पटिजानाति....मातुघातको पटिजानाति.....पितुघातको पटिजानाति....

भिक्षुओ! प्रवारणा ले जाने वाला यदि वहाँ से चला जाय तो प्रवारणा दूसरे को देनी चाहिये।.... पूर्ववत्....दुष्कृत दोष की आपत्ति होगी।

*[यह समग्र पाठ पीछे **उपोसथस्कन्धक** मे आये २० परिसुद्धिदानकथा, २१ छन्ददानकथा एव २२*

अरहन्तघातको पटिजानाति....भिक्खुनिदूसको पटिजानाति....सङ्घभेदको पटिजानाति.... लोहितुप्पादको पटिजानाति....उभतोब्यञ्जनको पटिजानाति, आहटा होति पवारणा।

पवारणाहारको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पवारणाय सङ्घप्पत्तो सुत्तो नारोचेति, आहटा [B.227] होति पवारणा। पवारणाहारकस्स अनापत्ति। पवारणाहारको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पवारणाय सङ्घप्पत्तो पमत्तो नारोचेति....पे०.....समापन्नो नारोचेति, आहटा होति पवारणा। पवारणाहारकस्स अनापत्ति।

पवारणाहारको चे, भिक्खवे, दिन्नाय पवारणाय सङ्घप्पत्तो सञ्चिच्च नारोचेति, आहटा होति पवारणा। पवारणाहारकस्स आपत्ति दुक्कटस्स। **अनुजानामि, भिक्खवे, तदहुपवारणाय पवारणं देन्तेन छन्दं पि दातुं, सन्ति सङ्घस्स करणीयं** ति।

४. ञातकादिग्गहणकथा

९. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरं भिक्खुं तदहुपवारणाय ञातका गण्हिंसु। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। इध पन, भिक्खवे, भिक्खुं तदहुपवारणाय ञातका गण्हन्ति। ते ञातका भिक्खूहि एवमस्सु वचनीया—"इङ्घ, तुम्हे आयस्मन्तो इमं भिक्खुं मुहुत्तं मुञ्चथ, यावायं भिक्खु पवारेती" ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, ते ञातका भिक्खूहि [N.171] एवमस्सु वचनीया—"इङ्घ, तुम्हे आयस्मन्तो मुहुत्तं एकमन्तं होथ, यावायं भिक्खु पवारणं देती" ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, ते ञातका भिक्खूहि एवमस्सु वचनीया—"इङ्घ, तुम्हे आयस्मन्तो इमं भिक्खुं मुहुत्तं निस्सीमं नेथ, याव सङ्घो पवारेती" ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, न त्वेव वग्गेन सङ्घेन पवारेतब्बं। पवारेय्य चे, आपत्ति दुक्कटस्स।

[R.162] इध पन, भिक्खवे, भिक्खुं तदहुपवारणाय राजानो गण्हन्ति.....पे०....चोरा गण्हन्ति....धुत्ता गण्हन्ति.....भिक्खुपच्चत्थिका गण्हन्ति। ते भिक्खुपच्चत्थिका भिक्खूहि एवमस्सु वचनीया—"इङ्घ, तुम्हे आयस्मन्तो इमं भिक्खुं मुहुत्तं मुञ्चथ, यावायं भिक्खु पवारेती" ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, ते भिक्खुपच्चत्थिका भिक्खूहि एवमस्सु वचनीया—"इङ्घं, तुम्हे आयस्मन्तो मुहुत्तं एकमन्तं होथ, यावायं भिक्खु पवारणं देती" ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, ते भिक्खुपच्चत्थिका भिक्खूहि एवमस्सु वचनीया—"इङ्घ, तुम्हे आयस्मन्तो इमं भिक्खुं मुहुत्तं निस्सीमं नेथ, याव सङ्घो पवारेती" ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, न त्वेव वग्गेन सङ्घेन पवारेतब्बं। पवारेय्य चे, आपत्ति दुक्कटस्सा ति।

५. सङ्घपवारणादिप्पभेदा

१०. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय पञ्च भिक्खू विहरन्ति।

ञातकादिग्गहणकथा के पाठ के समान अक्षरशः यहाँ भी है। केवल वहाँ के 'पारिसुद्धि' शब्द को यहाँ 'पवारणा' में बदलकर पढ़ना चाहिये।]

५. सङ्घप्रवारणा के प्रभेद

१०. उस समय किसी आवास में उस दिन प्रवारणाहेतु पाँच भिक्षु ही उपस्थित थे। उनके

अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं 'सङ्घेन पवारेतब्बं' ति। मयञ्चम्हा पञ्च जना। कथं नु खो अम्हेहि पवारेतब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, पञ्चन्नं सङ्घे पवारेतुं** ति।

११. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय चत्तारो भिक्खू विहरन्ति। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवता अनुञ्ञातं पञ्चन्नं सङ्घे पवारेतुं ति। मयञ्चम्हा चत्तारो जना। कथं नु खो अम्हेहि पवारेतब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, चतुन्नं अञ्ञमञ्ञं पवारेतुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, पवारेतब्बं। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन ते भिक्खू ञापेतब्बा—

"सुणन्तु मे आयस्मन्तो। अज्ज पवारणा। यदायस्मन्तानं पत्तकल्लं, मयं अञ्ञमञ्ञं पवारेय्यामा" ति।

थेरेन भिक्खुना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा ते भिक्खू एवमस्सु वचनीया—"अहं, आवुसो, आयस्मन्ते पवारेमि दिट्ठेन वा सुतेन वा परिसङ्काय वा। वदन्तु मं आयस्मन्तो अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामि। दुतियं पि....पे०.... ततियं पि अहं, आवुसो, आयस्मन्ते पवारेमि दिट्ठेन वा सुतेन वा [N.172] परिसङ्काय वा। वदन्तु मं आयस्मन्तो अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामी" ति।

नवकेन भिक्खुना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा ते भिक्खू एवमस्सु वचनीया—"अहं, भन्ते, आयस्मन्ते पवारेमि दिट्ठेन वा सुतेन वा परिसङ्काय वा। वदन्तु मं आयस्मन्तो अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामि। [B.229] दुतियं पि....पे०.....ततियं पि अहं, भन्ते, आयस्मन्ते, पवारेमि दिट्ठेन वा सुतेन वा परिसङ्काय वा। वदन्तु मं आयस्मन्तो अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामी" ति।

मन में यह विचार उठा—"भगवान् ने समग्र सङ्घ के एकत्र होने पर प्रवारणा का विधान किया है। यहाँ हम लोग केवल पाँच ही भिक्षु हैं।" उन्होंने भगवान् से इस विषय में पूछा। (भगवान् ने अनुमति दी—) **"भिक्षुओ! पाँच भिक्षुओं को भी एकत्र हो कर सङ्घ के रूप में प्रवारणा की अनुज्ञा देता हूँ।"** (क)

११. उस समय किसी आवास में उसी दिन चार भिक्षु प्रवारणा हेतु एकत्र थे। उनको यह विचार उठा—"भगवान् ने तो पाँच भिक्षुओं तक सङ्घ के रूप में प्रवारणा की अनुमति दी है, जबकि हम यहाँ चार ही हैं। अब हमें क्या करना चाहिये?" भगवान् से इस विषय में पूछा गया। (भगवान् ने कहा—) **"भिक्षुओ! मैं चार भिक्षुओं को भी एकत्र होकर प्रवारणा की अनुमति देता हूँ।**

भिक्षुओ! इस प्रसङ्ग में प्रवारणा की विधि यह है—किसी चतुर एवं समर्थ भिक्षु उन भिक्षुओं का यों बताना (ज्ञापन करना) चाहिये।

'आयुष्मानो! आप मेरी बात सुनें। आज प्रवारणा का दिन है। यदि आप लोगों को चार बातों से उचित लगे तो हम परस्पर प्रवारणा प्रदान करें।'

(तब) स्थविर भिक्षु को कन्धे पर एक तरफ उत्तरासङ्ग कर उकड़ू बैठ, हाथ जोड़कर, उन भिक्षुओं से यों कहना चाहिये—'आयुष्मानो! मैं आप लोगों के सम्मुख दृष्ट, श्रुत एवं सन्दिग्ध की प्रवारणा करता हूँ। आप कृपा करके मुझको मेरा अपराध बतावें। समझने पर उनका प्रतीकार करूँगा।' दूसरी बार भी.. तीसरी बार भी....उनका प्रतीकार करूँगा।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय तयो भिक्खू विहरन्ति। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवता अनुञ्ञातं पञ्चन्नं सङ्घे पवारेतुं, चतुन्नं अञ्ञमञ्ञं पवारेतुं। मयञ्चम्हा तयो जना। कथं नु खो अम्हेहि पवारेतब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, तिण्णं अञ्ञमञ्ञं पवारेतुं।**

[R.163] एवं च पन, भिक्खवे, पवारेतब्बं। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन ते भिक्खू ञापेतब्बा—

"सुणन्तु मे आयस्मन्ता। अज्ज पवारणा। यदायस्मन्तानं पत्तकल्लं, मयं अञ्ञमञ्ञं पवारेय्यामा" ति।

थेरेन भिक्खुना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा ते भिक्खू एवमस्सु वचनीया—"अहं, आवुसो, आयस्मन्ते पवारेमि दिट्ठेन वा, सुतेन वा, परिसङ्काय वा। वदन्तु मं आयस्मन्ता अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामि। दुतियं पि.....पे०.....ततियं पि अहं, आवुसो, आयस्मन्ते पवारेमि दिट्ठेन वा, सुतेन वा, परिसङ्काय वा। वदन्तु मं आयस्मन्ता अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामी" ति।

नवकेन भिक्खुना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा ते भिक्खू एवमस्सु वचनीया—"अहं, भन्ते, आयस्मन्ते पवारेमि दिट्ठेन वा सुतेन वा परिसङ्काय वा। वदन्तु मं आयस्मन्ता अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामि। दुतियं पि....पे०.....ततियं पि अहं, भन्ते, आयस्मन्ते पवारेमि दिट्ठेन वा, सुतेन वा, परिसङ्काय वा। वदन्तु मं आयस्मन्ता अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामी" ति।

१२. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय द्वे भिक्खू विहरन्ति। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवता अनुञ्ञातं पञ्चन्नं सङ्घे पवारेतुं, चतुन्नं अञ्ञमञ्ञं [B.230] पवारेतुं, तिण्णं अञ्ञमञ्ञं पवारेतुं। मयञ्चम्हा द्वे जना। कथं नु खो अम्हेहि पवारेतब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, द्विन्नं अञ्ञमञ्ञं पवारेतुं।**

(इसी प्रकार) नये भिक्षु को भी कन्धे पर एक तरफ उत्तरासङ्ग कर ....पूर्ववत्.....। दूसरी बार भी...तीसरी बार भी....प्रतीकार करूँगा। (ख)

उस समय किसी आवास में प्रवारणा के लिये तीन भिक्षु ही एकत्र हो सके। तब उन भिक्षुओं को यह विचार हुआ कि भगवान् ने पाँच या चार भिक्षुओ का ही सङ्घ मान कर प्रवारणा की अनुमति प्रदान की है। हम तो यहाँ तीन ही उपस्थित हैं। हम को कैसे प्रवारणा करनी चाहिये? उन्होंने भगवान् के सम्मुख अपनी समस्या रखी। **भगवान् ने तीन को भी एकत्र होकर परस्पर प्रवारणा की अनुमति प्रदान कर दी।** परन्तु उन्होंने आदेश दिया कि यह प्रवारणा ऐसे करनी चाहिये।....पूर्ववत्.....। *(अनुपद मे आयी चार भिक्षुओं की प्रवारणा की तरह अक्षरशः पालिपाठ का हिन्दी रूपान्तर कर ले)* (ग)

१२. उस समय किसी आवास मे उसी दिन प्रवारणा के लिये दो ही भिक्षु एकत्र हुए। तब उन दोनों को यह विचार हुआ कि भगवान् ने पाँच, चार या तीन तक तो भिक्षुओ का सङ्घ मानकर प्रवारणा की अनुमति प्रदान की है; परन्तु हम तो दो ही हैं; हमें क्या करना चाहिये? उन्होंने भी भगवान् के सम्मुख अपनी समस्या रखी। भगवान् ने उनकी कठिनाई सुनकर **दो भिक्षुओं का भी सङ्घरूप में**

एवं च पन, भिक्खवे, पवारेतब्बं। थेरेन भिक्खुना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा नवो भिक्खु एवमस्स वचनीयो—"अहं, आवुसो, आयस्मन्तं पवारेमि दिट्ठेन वा सुतेन वा परिसङ्काय वा। वदतु मं आयस्मा अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामि। दुतियं पि.....पे०.....ततियं पि अहं, आवुसो, आयस्मन्तं पवारेमि [N.173] दिट्ठेन वा सुतेन वा परिसङ्काय वा। वदतु मं आयस्मा अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामी" ति।

नवकेन भिक्खुना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा थेरो भिक्खु एवमस्स वचनीयो—"अहं, भन्ते, आयस्मन्तं पवारेमि दिट्ठेन वा सुतेन वा परिसङ्काय वा। वदतु मं आयस्मा अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामि। दुतियं पि....पे०.....ततियं पि अहं, भन्ते, आयस्मन्तं पवारेमि दिट्ठेन वा सुतेन वा परिसङ्काय वा। वदतु मं आयस्मा अनुकम्पं उपादाय। पस्सन्तो पटिकरिस्सामी" ति।

१३. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय एको भिक्खु विहरति। अथ खो तस्स भिक्खुनो एतदहोसि—"भगवता अनुञ्ञातं पञ्चन्नं सङ्घे पवारेतुं, चतुन्नं अञ्ञमञ्ञं पवारेतुं, तिण्णं अञ्ञमञ्ञं पवारेतुं, द्विन्नं अञ्ञमञ्ञं पवारेतुं। अहं चम्हि एकको। कथं नु खो मया पवारेतब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय एको भिक्खु विहरति। तेन, भिक्खवे, भिक्खुना यत्थ भिक्खू पटिक्कमन्ति उपट्ठानसालाय वा मण्डपे वा रुक्खमूले वा, सो देसो सम्मज्जित्वा पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेत्वा आसनं पञ्ञापेत्वा पदीपं कत्वा निसीदितब्बं। सचे अञ्ञे भिक्खू आगच्छन्ति, तेहि सद्धिं पवारेतब्बं; नो चे आगच्छन्ति, 'अज्ज मे पवारणा' ति अधिट्ठातब्बं। नो चे अधिट्ठेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स।

तत्र, भिक्खवे, यत्थ पञ्च भिक्खू विहरन्ति, न एकस्स पवारणं आहरित्वा चतूहि [B.231] सङ्घे पवारेतब्बं। पवारेय्युं चे, आपत्ति दुक्कटस्स। तत्र, भिक्खवे, यत्थ चत्तारो भिक्खू

प्रवारणा की अनुमति प्रदान कर दी। परन्तु साथ ही यह प्रतिबन्ध लगा दिया—स्थविर भिक्षु को पूर्ववत्.....*(तीन भिक्षुओ की प्रवारणा की तरह पाठ का हिन्दी रूपान्तर कर ले।)* (घ)

१३. उस समय किसी आवास में उस दिन प्रवारणा हेतु एक ही भिक्षु उपस्थित था। तब उस भिक्षु को यह विचार हुआ कि "भगवान् ने तो पाँच, चार, तीन या दो भिक्षुओं तक तो सङ्घ के रूप मे प्रवारणा की अनुमति दी है; परन्तु मैं तो यहाँ एकाकी ही हूँ। मैं कैसे प्रवारणा करूँ?" उसने अपनी समस्या भगवान् के सम्मुख रखी। (भगवान् ने कहा—) **"भिक्षुओ! किसी आवास में प्रवारणाहेतु यदि एक ही भिक्षु एकत्र हो पावे तो भिक्षुओ! उस भिक्षु को जहाँ अन्य भिक्षु उठते बैठते हैं, फिर भले ही वह उपस्थानशाला हो, मण्डप हो, वृक्षमूल हो—उन सब स्थानों का झाड़ू—बुहारू कर साफ करना चाहिये। जल भरकर रख देना चाहिये। भोजन हो तो उसे भी यथास्थान रख देना चाहिये। आसन विछाकर, दीपक जलाकर शान्ति से बैठना चाहिये। यदि इसी बीच दूसरे भिक्षु आ जाँय तो उनके साथ प्रवारणा कर्म करना चाहिये। यदि न आ पायें तो 'आज मेरी प्रवारणा है'—यह सङ्कल्प कर बैठना चाहिये। यदि ऐसे न बैठे तो उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**

"भिक्षुओ! इस प्रकरण में—जहाँ पाँच भिक्षु हो वहाँ किसी एक की प्रवारणा लेकर चार

विहरन्ति, न एकस्स पवारणं आहरित्वा तीहि अञ्ञमञ्ञं पवारेतब्बं। पवारेय्युं चे, आपत्ति [R.164] दुक्कटस्स। तत्र, भिक्खवे, यत्थ तयो भिक्खू विहरन्ति, न एकस्स पवारणं आहरित्वा द्वीहि अञ्ञमञ्ञं पवारेतब्बं। पवारेय्युं चे, आपत्ति दुक्कटस्स। तत्र, भिक्खवे, यत्थ द्वे भिक्खू विहरन्ति, न एकस्स पवारणं आहरित्वा एकेन अधिट्ठातब्बं। अधिट्ठेय्य चे, आपत्ति दुक्कटस्सा ति।

६. आपत्तिपटिकम्मविधि

१४. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु तदहुपवारणाय आपत्तिं आपन्नो होति। अथ खो तस्स भिक्खुनो एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं 'न सापत्तिकेन पवारेतब्बं' ति। अहं चम्हि आपत्तिं आपन्नो। कथं नु खो मया पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खु तदहुपवारणाय आपत्तिं आपन्नो होति। तेन भिक्खुना [N.174] एकं भिक्खुं उपसङ्कमित्वा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा एवमस्स वचनीयो—"अहं, आवुसो, इत्थन्नामं आपत्तिं आपन्नो, तं पटिदेसेमी" ति। तेन वत्तब्बो—"पस्ससी" ति। "आम पस्सामी" ति। "आयतिं संवरेय्यासी" ति।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खु तदहुपवारणाय आपत्तिया वेमतिको होति। तेन, भिक्खवे, भिक्खुना एकं भिक्खुं उपसङ्कमित्वा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा एवमस्स वचनीयो—"अहं, आवुसो, इत्थन्नामाय आपत्तिया वेमतिको; यदा निब्बेमतिको भविस्सामि तदा तं आपत्तिं पटिकरिस्सामी" ति वत्वा पवारेतब्बं; न त्वेव तप्पच्चया पवारणाय अन्तरायो कातब्बो ति॥

भिक्षुओं को प्रवारणा नहीं करनी चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।

जहाँ चार भिक्षु हो वहाँ एक की प्रवारणा लेकर तीन को प्रवारणा नहीं करनी चाहिये।.....

जहाँ तीन भिक्षु हों वहाँ एक की प्रवारणा लेकर दो भिक्षुओं को प्रवारणा नहीं करनी चाहिये।....

जहाँ दो भिक्षु हो वहाँ एक की प्रवारणा लेकर एक भिक्षु को प्रवारणासङ्कल्प नहीं करना चाहिये। जो करे उसको 'दुष्कृत' दोष लगेगा।"

६. दोषप्रतीकारविधि

१४. उस समय कोई भिक्षु प्रवारणा के दिन आपत्ति (दोष) ग्रस्त हो गया। तब उस भिक्षु को यह विचार हुआ—"भगवान् का आदेश है कि दोषग्रस्त को प्रवारणा नहीं करनी चाहिये। जबकि मैं इस समय दोषग्रस्त हूँ। ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिये?" भगवान् के सम्मुख यह समस्या रखी गयी। भगवान् ने आदेश दिया—

"भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु प्रवारणा के दिन किसी दोष से ग्रस्त हो जाय तो उस भिक्षु को किसी एक भिक्षु के पास जाकर....हाथ जोड़कर यों कहना चाहिये—'आयुष्मन्! मैं इस समय इस नाम के दोष से ग्रस्त हूँ। उसकी प्रतिदेशना (स्वीकार) करना चाहता हूँ।' उस भिक्षु से पूछना चाहिये—'तुम उसे स्मरण करते हो?' (यदि वह कहे कि) 'हाँ, स्मरण करता हूँ' (तो उसे चेतावनी देनी चाहिये कि) 'भविष्य में ऐसा न करना।'

७. आपत्तिआविकरणविधि

१५. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खू पवारयमानो आपत्तिं सरति। [B.232] अथ खो तस्स भिक्खुनो एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं 'न सापत्तिकेन पवारेतब्बं' ति। अहं चम्हि आपत्तिं आपन्नो। कथं नु खो मया पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खु पवारयमानो आपत्तिं सरति। तेन, भिक्खवे, भिक्खुना सामन्तो भिक्खु एवमस्स वचनीयो—"अहं, आवुसो, इत्थन्नामं आपत्तिं आपन्नो। इतो वुट्ठहित्वा तं आपत्तिं पटिकरिस्सामी" ति वत्वा पवारेतब्बं; न त्वेव तप्पच्चया पवारणाय अन्तरायो कातब्बो।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खु पवारयमानो आपत्तिया वेमतिको होति। तेन, भिक्खवे, भिक्खुना सामन्तो भिक्खु एवमस्स वचनीयो—"अहं, आवुसो, इत्थन्नामाय आपत्तिया वेमतिको; यदा निब्बेमतिको भविस्सामि तदा तं आपत्तिं पटिकरिस्सामी" ति वत्वा पवारेतब्बं; न त्वेव तप्पच्चया पवारणाय अन्तरायो कातब्बो ति॥

८. सभागापत्तिपटिकम्मविधि

१६. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सब्बो सङ्घो सभागं आपत्तिं आपन्नो होति। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवता पञ्ञत्तं 'न सभागा आपत्ति देसेतब्बा, न सभागा आपत्ति पटिग्गहेतब्बा' ति। अयं च सब्बो सङ्घो सभागं आपत्तिं आपन्नो। कथं नु खो अम्हेहि पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सब्बो सङ्घो सभागं आपत्तिं आपन्नो होति। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि एको भिक्खु सामन्ता आवासा सज्जुकं पाहेतब्बो—गच्छावुसो, तं आपत्तिं पटिकरित्वा आगच्छ, मयं ते सन्तिके तं आपत्तिं पटिकरिस्सामा ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे लभेथ, ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं सब्बो सङ्घो सभागं आपत्तिं आपन्नो। यदा अञ्ञं [B.233] भिक्खुं सुद्धं अनापत्तिकं पस्सिस्सति तदा तस्स सन्तिके तं आपत्तिं पटिकरिस्सती" [N.175] ति वत्वा पवारेतब्बं, न त्वेव तप्पच्चया पवारणाय अन्तरायो कातब्बो।

इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सब्बो सङ्घो सभागाय आपत्तिया वेमतिको होति। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं सब्बो सभागाय आपत्तिया वेमतिको। यदा निब्बेमतिको भविस्सति तदा तं आपत्तिं पटिकरिस्सती" ति वत्वा पवारेतब्बं, न त्वेव तप्पच्चया पवारणाय अन्तरायो कातब्बो ति॥

पठमभाणवारं निट्ठितं॥

९. अनापत्तिपन्नरसकं

१७. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतिंसु, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानिंसु—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू

अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेसुं। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छिंसु बहुतरा। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

(१) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका [R.165] भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति।

(२) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू [B.234] अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। पवारिता सुप्पवारिता, अवसेसेहि पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति।

(३) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपावारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। पवारिता सुप्पवारिता, अवसेसेहि पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति।

(४) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू [N.176]अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति।

(५) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। तेन न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति।

(६) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति।

(७) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू

अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, अवुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। [B.235] तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति।

(८) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, अवुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति।

(९) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, अवुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति।

(१०) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति [N.177] बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति।

(११) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति।

(१२) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका [B.236] भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति।

(१३) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति।

(१४) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका

भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति।

(१५) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा समग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं अनापत्ति॥

अनापत्तिपन्नरसकं निट्ठितं॥

१०. वग्गावग्गसञ्ञिपन्नरसकं

[B.237] १८. (१) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे [N.178] आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा वग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(२) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू [R.166] अनागता ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा वग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। पवारिता सुप्पवारिता, अवसेसेहि पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(३) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा वग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। पवारिता सुप्पवारिता, अवसेसेहि पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(४-१५) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते धम्मसञ्ञिनो विनयसञ्ञिनो वग्गा वग्गसञ्ञिनो पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, ...पे०.....पवारितमत्ते, अवुट्ठिताय परिसाय.....पे०....पवारितमत्ते, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय.....पे०.....पवारितमत्ते, सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा.....पे०....समसमा.....पे०.....थोकतरा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति दुक्कटस्स॥

वग्गावग्गसञ्ञिपन्नरसकं निट्ठितं॥

११. वेमतिकपन्नरसकं

१९. (१) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्ब- [B.238] हुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता ति। ते—'कप्पति नु खो अम्हाकं पवारेतुं, न नु खो कप्पती' ति—वेमतिका पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(२) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता ति। ते—'कप्पति नु खो अम्हाकं पवारेतुं, न नु खो कप्पती' ति—वेमतिका पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। पवारिता सुप्पवारिता, अवसेसेहि पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(३) इध, पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'कप्पति नु खो अम्हाकं पवारेतुं, न नु खो कप्पती' ति—वेमतिका पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। [N.179] पवारिता सुप्पवारिता, अवसेसेहि पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(४-१५) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'कप्पति नु खो अम्हाकं पवारेतुं, न नु खो कप्पती' ति—वेमतिका पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते,....पे०.....पवारितमत्ते, अवुट्ठिताय परिसाय..... पे०....पवारितमत्ते, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय....पे०....पवारितमत्ते, सब्बाय [B.239] वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा.....पे०..... समसमा.... पे० .....थोकतरा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति दुक्कटस्स॥

वेमतिकपन्नरसकं निट्ठितं॥

१२. कुक्कुच्चपकतपन्नरसकं

२०. (१) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'कप्पतेव अम्हाकं पवारेतुं, नाम्हाकं न कप्पती' ति—कुक्कुच्चपकता पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(२) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू

अनागता' ति। ते—'कप्पतेव अम्हाकं पवारेतुं, नाम्हाकं न कप्पती'ति—कुक्कुच्चपकता पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। पवारिता सुप्पवारिता, अवसेसेहि पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(३) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'कप्पतेव अम्हाकं पवारेतुं, नाम्हाकं न कप्पती' ति—कुक्कुच्चपकता पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। पवारिता [N.180] सुप्पवारिता, अवसेसेहि पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति दुक्कटस्स।

(४-१५) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'कप्पतेव अम्हाकं पवारेतुं, नाम्हाकं न कप्पती' ति—कुक्कुच्चपकता पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते,.....पे०.....पवारितमत्ते, अवुट्ठिताय परिसाय.....पे०.....पवारितमत्ते, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय.....पे०.....पवारितमत्ते, सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा.....पे०.....समसमा.....पे०.....थोकतरा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति दुक्कटस्स॥

कुक्कुच्चपकतपन्नरसकं निट्ठितं॥

१३. भेदपुरेक्खारपन्नरसकं

२१. (१) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला [R.167] आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(२) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। पवारिता सुप्पवारिता, अवसेसेहि पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(३) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू [B.241] अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। तेहि पवारियमाने अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। पवारिता सुप्पवारिता, अवसेसेहि पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(४) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका

भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति तेहि पवारितमत्ते अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, [N.181] भिक्खूहि पुन पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(५) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। पवारिता सुप्पवारिता, अवसेसेहि पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(६) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते— 'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(७) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, अवुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स। [B.242]

(८) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, अवुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(९) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, अवुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(१०) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू [N.182]

आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(११) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

[B.243] (१२) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, एकच्चाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवरेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(१३) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणा र सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति बहुतरा। तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि पुन पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(१४) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति समसमा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

(१५) इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते जानन्ति—'अत्थञ्ञे आवासिका भिक्खू अनागता' ति। ते—'नस्सन्तेते, विनस्ससन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। तेहि पवारितमत्ते, सब्बाय वुट्ठिताय परिसाय, अथञ्ञे आवासिका भिक्खू आगच्छन्ति थोकतरा। पवारिता सुप्पवारिता, तेसं सन्तिके पवारेतब्बं। पवारितानं आपत्ति थुल्लच्चयस्स॥

भेदपुरेक्खारपन्नरसकं निट्ठितं॥

पञ्चवीसत्तिका निट्ठिता॥

१४. सीमोक्कन्तिकपेय्यालं

[N.183, B.244] २२. इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सम्बहुला आवासिका भिक्खू सन्निपतन्ति, पञ्च वा अतिरेका वा। ते न जानन्ति अञ्ञे आवासिका

भिक्खू अन्तोसीमं ओक्कमन्ती ति.....पे०.....ते न जानन्ति—'अञ्ञे आवासिका भिक्खू अन्तोसीमं ओक्कन्ता' ति....पे०.....ते न पस्सन्ति अञ्ञे आवासिके भिक्खू अन्तोसीमं ओक्कमन्ते.....पे०.....ते न पस्सन्ति अञ्ञे आवासिके भिक्खू अन्तोसीमं ओक्कन्ते....पे०.....ते न सुणन्ति अञ्ञे आवासिका भिक्खू अन्तोसीमं ओक्कमन्ती ति....पे०....ते न सुणन्ति अञ्ञे आवासिका भिक्खू अन्तोसीमं ओक्कन्ता ति.....पे०.....।

[आवासिकेन आवासिका एकसतपञ्चसत्तति तिकनयतो, आवासिकेन आगन्तुका, आगन्तुकेन आवासिका, आगन्तुकेन आगन्तुका, पेय्यालमुखेन सत्त तिकसतानि होन्ति।]

१५. दिवसनानत्तं

२३. इध पन, भिक्खवे, आवासिकानं भिक्खूनं चातुद्दसो होति, आगन्तुकानं पन्नरसो। सचे आवासिका बहुतरा होन्ति, आगन्तुकेहि आवासिकानं अनुवत्तितब्बं। सचे समसमा होन्ति, आगन्तुकेहि आवासिकानं अनुवत्तितब्बं। सचे आगन्तुका बहुतरा होन्ति, आवासिकेहि आगन्तुकानं अनुवत्तितब्बं।

इध पन, भिक्खवे, आवासिकानं भिक्खूनं पन्नरसो होति, आगन्तुकानं चातुद्दसो। सचे आवासिका बहुतरा होन्ति, आगन्तुकेहि आवासिकानं अनुवत्तितब्बं। सचे समसमा होन्ति, आगन्तुकेहि आवासिकानं अनुवत्तितब्बं। सचे आगन्तुका बहुतरा होन्ति, आवासिकेहि आगन्तुकानं अनुवत्तितब्बं।

इध पन, भिक्खवे, आवासिकानं भिक्खूनं पाटिपदो होति, आगन्तुकानं पन्नरसो। सचे आवासिका बहुतरा होन्ति, आवासिकेहि आगन्तुकानं नाकामा दातब्बा सामग्गी; आगन्तुकेहि निस्सीमं गन्त्वा पवारेतब्बं। सचे समसमा होन्ति, आवासिकेहि आगन्तुकानं नाकामा दातब्बा सामग्गी; आगन्तुकेहि निस्सीमं गन्त्वा पवारेतब्बं। सचे आगन्तुका [B.245] बहुतरा होन्ति, आवासिकेहि आगन्तुकानं सामग्गी वा दातब्बा, निस्सीमं वा गन्तब्बं।

इध पन, भिक्खवे, आवासिकानं भिक्खूनं पन्नरसो होति, आगन्तुकानं पाटिपदो। सचे आवासिका बहुतरा होन्ति, आगन्तुकेहि आवासिकानं सामग्गी वा दातब्बा, निस्सीमं वा गन्तब्बं। सचे समसमा होन्ति, आगन्तुकेहि आवासिकानं सामग्गी वा दातब्बा, निस्सीमं वा गन्तब्बं। सचे आगन्तुका बहुतरा होन्ति, आगन्तुकेहि आवासिकानं नाकामा दातब्बा सामग्गी; आवासिकेहि निस्सीमं गन्त्वा पवारेतब्बं।

१६. लिङ्गादिदस्सनं

२४. इध पन, भिक्खवे, आगन्तुका भिक्खू पस्सन्ति आवासिकानं [N.184] भिक्खूनं आवासिकाकारं, आवासिकलिङ्गं, आवासिकनिमित्तं, आवासिकुद्देसं, सुपञ्ञत्तं मञ्चपीठं भिसिबिम्बोहनं, पानीयं परिभोजनीयं सूपट्ठितं, परिवेणं सुसम्मट्ठं; पस्सित्वा वेमतिका होन्ति—अत्थि नु खो आवासिका भिक्खू, नत्थि नु खो ति? ते वेमतिका न विचिनन्ति, अविचिनित्वा पवारेन्ति। अनापत्ति। ते वेमतिका विचिनन्ति, विचिनित्वा पस्सन्ति, पस्सित्वा एकतो पवारेन्ति। अनापत्ति। ते वेमतिका विचिनन्ति, विचिनित्वा पस्सन्ति, पस्सित्वा पाटेक्कं

पवारेन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिनन्ति, विचिनित्वा पस्सन्ति, पस्सित्वा—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

इध पन, भिक्खवे, आगन्तुका भिक्खू सुणन्ति आवासिकानं भिक्खूनं आवासिकाकारं, आवासिकलिङ्गं, आवासिकनिमित्तं, आवासिकुद्देसं, चङ्कमन्तानं पदसद्दं, सज्झायसद्दं, उक्कासितसद्दं, खिपितसद्दं; सुत्वा वेमतिका होन्ति—अत्थि नु खो आवासिका भिक्खू, नत्थि नु खो ति? ते वेमतिका न विचिनन्ति, अविचिनित्वा पवारेन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिनन्ति, विचिनित्वा न पस्सन्ति, अपस्सित्वा पवारेन्ति। अनापत्ति। ते वेमतिका विचिनन्ति, विचिनित्वा पस्सन्ति, पस्सित्वा एकतो पवारेन्ति। अनापत्ति। ते वेमतिका [B.246] विचिनन्ति, विचिनित्वा पस्सन्ति, पस्सित्वा पाटेक्कं पवारेन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिनन्ति, विचिनित्वा पस्सन्ति, पस्सित्वा—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते; को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

इध पन, भिक्खवे, आवासिका भिक्खू पस्सन्ति आगन्तुकानं भिक्खूनं आगन्तुकाकारं, आगन्तुकलिङ्गं, आगन्तुकनिमित्तं, आगन्तुकुद्देसं, अञ्ञातकं पत्तं, अञ्ञातकं चीवरं, अञ्ञातकं निसीदनं, पादानं धोतं, उदकनिस्सेकं; पस्सित्वा वेमतिका होन्ति—अत्थि नु खो आगन्तुका भिक्खू, नत्थि नु खो ति? ते वेमतिका न विचिनन्ति, अविचिनित्वा पवारेन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिनन्ति, विचिनित्वा पस्सन्ति, पस्सित्वा पाटेक्कं पवारेन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिनन्ति, विचिनित्वा पस्सन्ति, पस्सित्वा—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

इध पन, भिक्खवे, आवासिका भिक्खू सुणन्ति आगन्तुकानं भिक्खूनं आगन्तुकाकारं,आगन्तुकलिङ्गं, आगन्तुकनिमित्तं, आगन्तुकुद्देसं, आगच्छन्तानं पदसद्दं, [N.185] उपाहनपप्फोटनसद्दं, उक्कासितसद्दं, खिपितसद्दं; सुत्वा वेमतिका होन्ति—अत्थि नु खो आगन्तुका भिक्खू, नत्थि नु खो ति? ते वेमतिका न विचिनन्ति, अविचिनित्वा पवारेन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिनन्ति, विचिनित्वा न पस्सन्ति, अपस्सित्वा पवारेन्ति। अनापत्ति। ते वेमतिका विचिनन्ति, विचिनित्वा पस्सन्ति, पस्सित्वा एकतो पवारेन्ति। अनापत्ति। ते वेमतिका विचिनन्ति, विचिनित्वा पस्सन्ति, पस्सित्वा पाटेक्कं पवारेन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते वेमतिका विचिनन्ति, विचिनित्वा पस्सन्ति, पस्सित्वा—'नस्सन्तेते, विनस्सन्तेते, को तेहि अत्थो' ति—भेदपुरेक्खारा पवारेन्ति। आपत्ति थुल्लच्चयस्स।

१७. नानासंवासकादीहि पवारणा

२५. इध पन, भिक्खवे, आगन्तुका भिक्खू पस्सन्ति आवासिके भिक्खू नानासंवासके। [B.247] ते समानसंवासकदिट्ठिं पटिलभन्ति, समानसंवासकदिट्ठिं पटिलभित्वा न पुच्छन्ति, अपुच्छित्वा एकतो पवारेन्ति। अनापत्ति। ते पुच्छन्ति, पुच्छित्वा नाभिवितरन्ति, अनभिवितरित्वा एकतो पवारेन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते पुच्छन्ति, पुच्छित्वा नाभिवितरन्ति, अनभिवितरित्वा पाटेक्कं पवारेन्ति। अनापत्ति।

इध पन, भिक्खवे, आगन्तुका भिक्खू पस्सन्ति आवासिके भिक्खू समानसंवासके। ते नानासंवासकदिट्ठिं पटिलभन्ति, नानासंवासकदिट्ठिं पटिलभित्वा न पुच्छन्ति, अपुच्छित्वा एकतो पवारेन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते पुच्छन्ति, पुच्छित्वा अभिवितरन्ति, अभिवितरित्वा पाटेक्कं पवारेन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते पुच्छन्ति, पुच्छित्वा अभिवितरन्ति, अभिवितरित्वा एकतो पवारेन्ति। अनापत्ति।

इध पन, भिक्खवे, आवासिका भिक्खू पस्सन्ति आगन्तुके भिक्खू नानासंवासके। ते समानसंवासकदिट्ठिं पटिलभन्ति, समानसंवासकदिट्ठिं पटिलभित्वा न पुच्छन्ति, अपुच्छित्वा एकतो पवारेन्ति। अनापत्ति। ते पुच्छन्ति, पुच्छित्वा नाभिवितरन्ति, अनभिवितरित्वा एकतो पवारेन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते पुच्छन्ति, पुच्छित्वा नाभिवितरन्ति, अनभिवितरित्वा पाटेक्कं पवारेन्ति। अनापत्ति।

इध पन, भिक्खवे, आवासिका भिक्खू पस्सन्ति आगन्तुके भिक्खू समानसंवासके। ते नानासंवासकदिट्ठिं पटिलभन्ति, नानासंवासकदिट्ठिं पटिलभित्वा न पुच्छन्ति, अपुच्छित्वा एकतो पवारेन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते पुच्छन्ति, पुच्छित्वा अभिवितरन्ति, अभिवितरित्वा पाटेक्कं पवारेन्ति। आपत्ति दुक्कटस्स। ते पुच्छन्ति, पुच्छित्वा अभिवितरन्ति, अभिवितरित्वा एकतो पवारेन्ति। अनापत्ति।

१८. न-गन्तब्बवारं

२६. न, भिक्खवे, तदहुपवारणाय सभिक्खुका आवासा अभिक्खुको आवासो गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन, अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपवारणाय सभिक्खुका आवासा अभिक्खुको अनावासो गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन, अञ्ञत्र अन्तराया। न, [N.186] भिक्खवे, तदहुपवारणाय सभिक्खुका आवासा अभिक्खुको आवासो वा अनावासो वा गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन, अञ्ञत्र अन्तराया।

न, भिक्खवे, तदहुपवारणाय सभिक्खुका अनावासा अभिक्खुको आवासो गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन, अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपवारणाय सभिक्खुका [B.248] अनावासा अभिक्खुको अनावासो गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन, अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपवारणाय सभिक्खुका अनावासा वा अभिक्खुको आवासो वा अनावासो वा गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन, अञ्ञत्र अन्तराया।

न, भिक्खवे, तदहुपवारणाय सभिक्खुका आवासा वा अनावासा वा अभिक्खुको आवासो गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन, अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपवारणाय सभिक्खुका आवासा वा अनावासा वा अभिक्खुको अनावासो गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन, अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपवारणाय सभिक्खुका आवासा वा अनावासा वा अभिक्खुको आवासो वा अनावासो वा गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन, अञ्ञत्र अन्तराया।

न भिक्खवे, तदहुपवारणाय सभिक्खुका आवासा सभिक्खुको आवासो गन्तब्बो, यत्थस्सु भिक्खू नानासंवासका, अञ्ञत्र सङ्घेन, अञ्ञत्र अन्तराया। न, भिक्खवे, तदहुपवारणाय सभिक्खुका आवासा सभिक्खुको अनावासो गन्तब्बो, यत्थस्सु भिक्खू

दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खित्तकस्स निसिन्नपरिसाय पवारेतब्बं। यो पवारेय्य, यथाधम्मो कारेतब्बो।

न पण्डकस्स निसिन्नपरिसाय पवारेतब्बं। यो पवारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। न थेय्यसंवासकस्स.....पे०.....न तित्थियपक्कन्तकस्स.....पे०.....न तिरच्छानगतस्स.....पे०.....न मातुघातकस्स.....पे०.....न पितुघातकस्स.....पे०.....न अरहन्तघातकस्स....पे०....न भिक्खुनीदूसकस्स.....पे०.....न सङ्घभेदकस्स......पे०......न लोहितुप्पादकस्स......पे०.....न उभतोब्यञ्जनकस्स निसिन्नपरिसाय पवारेतब्बं। यो पवारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स।

न, भिक्खवे, पारिवासिकपवारणादानेन पवारेतब्बं, अञ्ञत्र अवुट्ठिताय परिसाय। न च, भिक्खवे, अप्पवारणाय पवारेतब्बं, अञ्ञत्र सङ्घसामग्गिया ति।

दुतियभाणवारो निट्ठितो॥

२१. द्वेवाचिकादिपवारणा

२९. तेन खो पन, समयेन कोसलेसु जनपदे अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय सबरभयं अहोसि। भिक्खू नासक्खिंसु तेवाचिकं पवारेतुं। भगवतो एतमत्थं [N.188] आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, द्वेवाचिकं पवारेतुं** ति। (१)

.....बाळ्हतरं सबरभयं अहोसि। भिक्खू नासक्खिंसु द्वेवाचिकं पवारेतुं। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, एकवाचिकं पवारेतुं** ति। (२)

.......बाळ्हतरं सबरभयं अहोसि। भिक्खू नासक्खिंसु एकवाचिकं पवारेतुं। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, समानवस्सिकं पवारेतुं** ति। (३)

---

*[यहाँ पीछे उपोसथक्खन्धक में आये २६. आपत्तिआविकरणविधि, २७. सभागापत्तिपटिकम्मविधि, २८. अनापत्तिपन्नरसकं, २९. वग्गावग्गसञ्ञिपन्नरसकं, ३०. वेमतिकपन्नरसकं, ३१. कुक्कुच्चपकतपन्नरसकं, ३२. भेदपुरेक्खारपन्नरसकं, ३३. सीमोक्कन्तिकपेय्यालं एवं ३४. लिङ्गादिदस्सनं, ३५. नानासंवासकादीहि उपोसथकरण, ३६. नगन्तब्बवार, ३७. गन्तब्बवार एवं ३८. वज्जनीयपुग्गलसन्दस्सना शीर्षकों तक के पालिपाठ के लिये ७. आपत्तिआविकरणविधि से २०. वज्जीनयपुग्गलसन्दस्सना तक (पृ० २०० से २२३ तक) हिन्दी रूपान्तर पढ़े; क्योकि दोनो ही स्थलों पर इतना पाठ अक्षरशः समान है। केवल उस पाठ में स्थान-स्थान पर आये '**उपोसथ**' शब्द के स्थान पर यहाँ '**प्रवारणा**' शब्द लगाकर पढ़ना चाहिये।*

*यहाँ १५. दिवसनानत्तं यह विशेष शीर्षक है, परन्तु इसका पालिपाठ भी वहीं (उपोसथक्खन्धक में) **सीमोक्कन्तिकपेय्यालं** के अन्तर्गत ४७वे उपबन्ध में आ चुका है। अतः इसका भी हिन्दी रूपान्तर वहीं देखें।]*

प्रथम एवं द्वितीय भाणवार समाप्त॥

२१. पाठ के दो बार आदि पढ़ने की प्रवारणा

२९. उस समय कोसल जनपद के किसी भिक्षु आवास में प्रवारणा के दिन शबरों (जङ्गली आदमी) का भय हो गया। अतः भिक्षु तीन बार बोल कर प्रवारणा नहीं कर सके। अपनी यह कठिनाई भिक्षुओं ने भगवान् के सम्मुख रखी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (ऐसे समय में) दो बार पाठ करके ही पवारणा करने की।** (१)

.....कभी उससे भी अधिक उन शबरों का भय उपस्थित हो गया कि भिक्षु दो बार बोलकर भी प्रवारणा नहीं कर सके। यह बात भी भगवान् को बतायी गयी। (उन्होंने कहा—) "**भिक्षुओ! (ऐसे विकट समय में) प्रवारणा को एक बार ही बोलने की अनुमति देता हूँ।** (२)

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय मनुस्सेहि दानं देन्तेहि [B.251] येभुय्येन रत्ति खेपिता होति। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"मनुस्सेहि दानं देन्तेहि येभुय्येन रत्ति खेपिता। सचे सङ्घो तेवाचिकं पवारेस्सति, अप्पवारितो व सङ्घो भविस्सति, अथायं रत्ति विभायिस्सति। कथं नु खो अम्हेहि पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय मनुस्सेहि दानं देन्तेहि येभुय्येन रत्ति खेपिता होति। तत्र चे, भिक्खवे, भिक्खूनं एवं होति—"मनुस्सेहि दानं देन्तेहि येभुय्येन रत्ति खेपिता। सचे सङ्घो तेवाचिकं पवारेस्सति, अप्पवारितो व सङ्घो भविस्सति, अथायं रत्ति विभायिस्सती" ति, ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

[R.169] **"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। मनुस्सेहि दानं देन्तेहि येभुय्येन रत्ति खेपिता। सचे सङ्घो तेवाचिकं पवारेस्सति, अप्पवारितो व सङ्घो भविस्सति, अथायं रत्ति विभायिस्सति। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो द्वेवाचिकं, एकवाचिकं, समानवस्सिकं पवारेय्या" ति। (४)**

इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय भिक्खूहि धम्मं भणन्तेहि..... पे०.....सुत्तन्तिकेहि सुत्तन्तं सङ्गायन्तेहि....विनयधरेहि विनयं विनिच्छिनन्तेहि...... धम्मकथिकेहि धम्मं साकच्छन्तेहि......भिक्खूहि कलहं करोन्तेहि येभुय्येन रत्ति खेपिता होति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—"भिक्खूहि कलहं करोन्तेहि येभुय्येन रत्ति खेपिता। सचे सङ्घो तेवाचिकं पवारेस्सति, अप्पवारितो व सङ्घो भविस्सति, अथायं रत्ति विभायिस्सती" ति, ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

...कभी उससे भी भीषण उन शबरो का भय उपस्थित हो गया कि भिक्षु एक बार बोलकर भी प्रवारणा नहीं कर पाये। भगवान् से यह बात कही गयी। (उन्होने कहा—) **"अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! (ऐसे सङ्कट के समय) उसी वर्ष में फिर कभी प्रवारणा करने की।** (३)

उस समय किसी आवास में दानी मनुष्यो द्वारा दान देते देते ही रात्रि बिता दी जाती थी। तब भिक्षुओ को यह विचार हुआ कि यदि इस तरह दान देते देते ये दानी जन समय बितायेंगे तो आगे इतना रात्रिसमय नहीं रह जायगा कि भिक्षु लोग तीन बार बोलकर प्रवारणा कर सके। इस तरह समग्र सङ्घ प्रवारणा नहीं कर पायगा तथा रात्रि समाप्त हो जायगी। हमें इस विषय में क्या करना चाहिये? भगवान् के सम्मुख यह समस्या रखी गयी। (भगवान् ने कहा—) **"यदि, भिक्षुओ! किसी आवास में प्रवारणा के दिन दानी लोग दान दें, जिस कारण, बहुत अधिक रात्रि बीत जाय और तब भिक्षुओं का ऐसा लगे—'लोग दान देते हैं इसलिये अधिक रात्रि बीत गयी और अब यदि सङ्घ तीन बार बोल कर प्रवारणा करेगा तो समग्र सङ्घ की प्रवारणा पूर्ण न होगी और प्रातःकाल हो जायगा।"**

तो चतुर और समर्थ भिक्षु सङ्घ को सूचित करे कि लोगों के दान देने में बहुत रात्रि बीत गयी। अब यदि सङ्घ तीन बार बोलकर प्रवारणा करेगा तो समग्र सङ्घ की प्रवारणा पूर्ण न होगी और प्रातः हो जायगा। (अतः) यदि सङ्घ उचित समझे तो एक बार या दो बार बोली जाने वाली प्रवारणा करे या फिर इसके लिये इसी वर्ष में कोई आगे का दिन निश्चित कर ले।"

यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास मे प्रवारणा के दिन धर्म (सूत्रों) का पाठ करते हुए सूत्रपाठियो

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। भिक्खूहि कलहं करोन्तेहि येभुय्येन रत्ति खेपिता। सचे सङ्घो तेवाचिकं पवारेस्सति, अप्पवारितो व सङ्घो भविस्सति, अथायं रत्ति विभायिस्सति। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो द्वेवाचिकं, एकवाचिकं, समानवस्सिकं पवारेय्या" ति। (५)

तेन खो पन समयेन कोसलेसु जनपदे अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय महाभिक्खुसङ्घो सन्निपतितो होति, परित्तं च अनोवस्सिकं होति, महा च मेघो [B.252] उग्गतो होति। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"अयं खो महाभिक्खुसङ्घो [N.189] सन्निपतितो, परित्तं च अनोवस्सिकं, महा च मेघो उग्गतो। सचे सङ्घो तेवाचिकं पवारेस्सति, अप्पवारितो व सङ्घो भविस्सति, अथायं मेघो पवस्सिस्सति। कथं नु खो अम्हेहि पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय महाभिक्खुसङ्घो सन्निपतितो होति, परित्तं च अनोवस्सिकं होति, महा च मेघो उग्गतो होति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—"अयं खो महाभिक्खुसङ्घो सन्निपतितो, परित्तं च अनोवस्सिकं, महा च मेघो उग्गतो। सचे सङ्घो तेवाचिकं पवारेस्सति, अप्पवारितो व सङ्घो भविस्सति, अथायं मेघो पवस्सिस्सती" ति। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं महाभिक्खुसङ्घो सन्निपतितो, परित्तं च अनोवस्सिकं, महा च मेघो उग्गतो। सचे सङ्घो तेवाचिकं पवारेस्सति, अप्पवारितो व सङ्घो भविस्सति, अथायं मेघो पवस्सिस्सति। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो द्वेवाचिकं, एकवाचिकं समानवस्सिकं पवारेय्या" ति।

इध पन, भिक्खवे, अञ्ञतरस्मिं आवासे तदहुपवारणाय राजन्तरायो होति.....पे०..... चोरन्तरायो होति.....अग्यन्तरायो होति......उदकन्तरायो होति......मनुस्सन्तरायो होति..... अमनुस्सन्तरायो होति.....वाळन्तरायो होति.....सरीसपन्तरायो होति...... जीवितन्तरायो होति.....ब्रह्मचरियन्तरायो होति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—"अयं खो, ब्रह्मचरियन्तरायो।

द्वारा सूत्रों का पाठ करते हुए....विनयधरों द्वारा विनय का निर्णय करते हुए.....धर्मोपदेशकों द्वारा धर्म की परीक्षा (साक्षात्कार) करते हुए.....असत्कारी भिक्षुओं द्वारा कलह करते हुए अधिक रात्रि व्यतीत हो जाय....पूर्ववत् ...प्रवारणा करे या फिर इसके लिये इसी वर्ष में कोई आगे का दिन निश्चित कर ले।

उस समय कोसल प्रदेश के किसी आवास में उसी दिन प्रवारणा के लिये बहुत बड़ा भिक्षुसङ्घ एकत्र हुआ था। उस आवास में वर्षा से बचने का स्थान बहुत कम था जबकि ऊपर आकाश मे मेघों की काली घटा घिरती आ रही थी। तब भिक्षुओं को यह विचार हुआ—'इधर यह विशाल भिक्षुसङ्घ प्रवारणाहेतु एकत्र है, परन्तु यहाँ वर्षा से त्राण का स्थान अत्यल्प है अैर मेघों की काली घटा घिरती आ रही है; तब सङ्घ तीन बार बोलकर प्रवारणा कैसे कर पायगा? सङ्घ की प्रवारणा पूर्ण होते होते वर्षा प्रारम्भ हो जायगी। ऐसे में हमें क्या करना चाहिये?" भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा–)

यदि, भिक्षुओ! प्रवारणा के दिन विशाल भिक्षुसङ्घ एकत्र हो......।

......राजा की तरफ से विघ्न हो.....। ..अग्नि का विघ्न हो..... ।.. ... चोरो का विघ्न हो ...। ....बाढ़ आयी हो..... ।.. आतङ्कवादी मनुष्यों का विघ्न हो. ...।.. अमनुष्यों (भूत–प्रेत–पिशाचों) का विघ्न हो । ....हिं सक जन्तुओ का विघ्न हो.... । ...रेंगने वाले सॉप–विच्छु का विघ्न हो .. ..। प्राणसङ्कट का

[R.170] सचे सङ्घो तेवाचिकं पवारेस्सति, अप्पवारितो व सङ्घो भविस्सति, अथायं ब्रह्मचरियन्तरायो भविस्सती'' ति, ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

''सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं ब्रह्मचरियन्तरायो। सचे सङ्घो तेवाचिकं पवारेस्सति, अप्पवारितो व सङ्घो भविस्सति, अथायं ब्रह्मचरियन्तरायो भविस्सति। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, [B.253] सङ्घो द्वेवाचिकं, एकवाचिकं समानवस्सिकं पवारेय्या'' ति।

२२. पवारणाठपनं

३०. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सापत्तिका पवारेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सापत्तिकेन पवारेतब्बं। यो पवारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, यो सापत्तिको पवारेति, तस्स ओकासं कारापेत्वा आपत्तिया चोदेतुं** ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू ओकासं कारापियमाना न इच्छन्ति ओकासं कातुं। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, ओकासं अकरोन्तस्स पवारणं ठपेतुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, ठपेतब्बा। तदहुपवारणाय चातुद्दसे वा पन्नरसे वा तस्मिं पुग्गले सम्मुखीभूते सङ्घमज्झे उदाहरितब्बं—''सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। इत्थन्नामो पुग्गलो सापत्तिको। तस्स पवारणं ठपेमि। न तस्मिं सम्मुखीभूते पवारेतब्बं'' ति। ठपिता होति पवारणा ति।

विघ्न हो......। .. .धर्मसाधना में विघ्न उपस्थित हो। वहाँ यदि भिक्षुओं को यह विचार उठे कि यदि ऐसे में सङ्घ—तीन बार बोलकर...चतुर और समर्थ भिक्षु द्वारा सङ्घ को ज्ञापित करना चाहिये—

भन्ते! सङ्घ मेरा निवेदन सुने . .पूर्ववत् . . यदि सङ्घ उचित समझे तो प्रवारणा के लिये एक बार, दो बार बोलकर या फिर इसी वर्ष में किसी अन्य समय निश्चित कर दे।

२२. प्रवारणा का स्थगन

दोषयुक्तों की प्रवारणा का निषेध— ३०. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु दोषयुक्त रहते हुए भी प्रवारणा करते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने आदेश किया—) **''भिक्षुओ! दोषयुक्त रहते हुए किसी को प्रवारणा नहीं करनी चाहिये; जो करे उसे 'दुष्कृत' आपत्ति (दोष) हो। अतः भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जो दोषयुक्त होते हुए भी प्रवारणा करे उसे अवकाश (आज्ञा) कराकर दोषारोपण करने की।**

अवकाश न करने पर स्थगन— उस समय उन षड्वर्गीय भिक्षुओं को, भगवान् के उपर्युक्त आदेश के अनुसार, अवकाश कराया जाता था तो वे अवकाश (आज्ञा माँगना) नहीं करना चाहते थे। भगवान् से उनका यह अपराध बताया गया। (भगवान् ने कहा—) **''भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु की प्रवारणा स्थगित करने की अनुमति देता हूँ जो अवकाश न करना चाहता हो।**

ऐसे **प्रवारणा—स्थगन की विधि** यह होगी—चतुर्दशी या पञ्चदशी की उस प्रवारणा को उस पुद्गल के उपस्थित रहने पर सङ्घ के बीच में यों कहना चाहिये—'भन्ते! सङ्घ मेरा निवेदन सुने। अमुक नाम वाला व्यक्ति दोषयुक्त है, उसकी प्रवारणा स्थगित करता हूँ। सामने होने पर भी उसकी प्रवारणा नहीं करनी चाहिये।'' इस तरह प्रवारणा स्थगित हो जाती है।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू—''पुरम्हाकं पेसला भिक्खू [N.190] पवारणं ठपेन्ती'' ति—पटिकच्चेव सुद्धानं भिक्खूनं अनापत्तिकानं अवत्थुस्मिं अकारणो पवारणं ठपेन्ति, पवारितानं पि पवारणं ठपेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सुद्धानं भिक्खूनं अनापत्तिकानं अवत्थुस्मि अकारणे पवारणा ठपेतब्बा। यो ठपेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। न, भिक्खवे, पवारितानं पि पवारणा ठपेतब्बा। यो ठपेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स।**

३१. एवं खो, भिक्खवे, ठपिता होति पवारणा एवं अट्ठपिता। कथं च, भिक्खवे, अट्ठपिता होति पवारणा? तेवाचिकाय चे, भिक्खवे, पवारणाय भासिताय लपिताय परियोसिताय पवारणं ठपेति, अट्ठपिता होति पवारणा। द्वेवाचिकाय चे, भिक्खवे,..... एकवाचिकाय चे, भिक्खवे,.....समानवस्सिकाय चे, भिक्खवे, पवारणाय भासिताय लपिताय परियोसिताय पवारणं ठपेति, अट्ठपिता होति पवारणा। एवं खो, भिक्खवे, [B.254, R.171] अट्ठपिता होति पवारणा।

कथं च, भिक्खवे, ठपिता होति पवारणा? तेवाचिकाय, चे, भिक्खवे, पवारणाय भासिताय लपिताय अपरियोसिताय पवारणं ठपेति, ठपिता होति पवारणा। द्वेवाचिकाय चे, भिक्खवे,.....एकवाचिकाय चे, भिक्खवे.....समानवस्सिकाय चे, भिक्खवे, पवारणाय भासिताय, लपिताय अपरियोसिताय पवारणं ठपेति, ठपिता होति पवारणा। एवं खो, भिक्खवे, ठपिता होति पवारणा।

३२. इध पन, भिक्खवे, तदहुपवारणाय भिक्खु भिक्खुस्स पवारणं ठपेति। तं चे भिक्खुं अञ्ञे भिक्खू जानन्ति—''अयं खो आयस्मा अपरिसुद्धकायसमाचारो,

---

अनुचित स्थगन– उस समय षड्वर्गीय भिक्षु यह सोचकर कि ये अच्छे सदाचारी भिक्षु भी हमारी प्रवारणा स्थगित करते हैं—इस ईर्ष्या से वे भी उन निर्दोष शुद्ध भिक्षुओं की प्रवारणा को अकारण मिथ्या आरोप लगाकर स्थगित कर देते थे। इतना ही नहीं, जिनकी प्रवारणा हो गयी होती उसे भी स्थगित कर देते थे। भगवान् के सम्मुख यह समस्या रखी गयी। (भगवान् ने कहा–)

''भिक्षुओ! निर्दोष शुद्ध भिक्षुओं की प्रवारणा अकारण या झूठा आरोप लगाकर स्थगित नहीं करना चाहिये। जो ऐसा करे उसे 'दुष्कृत' दोष लगता है। तथा, भिक्षुओ! जिनकी प्रवारणा हो चुकी है उन की प्रवारणा स्थगित नहीं की जानी चाहिये। जो स्थगित करे उसे दुष्कृत दोष लगेगा।

स्थगन–प्रकार– ३१. ''भिक्षुओ! प्रवारणा के स्थगन या अस्थगन की विधि यह है--

(क) भिक्षुओ! प्रवारणा कैसे अस्थगित मानी जाती है? यदि भिक्षुओ! तीन वार प्रवारणा को बोलकर, कहकर समाप्त की गयी प्रवारणा को कोई स्थगित करे तो भी वह 'अस्थगित' ही मानी जाती है। भिक्षुओ! दो बार बोलकर, कहकर समाप्त की गयी प्रवारणा....। भिक्षुओ! उसी वर्ष वाली प्रवारणा को बोल कर कहकर समाप्त की गयी प्रवारणा को यदि कोई स्थगित करे तो भी वह 'अस्थगित' ही मानी जाती है।

(ख) ''कैसे भिक्षुओ! प्रवारणा स्थगित होती है? यदि भिक्षुओ! तीन बार बोली गयी, कही गयी प्रवारणा को समाप्त न होते उसे कोई स्थगित करे तो वह 'स्थगित' मानी जाती है। दो बार ..एक बार...उसी वर्ष वाली...। इस प्रकार भिक्षुओ! प्रवारणा स्थगित होती है।

तिरस्कृत कर प्रवारणा पूर्ण कराना– ३२ ''यदि, भिक्षुओ! प्रवारणा के दिन कोई भिक्षु

अपरिसुद्धवचीसमाचारो अपरिसुद्धाजीवो, बालो, अब्यत्तो, न पटिबलो अनुयुञ्जीयमानो अनुयोगं दातुं'' ति—''अलं, भिक्खु, मा भण्डनं, मा कलहं, मा विग्गहं, मा विवादं'' ति ओमद्दित्वा सङ्घेन पवारेतब्बं।

इध पन, भिक्खवे, तदहुपवारणाय भिक्खु भिक्खुस्स पवारणं ठपेति। तं चे भिक्खुं अञ्ञे भिक्खू जानन्ति—''अयं खो आयस्मा परिसुद्धकायसमाचारो, अपरिसुद्धवचीसमाचारो, अपरिसुद्धाजीवो, बालो, अब्यत्तो, न पटिबलो अनुयुञ्जीयमानो अनुयोगं दातुं ति—'अलं, भिक्खु, मा भण्डनं, मा कलहं, मा विग्गहं, मा विवादं'' ति ओमद्दित्वा सङ्घेन पवारेतब्बं।

इध पन, भिक्खवे, तदहुपवारणाय भिक्खु भिक्खुस्स पवारणं ठपेति। तं चे भिक्खुं अञ्ञे भिक्खू जानन्ति—''अयं खो आयस्मा परिसुद्धकायसमाचारो, परिसुद्धवचीसमाचारो, अपरिसुद्धाजीवो, बालो, अब्यत्तो, न पटिबलो अनुयुञ्जीयमानो अनुयोगं दातुं ति—'अलं, भिक्खु, मा भण्डनं, मा कलहं, मा विग्गहं, मा विवादं'' ति ओमद्दित्वा सङ्घेन पवारेतब्बं।

इध पन, भिक्खवे, तदहुपवारणाय भिक्खु भिक्खुस्स पवारणं ठपेति। तं चे भिक्खुं अञ्ञे भिक्खू जानन्ति—''अयं खो आयस्मा परिसुद्धकायसमाचारो, अपरिसुद्धवचीसमाचारो, अपरिसुद्धाजीवो, बालो, अब्यत्तो, न पटिबलो अनुयुञ्जीयमानो अनुयोगं दातुं ति—'अलं, भिक्खु, मा भण्डनं, मा कलहं, मा विग्गहं, मा विवादं'' ति ओमद्दित्वा सङ्घेन पवारेतब्बं।

इध पन, भिक्खवे, तदहुपवारणाय भिक्खु भिक्खुस्स पवारणं ठपेति। तं चे भिक्खुं अञ्ञे भिक्खू जानन्ति—''अयं खो आयस्मा परिसुद्धकायसमाचारो, परिसुद्धवचीसमाचारो, अपरिसुद्धाजीवो, बालो, अब्यत्तो, न पटिबलो अनुयुञ्जीयमानो अनुयोगं दातुं ति—'अलं, भिक्खु, मा भण्डनं, मा कलहं, मा विग्गहं, मा विवादं'' ति ओमद्दित्वा सङ्घेन पवारेतब्बं।

किसी दूसरे भिक्षु की प्रवारणा को स्थगित करता है और उस स्थगित करने वाले भिक्षु के विषय में अन्य सभी भिक्षु जानते हो कि इस आयुष्मान् का कायिक एवं वाचिक चरित्र ठीक नहीं, न इसकी आजीविका ही शुद्ध है, यह तो मूर्ख एव अज्ञानी है, प्रेरित करने पर अनुयोग (बात को प्रमाणित करने) में भी समर्थ नही है। ऐसी स्थिति में उस भिक्षु को—'नहीं, भिक्षु! भण्डन (कलह), विग्रह एवं विवाद न कर'—ऐसे फटकारते (तिरस्कृत करते) हुए सङ्घ को प्रवारणा पूर्ण करनी चाहिये।

''यदि, भिक्षुओ! प्रवारणा के दिन कोई भिक्षु.....पूर्ववत्.. इसका कायिक आचार तो शुद्ध है; परन्तु इसका वाचसिक आचार एवं आजीविका शुद्ध नही है ...ऐसे फटकारते हुए सङ्घ को प्रवारणा पूर्ण करनी चाहिये।

''यदि, भिक्षुओ! प्रवारणा के दिन कोई भिक्षु....पूर्ववत् ..आजीविका शुद्ध नहीं है....ऐसे फटकारते हुए सङ्घ को प्रवारणा पूर्ण करनी चाहिये।

''यदि, भिक्षुओ! प्रवारणा के दिन कोई भिक्षु. .पूर्ववत्. ..आजीविका भी शुद्ध है, परन्तु यह मूर्ख अज्ञानी है....ऐसे फटकारते हुए सङ्घ को प्रवारणा पूर्ण करनी चाहिये।

दण्ड देकर प्रवारणा पूर्ण करना— यदि भिक्षुओ! प्रवारणा के दिन कोई भिक्षु. ...पूर्ववत्.... अन्य भिक्षु जानते हैं कि यह आयुष्मान् कायकर्म एवं वाक्कर्म तथा आजीविका पक्ष से तो परिशुद्ध है ही; परन्तु यह पण्डित भी है, ज्ञानी भी है, प्रेरित करने पर यह अनुयोग भी कर सकता है, तो उससे यों कहा (पूछा) जाना चाहिये—''आयुष्मन्! तुमने इस भिक्षु की जो प्रवारणा स्थगित की वह किस कारण

इध पन, भिक्खवे, तदहुपवारणाय भिक्खु भिक्खुस्स पवारणं ठपेति। तं चे भिक्खुं अञ्ञे भिक्खू जानन्ति—"अयं खो आयस्मा परिसुद्धकायसमाचारो, परिसुद्धवची-[N.191] समाचारो, परिसुद्धाजीवो, बालो, अब्यत्तो, न पटिबलो अनुयुञ्जीयमानो अनुयोगं दातुं ति—'अलं, भिक्खु मा भण्डनं, मा कलहं, मा विग्गहं, मा विवादं" ति ओमद्दित्वा [B.255] सङ्घेन पवारेतब्बं।

इध पन, भिक्खवे, तदहुपवारणाय भिक्खु भिक्खुस्स पवारणं ठपेति। तं चे भिक्खुं अञ्ञे भिक्खू जानन्ति—"अयं खो आयस्मा परिसुद्धकायसमाचारो, परिसुद्धवचीसमाचारो, परिसुद्धाजीवो, पण्डितो, ब्यत्तो, पटिबलो अनुयुञ्जीयमानो अनुयोगं दातुं" ति—सो एवमस्स वचनीयो—"यं खो त्वं, आवुसो, इमस्स भिक्खुनो पवारणं ठपेसि, किम्हि नं ठपेसि, सीलविपत्तिया वा ठपेसि, आचारविपत्तिया वा ठपेसि, दिट्ठिविपत्तिया वा ठपेसी" [R.172] ति? सो चे एवं वदेय्य—"सीलविपत्तिया वा ठपेमि, आचारविपत्तिया वा ठपेमि, दिट्ठिविपत्तिया वा ठपेमी" ति, सो एवमस्स वचनीयो—"जानाति पनायस्मा सीलविपत्तिं, जानाति आचारविपत्तिं, जानाति दिट्ठिविपत्तिं" ति? सो चे एवं वदेय्य—"जानामि खो अहं, आवुसो, सीलविपत्तिं, जानामि आचारविपत्तिं, जानामि दिट्ठिविपत्तिं" ति, सो एवमस्स वचनीयो—"कतमा पनावुसो, सीलविपत्ति, कतमा आचारविपत्ति, कतमा दिट्ठिविपत्ती" ति? सो चे एवं वदेय्य—"चत्तारि पाराजिकानि, तेरस सङ्घादिसेसा—अयं सीलविपत्ति; थुल्लच्चयं, पाचित्तियं, पाटिदेसनीयं, दुक्कटं, दुब्भासितं—अयं आचारविपत्ति; मिच्छादिट्ठि अन्तग्गाहिकादिट्ठि—अयं दिट्ठिविपत्ती" ति।

से की? क्या इसमें शीलसम्बन्धी दोष है, या आचारसम्बन्धी, या दृष्टि (धारणा) सम्बन्धी? यदि वह ऐसा कहे—'शीलसम्बन्धी दोष से....आचारसम्बन्धी दोष से....दृष्टिसम्बन्धी दोष से स्थगित की है।' तो उससे पूछना चाहिये—'क्या तुम (स्वयं) शीलसम्बन्धी, आचारसम्बन्धी, दृष्टिसम्बन्धी दोष को जानते हो?' तो उससे पूछना चाहिये—'आयुष्मन्! ये शील ...आचार... दृष्टिसम्बन्धी दोष क्या है?' यदि वह ऐसा कहे—'चार पाराजिक, तेरह सङ्घादिशेष—ये शीलसम्बन्धी दोष हैं, स्थूलात्यय, प्रायश्चित्तीय, प्रतिदेशनीय, दुष्कृत एवं दुर्वचन—ये आचारसम्बन्धी दोष हैं; तथा मिथ्यादृष्टि, अन्तग्राहिका दृष्टि—ये दृष्टिसम्बन्धी दोष हैं।'

तो उससे फिर पूछना चाहिये—'आयुष्मन्! जो तुमने इस भिक्षु की प्रवारणा स्थगित की है वह किसी दृष्ट अपराध से की है, या श्रुत अपराध से या किसी अपराध की शङ्का से ही की है?' यदि वह कहे—'मैंने दृष्ट अपराध के कारण की है, या श्रुत या किसी अपराध की शङ्का के कारण ही स्थगित की है। तब उससे यह पूछा जाना चाहिये—'आयुष्मन्! यदि तुमने इस भिक्षु की प्रवारणा दृष्ट दोष के कारण स्थगित की है तो तुमने क्या देखा? कैसे देखा? कब देखा? कहाँ देखा कि उसने पाराजिक का अपराध किया है या सङ्घादिशेष का या स्थूलात्यय का, प्रायश्चित्तीय का, प्रातिदेशनीय का, दुष्कृत, दुर्भाषण का अपराध किया है? उस समय तुम कहाँ थे? और यह भिक्षु कहाँ था? तुम क्या कर रहे थे? और यह भिक्षु क्या कर रहा था? यदि वह ऐसा कहे—'आयुष्मानो! मैं इस भिक्षु की प्रवारणा दृष्ट अपराध से स्थगित नहीं करता, अपितु श्रुत अपराध से स्थगित करता हूँ। तो उससे पूछना चाहिये—'आयुष्मन्! यदि तुम इस भिक्षु की प्रवारणा श्रुत अपराध से स्थगित कर रहे हो तो तुमने क्या सुना,

सो एवमस्स वचनीयो—"यं खो त्वं, आवुसो, इमस्स भिक्खुनो पवारणं टपेसि, दिट्ठेन वा ठपेसि, सुतेन वा ठपेमि, परिसङ्काय वा ठपेसि" ति? सोचे एवं वदेय्य—"दिट्ठेन वा ठपेमि, सुतेन का ठपेमि, परिसङ्काय वा ठपेमी ति, सो एवमस्स वचनीयो—"यं खो त्वं, आवुसो, इमस्स भिक्खुनो दिट्ठेन पवारणं ठपेसि, किन्ते दिट्ठं, किन्ति ते दिट्ठं, कदा ते दिट्ठं, कत्थ ते दिट्ठं, पाराजिकं अज्झापज्जन्तो दिट्ठो, सङ्घादिसेसं अज्झापज्जन्तो दिट्ठो, थुल्लच्चयं..... पाचित्तियं.....पाटिदेसनीयं.....दुक्कटं.....दुब्भासितं अज्झापज्जन्तो दिट्ठो, कत्थ च त्वं अहोसि, कत्थ चायं भिक्खु अहोसि, किं च त्वं करोसि, किञ्चायं भिक्खु करोती" ति? सो चे एवं वदेय्य—"न खो अहं, आवुसो, इमस्स भिक्खुनो दिट्ठेन पवारणं ठपेमि, अपि च सुतेन पवारणं ठपेमी" ति, सो एवमस्स वचनीयो—"यं खो त्वं, आवुसो, इमस्स [B.256] भिक्खुनो सुतेन पवारणं ठपेसि, किं ते सुतं, किं ति ते सुतं, कदा ते सुतं, कत्थ ते सुतं, पाराजिकं अज्झापन्नो ति सुतं, सङ्घादिसेसं अज्झापन्नो ति सुतं, थुल्लच्चयं.....पाचित्तियं....पाटिदेसनीयं.... दुक्कटं.....दुब्भासितं अज्झापन्नो ति सुतं, भिक्खुस्स सुतं, भिक्खुनिया सुतं, सिक्खमानाय सुतं, सामणेरस्स सुतं, सामणेरिया सुतं, उपासकस्स [N.192] सुतं, उपासिकाय सुतं, राजूनं सुतं, राजमहामत्तानं सुतं, तित्थियानं सुतं, तित्थियसावकानं सुतं" ति? सो चे एवं वदेय्य—"न खो अहं, आवुसो, इमस्स भिक्खुनो सुतेन पवारणं ठपेमि, अपि च परिसङ्काय पवारणं ठपेमी" ति। सो एवमस्स वचनीयो—"यं खो त्वं, आवुसो, इमस्स भिक्खुनो परिसङ्काय पवारणं ठपेसि, किं परिसङ्कसि, किं ति [R.173] परिसङ्कसि, कदा परिसङ्कसि, कत्थ परिसङ्कसि, पाराजिकं अज्झापन्नो ति परिसङ्कसि, सङ्घादिसेसं अज्झापन्नो ति परिसङ्कसि, सङ्घादिसेसं अज्झापन्नो ति परिसङ्कसि, थुल्लच्चयं.....पाचित्तियं....पाटिदेसनीयं....दुक्कटं.....दुब्भासितं अज्झापन्नो ति परिसङ्कसि,

---

कैसे सुना? कब सुना? कहाँ सुना कि इसने पाराजिक....दुर्भाषण का अपराध किया? भिक्षु से सुना या भिक्षुणी से? या शिक्षमाणा से, या श्रामणेर से सुना या श्रामणेरी से? उपासक से या उपासिका से सुना? राजा से सुना या राजा के महामात्य से? तीर्थिकों से सुना या उनके अनुयायियों से सुना?' यदि वह यह कहे—'मैं तो इस भिक्षु की प्रवारणा दृष्ट या श्रुत अपराध से नहीं, अपितु सन्देह (शङ्का) से स्थगित करता हूँ।' तब उससे यह पूछा जाना चाहिये—'आयुष्मन्! तुमने इस भिक्षु की प्रवारणा को सन्देह से स्थगित किया है तो तूँ क्या सन्देह करता है? कैसे सन्देह करता है? कब, कहाँ सन्देह करता है कि इसने पाराजिक....दुर्वचन का अपराध किया? भिक्षु से सुनकर सन्देह करता है .... या तीर्थिकों से या उनके अनुयायियों से सुनकर सन्देह करता है? यदि वह ऐसा कहे—'आयुष्मानो! मैं इस भिक्षु की प्रवारणा किसी सन्देह से स्थगित नहीं करता, अपितु मुझे स्वयं ज्ञात नहीं है कि मैं क्यों इसकी प्रवारणा स्थगित कर रहा हूँ?

यदि भिक्षुओ! वह दोषारोपक भिक्षु अपने प्रत्युत्तर (अनुयोग) से उन जानकार सब्रह्मचारी भिक्षुओं को सन्तुष्ट न कर सके तो उसको कह देना चाहिये कि उसका दोषारोपण ठीक नहीं। यदि भिक्षुओ! वह दोषारोपक भिक्षु अपने प्रत्युत्तर से अपने सब्रह्मचारियों को सन्तुष्ट कर दे तो उन्हें कहना चाहिये कि उसका दोषारोपण उचित है। तब यदि भिक्षुओ! वह दोषारोपक भिक्षु उस भिक्षु पर निर्मूल पाराजिक दोष लगाना स्वीकार करे तो उस पर सङ्घादिशेष दोष का आरोप कर सङ्घ को प्रवारणा करनी चाहिये। यदि वह निर्मूल सङ्घादिशेष दोष लगाना स्वीकार करे तो उस पर धर्मानुसार दण्ड

भिक्खुस्स सुत्वा परिसङ्कसि, भिक्खुनिया सुत्वा परिसङ्कसि, सिक्खमानाय सुत्वा परिसङ्कसि, सामणेरस्स सुत्वा परिसङ्कसि, सामणेरिया सुत्वा परिसङ्कसि, उपासकस्स सुत्वा परिसङ्कसि, उपासिकाय सुत्वा परिसङ्कसि, राजूनं सुत्वा परिसङ्कसि, राजमहामत्तानं सुत्वा परिसङ्कसि, तित्थियानं सुत्वा परिसङ्कसि, तित्थियसावकानं सुत्वा परिसङ्कसी'' ति? सो चे एवं वदेय्य—''न खो अहं, आवुसो, इमस्स भिक्खुनो परिसङ्काय पवारणं ठपेमि, अपि च अहं पि न जानामि केन पनाहं इमस्स भिक्खुनो पवारणं ठपेमी'' ति।

सो चे, भिक्खवे, चोदको भिक्खु अनुयोगेन विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं चित्तं न आराधेति, 'अननुवादो चुदितो भिक्खू' ति अलं वचनाय। सो चे, भिक्खवे, चोदको भिक्खु अनुयोगेन विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं चित्तं आराधेति, 'सानुवादो चुदितो भिक्खू' ति अलं वचनाय। सो चे, भिक्खवे, चोदको भिक्खु अमूलकेन पाराजिकेन अनुद्धंसितं पटिजानाति, सङ्घादिसेसं आरोपेत्वा सङ्घेन पवारेतब्बं। सो चे भिक्खवे, चोदको भिक्खु अमूलकेन सङ्घादिसेसेन अनुद्धंसितं पटिजानाति, यथाधम्मं कारापेत्वा सङ्घेन पवारेतब्बं। सो चे, भिक्खवे, [B.257] चोदको भिक्खु अमूलकेन थुल्लच्चयेन.....पाचित्तियेन.....पाटिदेसनीयेन.....दुक्कटेन..... दुब्भासितेन अनुद्धंसितं पटिजानाति, यथाधम्मं कारापेत्वा सङ्घेन पवारेतब्बं।

सो चे, भिक्खवे, चुदितो भिक्खु सङ्घादिसेसं अज्झापन्नो ति पटिजानाति, सङ्घादिसेसं आरोपेत्वा सङ्घेन पवारेतब्बं। सो चे, भिक्खवे, चुदितो भिक्खु थुल्लच्चयं.....पाचित्तियं ...... पाटिदेसनीयं....दुक्कटं .....दुब्भासितं अज्झापन्नो ति पटिजानाति, यथाधम्मं कारापेत्वा सङ्घेन पवारेतब्बं।

२३. थुल्लच्चयवत्थुकादि

३३. इध पन, भिक्खवे, भिक्खु तदहुपवारणाय थुल्लच्चयं अज्झापन्नो होति। एकच्चे भिक्खू थुल्लच्चयदिट्ठिनो होन्ति, एकच्चे भिक्खू सङ्घादिसेसदिट्ठिनो होन्ति। ये ते, भिक्खवे, भिक्खू थुल्लच्चयदिट्ठिनो, तेहि सो, भिक्खवे, भिक्खु एकमन्तं अपनेत्वा यथाधम्मं कारापेत्वा सङ्घं उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—''यं खो सो, आवुसो, भिक्खु आपत्तिं आपन्नो, सास्स यथाधम्मं पटिकता। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो पवारेय्या'' ति।

करवा कर....। निर्मूल स्थूलात्यय. दुर्वचन दोष लगाना स्वीकार करे तो धर्मानुसार दण्ड करवाकर सङ्घ को प्रवारणा करनी चाहिये।

यदि, भिक्षुओ! वह भिक्षु, जिस पर दोषारोप किया गया है, स्वयं को पाराजिक दोष का अपराधी स्वीकार करता है तो उसे सदा के लिये सङ्घ से निकलकर सङ्घ को प्रवारणा करनी चाहिये।... सङ्घादिशेष का.. स्थूलात्यय का ....दुर्भाषण का दोषी स्वीकार करता है तो उसे धर्मानुसार दण्ड देकर सङ्घ को प्रवारणा करनी चाहिये।

२३. स्थूलात्ययवस्तु आदि

३३. यदि भिक्षुओ! किसी भिक्षु ने प्रवारणा के दिन स्थूलात्यय अपराध किया हो तब कुछ भिक्षु जो उसका स्थूलात्यय अपराध ही समझते हों और कुछ सङ्घादिशेष; तो भिक्षुओ! उन्हे उन स्थूलात्ययवादियों को उस भिक्षु को एक तरफ ले जाकर धर्मानुसार दण्ड देकर सङ्घ से यो कहना

इध पन, भिक्खवे, भिक्खु तदहुपवारणाय थुल्लच्चयं अज्झापन्नो होति। एकच्चे [N.193] भिक्खू थुल्लच्चयदिट्ठिनो होन्ति, एकच्चे पाचित्तियदिट्ठिनो होन्ति.....पे०....एकच्चे [R.174] भिक्खू थुल्लच्चयदिट्ठिनो होन्ति, एकच्चे भिक्खू दुक्कटदिट्ठिनो होन्ति....एकच्चे भिक्खू थुल्लच्चयदिट्ठिनो होन्ति, एकच्चे भिक्खू दुब्भासितदिट्ठिनो होन्ति। ये ते, भिक्खवे, भिक्खू थुल्लच्चयदिट्ठिनो, तेहि सो, भिक्खवे, भिक्खु एकमन्तं अपनेत्वा यथाधम्मं कारापेत्वा सङ्घं उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—"यं खो सो, आवुसो, भिक्खु आपत्तिं आपन्नो, सास्स यथाधम्मं पटिकता। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो पवारेय्या" ति।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खु तदहुपवारणाय पाचित्तियं अज्झापन्नो होति....पे०..... पाटिदेसनीयं अज्झापन्नो होति....दुक्कटं अज्झापन्नो होति.....दुब्भासितं अज्झापन्नो होति। एकच्चे भिक्खू दुब्भासितदिट्ठिनो होन्ति, एकच्चे भिक्खू सङ्घादिसेसदिट्ठिनो होन्ति। ये ते, [B.258] भिक्खवे, भिक्खू दुब्भासितदिट्ठिनो, तेहि सो, भिक्खवे, भिक्खु एकमन्तं अपनेत्वा यथाधम्मं कारापेत्वा सङ्घं उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—"यं खो सो, आवुसो, भिक्खु आपत्तिं आपन्नो, सास्स यथाधम्मं पटिकता। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो पवारेय्या" ति।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खु तदहुपवारणाय दुब्भासितं अज्झापन्नो होति। एकच्चे भिक्खू दुब्भासितदिट्ठिनो होन्ति, एकच्चे भिक्खू थुल्लच्चयदिट्ठिनो होन्ति.....पे०.....एकच्चे भिक्खू दुब्भासितदिट्ठिनो होन्ति, एकच्चे भिक्खू पाचित्तियदिट्ठिनो होन्ति.....एकच्चे भिक्खू दुब्भासितदिट्ठिनो होन्ति, एकच्चे भिक्खू पाटिदेसनीयदिट्ठिनो होन्ति....एकच्चे भिक्खू दुब्भासितदिट्ठिनो होन्ति, एकच्चे भिक्खू दुक्कटदिट्ठिनो होन्ति। ये ते, भिक्खवे, भिक्खू दुब्भासितदिट्ठिनो, तेहि सो, भिक्खवे, भिक्खु एकमन्तं अपनेत्वा यथाधम्मं कारापेत्वा सङ्घं

चाहिये—'आयुष्मानो! इस भिक्षु ने जो अपराध किया था उसका धर्मानुसार प्रतीकार करवा दिया गया है, अब यदि सङ्घ उचित समझे तो प्रवारणा करे।'

यदि, भिक्षुओ! कोई भिक्षु प्रवारणा के दिन स्थूलात्यय दोषयुक्त हो जाय तो वहाँ कुछ भिक्षु उसे स्थूलात्यय दोषापन्न समझें और इसी तरह कुछ भिक्षु उसे प्रायश्चित्तीय दोष का अपराधी समझते हो. .पूर्ववत्. ..कुछ भिक्षु उसे प्रातिदेशनीय का और कुछ भिक्षु स्थूलात्यय का या कुछ भिक्षु दुष्कृत दोष का अपराधी समझते हो. ..कुछ भिक्षु स्थूलात्यय का एव कुछ भिक्षु दुर्वचन दोष का अपराधी समझते हों; तो वहाँ भी जो भिक्षु उसे स्थूलात्यय दोष का अपराधी समझते हों वे उसे एकान्त में ले जाकर धर्मानुसार दण्ड देकर फिर सङ्घ से यो कहे -'आयुष्मानो! इस भिक्षु ने जो अपराध किया था उसका धर्मानुसार प्रतीकार करवा दिया गया है, अब यदि सङ्घ उचित समझे तो प्रवारणा करे।'

"यदि भिक्षुओ! किसी भिक्षु ने प्रवारणा के दिन प्रायश्चित्तीय दोष. . । प्रतिदेशनीय दोष । दुष्कृत दोष.. ।....दुर्भाषण दोष किया हो तब कोई भिक्षु उसके दोष को दुर्भाषण दोष माने और कोई सङ्घादिशेष माने .पूर्ववत् ..प्रवारणा करे।

"यदि, भिक्षुओ! कोई भिक्षु प्रवारणा के दिन दुर्भाषण दोष से युक्त हो जाय, तब उसे कुछ भिक्षु दुर्भाषितदोषयुक्त समझे और कुछ स्थूलात्यय दोष से ग्रस्त, पूर्ववत् . कुछ उस का वह दोष दुर्भाषण का मानते हों, कुछ प्रायश्चित्तीय का कुछ भिक्षु दुर्भाषण दोष ही मानते हो और कुछ प्रतिदेशनीय कुछ भिक्षु दुर्भाषित मानते हो तो कुछ दुष्कृत। तब वहाँ जो भिक्षु दुर्भाषित दोष मानने वाले है भिक्षुओ! वे भिक्षु उस भिक्षु को एक तरफ ले जाकर धर्मानुसार दण्ड दकर पुन आकर सङ्घ

उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—"यं खो सो, आवुसो, भिक्खु आपत्तिं आपन्नो, सास्स यथाधम्मं पटिकता। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो पवारेय्या" ति।

२४. वत्थुठपनादि

३४. इध पन, भिक्खवे, भिक्खु तदहुपवारणाय सङ्घमज्झे उदाहरेय्य—"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। इदं वत्थु पञ्ञायति, न पुग्गलो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, वत्थुं ठपेत्वा सङ्घो पवारेय्या" ति। सो एवमस्स वचनीयो—"भगवता खो, आवुसो, विसुद्धानं पवारणा पञ्ञत्ता। सचे वत्थु पञ्ञायति, न पुग्गलो, इदानेव नं वदेही" ति।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खु तदहुपवारणाय सङ्घमज्झे उदाहरेय्य—"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अयं पुग्गलो पञ्ञायति, न वत्थु। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, पुग्गलं ठपेत्वा सङ्घो पवारेय्या" ति। सो एवमस्स वचनीयो—"भगवता खो, आवुसो, समग्गानं पवारणा पञ्ञत्ता। सचे पुग्गलो पञ्ञायति, न वत्थु, इदानेव नं वदेही" ति।

इध पन, भिक्खवे, भिक्खु तदहुपवारणाय सङ्घमज्झे उदाहरेय्य—"सुणातु [N.194] मे, भन्ते, सङ्घो। इदं वत्थु च पुग्गलो च पञ्ञायति। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, वत्थुं च पुग्गलं च ठपेत्वा सङ्घो पवारेय्या" ति। सो एवमस्स वचनीयो—"भगवता खो, आवुसो, [B.259] विसुद्धानं च समग्गानं च पवारणा पञ्ञत्ता। सचे वत्थु च पुग्गलो च पञ्ञायति, इदानेव नं वदेही" ति।

पुब्बे चे, भिक्खवे, पवारणाय वत्थु पञ्ञायति, पच्छा पुग्गलो, कल्लं वचनाय। पुब्बे च, भिक्खवे, पवारणाय पुग्गलो पञ्ञायति, पच्छा वत्थु, कल्लं वचनाय। पुब्बे चे,

---

से कहें—'आयुष्मानो! यह भिक्षु जिस दोष से युक्त था, उसका धर्मानुसार प्रतीकार कर दिया है; अब यदि सङ्घ उचित समझे तो प्रवारणा करे।'

२४. वस्तु या व्यक्ति का स्थगन

३४ "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु प्रवारणा के दिन सङ्घ के बीच में यह घोषणा करे—'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। मुझे यह वस्तु (अपराध) तो जान पड़ रही है, परन्तु (उसका कर्ता) पुद्गल नहीं। अतः यदि सङ्घ उचित समझे तो वस्तु का स्थगन कर प्रवारणा करे।' तब सङ्घ की तरफ से उसे यह उत्तर दिया जाना चाहिये—'आयुष्मन्! भगवान् ने विशुद्ध भिक्षुओं की प्रवारणा की ही अनुमति दी है। यदि तुम्हें वस्तु जान पडती है, पुद्गल नहीं तो उसकी इसी समय घोषणा करो।'

"भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु....पूर्ववत् ..मुझे पुद्गल तो जान पड रहा है परन्तु वस्तु नहीं; अतः यदि सङ्घ उचित समझे तो पुद्गल का स्थगन कर प्रवारणा करे उसे सङ्घ की तरफ से यह उत्तर दिया जाना चाहिये....तो उसकी इसी समय घोषणा करो। "भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु प्रवारणा के दिन सङ्घ के बीच (बैठकर) यह कहे—'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। मुझे यह वस्तु और पुद्गल—दोनों जान पड़ते हैं। अतः सङ्घ यदि उचित समझे तो दोनों का ही स्थगन कर प्रवारणा करे।' तब उसको यह कहा जाना चाहिये—'आयुष्मन्!......उसको इसी समय हमें बताओ।'

"यदि, भिक्षुओ! प्रवारणा से पहले वस्तु (अपराध) जान पड़े और बाद में पुद्गल (अपराधी), तो दोष को बताना उचित है। और यदि भिक्षुओ! प्रवारणा से पहले पुद्गल जान पड़े और वस्तु बाद मे तो भी दोष का बतलाना उचित है। परन्तु यदि प्रवारणा से पहले वस्तु और पुद्गल—दोनो जान पडें,

[R.175] भिक्खवे, पवारणाय वत्थु च पुग्गलो च पञ्ञायति, तं चे कताय पवारणाय उक्कोटेति, उक्कोटनकं पाचित्तियं ति।

२५. भण्डनकारकवत्थु

३५. तेन खो पन समयेन सम्बहुला सन्दिट्ठा सम्भत्ता भिक्खू कोसलेसु जनपदे अञ्ञतरस्मिं आवासे वस्सं उपगच्छिंसु। तेसं सामन्ता अञ्ञे भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका वस्सं उपगच्छिंसु— 'मयं तेसं भिक्खूनं वस्संवुट्ठानं पवारणाय पवारणं ठपेस्सामा' ति। अस्सोसुं खो ते भिक्खू— "अम्हाकं किर सामन्ता अञ्ञे भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका वस्सं उपगता—मयं तेसं भिक्खूनं वस्संवुट्ठानं पवारणाय पवारणं ठपेस्सामा" ति। कथं नु खो अम्हेहि पटिपज्जितब्बं ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

"इध पन, भिक्खवे, सम्बहुला सन्दिट्ठा सम्भत्ता भिक्खू अञ्ञतरस्मिं आवासे वस्सं उपगच्छन्ति। तेसं सामन्ता अञ्ञे भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका वस्सं उपगच्छन्ति—मयं तेसं भिक्खूनं वस्संवुट्ठानं पवारणाय पवारणं ठपेस्सामा ति। **अनुजानामि, भिक्खवे, तेहि भिक्खूहि द्वे तयो उपोसथे चातुद्दसिके कातुं—कथं मयं तेहि भिक्खूहि पठमतरं पवारेय्यामा** ति।

ते चे, भिक्खवे, भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका तं आवासं आगच्छन्ति, तेहि, भिक्खवे, आवसिकेहि भिक्खूहि [B.260] लहुं लहुं सन्निपतित्वा पवारेतब्बं, पवारेत्वा वत्तब्बा— "पवारिता खो मयं,

---

और आरोपक उस का प्रवारणा के बाद आरोप (उत्कोटन) करे तो उस (आरोपक) को 'उत्कोटनक पाचित्तिय' दोष होता है।

२५. कलहकारकों से बचने का उपाय

३५. उस समय कोसल जनपद के किसी भिक्षुआवास में बहुत से प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित भिक्षु वर्षावास कर रहे थे। उनके आसपास कुछ कलहप्रिय, विवादकर्ता और कोलाहल करने वाले तथा सङ्घ में परस्पर अभियोग लगाने वाले भिक्षु भी यह सोचकर वर्षावास करने पहुँच गये कि– 'हम उन भिक्षुओं के वर्षावास कर लेने पर प्रवारणा के दिन उनकी प्रवारणा स्थगित कर देंगे।' उन सम्भ्रान्त भिक्षुओं ने सुना कि हमारे पास में दूसरे कलहप्रिय, विवादकारक....प्रवारणा स्थगित करेंगे' तब उन्होंने सोचा कि अब हमें क्या करना चाहिये? (भगवान् ने आदेश दिया–)

"यदि, भिक्षुओ! किसी आवास में प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित एव परस्पर मैत्रीभाव रखने वाले (सम्भक्त) भिक्षु वर्षावास कर रहे हों और उनके पास कुछ कलहप्रिय एवं विवादी तथा अकारण दोषारोपण करने वाले भिक्षु इसलिये वर्षावास करने के लिये आ जाँय कि 'वर्षावास के बाद प्रवारणा के दिन इन भिक्षुओं की प्रवारणा स्थगित करेंगे' तो ऐसी स्थिति में, **भिक्षुओ! मैं अनुमति देता हूँ उन भिक्षुओं को दो–तीन चतुर्दशी के उपोसथ करने की, जिससे वे सम्भ्रान्त भिक्षु किसी तरह उन भिक्षुओं से पहले ही प्रवारणा कर सकें।**

यदि भिक्षुओ! वे विग्रहकारी, कलहकारी, विवादकारी एवं वकवादी तथा सज्जन भिक्षुओ पर दोष लगाने वाले भिक्षु उस आवास में आते हैं तो उन आवासवासी भिक्षुओं को जल्दी जल्दी एकत्र

आवुसो; यथायस्मन्ता मञ्ञन्ति तथा करोन्तू'' ति। ते चे, भिक्खवे, भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका असंविहिता तं आवासं आगच्छन्ति, तेहि, भिक्खवे, आवासिकेहि भिक्खूहि आसनं पञ्ञापेतब्बं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपितब्बं, पच्चुग्गन्त्वा पत्तचीवरं पटिग्गहेतब्बं, पानीयेन परिपुच्छितब्बा; ते संविक्खित्वा निस्सीमं गन्त्वा पवारेतब्बं, पवारेत्वा वत्तब्बा—''पवारिता खो मयं, आवुसो; यथायस्मन्ता मञ्ञन्ति तथा करोन्तू'' ति। एवं चेतं लभेथ, इच्चेतं कुसलं। नो चे [N.195] लभेथ, आवासिकेन भिक्खुना ब्यत्तेन पटिबलेन आवासिका भिक्खू ञापेतब्बा—

''सुणन्तु मे, आयस्मन्तो, आवासिका। यदायस्मन्तानं पत्तकल्लं, इदानि उपोसथं करेय्याम, पातिमोक्खं उद्दिसेय्याम, आगमे काळे पवारेय्यामा'' ति। ते चे, भिक्खवे, भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका ते भिक्खू एवं वदेय्युं—''साधावुसो, इदानेव नो पवारेथा'' ति, ते एवमस्सु वचनीया—''अनिस्सरा खो तुम्हे, आवुसो, अम्हाकं पवारणाय; न ताव मयं पवारेय्यामा'' ति। ते च, भिक्खवे, भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका तं काळं अनुवसेय्युं, आवासिकेन, भिक्खवे, भिक्खुना ब्यत्तेन पटिबलेन आवासिका भिक्खू ञापेतब्बा—

''सुणन्तु मे, आयस्मन्तो, आवासिका। यदायस्मन्तानं पत्तकल्लं, इदानि उपोसथं करेय्याम, पातिमोक्खं उद्दिसेय्याम, आगमे जुण्हे पवारेय्यामा'' ति। ते चे, भिक्खवे, भिक्खू

होकर पहले ही प्रवारणा कर लेनी चाहिये। यों प्रवारणा कर उन भिक्षुओं को उन कलहकारी भिक्षुओं से कह देना चाहिये कि 'आयुष्मानो! हमने तो प्रवारणा कर ली है, अब आप लोग अपनी प्रवारणा के विषय में जैसा उचित समझें करें।

यदि, भिक्षुओ! वे कलहकारी.....भिक्षु विना सूचना दिये, आवास में आवें तो आवासवासी भिक्षुओं को उनके लिये आसन बिछा देना चाहिये, पैर धोने के जल, पीढा, कठली रख देना चाहिये। और आगे बढकर उनका पात्र, चीवर ले लेना चाहिये। जल के लिये पूछना चाहिये। फिर उन्हें बताकर, सीमा के बाहर जाकर प्रवारणा कर लेनी चाहिये। प्रवारणा करके उनसे कहना चाहिये—'आयुष्मानो! हमने तो प्रवारणा कर ली, आप लोगो को अपनी प्रवारणा के विषय में जैसा उचित लगे, करे।' यदि इतने से कलहकारी भिक्षु मान जॉय तो ठीक, अन्यथा (आश्रमवासियों में से) किसी चतुर एव समर्थ भिक्षु द्वारा अपने सब्रह्मचारियों से कहा जाना चाहिये—'आयुष्मन् आवासवासि भिक्षुओ! आप मेरी सुने। यदि आप उचित समझे तो आज हम उपोसथ एवं प्रातिमोक्ष का पाठ ही करें तथा आगामी अमावस्या के दिन प्रवारणा करे। यदि इस पर वे कलहकारी ..भिक्षु ऐसा कहें—'नही, आयुष्मानो! अच्छा होगा कि हम लाग अभी (आज ही) प्रवारणा करें।' तब उनको यह उत्तर दिया जाना चाहिये—'आयुष्मानो! हमारी प्रवारणा के लिये तुम लोग अधिकृत नहीं हो। हम अभी प्रवारणा नहीं करेंगे।' तब यदि वे कलहकारी भिक्षु आगामी अमावस्या तक आवास में रुके रहें तो आवासिक भिक्षुओं में से किसी समर्थ एव चतुर भिक्षु द्वारा आवासिक भिक्षुओं को यो ज्ञापित करना चाहिये—

'आयुष्मानो! आप मेरे कथन पर ध्यान दे। यदि आप लोग उचित समझे तो आज हम लोग उपोसथ एव प्रातिमोक्ष पाठ ही करें। आगामी पूर्णिमा का प्रवारणा करेंगे।'... .पूर्ववत् ... । हम प्रवारणा नहीं करेंगे।

भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका ते भिक्खू एवं वदेय्युं—"साधावुसो, इदानेव नो पवारेय्याथा" ति, ते एवमस्सु वचनीया—"अनिस्सरा खो तुम्हे, आवुसो, अम्हाकं पवारणाय, न ताव मयं पवारेय्यामा" ति। ते चे, भिक्खवे, [B.261] भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका तं पि जुण्हं अनुवसेय्युं, तेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि सब्बेहेव आगमे जुण्हे कोमुदिया चातुमासिनिया अकामा पवारेतब्बं।

(१) तेहि च, भिक्खवे, भिक्खूहि पवारियमाने गिलानो अगिलानस्स पवारणं ठपेति, सो एवमस्स वचनीयो—"आयस्मा खो गिलानो। गिलानो च अननुयोगक्खमो वुत्तो भगवता। आगमेहि, आवुसो, याव अरोगो होसि। अरोगो आकङ्खमानो चोदेस्ससी" ति। एवं चे वुच्चमानो चोदेति, अनादरिये पाचित्तियं। (२) तेहि चे, भिक्खवे, भिक्खूहि पवारियमाने अगिलानो गिलानस्स पवारणं ठपेति, सो एवमस्स वचनीयो—"अयं खो, आवुसो, यावायं भिक्खु अरोगो होति। अरोगं आकङ्खमानो चोदेस्ससी" ति। एवं चे वुच्चमानो चोदेति, अनादरिये पाचित्तियं। (३) तेहि चे, भिक्खवे, भिक्खूहि पवारियमाने गिलानो गिलानस्स पवारणं ठपेति, सो एवमस्स वचनीयो—"आयस्मन्ता खो गिलाना। गिलानो च अननुयोगक्खमो वुत्तो भगवता। आगमेहि, आवुसो, याव अरोगा होथ। अरोगो अरोगं आकङ्खमानो चोदेस्ससी" ति। एवं चे वुच्चमानो चोदेति, अनादरिये पाचित्तियं। [N.196] (४) तेहि चे, भिक्खवे, भिक्खूहि पवारियमाने अगिलानो अगिलानस्स पवारणं ठपेति, उभो सङ्घेन समनुयुञ्जित्वा समनुगाहित्वा यथाधम्मं कारोपेत्वा सङ्घेन पवारेतब्बं ति।

२६. पवारणासङ्गहो

[R.177] ३६. तेन खो पन समयेन सम्बहुला सन्दिट्ठा सम्भत्ता भिक्खू कोसलेसु जनपदे अञ्ञतरस्मिं आवासे वस्सं उपगच्छिंसु। तेसं समग्गानं सम्मोदमानानं अविवदमानानं विहरतं

"यदि भिक्षुओ! वे कलहकारी. ..भिक्षु उस पूर्णिमा तक भी वहाँ ठहरे रहें तो, भिक्षुओ! सभी भिक्षुओं को मिलकर वर्षावास समाप्ति की अन्तिम तिथि, चन्द्रिकायुक्त शरत्पूर्णिमा (आश्विन पूर्णिमा) को न चाहते हुए भी प्रवारणा करनी चाहिये।

"यदि, भिक्षुओ! उन भिक्षुओ के प्रवारणा करते समय एक रोगी भिक्षु किसी दूसरे स्वस्थ भिक्षु की प्रवारणा स्थगित करे तो उससे ऐसा कहना चाहिये—'आयुष्मन्! आप रोगी हैं, तथा रोगी भिक्षु को भगवान् ने दोषारोपण (अनुयोग) के लिये अयोग्य ठहराया है। अतः आयुष्मन्! आप तब तक प्रतीक्षा करें जब तक कि नीरोग न हो जाँय। नीरोग होने पर यदि आप की इच्छा हो तो इस पर दोषारोपण करना।' ऐसा कहने पर भी यदि वह रोगी भिक्षु दोषारोपण करता ही रहे तो उसे अनादरसम्बन्धी पाचित्तिय दोष लगेगा। (१)

"यदि, भिक्षुओ! प्रवारणा करते समय कोई स्वस्थ भिक्षु किसी रोगी भिक्षु की प्रवारणा स्थगित करे.. उसे अनादरसम्बन्धी पाचित्तिय दोष लगेगा। (२)

"यदि, भिक्षुओ! प्रवारणा करते समय कोई रोगी भिक्षु किसी रोगी भिक्षु की प्रवारणा स्थगित करे.... पाचित्तिय दोष लगेगा। (३)

यदि, भिक्षुओ! प्रवारणा करते समय कोई स्वस्थ भिक्षु किसी स्वस्थ भिक्षु की प्रवारणा

अञ्ञतरो फासुविहारो अधिगतो होति। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"अम्हाकं खो समग्गानं सम्मोदमानानं अविवदमानानं विहरतं अञ्ञतरो फासुविहारो अधिगतो। [B.262] सचे मयं इदानि पवारेस्साम, सिया पि भिक्खू पवारेत्वा चारिकं पक्कमेय्युं। एवं मयं इमम्हा फासुविहारा परिबाहिरा भविस्साम। कथं नु खो अम्हेहि पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

"इध पन, भिक्खवे, सम्बहुला सन्दिट्ठा सम्भत्ता भिक्खू अञ्ञतरस्मिं आवासे वस्सं उपगच्छन्ति। तेसं समग्गानं सम्मोदमानानं अविवदमानानं विहरतं अञ्ञतरो फासुविहारो अधिगतो होति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—"अम्हाकं खो समग्गानं सम्मोदमानानं अविवदमानानं विहरतं अञ्ञतरो फासुविहारो अधिगतो। सचे मयं इदानि पवारेस्साम, सिया पि भिक्खू पवारेत्वा चारिकं पक्कमेय्युं। एवं मयं इमम्हा फासुविहारा परिबाहिरा भविस्सामा" ति, **अनुजानामि, भिक्खवे, तेहि भिक्खूहि पवारणासङ्गहं कातुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, कातब्बो। सब्बेहेव एकज्झं सन्निपतितब्बं—सन्निपतित्वा ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अम्हाकं समग्गानं सम्मोदमानानं अविवदमानानं विहरतं अञ्ञतरो फासुविहारो अधिगतो। सचे मयं इदानि पवारेस्साम, सिया पि भिक्खू पवारेत्वा चारिकं पक्कमेय्युं। एवं मयं इमम्हा फासुविहारा परिबाहिरा भविस्साम। यदि सङ्घस्स

स्थगित करे तो उन दोनों को ही, सूक्ष्म विवेचना के बाद बात कर के ठीक पता लगाकर वहाँ धर्मानुसार दण्ड करवा कर प्रवारणा करनी चाहिये। (४)

२६. प्रवारणा का संग्रह (आगे बढ़ाना)

३६. उस समय कोसल जनपद के किसी भिक्षुआवास में बहुत से प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित भिक्षु वर्षावास कर रहे थे। उनका एकमत, विवादरहित तथा प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए धर्मसाधना में बहुत अच्छा मन लग रहा था। तब उन भिक्षुओं के मन में यह हुआ—हमें यहाँ एकमत, निर्विवाद तथा प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए साधना में गति मिली है, यदि हम ऐसी स्थिति में इसी समय प्रवरणा कर लेंगे तो, हो सकता है, कुछ भिक्षु अन्यत्र चारिका कर जाँय। उससे हमारी साधना में कुछ विघ्न आ सकता है, तो हमें ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिये? उन्होंने अपनी यह समस्या भगवान् के सम्मुख रखी। (भगवान् ने कहा—)

"यहाँ, भिक्षुओ! किसी आवास में बहुत से प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित एवं सम्मानित भिक्षु एक साथ मिल-बैठकर प्रसन्नतापूर्वक मैत्रीभाव से वर्षावास कर रहे हों और वहाँ उनका मन धर्मसाधना में भी अधिक लग रहा हो, तो इस धर्मसाधना में विघ्न निवारण हेतु यदि ये अपनी प्रवारणा का समय कुछ और आगे बढ़ाना चाहें तो, भिक्षुओ! मैं ऐसे प्रवारणा संग्रह (आगे बढ़ाना) की अनुमति देता हूँ।

भिक्षुओ! यह संग्रह इस प्रकार करना चाहिये—सब भिक्षुओं को एकत्र कर कोई चतुर समर्थ भिक्षु यों कहे—

ज्ञप्ति— 'भन्ते! सङ्घ मेरी बात सुने, हमें एकमत, विवादरहित एवं मोदयुक्त रहते हुए धर्मसाधना का बहुत अच्छा अवसर मिला है, यदि हम अभी प्रवारणा कर लेंगे तो हो सकता है कुछ भिक्षु चारिका करने चले जाँय। इससे हमारी इस साधना में विघ्न पड़ जाय और ऐसा सुअवसर आगे

पत्तकल्लं, सङ्घो पवारणासङ्गहं करेय्य, इदानि उपोसथं करेय्य, पातिमोक्खं उद्दिसेय्य, आगमे जुण्हे कोमुदिया चातुमासिनिया पवारेय्य। एसा ञत्ति।

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। अम्हाकं समग्गानं सम्मोदमानानं अविवदमानानं विहरतं अञ्ञतरो फासुविहारो अधिगतो। सचे मयं इदानि पवारेस्साम, सिया पि भिक्खू पवारेत्वा चारिकं पक्कमेय्युं। एवं मयं इमम्हा फासुविहारा परिबाहिरा भविस्साम। सङ्घो पवारणासङ्गहं करोति, इदानि उपोसथं करिस्सति, पातिमोक्खं उद्दिसिस्सति, आगमे जुण्हे कोमुदिया चातुमासिनिया पवारेस्सति। यस्सायस्मतो खमति पवारणासङ्गहस्स करणं, इदानि उपोसथं करिस्सति, पातिमोक्खं उद्दिसिस्सति, आगमे जुण्हे कोमुदिया चातुमासिनिया पवारेस्सति, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

[N.197, B.263] "कतो सङ्घेन पवारणासङ्गहो, इदानि उपोसथं करिस्सति, पातिमोक्खं उद्दिसिस्सति, आगमे जुण्हे कोमुदिया चातुमासिनिया पवारेस्सति। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी" ति।

तेहि चे, भिक्खवे, भिक्खूहि कते पवारणासङ्गहे अञ्ञतरो भिक्खु एवं वदेय्य— "इच्छामहं, आवुसो, जनपदचारिकं पक्कमितुं; अत्थि मे जनपदे करणीयं" ति, सो एवमस्स [R.178] वचनीयो—"साधावुसो, पवारेत्वा गच्छाही" ति। सो चे, भिक्खवे, भिक्खु पवारयमानो अञ्ञतरस्स भिक्खुनो पवारणं ठपेति, सो एवमस्स वचनीयो—"अनिस्सरो खो मे त्वं, आवुसो, पवारणाय, न तावाहं पवारेस्सामी" ति। तस्स चे, भिक्खवे, भिक्खुनो पवारयमानस्स अञ्ञतरो भिक्खु तस्स भिक्खुनो पवारणं ठपेति, उभो सङ्घेन समनुयुञ्जित्वा समनुगाहित्वा यथाधम्मं कारापेतब्बा। सो चे, भिक्खवे, भिक्खु जनपदे तं करणीयं तीरेत्वा पुनदेव अन्तो कोमुदिया चातुमासिनिया तं आवासं आगच्छति, तेहि चे, भिक्खवे, भिक्खूहि पवारियमाने अञ्ञतरो भिक्खु तस्स भिक्खुनो पवारणं ठपेति, सो एवमस्स वचनीयो— "अनिस्सरो खो मे त्वं, आवुसो, पवारणाय; पवारितो अहं" ति। तेहि चे, भिक्खवे,

---

कुछ दिन न मिले। अतः सङ्घ यदि उचित समझे तो प्रवारणा का सग्रह (समय आगे बढाना) करे, इस समय हम केवल उपोसथ करें और प्रातिमोक्ष-पाठ करे तथा आगामी चातुर्मास्यसमाप्ति की कौमुदी-पूर्णिमा (शरत्पूर्णिमा=आश्विन पूर्णिमा) को प्रवारणा करे। यह ज्ञप्ति (सूचना) है।

अनुश्रावण— 'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। हमे एकमत, विवादरहित मोदयुक्त रहते धर्मसाधना का सुअवसर मिला हुआ है। यदि हम कौमुदी पूर्णिमा को प्रवारणा करे। जिस आयुष्मान् को मेरा यह प्रवारणासग्रह का प्रस्ताव उचित लगे वह चुप रहे और यह जिसे उचित न लगता हो वह बोले।

धारणा— 'सङ्घ ने प्रवारणासग्रह स्वीकार किया कि अभी वह केवल उपोसथ करेगा, प्रातिमोक्षपाठ करेगा और आगामी शरत्पूर्णिमा को प्रवारणा करेगा। सङ्घ को यह प्रस्ताव उचित लग रहा है, इसीलिये चुप है—ऐसी मेरी धारणा (निश्चय) है।'

"भिक्षुओ! यों प्रवारणासग्रह किये जाने पर यदि कोई भिक्षु यो कहे—'आयुष्मानो! मै तो देश मे चारिका करना चाहता हूँ। देश मे मुझे कुछ कार्य भी है।' तो उससे कहना चाहिये—'अच्छा तो भिक्षु! प्रवारणा कर लो, फिर चले जाना।' भिक्षुओ! यदि वह भिक्षु प्रवारणा करते समय किसी अन्य भिक्षु की प्रवारणा स्थगित करता है तो उससे उस भिक्षु द्वारा यों कहा जाना चाहिये—'आयुष्मन्! आप

भिक्खूहि पवारियमाने सो भिक्खु अञ्ञतरस्स भिक्खुनो पवारणं ठपेति, उभो सङ्घेन समनुयुञ्जित्वा समनुगाहित्वा यथाधम्मं कारापेत्वा सङ्घेन पवारेतब्बं ति॥

पवारणाक्खन्धकं निट्ठितं चतुत्थं॥

२७. तस्सुद्दानं

वस्संवुट्ठा कोसलेसु अगमुं सत्थुदस्सनं।
अफासुं पसुसंवासं अञ्ञमञ्ञानुलोमता॥ १॥
पवारेन्ता पणामञ्च कम्मं गिलानञातका।
राजा चोरा च धुत्ता च भिक्खुपच्चत्थिका तथा॥ २॥
पञ्च चतु तयो द्वेको आपन्नो वेमति सरि।
सब्बो सङ्घो वेमतिको बहू समा च थोकिका॥ ३॥
आवासिका चातुद्दस लिङ्गसंवासका उभो। [B.264]
गन्तब्बं न निसिन्नाय छन्ददाने पवारणा॥ ४॥

मेरी प्रवारणा के स्वामी नहीं है, मेरी प्रवारणा तुम्हारे साथ नहीं होगी। भिक्षुओ! यदि उस समय, जब वह भिक्षु प्रवारणा कर रहा हो तो दूसरा भिक्षु उसकी प्रवारणा स्थगित करना चाहे तो सङ्घ को दोनों की बातें समझते हुए धर्मानुसार (दण्ड) करके प्रवारणा करा देनी चाहिये।''

प्रवारणास्कन्धक समाप्त॥

इस स्कन्धक का उदान

कौसल जनपद में वर्षावासी भिक्षु वर्षावास के बाद भगवान् के दर्शन करने गये। पूछने पर उन्होंने भगवान् से निवेदन किया कि उन्होंने वर्षावास का समस्त समय मौन रहकर धर्मसाधना में लगाया। इतने लम्बे समय तक परस्पर कोई सम्भाषण नहीं किया। यह सुनकर भगवान् ने उन भिक्षुओं को बहुत धिक्कारा और कहा– अरे मूर्ख भिक्षुओ! इस तरह का व्यवहार तो साथ रहने वाले पशु भी परस्पर नहीं करते। साथ ही यह भी कहा कि साथ रहने वाले भिक्षुओं को परस्पर सम्मान करना चाहिये, तथा परस्पर के सुख–दुःख में सहभागी रहना चाहिये।। १।।

प्रवारणा करते समय प्रवारणा के भेद, प्रवारणा करने की पद्धति, सङ्घप्रवारणाविषयक ज्ञान, आपत्तिकर्म, रोगी भिक्षु की प्रवारणा विधि जाननी चाहिये।। २।।

प्रवारणा के समय नाते–रिश्तेदारों, राजा और, धूर्त या विरोधी भिक्षुओं द्वारा विघ्न उपस्थित किया जाय तो प्रवारणा रोक देनी चाहिये।। ३।।

पाँच, चार, तीन, दो या एक भिक्षु को भी सङ्घ मान कर प्रवारणा की जा सकती है। आपत्तिग्रस्त को अपनी आपत्ति के विषय में सन्देह होने पर स्मरण आने पर उसके लिये प्रवारणा करे। समग्र सङ्घ वेमतिक हो तो तदर्थ उपाय बताया गया है। आवासिक भिक्षुओं के प्रवारणा के समय आगन्तुक भिक्षुओं के तीन भेद किये गये हैं– आवासिकों से अधिक, बराबर या कम।

आगन्तुक विरोधी भिक्षुओं द्वारा प्रवारणा में विरोध की आशङ्का हो तो आवासी भिक्षुओं को चतुर्दशी के दिन ही प्रवारणा कर लेनी चाहिये। इसी तरह भिक्षु आवास में प्रवेश के समय लिङ्ग आदि चिह्नों से भिक्षुआवास की पहचान बतायी गयी है। भिक्षुपरिषद् बैठी हो तो बीच में उठकर नहीं जाना चाहिये। प्रवारणा के देने में सभी भिक्षु स्वतन्त्र हैं, किसी का किसी अन्य पर आग्रह (दबाव) नहीं।। ४।।

सवरेहि खेपिता मेघो अन्तरा च पवारणा।
न इच्छन्ति पुरम्हाकं अट्ठपिता च भिक्खुनो॥ ५॥
किम्हि वा ति कतमं च दिट्ठेन सुतसङ्काय।
चोदको चुदितको च थुल्लच्चयं वत्थु भण्डनं।
पवारणासङ्गहो च अनिस्सरो पवारये ति॥ ६॥

इमम्हि खन्धके वत्थूनि छचत्तारीसा ति॥

चतुत्थं पवारणाक्खन्धकं निट्ठितं॥

शबरों (जङ्गली कौल, भीलों) द्वारा बाधा उपस्थित की जाय या वर्षा आनेवाली हो ऐसे समयों में प्रवारणा संक्षिप्त या स्थगित की जा सकती है। विरोधियों के सामने भिक्षु का प्रवारणादान आवश्यक नहीं॥ ५॥

प्रवारणा में किसी के प्रति आपत्ति प्रकट करने वाले से सङ्घ को सूक्ष्मता से पूछना चाहिये कि उसने इस भिक्षु को आपत्तिग्रस्त होते हुए कब, कहाँ, कैसे देखा सुना है, या किसने उसको बताया है। ऐसे अपराधी भिक्षु को स्थूलात्यय से दण्डित करना चाहिये। प्रकरण, विशेष कारण उपस्थित होने पर स्थगित भी की जा सकती है। पवारणा के समय झगड़ालु का दृढ़ता से प्रतीकार करना चाहिये। धर्मसाधना में दृढ़ता लाने के लिये प्रवारणाकाल आगे भी बढ़ाया जा सकता है। निष्कर्ष यह है कि प्रवारणा–दान स्वच्छन्द प्रक्रिया है॥ ६॥

इस स्कन्धक में छयालीस प्रकरण हैं॥

प्रवारणास्कन्धक समाप्त॥

५. चम्मक्खन्धकं

१. सोणकोळिविसवत्थु

१. तेन समयेन बुद्धो भगवा विहरति गिज्झकूटे पब्बते। [N.199, B.265, R.179] तेन खो पन समयेन राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो असीतिया गामसहस्सेसु इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेति। तेन खो पन समयेन चम्पायं सोणो नाम कोळिविसो सेट्ठिपुत्तो सुखुमालो होति। तस्स पादतलेसु लोमानि जातानि होन्ति। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो तानि असीतिं गामिकसहस्सानि सन्निपातापेत्वा केनचिदेव करणीयेन सोणस्स कोळिविसस्स सन्तिके दूतं पाहेसि—"आगच्छतु सोणो, इच्छामि सोणस्स आगतं" ति। अथ खो सोणस्स कोळिविसस्स मातापितरो सोणं कोळिविसं एतदवोचुं—"राजा ते, तात सोण, पादे दक्खितुकामो। मा खो त्वं, तात सोण, येन राजा तेन पादे अभिप्पसारेय्यासि। रञ्ञो पुरतो पल्लङ्केन निसीद। निसिन्नस्स ते राजा पादे दक्खिस्सती" ति। अथ खो सोणं कोळिविसं सिविकाय आनेसुं। अथ खो सोणो कोळिविसो येन राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा राजानं मागधं सेनियं बिम्बिसारं अभिवादेत्वा रञ्ञो पुरतो पल्लङ्केन निसीदि। अद्दसा खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो सोणस्स कोळिविसस्स पादतलेसु लोमानि जातानि।

अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो तानि असीतिं गामिकसहस्सानि दिट्ठधम्मिके अत्थे अनुसासित्वा उय्योजेसि—"तुम्हे ख्वत्थ, भणे, मया दिट्ठधम्मिके अत्थे अनुसासिता; गच्छथ, तं भगवन्तं पयिरुपासथ; सो नो भगवा सम्परायिके अत्थे अनुसासिस्सती" ति।

---

५. चर्मस्कन्धक

१. सोणकोटिवीसवस्तु

१. उस समय भगवान् बुद्ध राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय मगधराज श्रेणिय बिम्बिसार अस्सी हजार ग्रामों का अधिपति (स्वामी) था। उसी समय चम्पानगरी (वर्तमान में—भागलपुर, बिहार) में सोण नामक एक सुकुमार बीस करोड़ धन के स्वामी श्रेष्ठि का पुत्र था। उसके पैरों के तलुओं में रोएँ उगे थे। तब राजा बिम्बिसार ने अपने उन अस्सी हजार ग्रामो के प्रधानों को एकत्र कर किसी कार्यविशेष से सोण कोटिबीस के पास दूत भेजा—"सोण! आप आवें। मैं आपका यहाँ आगमन चाहता हूँ।" तब उस सोण कोटिवीस के माता-पिता ने उससे कहा—"तात सोण! राजा तेरे पैरों को देखना चाहता है। अतः, तात सोण! तूँ राजा की तरफ पैर न फैलाना, (क्योंकि इससे उसका अपमान होगा); अपितु राजा के सामने पालथी आसन (बैठने की विधि), लगाकर बैठ जाना। ऐसे बैठे हुए तेरे पैर वह देख लेगा।" तब (कहार लोग) उस सोण कोटिवीस को पालकी से (राजगृह) ले गये। सोण कोटिवीस जहाँ राजा थे, वहाँ गया। जा कर राजा बिम्बिसार को प्रणाम कर राजा के सामने पद्म (पालथी) आसन लगाकर बैठ गया। उस समय मगध राजा बिम्बिसार ने सोण कोटिवीस के पैरों में उगे रोम देखे।

तब मगध राज बिम्बिसार ने उन अस्सी हजार ग्राम-प्रधानों को लौकिक (व्यावहारिक) बातों का उपदेश कर प्रेरित किया—"अरे भई! मैंने तुम लोगों को इन व्यावहारिक बातो का उपदेश कर

२. अथ खो तानि असीति गामिकसहस्सानि येन गिज्झकूटो पब्बतो तेनुपसङ्कमिंसु। तेन खो पन समयेन आयस्मा सागतो भगवतो उपट्ठाको होति। अथ खो तानि असीति [B.266] गामिकसहस्सानि येनायस्मा सागतो तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं [R.180] सागतं एतदवोचुं—"इमानि, भन्ते, असीति गामिकसहस्सानि इधूपसङ्कन्तानि भगवन्तं दस्सनाय; साधु मयं, भन्ते, लभेय्याम भगवन्तं दस्सनाया" ति। "तेन हि तुम्हे आयस्मन्तो मुहुत्तं इधेव ताव होथ, यावाहं भगवन्तं पटिवेदेमी" ति। अथ खो आयस्मा सागतो तेसं असीतिया गामिकसहस्सानं पुरतो पेक्खमानानं पाटिकाय निमिज्जित्वा भगवतो पुरतो उम्मुज्जित्वा भगवन्तं एतदवोच—"इमानि, भन्ते, असीति गामिकसहस्सानि इधूपसङ्कन्तानि भगवन्तं दस्सनाय; यस्स दानि, भन्ते, भगवा कालं मञ्ञती" ति। "तेन हि त्वं, सागत, विहारपच्छायायं आसनं पञ्ञापेही" ति। "एवं, भन्ते", ति खो आयस्मा सागतो भगवतो पटिस्सुणित्वा पीठं गहेत्वा भगवतो पुरतो निमुज्जित्वा तेसं असीतिया गामिकसहस्सानं पुरतो पेक्खमानानं पाटिकाय उम्मुज्जित्वा विहारपच्छायायं आसनं पञ्ञापेसि। [N.200] अथ खो भगवा विहारा निक्खमित्वा विहारपच्छायायं पञ्ञत्ते आसने निसीदि।

अथ खो तानि असीति गामिकसहस्सानि येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। अथ खो तानि असीति गामिकसहस्सानि आयस्मन्तं येव सागतं समन्नाहरन्ति, नो तथा भगवन्तं। अथ खो भगवा तेसं असीतिया गामिकसहस्सानं चेतसा चेतोपरिवितक्कं अञ्ञाय आयस्मन्तं सागतं आमन्तेसि—"तेन हि त्वं, सागत, भिय्योसोमत्ताय उत्तरिमनुस्सधम्मं इद्धिपाटिहारियं दस्सेही" ति। "एवं, भन्ते," ति खो आयस्मा सागतो भगवतो पटिस्सुणित्वा वेहासं अब्भुग्गन्त्वा आकासे अन्तलिक्खे चङ्कमति

दिया। इससे आगे तुम उन भगवान् की सेवा (उपासना) में जाओ। वे तुम्हें पारलौकिक सुख-प्राप्ति का मार्ग बतायँगे।"

२ तब वे अस्सी हजार ग्रामों के प्रधान जहाँ गृध्रकूट पर्वत था वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् स्वागत भगवान् के उपस्थायक (सेवक) थे। उन अस्सी हजार ग्रामप्रधानों ने आयुष्मान् स्वागत के पास जाकर पूछा—"भन्ते! हम अस्सी हजार ग्रामप्रधान भगवान् के दर्शनहेतु यहाँ आये हैं। अच्छा हो, भन्ते! हमें भगवान् के दर्शन हो जाँय।"

"तो तुम आयुष्मानो! क्षण भर यहीं ठहरो, मैं भगवान् से निवेदन करता हूँ।" तब आयुष्मान् स्वागत उन अस्सी हजार ग्रामप्रधानों के देखते-देखते पाटिका (अर्धचन्द्रपाषाण) में अन्तर्धान होकर भगवान् के सामने प्रकट हो, यह बोले—"भन्ते! ये अस्सी हजार ग्रामप्रधान भगवान् के दर्शनहेतु आये हैं, आप जैसा उचित समझें, उन्हें उत्तर दूँ।"

"तो, स्वागत! विहार की छाया मे आसन बिछा दे।" "अच्छा, भन्ते!" यों भगवान् से कहकर आयुष्मान् स्वागत ने मञ्चपीठ लेकर भगवान् के सम्मुख से अन्तर्हित होकर , उन अस्सी हजार ग्रामवासियो के देखते-देखते विहार की छाया में उस मञ्चपीठ पर आसन बिछाया। तब भगवान् साधनाकुटी से निकलकर विहार की छाया मे बिछे आसन पर विराजे।

तब वे अस्सी हजार ग्रामप्रधान जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। फिर भी वे ग्रामप्रधान आयुष्मान् स्वागत की तरफ ही देखते रहे, भगवान की तरफ उन्होंने विशेष ध्यान नही दिया। तब भगवान् ने उन ग्रामप्रधानों के चित्त का भाव

पि, तिट्ठति पि, निसीदति पि, सेय्यं पि कप्पेति, धूमायति पि, पज्जलति पि, अन्तरधायति पि। अथ खो आयस्मा सागतो आकासे अन्तलिक्खे अनेकविहितं उत्तरिमनुस्सधम्मं इद्धिपाटिहारियं दस्सेत्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोच—"सत्था मे, भन्ते, भगवा; सावकोहमस्मि। सत्था मे, भन्ते, भगवा; सावकोहमस्मी" ति। अथ खो तानि असीति गामिकसहस्सानि—"अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो, सावको पि नाम एवं महिद्धिको भविस्सति, एवं महानुभावो, अहो नून सत्था" ति—भगवन्तं येव समन्नाहरन्ति, नो तथा आयस्मन्तं सागतं।

३. अथ खो भगवा तेसं असीतिया गामिकसहस्सानं चेतसा चेतोपरिवितक्कं [B.267] अञ्ञाय अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथीदं—दानकथं सीलकथं सग्गकथं, कामानं [R.181] आदीनवं, ओकारं, सङ्किलेसं, नेक्खम्मे आनिसंसं पकासेसि। यदा ते भगवा अञ्ञासि कल्लचित्ते, मुदुचित्ते, विनीवरणचित्ते, उदग्गचित्ते, पसन्नचित्ते, अथ या बुद्धानं सामुक्कंसिका धम्मदेसना, तं पकासेसि—दुक्खं, समुदयं, निरोधं, मग्गं। सेय्यथापि नाम सुद्धं वत्थं अपगतकाळकं सम्मदेव रजनं पटिग्गहेय्य, एवमेव तेसं असीतिया गामिकसहस्सानं तस्मिं येव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—'यं किञ्चि समुदयधम्मं, सब्बं तं निरोधधम्मं' ति। ते दिट्ठधम्मा पत्तधम्मा विदितधम्मा परियोगाळ्हधम्मा तिण्णविचिकिच्छा विगतकथङ्कथा

जानकर आयुष्मान् स्वागत को सम्बोधित किया—"तो स्वागत (इन ग्रामप्रधानों की) और भी अधिक प्रसन्नता बढ़ाने के लिये तू कुछ दिव्यशक्तिसम्पन्न (अलौकिक) ऋद्धिप्रातिहार्य (चमत्कार) दिखा।" "अच्छा, भन्ते!" यो भगवान् को उत्तर देकर आयुष्मान् स्वागत आकाश में जाकर टहलते भी रहे, खड़े भी होते रहे, बैठते भी रहे, लेटते भी रहे, कभी धुआँ देते थे, कभी प्रज्वलित होते थे, या फिर रहते रहते अन्तर्धान भी हो जाते थे। यों, आयुष्मान् स्वागत ने अनेक प्रकार के अलौकिक चमत्कार दिखा कर भगवान् के श्रीचरणो में अपना शिर रखते हुए भगवान् से निवेदन किया—

"भन्ते! भगवान् ही इस विषय में मेरे गुरु हैं , मैं तो आपका शिष्य हूँ। भन्ते! भगवान् ही.....आपका शिष्य हूँ।" तब उन ग्रामप्रधानों को यह विचार हुआ "कितने आश्चर्य की बात है, यह कितना अद्भुत है कि जिनका शिष्य ही इतना ऋद्धिसम्पन्न है तो फिर उसके शास्ता का तो कहना ही क्या!" यह सोचकर तब वे सभी भगवान् की तरफ आकृष्ट हुए तथा उन्होंने स्वागत को देखना छोड़ा।

३. तब भगवान् ने उन....ग्रामप्रधानों के मनोभावों को जानकर, आनुपूर्वी कथा कहना प्रारम्भ किया; जैसे— दानकथा, शीलकथा, स्वर्गकथा, कामभागो के दुष्परिणाम, दूसरों के प्रति किये गये अपकार, मनोमालिन्य एव कामभागो से दूर रहने के सुपरिणाम विस्तार से बताये। यों (इस कथा के प्रभाव से) जब भगवान् ने उन ..प्रधानो के चित्त को मृदु, आवरणरहित, आह्लादित एवं प्रसन्न देखा तो उनको बुद्धों द्वारा जनता को उत्कर्ष की तरफ ले जाने वाला (आर्य–सत्यचतुष्टय) उपदेश दिया; जैसे—दुःख, दुःख का कारण, दुःख का नाश, एवं दुख के नाश का उपाय। जैसे स्वच्छ, कालिमारहित श्वेत वस्त्र किसी भी रंग को भलीभाँति पकड़ता है; इसी प्रकार उन. .ग्रामप्रधानों को उसी आसन पर बैठे बैठे 'जो कुछ उत्पन्न हुआ है वह सब एक न एक दिन विनष्ट होने लगा है'—यह निर्मल धर्मज्ञान उत्पन्न हो गया। यों वे धर्म का साक्षात्कार, उसकी उपलब्धि, उसका ज्ञान, एवं उसका अवगाहन कर उसके प्रति सन्देहरहित, वाद–विवादरहित एवं वैशारदय (निपुणता) प्राप्त करते हुए भगवान् के उपदेश में अत्यधिक निष्ठावान् होते हुए, भगवान् से यो निवेदन करने लगे—आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते!

वेसारज्जप्पत्ता अपरप्पच्चया सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोचुं—"अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते। सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खिन्ती ति, एवमेव भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एते मयं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छाम, धम्मं च, भिक्खुसङ्घं च। उपासके नो भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेते सरणं गते" ति।

२. सोणस्स पब्बज्जा

४. अथ खो सोणस्स कोळिविसस्स एतदहोसि—"यथा यथा खो अहं भगवता [N.201] धम्मं देसितं आजानामि, नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं; यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं" ति। अथ खो तानि असीति गामिकसहस्सानि भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु। अथ खो सोणो कोळिविसो अचिरप्पक्कन्तेसु तेसु असीतिया गामिकसहस्सेसु येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सोणो कोळिविसो भगवन्तं एतदवोच—"यथा यथाहं, भन्ते, भगवता धम्मं देसितं आजानामि, नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता [B.268] एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धिं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं। इच्छामहं, भन्ते, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं। [R.182] पब्बाजेतु मं, भन्ते, भगवा" ति। अलत्थ खो सोणो कोळिविसो भगवतो सन्तिके

जैसे कोई औंधे को सीधा कर दे, ढके को उघाड दे, भूले को रास्ता बता दे, अन्धेरे में तैल भरा दीपक जला कर रख दे कि आँखों वाले लोग मार्ग को भलीभाँति देख लें; ऐसे ही आप भगवान् ने नाना प्रकार से धर्म का उपदेश किया। इससे आप में अत्यधिक श्रद्धान्वित होकर हम भगवान् की, धर्म एवं सङ्घ की शरण में जाते हैं। आज से आप भगवान् हमें अपना यावज्जीवन अञलिबद्ध शरणागत उपासक समझें।

२. सोण की प्रव्रज्या

४. तब सोण कोटिवीस के मन में यह विचार आया—"जैसे-जैसे मैंने भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म को समझा है उससे मुझे यही समझ में आ रहा है कि यह धर्म सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध, खरादे हुए शङ्ख या उज्ज्वल है। इसका पालन घर में रहते हुए अत्यन्त दुष्कर है। क्यों न मैं भी शिर-दाढ़ी मुँड़वाकर काषाय वस्त्र पहनकर, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ।"

उस समय वे.. ग्रामप्रधान भगवान् के भाषण का अभिनन्दन अनुमोदन कर, आसन से उठ, अभिवादन-प्रदक्षिणा कर चले गये। तब सोण कोटिवीस, उन....ग्रामप्रधानों के चले जाने के कुछ देर बाद, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान् का अभिवादन कर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे उस सोण कोटिवीस ने भगवान् से निवेदन किया—"भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म को जितना समझ पाया हूँ उससे मुझे यही अनुभव हो रहा है कि यह...शङ्खवत् उज्ज्वल धर्म, गृहस्थ में रहकर, साधना करने में अत्यन्त कठिन है। अतः, भन्ते! मैं शिर-दाढ़ी मुँड़वाकर, काषायवस्त्र धारण कर, घर झोड़कर बेघर हे प्रव्रजित होना चाहता हूँ (अतः) भगवान् मुझे भी प्रव्रज्यादीक्षा देने की कृपा करें।" तब सोण कोटिवीस ने भगवान् से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा दीक्षा प्राप्त की। उपसम्पन्न होने के कुछ

पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरुपसम्पन्नो च पनायस्मा सोणो सीतवने विहरति। तस्स अच्चारद्धवीरियस्स चङ्कमतो पादा भिज्जिंसु। चङ्कमो लोहितेन फुटो होति, सेय्यथापि गवाघातनं। अथ खो आयस्मतो सोणस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"ये खो केचि भगवतो सावका आरद्धवीरिया विहरन्ति, अहं तेसं अञ्ञतरो। अथ च पन मे नानुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चति। संविज्जन्ति खो पन मे कुले भोगा; सक्का भोगे च भुञ्जितुं, पुञ्ञानि च कातुं। यन्नूनाहं हीनायावत्तित्वा भोगे च भुञ्जेय्यं, पुञ्ञानि च करेय्यं" ति। अथ खो भगवा आयस्मतो सोणस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कं अञ्ञाय—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य एवमेव—गिज्झकूटे पब्बते अन्तरहितो सीतवने पातुरहोसि। अथ खो भगवा सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं सेनासनचारिकं आहिण्डन्तो येनायस्मतो सोणस्स चङ्कमो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो भगवा आयस्मतो सोणस्स चङ्कमं लोहितेन फुटं, दिस्वान भिक्खू आमन्तेसि—"कस्स न्वायं, भिक्खवे, चङ्कमो लोहितेन फुटो, सेय्यथापि गवाघातनं" ति? "आयस्मतो, भन्ते, सोणस्स अच्चारद्धवीरियस्स चङ्कमतो पादा भिज्जिंसु। तस्सायं चङ्कमो लोहितेन फुटो, सेय्यथापि गवाघातनं" ति।

५. अथ खो भगवा येनायस्मतो सोणस्स विहारो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। आयस्मा पि खो सोणो भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं सोणं भगवा एतदवोच—"ननु ते, सोण, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"ये खो केचि भगवतो सावका आरद्धवीरिया विहरन्ति,

---

समय बाद ही आयुष्मान् सोण शीतवन में वास करते हुए धर्मसाधना में लग गये। उनके, बहुत श्रमपूर्वक अधिक चंक्रमण करने से, पैर फट गये। चंक्रमणस्थान रक्त से भर गया, जैसे गो–वधस्थल रक्त से भरा रहता है। तब आयुष्मान् सोण के मन में यह विचार उठा—"भगवान् के जितने भी श्रम एवं निष्ठा पूर्वक धर्मसाधना करने वाले शिष्य हैं उनमें मैं भी एक हूँ। तो भी मेरा चित्त आस्रवों (विकारों) से युक्त नहीं हो पा रहा है। मेरे घर में तो अटूट भोग–सामग्री है, उसके सहारे से मैं कामों का भी भोग कर सकता हूँ तथा दान करता हुआ पुण्योपार्जन भी कर सकता हूँ। अतः क्यों न मैं पुनः गृहस्थ में जाकर भोगों का भी भोग करूँ और साथ ही दानादि के द्वारा पुण्योपार्जन भी करूँ।" तब भगवान् आयुष्मान् शोण के मन का यह भाव अपने चित्त से जानकर, बलवान् पुरुष द्वारा सिमटी हुई बाहु को अनायास फैलाने की तरह गृध्रकूट पर्वत से अन्तर्हित होकर शीतवन में प्रकट हुए। तब भगवान् बहुत से (सम्बहुल) भिक्षुओं के साथ आश्रम में टहलते हुए वहाँ पहुँचे जहाँ आयुष्मान् सोण चंक्रमण किया करते थे। भगवान् ने आयुष्मान् सोण का चंक्रमणस्थल रक्त से भरा हुआ देखा। देखकर भगवान् ने भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ! यह किसका चंक्रमण–स्थल रक्तप्लावित है, जैसे कोई गोवधस्थल हो।" (भिक्षुओं ने बताया—) "भन्ते! यहाँ आयुष्मान् सोण चंक्रमण करते हैं। बहुत श्रम करके चंक्रमण करने से उनके पैर फट गये, उसी से यह ऐसा रक्तप्लावन हो रहा है, जैसे कोई गोवधस्थल हो।"

५. तब भगवान् आयुष्मान् सोण की साधनाकुटी में गये। जाकर विछे आसन पर विराजे। आयुष्मान् सोण भी भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे सोण को भगवान् ने पूछा—"सोण! क्या निश्चय ही अभी, कुछ समय पूर्व तुम्हारे मन में यह विचार उठा था—"भगवान् के जितने भी उद्योगपरायण शिष्य हैं उनमें.. .करूँ।" "हाँ, भन्ते!" "तो क्या मानता है, सोण! क्या तूँ

अहं तेसं अञ्ञतरो। अथ च पन मे नानुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चति। संविज्जन्ति खो पन मे कुले भोगा; सक्का भोगे च भुञ्जितुं, पुञ्ञानि च कातुं। यन्नूनाहं हीनायावत्तित्वा भोगे च भुञ्जेय्यं, पुञ्ञानि च करेय्यं'' ति ? ''एवं, भन्ते'' ति। ''तं किं मञ्ञसि, सोण, कुसलो [N.202, B.269] त्वं पुब्बे अगारिकभूतो वीणाय तन्तिस्सरे'' ति ? ''एवं, भन्ते,'' ति। ''तं किं मञ्ञसि, सोण, यदा ते वीणाय तन्तियो अच्चायता होन्ति, अपि नु ते वीणा तस्मिं समये सरवती वा होति, कम्मञ्ञा वा'' ति ? ''नो हेतं, भन्ते'', ति। ''तं किं मञ्ञसि, सोण, यदा ते वीणाय तन्तियो अतिसिथिला होन्ति, अपि नु ते वीणा तस्मिं समये सरवती वा होति, कम्मञ्ञा वा'' ति ? ''नो हेतं, भन्ते,'' ति। ''तं किं मञ्ञसि, सोण, यदा ते वीणाय तन्तियो नेव अच्चायता होन्ति नातिसिथिला, समे गुणे पतिट्ठिता, अपि नु ते वीणा तस्मिं समये सरवती वा होति, कम्मञ्ञा वा'' ति ? ''एवं, भन्ते,'' ति। ''एवमेव खो, [R.183] सोण, अच्चारद्धवीरियं उद्धच्चाय संवत्तति, अतिलीनवीरियं कोसज्जाय संवत्तति। तस्मातिह त्वं, सोण, वीरियसमतं अधिट्ठह, इन्द्रियानं च समतं पटिविज्झ, तत्थ च निमित्तं गण्हाही'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो आयस्मा सोणो भगवतो पच्चस्सोसि।

अथ खो भगवा आयस्मन्तं सोणं इमिना ओवादेन ओवदित्वा—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य, एवमेव—सीतवने आयस्मतो सोणस्स सम्मुखे अन्तरहितो गिज्झकूटे पब्बते पातुरहोसि। अथ खो आयस्मा सोणो अपरेन समयेन वीरियसमतं अधिट्ठासि, इन्द्रियानं च समतं पटिविज्झि, तत्थ च निमित्तं अग्गहेसि। अथ खो आयस्मा सोणो, एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी

पहले गृहस्थ में रहते समय वीणावादन में कुशल था?'' ''हाँ, भन्ते!'' ''तो क्या मानता है, सोण! जब तेरी वीणा के तार बहुत अधिक खिच जाते थे तो क्या उस समय वह वीणा मधुर स्वर वाली होती थी; कार्य सम्पन्न करने वाली होती थी?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''तो क्या मानता है, सोण! जब तेरी उस वीणा के तार ढीले होते थे तब भी वह मधुर एवं मनोज्ञ स्वर दे पाती थी?'' ''नही, भन्ते!'' ''तो क्या मानता है, सोण! जब तेरी वीणा के तार न बहुत अधिक खिचे होते थे और न बहुत ढीले ही, तब वह वीणा मधुर एवं मनोज्ञ स्वर दे पाती थीं?'' ''हाँ, भन्ते!'' ''इसी प्रकार, सोण! अधिक श्रम (उद्योग=वीर्य) औद्धत्य का उत्पादक होता है। तथा अधिक शिथिलता कौसीदय (आलस्य) उत्पन्न करती है। अत सोण! इस धर्मसाधना में श्रम करते समय भी समता का ध्यान रख इन्द्रियो के सम्बन्ध मे भी इसी समता का ग्रहण कर और वहाँ कारण को समझ।'' ''अच्छा, भन्ते!'' कहकर आयुष्मान् सोण ने भगवान् का आदेश स्वीकार किया।

तब भगवान् आयुष्मान् सोण को यह उपदेश देकर बलवान् पुरुष द्वारा सिमटी बाहु को अनायास पसारने के समान शीतवन में आयुष्मान् सोण के सामने अन्तर्हित होकर गृधकूट पर्वत पर आ विराजे।

फिर आयुष्मान् सोण ने भी, भगवान् के उपदेशानुसार, साधना-उदयोग में तथा इन्द्रियों के सम्बन्ध में समता ग्रहण करते हुए वहाँ कारण को ग्रहण किया। यों आयुष्मान् सोण ने एकान्त मे प्रमादरहित, उदयोगयुक्त एव आत्मसयमपूर्वक साधना करते हुए कुछ ही समय में उस अनुपम धर्मसाधना के अन्त (निर्वाण) को, जिसके लिये कुलपुत्र घर से बेघर हो प्रव्रजित होते है इसी जन्म

पहितत्तो विहरन्तो, न चिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति—तदनुत्तरं ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति अभिञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा सोणो अरहतं अहोसि।

६. अथ खो आयस्मतो सोणस्स अरहत्तप्पत्तस्स एतदहोसि—"यन्नूनाहं भगवतो सन्तिके अञ्ञं ब्याकरेय्यं" ति। अथ खो आयस्मा सोणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सोणो भगवन्तं एतदवोच—"यो सो, भन्ते, भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिक्खीणभवसंयोजनो सम्मदञ्ञाविमुत्तो, सो छ ठानानि अधिमुत्तो होति—नेक्खम्माधिमुत्तो होति, पविवेकाधिमुत्तो होति, अब्यापज्जाधिमुत्तो [B.270] होति, उपादानक्खयाधिमुत्तो होति, तण्हक्खयाधिमुत्तो होति, असम्मोहाधिमुत्तो होति। (१)

"सिया खो पन, भन्ते, इधेकच्चस्स आयस्मतो एवमस्स—'केवलं सद्धामत्तकं नून अयं आयस्मा निस्साय नेक्खम्माधिमुत्तो' ति, न खो पनेतं, भन्ते, एवं दट्ठब्बं। खीणासवो, भन्ते, भिक्खु, वुसितवा, कतकरणीयो, करणीयमत्तानं असमनुपस्सन्तो कतस्स वा पटिचयं खया रागस्स वीतरागत्ता नेक्खम्माधिमुत्तो होति, खया दोसस्स वीतदोसत्ता नेक्खम्माधिमुत्तो होति, खया मोहस्स वीतमोहत्ता नेक्खम्माधिमुत्तो होति। (२) [N.203]

"सिया खो पन, भन्ते, इधेकच्चस्स आयस्मतो एवमस्स—'लाभसक्कारसिलोकं

में प्राप्त कर लिया स्वयं साक्षात्कार कर लिया। वे जान गये कि 'उनकी जन्म–मरणपरम्परा क्षीण हो चुकी है, धर्मसाधना पूर्ण (सफल) हो चुकी है, अब उसका कोई अन्य कर्त्तव्य अवशिष्ट नहीं रहा।' यों वे आयुष्मान् सोण अपने समय के अर्हतों (ज्ञानियों) में एक (विशिष्ट) हुए।

अर्हत्त्व–वर्णन— ६. इस तरह अर्हत्त्व प्राप्त कर लेने के बाद आयुष्मान् सोण के मन में यह विचार हुआ कि क्यों न मैं जाकर भगवान् के सम्मुख अपनी ज्ञान–प्राप्ति का वर्णन करूँ (जिससे इसमें कोई कमी रह गयी हो तो उसे पूर्ण किया जा सके)। तब आयुष्मान् सोण जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गये। जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे आयुष्मान् सोण ने भगवान् से यों निवेदन करना प्रारम्भ किया—"भन्ते! जो भिक्षु क्षीणास्रव एवं धर्मसाधना को पूर्ण कर लेने वाला, कर्त्तव्यों से मुक्त, भारमुक्त, निर्वाणप्राप्त, भवबन्धनक्षीण एवं सम्यग्ज्ञान प्राप्ति के सहारे विमुक्तिप्राप्त अतएव अर्हत् हो चुका हो, वह इन छह स्थानों से मुक्त होता है—१. निष्कर्मता से मुक्त, २. एकान्त चिन्तन (प्रविवेक) से मुक्त, ३. द्रोह (अव्यापाद)–रहित होने से मुक्त, ४. विषयग्रहणक्षय से मुक्त, ५. तृष्णाक्षय से मुक्त एवं ६. मोहनाश से मुक्त होता है। (१)

"भन्ते! सम्भवतः किसी आयुष्मान् को ऐसा लगे कि वह अर्हत् हुआ आयुष्मान् भिक्षु केवल श्रद्धामात्र से निष्कामता के कारण मुक्त हो जाता है; किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। भन्ते! जिसका चित्तमल क्षीण हो चुका है, जिसने धर्मसाधना (ब्रह्मचर्यवास) पूर्ण कर ली है, जो अपने कर्त्तव्य कर्मों को पूर्ण कर चुका है, अब वह किसी कर्त्तव्य को नहीं देखता हुआ कृतकर्मों का सञ्चय न देखने से, तथा रागक्षय के कारण वीतराग होने से विवेक (एकान्त–चिन्तन) के कारण; द्वेष के क्षय से द्वेषरहित हो निष्कामता के कारण, मोह के क्षय से मोहरहित हो विवेक के कारण मुक्त होता है। (२)

[R.184] नून अयमायस्मा निकामयमानो पविवेकाधिमुत्तो' ति। न खो पनेतं, भन्ते, एवं दट्ठब्बं। खीणासवो, भन्ते, भिक्खु, वुसित्वा, कतकरणीयो, करणीयमत्तानं असमनुपस्सन्तो कतस्स वा पटिचयं, खया रागस्स वीतरागत्ता पविवेकाधिमुत्तो होति, खया दोसस्स वीतदोसत्ता पविवेकाधिमुत्तो होति, खया मोहस्स वीतमोहत्ता पविवेकाधिमुत्तो होति। (३)

''सिया खो पन, भन्ते, इधेकच्चस्स आयस्मतो एवमस्स—'सीलब्बतपरामासं नून अयमायस्मा सारतो पच्चागच्छन्तो अब्यापज्जाधिमुत्तो' ति। न खो पनेतं, भन्ते, एवं दट्ठब्बं। खीणासवो, भन्ते, भिक्खु, वुसितवा, कतकरणीयो, करणीयमत्तानं असमनुपस्सन्तो कतस्स वा पटिचयं, खया रागस्स वीतरागत्ता अब्यापज्जाधिमुत्तो होति, खया दोसस्स वीतदोसत्ता अब्यापज्जाधिमुत्तो होति, खया मोहस्स वीतमोहत्ता अब्यापज्जाधिमुत्तो होति। (४)

[B.271] ''.....खया रागस्स वीतरागत्ता उपादानक्खयाधिमुत्तो होति, खया दोसस्स वीतदोसत्ता उपादानक्खयाधिमुत्तो होति, खया मोहस्स वीतमोहत्ता उपादानक्खयाधिमुत्तो होति। (५)

''....खया रागस्स वीतरागत्ता तण्हक्खयाधिमुत्तो होति, खया दोसस्स वीतदोसत्ता तण्हक्खयाधिमुत्तो होति, खया मोहस्स वीतमोहत्ता तण्हक्खयाधिमुत्तो होति। (६)

''.....खया रागस्स वीतरागत्ता असम्मोहाधिमुत्तो होति, खया दोसस्स वीतदोसत्ता असम्मोहाधिमुत्तो होति, खया मोहस्स वीतमोहत्ता असम्मोहाधिमुत्तो होति। (७)

''एवं सम्माविमुत्तचित्तस्स, भन्ते, भिक्खुनो भुसा चे पि चक्खुविञ्ञेय्या रूपा चक्खुस्स आपाथं आगच्छन्ति, नेवस्स चित्तं परियादियन्ति। अमिस्सीकतमेवस्स चित्तं

''भन्ते! सम्भवतः किसी आयुष्मान् को ऐसा लगे कि यह अर्हत् हुआ आयुष्मान् एकान्त सेवन (विवेक) करता हुआ लाभ–सत्कार एवं प्रशंसा की तृष्णा से मुक्त हुआ; परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। जिसके चित्तविकार क्षीण हो चुके हैं, जिसने अपना ब्रह्मचर्यवास पूर्ण कर लिया है, जो कर्त्तव्य कर्म पूर्ण कर चुका है, अतः वह अपना कोई कर्त्तव्य कर्म न देखते हुए कृतकर्म का सञ्चय न करने से तथा रागक्षय के कारण वीतराग होने से; द्वेष के क्षय होने से...मोह के क्षय हाने से मोहरहित होकर विवेक के कारण मुक्त होता है। (३)

''भन्ते! सम्भवत: किसी आयुष्मान् को ऐसा लगे कि यह अर्हत् हुआ आयुष्मान् शीलव्रतपरामर्श को ही सार न समझता हुआ द्रोहरहित होकर मुक्त हुआ; परन्तु ऐसा भी नहीं है। ...पूर्ववत्.....रागक्षय के कारण, द्वेषक्षय के कारण, मोहक्षय के कारण वीतराग, वीतद्वेष एवं वीतमोह हुआ द्रोहमुक्त होता है। (४)

''.....रागद्वेष एव मोह क्षय के कारण वीतराग वीतद्वेष एव वीतमोह होने से उपादानक्षय हो जाने से मुक्त हो जाता है। (५)

''.....राग–द्वेष एवं मोहक्षय के कारण वीतराग...होने से तृष्णाक्षय हो जाने से मुक्त हो जाता है। (६)

''...राग द्वेष एवं मोह क्षय के कारण वीतराग....होने से मोहरहित हो जाने से मोहाधिमुक्त हो जाता है। (७)

भन्ते! यो सम्यग्विमुक्त भिक्षु के सम्मुख यदि चक्षु द्वारा देखे जाने योग्य रूप (विषय) बार-बार आवें तो भी वे उसके चित्त से सम्पृक्त नहीं हो सकते। उसका चित्त तो उनसे निर्लिप्त ही रहेगा।

होति, ठितं, आनेञ्जप्पत्तं, वयं चस्सानुपस्सति। भुसा चे पि सोतविञ्ञेय्या सद्दा....पे०......घानविञ्ञेय्या गन्धा.....जिव्हाविञ्ञेय्या रसा.....कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा.....मनोविञ्ञेय्या धम्मा मनस्स आपाथं आगच्छन्ति, नेवस्स चित्तं परियादियन्ति; अमिस्सीकतमेवस्स चित्तं होति, ठितं, आनेञ्जप्पत्तं, वयं चस्सानुपस्सति। सेय्यथापि, भन्ते, सेलो पब्बतो अच्छिद्दो असुसिरो एकग्घनो, पुरत्थिमाय चे पि दिसाय आगच्छेय्य भुसा वातवुट्ठि, नेव नं सङ्कम्पेय्य न सम्पकम्पेय्य न सम्पवेधेय्य; पच्छिमाय चे पि दिसाय आगच्छेय्य भुसा वातवुट्ठि....पे०.....उत्तराय चे पि दिसाय....पे०....दक्खिणाय चे पि दिसाय आगच्छेय्य भुसा वातवुट्ठि, नेव नं सङ्कम्पेय्य न सम्पकम्पेय्य न सम्पवेधेय्य; एवमेव खो, भन्ते, एवं सम्माविमुत्तचित्तस्स भिक्खुनो भुसा चे पि चक्खुविञ्ञेय्या रूपा चक्खुस्स आपाथं आगच्छन्ति, नेवस्स चित्तं परियादियन्ति; अमिस्सीकतमेवस्स चित्तं होति, ठितं, आनेञ्जप्पत्तं, वयं चस्सानुपस्सति। भुसा चे पि सोतविञ्ञेय्या सद्दा.....पे०.....घानविञ्ञेय्या गन्धा....जिव्हाविञ्ञेय्या [N.204] रसा..... कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा....मनोविञ्ञेय्या धम्मा मनस्स आपाथं आगच्छन्ति, नेवस्स चित्तं परियादियन्ति; अमिस्सीकतमेवस्स चित्तं होति, ठितं, आनेञ्जप्पत्तं, वयं चस्सानुपस्सती'' ति। (८)

''नेक्खम्मं अधिमुत्तस्स पविवेकं च चेतसो।
अब्यापज्जाधिमुत्तस्स उपादानक्खयस्स च॥
तण्हक्खयाधिमुत्तस्स असम्मोहं च चेतसो। [R.185]
दिस्वा आयतनुप्पादं सम्मा चित्तं विमुच्चति॥
तस्स सम्माविमुत्तस्स सन्तचित्तस्स भिक्खुनो। [B.272]
कतस्स पटिचयो नत्थि करणीयं न विज्जति॥

स्थिर एवं अचञ्चल ही रहेगा; क्योंकि वह इन (विषयों) का नाशवान् जानता है।..कान से सुनने योग्य शब्द.....घ्राण से सूँघने योग्य गन्ध....जिह्वा से स्वाद योग्य रस....काय से स्पर्श करने योग्य स्प्रष्टव्य विषय. ..मन से जानने योग्य धर्म मन के सामने बार बार आवें तो भी उनका चित्त उनसे निर्लिप्त ही रहेगा. ..नाशवान् जानता है। भन्ते! जैसे कोई छिद्ररहित, दरार रहित, ठोस, पथरीला पर्वत हो तो चाहे उसके पूर्वदिशा से.. पश्चिम दिशा से ..उत्तर दिशा से....दक्षिण दिशा से प्रबलतम वायु के झोके चले, भयङ्कर वृष्टि हो तब भी वे उसे हिला डुला नहीं सकते, कम्पा नहीं सकते; उसी तरह ''भन्ते! जिस भिक्षु का चित्त सभी दोषों से मुक्त हो चुका है वह उनसे निर्मल ही रहता है।...विषयो को नाशवान् समझता है।(८)

''निष्कामता से युक्त, विवेकमय चित्तवाले, अद्रोह के कारण अधिमुक्त चित्त वाले विषयों के उपादानों के क्षय से युक्त तृष्णाक्षयसम्पन्न असम्मुग्ध चित्तवाले पुरुष का चित्त आयतनों का उत्पाद व्यय देख कर उनसे निर्लिप्त रहता है।

''उस सम्यग्विमुक्त एवं शान्तचित्त भिक्षु के लिये न तो कृत कर्मों का सञ्चय आवश्यक रह जाता है, न कोई आगे कर्त्तव्य कर्म ही अवशिष्ट रह जाता है।

''जैसे कोई सुदृढ पर्वत किसी भी तरह की वायु के झोंके से यत्किञ्चित् भी प्रकम्पित नहीं होता; उसी तरह रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्श–ये सभी इष्ट अनिष्ट विषय अनित्य है, वे उस

सेलो यथा एकग्घनो वातेन न समीरति।
एवं रूपा रसा सद्दा गन्धा फस्सा च केवला॥
इट्ठा धम्मा अनिट्ठा च न पवेधेन्ति तादिनो।
ठितं चित्तं विप्पमुत्तं वयं चस्सानुपस्सती'' ति॥

३. दिगुणादिउपाहनपटिक्खेपो

७. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''एवं खो, भिक्खवे, कुलपुत्ता अञ्ञं ब्याकरोन्ति, अत्थो च वुत्तो, अत्ता च अनुपनीतो। अथ च, पनिधेकच्चे मोघपुरिसा हसमानका, मञ्ञे, अञ्ञं ब्याकरोन्ति, ते पच्छा विघातं आपज्जन्ती'' ति। अथ खो भगवा आयस्मन्तं सोणं आमन्तेसि—''त्वं खोसि, सोण, सुखुमालो। **अनुजानामि ते, सोण, एकपलासिकं उपाहनं**'' ति। ''अहं खो, भन्ते, असीतिसकटवाहे हिरञ्ञं ओहाय अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो, सत्तहत्थिकं च अनीकं। अथाहं, भन्ते, एकपलासिकं चे परिहरिस्सामि, तस्स मे भविस्सन्ति वत्तारो 'सोणो कोळिविसो असीतिसकटवाहे हिरञ्ञं ओहाय अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो, सत्तहत्थिकं च अनीकं। सो दानायं एकपलासिकासु उपाहनासु सत्तो' ति। सचे भगवा भिक्खुसङ्घस्स अनुजानिस्सति अहं पि परिभुञ्जिस्सामि; नो चे भगवा भिक्खुसङ्घस्स अनुजानिस्सति, अहं पि न परिभुञ्जिस्सामी'' ति। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**अनुजानामि, भिक्खवे, एकपलासिकं उपाहनं। न, भिक्खवे, दिगुणा उपाहना धारेतब्बा। न तिगुणा**

सम्यग्विमुक्त (अर्हत्) भिक्षु के चित्त को किसी भी तरह अस्थिर नहीं कर सकते, उस का चित्त तो तब भी स्थिर एवं अप्रकम्पित ही रहता है; क्यो कि वह इन विषयों की अनित्यता तथा उत्पत्ति एवं विनाश को भलीभाँति समझ चुका है।''

तब भगवान् ने (सोण कोटिवीस की परोक्षतः प्रशंसा करते हुए) भिक्षुओं से कहा—''भिक्षुओ! इस प्रकार के कुलपुत्र ही स्वसाक्षात्कृत का वर्णन कर सकते हैं जिसमें कि आत्मप्रशंसा भी नहीं होती, और अपनी बात भी कह दी जाती है। अन्यथा कई मूर्ख तो परिहास सा करते हुए अपनी अर्हत्त्वप्राप्ति का वर्णन करते हैं और इस पाप के प्रभाव से अन्त में विनाश को प्राप्त होते हैं।''

३. दोहरे तिहरे तल्ले के जूता पहनने का निषेध

७. तब भगवान् ने आयुष्मान् सोण का सम्बोधित करते हुए कहा—''सोण! तूँ सुकुमार है। **सोण! मैं तुम्हें एक तल्ले का जूता पहनने की अनुमति देता हूँ।**'' (सोण बोले—) ''भन्ते! मैं तो अपने गृहस्थ में अस्सी गाडियों से ढोये जा सकने योग्य हिरण्य (सुवर्ण) छोड़कर, तथा (वाहन के लिये) छह हाथी एवं हथिनी (अनीक) को छोड़कर घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ हूँ। यदि, भन्ते! मैं अकेला ऐसे जूतों का प्रयोग करूँगा तो लोग मेरी निन्दा करते हुए कहने वाले कहेंगे—''सोण कोटिवीस अस्सी गाडी हिरण्य...पूर्ववत्...हुआ है; वह अब एक तल्ले जूते में आसक्त हुआ है। हाँ, यदि भगवान् समग्र भिक्षुसङ्घ के लिये अनुमति दे तो मैं भी इसका उपयोग कर लूँगा। यदि भगवान् समग्र भिक्षुसङ्घ को ऐसा जूता पहनने की अनुमति नहीं देंगे तो मैं भी इसका उपयोग नहीं करूँगा।''

एक तल्ले के जूते का विधान— तब भगवान् ने इस प्रसङ्ग की धार्मिक कथाएँ कहते हुए भिक्षुओं को आदेश दिया—''**भिक्षुओ! मैं तुम सबको एक तल्ले को जूता पहनने की अनुमति देता हूँ।**

उपाहना धारेतब्बा। न गणङ्गणुपाहना धारेतब्बा। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा'' ति।

४. सब्बनीलिकादिपटिक्खेपो

८. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सब्बनीलिका उपाहनायो धारेन्ति... पे०.... सब्बपीतिका उपाहनायो धारेन्ति....सब्बलोहितिका उपाहनायो धारेन्ति.....[N.205] सब्बमहारङ्गरत्ता उपाहनायो धारेन्ति....सब्बमहानामरत्ता उपाहनायो धारेन्ति। मनुस्सा [B.273] उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—सेय्यथापि गिही कामभोगिनो ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सब्बनीलिका उपाहना धारेतब्बा, न सब्बपीतिका उपाहना धारेतब्बा, न सब्बलोहितिका उपाहना धारेतब्बा, न सब्बमञ्जिट्ठिका उपाहना धारेतब्बा, न सब्बकण्हा उपाहना धारेतब्बा, न सब्बमहारङ्गरत्ता उपाहना धारेतब्बा, न सब्बमहानामरत्ता उपाहना धारेतब्बा। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

९. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू नीलकवद्धिका उपाहनायो [R.186] धारेन्ति, पीतकवद्धिका उपाहनायो धारेन्ति, लोहितकवद्धिका उपाहनायो धारेन्ति, मञ्जिट्ठिकवद्धिका उपाहनायो धारेन्ति, कण्हवद्धिका उपाहनायो धारेन्ति, महारङ्गरत्तवद्धिका उपाहनायो धारेन्ति, महानामरत्तवद्धिका उपाहनायो धारेन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—सेय्यथापि गिही कामभोगिनो ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, नीलकवद्धिका उपाहना धारेतब्बा, न पीतकवद्धिका उपाहना धारेतब्बा, न लोहितकवद्धिका उपाहना धारेतब्बा, न मञ्जिट्ठिकवद्धिका उपाहना धारेतब्बा, न कण्हवद्धिका उपाहना धारेतब्बा, न महारङ्गरत्तवद्धिका उपाहना धारेतब्बा, न महानामरत्तवद्धिका उपाहना धारेतब्बा। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

परन्तु किसी को भी दो तल्ले या तीन तल्ले के जूते नहीं पहनने चाहिये व अधिक तल्ले वाले जूते (गणङ्गणुपाहना) पहनने चाहिये। जो इन्हें धारण करेगा उसे दुष्कृत दोष का अपराध लगेगा।''

४. नील आदि रङ्गों से रङ्गे जूते पहनने का निषेध

८. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे जूते पहनने लगे जो पूर्णतः नीले रङ्ग में रङ्गे होते थे...पूर्णतः पीले....लाल रङ्ग में रङ्गे होते थे....पूर्णतः मंजीठ रंग में.... पूर्णतः काले रङ्ग में....पूर्णतः महारङ्ग में....पूर्णतः महानाम रङ्ग में रङ्गे जूते पहनने लगे। (इन्हें देखकर--) साधारण जन खिन्न एवं दुःखी होने लगे कि ये शाक्यपुत्रीय श्रमण भी पूर्णतः नीले रङ्ग में....महानाम में रङ्गे जूते पहनने लगे जैसे कामभोगी गृहस्थ जन पहनते हैं। उन्होंने भगवान् से अपनी वेदना बतायी। (भगवान् ने कहा—) **''भिक्षुओ! पूर्णतः नीले.....पीले....लाल....मंजीठ....काले....महारङ्ग......महानाम रङ्ग में रङ्गे जूते नहीं पहनने चाहिये। जो पहनेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**

९. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु चमड़े की नीली रस्सी (वर्धी) से बँधे. ..पीली रस्सी से....लाल रस्सी से....मञ्जीठ रङ्ग की रस्सी से.. काली रस्सी से. .महारङ्ग.. .महानाम रङ्ग से रङ्गी हुई रस्सी से बँधे जूते पहनने लगे। (इन्हें देखकर—) साधारण जन ..वेदना बतायी। (भगवान् ने कहा—) **''भिक्षुओ! किसी भी भिक्षु को नीले, पीले, लाल, मञ्जीठ, काली, महारङ्ग या महानाम रङ्ग से रङ्गी हुई रस्सी से बन्धे जूते नहीं पहनने चाहिये। जो पहनेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**

१०. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू खल्लकबद्धा उपाहनायो धारेन्ति, पुटबद्धा उपाहनायो धारेन्ति, पालिगुण्ठिमा उपाहनायो धारेन्ति, तूलपुण्णिका उपाहनायो धारेन्ति, तित्तिरपत्तिका उपाहनायो धारेन्ति, मेण्डविसाणबद्धिका उपाहनामो धारेन्ति, अजविसाणवद्धिका उपाहनायो धारेन्ति, विच्छिकाळिका उपाहनायो धारेन्ति, मोरपिञ्छ-परिसिब्बिता उपाहनायो धारेन्ति, चित्रा उपाहनायो धारेन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—सेय्यथापि गिही कामभोगिनो ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, खल्लकबद्धा उपाहना धारेतब्बा, न पुटबद्धा उपाहना धारेतब्बा, न पालिगुण्ठिमा** [B.274] **उपाहना धारेतब्बा, न पुटबद्धा उपाहना धारेतब्बा, न तित्तिरपत्तिका उपाहना धारेतब्बा, न मेण्डविसाणवद्धिका उपाहना धारेतब्बा, न अजविसाणवद्धिका उपाहना धारेतब्बा, न विच्छिकाळिका उपाहना धारेतब्बा, न मोरपिञ्छपरिसिब्बिता उपाहना धारेतब्बा, न चित्रा उपाहना धारेतब्बा। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

११. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सीहचम्मपरिक्खटा उपाहनायो धारेन्ति, [N.206] ब्यग्घचम्मपरिक्खटा उपाहनायो धारेन्ति, दीपिचम्मपरिक्खटा उपाहनायो धारेन्ति, उद्दचम्मपरिक्खटा उपाहनायो धारेन्ति, मज्जारचम्मपरिक्खटा उपाहनायो धारेन्ति, काळक-चम्मपरिक्खटा उपाहनायो धारेन्ति, उलूकचम्मपरिक्खटा उपाहनायो धारेन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—सेय्यथापि गिही कामभोगिनो ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सीहचम्मपरिक्खटा उपाहना धारेतब्बा.....पे०.....न ब्यग्घ-चम्मपरिक्खटा उपाहना धारेतब्बा, न दीपिचम्मपरिक्खटा उपाहना धारेतब्बा, न अजिनचम्मपरिक्खटा उपाहना धारेतब्बा, न उद्दचम्मपरिक्खटा उपाहना धारेतब्बा, न मज्जारचम्मपरिक्खटा उपाहना धारेतब्बा, न काळकचम्मपरिक्खटा उपाहना धारे-तब्बा, न उलूकचम्मपरिक्खटा उपाहना धारेतब्बा। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

५. ओमुक्कगणङ्गणुपाहनानुजानना

१२. अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहं पिण्डाय

---

१०. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु थैले की तरह सिलकर बने हुए जूते...पुटबद्ध (यूनानी लोगों की तरह) जूते...पालिगुण्ठिम (आजकल के बूँटों की तरह) जूते...रुई भरे चमड़े के जूते....तीतर के पङ्खों से चित्रित जूते....मयूर पङ्ख से चित्रित जूते....भेड़ के सींग ... तथा बकरी के सींग बन्धे जूते ..विच्छू के डंक की तरह बनी नोंक वाले जूते...इसी तरह नाना प्रकार से चित्रित जूते पहनने लगे। इन्हें देखकर साधारण जनो ने ....वेदना बतायी। (भगवान् ने कहा–) **''भिक्षुओ! थैले की तरह सिलकर बने हुए....पुटबद्ध जूते....पालिगुण्ठिम जूते....रुई–भरे जूते....विच्छु के डंक के समान बनी नोक (अग्रभाग) वाले जूते नहीं धारण करने चाहिये। जो धारण करे उसे 'दुष्कृत' दोष हो।**

११. उस समय कुछ षड्वर्गीय भिक्षु सिंह चर्म से बने जूते पहनने लगे, व्याघ्रचर्म से.. द्वीपि (चीता) चर्म से...मृग चर्म से....उदबिलाव (जङ्गली बिल्ली) के चर्म से...बिल्ली के चर्म से....काले चर्म से....बने जूते पहनने लगे। यह देखकर साधारण नागरिक ..पूर्ववत्....वेदना कही। (भगवान् ने कहा–) **''भिक्षुओ! सिंहचर्म से बने....काले चर्म से बने जूते नहीं पहनने चाहिये। जो पहनेगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा।''**

पाविसि, अञ्ञतरेन भिक्खुना पच्छासमणेन। अथ खो भिक्खु खञ्जमानो भगवन्तं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धि। अद्दसा खो अञ्ञतरो उपासको गणङ्गणुपाहनं आरोहित्वा भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं, दिस्वान उपाहना आरोहित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं अभिवादेत्वा एतदवोच– "किस्स, भन्ते, अय्यो खञ्जती" ति? "पादा मे, आवुसो, फालिता" [B.275] ति। गण्ह, भन्ते उपाहनायो" ति। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे [R.187] धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि–"**अनुजानामि, भिक्खवे, ओमुक्कगणङ्गणुपाहनं। न, भिक्खवे, नवा गणङ्गणूपाहना धारेतब्बा। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

६. अज्झारामे उपाहनपटिक्खेपो

१३. तेन खो पन समयेन भगवा अज्झोकासे अनुपाहनो चङ्कमति। 'सत्था अनुपाहनो चङ्कमती' ति थेरा पि भिक्खू अनुपाहना चङ्कमन्ति। छब्बग्गिया भिक्खू, सत्थरि अनुपाहने चङ्कममाने, थेरेसु पि भिक्खूसु अनुपाहनेसु चङ्कममानेसु, सउपाहना चङ्कमन्ति। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा,.....पे०.....ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति–"कथं हि नाम छब्बग्गिया भिक्खू, सत्थरि अनुपाहने चङ्कममाने, थेरेसु पि भिक्खूसु अनुपाहनेसु चङ्कममानेसु, सउपाहना चङ्कमिस्सन्ती" ति। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ....पे०....."सच्चं किर, भिक्खवे, छब्बग्गिया भिक्खू, सत्थरि अनुपाहने चङ्कममाने, थेरेसु पि भिक्खूसु

---

५. दूसरों द्वारा छोड़े गये जूते पहनने की अनुमति

१२. तब भगवान् पूर्वाह्न समय वस्त्र पहन कर पात्र-चीवर लेकर एक भिक्षु को अनुगामी बनाकर राजगृह में भिक्षा हेतु प्रविष्ट हुए। वह भिक्षु भी लँगड़ाता हुआ भगवान् के पीछे पीछे चला। वहाँ बहुत तल्ले वाला जूता पहने हुए एक उपासक ने भगवान् को आते हुए देखा। देखकर, जूते उतारकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान् को प्रणाम कर जहाँ वह भिक्षु था उसके पास गया। जाकर भिक्षु का भी अभिवादन कर उससे पूछा–"भन्ते! आर्य लँगड़ा क्यों रहे हैं?" (भिक्षु ने कहा–) "आयुष्मन्! मेरे पैर फट गये हैं।" (उपासक ने कहा–) "तो भन्ते! ये मेरे जूते ले लें।" "आयुष्मन्! रहने दो! भगवान् ने बहुत तल्ले वाले जूते पहनने की अनुमति नहीं दी है।" (भगवान् ने कहा–) "भिक्षु! ये जूते ले, ले।" तब भगवान् ने (आश्रम में आकर) इसी सम्बन्ध में इसी प्रकरण में धार्मिक कथा कहते हुए भिक्षुओं से कहा–"**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ। (किसी के द्वारा पहनकर) छोड़े हुए बहुत तल्लों वाले जूतों के उपयोग की। हाँ, भिक्षुओ! नया बहुत तल्लेवाला जूता नहीं पहनना चाहिये। जो पहनेगा, उसे 'दुष्कृत' दोष होगा।**"

६. आवास में जूता पहनने का निषेध

१३. उस समय भगवान् खुले स्थान में विना जूता पहने चंक्रमण कर रहे थे। स्थविर भिक्षु भी–'भगवान् खुले स्थान में नंगे पैर ही घूम रहे हैं'–यह सोचकर विना जूता पहने ही टहलने लगे। परन्तु षड्वर्गीय भिक्षु शास्ता तथा स्थविर भिक्षुओं को नंगे पैरों घूमते हुए देखकर भी जूता पहने हुए इधर-उधर टहलते थे। यह देखकर अल्पेच्छ भिक्षु खिन्न एवं दुःखी होते थे कि कैसे ये षड्वर्गीय भिक्षु....टहलते हैं! उन्होंने भगवान् से यह बात कही। (भगवान् ने कहा–) "क्या भिक्षुओ! सचमुच ये

अनुपाहनेसु चङ्कमनानेसु, सउपाहना चङ्कमन्ती'' ति ? ''सच्चं, भगवा'' ति। विगरहि बुद्धो भगवा....पे०.... कथं हि नाम ते, भिक्खवे, मोघपुरिसा, सत्थरि अनुपाहने चङ्कमभाने, [N.207] थेरेसु पि भिक्खूसु अनुपाहनेसु चङ्कममानेसु, सउपाहना चङ्कमिस्सन्ति। इमे हि नाम, भिक्खवे, गिही ओदातवसना अभिजीवनिकस्स सिप्पस्स कारणा आचरियेसु सगारवा सप्पतिस्सा सभागवुत्तिका विहरिस्सन्ति। इध खो तं, भिक्खवे, सोभेथ, यं तुम्हे एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजिता समाना आचरियेसु आचरियमत्तेसु उपज्झायेसु उपज्झायमत्तेसु सगारवा सप्पतिस्सा सभागवुत्तिका विहरेय्याथ। नेतं, भिक्खवे, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**न, भिक्खवे, आचरियेसु आचरियमत्तेसु उपज्झायेसु उपज्झायमत्तेसु अनुपाहनेसु चङ्कममानेसु सउपाहनेन चङ्कमितब्बं। यो चङ्कमेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। न च, भिक्खवे, अज्झारामे उपाहना धारेतब्बा। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्टस्सा**'' ति।

[B.276] १४. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स पादखीलाबाधो होति। भिक्खू तं भिक्खुं परिग्गहेत्वा उच्चारं पि पस्सावं पि निक्खामेन्ति। अद्दसा खो भगवा सेनासनचारिकं आहिण्डन्तो [R.188] ते भिक्खू तं भिक्खुं परिग्गहेत्वा उच्चारं पि पस्सावं पि निक्खामेन्ते। दिस्वान येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एतदवोच—''किं इमस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो आबाधो'' ति ? ''इमस्स, भन्ते, आयस्मतो पादखीलाबाधो; इमं मयं परिग्गहेत्वा उच्चारं पि पस्सावं पि निक्खामेमा'' ति। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**अनुजानामि, भिक्खवे, यस्स पादा वा दुक्खा, पादा वा फलिता, पादखीलाबाधो वा, उपाहनं धारेतुं**'' ति।

षड्वर्गीय भिक्षु शास्ता तथा स्थविर भिक्षुओं को नङ्गे पैर घूमता हुआ देखकर भी स्वयं जूते पहनकर इधर उधर टहलते रहते हैं?'' ''हाँ भगवन्!'' तब भगवान् ने उनको फटकारते हुए कहा—''कैसे ये मोघपुरुष! शास्ता ....जूता पहनकर टहलते हैं? भिक्षुओ! ये श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थजन भी अपनी जीविका के शिल्प के कारण अपने आचार्य में गौरव, विनययुक्त तथा एक वृत्तिवाले होते हैं; तब भिक्षुओ! यह कैसे शोभा देगा कि तुम इस प्रकार के सुव्याख्यात धर्मविनय मे दीक्षा लेकर भी अपने आचार्यों में, आचार्यकल्पो में, उपाध्यायों में तथा उपाध्यायसदृशों म–गौरव, आदर न करते हुए असमान वृत्तिवाले होकर व्यवहार करोगे? भिक्षुओ! यह मेरा कथन न अप्रसन्नों के प्रसन्न....पूर्ववत् ...। यों निन्दा कर, धार्मिक कथा कहते हुए भिक्षुओ को बताया—**भिक्षुओ! आचार्यों के, आचार्यकल्पों के, उपाध्यायों के, उपाध्यायकल्पों के विना जूता पहने हुए घूमते रहने पर स्वयं को जूता पहन कर नहीं घूमना चाहिये। जो ऐसा करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा। तथा भिक्षुओ! आराम (आवास) में भी जूते पहन कर नहीं रहना चाहिये। जो ऐसा करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।''**

पैर सम्बन्धी रोगों में जूता पहनने की अनुमति— १४. उस समय किसी भिक्षु के पैर में पादकील रोग हो गया था। दूसरे भिक्षु उसे पकडकर शौच और मूत्रोंत्सर्जन के लिये ले जाते थे। किसी समय भगवान् उस विहार (आवास) का निरीक्षण कर रहे थे कि उनके ध्यान में यह बात आयी। तब भगवान् वहाँ गये, जाकर उन्होंने पूछा—''इस भिक्षु को क्या रोग है?'' (उन्होंने बताया—) ''भन्ते! इसको पादकील रोग हो गया है। यह स्वयं चल फिर नहीं सकता; अतः हम इसे शौच एवं मूत्रोत्सर्ग के लिये ले जाते हैं।'' तब भगवान् ने इस प्रसङ्ग मे धार्मिक कथाएँ सुनाते हुए भिक्षुओं से कहा—

तेन खो पन समयेन भिक्खू अधोतेहि पादेहि मञ्चं पि पीठं पि अभिरुहन्ति; चीवरं पि सेनासनं पि दुस्सति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, 'इदानि मञ्चं वा पीठं वा अभिरुहिस्सामी' ति उपाहनं धारेतुं''** ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू रत्तिया उपोसथग्गं पि सन्निसज्जं पि गच्छन्ता अन्धकारे खाणुं पि कण्टकं पि अक्कमन्ति; पादा दुक्खा होन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, अज्झारामे उपाहनं धारेतुं, उक्कं, पदीपं, कत्तरदण्डं** ति।

७. कट्ठपादुकादिपटिक्खेपो

१५. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय कट्ठपादुकायो अभिरुहित्वा अज्झोकासे चङ्कमन्ति, उच्चासद्दा महासद्दा खटखटसद्दा, अनेकविहितं तिरच्छानकथं कथेन्ता, सेय्यथिदं,—राजकथं, चोरकथं, महामत्तकथं, [N.208] सेनाकथं, भयकथं, युद्धकथं, अन्नकथं, पानकथं, वत्थकथं, सयनकथं, मालाकथं, गन्धकथं, ञातिकथं, यानकथं, गामकथं, निगमकथं, नगरकथं, जनपदकथं, इत्थिकथं, पुरिसकथं, सूरकथं, विसिखाकथं, कुम्भट्ठानकथं, पुब्बपेतकतं, मानत्तकथं, लोकक्खायिकं, समुद्दक्खायिकं, इति भवाभवकथं इति वा; कीटकं पि अक्कमित्वा मारेन्ति, भिक्खू पि समाधिम्हा चावेन्ति। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा.....पे०....ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति [B.277] विपाचेन्ति—''कथं हि नाम छब्बग्गिया भिक्खू रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय कट्ठपादुकायो

''भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उसे आवास में भी जूता पहनने की, जिसे पादकील रोग हो। जिसके पैर फटे हों, या जिसके पैरों में भयङ्कर वेदना होती हो।''

उस समय कुछ भिक्षु विना पैर धोए ही, मञ्च या पीठ पर चढ़ जाते थे जिससे चीवर या मञ्च पर बिछी हुई चादर मैली हो जाती थी। भगवान् से यह बात बतायी गयी। (भगवा् ने कहा–) **''भिक्षुओ! यदि तुम्हें मञ्च या पीठ पर बैठना हो तो उससे पूर्व जूता पहनने की अनुमति देता हूँ।''**

उस समय, रात्रिकाल मे कुछ भिक्षु उपोसथस्थान या बैठने के स्थान पर जाते हुए अन्धकार में खड्डे मे भी गिर जाते थे, उन्हें काँटे भी चुभ जाते थे जिससे उन्हें पैरों में निष्प्रयोजन शारीरिक वेदना होती थी। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा–) **''भिक्षुओ! आराम में इधर से उधर जाते समय भी जूता पहनने की अनुमति देता हूँ, साथ ही मशाल, दीपक तथा सहारे के लिये छड़ी रखने की भी।''**

७. आवास में काठ की खड़ाऊँ पहनने का निषेध

१५. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु रात्रि में बहुत प्रातः उठकर काठ की खडाऊँ पहन कर उनसे बहुत ऊँचे एवं कर्णकटु खट–खट शब्द करते हुए खुले मैदान मे टहलते थे और साथ ही नाना प्रकार की व्यर्थ बाते भी जोर–जोर से करते रहते थे। जैसे—राजकथा, चौरकथा, महामात्यकथा, सेनाविषयक कथा, भयोत्पादक कथाएँ, युद्धकथा, अन्नकथा, पानकथा, वस्त्रकथा, शयनकथा, मालाकथा, गन्धकथा ज्ञाति (सम्बन्धियो की) कथा, यानकथा, ग्रामकथा, जनपदकथा, नगरकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, पुरुषकथा, शूरकथा, चौराहे (विशिखा) की कथा, पनघट (कुम्भस्थान) की कथा, पहले मरे हुओं की कथा, अपनी बड़ाई की बातें, लोक -कहानियाँ, समुद्री यात्रा की कथा—ऐसी हुई अनहुई (या

अभिरुहित्वा अज्झोकासे चङ्कमिस्सन्ति, उच्चासद्दा महासद्दा खटखटसद्दा, अनेकविहितं तिच्छानकथं कथेन्ता, सेय्यथिदं—राजकथं, चोरकथं.....पे०....इति भवाभवकथं इति वा, कीटकं पि अक्कमित्वा मारेस्सन्ति, भिक्खू पि समाधिम्हा चावेस्सन्ती'' ति। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।....पे....सच्चं किर, भिक्खवे, छब्बग्गिया भिक्खू रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय कट्ठपादुकायो अभिरुहित्वा अज्झोकासे चङ्कमन्ति, उच्चासद्दा महासद्दा खटखटसद्दा, अनेकविहितं तिरच्छानकथं कथेन्ता, सेय्यथिदं,—राजकथं, चोरकथं ....पे०....इति भवाभवकथं इति वा, कीटकं पि अक्कमित्वा मारेन्ति, भिक्खू पि [R.189] समाधिम्हा चावेन्ती ति? सच्चं, भगवा ति....पे०....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**न, भिक्खवे, कट्ठपादुका धारेतब्बा। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**'' ति।

१६. अथ खो भगवा राजगहे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन वाराणसी तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन वाराणसी तदवसरि। तत्र सुदं भगवा वाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये। तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू—भगवता कट्ठपादुका पटिक्खित्ता ति—तालतरुणे छेदापेत्वा तालपत्तपादुकायो धारेन्ति; तानि तालतरुणानि छिन्नानि मिलायन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया तालतरुणे छेदापेत्वा तालपत्तपादुकायो धारेस्सन्ति; तानि तालतरुणानि छिन्नानि मिलायन्ति; एकिन्द्रियं समणा सक्यपुत्तिया जीवं विहेठेन्ती'' ति। अस्सोसुं खो भिक्खू तेसं मनुस्सानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपचेन्तानं। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ....पे०....सच्चं किर, भिक्खवे, छब्बग्गिया भिक्खू तालतरुणे छेदापेत्वा तालपत्तपादुकायो धारेन्ति; तानि तालतरुणानि छिन्नानि मिलायन्ती ति? ''सच्चं, भगवा'' ति। विगरहि बुद्धो भगवा....पे०....कथं हि नाम ते, भिक्खवे, मोघपुरिसा तालतरुणे छेदापेत्वा तालपत्तपादुकायो

लौकिक अलौकिक) कथाएँ कहते हुए नीचे अपनी खड़ाउओं से कीडों को आहत भी करते थे, मारते भी थे तथा ध्यानमग्न भिक्षुओ की समाधि में विघ्न भी डालते थे। तब वहाँ जो अल्पेच्छ (शान्तप्रकृति) भिक्षु थे वे खिन्न, उद्विग्न एवं दुःखी होते थे कि कैसे ये षड्वर्गीय भिक्षु.....पूर्ववत्.....समाधि में विघ्न डालते हैं।'' उन्होंने भगवान् से यह बात कही। ..पूर्ववत्....भिक्षुओ! क्या वस्तुतः ये षड्वर्गीय भिक्षु.. विघ्न डालते हैं?'' ''सत्य ही, भगवन्!''. .पूर्ववत्. .निन्दा कर, धार्मिक कथाएँ सुना भिक्षुओं को आदेश दिया—**भिक्षुओ! काठ की खड़ाऊ नहीं पहननी चाहिये। जो पहने उसे दुष्कृत दोष लगे।**

ताड़पत्र की पादुका का निषेध— १६. तब भगवान् राजगृह मे यथेच्छ साधनाविहार का जिधर वाराणसी थी उधर चारिका करते हुए चल पडे। वे वहाँ वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में आकर साधना हेतु विराजे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु—'भगवान् ने काठ की खड़ाऊँ पहनना निषिद्ध कर दिया है'—यह सोचकर छोटे–छोटे ताड़वृक्षों को कटवाकर उनके कोमल पत्तो से खडाऊँ बनवाते थे। इस तरह वे छोटे–छोटे ताड वृक्ष असमय में नष्ट–भ्रष्ट हो जाते थे। यह देखकर साधारण नागरिक बहुत खिन्न उद्विग्न एवं दुःखी होते थे कि ''कैसे ये शाक्यपुत्रीय भिक्षु छोटे–छोटे ताड़वृक्षों को कटवाकर उनके कोमल पत्तों से खड़ाऊँ बनवाते हैं। इस तरह तो एक दिन यहाँ का समग्र ताड़वन ही नष्ट हो जायगा। यों ये शाक्यपुत्रीय श्रमण एक इन्द्रिय वाले जीव की हिंसा के भी अपराधी बनते

धारेस्सन्ति; तानि तालतरुणानि छिन्नानि मिलायन्ति। जीवसञ्ञिनो हि, भिक्खवे, मनुस्सा रुक्खस्मिं। नेतं, भिक्खवे, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०...विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, तालपत्तपादुका धारेतब्बा। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू 'भगवता तालपत्तपादुका [N.209] पटिक्खित्ता' ति वेळुतरुणे छेदापेत्वा वेळुपत्तपादुकायो धारेन्ति। तानि वेळुतरुणानि छिन्नानि मिलायन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया वेळुतरुणे छेदापेत्वा वेळुपत्तपादुकायो धारेस्सन्ति। तानि वेळुतरुणानि छिन्नानि मिलायन्ति। एकिन्द्रियं समणा सक्यपुत्तिया जीवं विहेठेन्ती" ति। अस्सोसुं खो भिक्खू तेसं मनुस्सानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। .....पे०..... जीवसञ्ञिनो हि, भिक्खवे, मनुस्सा रुक्खस्मिं....पे०....**न, भिक्खवे, वेळुपत्तपादुका धारेतब्बा। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

१७. अथ खो भगवा वाराणसियं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन भद्दियं तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन भद्दियं तदवसरि। तत्र सुदं भगवा भद्दिये विहरति जातिया वने। तेन खो पन समयेन भद्दिया भिक्खू अनेकविहितं पादुकमण्डनानुयोग-मनुयुत्ता विहरन्ति, तिणपादुकं करोन्ति पि कारापेन्ति पि, मुञ्जपादुकं करोन्ति पि [R.190] कारापेन्ति पि, बब्बजपादुकं करोन्ति पि कारापेन्ति पि, हिन्तालपादुकं करोन्ति पि कारापेन्ति पि, कमलपादुकं करोन्ति पि कारापेन्ति पि, कम्बलपादुकं करोन्ति पि कारापेन्ति पि,

---

हैं।" कुछ भिक्षुओं ने उन नागरिकों का यह क्रन्दन सुना। तब उन भिक्षुओं ने भगवान् के सम्मुख यह समस्या रखी। .....पूर्ववत्...."क्या, भिक्षुओ! सचमुच ही ये षड्वर्गीय भिक्षु ताडपत्र की बनी पादुकाएँ पहनते हैं?" "हाँ, सत्य ही, भगवन्!" भगवान् ने उनके इस कर्म की निन्दा कर....पूर्ववत्....कैसे ये मूर्ख भिक्षु छोटे छोटे ताडवृक्षों को कटवा कर उनकी बनी खड़ाऊँ पहनते हैं। भिक्षुओ! कुछ मनुष्य वृक्षो में भी जीव मानते हैं। भिक्षुओ! मेरा यह आदेश अप्रसन्नों के प्रसाद के लिये नहीं है ...पूर्ववत्.....भिक्षुओं को कहा—"**भिक्षुओ! ताडपत्र की बनी पादुकाएँ भी नहीं पहननी चाहिये। जो पहनेगा उसे 'दुष्कृत' अपराध लगेगा।**"

बाँस की बनी पादुका का निषेध— उस समय षड्वर्गीय भिक्षु— 'भगवान् ने ताड़पत्र से बनी पादुका का निषेध कर दिया है।"—यह सोचकर बाँस के पौधों को कटवा कर उनसे बनी पादुका धारण करने लगे। यह देखकर.. ..पूर्ववत्.....कुछ मनुष्य वृक्षों में जीवसंज्ञा मानते है... **भिक्षुओ! बाँस के पत्तों से बनी पादुका भी नहीं पहिननी चाहिये।**

नानाविध पादुकाओं का निषेध— १७. तब भगवान् वाराणसी में यथेच्छ साधना करने के बाद **भद्दिया** (अङ्ग प्रदेश का एक जनपद) की तरफ चारिका हेतु चल पड़े। वहाँ भद्दिया में जाकर जातिवन में साधनाहेतु विराजे। उस समय भद्दियावासी भिक्षु नाना प्रकार की सजी–सजायी, अलङ्कृत पादुकाओं के बनाने बनवाने में ही लगे हुए थे। वे उस समय तृण की भी, बब्बज घास की भी, हिन्ताल (खजूर) के पत्तों की भी खड़ाऊँ बनवाते थे, कमल एवं कम्बल से बनी पादुकाएँ भी धारण करते थे।

रिञ्चन्ति उद्देसं परिपुच्छं अधिसीलं अधिसीलं अधिचित्तं अधिपञ्ञं। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा....पे०.....ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम भद्दिया भिक्खू अनेकविहितं पादुकमण्डनानुयोगमनुयुत्ता विहरिस्सन्ति, तिणपादुकं करिस्सन्ति पि कारापेस्सन्ति पि, मुञ्जपादुकं करिस्सन्ति पि कारापेस्सन्ति पि, बब्बजपादुकं करिस्सन्ति पि कारापेस्सन्ति पि, हिन्तालपादुकं करिस्सन्ति पि कारापेस्सन्ति पि, कमलपादुकं करिस्सन्ति पि कारापेस्सन्ति पि, कम्बलपादुकं करिस्सन्ति पि कारापेस्सन्ति पि, रिञ्चिस्सन्ति उद्देसं परिपुच्छं अधिसीलं अधिचित्तं अधिपञ्ञं" ति। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आराचेसुं....पे०....सच्चं किर, भिक्खवे, भद्दिया भिक्खू अनेकविहितं पादुकमण्डनानुयोगमनुयुत्ता विहरन्ति, तिणपादुकं करोन्ति पि कारापेन्ति पि.....पे०....रिञ्चन्ति उद्देसं परिपुच्छं [B.279] अधिसीलं अधिचित्तं अधिपञ्ञं" ति? सच्चं, भगवा ति। विगरहि बुद्धो भगवा....पे०....कथं हि नाम ते, भिक्खवे, मोघपुरिसा अनेकविहितं पादुकमण्डनानुयोगमनुयुत्ता विहरिस्सन्ति, तिणपादुकं करिस्सन्ति पि कारापेस्सन्ति पि....पे०....रिञ्चिस्सन्ति उद्देसं परिपुच्छं अधिसीलं अधिचित्तं अधिपञ्ञं। नेतं, भिक्खवे, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, तिणपादुका धारेतब्बा, न मुञ्जपादुका धारेतब्बा, न बब्बजपादुका धारेतब्बा, न हिन्तालपादुका धारेतब्बा, न कमलपादुका धारेतब्बा, न कम्बलपादुका धारेतब्बा,** [N.210] **न सोवण्णमया पादुका धारेतब्बा, न रूपियमया पादुका धारेतब्बा, न मणिमया पादुका धारेतब्बा, न वेळुरियमया पादुका धारेतब्बा, न फलिकमया पादुका धारेतब्बा, न कंसमया पादुका धारेतब्बा, न काचमया पादुका धारेतब्बा, न तिपुमया पादुका धारेतब्बा, न सीसमया पादुका धारेतब्बा, न तम्बलोहमया पादुका धारेतब्बा। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। न च, भिक्खवे, काचि सङ्कमनिया पादुका धारेतब्बा। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स।**

अनुजानामि, भिक्खवे, तिस्सो पादुका धुवट्ठानिया असङ्कमनियायो—वच्चपादुकं, पस्सावपादुकं, आचमनपादुकं" ति।

१८. अथ खो भगवा भद्दिये यथाभिरन्तं विहरित्वा येन सावत्थि तेन चारिकं

शील, चित्त एवं प्रज्ञा के विषय में सोचना–विचारना, पूछना–जाँचना– सब कुछ भूल बैठे थे। यह सब देखकर वहाँ के शान्त प्रकृतिवाले (अल्पेच्छ) भिक्षु बहुत खिन्न उद्विग्न एवं दुःखी होते थे कि कैसे भद्दियावासी भिक्षु ..पूर्ववत्.....सब कुछ भूल बैठे है। उन्होंने भगवान् से यह सब कथा कही। भगवान् ने पूछा–"सच ही, भिक्षुओ! ये भद्दियावासी भिक्षु.. पूर्ववत्....।" "**भिक्षुओ! तृणपादुकाएँ, मुञ्जपादुकाएँ, बल्बजपादुकाएँ, खर्जूरपत्र की पादुकाएँ, कमल से बनी पादुकाएँ, कम्बल, सुवर्ण, रजत, मणि, वैदूर्य, स्फटिक, कांस्य, काँच, राँगा, सीसा, ताम्र एवं लोह से बनी पादुकाएँ नहीं धारण करनी चाहिये। जो धारण करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष की आपत्ति होगी।**

भिक्षुओ! **अनुमति देता हूँ तीन स्थानों पर खड़ाऊँ पहनने की– १. शौच–स्थान के लिये, २. मूत्रोत्सर्ग के लिये तथा ३. आचमनस्थान के लिये। परन्तु ये तीनों ही खडाऊँ अपने निश्चित स्थान से आगे नहीं ले जानी चाहिये।**

पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन सावत्थि तदवसरि। तत्र सुदं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू अचिरवतिया नदिया गावीनं तरन्तीनं विसाणेसु पि गण्हन्ति, कण्णेसु पि गण्हन्ति, [R.191] गीवाय पि गण्हन्ति, छेप्पाय पि गण्हन्ति, पिट्ठिं पि अभिरुहन्ति, रत्तचित्ता पि अङ्गजातं छुपन्ति, वच्छतरिं पि ओगाहेत्वा मारेन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया गावीनं तरन्तीनं विसाणेसु पि गहेस्सन्ति....पे०....सेय्यथापि गिही कामभोगिनो" ति। अस्सोसुं खो भिक्खू तेसं मनुस्सानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं....पे०....सच्चं किर, भिक्खवे,....पे०....सच्चं भगवा ति....पे०.....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, गावीनं विसाणेसु गहेतब्बं, न कण्णेसु गहेतब्बं, न गीवाय गहेतब्बं, न छेप्पाय गहेतब्बं, न पिट्ठि अभिरुहितब्बा। यो अभिरुहेय्य,** [B.280] **आपत्ति दुक्कटस्स। न च, भिक्खवे, रत्तचित्तेन अङ्गजातं छुपितब्बं। यो छुपेय्य, आपत्ति थुल्लच्चयस्स। न वच्छतरी मारेतब्बा। यो मारेय्य, यथाधम्मो कारेतब्बो**" ति।

८. यानादिपटिक्खेपो

१९. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू यानेन यायन्ति, इत्थियुत्तेन पि पुरिसन्तरेन, पुरिसयुत्तेन पि इत्थन्तरेन। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—सेय्यथापि गङ्गामहियाया ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। न, **भिक्खवे, यानेन यायितब्बं। यो यायेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

---

१८ तब भगवान् भद्दिया मे यथेच्छ साधनाविहार कर श्रावस्ती की तरफ चारिकाहेतु चल पड़े। वे क्रमश· चारिका करते हुए श्रावस्ती पहुँचे। वहाँ भगवान् अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जैत्रवनस्थ विहार मे साधनाहेतु विराजे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अचिरवती नदी में तैरती हुई गायों के सींग भी पकड लेते थे, कान भी....और ग्रीवा भी .तथा पूँछ भी पकड लेते थे, कान भी.....और ग्रीवा भी ..तथा पूँछ भी पकड लेते थे। उनकी पीठ पर भी चढ जाते थे। रागयुक्त चित्त से उनकी योनि भी छूते थे, वछियो को डुबा कर मार डालते थे। यह देखने वाले लोग बहुत खिन्न उद्विग्न एव दु:खी होते थे कि कैसे ये शाक्यपुत्रीय श्रमण तैरती गायो के सीग. पूर्ववत्...मार डालते हैं कि जैसे कि साधारण गृहस्थ जन। यह बात भिक्षुओ ने सुनी। **भिक्षुओं ने भगवान् से कही.....सचमुच भिक्षुओ!.....भिक्षुओं को आदेश दिया—"भिक्षुओ! गायों को सींग से नहीं पकड़ना चाहिये, न उनको कान ग्रीवा या पूँछ से पकडना चाहिये। न उनकी पीठ पर चढना चाहिये, कामुक होकर उनकी योनि का स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। जो ऐसा करेगा उसे 'स्थूलात्यय' दोष लगेगा। बछड़ी (गौ की वच्छी) नहीं मारनी चाहिये। जो मारे उसे धर्मानुसार दण्ड देना चाहिये।"**

८. यानारोहण आदि का निषेध

यानारोहण का निषेध— १९ उस समय षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे यान पर यात्रा करने में नहीं सकुचाते थे जिस पर परपुरुषयुक्त स्त्री यात्रा कर रही हो या परस्त्रीयुक्त कोई पुरुष। साधारण मनुष्य भी यह देखकर उद्विग्न होते थे . भगवान् से यह बात कही गयी। भगवान् ने आदेश दिया—"**भिक्षुओ! किसी भी यान (गाडी) से यात्रा नहीं करनी चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।"**

तेन खो पन सययेन अञ्ञतरो भिक्खु कोसलेसु जनपदे सावत्थिं गच्छन्तो भगवन्तं दस्सनाय अन्तरामग्गे गिलानो होति। अथ खो सो भिक्खु मग्गा ओक्कम्म अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसीदि। मनुस्सा तं भिक्खुं दिस्वा एतदवोचुं—"कहं, भन्ते, अय्यो गमिस्सती" ति? "सावत्थिं खो अहं, आवुसो, गमिस्सामि भगवन्तं दस्सनाया" ति। "एहि, भन्ते, गमिस्सामा" ति। "नाहं, आवुसो, सक्कोमि, गिलानोम्ही" ति। "एहि, भन्ते, यानं अभिरुहा" [N.211] ति। 'अलं, आवुसा, पटिक्खित्तं भगवता यानं' नाभिरुहि। अथ खो सो भिक्खू सावत्थिं गन्त्वा भिक्खूनं एतमत्थं आरोचेसि। भिक्खू भगवतो एतमत्थं आराचेसुं। [R.192] **अनुजानामि, भिक्खवे, गिलानस्स यानं** ति।

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"इत्थियुत्तं नु खो? परिसयुत्तं नु खो" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, पुरिसयुत्तं हत्थवट्टकं** ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो यानग्घातेन बाळ्हतरं अफासु अहोसि। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, सिविकं पाटङ्किं**" ति।

९. उच्चासयनमहासयनपटिक्खेपो

२०. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू उच्चासयनमहासयनानि धारेन्ति, सेय्यथिदं—आसन्दिं, पल्लङ्कं, गोनकं, चित्तकं, पटिकं, पटलिकं, तूलिकं, विकतिकं, उद्धलोमिं, एकन्तलोमिं, कट्टिस्सं, कोसेय्यं, कुत्तकं, हत्थत्थरं, अस्सत्थरं, रथत्थरं,

---

रोगी को यान के उपयोग की अनुमति— उस समय कोई भिक्षु कोसल देश में भगवान् के दर्शनहेतु श्रावस्ती जाते समय मार्ग में रोगाक्रान्त हो गया। अतः वह मार्ग से हटकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। लोगों ने उसको देख कर पूछा—"भन्ते! आर्य कहाँ जॉयगें?" (उसने कहा—) "आयुष्मानों मैं भगवान् के दर्शनहेतु श्रावस्ती जाऊँगा।" "तो आइये, भन्ते! साथ चलें।" नहीं, आयुष्मन्! मैं नहीं चल सकता; क्योंकि मैं रोगी हूँ।" "तो भन्ते! यान पर बैठ लें।" "नहीं, आयुष्मन्! यान का उपयोग तो भिक्षु के लिये भगवान् ने निषिद्ध कर रखा है।" यों सङ्कोच करता हुआ वह उस यान पर नहीं चढ़ा। तब उस भिक्षु ने किसी तरह स्वस्थ होने के बाद भिक्षुओं से जाकर, यह बात कही। भिक्षुओं ने भगवान् के सम्मुख यह समस्या रखी। (भगवान् ने आदेश दिया—) "**भिक्षुओ! रोगी भिक्षु को यान से यात्रा करने की अनुमति देता हूँ।**"

तब भिक्षुओ को यह विचार हुआ कि भगवान् ने यह किस यान से यात्रा करने की अनुमति दी है—पुरुष से चलाये जाते हुए यान की, या स्त्री द्वारा चलाये जाते यान की? भगवान् से पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया—"**पुरुष से चलाये जाते यान (हत्थवट्टक) की अनुमति देता हूँ।**"

कुछ अन्य अनुमत यान— उस समय किसी रोगी भिक्षु को यान से यात्रा करते समय यान के अधिक हिलने डुलने से अधिक पीड़ा हुई। भगवान् से कहे जाने पर उन्होंने कहा—"**अनुमति देता हूँ शिविका (डोली) या पालकी की।**"

९. उच्चासन तथा महाशयन का निषेध

२०. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु उच्चासन तथा महाशयनों का बहुलता से उपयोग करने लगे थे; जैसे—आसन्दी (कुर्सी), पर्यङ्क (पलङ्ग), गोनक (गलीचा), चित्रक, पटिक (किनारीदार विछाने का कम्बल), पटलिक, (ऊन का गलीचा), तूलिक (रूई का गद्दा), विकतिक (रंग-विरङ्गे) आसन,

अजिनप्पवेणिं कदलिमिगपवरपच्चत्थरणं, सउत्तरच्छन्दं, उभतोलोहितकूपधानं ति। [B.281] मनुस्सा विहारचारिकं आहिण्डन्ता पस्सित्वा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति...सेय्यथापि गिही कामभोगिनो ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, उच्चासयनमहासयनानि धारेतब्बानि, सेय्यथीदं—आसन्दि, पल्लङ्को, गोनको, चित्तको, पटिका, पटलिका, तूलिका, विकतिका, उद्धलोमि, एकन्तलोमि, कट्टिस्सं, कोसेय्यं, कुत्तकं, हत्थत्थरं, अस्सत्थरं, रथत्थरं, अजिनप्पवेणि, कदलिमिगपवरपच्चत्थरणं, सउत्तरच्छदं, उभतोलोहितकूपधानं। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

१०. सब्बचम्मपटिक्खेपो

२१. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू—'भगवता उच्चासयनमहासयनानि पटिक्खित्तानी' ति—महाचम्मानि धारेन्ति, सीहचम्मं ब्यग्घचम्मं दीपिचम्मं। तानि मञ्चप्पमाणेन पि छिन्नानि होन्ति, पीठप्पमाणेन पि छिन्नानि होन्ति, अन्तो पि मञ्चे पञ्ञत्तानि होन्ति, बहि पि मञ्चे पञ्ञत्तानि होन्ति, अन्तो पि पीठे पञ्ञत्तानि होन्ति, बहि पि पीठे पञ्ञत्तानि होन्ति। मनुस्सा विहारचारिकं आहिण्डन्ता पस्सित्वा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति... सेय्यथापि गिही कामभोगिनो ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, महाचम्मानि धारेतब्बानि, सीहचम्मं ब्यग्घचम्मं दीपिचम्मं। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू—'भगवता महाचम्मानि पटिक्खित्तानी' ति— गोचम्मानि धारेन्ति। तानि मञ्चप्पमाणेन पि छिन्नानि होन्ति, पीठप्पमाणेन पि छिन्नानि

ऊर्ध्वलोमी (ऊँचे रोंये वाले गलीचे) एकान्तलोमी (एकतरफा उठे रोंए वाले गलीचे), कट्टिस्स, कौषेय (रेशमी वस्त्र), कुत्तक (ऊनी दरी), हाथी–घोड़े तथा रथ का आस्तरण (झूल), रथ का झूल, मृग–छाला, समूरी मृग की छाल का सुन्दर बिछौना, ऊपर की चादर, सिरहाने या पैरों की तरफ लाल तकियों का प्रयोग करते थे। विहार में घूमते समय लोग देखकर उद्विग्न होते थे कि कैसे ये शाक्यपुत्रीय श्रमण......लाल तकियों का प्रयोग करते हैं; जैसे कामभोगी गृहस्थ। (भगवान् से यह बात कही गयी)। (भगवान् ने कहा) "**भिक्षुओ! किसी भिक्षु को उच्च आसन तथा महाशयन का उपयोग नहीं करना चाहिये, जैसे–आसन्दी.....दोनों तरफ लाल तकिये धारण नहीं करना चाहिये। जो धारण करे उसको 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**"

१०. सभी प्रकार के चर्म के प्रयोग का निषेध

२१. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु–"भगवान् ने उच्च आसन तथा महाशयन का निषेध किया है"–यह सोचकर महाचर्मों का उपयोग करने लगे, जैसे–सिंह, व्याघ्र एवं द्वीपियों का चर्म। वे चर्म इतने लम्बे–चौड़े होते थे कि सम्पूर्ण मञ्च या समग्र पीठ ढक जाता था। मञ्च और पीठ के अन्तर्भाग एवं बहिर्भाग में ये बिछाये जाते थे। विहार में घूमते समय दूसरे भिक्षु यह देख कर उद्विग्न होते थे कि ये षड्वर्गीय कैसे इन महाचर्मों का उपयोग करते हैं, जैसे गृहस्थ जन। भगवान् से यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने आदेश दिया–) "**भिक्षुओ! महाचर्मों का उपयोग भिक्षुओं को नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**"

गोचर्म के उपयोग का निषेध– उस समय षड्वर्गीय भिक्षु–"भगवान् ने महाचर्मों के प्रयोग का निषेध किया है"–यह सोचकर गोचर्म का उपयोग करने लगे। ये गोचर्म भी इतने विस्तृत होते थे

होन्ति, अन्तो पि मञ्चे पञ्ञत्तानि होन्ति, बहि पि मञ्चे पञ्ञत्तानि होन्ति, अन्तो पि पीठे पञ्ञत्तानि होन्ति, बहि पि पीठे पञ्ञत्तानि होन्ति।

अञ्ञतरो पि पापभिक्खु अञ्ञतरस्स पापुपासकस्स कुलूपको होति। अथ खो सो पापभिक्खु पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन तस्स पापुपासकस्स निवेसनं [N.212] तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो सा पापुपासको [R.193] येन सो पापभिक्खु तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा तं पापभिक्खुं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। तेन खो पन समयेन तस्स पापुपासकस्स वच्छको होति तरुणको अभिरूपो [B.282] दस्सनीयो पासादिको चित्रो, सेय्यथापि दीपिच्छापो। अथ खो सो पापभिक्खु तं वच्छकं सक्कच्चं उपनिज्झायति। अथ खो सो पापुपासको तं पापभिक्खुं एतदवोच—"किस्स, भन्ते, अय्यो इमं वच्छकं सक्कच्चं उपनिज्झायती" ति? "अत्थो मे, आवुसो, इमस्स वच्छकस्स चम्मेना" ति। अथ खो सो पापुपासको तं वच्छकं वधित्वा चम्मं विधुनित्वा तस्स पापभिक्खुनो पादासि। अथ खो सो पापभिक्खु तं चम्मं सङ्घाटिया पटिच्छादेत्वा अगमासि। अथ खो सा गावी वच्छगिद्धिनी तं पापभिक्खुं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धि। भिक्खू एवमाहंसु—आवुसो, गावी पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबद्धा ति? "अहं पि खो, आवुसो, न जानामि केन म्यायं गावी पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबद्धा" ति। तेन खो पन समयेन तस्स पापभिक्खुनो सङ्घाटि लोहितेन मक्खिता होति। भिक्खू एवमाहंसु—"अयं पन ते, आवुसो, सङ्घाटि किं कता" ति? अथ खो सो पापभिक्खु भिक्खूनं एतमत्थं आरोचेसि। "किं पन

कि उन्हें मञ्च के प्रमाण का भी, पीठ (चौकी) के प्रमाण का भी काट पर बिछाया जा सकता था।.....पीठ (आसन) के बाहर तक भी बिछाया जा सकता था।

उस समय एक पापी (दुराचारी) भिक्षु एक अपने ही समान पापी उपासक के घर आने-जाने लगा था। किसी दिन वह दुराचारी भिक्षु पूर्वाह्न काल में वस्त्र पहनकर, पात्र-चीवर लेकर, अपने उस दुराचारी उपासक के घर पहुँचा। वहाँ जाकर वह बिछे आसन पर बैठ गया। तब वह दुराचारी उपासक दुराचारी भिक्षु के पास गया और उसे अभिवादन कर एक तरफ बैठ गया। उस समय उस दुराचारी उपासक के पास एक तरुण, सुन्दर, दर्शनीय, चित्ताह्लादक, चीते की तरह चितकबरा बछड़ा था। तब वह पापी भिक्षु उस बछड़े को अत्यधिक स्पृहा के साथ देखने लगा। तो उस पापी उपासक ने उस भिक्षु से पूछा—"भन्ते! आर्य मेरे बछड़े को इतनी स्पृहा (चाह) से क्यों देख रहे हैं?" "आयुष्मन्! मुझे इस बछड़े के चर्म का उपयोग करना है।" तब उस पापी उपासक ने उस बछडे को मार कर उस का चर्म उधेडकर उस पापी भिक्षु को दे दिया। तब वह पापी भिक्षु उस चर्म को सङ्घाटी से ढककर लेकर चल दिया। तब उस बछड़े पर स्नेह रखने वाली माता गौ ने उस पापी भिक्षु का पीछा किया। (यह देखकर) भिक्षुओं ने पूछा—"आयुष्मन्! यह गौ तुम्हारा पीछा क्यों कर रही है?" "आयुष्मानो! मैं नहीं जानता कि यह मेरा पीछा क्यो कर रही है।" उस समय उस पापी भिक्षु की सङ्घाटी रक्त से आप्लावित हो चली थी। (उसे देखकर) भिक्षुओ ने पूछा—"किन्तु, आयुष्मन्! तुम्हारी सङ्घाटी का यह रक्त वर्ण कैसा है?" तब उस पापी ने भयाक्रान्त होकर समग्र घटना सुना दी। सुनकर भिक्षुओं ने पूछा—"आयुष्मन्! क्या तुमने प्राणिहिंसा की प्रेरणा दी?" "हाँ, आयुष्मन्!" तब वहाँ जो शान्तचित्त श्रोता भिक्षु थे वे उद्विग्न.....हुए—"कैसे कोई भिक्षु प्राणिहिंसा की प्रेरणा करता है? भगवान् ने अनेक तरह प्राणिहिंसा की निन्दा की है, तथा प्राणिहिंसात्याग की प्रशंसा।" तब उन भिक्षुओं ने यह

त्वं, आवुसो, पाणातिपाते समादपेसी'' ति ? ''एवमावुसो'' ति। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम भिक्खु पाणातिपाते समादपेस्सति, ननु भगवता अनेकपरियायेन पाणातिपातो गरहितो, पाणातिपाता वेरमणी पसत्था'' ति। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे भिक्खुसङ्घं सन्निपातापेत्वा तं पापभिक्खुं पटिपुच्छि—''सच्चं किर त्वं, भिक्खु, पाणातिपाते समादपेसी'' ति ? ''सच्चं भगवा'' ति....पे०....''कथं हि नाम त्वं, मोघपुरिस, पाणातिपाते समादपेस्ससि, ननु मया, मोघपुरिस, अनेकपरियायेन पाणातिपातो गरहितो, पाणातिपाता वेरमणी पसत्था। नेतं, मोघपुरिस, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०.....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**न, भिक्खवे, पाणातिपाते समादपेतब्बं। यो समादपेय्य, यथाधम्मो कारेतब्बो। न, भिक्खवे, गोचम्मं धारेतब्बं। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। न च, भिक्खवे, किञ्चि चम्मं धारेतब्बं। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**'' ति।

११. गिहिविकतानुञ्ञातादि

२२. तेन खो पन समयेन मनुस्सानं मञ्चं पि पीठं पि चम्मोनद्धानि [B.283, R.194] होन्ति, चम्मविनद्धानि। भिक्खू कुक्कुच्चायन्ता नाभिनिसीदन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**अनुजानामि, भिक्खवे, गिहिविकतं अभिनिसीदितुं, न त्वेव अभिनिपज्जितुं**'' ति।

तेन खो पन समयेन विहारा चम्मबन्धेहि ओगुम्फियन्ति। भिक्खू कुक्कुच्चायन्ता नाभिनिसीदन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, बन्धनमत्तं** [N.213] **अभिनिसीदितुं** ति।

घटना भगवान् से कही। तब भगवान् ने इस सन्दर्भ में, इस प्रकरण में भिक्षुसङ्घ को एकत्र कराकर, उस पापी भिक्षु से पूछा—''क्या रे पापिन्! तूने सत्य ही प्राणिहिंसा के लिये प्रेरणा की?'' हाँ, भगवन्!'' तब भगवान् ने उस पापी भिक्षु का फटकारा—''रे मोघ पुरुष! कैसे तूने इस प्राणिहिंसा की प्रेरणा की? मैंने तो अनेक अवसरों पर प्राणिहिंसा की निन्दा तथा प्राणिहिंसात्याग की प्रशंसा ही की है। उस पर तूँ ने ध्यान नहीं दिया? मोघपुरुष! न यह अप्रसन्नों को प्रसन्न करने के लिये है.....पूर्ववत्.....। यों उस भिक्षु को फटकार कर प्रासङ्गिक धार्मिक कथा कहते हुए भिक्षुओं को सम्बोधित किया—''**भिक्षुओ! प्राणिहिंसा की प्रेरणा नहीं करनी चाहिये। भिक्षुओ! गौ का चर्म उपयोग में नहीं लाना चाहिये। जो उपयोग करे उसे 'दुष्कृत' दोष हो। भिक्षुओ! किसी भी चर्म का उपयोग नहीं करना चाहिये। जो उपयोग करे उसे 'दुष्कृत' दोष हो।**''

११. चर्मावृत शय्या आदि पर बैठा जा सकता है

२२. उस समय लोगों के घरों में काम में आने वाली चारपाइयाँ, चौकियाँ चमड़े से मँढ़ी होती थीं या चमडे से बँधी होती थीं। भिक्षु भगवान् की अनुमति न होने के कारण सङ्कोच करते हुए उन पर नहीं बैठते थे। भगवान् से इस विषय में पूछा गया। भगवान् ने कहा—''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गृहस्थों के चर्मावनद्ध विस्तर, चारपायी तथा चौकियों का उपयोग करने की। परन्तु यह बैठने मात्र के लिये अनुमति है, उन पर लेटने या सोने के लिये नहीं।**''

उस समय भिक्षुविहारों में (अस्थायी रूप से लगे तम्बू आदि में) भी चमड़े का कार्य हुआ

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सउपाहना गामं पविसन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति...सेय्यथापि गिही कामभोगिनो ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सउपाहनेन गामो पविसितब्बो। यो पविसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु गिलानो होति, न सक्कोति विना उपाहनेन गामं पविसितुं। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, गिलानेन भिक्खुना सउपाहनेन गामं पविसितुं** ति।

१२. सोणकुटिकण्णवत्थु

२३. तेन खो पन समयेन आयस्मा महाकच्चानो अवन्तीसु विहरति कुररघरे पपाते पब्बते। तेन खो पन समयेन सोणो उपासको कुटिकण्णो आयस्मतो महाकच्चानस्स उपट्ठाको होति। अथ खो सोणो उपासको कुटिकण्णो येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाकच्चानं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सोणो उपासको कुटिकण्णो आयस्मन्तं महाकच्चानं एतदवोच—"यथा यथाहं, भन्ते, अय्येन महाकच्चानेन धम्मं देसितं आजानामि, नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं [B.284] सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं। इच्छामहं, भन्ते, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं। पब्बाजेतु मं, भन्ते, अय्यो महाकच्चानो" ति। "दुक्करं खो, सोण, यावजीवं एकसेय्यं एकभत्तं ब्रह्मचरियं" ति। अथ खो सोणस्स [R.195] उपासकस्स कुटिकण्णस्स यो अहोसि पब्बज्जाभिसङ्खारो सो पटिप्पस्सम्भि।

रहता था। अतः भिक्षु, सङ्कोचवश, उन का उपयोग करने से भी कतराते थे। भगवान् इस विषय में पूछने पर उन्होंने कहा—"**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ऐसे स्थानों पर बन्धनमात्र पर बैठने की।**"

जूता पहन कर ग्राम में जाने का निषेध— उस समय षड्वर्गीय भिक्षु जूता पहनकर ग्राम में गृहस्थों की तरह प्रवेश करते थे। यह बात देखने वालों को अनुचित लगती थी। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! जूते पहनकर ग्राम में प्रवेश नहीं करना चाहिये। जो प्रवेश करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**"

अपवाद— उस समय कोई भिक्षु रोगाक्रान्त था, अतः (औषध आदि के लिये) विना जूते पहने ग्राम में जाने में असमर्थ था। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! रोगाक्रान्त भिक्षु को जूता पहनकर ग्राम में प्रवेश की अनुमति देता हूँ।**"

१२. सोण कुटिकण्ण की प्रव्रज्या—कथा

२३. उस समय आयुष्मान् महाकात्यायन अवन्ति (मालव) प्रदेश में स्थित कुररघर प्रपात पर्वत पर धर्म—साधना कर रहे थे। उस समय उनका सोण कुटिकर्ण उपासक नामक उपस्थायक था। तब कभी वह सोण कुटिकर्ण उपासक आयुष्मान् महाकात्यायन के पास गया। जा कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस सोण.. ने आयुष्मान् महाकात्यायन से यों निवेदन किया— "भन्ते! मैं जैसे जैसे आप आर्य महाकात्यायन द्वारा उपदिष्ट धर्म को सुनता आ रहा हूँ वैसे वैसे मुझको यह दृढ़ निश्चय होता जा रहा है कि इस एकान्ततः परिशुद्ध, परिपूर्ण धर्म का ठीक तरह से पालन गृहस्थ मे रहते हुए सुकर नहीं है। अतः भन्ते! मै केश, दाढी मुँड़वाकर, काषायवस्त्र धारण कर, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ। अतः भन्ते! आर्य आप महाकात्यायन मुझे प्रव्रज्या दीक्षा देने

दुतियं पि खो सोणो उपासको कुटिकण्णो.....पे०...ततियं पि खो सोणो उपासको कुटिकण्णो येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाकच्चानं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सोणो उपासको कुटिकण्णो आयस्मन्तं महाकच्चानं एतदवोच—"यथा यथाहं, भन्ते, अय्येन महाकच्चानेन धम्मं देसितं आजानामि, नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं। इच्छामहं, भन्ते, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितुं। पब्बाजेतु मं, भन्ते, अय्यो महाकच्चानो" ति। अथ खो आयस्मा महाकच्चानो सोणं उपासकं कुटिकण्णं पब्बाजेसि। तेन खो पन समयेन अवन्तिदक्खिणापथो [N.214] अप्पभिक्खुको होति। अथ खो आयस्मा महाकच्चानो तिण्णं वस्सानं अच्चयेन किच्छेन कसिरेन ततो ततो दसवग्गं भिक्खुसङ्घं सन्निपातापेत्वा आयस्मन्तं सोणं उपसम्पादेसि।

१३. महाकच्चानस्स पञ्चवरपरिदस्सना

२४. अथ खो आयस्मतो सोणस्स वस्संवुट्ठस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"सुतो येव खो मे सो भगवा एदिसो च एदिसो चा ति, न च, मया सम्मुखा दिट्ठो, गच्छेय्याहं तं भगवन्तं दस्सनाय अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं, सचे म उपज्झायो अनुजानेय्या" ति। अथ खो आयस्मा सोणो सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाकच्चानं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सोणो आयस्मन्तं महाकच्चानं एतदवोच—"इध मय्हं, भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'सुतो येव खो मे

की अनुकम्पा करें।" (महाकात्यायन बोले–) "सोण! जीवनपर्यन्त एकाकी शयन तथा एककालिक भोजन वाला यह ब्रह्मचर्यव्रत अत्यन्त दुष्कर है। अतः सोण! तूँ तो गृहस्थ रहता हुआ ही बौद्ध धर्म के पालन में मन लगाये रख। और पर्व के दिनों में एक शय्या एवं एवं काल के भोजन–नियम का पालन कर।" यह सुनकर सोण कुटिकर्ण का प्रव्रज्या–दीक्षा लेने का उत्साह ठण्डा पड़ गया। दूसरी बार भी...पूर्ववत्....तीसरी बार भी सोण कुटिकर्ण आयुष्मान् महाकात्यायन के पास गया....दीक्षा देने की अनुकम्पा करें। तब आयुष्मान् महाकात्यायन ने उपासक सोण कुटिकर्ण को प्रव्रज्या (श्रामणेरत्व) दीक्षा दे दी। उस समय अवन्ति दक्षिणापथ में बहुत ही अल्प भिक्षु थे। फिर आयुष्मान् महाकात्यायन तीन वर्ष के सुदीर्घ काल में किसी तरह दस भिक्षुओं का एक छोटा सा सङ्घ बना पाये। तब आयुष्मान् सोण को उन्होंने भिक्षुभाव की उपसम्पदा दी।

१३. महाकात्यायन का भगवान् से पाँच वर माँगना

२४. तब कभी वर्षावास करते हुए एकान्त में ध्यान में बैठे सोण कुटिकर्ण को यह विचार हुआ—"मैंने उन भगवान् के विषय में अभी तक सुना ही सुना है कि ये ऐसे हैं; ये वैसे हैं। यदि मेरे उपाध्याय मुझे आज्ञा दें तो मैं भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के दर्शन कर आऊँ।" तब आयुष्मान् सोण सायङ्काल ध्यानभावना से उठकर, महाकात्यायन के पास जाकर उन्हें अभिवादन कर एक तरफ बैठे। एक तरफ बैठकर उन्होंने आयुष्मान् महाकात्यायन से निवेदन किया—"भन्ते! एकान्त में बैठे ध्यानमग्न रहते मुझे आज यह विचार हुआ....भगवान् के दर्शनहेतु जाऊँ।" "साधु, साधु! सोण! तुमने बहुत ठीक सोचा। तुम उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के दर्शनहेतु जाओ। सोण! तुम उन भगवान् को मनोहर

[B.285] सो भगवा एदिसो च एदिसो चा ति, न च मया सम्मुखा दिट्ठो, गच्छेय्याहं तं भगवन्तं दस्सनाय अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं, सचे मं उपज्झायो अनुजानेय्या' ति; गच्छेय्याहं, भन्ते, तं भगवन्तं दस्सनाय अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं, सचे मं उपज्झायो अनुजानाती'' ति।

''साधु, साधु, सोण। गच्छ त्वं, सोण, तं भगवन्तं दस्सनाय अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं। दक्खिस्सति त्वं, सोण, तं भगवन्तं पासादिकं पसादनीयं सन्तिन्द्रियं सन्तमानसं उत्तमदमथसमथमनुप्पत्तं दन्तं गुत्तं यतिन्द्रियं नागं। तेन हि त्वं, सोण, मम वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्द- उपज्झायो मे, भन्ते, आयस्मा महाकच्चानो भगवतो पादे सिरसा वन्दती ति।

''एवं च वदेहि—१. ''अवन्तिदक्खिणापथो, भन्ते, अप्पभिक्खुको, तिण्णं मे वस्सानं अच्चयेन किच्छेन कसिरेन ततो ततो दसवग्गं भिक्खुसङ्घं सन्निपातापेत्वा उपसम्पदं अलत्थं; अप्पेव नाम भगवा अवन्तिदक्खिणापथे अप्पतरेन गणेन उपसम्पदं अनुजानेय्य। २. अवन्तिदक्खिणापथे, भन्ते, कण्हुत्तरा भूमि खरा गोकण्टकहता; अप्पेव नाम भगवा अवन्ति दक्खिणापथे गणङ्गणुपाहनं अनुजानेय्य। ३. अवन्तिदक्खिणापथे, भन्ते, [R.196] नहानगरुका मनुस्सा उदकसुद्धिका; अप्पेव नाम भगवा अवन्तिदक्खिणापथे धुवनहानं अनुजानेय्य। ४. अवन्तिदक्खिणापथे, भन्ते, चम्मानि अत्थरणानि, एळकचम्मं अजचम्मं मिगचम्मं। सेय्यथापि, भन्ते, मज्झिमेसु जनपदेसु एरगू मोरगू मज्जारू जन्तू; एवमेव खो, भन्ते, अवन्तिदक्खिणापथे चम्मानि अत्थरणानि, एळकचम्मं अजचम्मं मिगचम्मं, अप्पेव नाम भगवा अवन्ति-दक्खिणापथे चम्मानि अत्थरणानि अनुजानेय्य, एळकचम्मं अजचम्मं मिगचम्मं। ५. एतरहि, भन्ते, मनुस्सा निस्सीमगतानं भिक्खूनं चीवरं देन्ति—''इमं चीवरं

शान्त मुद्रा में, शान्तेन्द्रिय, शान्तचित्त, उत्तम समाधिसम्पन्न, दान्त, गुप्त, जितेन्द्रिय एवं दृढ़निश्चयी (=नाग) के रूप में देखोगे। सोण! वहाँ तुम मेरी तरफ से भी उन भगवान् के श्रीचरणों में शिर से प्रणाम करना।

''और कहना—'भन्ते! हमारे अवन्ति दक्षिणापथ में भिक्षु बहुत कम हैं। मैं तीन वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद भी यहाँ-वहाँ से गणना में दश भिक्षु ही एकत्र कर पाया और तब कहीं इस सोण को उपसम्पदा दे पाया। अच्छा हो, भगवान् यदि अवन्ति दक्षिणापथ में प्रव्रज्या-दीक्षा उपसम्पदा के लिये भिक्षुओं की गणसङ्ख्या में कुछ कमी कर दें। (१)

'भन्ते! अवन्तिदक्षिणापथ में भूमि प्रायः काली, कठोर, गोखरू के काँटों से भरी पड़ी है। अच्छा हो, भगवान् यदि अवन्ति दक्षिणापथ में भिक्षुओं को उतरे हुए जूते पहनने की अनुमति दे दें। (२)

'भन्ते! अवन्ति दक्षिणापथ में प्रायः सभी मनुष्य स्नान के प्रेमी तथा जल से शुद्धि मानने वाले हैं। अतः अच्छा हो, भन्ते! यदि भगवान् अवन्ति दक्षिणापथ में प्रतिदिन स्नान (धुवनहान) की अनुमति दे दें। (३)

'भन्ते! अवन्ति दक्षिणापथ में प्रायः सर्वत्र चर्ममय आस्तरण (बिछौनों) का ही प्रयोग होता है, जैसे-भेड़, बकरी या मृग के चर्म। जैसे भन्ते! मध्यप्रदेश में तीखी, मोर की चोंच एवं बिल्ली के नखों की तरह नोकीली घास बहुलता से होती है (और चलने-फिरने वालों को लोगों को विवशता से उसी पर चलना पडता है); इसी तरह, भन्ते! अवन्ति दक्षिणापथ में भेड़-बकरी एवं मृग का चर्म ही बहुलता से उपलब्ध होता है (अतः विवशता से सोने-बैठने के लिये उसी का उपयोग करना पड़ता है),

इत्थन्नामस्स देमा'' ति। ते आगन्त्वा आरोचेन्ति—''इत्थन्नामेहि ते, आवुसो, [N.215] मनुस्सेहि चीवरं दिन्नं'' ति ते कुक्कुच्चायन्ता न सादियन्ति—''मा नो निस्सग्गियं अहोसी'' ति; अप्पेव नाम भगवा चीवरे परियायं आचिक्खेय्या'' ति।

''एवं, भन्ते,'' ति खो आयस्मा सोणो आयस्मतो महाकच्चानस्स पटिस्सुत्वा उट्ठायासना आयस्मन्तं महाकच्चानं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा सेनासनं संसामेत्वा [B.280] पत्तचीवरमादाय येन सावत्थि तेन पक्कामि। अनुपुब्बेन येन सावत्थि जेतवनं अनाथपिण्डिकस्स आरामो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—''इमस्स, आनन्द, आगन्तुकस्स भिक्खुनो सेनासनं पञ्ञापेही'' ति। अथ खो आयस्मा आनन्दो—'यस्स खो मं भगवा आणापेति, इमस्स, आनन्द, आगन्तुकस्स भिक्खुनो सेनासनं पञ्ञापेही' ति, इच्छति भगवा तेन भिक्खुना सद्धिं एकविहारे वत्थुं, इच्छति भगवा आयस्मता सोणेन सद्धिं एकविहारे वत्थुं' ति—यस्मिं विहारे भगवा विहरति तस्मिं विहारे आयस्मतो सोणस्स सेनासनं पञ्ञापेसि।

२५. अथ खो भगवा बहुदेव रत्तिं अज्झोकासे वीतिनामेत्वा विहारं पाविसि। आयस्मा पि खो सोणो बहुदेव रत्तिं अज्झोकासे वीतिनामेत्वा विहारं पाविसि। अथ खो भगवा रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय आयस्मन्तं सोणं अज्झेसि—''पटिभातु तं, भिक्खु, धम्मो भासितुं'' ति। ''एवं, भन्ते'', ति खो आयस्मा सोणो भगवतो पटिस्सुत्वा सब्बानेव अट्ठकवग्गिकानि सरेन अभासि। अथ खो भगवा आयस्मतो सोणस्स सरभञ्ञपरियोसाने

इसलिये, भन्ते! अच्छा होता कि भगवान् भिक्षुओं को भी अज, मेष एवं मृग के चर्म के प्रयोग की अनुमति दे देते। (४)

'भन्ते! इस समय सीमा से बाहर गये भिक्षुओं को उपासक चीवरदान करते हैं कि 'यह चीवर अमुक नाम वाले भिक्षु को दे देना।' वे आकर कहते हैं—'आयुष्मन्! इस नाम वाले उपासक ने आपको यह चीवर दिया है।' परन्तु भिक्षु विधि–निषेध के सन्देह में पड़कर उसका उपयोग नहीं करते कि कहीं उन्हें निस्सग्गिय (छोड़ने का) प्रायश्चित्त न हो जाय। अतः अच्छा हो, भन्ते! कि भगवान् चीवर के विषय में कुछ अधिक स्पष्ट निर्देश कर दें।' (५)

आयुष्मान् सोण आयुष्मान् महाकात्यायन को ''अच्छा, भन्ते'' कहकर आसन से उठकर, प्रणाम–प्रदक्षिणा कर, शयनासन बगल में दबाकर, पात्र–चीवर लेकर, श्रावस्ती की तरफ चल दिये। तब वे क्रमशः चलते हुए श्रावस्ती के जैत्रवनस्थ अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित आराम में, जहाँ कि भगवान् साधनाहेतु विराजमान थे, पहुँचे। पहुँच कर, भगवान् का प्रणाम–प्रदक्षिणा कर एक तरफ बैठ गये। तब भगवान् ने आनन्द को सम्बोधित किया—''आनन्द! इस आगन्तुक भिक्षु का शयनासन लगवा दो।'' तब आनन्द ने सोचा—''भगवान् जिसके लिये भगवान् इस तरह आज्ञा दें—इस आगन्तुक भिक्षु का शयनासन लगवा दो' तब वे चाहते हैं कि उसका शयनासन भगवान् के रहने वाले विहार में ही लगवाना चाहते हैं।'' तब आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् सोण का शयनासन उसी प्रकोष्ठ में लगा दिया जहाँ भगवान् विश्राम करते थे।

२५. भगवान् ने बहुत रात्रि खुले आकास के नीचे ही बिता कर विहार में विश्रामहेतु प्रवेश किया। उधर आयुष्मान् सोण भी रात्रि का बहुत समय खुले मैदान में ही बिता कर (भगवान् के बाद) अपने शयनासन पर गये। तब भगवान् ने रात्रि व्यतीत होने पर बहुत प्रातः ही आसन से उठकर

अब्भनुमोदि—"साधु, साधु, भिक्खु। सुग्गहितानि खो ते, भिक्खु, अट्ठकवग्गिकानि, [R.197] सुमनसिकतानि सूपधारितानि। कल्याणियासि वाचाय समन्नागतो, विस्सट्ठाय, अनेळगलाय, अत्थस्स विञ्ञापनिया। कतिवस्सोसि त्वं, भिक्खू" ति? "एकवस्सोहं, भगवा" ति। किस्स पन त्वं, भिक्खु, एवं चिरं अकासी ति?"चिरं दिट्ठो मे, भन्ते, कामेसु आदीनवो, अपि च सम्बाधा घरावासा बहुकिच्चा बहुकरणीया" ति। अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

"दिस्वा आदीनवं लोके ञत्वा धम्मं निरूपधिं।
अरियो न रमती पापे, पापे न रमती सुची" ति॥

अथ खो आयस्मा सोणो—"पटिसम्मोदति खो मं भगवा, अयं ख्वस्स कालो यं मे उपज्झायो परिदस्सी" ति—उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोच—"उपज्झायो मे, भन्ते, आयस्मा महाकच्चानो भगवतो [N.216, B.287] पादे सिरसा वन्दति, एवं च वदेति—'अवन्तिदक्खिणापथो, भन्ते, अप्पभिक्खुको। तिण्णं मे वस्सानं अच्चयेन किच्छेन कसिरेन ततो ततो दसवग्गं भिक्खुसङ्घं सन्निपातापेत्वा उपसम्पदं अलत्थं, अप्पेव नाम भगवा अवन्तिदक्खिणापथे अप्पतरेन गणेन उपसम्पदं अनुजानेय्य। अवन्तिदक्खिणापथे, भन्ते, कण्हुत्तरा भूमि खरा गोकण्टकहता; अप्पेव नाम भगवा अवन्तिदक्खिणापथे गणङ्गणुपाहनं अनुजानेय्य। अवन्तिदक्खिणापथे, भन्ते, नहानगरुका मनुस्सा उदकसुद्धिका, अप्पेव नाम भगवा अवन्तिदक्खिणापथे, धुवनहानं अनुजानेय्य। अवन्तिदक्खिणापथे, भन्ते, चम्मानि अत्थरणानि, एळकचम्मं अजचम्मं मिगचम्मं। सेय्यथापि, भन्ते, मज्झिमेसु जनपदेसु एरगु मोरगु मज्जारु जन्तु; एवमेव खो, भन्ते, अवन्तिदक्खिणापथे चम्मानि अत्थरणानि, एळकचम्मं अजचम्मं मिगचम्मं; अप्पेव नाम भगवा अवन्तिदक्खिणापथे चम्मानि अत्थरणानि अनुजानेय्य, एळकचम्मं अजचम्मं

आयुष्मान् सोण से पूछा—"भिक्षु! तुम्हें धर्मपाठ करना अच्छा लगता है?" "हाँ, भन्ते" कहते हुए आयुष्मान् सोण ने **सुत्तनिपात** के **पारायणवग्ग** से **अट्ठक वग्ग** की सभी १६ गाथाओं का सस्वर पाठ सुनाया। तब भगवान् आयुष्मान् सोण का वह सस्वर पाठ सुनकर अत्यधिक प्रमुदित हुए और बोले- "बहुत ठीक, भिक्षु! तुमने अट्ठकवग्ग की गाथाएँ बहुत ठीक पढ़ी है एवं मन में ठीक से धारणा की हैं। तुम्हारे कण्ठ का स्वर भी अच्छा है। तुम्हारी वाणी भी सुन्दर स्पष्ट एवं सरल है। भिक्षु! तू अभी कितने वर्ष का है?" "भन्ते! मैं एक वर्ष का हूँ।" "भिक्षु! तुमने प्रव्रज्या लेने में इतना विलम्ब क्यों कर दिया?" "भन्ते! मैं कामभोगों के दोष बहुत देर से समझ पाया। और गृहस्थ में बहुत से उत्तरदायित्व ऐसे बाधामय एवं सङ्कटयुक्त होते हैं जिनसे जल्दी छुटकारा नहीं मिल पाता।" भगवान् ने सोण के मनोभावों को जानकर तत्काल ही यह हृदयोद्गार प्रकट किया—

"लोक के दुष्परिणामों को देख तथा उपाधिरहित धर्म को जानकर आर्यजन पापकर्म में आसक्त नहीं होते। पवित्रात्मा की पाप की तरफ प्रवृत्ति ही नहीं होती।"

तब आयुष्मान् शोण ने यह जानकर कि भगवान् इस समय प्रसन्नमुद्रा में हैं, अतः अपने उपाध्याय का सन्देश भगवान् को सुनाने का यही उचित समय है, आसन से उठकर उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर भगवान् के श्रीचरणों में शिर नवाकर भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! मेरे

मिगचम्मं। एतरहि, भन्ते, मनुस्सा निस्सीमगतानं भिक्खूनं चीवरं देन्ति—'इमं चीवरं इत्थन्नामस्स देमा' ति। ते आगन्त्वा आरोचेन्ति—'इत्थन्नामेहि ते, आवुसो, मनुस्सेहि चीवरं दिन्नं' ति। ते कुक्कुच्चायन्ता न सादियन्ति—'मा नो निस्सग्गियं आहोसी' ति; अप्पेव नाम भगवा चीवरे परियायं आचिक्खेय्या,'' ति।

२६. अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''अवन्तिदक्खिणापथो, भिक्खवे, अप्पभिक्खुको। **अनुजानामि, भिक्खवे, सब्बपच्चन्तिमेसु जनपदेसु विनयधरपञ्चमेन गणेन उपसम्पदं।** तत्रिमे पच्चन्तिमा जनपदा—पुरत्थिमाय दिसाय कजङ्गलं नाम निगमो, तस्स परेन महासाला, ततो परा पच्चन्तिमा जनपदा, ओरतो मज्झे; पुरत्थिमदक्खिणाय दिसाय सल्लवती नाम नदी, ततो परा पच्चन्तिमा जनपदा; ओरतो मज्झे; दक्खिणाय दिसाय सेतकण्णिकं नाम निगमो, ततो परा [B.288] पच्चन्तिमा जनपदा, ओरतो मज्झे; पच्छिमाय दिसाय थूणं नाम ब्राह्मणगामो, ततो परा पच्चन्तिमा जनपदा, ओरतो मज्झे; उत्तराय दिसाय उसीरद्धजो नाम पब्बतो, ततो परा पच्चन्तिमा जनपदा, ओरतो मज्झे। **अनुजानामि, भिक्खवे, एवरूपेसु पच्चन्तिमेसु जनपदेसु विनयधरपञ्चमेन गणेन उपसम्पदं।**

अवन्तिदक्खिणापथे, भिक्खवे, कण्हुत्तरा भूमि खरा गोक[illegible]। **अनुजानामि, भिक्खवे, सब्बपच्चन्तिमेसु जनपदेसु गणङ्गणुपाहनं।**

अवन्तिदक्खिणापथे, भिक्खवे, नहानगरुका मनुस्सा उदकसुद्धिका। **अनुजानामि, भिक्खवे, सब्बपच्चन्तिमेसु जनपदेसु धुवनहानं।**

उपाध्याय आपके श्रीचरणों में प्रणाम करते हैं और यह निवेदन करते हैं—'भन्ते! हमारे अवन्ति दक्षिणापथ में भिक्षु बहुत कम हैं...पूर्ववत्....चीवर के विषय में कुछ अधिक स्पष्ट निर्देश देने की अनुकम्पा करें।' ''

२६. तब भगवान् ने इसी निदान (सन्दर्भ) में, इसी प्रसङ्ग में धार्मिक कथाएँ कहते हुए भिक्षुओं को बताया—''भिक्षुओ! अवन्ति दक्षिणापथ मे भिक्षु बहुत कम है। अतः भिक्षुओ! सभी सीमान्त (प्रत्यन्त) जनपदों मे विनयधर को मिलाकर पाँच भिक्षुओं के गण से उपसम्पदा की अनुमति देता हूँ। यहाँ ये सीमान्त जनपद हैं--पूर्व दिशा में कजङ्गल नामक निगम (कस्वा) है, उसके बाद बहुत विशाल साखूँ (साल) वृक्षों के वन हैं, उसके बाद इधर से बीच मे (ओरतो मज्झे) प्रत्यन्त जनपद हैं। पूर्व दक्षिण दिशा में शल्यवती नामक नदी है उससे परे, इधर से बीच मे सीमान्त जनपद है। दक्षिण दिशा में श्वेतकर्णिक नामक कस्वा है.....। पश्चिम दिशा में स्थूण नामक ब्राह्मणो का ग्राम है.....। उत्तर दिशा में उशीरध्वज नामक पर्वत है उससे परे इधर से बीच में सीमान्त जनपद हैं। **भिक्षुओ! ऐसे सीमान्त जनपदों में विनयधर भिक्षु सहित पाँच भिक्षुओं का गण ही प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा दीक्षाओं के लिये पूरा है।** (१)

भिक्षुओ! अवन्ति दक्षिणापथ में भूमि काली, कर्कश एवं कण्टकावृत है, अतः वैसे **सीमान्त प्रदेशों में दूसरों के उतरे हुए जूते पहनने की अनुमति देता हूँ।** (२)

अवन्ति दक्षिणापथ में जल से स्नेह करने वाले लोग हैं, वे नित्य स्नान के प्रेमी हैं, अत. **अनुमति देता हूँ सभी सीमान्त जनपदों में प्रतिदिन स्नान की** । (३)

[R.198] सेय्यथापि, भिक्खवे, मज्झिमेसु जनपदेसु एरगू मोरगू मज्जारू जन्तु, एवमेव खो, भिक्खवे, अवन्तिदक्खिणापथे चम्मानि अत्थरणानि, एळकचम्मं अजचम्मं मिगचम्मं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सब्बपच्चन्तिमेसु जनपदेसु चम्मानि अत्थरणानि, एळकचम्मं अजचम्मं मिगचम्मं।**

इध पन, भिक्खवे, मनुस्सा निस्सीमगतानं भिक्खूनं चीवरं देन्ति—"इमं चीवरं [N.217] इत्थन्नामस्स देमा" ति। **अनुजानामि, भिक्खवे, सादियितुं, न ताव तं गणनूपगं याव न हत्थं गच्छती"** ति॥

चम्मक्खन्धको पञ्चमो॥

१४. तस्सुद्दानं

राजा च मागधो सोणो असीतिसहस्सिस्सरो।
सागतो गिज्झकूटस्मिं बहुं दस्सेसि उत्तरिं॥ १॥
पब्बज्जारद्ध भिज्जिंसु वीणं एकपलासिकं।
नीला पीता लोहितिका मञ्जिट्ठा कण्हमेव च॥ २॥
महारङ्गमहानामा वद्धिका च पटिक्खिपि।
खल्लका पुटपालि च तूलतित्तिरमेण्डजा॥ ३॥

अवन्ति दक्षिणापथ में भेड़, बकरी एवं मृग के चर्म का सोने बिछोने में बहुलता से उपयोग होता है अतः, **भिक्षुओ! ऐसे जनपदों में सोने ओढ़ने बिछौने के लिये भेड़–बकरी एवं मृग के चर्म के उपयोग की अनुमति देता हूँ।** (४)

और भिक्षुओ! उपासक जन सीमापार गये भिक्षुओं को चीवरदान करते हैं... **उस चीवर–दान को ग्रहण करने की अनुमति देता हूँ। वह चीवर तब तक गणना में न लिया जाय जब तक कि वह हस्तगत न हो जाय।"** (५)

पञ्चम चर्मस्कन्धक समाप्त॥

इस स्कन्धक का उदान

जिस समय भगवान् गृधकूट पर साधनाहेतु विराजमान थे। उसी समय मगध के राजा बिम्बिसार ने अपने अधीन अस्सी हजार ग्रामों के प्रधानों को बुलाया। साथ ही चम्पा नगरी के श्रेष्ठिपुत्र सोण कोटिविंश को भी, उसके पैरों की सुन्दरता एव कोसलता देखने के लिये बुलाया। सोण के सामने ही राजा ने उन ग्रामप्रधानों को राजकार्य का निर्देश दिया और उनको भगवान् के सम्मुख आध्यात्मिक उपदेश के लिये भेजा। वहाँ प्रसङ्गवश भगवान् ने उपट्ठाक आयुष्मान् स्वागत ने उन ग्रामप्रधानों को कुछ अलौकिक चमत्कार दिखाये। जिन्हें देखकर वे प्रधान भगवान् से बहुत प्रभावित हुए॥ १॥

भगवान् ने उनको आध्यात्मिक उपदेश किया। वह उपदेश सुन कर सोण कोटिविंश को प्रबल वैराग्य हुआ और उसने भगवान् से प्रव्रज्या–दीक्षा ले ली। साधना के समय उसका मन धर्म से उद्विग्न होने लगा तो भगवान् ने वीणा का उदाहरण देकर आश्वस्त किया, और अन्त में वह अर्हत् हो गया।

भगवान् ने भिक्षुओं को एक तल्ले के जूते पहनने की अनुमति दी तथा नीले, पीले, लाल, मँजीठ एवं काले रङ्ग के जूते पहनने को निषेध किया॥ २॥

साथ ही, महारङ्ग एवं महानाम रङ्ग मे रङ्गे चर्मबन्धन का भी निषेध किया। थैले की तरह बने

विच्छिका मोरचित्रा च सीहब्यग्घा च दीपिका।
अजिनुद्दा मज्जारी च काळोलूकपरिक्खटा॥ ४॥
फालितुपाहना खीला धोतखाणुखटखटा।
तालवेलुतिणं चेव मुञ्जबब्बजहिन्तला॥ ५॥
कमलकम्बलसोवण्णा पिका मणि वेळुरिया। [B.289]
फलिका कंसकाचा च तिपुसीसं च तम्बका॥ ६॥
गावी यानं गिलानो च पुरिसायुत्तसिविका।
सयनानि महाचम्मा गोचम्मेहि च पापको॥ ७॥
गिहीनं चम्मवद्धेहि पविसन्ति गिलायनो।
महाकच्चायनो सोणो सरेन अट्ठकवग्गिकं॥ ८॥
उपसम्पदं पञ्चहि गणङ्गणा धुवसिनापना।
चम्मत्थरणानुञ्ञासि न ताव गणनूपगं।
अदासि मे वरे पञ्च सोणत्थेरस्स नायको ति॥ ९॥

इमम्हि खन्धके वत्थूनि तेसट्ठि॥

पञ्चमो चम्मक्खन्धको निट्ठितो॥

हुए, आजकल की तरह के भड़कीले–चमकीले, रूई के, तीतर के पङ्खों से, भेड़ के सीङ्गों से बने जूते निषिद्ध किये।। ३।।

बिच्छू की आकृति के, मोर पङ्खों से बने, सिंह, व्याघ्र एवं चीते के चर्म से बने, चूहे बिल्ली के चर्म से बने, काले चर्म से बने, उलूक के चर्म से बने जूतों का भी निषेध किया गया।। ४।।

परन्तु पैरों में बिवाई (खील) फटे होने पर उनकी रक्षा के लिये, साथ ही मञ्च या पीठ पर चढ़ने की स्थिति में या आराम में इधर उधर जाने की स्थिति में जूते पहनने की अनुमति दी गयी। परन्तु काठ की खड़ाऊँ, जिनसे खट–खट शब्द होता हो, ताड़ तथा बाँस के पत्तों से, तृणों से बने, मूँज, या घास से बनी जूतियों का पहनना भी वर्जित किया गया।। ५।।

इसी तरह कमल, कम्बल, सोना, चान्दी, मणि, वैदूर्य, स्फटिक, काँसा, काँच, शीशा, लाख, ताम्र से बने जूते भी पहनने के लिये निषिद्ध माने गये। गौओं (पशुओं) पर नदीस्नान के समय आरोहण यथा यान पर चलना भिक्षुओं के लिये निषिद्ध था; परन्तु रोग के समय पुरुषों द्वारा चलायी जाने वाली गाड़ी या पालकी पर चढ़ना अनुमत था। सोने–बिछाने या बैठने के लिये सिंह, व्याघ्र; चीता एवं गौ के चर्म निषिद्ध थे। इनका प्रयोग 'पाप' कहलाता था।। ६–७।।

गृहस्थों के घर जाने पर वहाँ चर्मासन पर केवल बैठने की अनुमति थी, उनपर सोने, लेटने या आराम करने की अनुमति नहीं थी। ग्राम में, रुग्णावस्था को छोड़कर जूता पहनकर प्रवेश करना भिक्षु के लिये निषिद्ध था। महाकच्चायन स्थविर ने अपने शिष्य सोण के माध्यम से भगवान् से पाँच निवेदन किये। वहाँ सोण ने मधुरस्वर से भगवान् को सुत्तनिपात के अट्ठकवग्ग की गाथाएँ सुनायीं। भगवान् ने अवन्ति दक्षिणापथ में— १. पाँच भिक्षुओं का सङ्घ मानना; २. गृहस्थों द्वारा परित्यक्त जूते पहनना; ३. प्रतिदिन स्नान; ४. सोने, बैठने लेटने के लिये चर्म का उपयोग तथा ५. चीवर स्वीकार करना। इस तरह सोण स्थविर को पाँच वर दिये।। ८–९।।

इस स्कन्ध में तिरसठ प्रकरण हैं।।

पञ्चम चर्मस्कन्धक समाप्त।।

६. भेसज्जक्खन्धकं

१. पञ्चभेसज्जकथा

[N.218, B.290, [R.199] १. तेन समयेन बुद्धो भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन भिक्खूनं सारदिकेन आबाधेन फुट्ठानं यागु पि पीता उग्गच्छति, भत्तं पि भुत्तं उग्गच्छति। ते तेन किसा होन्ति, लूखा, दुब्बण्णा, उप्पण्डुप्पण्डुकजाता, धमनिसन्थतगत्ता। अद्दसा खो भगवा ते भिक्खू किसे लूखे दुब्बण्णे उप्पण्डुप्पण्डुकजाते धमनिसन्थतगत्ते। दिस्वान आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"किं नु खो, आनन्द, एतरहि भिक्खू किसा, लूखा, दुब्बण्णा, उप्पण्डुप्पण्डुकजाता, धमनिसन्थगत्ता" ति ? "एतरहि भन्ते, भिक्खूनं सारदिकेन आबाधेन फुट्ठानं यागु पि पीता उग्गच्छति, भत्तं पि भुत्तं उग्गच्छति। ते तेन किसा होन्ति, लूखा, दुब्बण्णा, उप्पण्डुप्पण्डुकजाता, धमनिसन्थतगत्ता" ति।

अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपासि— "एतरहि खो भिक्खूनं सारदिकेन आबाधेन फुट्ठानं यागु पि पीता उग्गच्छति, भत्तं पि भुत्तं उग्गच्छति। ते तेन किसा होन्ति, लूखा, दुब्बण्णा, उप्पण्डुप्पण्डुकजाता, धमनिसन्थतगत्ता। किं नु खो अहं भिक्खूनं भेसज्जं अनुजानेय्यं, यं भेसज्जञ्चेव अस्स भेसज्जसम्मतञ्च लोकस्स, आहारत्थञ्च फरेय्य, न च ओळारिको आहारो पञ्ञायेय्या" ति ? अथ खो भगवतो एतदहोसि—"इमानि खो पञ्च भेसज्जानि, सेय्यथीदं—सप्पि, नवनीतं, तेलं, मधु, फाणितं;

---

६. भैषज्यस्कन्धक

१. पञ्च भैषज्य कथा

१ उस समय भगवान् श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय बहुत से भिक्षु शरदृतु मे होने वाले रोग (शीतज्वर=मलेरिया बुखार) से आक्रान्त थे, जिससे उनका खाये-पीये दाल-भात की वमन (उल्टी) हो जाती थी। इस कारण वे बहुत ही दुर्बल, रूक्ष, दुर्वर्ण एव पीले-पीले हो गये, यहाँ तक कि उनके शरीर की छोटी-बडी सभी स्नायुएँ भी दूर से ही दिखायी देती थी। भगवान् ने उन भिक्षुओ को दुर्बल, रूक्ष, दुर्वर्ण रूप में देखा। देखकर भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से पूछा-"आनन्द! आजकल ये भिक्षु इतने दुर्बल रूक्ष, दुर्वर्ण . स्नायु दूर से ही क्यो दिखायी देती है?" "भन्ते! ये भिक्षु आजकल शरदृतु में होने वाले ज्वर से पीड़ित हैं, इसीलिये ऐसे दुर्बल, रूक्ष दुर्वर्ण दिखायी देते हैं।"

तब भगवान् को एकान्त मे बैठकर विचार करते समय यह ध्यान में आया-'आज कल भिक्षुओ को यह शारदिक ज्वर सता रहा है ....जिससे ये कृश, रूक्ष, दुर्वर्ण. .हो चले है। तो क्यों न मै इन भिक्षुओ को इसके प्रतीकार हेतु किसी ऐसी ओषधि के सेवन की अनुमति दे दूँ जो इनके लिये ओषधि का भी कार्य करे एवं जो इनके आहार के रूप मे शरीर को स्वस्थ रखने में भी सहायक हो किन्तु जो स्थूल आहार न समझा जाय। तब भगवान् की समझ में आया कि ऐसी ये पाँच ओषधियाँ हैं -घी, मक्खन, तैल, मधु एवं फाणित (गुड)। इन्हे लोग ओषधि भी मानते हैं और ये आहार के रूप

भेसज्जानि चेव भेसज्जसम्मतानि च लोकस्स, आहारत्थञ्च फरन्ति, न च ओळारिको आहारो पञ्ञायति। यन्नूनाहं भिक्खूनं इमानि पञ्च भेसज्जानि अनुजानेय्यं, काले पटिग्गहेत्वा काले परिभुञ्जितुं''ति।

अथ खो भगवा सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''इध मय्हं, भिक्खवे, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—''एतरहि खो भिक्खूनं सारदिकेन आबाधेन फुट्ठानं यागु पि पीता उग्गच्छति, भत्तं पि भुत्तं उग्गच्छति। ते तेन किसा होन्ति, लूखा, दुब्बण्णा, उप्पण्डुप्पण्डुकजाता, धमनिसन्थतगत्ता। किं नु खो अहं भिक्खूनं भेसज्जं अनुजानेय्यं, यं भेसज्जञ्चेव अस्स भेसज्जसम्मतञ्च लोकस्स, आहारत्थञ्च फरेय्य, न च [R.200, B.291] ओळारिको आहारो पञ्ञायेय्या' ति। तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि 'इमानि खो पञ्च भेसज्जानि, सेय्यथीदं— सप्पि, नवनीतं, तेलं, मधु, फाणितं; भेसज्जानि चेव भेसज्जसम्मतानि च लोकस्स, आहारत्थञ्च फरन्ति, न च ओळारिको आहारो पञ्ञायति। यन्नूनाहं भिक्खूनं इमानि पञ्च भेसज्जानि अनुजानेय्यं, काले पटिग्गहेत्वा काले परिभुञ्जितुं' ति। **अनुजानामि, भिक्खवे, तानि पञ्च भेसज्जानि काले पटिग्गहेत्वा काले परिभुञ्जितुं**'' ति।

२. तेन खो पन समयेन भिक्खू तानि पञ्च भेसज्जानि काले पटिग्गहेत्वा [N.219] काले परिभुञ्जन्ति। तेसं यानि पि तानि पाकतिकानि लूखानि भोजनानि तानि पि नच्छादेन्ति, पगेव सेनेसिकानि। ते तेन चेव सारदिकेन आबाधेन फुट्ठा, इमिना च भत्ताच्छादकेन, तदुभयेन भिय्योसोमत्ताय किसा होन्ति, लूखा, दुब्बण्णा, उप्पण्डुप्पण्डुकजाता, धमनिसन्थतगत्ता। अद्दसा खो भगवा ते भिक्खू भिय्योसोमत्ताय किसे लूखे दुब्बण्णे उप्पण्डुप्पण्डुकजाते धमनिसन्थतगत्ते, दिस्वाव आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—''किं नु खो, आनन्द, एतरहि भिक्खू भिय्योसामत्ताय किसा, लूखा, दुब्बण्णा, उप्पण्डुप्पण्डुकजाता, धमनिसन्थगतत्ता'' ति ?''एतरहि, भन्ते, भिक्खू तानि च पञ्च भेसज्जानि काले पटिग्गहेत्वा

में भी उपयोग में आ सकती हैं, फिर भी इन्हें स्थूल आहार नहीं कहा जा सकता। तो क्यों न मै इन भिक्षुओं को इन पाँच ओषधियों का, समय से लेकर समय पर, उपयोग करने की अनुमति दे दूँ।''

तब भगवान् ने सायङ्काल ध्यानभावना से उठकर इसी सम्बन्ध मे इसी प्रकरण की अनेक धार्मिक कथाएँ कहते हुए भिक्षुआ को यों सम्बोधित किया—''भिक्षुओ! आज एकान्त मे ध्यानमग्न बैठे मुझ को यह विचार आया—'इस समय भिक्षु शीतज्वर से आक्रान्त हैं.....क्यों न मैं ऐसे भिक्षुओं को औषध-सेवन की अनुमति दे दूँ।'' **अतः भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, इन पाँच ओषधियों को पूर्वाह्न में लेकर इनका पूर्वाह्न में ही उपयोग करने की।**

२. उस समय वे रोगी भिक्षु उन पाँच ओषधियों को पूर्वाह्न मे लेकर पूर्वाह्न में ही उनका उपयोग कर लेते थे। फिर भी उनको उस समय रूखे-सूखे प्रतिदिन लिये जाने वाले प्राकृतिक भोजन भी स्वादिष्ट नहीं लगते थे, चिकने (स्नेहयुक्त) पदार्थों की तो बात ही क्या! अत. वे उस शारदिक ज्वर से आक्रान्त रहते हुए पहले से भी अधिक दुर्बल, रूक्ष एव दुर्वर्ण.. दिखायी पडने लगे। भगवान् ने जब उनको और भी अधिक दुर्बल, रूक्ष एवं दुर्वर्ण..देखा तो उन्होंने आनन्द से फिर पूछा—''आनन्द! अब तो ये भिक्षु पहले से भी अधिक दुर्बल, रूक्ष एवं दुर्वर्ण दिखायी दे रहे है! क्या बात है?''

काले परिभुञ्जन्ति। तेसं यानि पि तानि पाकतिकानि लूखानि भोजनानि तानि पि नच्छादेन्ति, पगेव सेनेसिकानि। ते तेन चेव सारदिकेन आबाधेन फुट्ठा, इमिना च भत्ताच्छादकेन, तदुभयेन भिय्योसामत्ताय किसा, लूखा, दुब्बण्णा, उप्पण्डुप्पण्डुकजाता, धमनिसन्थतगत्ता'' ति। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि— **''अनुजानामि, भिक्खवे, तानि पञ्च भेसज्जानि पटिग्गहेत्वा काले पि विकाले पि परिभुञ्जितुं''** ति।

३. तेन खो पन समयेन गिलानानं भिक्खूनं वसेहि भेसज्जेहि अत्थो होति। भगवतो [B.292] एतमत्थं आरोचेसुं। **''अनुजानामि, भिक्खवे, वसानि भेसज्जानि—अच्छवसं, मच्छवसं, सुसुकावसं, सूकरवसं, गद्रभवसं—काले पटिग्गहितं काले निप्पक्कं काले संसट्ठं तेलपरिभोगेन परिभुञ्जितुं।**

विकाले चे, भिक्खवे, पटिग्गहितं विकाले निप्पक्कं विकाले संसट्ठं, तं चे परिभुञ्जेय्य, आपत्ति तिण्णं दुक्कटानं। काले चे, भिक्खवे, पटिग्गहितं विकाले निप्पक्कं विकाले संसट्ठं, तं चे परिभुञ्जेय्य, आपत्ति द्विन्नं दुक्कटानं। काले चे, भिक्खवे, पटिग्गहितं काले निप्पक्कं विकाले संसट्ठं, तं चे परिभुञ्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। काले चे, भिक्खवे, पटिग्गहितं काले निप्पक्कं काले संसट्ठं, तं चे परिभुञ्जेय्य, अनापत्ती'' ति।

२. मूलादिभेसज्जकथा

४. तेन खो पन समयेन गिलानानं भिक्खूनं मूलेहि भेसज्जेहि अत्थो होति। भगवतो

(आनन्द ने बताया—) ''भन्ते! इस समय ये भिक्षु आप की बतायी पाँचों ओषधियाँ समय से लेकर समय पर ही उनका उपयोग कर लेते हैं; परन्तु उनसे तो ये पूर्वापेक्षया और अधिक रोगाक्रान्त हो गये हैं तथा खाये पीये का भी वमन हो जाता है जिससे ये पहले से भी अधिक दुर्बल, रूक्ष एवं दुर्वर्ण....दिखायी देते हैं। तब भगवान् ने इस सन्दर्भ में, धार्मिक कथाएँ कहते हुए, भिक्षुओं से कहा— **''अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! इन पाँचों ओषधियों का समय (पूर्वाह्न) पर भी और असमय (=विकाल, जब रोग का आक्रमण हो तब भी) उपयोग करने की।''**

वसामिश्रित ओषधि— ३. किसी समय कुछ विशेष प्रकार से रोगग्रस्त भिक्षुओं को वसा (चर्बी) युक्त ओषधि की आवश्यकता हुई। भगवान् से इस विषय में निवेदन किया गया। (भगवान् ने कहा—) **''भिक्षुओ! भिक्षुओं को वसामिश्रित ओषधियों के सेवन की अनुमति देता हूँ; जिनमें रींछ, मछली, सुसुका (सोंस—बड़ी मछली), सूअर, गधे की वसा (चर्बी) मिली हुई हो। परन्तु इन्हें समय से लेकर, समय से ही विना पकाये, समय से ही मिलाकर तैल के साथ सेवन करना चाहिये।**

भिक्षुओ! यदि ये ही ओषधियाँ असमय (विकाल) में ली जाँय, समय से पकायी भी न जाँय और असमय मे मिलायी जाँय, उन्हे खाया जाय तो खाने वाले को त्रिविध 'दुष्कृत' दोष लगेंगे। भिक्षुओ! यदि वे ही ओषधियाँ समय से लेकर भी असमय में विना पकाये ही मिलायी जाँय और उनको खाया जाय तो खाने वाले को द्विविध दुष्कृत दोष लगेंगे। और यदि, भिक्षुओ! ये ही ओषधियाँ समय से ले जाकर, समय से विना पकाये असमय मे मिला कर जो खायगा उसे एक प्रकार का 'दुष्कृत' दोष लगेगा। हाँ, यदि भिक्षुओ! ये ही ओषधियाँ समय से लेकर समय से विना पकाये समय से मिलाकर खायी जाँय तो खाने वाले को कोई दोष न लगेगा।''

एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, मूलानि—हलिद्दिं, सिङ्गिवेरं, वचं, वचत्थं, अतिविसं, कटुकरोहिणिं, उसीरं, भद्दमुत्तकं, यानि वा पनञ्ञानि पि** [R.201] **अत्थि मूलानि भेसज्जानि, नेव खादनीये खादनीयत्थं फरन्ति, न भोजनीये भोजनीयत्थं फरन्ति, तानि—पटिग्गहेत्वा यावजीवं परिहरितुं; सति पच्चये परिभुञ्जितुं। असति पच्चये परिभुञ्जन्तस्स आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

तेन खो पन समयेन गिलानानं भिक्खूनं मूलेहि भेसज्जेहि पिट्ठेहि अत्थो [N.290] होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, निसदं निसदपोतकं**" ति।

तेन खो पन समयेन गिलानानं भिक्खूनं कसावेहि भेसज्जेहि अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, कसावानि भेसज्जानि —निम्बकसावं, कुटजकसावं, पटोलकसावं, पग्गवकसावं, नत्तमालकसावं, यानि वा पनञ्ञानि पि अत्थि कसावभेसज्जानि नेव खादनीये खादनीयत्थं फरन्ति, न भोजनीये भोजनीयत्थं फरन्ति, तानि पटिग्गहेत्वा यावजीवं परिहरितुं; सति पच्चये परिभुञ्जितुं। असति पच्चये परिभुञ्जन्तस्स आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

तेन खो पन समयेन गिलानानं भिक्खूनं पण्णेहि भेसज्जेहि अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, पण्णानि भेसज्जानि—निम्बपण्णं,** [B.293]

---

२. मूल (जड़) आदि की ओषधियाँ

४. उस समय कुछ रोगी भिक्षुओं को मूल (जड़) वाली ओषधियों की आवश्यकता पड़ी। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा–) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ मूल (जड़) वाली ओषधियों के सेवन की। जैसे–हलदी, अदरख, वच, वचत्थ (१) अतीस, चिरायता (या कुटकी), खस, नागरमोथा या ऐसी ही अन्य मूल–ओषधियाँ, जो कि न खाद्य हैं, न नित्य खाने के काम में आती हैं न नित्य के भोजन के उपयोग में ही लायी जा सकती हैं। उन्हें लेकर जीवनपर्यन्त साथ रखने की अनुमति देता हूँ कि ये रोग होने पर काम आ सकें। इन्हें रोग होने पर ही खाना चाहिये, स्वस्थ अवस्था में नहीं। अन्यथा खाने वाले को 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**

ओषधियाँ पीसने के लिये चक्की या खरल की अनुमति– उस समय रोगी भिक्षुओं को पिसी हुई ओषधियो की आवश्यकता पड़ती थीं। भगवान् से निवेदन किया गया। (भगवान् की यों अनुमति मिली) "**अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! ओषधि पीसने के लिये बड़ी या छोटी चक्की (बड़ी या छोटी खरल) की।**

क्वाथ बनी ओषधियों की अनुमति– उस समय रोगी भिक्षुओं को ओषधियों के क्वाथ की आवश्यकता होती थी। भगवान् से पूछा गया। (भगवान् ने कहा–) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ क्वाथ बनाकर ओषधि–सेवन की। जैसे–नीम, कुटज (कुड़े की छाल) पटोलपत्र, पग्गव (?), नक्तमाल और ऐसी ही ओषधियाँ जो न खाद्य हैं, न प्रतिदिन खाने के कार्य में आ सकती हैं, न वे भोज्य ही हैं इन्हें जीवन भर साथ रखने की। ताकि आवश्यकता पड़ने पर इनका उपयोग किया जा सके। परन्तु आवश्यकता न होने पर भी इनका प्रयोग करने वाले को 'दुष्कृत' दोष का भागी होना पड़ेगा।**

पत्र–ओषधियों की अनुमति– उस समय कुछ रोगी भिक्षुओ को ऐसी ओषधियों की आवश्यकता पड़ने लगी, जिनके पत्र ही उपयोग में आते थे.. **अनुमति देता हूँ भिक्षुओ ऐसी ओषधि–**

कुटजपण्णं, पटोलपण्णं, तुलसिपण्णं, कप्पासपण्णं, यानि वा पनञ्ञानि पि अत्थि पण्णानि भेसज्जानि, नेव खादनीये खादनीयत्थं फरन्ति, न भोजनीये भोजनीयत्थं फरन्ति....पे०..... ।

तेन खो पन समयेन गिलानानं भिक्खूनं फलेहि भेसज्जेहि अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, फलानि भेसज्जानि—विलङ्गं, पिप्पलं, मरिचं. हरीतकं, बिभीतकं, आमलकं, गोट्ठफलं, यानि वा पनञ्ञानि पि अत्थि फलानि भेसज्जानि, नेव खादनीये खादनीयत्थं फरन्ति, न भोजनीये भोजनीयत्थं फरन्ति**....पे०..... ।

तेन खो पन समयेन गिलानानं भिक्खूनं जतूहि भेसज्जेहि अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, जतूनि भेसज्जानि—हिङ्गु, हिङ्गुजतु, हिङ्गुसिपाटिकं, तकं, तकपत्तिं, तकपण्णिं, सज्जुलसं, यानि वा पनञ्ञानि पि अत्थि** [R.202] **जतूनि भेसज्जानि, नेव खादीये खादनीयत्थं फरन्ति**.....पे०..... ।

तेन खो पन समयेन गिलानानं भिक्खूनं लोणेहि भेसज्जेहि अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, लोणानि भेसज्जानि—सामुद्दं, काळलोणं,सिन्धवं, उब्भिदं, बिलं, यानि वा पनञ्ञानि पि अत्थि लोणानि भेसज्जानि, नेव खादनीये खादनीयत्थं फरन्ति, न भोजनीये भोजनीयत्थं फरन्ति, तानि पटिग्गहेत्वा यावजीवं परिहरितुं; सति पच्चये परिभुञ्जितुं। असति पच्चये परिभुञ्जन्तस्स आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

५. तेन खो पन समयेन आयस्मतो आनन्दस्स उपज्झायस्स आयस्मतो बेलट्ठसीसस्स थुल्लकच्छाबाधो होति। तस्स लसिकाय चीवरानि काये लग्गन्ति, तानि भिक्खू उदकेन तेमेत्वा तेमेत्वा अपकड्ढन्ति। अद्दसा खो भगवा सेनासनचारिकं आहिण्डन्तो ते भिक्खू तानि

पत्रों के उपयोग की; जैसे—नीम का पत्ता, कुडे का पत्ता, पटोल का पत्ता, तुलसी का पत्ता, कपास का पत्ता, अथवा ऐसी ही अन्य पत्रोषधियाँ जो पूर्ववत् ..।

फल—ओषधियों की अनुमति— उस समय कुछ रोगी भिक्षुओ को.. पूर्ववत् .. । अनुमति देता हूँ आवश्यकता पडने पर फल—ओषधियों का उपयोग करने की। जैसे—विडंग, पीपल, मरीच, हरें, बहेडा, आमला या गोठफल तथा ऐसी ही अन्य फलौषधियाँ....।

जतु (गोंद) ओषधियों की अनुमति— उस समय कुछ रोगी भिक्षुओं को.. पूर्ववत्..। अनुमति देता हूँ जतुमय (गोंदवाली) ओषधियों की; जैसे—हींग, हींग का सत्त, हींग की गाँठ, त्वक् त्वक्पत्री, त्वक्पर्णी, सर्जु या ऐसी ही अन्य ओषधियाँ पूर्ववत्... ।

क्षार (लवण) युक्त ओषधियों की अनुमति— उस समय कुछ रोगी भिक्षुओ को. पूर्ववत् ..। अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! लवण (नमक=क्षार) या तथा लवणयुक्त ओषधियों के प्रयोग की। जैसे—समुद्री नमक, काला नमक, सैन्धा नमक, खान से निकला, बिड नमक; या ऐसे ही अन्य नमक (क्षार)....'दुष्कृत' दोष लगेगा।

चूर्ण कृत ओषधियो की अनुमति— ५. उस समय आयुष्मान् आनन्द के उपाध्याय आयुष्मान् वेलट्ठसीस को स्थूलकक्ष (दाद) रोग हो गया था। उस दाद के व्रणो से निकले पीब (गन्दे रक्त) से

चीवरानि उदकेन तेमेत्वा तेमेत्वा अपकड्ढन्ते, दिस्वान येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि, [N.221] उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एतदवोच–"किं इमस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो आबाधो" ति? "इमस्स, भन्ते, आयस्मतो थुल्लकच्छाबाधो, लसिकाय चीवरानि काये लग्गन्ति, तानि मयं उदकेन तेमेत्वा तेमेत्वा अपकड्ढामा" ति। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि–"**अनुजानामि, भिक्खवे, यस्स कण्डु वा,** [B.294] **पिळका वा, अस्सावो वा, थुल्लकच्छु वा आबाधो, कायो वा दुग्गन्धो, चुण्णानि भेसज्जानि; अगिलानस्स छकणं मत्तिकं रजननिप्पक्कं। अनुजानामि, भिक्खवे, उदुक्खलं मुसलं**" ति।

तेन खो पन समयेन गिलानानं भिक्खूनं चुण्णेहि भेसज्जेहि चालितेहि अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, चुण्णचालिनिं** ति। सण्हेहि अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, दुस्सचालिनिं** ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो अमनुस्सिकाबाधो होति। तं आचरियुपज्झाया उपट्ठहन्ता नासक्खिंसु अरोगं कातुं। सो सूकरसूनं गन्त्वा आमकमंसं खादि, आमकलोहितं पिवि। तस्स सो अमनुस्सिकाबाधो पटिप्पस्सम्भि। भगवतो [R.203] एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, अमनुस्सिकाबाधे आमकमंसं आमकलोहितं**" ति।

६. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो चक्खुरोगाबाधो होति। तं भिक्खू

उनके चीवर शरीर पर चिपक जाते थे। उनको अन्य भिक्षु जल से गीला करके छुड़ाते थे। भगवान् ने विहार का निरीक्षण करते समय यह सब देखा। देखकर भगवान् उन भिक्षुओं के पास गये। जाकर उनसे पूछा–"भिक्षुओ! इस भिक्षु को क्या रोग है?" (भिक्षु बोले–) "भन्ते! इस आयुष्मान् को स्थूलकक्ष रोग हो गया है। उसके गन्दे रक्त से चीवर शरीर से चिपक जाते हैं। उन्हीं को हम जल से गीला (आर्द्र) करके छुड़ाते हैं।" तब भगवान् ने....कहा–"**भिक्षुओ! मैं ऐसे भिक्षुओं के लिये जो दाद, खुजली, व्रण, रक्तस्राव या स्थूलकक्ष या शरीर से दुर्गन्ध आती हो, ऐसे रोगों से आक्रान्त हों, चूर्ण की गयी ओषधियों के प्रयोग की अनुमति देता हूँ जैसे पशुओं का मल, मिट्टी या हल्दी का चूर्ण। और इनका चूर्ण बनाने के लिये ओखल एवं मूसल की भी अनुमति देता हूँ।**"

चालनी की अनुमति– उस समय.... रोगी भिक्षुओं को उन चूर्ण बनायी ओषधियों को **छानने के लिये चालनी रखने की अनुमति देता हूँ।** (१)

उस चूर्ण के **अधिक सूक्ष्म छानने के लिये वस्त्रोपयोग की** आवश्यकता देखकर भगवान् ने ऐसे वस्त्र के उपयोग की भी अनुमति दे दी। (२)

कच्चा मांस एवं कच्चे रक्त की ओषधि के रूप में प्रयोग की अनुमति– उस समय किसी भिक्षु को प्रेत-बाधा लग गयी। आचार्य एवं उपाध्याय उसकी अत्यधिक सेवा करते हुए भी उसे नीरोग न कर पाये। एक दिन उस रोगी भिक्षु ने सूअर मारने के स्थान पर जाकर सूअर का कच्चा मांस एवं कच्चा रक्त पी डाला। उससे उसकी वह प्रेतबाधा समाप्त हो गयी। भगवान् से यह घटना कही गयी। (भगवान् ने कहा–) "**भिक्षुओ! प्रेतबाधा होने पर कच्चे मांस तथा कच्चे रक्त के उपयोग की अनुमति देता हूँ।**"

अञ्जन की अनुमति– ६. उस समय किसी भिक्षु को नेत्र रोग हो गया। इस कारण दूसरे

परिग्गहेत्वा उच्चारं पि पस्सावं पि निक्खामेन्ति। अद्दसा खो भगवा सेनासनचारिकं आहिण्डन्तो ते भिक्खू तं भिक्खुं परिग्गहेत्वा उच्चारं पि पस्सावं पि निक्खामेन्ते, दिस्वान येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एतदवोच—"किं इमस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो आबाधो" ति? "इमस्स, भन्ते, आयस्मतो चक्खुरोगाबाधो। इमं मयं परिग्गहेत्वा उच्चारं पि पस्सावं पि निक्खामेमा ति। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**अनुजानामि, भिक्खवे, अञ्जनं—काळञ्जनं, रसञ्जनं, सोतञ्जनं, गेरुकं, कपल्लं**" ति।"अञ्जनूपसिनेहि अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, चन्दनं, तगरं, काळानुसारियं, तालीसं, भद्दमुत्तकं** ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू पिट्ठानि अञ्जनानि थालकेसु पि सरावकेसु पि निक्खिपन्ति; तिणचुण्णेहि पि पंसुकेहि पि ओकिरियन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।"**अनुजानामि, भिक्खवे, अञ्जनिं**" ति।

[B.295] तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू उच्चावचा अञ्जनियो धारेन्ति—सोवण्णमयं, रूपियमयं। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति... सेय्यथापि गिही कामभोगिनो ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।"**न, भिक्खवे, उच्चावचा अञ्जनियो धारेतब्बा। यो धारेय्य,** [N.222] **आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, अट्ठिमयं, दन्तमयं, विसाणमयं, नळमयं, वेळुमयं, कट्ठमयं, जतुमयं, फलमयं, लोहमयं, सङ्खनाभिमयं** ति।

तेन खो पन समयेन अञ्जनियो अपारुता होन्ति, तिणचुण्णेहि पि पंसुकेहि पि ओकिरियन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, अपिधानं** ति।

भिक्षुओं को ही उसे पकड़कर शौचादि के लिये ले जाना पड़ता था। विहार का निरीक्षण करते समय भगवान् ने यह सब देखकर भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ! इस भिक्षु को क्या रोग है?" "भन्ते! इसे नेत्र रोग है। अतः हमें ही इसे पकड़ कर शौच आदि के लिये ले जाना पड़ता है।" (भगवान् ने कहा—) "भिक्षुओ! **अनुमति देता हूँ नेत्ररोग में अञ्जन लगाने की; जैसे कि काला अञ्जन, रस अञ्जन, रसोत अञ्जन, गेरू एवं काजल।**

उस समय अञ्जन मे मिलाने के लिये सहायक ओषधियों की आवश्यकता पड़ती थी।.....

"**अनुमति देता हूँ अञ्जन में सहायक ओषधियों के प्रयोग की; जैसे—चन्दन, तगर, कालानुसारी (?), तालीस एवं भद्रमुत्ता।**"

उस समय भिक्षु अञ्जन बनाकर कटोरे में या पुरवे में रख कर छोड़ते थे, जिससे उसमें धूल पड़ जाने से वह अनुपयोगी हो जाता था।.. "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अञ्जन रखने के लिये अञ्जनदानी (सुरमादानी) की।**

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु, भगवान् द्वारा अनुमति दिये जाने पर, सोने चाँदी से बनी सुरमादानी भी रखने लगे। यह देखकर लोग दुःखी होते थे। ये शाक्यपुत्रीय श्रमण भी गृहस्थों की तरह सोने चान्दी से बनी सुरमादानी रखने लगे! '**भिक्षुओ! नाना प्रकार की सुरमादानियों का उपयोग नहीं करना चाहिये। जो ऐसा करेगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा।"भिक्षुओ! हड्डी, दाँत, सींग, नड़ (बेंत), बांस, काष्ठ, लाख, सूखे फल, लोह तथा शङ्ख की नाभि से बनी सुरमादानी का ही प्रयोग करना चाहिये।**"

अपिधानं निपतति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सुत्तकेन बन्धित्वा अञ्जनिया बन्धितुं** ति।

अञ्जनी फलति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सुत्तकेन सिब्बेतुं** ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू अङ्गुलिया अञ्जन्ति, अक्खीनि दुक्खानि होन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, अञ्जनिसलाकं** ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू उच्चावचा अञ्जनिसलाकायो धारेन्ति— सोवण्णमयं रूपियमयं। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति....सेय्यथापि गिही [R.204] कामभोगिनो ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, उच्चावचा अञ्जनिसलाका धारेतब्बा। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, अट्ठिमयं......**पे०..... **सङ्खनाभिमयं** ति।

तेन खो पन समयेन अञ्जनिसलाका भूमियं पतिता फरुसा होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सलाकोधानियं** ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू अञ्जनिं पि अञ्जनिसलाकं पि हत्थेन परिहरन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, अञ्जनित्थविकं** ति।

अंसबन्धको न होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, अंसबन्धकं बन्धनसुत्तकं** ति।

७. तेन खो पन समयेन आयस्मतो पिलिन्दवच्छस्स सीसाभितापो होति। [B.296] भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, मुद्धनि तेलकं** ति।

उस समय सुरमादानियाँ ढक्कन के विना होती थीं।.....**अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! ढक्कनवाली सुरमादानी रखनी की।''**

उस समय सुरमादानियों के ढक्कन गिर जाते थे।....''**अनुमति देता हूँ सुरमादानियों को ढक्कनसहित सूत से बांध कर रखने की।** उस समय भिक्षु आँखों में वह अञ्जन अंगुलियों से ही डालते थे, जिससे उन्हें आँखों में कष्ट होता था। ....''**अनुमति देता हूँ अञ्जन डालने के लिये सलाई (शलाका) रखने की।''**

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु....नाना प्रकार की सोने चाँदी की बनी सलाइयाँ रखने लगे। उन्हें देखकर....(भगवान् ने कहा—) ''भिक्षुओ! नाना प्रकार की सलाइयों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।....'' ''**अनुमति देता हूँ....शङ्ख की बनी सलाई की।''**

उस समय भिक्षुओं द्वारा उपयोग में लेते समय भूमि पर गिर पड़ती थीं। जिसे वे रूखी हो जाती थीं।....''**अनुमति देता हूँ सलाई को सलाईदानी में रखनी की।''**

उस समय भिक्षु सुरमादानी को एवं सलाई को हाथ में ही रखते थे।.....''**अनुमति देता हूँ सुरमादानी एवं सलाईदानी को बटुए में रखने की।''**

उस समय भिक्षुओं के पास कन्धे पर ढाँकने का बटुआ नहीं होता था।....''**अनुमति देता हूँ कन्धे का बटुआ रखने की।''**

सिर पर तैल रखने की अनुमति— ७. उस समय आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ को शिरोरोग हो गया था। भगवान् से पूछने पर उन्होंने कहा—''**अनुमति देता हूँ शिर पर तैल रखने की।''**

नक्खमनीयो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, नत्थुकम्मं** ति।

नत्थु गलति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, नत्थु-करणिं** ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू उच्चावचा नत्थुकरणियो धारेन्ति– सोवण्णमयं रूपियमयं। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति.... सेय्यथापि गिही कामभोगिनो ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, उच्चावचा नत्थुकरणी धारेतब्बा। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, अट्ठिमयं ....पे०.....सङ्खनाभिमयं**" ति।

नत्थु विसमं आसिञ्चन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे,** [N.223] **यमकनत्थुकरणिं**" ति।

नक्खमनीयो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, धूमं पातुं**" ति। तञ्ञेव वट्टिं आलिम्पेत्वा पिवन्ति, कण्ठो दहति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, धूमनेत्तं** ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू उच्चावचानि धूमनेत्तानि धारेन्ति– सोवण्णमयं रूपियमयं। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति.... सेय्यथापि गिही कामभोगिनो ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, उच्चावचानि धूमनेत्तानि धारेतब्बानि।** यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। '**अनुजानामि, भिक्खवे, अट्ठिमयं....**पे०....**सङ्खनाभिमयं**" ति।

उससे उसका शिरोरोग नष्ट नहीं हुआ। उसके लिये नस्य विधान.... तब भगवान् ने कहा– **"अनुमति देता हूँ नस्य (सुंघनी) लेने की।"**

वह नस्य भी बीच में ही गल जाता था, सिर तक पहुँचता ही नहीं था। भगवान् से पूछने पर उन्होंने कहा–"**अनुमति देता हूँ नस्यकरणी (नाक में नस्य डालने की) रखने की।**"

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सोने–चान्दी की बनी नस्यकरणी रखने लगे। भगवान् से कहे जाने पर उन्होंने कहा–"भिक्षुओ! नाना प्रकार की नस्यकरणी नहीं रखनी चाहिये। जो रखे उसे 'दुष्कृत' दोष लगे। **अनुमति देता हूँ हड्डी.....शङ्खनाभि से बनी नस्यकरणी रखने की।**"

इतने पर भी कभी–कभी नस्य दोनों नासा–छिद्रो में समान रूप से नही गिर पाती थी। भगवान् को बताये जाने पर उन्होंने कहा–"**अनुमति देता हूँ नस्यकरणी का जोडा (युगल) रखने की।**"

धूमपानविधान– अनेक रोगी भिक्षुओं को नस्य लेने पर भी शिरोरोग ठीक नहीं होता था। भगवान् से कहा गया। भगवान् ने कहा–"**अनुमति देता हूँ ओषधियुक्त धूम्रपान की।**"

कुछ भिक्षु शिरोरोग होने पर ओषधियाँ बत्ती पर लेपकर उसका धूँआ पीते थे, उससे उनका कण्ठ जलता था। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा–) "**अनुमति देता हूँ ओषधियाँ धूमनेत्र (चिलम) में रखकर उसके सहारे धूम्रपान करने की।**

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु इस कार्य के लिये नाना प्रकार की– सोने चादी की बनी– चिलमें उपयोग में लाने लगे। यह देखकर....। (भगवान् ने कहा–) "**भिक्षुओ! सोने चांदी से वनी चिलमें**

तेन खो पन समयेन धूमनेत्तानि अपारुतानि होन्ति, पाणका पविसन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, अपिधानं**" ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू धूमनेत्तानि हत्थेन परिहरन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, धूमनेत्तथविकं**" ति। एकतो घंसियन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, यमकथविकं**" ति। अंसबन्धको न होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, अंसबन्धकं बन्धनसुत्तकं**" ति।

८. तेन खो पन समयेन आयस्मतो पिलिन्दवच्छस्स वाताबाधो [B.297, R.205] होति। वेज्जा एवमाहंसु—"तेलं पचितब्बं" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, तेलपाकं**" ति। तस्मिं खो पन तेलपाके मज्जं पक्खिपितब्बं होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, तेलपाके मज्जं पक्खिपितुं**" ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू अतिपक्खित्तमज्जानि तेलानि पचन्ति, तानि पिवित्वा मज्जन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, अतिपक्खित्तमज्जं तेलं पातब्बं**। यो पिवेय्य, यथाधम्मो कारेतब्बो। **अनुजानामि, भिक्खवे, यस्मिं तेलपाके मज्जस्स न वण्णो न गन्धो न रसो पञ्ञायति, एवरूपं मज्जपक्खित्तं तेलं पातुं**" ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खूनं बहु अतिपक्खित्तमज्जं तेलं पक्कं होति। अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"कथं नु खो अतिपक्खित्तमज्जे तेले पटिपज्जितब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, अब्भञ्जनं अधिट्ठातुं** ति।

उपयोग में नहीं लानी चाहिये। इनका उपयोग करने वाले को 'दुष्कृत' दोष लगेगा। हड्डी....शङ्ख की चिलमें ही उपयोग में लानी चाहिये।

उस समय चिलमें खुली पड़ी रहती थीं, जिससे उनमें छोटे छोटे कीड़े घुस जाते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी।.....'' **अनुमति देता हूँ, इन चिलमों को ढककर (डब्बे में) रखने की।**''

उस समय भिक्षु इन चिलमों को हाथ में ही रखते थे।....'' **अनुमति देता हूँ—इन डब्बों में बन्द चिलमों को बटुओं में रखने की।**''

....''**अनुमति देता हूँ दोहरी थैली की।...कन्धे पर टांकने वाले बटुए की....। बाँधने के लिये सूत की।**

वातरोग के लिये तैल— ८. उस समय कभी आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ को वात रोग हो गया। वैद्यों ने उसके उपशमहेतु तैलपाक बताया। एतदर्थ भगवान् से पूछा गया। भगवान् ने **तैलपाक की अनुमति दे दी**। बाद में कभी उसी तैल पाक में वैद्यों ने मद्य मिलाने की भी सम्मति दी। भगवान् से पूछा गया। भगवान् ने इस **तैल पाक में मद्य डालने की भी अनुमति दे दी।**

(यह सुविधा पाकर) कुछ षड्वर्गीय भिक्षु वातव्याधि के नाम पर तैल पकाकर उसमें अति मात्रा में मद्य डालकर पीने लगे। भगवान् को यह बात बतायी गयी। भगवान् ने कहा— "वातव्याधि में तैल में अतिमात्रा से मद्य मिलाकर नहीं पीना चाहिये। जो पीए उसे धर्मानुसार दण्ड देना चाहिये। **भिक्षुओ! वातव्याधि की अवस्था में तैलपाक में उतना ही मद्य मिलाना चाहिये जिससे न उस तैल में मद्य का रंग आवे न गन्ध और न उसके स्वाद का ही उसमें भान हो। इतना ही मद्यमिश्रित पीने की अनुमति देता हूँ।**"

उस समय भिक्षुओं के पास मद्यमिश्रित तैल बहुत अधिक बच रहा था। उन्हें विचार हुआ

तेन खो पन समयेन आयस्मतो पिलिन्दवच्छस्स बहुतरं तेलं पक्कं होति, तेलभाजनं न विज्जति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, तीणि तुम्बानि—लोहतुम्बं, कट्ठतुम्बं, फलतुम्बं** ति।

तेन खो पन समयेन आयस्मतो पिलिन्दवच्छस्स अङ्गवातो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सेदकम्मं** ति।

[N.224] नक्खमनीयो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सम्भारसेदं** ति।

नक्खमनीयो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, महासेदं** ति।

नक्खमनीयो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, भङ्गोदकं** ति।

नक्खमनीयो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, उदककोट्ठकं** ति।

[B.298] तेन खो पन समयेन आयस्मतो पिलिन्दवच्छस्स पब्बवातो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, लोहितं मोचेतुं** ति।

नक्खमनीयो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, लोहितं मोचेत्वा विसाणेन गहेतुं** ति।

कि इसका हमें क्या उपयोग करना चाहिये? भगवान् से इस विषय में सम्मति ली गयी। भगवान् ने उस **बचे हुए तैल से शरीर में मर्दन (मालिश) करने की अनुमति दे दी।**

तैल के लिये पात्र— उस समय रोगी आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ के लिये बहुत अधिक तैल एक साथ पका लिया गया; परन्तु उसे रखने के लिये उचित पात्र नहीं था। भगवान् से पूछा गया। भगवान् ने कहा—"**भिक्षुओ! इसके लिये मैं तुम्हें तीन प्रकार के तूँबे रखने की अनुमति देता हूँ— वह या तो लोहनिर्मित हो, या फिर काष्ठ का बना हो या फल (पका-सूखा) हो।**

स्वेदकर्म— उस समय कभी आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ के सम्पूर्ण शरीर में वातरोग हो गया। भगवान् से इस विषय में पूछा गया कि अब क्या किया जाय? "**भिक्षुओ! ऐसे प्रसङ्ग में स्वेदकर्म करना चाहिये!** यह स्वेद कर्म (भाप देकर पसीना निकालना) उस भिक्षु के अनुकूल नहीं आया। भगवान् को यह बात बतायी गयी। भगवान् ने **अनेक प्रकार के पसीना लाने वाले पत्तों के बीच सोने (सम्भारस्वेद) की अनुमति दी।** इससे भी जब रोग ठीक न हुआ तो भगवान् ने एक पुरुष गहरा खड्डा खोदकर उसे जलते अङ्गारों से भरकर, उसे मिट्टी बालू से बन्द कर वहाँ नाना प्रकार की वातरोगनाशक ओषधियों के पत्ते बिछाकर उन पर लेट कर पसीना (महास्वेद) लेने की अनुमति दी।

इस विधि से भी उसका वह वातरोग ठीक नहीं हुआ तो भगवान् से फिर पूछा गया तब भगवान् ने **भङ्गोदक** (वातनाशक ओषधिपत्रों के क्वाथ को शरीर पर डालते हुए उनसे पसीना लेना) उपाय बताया। इससे भी जब वह नीरोग नहीं हुआ तो **उष्ण जल से भरे घटों से परिपूर्ण कमरे में बैठकर वहाँ पसीना लेना** (उदककोष्ठक) उपाय बताया।

गठिया रोग की चिकित्सा— उस समय आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ का पर्ववात (अस्थिसन्धियो में वेदना=गठिया रोग) हो गया। भगवान् से यह बात कही गयी। तब भगवान् ने कहा—"**भिक्षुओ! ऐसे समय में अनुमति देता हूँ उन उन अङ्गों से रक्त निकालने की।**"

तेन खो पन समयेन आयस्मतो पिलिन्दवच्छस्स पादा फालिता होन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, पादब्भञ्जनं** ति।

नक्खमनीयो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, पज्जं अभिसङ्खरितुं** ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो गण्डाबाधो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सत्थकम्मं** ति। कसावोदकेन अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, कसावोदकं** ति। तिलकक्केन अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, तिलकक्कं** ति। कबळिकाय अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचुसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, कबळिकं** ति। वणबन्धनचोलेन अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, वणबन्धनचोलं** ति। वणो कण्डुवति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सासपकुट्टेन फोसितुं** ति। वणो किलिज्जित्थ। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, धूमं कातुं** ति। वणमंसं वुट्ठाति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि,** [R.206] **भिक्खवे, लोणसक्खरिकाय छिन्दितुं** ति। वणो न रुहति। भगवतो एतमत्थ आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, वणतेलं** ति। तेलं गलति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, विकासिकं सब्बं वणपटिकम्मं** ति।

९. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु अहिना दट्ठो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, चत्तारि महाविकटानि दातुं— गूथं, मुत्तं, छारिकं,**

इतने पर भी जब उनका रोग ठीक नहीं हुआ...–**''भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ शृङ्ग (विषाण) विधि से रक्त चूसने की।''**

पैर फटने की चिकित्सा– इस समय कभी आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ के पैर फट गये। भगवान् से पूछा गया। भगवान् ने कहा–**''अनुमति देता हूँ पैरों में मर्दन (मालिश) करने की।''** इससे जब वह रोग ठीक न हुआ तो भगवान् ने पादरोगों के लिये विशेष ओषधि के निर्माण की अनुमति दी।

शल्यचिकित्सा– उस समय किसी भिक्षु को व्रण (गण्ड) हो गया। भगवान् का सूचना दी गयी। (भगवान् ने बताया–) **''भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इस व्रण पर शल्यचिकित्सा की।''** वहाँ व्रण धोनेके लिये (ओषधिमिश्रित) उष्ण जल की आवश्यकता हुई। ....**अनुमति देता हूँ उष्ण जल की।''**...तिल की पिट्ठी की आवश्यकता पड़ी।....भगवान् ने **तिलपिट्ठी की भी अनुमति दे दी।**.. व्रण पर लेप के लिये **ओषध–मिश्रित रूई** (कवळिका) की आवश्यकता हुई। भगवान् ने **उसकी भी अनुमति दे दी।**....भगवान् ने **व्रण पर पट्टी बाँधने की भी अनुमति दे दी।**....व्रण में खुजली होती थीं; भगवान् ने **सरसों की पिण्डी से सहलाने की अनुमति** दी। व्रण में पानी (लसीका) बहता था; भगवान् उसके प्रतीकार में **धुआँस देने की अनुमति दी।** व्रण में मांस का पिण्ड उभर आया था; भगवान् ने उसको **लवणक्षार से काटने की अनुमति दी** । व्रण भरता नहीं था, भगवान् ने वहाँ **व्रणरोपण तैल लगाने की अनुमति दी।** वहाँ लगा हुआ तैल बहता था; अतः भगवान् ने **उस पर पट्टी बाँधने की भी अनुमति दे दी** ।

सर्पविषचिकित्सा– ९. उस समय किसी भिक्षु को साँप ने काट लिया। ....**''भिक्षुओ! ऐसे समय में रोगी को चार महाविकटों के प्रयोग की अनुमति देता हूँ–१. गोबर, २. मूत्र, ३. राख एवं**

मत्तिकं ति। अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"अप्पटिग्गहितानि नु खो? उदाहु पटिग्गहेतब्बानी?" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सति कप्पियकारके पटिग्गहापेतुं, असति कप्पियकारके सामं गहेत्वा परिभुञ्जितुं** ति।

[B.299] तेन खो पन समयेन अञ्ञतरेन भिक्खुना विसं पीतं होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, गूथं पायेतुं** ति। अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—[N.225] "अप्पटिग्गहितं नु खो उदाहु पटिग्गहेब्बो ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, यं करोन्तो पटिग्गण्हाति, स्वेव पटिग्गहो कतो, न पुन पटिग्गहेतब्बो** ति।

१०. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो घरदिन्नकाबाधो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सीतालोळिं पायेतुं** ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु दुट्ठगहणिको होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, आमिसखारं पायेतुं** ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो पण्डुरोगाबाधो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, मुत्तहरीतकं पायेतुं** ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो छविदोसाबाधो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि भिक्खवे, गन्धालेपं कातुं** ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु अभिसन्नकायो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, विरेचनं पातुं** ति।

अच्छकञ्जिया अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, अच्छकञ्जिं** ति।

---

४. मिट्टी।" भिक्षुओ का सन्देह हुआ कि इन्हें दूसरे के देने पर लेना चाहिये या स्वयं ले लेना चाहिये? भगवान् ने कहा—"**अनुमति देता हूँ देने वाले के होने पर दिया हुआ लेने की; तथा उसके न होने पर स्वयं लेकर सेवन करने की।**"

उस समय किसी भिक्षु ने विष पी लिया था। भगवान् से इसकी चिकित्सा पूछी गयी। भगवान् ने ऐसे समय मे गोबर पिलाने की अनुमति दी। तब भी भिक्षुओ को यह विचार हुआ कि क्या यह दूसरे के लेने पर लेना चाहिये या स्वयं लेना चाहिये? भगवान् ने कहा—"**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ—जैसा करने से वह ग्रहण करे—** यही ग्रहण करने की विधि है। (कार्य सिद्ध होने पर) पुनः नहीं ग्रहण करना चाहिये।

मन्त्र–तन्त्र से रुग्ण की चिकित्सा— १०. उस समय किसी की वशीकरणहेतु अभिमन्त्रित औषध के पीने से (घरदिन्नक) रोग हो गया। भगवान् ने इसके लिये **हल से खोदी गयी खेत की मिट्टी के प्रयोग की अनुमति दी।**

ग्रहणी रोग चिकित्सा— उस समय किसी भिक्षु को ग्रहणी रोग हो गया। भगवान् से कहा गया तो भगवान् ने कहा—"**भिक्षुओ! ऐसे समय में आमिषक्षार (सूखा अनाज जलाकर उससे बनाया क्षार) पिलाने की अनुमति देता हूँ।**"

पाण्डुरोगचिकित्सा— उस समय किसी भिक्षु को पाण्डु रोग हो गया। भगवान् को यह

अकटयूसेन अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, अकटयूसं** ति।

कटाकटेन अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, कटाकटं** ति।

पटिच्छादनीयेन अत्थो हाति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, पटिच्छादनीयं** ति।

३. पिलिन्दवच्छवत्थु

११. तेन खो पन समयेन आयस्मा पिलिन्दवच्छो राजगहे पब्भारं सोधापेति लेणं कत्तुकामो। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो येनायस्मा पिलिन्दवच्छो [B.300] तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं पिलिन्दवच्छं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। [R.207] एकमन्तं निसिन्नो खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो आयस्मन्तं पिलिन्दवच्छं एतदवोच— "किं, भन्ते, थेरो कारापेती" ति? "पब्भारं, महाराज, सोधापेमि, लेणं कत्तुकामो" ति। "अत्थो, भन्ते, अय्यस्स आरामिकेना" ति? "न खो, महाराज, भगवता आरामिको अनुञ्ञातो" ति। "तेन हि, भन्ते, भगवन्तं पटिपुच्छित्वा मम आरोचेय्याथा" ति। "एवं, महाराजा" ति खो आयस्मा पिलिन्दवच्छो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स पच्चस्सोसि।

बताया गया। (भगवान् ने कहा—) **"भिक्षुओ! ऐसे रोग में गोमूत्र मिश्रित हरीतकी (हर्रे) का प्रयोग करना चाहिये।"**

ज्वरपित्ती रोग चिकित्सा— उस समय किसी भिक्षु को ज्वरपित्ती (छविदोष—ज्वर के साथ सम्पूर्ण शरीर मे लाल ददोड़े हो जाना) रोग हो गया था....भगवान् ने कहा—**अनुमति देता हूँ इस पर गन्धक का लेप करने की।"**

शून्य रोग चिकित्सा— किसी का शरीर शून्य (रक्त का असञ्चरण) हो गया था। भगवान्....."**अनुमति देता हूँ विरेचन कर्म (जुलाब पीने) की।"**

किसी रोगी भिक्षु को स्वच्छ काँजी की आवश्यकता थी....."**अनुमति देता हूँ स्वच्छ काँजी का ग्रहण करने की।"**

किसी रोगी भिक्षु को स्वाभाविक यूस (जूस) की आवश्यकता थी। ...."**अनुमति देता हूँ अकृतयूष की।"**

किसी रोगी भिक्षु को कृत, अकृत (अस्वाभाविक, स्वाभाविक)—दोनों ही प्रकार के जूस की आवश्यकता थी। ...."**अनुमति देता हूँ दोनों ही प्रकार के जूस ग्रहण करने की।"**

किसी रोगी को कुछ ढकने के लिये किसी वस्तु की आवश्यकता ती। . ."**अनुमति देता हूँ ढकने के लिये किसी वस्तु का ग्रहण करने की।"**

३. पिलिन्दवच्छवस्तु

११. उस समय आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ राजगृह में एक लेण (गुफा) बनवाने लिये पहाड़ का कुछ हिस्सा साफ करा रहे थे। उस समय मगधराज श्रेणिय बिम्बिसार आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ के पास गया। जाकर उन्हें प्रणामकर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे मगधराज...बिम्बिसार ने आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ से पूछा—"भन्ते! स्थविर आप क्या कर रहे हैं?" "महाराज! गुफा बनवाने के लिये पर्वत

अथ खो आयस्मा पिलिन्दवच्छो राजानं मागधं सेनियं बिम्बिसारं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि, समादपेसि, समुत्तेजेसि, सम्पहंसेसि। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो आयस्मतो पिलिन्दवच्छेन धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो उट्ठायासना आयस्मन्तं पिलिन्दवच्छं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो आयस्मा पिलिन्दवच्छो भगवतो सन्तिके दूतं पाहेसि–"राजा, भन्ते, मागधो सेनियो बिम्बिसारो आरामिकं दातुकामो। कथं नु खो, भन्ते, मया पटिपज्जितब्बं" ति? अथ खो [N.226] भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि–

"अनुजानामि, भिक्खवे, आरामिकं" ति।

दुतियं पि खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो येनायस्मा पिलिन्दवच्छो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं पिलिन्दवच्छं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो आयस्मन्तं पिलिन्दवच्छं एतदवोच–"अनुञ्ञातो, भन्ते, भगवता आरामिको" ति? "एवं, महाराजा" ति। "तेन हि भन्ते, अय्यस्स आरामिकं दम्मी" ति। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो आयस्मतो पिलिन्दवच्छस्स आरामिकं पटिस्सुत्वा, विस्सरित्वा, चिरेन सतिं पटिलभित्वा, अञ्ञतरं सब्बत्थकं महामत्तं आमन्तेसि–"यो मया, भणे, अय्यस्स आरामिको पटिस्सुतो, दिन्नो सो आरामिको" ति? "न खो, देव, अय्यस्स आरामिको दिन्नो" ति। "कीव चिरं नु खो, भणे, इतो हि तं होति" ति? अथ खो [B.301] सो महामत्तो रत्तियो विगणेत्वा राजानं मागधं सेनियं बिम्बिसारं एतदवोच–"पञ्च, देव, रत्तिसतानी" ति। "तेन हि, भणे, अय्यस्स पञ्च आरामिकसतानि देही" ति।

का कुछ भाग साफ करवा रहा हूँ।" "भन्ते! क्या आपको आरामिक (सेवक) की आवश्यकता नहीं है?" "महाराज! भगवान् ने आरामिक रखने की अनुमति नहीं दी है।" "तो भन्ते! भगवान् से पुनः पूछकर बताइयेगा।" "अच्छा, महाराज!"– यों आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ ने राजा बिम्बिसार को उत्तर दिया।

तब आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ ने मगधराज बिम्बिसार को धार्मिक कथाएँ सुनाकर धर्म के प्रति समुत्तेजित सम्प्रहृष्ट तथा सन्तुष्ट किया। यों मगधराज बिम्बिसार आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ से धार्मिक कथाएँ सुनकर समुत्तेजित.....होकर, उन्हें प्रणाम–प्रदक्षिणा कर चला गया। तब आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ ने भगवान् के पास यह कहकर अपना एक सन्देशवाहक भेजा कि "भन्ते! राजा मागध बिम्बिसार मुझे एक आरामिक देना चाहता है। मुझे इस विषय में क्या निर्णय लेना चाहिये? तब भगवान् ने....कहा– **"भिक्षुओ! (दूसरों द्वारा दिये गये) आरामिक रखने की अनुमति देता हूँ।"**

दूसरी बार भी (कभी) राजा मागध....पूर्ववत् .। एक तरफ बैठे उसने आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ से पूछा–"क्या भन्ते! भगवान् ने आरामिक रखने की अनुमति दी?" "हाँ, महाराज! भगवान् ने अनुमति दे दी है।" "तो, महाराज! आपके लिये एक आरामिक देने का वचन देता हूँ।" यों, राजा मागध बिम्बिसार ने आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ का आरामिक वचन देकर महल में जाकर इस बात को भूल गया। कुछ दिन बाद इस बात का स्मरण आने पर, उसने अपने सर्वाधिकारी से पूछा–"अरे भाई! मैंने आर्य पिलिन्दवच्छ को कुछ समय पूर्व आरामिक देने की आज्ञा दी थी, क्या उन्हे वह दिया गया?" "नहीं, श्रीमन्! आर्य को अभी तक कोई आरामिक नहीं दिया गया।" "इस बात को हुए कितने दिन हो गये?" "देव! पाँच सौ रात्रियाँ तो बीत गयी होंगी।" "तो अब उन्हें पाँच सौ आरामिक

"एवं, देवा" ति खो सो महामत्तो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स पटिस्सुत्वा आयस्मतो पिलिन्दवच्छस्स पञ्च आरामिकसतानि पादासि, पाटियेक्को गामो निविसि। आरामिकगामो ति पि नं आहंसु, पिलिन्दगामो ति पि नं आहंसु। [R.208]

१२. तेन खो समयेन आयस्मा पिलिन्दवच्छो तस्मिं गामके कुलूपको होति। अथ खो आयस्मा पिलिन्दवच्छो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय पिलिन्दगामं पिण्डाय पाविसि। तेन खो पन समयेन तस्मिं गामके उस्सवो होति। दारका अलङ्कता मालाकिता कीळन्ति। अथ खो आयस्मा पिलिन्दवच्छो पिलिन्दगामके सपदानं पिण्डाय चरमानो येन अञ्ञतरस्स आरामिकस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। तेन खो पन समयेन तस्सा आरामिकिनिया धीता अञ्ञे दारके अलङ्कते मालाकिते पस्सित्वा रोदति—'मालं मे देथ, अलङ्कारं मे देथा' ति। अथ खो आयस्मा पिलिन्दवच्छो तं आरामिकिनिं एतदवोच—"किस्सायं दारिका रोदती" ति? "अयं, भन्ते, दारिका अञ्ञे दारके अलङ्कते मालाकिते पस्सित्वा रोदति—'मालं मे देथ, अलङ्कारं मे देथा' ति। कुतो अम्हाकं दुग्गतानं माला, कुतो अलङ्कारो" ति? अथ खो आयस्मा पिलिन्दवच्छो अञ्ञतरं तिणण्डुपकं गहेत्वा तं आरामिकिनिं एतदवोच—"हन्दिमं तिणण्डुपकं तस्सा दारिकाय सीसे [N.227] पटिमुञ्चा" ति। अथ खो सा आरामिकिनी तं तिणण्डुपकं गहेत्वा तस्सा दारिकाय सीसे पटिमुञ्चि। सा अहोसि सुवण्णमाला अभिरूपा, दस्सनीया, पासादिका; नत्थि तादिसा रञ्ञो पि अन्तेपुरे सुवण्णमाला। मनुस्सा रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स आरोचेसुं—"अमुकस्स, देव, आरामिकस्स घरे सुवण्णमाला अभिरूपा, दस्सनीया, पासादिका; नत्थि

भेजो।" "अच्छा देव!" यों राजा ने कहकर उस सर्वाधिकारी ने आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ को पाँच सौ आरामिक भेजे। जिनका कि अलग से एक ग्राम ही बस गया जो 'आरामिक ग्राम' भी कहलाता था या फिर 'पिलिन्दग्राम' के नाम से भी लोग उस ग्राम को पुकारने लगे।

१२. उस समय कभी आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ ने उक्त ग्राम में भिक्षाटन हेतु जाने की इच्छा की। अत: पूर्वाह्न समय ठीक से वस्त्र पहनकर पात्र-चीवर लेकर पिलिन्दग्राम की तरफ चल पड़े। उस समय उस ग्राम में कोई उत्सव हो रहा था। बालक सुन्दर सुन्दर वस्त्रों एवं मालाओं से अलङ्कृत होकर इधर-उधर खेल रहे थे। तभी आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ, कहीं भी एक जगह न रुकते भिक्षा करते हुए अन्त में, किसी आरामिक के घर जा कर वहाँ बिछे आसन पर बैठ गये। उस समय उस आरामिक की लड़की पास-पड़ोस के दूसरे लडकों को सजा-धजा देखकर रोते हुए कह रही थी—"मुझे भी माला दो, मुझे भी अलंकृत करो!" तब आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ ने आरामिक की स्त्री से पूछा—"यह बच्ची क्यों रो रही है?" "भन्ते! पास पड़ोस के लड़को को अलङ्कृत देखकर हठ कर रही है कि मुझे भी माला दो, मुझे भी अलंङ्कृत करो। परन्तु भन्ते! हम अकिञ्चनों के पास कहाँ माला है या कहाँ अलङ्कार की अन्य सामग्री है!" तब आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ ने एक तृण उस स्त्री को देकर कहा—"यह तृण इस बच्ची के सिर पर रख दो।" तब उस आरामिक की स्त्री ने वह तृण लेकर बच्ची के सिर पर रख दिया। तत्काल ही यह तृण ऐसी सुवर्णमाला बन गया कि जो देखे उसी को सुन्दर, मनोहर एवं चित्ताह्लादक लगे। यहाँ तक कि वैसी सुन्दर सुवर्णमाला राजा के अन्त:पुर में भी उपलब्ध न थी। मेले में उस सुवर्णमाला से अलङ्कृत बालिका को देखकर लोगो ने राजा मागध बिम्बिसार से कह ही तो दिया—"देव! अमुक आरामिक के घर में हमने ऐसी सुन्दर माला देखी है जो राजाओं के

तादिसा देवस्स पि अन्तेपुरे सुवण्णमाला; कुतो तस्स दुग्गतस्स? निस्संसयं चोरिकाय आभता'' ति।

[B.302] अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो तं आरामिककुलं बन्धापेसि। दुतियं पि खो आयस्मा पिलिन्दवच्छो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीरमादाय पिलिन्दगामं पिण्डाय पाविसि। पिलिन्दगामके सपदानं पिण्डाय चरमानो येन तस्स आरामिकस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पटिविस्सके पुच्छि—''कहं इमं आरामिककुलं गतं'' ति? ''एतिस्सा, भन्ते, सुवण्णमालाय कारणा रञ्ञा बन्धापितं'' ति। अथ खो आयस्मा पिलिन्दवच्छो येन रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो येनायस्मा पिलिन्दवच्छो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं पिलिन्दवच्छं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो राजानं मागधं सेनियं बिम्बिसारं आयस्मा पिलिन्दवच्छो [R.209] एतदवोच—''किस्स, महाराज, आरामिककुलं बन्धापितं'' ति? ''तस्स, भन्ते, आरामिकस्स घरे सुवण्णमाला अभिरूपा, दस्सनीया, पासादिका; नत्थि तादिसा अम्हाकं पि अन्तेपुरे सुवण्णमाला; कुतो तस्स दुग्गतस्स? निस्संसयं चोरिकाय आभता'' ति। अथ खो आयस्मा पिलिन्दवच्छो ''रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स पासादं सुवण्णं'' ति अधिमुच्चि; सो अहोसि सब्बसोवण्णमयो। ''इधं पन ते, महाराज, ताव बहुं सुवण्णं कुतो'' ति? ''अञ्ञातं, भन्ते, अय्यस्सेवेसो इद्धानुभावो'' ति तं आरामिककुलं मुञ्चापेसि।

मनुस्सा—''अय्येन किर पिलिन्दवच्छेन सराजिकाय परिसाय उत्तरिमनुस्सधम्मं इद्धिपाटिहारियं दस्सितं'' ति—अत्तमना अभिप्पसन्ना आयस्मतो पिलिन्दवच्छस्स पञ्च

अन्तःपुर में भी दुर्लभ है। हो न हो, अवश्य वह दरिद्र आरामिक उस माला को चुराकर लाया होगा। तब राजा मागध बिम्बिसार ने उस आरामिक के परिवार को पकड़वा लिया।

उधर दूसरे दिन भी आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ....भिक्षाटन कर उस आरामिक के घर पर पहुँचे। वहाँ घर के द्वार बन्द देखकर उन्होंने पड़ोसी लोगों से पूछा—''यह आरामिककुल आज कहाँ गया?'' ''भन्ते! वे तो चोरी की सुवर्णमाला रखने के अपराध में राजा द्वारा पकड़वा कर कारागार में डाल दिये गये।'' तब आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ राजा मागध बिम्बिसार में महल में पहुँच कर बिछे आसन पर विराजे। राजा भी आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ का आगमन सुन, वहाँ पहुँचकर उन्हे प्रणाम करते हुए एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे राजा से आयुष्मान् ने पूछा—''महाराज! आपने उस आरामिक के कुटुम्ब को किस कारण कारागार में डाल दिया?'' ''भन्ते! उस दरिद्र आरामिक के घर में एक ऐसी सुन्दर सुवर्णमाला मिली जैसी बड़े बड़े राजाओं के घर में मिलनी दुर्लभ है। अवश्य उसे वे कहीं से चुराकर लाये होंगे। तब आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ ने ''राजा मागध श्रेणिय बिम्बिसार का यह महल सुवर्णमय हो जाय''—यह सङ्कल्प किया। ऐसा सङ्कल्प करते ही वह समग्र राजमहल सुवर्णमय हो गया। तब आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ ने राजा से पूछा—''महाराज! यह इतना अधिक सोना आपके पास कहाँ से आया?'' (राजा ने कहा—) ''भन्ते! मैं जान गया। यह आप की ही ऋद्धि का चमत्कार है!'' यह समझते हुए राजा ने उस आरामिक के कुटुम्ब को कारामुक्त कर दिया।

भैषज्यों को सप्ताहपर्यन्त रखने की अनुज्ञा— इधर साधारण नागरिक भी यह चमत्कार देख कर ''आर्य पिलिन्दवच्छ ने ही राजा सहित राजपरिषद् (दरबार) के सामने यह अलौकिक चमत्कार

भेसज्जानि अभिहरिंसु, सेय्यथिदं—सप्पिं, नवनीतं, तेलं मधुं, फाणितं। पकतिया पि च आयस्मा पिलिन्दवच्छो लाभी होति पञ्चन्नं भेसज्जानं; लद्धं लद्धं परिसाय विस्सज्जेति। परिसा चस्स होति बाहुल्लिका; लद्धं लद्धं कोलम्बे पि, घटे पि, पूरेत्वा पाटिसामेति; परिस्सावनानि पि थविकायो पि, पूरेत्वा वातपानेसु लग्गेति। तानि ओलीनविलीनानि तिट्ठन्ति। उन्दूरेहि पि विहारा ओकिण्णविकिण्णा होन्ति। मनुस्सा विहारचारिकं आहिण्डन्ता पस्सित्वा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"अन्तोकोट्ठागारिका इमे समणा सक्यपुत्तिया, [B.303] सेय्यथापि राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो" ति। अस्सोसुं खो भिक्खू तेसं [N.228] मनुस्सानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा, ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति-"कथं हि नाम भिक्खू एवरूपाय बाहुल्लाय चेतेस्सन्ती" ति।

अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं.....पे०....."सच्चं किर, भिक्खवे, भिक्खू एवरूपाय बाहुल्लाय चेतेन्ती" ति ? "सच्चं, भगवा" ति....पे०....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**यानि खो पन तानि गिलानानं भिक्खूनं पटिसायनीयानि भेसज्जानि, सेय्यथिदं—सप्पि, नवनीतं, तेलं, मधु, फाणितं, तानि पटिग्गहेत्वा सत्ताहपरमं सन्निधिकारकं परिभुञ्जितब्बानि। तं अतिक्कमयतो यथाधम्मो कारेतब्बो**" ति॥

भेसज्जानुञ्ञातभाणवारो पठमो निट्ठितो।।

४. गुळादिअनुजानना

१३. अथ खो भगवा सावत्थियं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन राजगहं तेन [R.210]

दिखाया है" अत्यन्त सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हुए। तब वे आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ के लिये पाँच भैषज्य, जैसे—घी, मक्खन, तैल, मधु एवं खाण्ड प्रचुर मात्रा में पाँच भैषज्य लाये। जब कि ये सभी चीजें आयुष्मान् पिलिन्दवच्छ को पहले ही इतनी अधिक उपलब्ध होती रहती थी कि उन्हें पास बैठी भिक्षुपरिषद् को बांटते रहना पड़ता था। धीरे–धीरे वह भिक्षुपरिषद् इतनी परिग्रही (इन चीजों को इकट्ठा कर रखने वाली) हो गयी कि उसने उन वस्तुओं से बड़े बड़े पात्र (कोलम्ब), घड़े भर–भर कर रख लिये। जलछक्के और थैलों में भरकर खूँटियों पर टाँग दिया। वहाँ भी रखने को जगह न मिली तो घर में ही नीचे ऊपर जहाँ तहाँ फैंकने लगे। परिणामस्वरूप समग्र विहार चूहो का विश्रामगृह हो गया। साधारण जन विहार में यह सब देखकर दुःखी एवं उद्विग्न होने लगे कि कैसे ये शाक्यपुत्रीय श्रमण भी इतने परिग्रही हो गये जैसे राजा मागध बिम्बिसार। वृद्ध भिक्षुओं ने लोगों के उस उद्वेग, दुःख पर ध्यान दिया। उन्हें भी कष्ट हुआ कि कब ये भिक्षु इस परिग्रह के दुष्परिणामों से चेतेंगे!

समय पाकर भिक्षुओं ने भगवान् से यह बात कही।....सचमुच भिक्षुओ! वे भिक्षु इस प्रकार परिग्रह करके भी इसके दोषों के प्रति सावधान नहीं होते?" "हाँ, भन्ते! ऐसा ही है।" ....फटकार कर धार्मिक कथाएँ कहते हुए भिक्षुओं से कहा–"**भिक्षुओ! वे जो रोगी भिक्षुओं के सेवन करने योग्य भैषज्य हैं जैसे घी, मक्खन, तैल, मधु एवं खाण्ड; उन्हें अधिक से अधिक सप्ताह भर पास रखकर सेवन करना चाहिये। इस समयावधि का अतिक्रमण करने पर उस परिग्रही भिक्षु को धर्मानुसार दण्डित करना चाहिये।**"

अनुज्ञात भैषज्य भाणवार प्रथम समाप्त।।

चारिकं पक्कामि। अद्दसा खो आयस्मा कङ्खारेवतो अन्तरामग्गे गुळकरणं, ओक्कमित्वा गुळे पिट्ठं पि छारिकं पि पक्खिपन्ते, दिस्वान—अकप्पियो गुळो सामिसो, न कप्पति गुळो विकाले परिभुञ्जितुं ति—कुक्कुच्चायन्तो सपरिसो गुळं न परिभुञ्जति। ये पिस्स सोतब्बं मञ्ञन्ति, ते पि गुळं न परिभुञ्जन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "किमत्थाय, भिक्खवे, गुळे पिट्ठं पि छारिकं पि पक्खिपन्ती" ति? "थद्धत्थाय भगवा" ति। "सचे, भिक्खवे, थद्धत्थाय गुळे पिट्ठं पि छारिकं पि पक्खिपन्ति, सो च गुळो त्वेव सङ्ख्यं गच्छति। **अनुजानामि, भिक्खवे, यथासुखं गुळं परिभुञ्जितुं** ति।

अद्दसा खो आयस्मा कङ्खारेवतो अन्तरामग्गे वच्चे मुग्गं जातं, पस्सित्वा—"अकप्पिया मुग्गा; पक्का पि मुग्गा जायन्ती" ति कुक्कुच्चायन्तो सपरिसो मुग्गं न परिभुञ्जति। ये पिस्स सोतब्बं मञ्ञन्ति, ते पि मुग्गं न परिभुञ्जन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**सचे, भिक्खवे, पक्का पि मुग्गा जायन्ति, अनुजानामि, भिक्खवे ,यथासुखं मुग्गं परिभुञ्जितुं ति।**

[B.304] १४. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो उदरवाताबाधो होति। सो लोणसोवीरकं अपायि। तस्स सो उदरवाताबाधो पटिप्पस्सम्भि। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, गिलानस्स लोणसोवीरकं; अगिलानस्स उदकसम्भिन्नं पानपरिभोगेन परिभुञ्जितुं** ति।

५. अन्तोवुत्थादिपटिक्खेपकथा

[N.299] १५. अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन राजगहं तदवसरि। तत्र सुदं

---

४. गुड़ के उपयोग का विधान

१३. तब भगवान् श्रावस्ती में इच्छानुकूल साधना करने के बाद राजगृह की तरफ चारिका हेतु चल पड़े। आयुष्मान् कङ्खारेवत ने मार्ग में गुड़ बनाते समय उसमें आटा, क्षार आदि डालते देखा। देखकर सोचा—ऐसा गुड़ जिसमें आटा मिला गया हो, अविहित है। अपराह्न में भोजन के योग्य भी नहीं है। यों सन्देहयुक्त हो अपने साथी भिक्षुओं सहित गुड़ का प्रयोग नहीं करते थे। जो उनके प्रति श्रद्धालु थे, उनके कहे को मानकर वे भी गुड़ नहीं खाते थे। अन्त में भगवान् तक यह बात पहुँची। (सुनकर भगवान् ने उनसे पूछा—) "भिक्षुओ! किसलिये गुड़ में आटा तथा क्षार डालते हैं?" "उसकी पिण्डी बाँधने के लिये।" "**यदि भिक्षुओ! गुड़ में आटा या क्षार भी डाला जाता है तो भी वह गुड़ ही कहा जाता है। अतः भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इच्छानुसार गुड़ खाने की।**"

मूंग के प्रयोग की अनुमति— आयुष्मान् कङ्खारेवत ने मार्ग में चलते हुए मल में उत्पन्न हुए मूँग देखे, वह मूँग पक भी गये थे। देखकर उन्होंने सोचा—"ऐसे स्थान में पैदा हुए मूँगों का उपयोग नहीं करना चाहिये, ये पक गये तो क्या हुआ, पैदा तो ये मल में ही हुए हैं!" यह सोचकर सन्देहयुक्त हो वे अपनी परिषद् के भिक्षुओं सहित मूग का उपयोग न करते थे, उनकी बात को मानने वाले उपासक भी मूंग का प्रयोग करने में हिचकिचाते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा—) "भले ही पकी मूंग (कहीं भी) उत्पन्न होती हो तो भी **अनुमति देता हूँ पकी मूंग का यथेच्छ उपयोग करने की।**"

१४. उस समय किसी भिक्षु को पेट में वायुगोलक रोग हो गया। उसने नमकीन सिरका का प्रयोग किया, उससे उसका वह रोग ठीक हो गया। भगवान् को जब यह बात बतायी गयी तो उन्होंने कहा—"**भिक्षुओ! रोगी भिक्षु को सिरका के उपयोग की अनुमति देता हूँ। परन्तु स्वस्थावस्था में भिक्षुओं को इसका प्रयोग जल मिलाकर पीने के लिये करना चाहिये।**"

भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन भगवतो उदरवाताबाधो होति। अथ खो आयस्मा आनन्दो—"पुब्बे पि भगवतो उदरवाताबाधो तेकटुलयागुया फासु होती" ति—सामं तिलं पि, तण्डुलं पि, मुग्गं पि विञ्ञापेत्वा, अन्तो वासेत्वा, अन्तो सामं पचित्वा भगवतो उपनामेसि—"पिवतु भगवा तेकटुलयागुं" ति। जानन्ता पि तथागता पुच्छन्ति, जानन्ता पि न पुच्छन्ति; कालं विदित्वा पुच्छन्ति, कालं विदित्वा न पुच्छन्ति; अत्थसंहितं तथागता पुच्छन्ति, नो अनत्थसंहितं। अनत्थसंहिते सेतुघातो तथागतानं। द्वीहि आकारेहि बुद्धा भगवन्तो भिक्खू पटिपुच्छन्ति—'धम्मं वा देसेस्साम, सावकानं वा सिक्खापदं पञ्ञापेस्सामा' ति। अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि— "कुतायं, [R.211] आनन्द, यागू" ति? अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवतो एतमत्थं आरोचेसि। विगरहि बुद्धो भगवा—"अननुच्छविकं, आनन्द, अननुलोमिकं, अप्पतिरूपं, अस्सामणकं, अकप्पियं, अकरणीयं। कथं हि नाम त्वं, आनन्द, एवरूपाय बाहुल्लाय चेतेस्ससि। यदपि, आनन्द, अन्तो वुत्थं तदपि अकप्पियं; यदपि अन्तो पक्कं तदपि अकप्पियं; यदपि सामं पक्कं, तदपि अकप्पियं। नेतं, आनन्द, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०.....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, अन्तो वुत्थं, अन्तो पक्कं, सामं पक्कं परिभुञ्जितब्बं। यो परिभुञ्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अन्तो चे, भिक्खवे, वुत्थं, अन्तो पक्कं, सामं पक्कं तं चे परिभुञ्जेय्य, आपत्ति तिण्णं दुक्कटानं। अन्तो चे, भिक्खवे, वुत्थं, अन्तो पक्कं,**

---

५. विहार में रखकर वस्तु के उपयोग का सर्वथा निषेध

राजगृह में— १५. तब भगवान् क्रमशः चारिका करते हुए राजगृह पहुँचे। वहाँ भगवान् वेणुवन के कलन्दकनिवाप में ठहरे। उस समय भगवान् को पेट में वायुगोला उठा। उस समय आनन्द को यह विचार आया—"पहले भी जब भगवान् पर इस रोग का आक्रमण होता था तो इन तीन चीजों से मिली खिचड़ी लाभ पहुँचती थी—तिल, चावल एवं मूंग। तो क्यों न आज भी इन तीनों को मिलाकर साथ ही पकाकर भगवान् को परोसूँ।" तब आनन्द ने उसी तरह पतली खिचड़ी बनाकर भगवान् के सामने रखकर निवेदन किया—"भन्ते! भगवान् इस त्रिकटुक यवागू का उपयोग करें।" भगवान् कभी बात को जानते हुए भी पूछ लेते हैं, कभी जानते हुए भी नहीं पूछते। समय देखकर पूछते हैं, समय देख कर कभी नहीं भी पूछते। भगवान् सार्थक बात ही पूछते हैं, निरर्थक नहीं पूछते; क्योंकि निरर्थक बात पूछने पर तथागतो का मर्यादाभङ्ग (=सेतुघात) होता है। दो कारणों से भगवान् किसी बात को पूछते है— १. या तो उसके सहारे धर्मदेशना करनी हो, या फिर २. भिक्षुओं को कोई शिक्षापद (आदेश) सुनाना हो। तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से पूछा— "यह खिचडी कहाँ से आयी है?" तब आयुष्मान् ने भगवान् को सचाई बता दी। तब भगवान् ने आनन्द को फटकारते हुए कहा— "आनन्द! तुम्हारा यह कार्य सर्वथा अनुचित है, अयुक्त है, श्रमणनियमों के सर्वथा विरुद्ध है, अविहित है अतएव अकरणीय है। इस प्रकार के परिग्रह से तुम्हें क्या मिलेगा? आनन्द! जो कुछ भी विहार में रखा गया हो वह निषिद्ध है तथा जो विहार में रखकर पकाया गया है, वह भी निषिद्ध है; जो ऐसा एक साथ मिला कर पकाया है वह तो निषिद्ध है ही। आनन्द! मेरा यह कहना अप्रसन्नों (अश्रद्धालुओं) में श्रद्धोत्पाद के लिये नहीं...पूर्ववत्....फटकार कर धार्मिक कथा कहते हुए भिक्षुओं को यों समझाया— "**भिक्षुओ! अन्दर रखा हुआ, अन्दर पकाया हुआ तथा एक साथ मिलाकर पकाया हुआ नहीं खाना चाहिये। जो खायेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा। उक्त तीनो प्रकार से बने हुए को खाने से त्रिविध**

अञ्ञेहि पक्कं, तं चे परिभुञ्जेय्य, आपत्ति द्विन्नं दुक्कटानं। अन्तो चे, भिक्खवे, वुत्थं, बहि पक्कं, सामं पक्कं, तं चे परिभुञ्जेय्य, आपत्ति द्विन्नं दुक्कटानं। अन्तो चे, भिक्खवे, वुत्थं, अन्तो पक्कं, सामं पक्कं तं चे परिभुञ्जेय, आपत्ति द्विन्नं दुक्कटानं। अन्तो चे, [B.305] **भिक्खवे, वुत्थं, बहि पक्कं, अञ्ञेहि पक्कं, तं चे परिभुञ्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। बहि चे, भिक्खवे, वुत्थं, अन्तो पक्कं, अञ्ञेहि पक्कं, तं चे परिभुञ्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। बहि चे, भिक्खवे, वुत्थं, बहि पक्कं, सामं पक्कं, तं चे परिभुञ्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। बहि चे, भिक्खवे, वुत्थं, बहि पक्कं, अञ्ञेहि पक्कं, तं चे परिभुञ्जेय्य, अनापत्ती''** ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू—''भगवता सामं पाको पटिक्खित्तो'' ति—पुन पाके कुक्कुच्चायन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, पुन पाकं पचितुं** ति।

तेन खो पन समयेन राजगहं दुब्भिक्खं होति। मनुस्सा लोणं पि, तेलं पि, तण्डुलं पि, खादनीयं पि आरामं आहरन्ति। तानि भिक्खू बहि वासेन्ति; उक्कपिण्डका पि खादन्ति, चोरा पि हरन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, अन्तो वासेतुं** [N.230] ति। अन्तो वासेत्वा बहि पाचेन्ति। दमका परिवारेन्ति। भिक्खू अविस्सट्ठा परिभुञ्जन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, अन्तो पचितुं** ति। दुब्भिक्खे कप्पियकारका बहुतरं हरन्ति, अप्पतरं भिक्खूनं देन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

'दुष्कृत' दोष लगेंगे। अन्दर रखा हुआ हो अन्दर ही पकाया गया हो, परन्तु दूसरों द्वारा पकाया गया हो तो द्विविध 'दुष्कृत' लगेंगे। बाहर रखा हुआ था, उसे अन्दर लाकर पकाया गया, स्वयं ने पकाया उसे खाये तो भी द्विविध 'दुष्कृत' दोष होगा। अन्दर रखा हुआ, बाहर जाकर दूसरों से पकवा कर उपयोग में लाया जाय तो भी एक 'दुष्कृत' दोष तो लगेगा ही! बाहर रखा हुआ हो, फिर अन्दर लाकर दूसरों से पकवा कर खाया जाय तो भी एक 'दुष्कृत' दोष लगेगा। बाहर रखा हुआ हो, बाहर ही स्वयं पका,कर लाया जाय तो एक 'दुष्कृत' दोष लगेगा। हाँ, बाहर ही रखा हुआ बाहर से ही, दूसरों द्वारा पका कर लाये गये का उपयोग करने में कोई आपत्ति नहीं।

उस समय भिक्षु—''भगवान् ने स्वयम्पाक का निषेध किया है''—यह सोचकर दुबारा पकाने के विषय में सन्दिग्ध थे। भगवान् से इस विषय में पूछा गया। .....**''भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ फिर से पकाने की।''**

उस समय राजगृह में अकाल (दुर्भिक्ष) पड़ गया था। अतः मनुष्य नमक, तैल, चावल, या और कुछ खाद्य पदार्थ आवास में ले आते थे। उन्हें भिक्षु बाहर रखवा देते थे। उन्हें चूहे-बिल्ली (उक्कपिण्डका) भी खा जाते थे, चौर भी चुरा ले जाते (या फिर जूठा खाने वाले भिखारी ही ले जाते थे।) भगवान् से यह बात कही गयी। ....**''अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! ऐसे कुसमय में खाद्य वस्तुओं को आराम में रखने की।''**

तब भिक्षु वस्तुएँ आराम में रखकर भी बाहर दूसरों से पकवा कर आराम से बाहर ही खाने लगे। तब उन्हें याचक भिखारी घेर लेते थे। इससे भिक्षु निश्चिन्ततापूर्वक पूरी तरह नहीं खा पाते थे। ...**''भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आराम में पकाने की।''**

ऐसे दुर्भिक्षकाल में दूसरे पकाने वाले (कल्प्यकारक) पकाये हुए खाद्य का अधिक भाग

अनुजानामि, भिक्खवे सामं पचितुं। अनुजानामि, भिक्खवे, अन्तो वुत्थं, [R.212] **अन्तो पक्कं, सामं पक्कं** ति।

६. उग्गहितपटिग्गहणा

१६. तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खू कासीसु वस्सं वुत्था राजगहं गच्छन्ता भगवन्तं दस्सनाय अन्तरामग्गे न लभिंसु लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरिं; बहुं च फलखादनीयं अहोसि; कप्पियकारको च न अहोसि। अथ खो ते भिक्खू किलन्तरूपा येन राजगहं वेळुवनं कलन्दकनिवापो, येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। आचिण्णं खो पनेतं बुद्धानं भगवन्तानं आगन्तुकेहि भिक्खूहि सद्धिं पटिसम्मोदितुं... अथ खो भगवा ते भिक्खू एतदवोच— "कच्चि, भिक्खवे, खमनीयं, कच्चि यापनीयं, कच्चित्थ अप्पकिलमथेन अद्धानं आगता; कुतो च तुम्हे, [B.306] भिक्खवे, आगच्छथा" ति? "खमनीयं भगवा, यापनीयं भगवा। इध मयं, भन्ते, कासीसु वस्सं वुत्था राजगहं आगच्छन्ता भगवन्तं दस्सनाय अन्तरामग्गे न लभिम्हा लूखस्स वा पणीतस्स वा भोजनस्स यावदत्थं पारिपूरिं; बहुं च फलखादनीयं अहोसि; कप्पियकारको च न अहोसि; तेन मयं किलन्तरूपा अद्धानं आगता" ति। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**अनुजानामि, भिक्खवे, यत्थ फलखादनीयं पस्सति, कप्पियकारको च न होति, सामं गहेत्वा, हरित्वा, कप्पियकारकं पस्सित्वा, भूमियं निक्खिपित्वा, पटिग्गहापेत्वा परिभुञ्जितुं। अनुजानामि, भिक्खवे, उग्गहितपटिग्गहितं" ति।**

स्वयं ले उड़ते थे, यों भिक्षुओं को बहुत कम मिल पाता था। भगवान् से यह स्थिति बतायी गयी।....''**अनुमति देता हूँ स्वयं पकाने की। तथा अनुमति देता हूँ वस्तुओं को आराम के अन्दर रखने की, अन्दर पकाने की तथा स्वयं पकाने की।**''

६. निर्जन स्थान में स्वयं फल आदि ग्रहण की अनुमति

१६. उस समय बहुत से भिक्षु ने काशी जनपद में वर्षावास कर, भगवान् के दर्शनहेतु राजगृह जाते समय मार्ग मे रूखा या चिकना— किसी प्रकार का भोजन पर्याप्त मात्रा मे नहीं पा सके। यद्यपि मार्ग मे खाने योग्य फल बहुत अधिक मिलते थे, परन्तु उन्हे उठाकर देने वाला (कप्पियकारक) कोई न होने से वे उनका भी उपयोग नहीं कर पाये। वे भिक्षु मार्ग में इसी तरह कष्ट सहन करते हुए किसी तरह राजगृह के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में विराजमान भगवान् के सम्मुख पहुँचे। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। भगवान् का यह स्वभाव है कि वे प्रत्येक आगन्तुक भिक्षु से उसका कुशल–मङ्गल अवश्य पूछते हैं.... अतः भगवान् ने उन आगन्तुक भिक्षुओं से यों पूछा—''भिक्षुओ! चारिका अच्छी तो रही! मार्ग में सब कुछ ठीक–ठाक तो बीत गया? किधर से आ रहे हो?'' ''अच्छी ही रही, भगवन्! मार्ग में भी सब कुछ ठीक ही बीता। हमलोग काशी जनपद में वर्षावास कर भगवान् के दर्शनहेतु राजगृह आये हैं।....रास्ते में कुछ कष्ट ही पाया।'' तब भगवान् ने उस सन्दर्भ में धर्मप्रवचन करते हुए कहा—''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कि इस तरह (चारिका करते हुए) मार्ग में खाने योग्य फल देखो तो वहाँ यदि कल्प्यकारक न हो तो स्वयं लेकर फिर उसे भूमि पर रख, कल्प्यकारक की कल्पना कर उस का दिया हुआ मानते हुए उठा कर खाने की। तथा उसे परस्पर लेने देने की भी अनुमति देता हूँ।**''

१७. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स ब्राह्मणस्स नवा च तिला नवं च मधु उप्पन्ना होन्ति। अथ खो तस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—"यन्नूनाहं नवे च तिले नवं च मधुं बुद्धप्पमुखस्स भिक्खुसङ्घस्स ददेय्यं" ति। अथ खो सो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अधिवासेतु मे भवं गोतमो [R.213] स्वातनाय भत्तं, सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो सो ब्राह्मणो भगवतो अधिवासनं विदित्वा पक्कामि। अथ खो सो ब्राह्मणो तस्सा [N.231] रत्तिया अच्चयेन पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि—"कालो, भो गोतम, निट्ठितं भत्तं" ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन तस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि, सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो सो ब्राह्मणो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो तं ब्राह्मणं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा, समादपेत्वा, समुत्तेजेत्वा, सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

[B.307] अथ खो तस्स ब्राह्मणस्स, अचिरपक्कन्तस्स भगवतो, एतदहोसि—"येसं खो मया अत्थाय बुद्धप्पमुखो भिक्खुसङ्घो निमन्तितो, 'नवे च तिले नवं च मधुं दस्सामी' ति, ते मया पमुट्ठा दातुं। यन्नूनाहं नवे च तिले नवं च मधुं कोलम्बेहि च घटेहि च आरामं हारापेय्यं" ति। अथ खो सो ब्राह्मणो नवे च तिले नवं च मधुं कोलम्बेहि च घटेहि च

भोजन के बाद लाये भक्ष्य के अनुमति— १७. उस समय किसी ब्राह्मण के घर में नये तिल और नया मधु कुछ अधिक मात्रा में आ गया था। ब्राह्मण के मन में यह विचार आया कि क्यों न मैं ये नये तिल और नया मधु बुद्धसहित भिक्षुसङ्घ को दान कर दूँ। तब ब्राह्मण भगवान् के पास गया, और जाकर कुशल–मङ्गल एवं स्वास्थ्य पूछकर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठकर उसने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! भगवान् भिक्षुसङ्घसहित कल का भोजन मेरे घर पर स्वीकार करें।" भगवान् ने ब्राह्मण का निवेदन मौन भाव से स्वीकार कर लिया। ब्राह्मण भगवान् द्वारा अपना निवेदन स्वीकार करना मानकर अपने घर वापस लौट गया। तब ब्राह्मण ने उस रात्रि के बीतने पर, अच्छे अच्छे प्रिय खादय पदार्थ बनवाकर भगवान् को भोजन के समय की सूचना दी। सूचना पाकर भगवान् वस्त्र पहनकर, पात्र–चीवर लेकर, ब्राह्मण के घर की तरफ चल दिये। जाकर ब्राह्मण के घर में भिक्षुसङ्घसहित बिछे आसन पर विराजे। तब ब्राह्मण बुद्धप्रमुख समग्र भिक्षुसङ्घ को अपने हाथ से अच्छे अच्छे नानाविध खादय पदार्थ परोस कर सन्तृप्त कर, भगवान् को पात्र से हाथ हटाया हुआ देखकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ब्राह्मण को भगवान् ने धार्मिक कथाएँ सुनाकर (धर्म के प्रति) समुत्तेजित, सन्तृप्त एवं सम्प्रहृष्ट किया। फिर वे अपने आवास को लौट गये।

भगवान् को गये कुछ ही समय हुआ था कि ब्राह्मण को स्मरण हुआ—"अरे! मैंने जिन नये तिल और मधु को खिलाने के लिये भगवान् को निमन्त्रित किया था उन्हें देना तो मैं भूल ही गया। तो क्यों न मैं इन्हें बड़े बड़े पात्रो (कोलम्बों) तथा घड़ों में भरवाकर आराम में भिजवा दूँ।" तब वह ब्राह्मण उन नये तिलों एवं मधु को बडे बड़े पात्रों तथा घडो मे भरवाकर जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा और बोला—"भो गोतम! जिन (नये तिल और मधु) को खिलाने के लिये मैंने आपको अपने आवास

आरामं हारापेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"येसं खो मया, भो गोतम, अत्थाय बुद्धप्पमुखो भिक्खुसङ्घो निमन्तितो— 'नवे च तिले नवं च मधुं दस्सामी' ति, ते मया पमुट्ठा दातुं। पटिग्गण्हातु मे भवं गोतमो नवे च तिले च मधुं" ति। "तेन हि, ब्राह्मण, भिक्खूनं देही" ति। तेन खो पन समयेन भिक्खू दुब्भिक्खे अप्पमत्तके पि पवारेन्ति, पटिसङ्खा पि पटिक्खिपन्ति, सब्बो च सङ्घो पवारितो होति। भिक्खू कुक्कुच्चायन्ता न पटिग्गण्हन्ति। "**पटिग्गण्हथ, भिक्खवे, परिभुञ्जथ। अनुजानामि, भिक्खवे, ततो नीहटं भुत्ताविना पवारितेन अनतिरित्तं परिभुञ्जितुं**" ति।

७. पटिग्गहितादिअनुजानना

१८. तेन खो पन समयेन आयस्मतो उपनन्दस्स सक्यपुत्तस्स उपट्ठाककुलं सङ्घस्सत्थाय खादनीयं पाहेसि—"अय्यस्स उपनन्दस्स दस्सेत्वा सङ्घस्स दातब्बं" ति। तेन खो पन समयेन आयस्मा उपनन्दो सक्यपुत्तो गामं पिण्डाय पविट्ठो होति। अथ खो ते मनुस्सा आरामं गन्त्वा भिक्खू पुच्छिंसु—"कहं, भन्ते, अय्यो उपनन्दो" ति? "एसावुसो, आयस्मा उपनन्दो सक्यपुत्तो गामं पिण्डाय पविट्ठो" ति। 'इदं, भन्ते, खादनीयं अय्यस्स उपनन्दस्स दस्सेत्वा सङ्घस्स दातब्बं" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "तेन हि, भिक्खवे, पटिग्गहेत्वा निक्खिपथ याव उपनन्दो आगच्छती" ति। अथ खो आयस्मा उपनन्दो सक्यपुत्तो पुरेभत्तं कुलानि पयिरुपासित्वा दिवा आगच्छति। तेन खो पन समयेन भिक्खू दुब्भिक्खे अप्पमत्तके पि पवारेन्ति, पटिसङ्खा पि पटिक्खिपन्ति, सब्बो च सङ्घो पवारितो [N.232]

पर निमन्त्रित किया था, उन्हें तो आप को खिलाना मैं भूल ही गया था! अब आप, गौतम! इन नये तिल और मधु की मेरी भेंट स्वीकार करें।" (भगवान् ने कहा—) "तो, ब्राह्मण! (इन्हें) भिक्षुओ में बाँट दो।" उस समय भिक्षु दुर्भिक्षकाल जान कर थोड़ा खाकर अधिक लेने से विरत रहते थे। जानकर भी निषेध कर देते थे। और यों, समग्र सङ्घ ही सङ्कोचवश अपनी पूर्णता कह बैठा। (तब भगवान् ने भिक्षुओं को समझाया—) "**ले लो, भिक्षुओ! और खा डालो! आज से अनुमति देता हूँ वहाँ से लाये हुए को, भोजन कर चुकने के बाद निषेध करने पर भी, ग्रहण करने की।**

७. प्रतिगृहीत की अनुमति

१८. उस समय आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र के उपासककुल ने अपने आदमियों के हाथ सङ्घ के लिये कुछ खाद्य पदार्थ भिजवाया। और कहलाया कि यह आर्य उपनन्द को दिखाकर सङ्घ में बाँट दें।" उस समय आर्य उपनन्द शाक्यपुत्र भिक्षाहेतु ग्राम मे गये हुए थे। तब वे मनुष्य आराम में जाकर भिक्षुओं से पूछने लगे—"भन्ते! आर्य उपनन्द कहाँ हैं?" "ये आयुष्मान् उपनन्द तो भिक्षाहेतु ग्राम में गये हुए हैं।" "तो भन्ते! यह कुछ खादय सामग्री है, इसे आर्य उपनन्द को दिखाकर भिक्षुओं में बाँट दें।" भिक्षुओं ने भगवान् से इसके लिये आज्ञा माँगी। (तब भगवान् ने कहा—) "तो भिक्षुओ! लेकर रख लो, जब तक उपनन्द न आवे।" कुछ समय बाद आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र भोजनकाल से पहले अच्छे घरों में बैठकर आये। उस समय भिक्षु दुर्भिक्ष का समय होने के कारण ....पूर्ववत्.. सङ्कोचवश समग्र भिक्षुसङ्घ ही उस खाद्य पदार्थ को लेने का निषेध कर बैठा। (तब भगवान् ने आज्ञा दी—) "**ले**

होति, भिक्खू कुक्कुच्चायन्ता न पटिग्गण्हन्ति। **"पटिग्गण्हथ, भिक्खवे, परिभुञ्जथ। अनुजानामि, भिक्खवे, पुरेभत्तं पटिग्गहितं भुत्ताविना पवारितेन अनतिरित्तं परिभुञ्जितुं"** ति।

[B.308] १९. अथ खो भगवा राजगहे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन सावत्थि तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन सावत्थि तदवसरि। तत्र सुदं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन आयस्मतो सारिपुत्तस्स कायडाहाबाधो होति। अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"पुब्बे ते, आवुसो सारिपुत्त, कायडाहाबाधो केन फासु होती" ति? "भिसेहि च मे, आवुसो, मुळालिकाहि चा" ति। अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य, एवमेव—जेतवने अन्तरहितो मन्दाकिनिया पोक्खरणिया तीरे पातुरहोसि। अद्दसा खो अञ्ञतरो नागो आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं दूरतो व आगच्छन्तं, दिस्वान आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं एतदवोच—एतु खो, भन्ते, मोग्गल्लानो। स्वागतं भन्ते, अय्यस्स महामोग्गल्लानस्स। केन, भन्ते, अय्यस्स अत्थो; किं दम्मी" ति? "भिसेहि च मे, आवुसो, अत्थो, मुळालिकाहि चा" ति। अथो सो नागो अञ्ञतरं नागं आणापेसि—"तेन हि, भणे, अय्यस्स भिसे च मुळालिकायो च यावदत्थं देही" ति। अथ खो सो नागो मन्दाकिनिं पोक्खरणिं ओगाहेत्वा, सोण्डाय भिसं च मुळालिकं च अब्बाहित्वा, सुविक्खालितं [R.215] विक्खालेत्वा, भण्डितं बन्धित्वा येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमि। अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य,

---

लो भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भोजन खाने के पहले गृहीत को, भोजनपूर्ति होने पर भी, यदि अधिक न पड़ता हो तो उसे खाने की।".

तालाब में उत्पन्न चीजों का उपयोग— १९. तब भगवान् राजगृह में यथाभिलषित साधना कर श्रावस्ती की तरफ चारिका हेतु चल पड़े। क्रमशः चारिका करते हुए भगवान् श्रावस्ती के जेतवन में अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित आराम मे साधनाहेतु विराजे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र को शरीर मे जलन (दाह) होने लगी। तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन आयुष्मान् सारिपुत्र के पास गये और उनसे पूछा—"आयुष्मन्! पहले कभी आप को यह शरीर मे जलन हुई थी तो किस औषध से शान्त हुई थी?" "आयुष्मान्! कमल की जड़ एवं कमलनाल से।" तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन जैसे बलवान् पुरुष अपनी बाहु को पसार देता है या समेट लेता है; उसी तरह जेतवन में अन्तर्हित होकर मन्दाकिनी नामक पुष्करिणी के किनारे जा कर प्रकट हुए। वहाँ एक नाग ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायन को दूर से ही आते हुए देख लिया। देखकर वह उन्हें यों बोला—"आइये, भन्ते, आर्य मौद्गल्यायन! भन्ते आप आर्य का स्वागत है। आर्य आपको किस वस्तु की आवश्यकता है? मैं आपको क्या दूँ?" "मुझे कमल की जड़ एव कमलनाल से कुछ प्रयोजन है।" तब उस नाग ने दूसरे नाग को आज्ञा दी— "अरे भाई! आर्य को जितनी कमल की जड़ एवं कमलनाल की आवश्यकता हो दे दो।" तब वह दूसरा नाग पुष्करिणी से कमल की जड एवं कमलनाल उखाड लाया और उसने उन्हें अच्छी तरह धोकर, बांध कर, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन के पास लाया। तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन जैसे ..पूर्ववत्. ...जेतवन में प्रकट हुए। उधर वह नाग भी पुष्करिणी से अन्तर्हित होकर जेतवन में

पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य, एवमेव—मन्दाकिनिया पोक्खरणिया तीरे अन्तरहितो जेतवने पातुरहोसि। सो पि खो नागो मन्दाकिनिया पोक्खरणिया तीरे अन्तरहितो जेतवने पातुरहोसि। अथ खो सा नागो आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स भिसे च मुळालिकायो च पटिग्गहापेत्वा जेतवने अन्तरहितो मन्दाकिनिया पोक्खरणिया तीरे पातुरहोसि। अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो आयस्मतो सारिपुत्तस्स भिसे च मुळालिकायो च उपनामेसि। अथ खो आयस्मतो सारिपुत्तस्स भिसे च मुळालिकायो च परिभुत्तस्स कायडाहाबाधो [B.309] पटिप्पस्सम्भि। बहू भिसा च मुळालिकायो च अवसिट्ठा होन्ति। तेन खो पन समयेन भिक्खू दुब्भिक्खे अप्पमत्तके पि पवारेन्ति, पटिसङ्खा पि पटिक्खिपन्ति, सब्बो च सङ्घो पवारितो होति। भिक्खू कुक्कुच्चायन्ता न पटिग्गण्हन्ति। **''पटिग्गण्हथ, भिक्खवे, परिभुञ्जथ। अनुजानामि, भिक्खवे, वनट्ठं पोक्खरट्ठं भुत्ताविना पवारितेन अनतिरित्तं परिभुञ्जितुं''** ति।

तेन खो पन समयेन सावत्थियं बहुं फलखादनीयं उस्सन्नं होति, कप्पिय-[N.232] कारको च न होति। भिक्खू कुकुच्चायन्ता फलं न परिभुञ्जन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **''अनुजानामि, भिक्खवे, अबीजं निब्बत्तबीजं अकतकप्पं फलं परिभुञ्जितुं''** ति।

८. सत्थकम्मपटिक्खेपकथा

२०. अथ खो भगवा सावत्थियं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन राजगहं तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन राजगहं तदवसरि। तत्र सुदं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो भगन्दलाबाधो होति। आकासगोत्तो वेज्जो सत्थकम्मं करोति। अथ खो भगवा सेनासनचारिकं आहिण्डन्तो

प्रकट हुआ। और वे कमल की जड़ एवं कमलनाल महामौद्गल्यायन को देकर पुनः मन्दाकिनी पुष्करिणी चला गया। तब आयुष्मान् मौद्गल्यायन ने वे दोनों वस्तुएँ (ओषधियाँ) आयुष्मान् सारिपुत्र को दीं। उन दोनों ओषधियों से आयुष्मान् सारिपुत्र का शरीरदाह शान्त हो गया। फिर भी वह कमल की जड़ एवं कमलनाल बहुत कुछ बच गयी। उसे उन्होंने भिक्षुओं को खाद्य पदार्थ के रूप में देना चाहा; परन्तु भिक्षु दुर्भिक्ष का समय देखते हुए सङ्कोचवश उन्हें स्वीकार नहीं कर रहे थे। (भगवान् को इस बात का पता लगा, तब उन्होंने आज्ञा दी–) ''**भिक्षुओ! ले लो, और इनका खाद्य के रूप मे प्रयोग करो। मैं जङ्गल या तालाब में पैदा हुई वस्तुओं का भोजन के बाद भी यथेच्छ उपयोग करने की अनुमति देता हूँ।**

स्वयं लेकर फल खाना– उस समय श्रावस्ती में बहुत अधिक खाने योग्य फल उगे थे। परन्तु कोई देने वाला (कल्प्यकारक) न होने से भिक्षु जन उन फलों को धर्म-भय से छूते ही नहीं थे। भगवान् से यह बात कही गयी। (उनकी यह आज्ञा हुई–) ''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ– विना बीज वाले या बीज वाले का बीज निकाल कर, कल्प्यकारक न होते हुए भी, स्वयं फल खाने की।**''

८. गुप्ताङ्गों में शस्त्रकर्म का निषेध

२०. तब भगवान् श्रावस्ती में यथेच्छ विहार कर राजगृह की तरफ चारिकाहेतु चल पड़े। यों क्रमशः चारिका करते हुए भगवान् राजगृह के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में जाकर साधनाहेतु विराजे। उस समय किसी भिक्षु को भगन्दर रोग हो गया था। उसकी आकाशगोत्र नामक वैद्य शल्यचिकित्सा (शस्त्रकर्म) कर रहा था। तब भगवान् आराम मे शयनासनचारिका (निरीक्षण) करते

येन तस्स भिक्खुनो विहारो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो आकासगोत्तो वेज्जो भगवन्तं वच्चमग्गं [R.216] पस्सतु, सेय्यथापि गोधामुखं'' ति। अथ खो भगवा—''ममं ख्वायं मोघपुरिसो उप्पण्डेती'' ति—ततो व पटिनिवत्तित्वा, एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे भिक्खुसङ्घं सन्निपातापेत्वा, भिक्खू पटिपुच्छि—''अत्थि किर, भिक्खवे, अमुकस्मिं विहारे भिक्खु गिलानो'' ति? ''अत्थि भगवा'' ति। ''किं तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो आबाधो'' ति? ''तस्स, भन्ते, आयस्मतो भगन्दलाबाधो, आकासगोत्तो वेज्जो सत्थकम्मं करोती'' ति। विगरहि बुद्धो भगवा—''अननुच्छविकं, भिक्खवे, तस्स मोघपुरिसस्स, अननुलोमिकं, अप्पतिरूपं, अस्सामणकं, अकप्पियं, अकरणीयं। कथं हि नाम सो, भिक्खवे, मोघपुरिसो [B.310] सम्बाधे सत्थकम्मं कारापेस्सति। सम्बाधे, भिक्खवे, सुखुमा छवि, दुरोपयो वणो, दुप्परिहारं सत्थं। नेतं, भिक्खवे, अप्पसन्नानं वा पसादाय.....पे०.....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**न, भिक्खवे, सम्बाधे सत्थकम्मं कारापेतब्बं। यो कारापेय्य, आपत्ति थुल्लच्चयस्सा**'' ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू—भगवता सत्थकम्मं पटिक्खित्तं ति—वत्थिकम्मं कारापेन्ति। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा, ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम छब्बग्गिया भिक्खू वत्थिकम्मं कारापेस्सन्ती'' ति। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''सच्चं किर, भिक्खवे, छब्बग्गिया भिक्खू वत्थिकम्मं कारापेन्ती'' ति? ''सच्चं, भगवा'' ति....पे०....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू

हुए उस भिक्षु के प्रकोष्ठ में पहुँचे। आकाशगोत्र वैद्य ने भगवान् को दूर से ही आते हुए देख लिया। देखकर वह भगवान् से यों बोला—आइये श्रीमन् गौतम्! इस भिक्षु का गुदा-मार्ग (मलमार्ग) देखें, यह ऐसा फट गया है जैसे गोध (गोह=सर्प जाति का एक सरीसृप) का मुख।'' तब भगवान् ने यह सोच कर कि 'यह मूर्ख मुझसे ही परिहास (मजाक) कर रहा है'—वहाँ से लौटकर इस प्रकरण में भिक्षुओं को एकत्र कर भिक्षुओं से पूछा—''क्या, भिक्षुओ! इस आवास में कोई भिक्षु रोगाक्रान्त है?'' ''हाँ, भन्ते!'' ' उस भिक्षु को क्या रोग है?'' ''भन्ते! उस भिक्षु को भगन्दर रोग है। आकाशगोत्र वैद्य उस की चिकित्सा कर रहा है?'' भगवान् ने इस कार्य की निन्दा की, तथा कहने लगे—''भिक्षुओ! यह सर्वथा अनुचित है, उस मोघपुरुष के लिये सर्वथा अयोग्य है, अप्रतिरूप है, श्रमण-धर्म के विरुद्ध है, अविहित है, अकरणीय है।.कैसे भिक्षुओ! कोई मूर्ख अपने गुह्य स्थान की शल्य चिकित्सा करा सकता है? भिक्षुओ! उस गुह्य स्थान का चर्म कोमल होता है, वहाँ शस्त्रकर्म भी अत्यधिक कठिनाई से किया जा सकता है। व्रण भी बहुत कठिनता से भरता है। भिक्षुओ! यह बात मै अप्रसन्नों को प्रसन्न करने के लिये नहीं ...पूर्ववत्... य़ों निन्दा कर, धार्मिक कथा कहते हुए भिक्षुओ को भगवान् ने आदेश दिया—''**भिक्षुओ! गुप्त अङ्गों में शस्त्रकर्म नहीं कराना चाहिये। जो कराये उसे 'स्थूलात्यय' दोष लगेगा।**

उस समय, षड्वर्गीय भिक्षु ''भगवान् ने गुह्याङ्गों मे शस्त्रकर्म का निषेध किया है''—यह सोचकर उसके बदले में वस्ति-कर्म (गुदा आदि में पिचकारी से ओषधि डालना) कराने लगे। शान्तचित्त भिक्षु यह देखकर उद्विग्न (हैरान) होने लगे ये षड्वर्गीय भिक्षु वस्तिकर्म क्यों कराते है! उन भिक्षुओं ने भगवान् को यह बात बतायी। तब भगवान् ने अन्य भिक्षुओ से पूछा—''क्या भिक्षुओ! वस्तुत: षड्वर्गीय भिक्षु वस्तिकर्म कराते है?' ''हाँ, भगवन्! पूर्ववत् **भिक्षुओ! गुह्याङ्ग के दो अङ्गुलि**

आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, सम्बाधस्स सामन्ता द्वङ्गुला सत्थकम्मं वा वत्थिकम्मं वा कारापेतब्बं। यो कारापेय्य, आपत्ति थुल्लच्चयस्सा**" ति।

९. मनुस्समंसपटिक्खेपकथा

२१. अथ खो भगवा राजगहे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन वाराणसी तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन वाराणसी तदवसरि। तत्र सुदं भगवा [N.234] वाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये। तेन खो पन समयेन वाराणसियं सुप्पियो च उपासको सुप्पिया च उपासिका उभतोपसन्ना होन्ति, दायका, कारका, सङ्घुपट्ठाका। अथ खो सुप्पिया उपासिका आरामं गन्त्वा विहारेन विहारं परिवेणेन परिवेणं उपसङ्कमित्वा भिक्खू पुच्छति—"को, भन्ते, गिलानो, कस्स किं आहरीयतू" ति? तेन खो पन समयेन अञ्ञतरेन भिक्खुना विरेचनं पीतं होति अथ खो सो भिक्खु सुप्पियं उपासिकं एतदवोच— "मया खो, भगिनि, विरेचनं पीतं। अत्थो मे पटिच्छादनीयेना" ति। "सुट्ठु, अय्य, [R.217] आहरियिस्सती" ति घरं गन्त्वा अन्तेवासिं आणापेसि—"गच्छ, भणे, पवत्तमंसं जानाही" ति। "एवं, अय्ये", ति खो सो पुरिसो सुप्पियाय उपासिकाय पटिस्सुणित्वा केवलकप्पं वाराणसिं आहिण्डन्तो न अद्दस पवत्तमंसं।

अथ खो सो पुरिसो येन सुप्पिया उपासिका तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा सुप्पियं उपासिकं एतदवोच—"नत्थय्ये, पवत्तमंसं। मा-घातो अज्जा" ति। अथ खो सुप्पियाय उपासिकाय एतदहोसि—"तस्स खो गिलानस्स भिक्खुनो पटिच्छादनीयं अलभन्तस्स

तक आस पास शस्त्रकर्म या वस्तिकर्म नहीं कराना चाहिये। जो करायगा उसे 'स्थूलात्यय' दोष लगेगा।"

९. मानव मांस के ग्रहण का निषेध

२१. उस समय भगवान् राजगृह में यथेच्छ साधना करते हुए वाराणसी की तरफ चारिका हेतु निकल पड़े। यों क्रमशः चारिका करते हुए वाराणसी के ऋषिपतन स्थित मृगदाव में जाकर साधनाहेतु विराजे। उस समय वाराणसी मे सुप्रिय नामक उपासक एवं सुप्रिया नाम की उपासिका दोनों धर्म के प्रति श्रद्धालु थे। वे भिक्षुओं के लिये सब कुछ देने को सन्नद्ध, उनके कार्य के लिये प्रतिक्षण तत्पर तथा सङ्घ के श्रद्धालु सेवक थे। सुप्रिया उपासिका प्रायः प्रतिदिन भिक्षुओं के विहार में जाकर एक कमरे से दूसरे कमरे में, एक परिवेण (आँगन) से दूसरे परिवेण में जाकर भिक्षुओं से पूछती रहती थी—"भन्ते! कौन रोगी है? किसको क्या चाहिये?" उस समय एक भिक्षु ने विरेचनकारक ओषधि ले रखी थी। अतः उस भिक्षु ने सुप्रिया उपासिका से कहा—"भगिनि! मैंने विरेचन ले रखा है मुझे प्रतिच्छादनीय (पथ्य) की आवश्यकता है।" "अच्छा, आर्य! लाया जायगा।" कहकर घर जाकर नौकर से बोली—"अरे भाई! जाओ! बाजार से तय्यार मास लेते आओ।" "अच्छा, आर्ये"—कहकर नौकर बाजार गया। परन्तु उसने प्रायः समग्र वाराणसी नगर में खोज डाला, कहीं भी तय्यार मांस नहीं मिला।

तब वह पुनः सुप्रिया उपासिका के पास लौट आया और बोला—"आज तो तय्यार मांस कहीं नहीं मिला, क्योंकि मास के बाजार की सभी दुकाने बन्द थीं। आज नया मास नहीं काटा गया। तब सुप्रिया उपासिका को यह विचार हुआ—उस रोगी भिक्षु को पथ्य न मिलने से उसका रोग बढ़ेगा या

[B.311] आबाधो वा अभिवड्डिस्सति, कालङ्किरिया वा भविस्सति; न खो मेतं पतिरूपं याहं पटिस्सुणित्वा न हरापेय्यं'' ति। पोत्थनिकं गहेत्वा ऊरुमंसं उक्कन्तित्वा दासिया अदासि— ''हन्द, जे, इमं मंसं सम्पादेत्वा अमुकस्मिं विहारे भिक्खु गिलानो, तस्स दज्जाहि। यो च मं पुच्छति, 'गिलाना' ति पटिवेदेही'' ति। उत्तरासङ्गेन उरुं वेठेत्वा ओवरकं पविसित्वा मञ्चे निपज्जि। अथ खो सुप्पियो उपासको घरं गन्त्वा दासिं पुच्छि—''कहं, सुप्पिया'' ति? ''एसाय्य, ओवरके निपन्ना'' ति। अथ खो सुप्पियो उपासको येन सुप्पिया उपासिका तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा सुप्पियं उपासिकं एतदवोच—''किस्स निपन्नासी'' ति? ''गिलानाम्ही'' ति। ''किं ते आबाधो'' ति? अथ खो सुप्पिया उपासिका सुप्पियस्स उपासकस्स एतमत्थं आरोचेसि।

अथ खो सुप्पियो उपासको—''अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो, याव सद्धायं सुप्पिया पसन्ना, यत्र हि नाम अत्तनो पि मंसानि परिच्चत्तानि, किं पनिमाय अञ्ञं किञ्चि अदेय्यं भविस्सती'' ति—हट्ठो उदग्गो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सुप्पियो उपासको भगवन्तं एतदवोच— ''अधिवासेतु मे, भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं, सद्धिं भिक्खुसङ्घेना'' ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो सुप्पियो उपासको भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो सुप्पियो उपासको तस्सा रत्तिया अच्चयेन पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि— ''कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं'' ति।

[N.235, R.218] अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन सुप्पियस्स

उसकी मृत्यु हो जायगी। तथा मेरे लिये भी यह लज्जा की बात होगी कि मैं वचन देकर भी उसे पथ्य नहीं पहुँचा सकी।'' यों उसने एक छुरी लेकर अपनी जाँघ का मांस काटकर दासी को यह कहकर दिया—''बहन! जा, इस मांस को तय्यार कर अमुक विहार में रोगाक्रान्त भिक्षु को दे आ। यदि वे मेरे विषय में पूछे तो कह देना—'रुग्ण है।''' फिर चादर से जाँघ पर पट्टी बांध कर कमरे मे जाकर शय्या पर लेट गयी। बाद में सुप्रिय उपासक ने घर में आकर दासी से पूछा— ''सुप्रिया कहाँ है?'' ''आर्य कमरे में लेटी हुई हैं।'' तब सुप्रिय उपासक जहाँ सुप्रिया उपासिका थी वहाँ गया। जाकर उससे पूछा—''कैसे लेटी हो?'' ''रुग्ण हूँ।'' 'तुम्हें क्या रोग है?'' सुप्रिया उपासिका ने तब सुप्रिय उपासक को सम्पूर्ण घटना सुना दी।

तब सुप्रिय उपासक इस तरह हृष्ट, प्रसन्न एवं गद्‌गद होता हुआ कि ''कितना आश्चर्य है, कितना अद्भुत है कि सुप्रिया को इस सीमा तक धर्म में श्रद्धा है कि उसने अपने शरीर का मांस भी धर्मरक्षाहेतु त्याग दिया। इसके लिये अब अन्य क्या अदेय रह गया!'' ऐसे प्रसन्नमन से वह भगवान् के श्रीचरणों में उपस्थित हुआ। तथा वहाँ प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे उसने भगवान् से निवेदन किया—''भन्ते! भगवान् भिक्षुसङ्घ के साथ कल का भोजन मेरे यहाँ स्वीकार करें।'' भगवान् ने मौन भाव से सुप्रिय का यह निवेदन स्वीकार कर लिया। भगवान् की इस तरह अनुमति जानकर सुप्रिय उपासक अपने घर लौट आया। तथा उस रात्रि के बीत जाने पर अपने घर पर अच्छे अच्छे खाद्य पदार्थ तय्यार करवाकर समय पर भगवान् के सम्मुख पहुँच कर उन्हें भोजनकाल की सूचना दी।

उपासकस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि, सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो सुप्पियो उपासको येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो सुप्पियं उपासकं भगवा एतदवोच—"कहं सुप्पिया" ति?"गिलाना, भगवा" ति।"तेन हि आगच्छतू" ति।"न भगवा उस्सहती" ति।"तेन हि परिग्गहेत्वा पि आनेथा" ति। अथ खो सुप्पियो उपासको सुप्पियं उपासिकं [B.312] परिग्गहेत्वा आनेसि। तस्सा, सह दस्सनेन भगवतो, ताव महावणो रुळ्हो अहोसि, सुच्छवि लोमजातो। अथ खो सुप्पियो च उपासको सुप्पिया च उपासिका—"अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो, तथागतस्स महिद्धिकता महानुभावता, यत्र हि नाम सह दस्सनेन भगवतो ताव महावणो रुळ्हो भविस्सति, सुच्छवि लोमजातो" ति—हट्ठा उदग्गा बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदिंसु। अथ खो भगवा सुप्पियं च उपासकं सुप्पियं च उपासिकं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे भिक्खुसङ्घं सन्निपातापेत्वा भिक्खू पटिपुच्छि—"को, भिक्खवे, सुप्पियं उपासिकं मंसं विञ्ञापेसी" ति? एवं वुत्ते सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"अहं खो, भन्ते, सुप्पियं उपासिकं मंसं विञ्ञापेसिं" ति।"आहरियित्थ भिक्खू" ति? "आहरियित्थ, भगवा" ति। "परिभुञ्जि त्वं भिक्खू" ति? "परिभुञ्जाहं, भगवा" ति। "पटिवेक्खि त्वं भिक्खू" ति? "नाहं, भगवा, पटिवेक्खि" ति। विगरहि बुद्धो भगवा...पे.... "कथं हि नाम त्वं, मोघपुरिस, अप्पटिवेक्खित्वा मंसं परिभुञ्जिस्ससि।

तब भगवान् प्रातःकाल वस्त्र पहनकर पात्र-चीवर लेकर भिक्षु सङ्घ के साथ सुप्रिय उपासक के घर पहुँच कर बिछे आसन पर विराजे। तब सुप्रिय उपासक भगवान् के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे उससे भगवान् ने पूछा—"सुप्रिया कहाँ है?" "रोगाक्रान्त है, भन्ते!" "तो उसे भी यहाँ लाओ।" "दुर्बलता के कारण वह यहाँ आने में असमर्थ है, भन्ते!" "तो उसे सहारा देकर ही ले आओ।" तब सुप्रिय उपासक सुप्रिया उपासिका को सहारा देते हुए भगवान् के सम्मुख ले आया। उसके द्वारा भगवान् का दर्शन करते ही उसकी जाँघ का मांसरहित स्थान भर गया एवं पूर्ववत् हो गया। उस पर चमड़ी भी आ गयी तथा रोम भी आ गये। तब वे दोनों उपासक-उपासिकाएँ भगवान् का यह दिव्य चमत्कार देखकर उन्होंने प्रसन्न, सन्तुष्ट एवं गद्गद होते हुए भगवान् एवं भिक्षुसङ्घ को, घर में बनाया भोजन अपने हाथ से परोसते हुए, सन्तुष्ट एवं सन्तृप्त कर भगवान् को पात्र से हाथ हटाया हुआ देखकर, उन्हें तृप्त जानकर, वे दोनो भी एक तरफ बैठ गये। भगवान् भी उन्हें धार्मिक कथाएँ सुनाकर अपने आश्रम को वापस चल दिये।

(आराम में आकर) भगवान् ने इस प्रकरण में भिक्षुसङ्घ को एकत्र कराकर उससे पूछा—"भिक्षुओ! सुप्रिया उपासिका से पथ्य के रूप में किसने माँस लाने के लिये कहा था?" तब मांस मँगाने वाले भिक्षु ने भगवान् से कहा—"भन्ते! मैंने सुप्रिया उपासिका से माँस मँगवाया था।" "वह तुम्हारे लिये लाया गया?" "हाँ, भन्ते! लाया गया।" "भिक्षु! तुमने उसका उपयोग किया?" "हाँ, भन्ते! मैंने उपयोग किया।" "तो, भिक्षु तुमने उस मांस का उपयोग करने से पूर्व उसकी समीक्षा की कि 'वह

मनुस्समंसं खो तया, मोघपुरिस, परिभुत्तं। नेतं, मोघपुरिस, अप्पसन्नानं वा पसादाय.... पे०....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"सन्ति, भिक्खवे, मनुस्सा सद्धा पसन्ना, तेहि अत्तनो पि मंसानि परिच्चत्तानि। **न, भिक्खवे, मनुस्समंसं परिभुञ्जितब्बं। यो परिभुञ्जेय्य, आपत्ति थुल्लच्चयस्स। न च, भिक्खवे, अप्पटिवेक्खित्वा मंसं परिभुञ्जितब्बं। यो परिभुञ्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

१०. हत्थिमंसादिपटिक्खेपकथा

[R.219] २२. तेन खो पन समयेन रञ्ञो हत्थी मरन्ति मनुस्सा दुब्भिक्खे हत्थिमंसं परिभुञ्जन्ति, भिक्खूनं पिण्डाय चरन्तानं हत्थिमंसं देन्ति। भिक्खू हत्थिमंसं परिभुञ्जन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया हत्थिमंसं परिभुञ्जिस्सन्ति। राजङ्गं हत्थी। सचे राजा जानेय्य, न नेसं अत्तमनो अस्सा" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। [B.313] **न, भिक्खवे, हत्थिमंसं परिभुञ्जितब्बं। यो परिभुञ्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

[N.236] तेन खो पन समयेन रञ्ञो अस्सा मरन्ति। मनुस्सा दुब्भिक्खे अस्समंसं परिभुञ्जन्ति, भिक्खूनं पिण्डाय चरन्तानं अस्समंसं देन्ति। भिक्खू अस्समंसं परिभुञ्जन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया अस्समंसं परिभुञ्जिस्सन्ति।

किस प्राणी का मांस है? किसका नहीं?' '' ''नहीं, भन्ते! मैंने समीक्षा नहीं की।' तब भगवान् ने उस भिक्षु को फटकार कर, धार्मिक कथाएँ कहते हुए, भिक्षुओं को आदेश देते हुए कहा—''भिक्षुओ! समाज में कुछ उपासक इस धर्म के प्रति इतने श्रद्धालु हैं कि वे इस धर्म में प्रव्रजित को अपने शरीर का मांस काटकर देने में भी पीछे नहीं हटते! परन्तु **भिक्षुओ! तुम्हें मनुष्य–मांस का उपयोग नहीं करना चाहिये। जो उपयोग करेगा उसे 'स्थूलात्यय' दोष लगेगा।** तथा **भिक्षुओ! तुम्हें किसी भी प्रकार के मांस की समीक्षा किये विना उसका उपयोग नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।''**

१०. हाथी आदि के मांस के उपयोग का भी निषेध

हस्तिमांस का निषेध– २२. उस समय राजा की हस्तिशाला में हाथी मरने लगे थे। यों भिक्षु उन हाथियों के मांस का खाद्य के रूप में उपयोग करने लगे। यह देखकर समाज के भद्र लोग, दु:खी उद्विग्न एवं खिन्न हुए– ''कैसे, ये शाक्यपुत्रीय श्रमण भी हस्तिमांस का उपयोग करते हैं। हाथी तो राजा की सम्पत्ति होता है, अतः यदि राजा को यह बात ज्ञात हो गयी तो वह इन भिक्षुओं से असन्तुष्ट भी हो सकता है।'' भगवान् को यह बात बतायी गयी।.....**''भिक्षुओ! हस्तिमांस का उपयोग नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**

अश्व–मांस का निषेध– उस समय राजा की अश्वशाला में घोड़े मरने लगे थे.... पूर्ववत्....**''भिक्षुओ! अश्वमांस का भक्ष्य के रूप में उपयोग नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष होगा।''**

कुत्ते के मांस का निषेध– उस समय, दुर्भिक्ष के कारण खाद्यान्न के अभाव में, भिक्षुलोग कुत्ते का मांस भी खाने लगे थे; क्योंकि भिक्षा में भी उनको कुत्ते के मांस से बने पदार्थ ही मिलने लगे। अतः विवशतः उन्हें वह खाना ही पड़ता था।....पूर्ववत्....श्व–मांसभक्षण तो शास्त्र में निन्द्य बताया

राजञ्ञं अस्सा। सचे राजा जानेय्य, न नेसं अत्तमनो अस्सा'' ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, अस्समंसं परिभुञ्जितब्बं। यो परिभुञ्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

तेन खो पन समयेन मनुस्सा दुब्भिक्खे अहिमंसं परिभुञ्जन्ति, भिक्खूनं पिण्डाय चरन्तानं अहिमंसं देन्ति। भिक्खू अहिमंसं परिभुञ्जन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया सुनखमंसं परिभुञ्जिस्सन्ति, जेगुच्छो सुनखो पटिक्कूलो'' ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सुनखमंसं परिभुञ्जितब्बं।** यो परिभुञ्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा ति।

तेन खो पन समयेन मनुस्सा दुब्भिक्खे अहिमंसं परिभुञ्जन्ति, भिक्खूनं पिण्डाय चरन्तानं अहिमंसं देन्ति। भिक्खू अहिमंसं परिभुञ्जिन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया अहिमंसं परिभुञ्जिस्सन्ति, जेगुच्छो अहि पटिक्कूलो'' ति। सुपस्सो पि नागराजा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सुपस्सो नागराजा भगवन्तं एतदवोच— ''सन्ति, भन्ते, नागा अस्सद्धा अप्पसन्ना। ते अप्पमत्तकेहि पि भिक्खू विहेठेय्युं। साधु, भन्ते, अय्या अहिमंसं न परिभुञ्जेय्युं'' ति। अथ खो भगवा सुपस्सं नागराजानं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि....पे०....पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो भगवा, एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**न, भिक्खवे, अहिमंसं** [R.220] **परिभुञ्जितब्बं।** यो परिभुञ्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा'' ति।

तेन खो पन समयेन लुद्दका सीहं हन्त्वा सीहमंसं परिभुञ्जन्ति, भिक्खूनं [B.314] पिण्डाय चरन्तानं सीहमंसं देन्ति। भिक्खू सीहमंसं परिभुञ्जित्वा अरञ्ञे विहरन्ति। सीहा सीहमंसगन्धेन भिक्खू परिपातेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सीहमंसं परिभुञ्जितब्बं। यो परिभुञ्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

गया है तथा स्वास्थ्य के भी प्रतिकूल ही होता है। भगवान् से यह बात कही गयी। ''**भिक्षुओ! कुत्ते की मांस का प्रयोग (खाद्य के रूप में) नहीं करना चाहिये। जो प्रयोग करे उसे 'दुष्कृत' दोष लगे।**

सर्प–मांस का निषेध– उस समय दुर्भिक्ष के कारण सर्प–मांस का भी उपयोग करने लगे।...पूर्ववत्....प्रतिकूल ही होता है। इसी बीच सुपस्स नामक नागराज भगवान् के पास आया। तथा भगवान् को अभिवादन कर, एक तरफ खड़े होकर उसने निवेदन किया—''भन्ते! हमारी सर्पयोनि में कुछ सर्प ऐसे भी हैं जो आपके धर्म के प्रति कोई श्रद्धा नहीं रखते। वे इन भिक्षुओ को सर्प खाते देखेंगे तो हो सकता है, वे क्रुद्ध होकर कभी इनको काट लें। अतः अच्छा यही होगा कि भिक्षु जन सर्पों का खाद्य के रूप मे उपयोग न करें।'' तब भगवान् ने सुपस्स नागराज को धार्मिक कथाएँ कहकर सन्तुष्ट....किया। तथा वह....चला गया। बाद मे भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—''**भिक्षुओ! खाद्य के रूप में सर्पों का उपयोग नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**''

सिंह के मांस का निषेध– उस समय शिकारी लोग सिंह का शिकार कर उसके मांस का उपयोग खाद्य के रूप में करते थे। और भिक्षुओं को भी भिक्षा में वही मांस देते थे। वे उसका उपयोग कर जङ्गल मे ही रहते थे। जङ्गल में दूसरे जीवित सिंह, उन भिक्षुओं में सिंह के मांस की गन्ध पाकर उन्हें मार डालते थे। भगवान् को इस बात का पता लगने पर उन्होने आदेश दिया—''**भिक्षुओ! सिंह के मांस का खाद्य के रूप में उपयोग नहीं करना चाहिये। जो करे उसे 'दुष्कृत' दोष लगे।**

तेन खो पन समयेन व्यग्घं हन्त्वा....पे०....दीपिं हन्त्वा.....पे०.....अच्छं हन्त्वा....पे०....तरच्छं हन्त्वा तरच्छमंसं परिभुञ्जन्ति, भिक्खूनं पिण्डाय चरन्तानं तरच्छमंसं देन्ति। भिक्खू तरच्छमंसं परिभुञ्जित्वा अरञ्ञे विहरन्ति। तरच्छा तरच्छमंसगन्धेन भिक्खू परिपातेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, तरच्छमंसं परिभुञ्जितब्बं। यो परिभुञ्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति। ।। सुप्पियभाणवारो निट्ठितो दुतियो।।

११. यागुमधुगोळकानुजानना

[N.237] २३. अथ खो भगवा वाराणसियं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन अन्धकविन्दं तेन चारिकं पक्कामि, महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं, अड्ढतेरसेहि भिक्खुसतेहि। तेन खो पन समयेन जनपदा मनुस्सा बहुं लोणं पि, तेलं पि, तण्डुलं पि, खादनीयं पि सकटेसु आरोपेत्वा बुद्धप्पमुखस्स भिक्खुसङ्घस्स पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धा होन्ति—यदा पटिपाटिं लभिस्साम तदा भत्तं करिस्सामा ति, पञ्चमत्तानि च विघासादसतानि। अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन अन्धकविन्दं तदवसरि। अथ खो अञ्ञतरस्स ब्राह्मणस्स पटिपाटिं अलभन्तस्स एतदहोसि—"अतीतानि खो मे द्वे मासानि बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं अनुबन्धन्तस्स 'यदा पटिपाटिं लभिस्सामि तदा भत्तं करिस्सामी' ति, न च मे पटिपाटि लब्भति, अहं चम्हि एकको, बहु च मे घरावासत्थो हायति। यन्नूनाहं भत्तग्गं ओलोकेय्यं; यं भत्तग्गे नास्स, तं पटियादेय्यं" ति। अथ खो सो ब्राह्मणो भत्तग्गं ओलोकेन्तो द्वे नाद्दस—यागुं च [B.315] मधुगोळकं च।

अथ खो सो ब्राह्मणो येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं

व्याघ्र, चीता, रीछ एवं लकड़बग्घा के मांस का निषेध— उस समय शिकारी लोग व्याघ्र.... चीता...रीछ.....लकड़बग्घा को मारकर...."**भिक्षुओ! लकड़बग्घे (तरक्षु) के मांस का खाद्य के रूप में उपयोग नहीं करना चाहिये। जो करे उसको 'दुष्कृत' दोष लगेगा।।**"

द्वितीय सुप्रियभाणवार समाप्त।।

११. खिचड़ी एवं लड्डू खाने की अनुमति

२३. तब भगवान् वाराणसी में यथेच्छ ध्यान साधना कर **अन्धकविन्द** (राजगृह से तीन गव्यूति की दूरी पर बसा हुआ एक ग्राम) की चारिका हेतु चल पड़े। उस समय वहाँ के ग्रामवासी बहुत सा नमक, तैल, चावल एवं अन्य खाद्य पदार्थ गाड़ियों में रखकर भिक्षुसङ्घ के पीछे पीछे इसलिये चलते थे कि 'जब हमारा अवसर (प्रतिपाटि=क्रम) आयगा तब हम भगवान् एवं भिक्षुसङ्घ को भोजन करायेंगे।' इसी तरह उस समय पाँच सौ उच्छिष्टभोजी (विघासाद=जूठा खाने वाले) लोग भी सङ्घ के पीछे पीछे चल रहे थे कि 'इनसे जूठा छूटने पर वह हमें खाने के लिये मिल जायगा।' तब भगवान् क्रमशः चारिका करते हुए अन्धकबिन्द ग्राम पहुँचे। तब किसी ब्राह्मण (उपासक) को, सङ्घ को भोजन कराने का अवसर नहीं मिल रहा था तथा घर लौटने की जल्दी में था—यह विचार हुआ—"मुझे भिक्षुसङ्घ का अनुगमन करते हुए आज दो मास हो गये। अभी तक सङ्घ को भोजन देने का मेरा अवसर नहीं आया, मुझे घर पर बहुत सा कार्य भी अवशिष्ट पड़ा है; तो क्यों न भोजनालय में भिक्षुओं की पंक्ति (भत्तग्ग=पंगत) देखूँ जो वहाँ न हो उसको मैं दूँ।" तब ब्राह्मण को भक्ताग्र देखते हुए यह समझ में आया कि यहाँ यवागू एवं लड्डू (मधुगोलक) नहीं हैं।

तब ब्राह्मण आयुष्मान् आनन्द के पास गया और उन्हें अपने मन की बात बतायी और पूछा

आनन्दं एतदवोच—"इध मे, भो आनन्द, पटिपाटिं अलभन्तस्स एतदहोसि—'अतीतानि खो मे द्वे मासानि बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं अनुबन्धन्तस्स, यदा पटिपाटिं लभिस्सामि तदा भत्तं करिस्सामी' ति। न च मे पटिपाटि लब्भति, अहं चम्हि एकको, बहु च मे [R.221] घरावासत्थो हायति। यन्नूनाहं भत्तग्गं ओलोकेय्यं; यं भत्तग्गे नास्स, तं पटियादेय्यं' ति। सो खो अहं, भो आनन्द, भत्तग्गं ओलोकेन्तो द्वे नाद्दसं—यागुं च मधुगोळकं च। सचाहं, भो आनन्द, पटियादेय्यं यागुं च मधुगोळकं च, पटिग्गण्हेय्य मे भवं गोतमो" ति? "तेन हि, ब्राह्मण, भगवन्तं पटिपुच्छिस्सामी" ति। अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवतो एतमत्थं आरोचेसि। "तेन हानन्द, पटियादेतू" ति। "तेन हि, ब्राह्मण, पटियादेही" ति।

अथ खो सो ब्राह्मणो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पहूतं यागुं च मधुगोळकं च पटियादापेत्वा भगवतो उपनामेसि—"पटिग्गण्हातु मे भवं गोतमो यागुं च मधुगोळकं चा" ति। "तेन हि, ब्राह्मण, भिक्खूनं देही" ति। भिक्खू कुक्कुच्चायन्ता न पटिग्गण्हन्ति। "पटिग्गण्हथ, भिक्खवे, परिभुञ्जथा" ति। अथ खो सो ब्राह्मणो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पहूताय यागुया च मधुगोलकेन च सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा भगवन्तं धोतहत्थं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो तं ब्राह्मणं भगवा एतदवोच—

"दसयिमे, ब्राह्मण, आनिसंसा यागुया। कतमे दस? १. यागुं देन्तो आयुं देति, २. वण्णं देति, ३. सुखं देति, ४. बलं देति, ५. पटिभानं देति, ६. यागु पीता खुदं पटिहनति, ७. पिपासं विनेति, ८. वातं अनुलोमेति, ९. वत्थिं सोधेति, १०. आमावसेसं [N.238] पाचेति—इमे खो, ब्राह्मण, दसानिसंसा यागुया" ति।

यो सञ्ञतानं परदत्तभोजिनं कालेन सक्कच्च ददाति यागुं।

कि "यदि मैं खिचड़ी एवं लड्डू तय्यार कर दूँ तो पूजनीय गौतम उन्हें स्वीकार करेंगे।" आनन्द ने कहा—"ब्राह्मण! यह मैं भगवान् से पूछकर ही बताऊँगा।" और आयुष्मान् आनन्द ने ब्राह्मण का निवेदन भगवान् के सामने रखा। भगवान् ने स्वीकृति दे दी। भगवान् की यह स्वीकृति आयुष्मान् आनन्द ने ब्राह्मण को सूचित कर दी।

तब ब्राह्मण ने उस रात्रि के बीतने पर, बहुत सी खिचड़ी तथा लड्डू बनवाये और भगवान् के सम्मुख ले जाकर रख दिये और कहा—"भो गौतम! आप यह खिचड़ी और लड्डू स्वीकार करें।" भगवान् ने आज्ञा दी—"यह सब भिक्षुओं में बाँट दो।" परन्तु भिक्षुओं ने सङ्कोचवश लेना स्वीकार नहीं किया। (तब भगवान् ने आदेश दिया—) "भिक्षुओ! ले लो और खाओ।" तब उस श्रद्धालु ब्राह्मण बुद्धसहित भिक्षुसङ्घ को अपने हाथ से बहुत सी यवागू एवं लड्डू परोसते हुए उनसे सन्तुष्ट एवं सन्तृप्त हो जाने के बाद, भगवान् को पात्र से हाथ खींचा हुआ देखकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ब्राह्मण को प्रमुख मानते हुए भगवान् ने उस समय यवागू के ये दश गुण बताये।

खिचड़ी के दश गुण— "ब्राह्मण! यवागू-पान के दश गुण हैं। कौन से दश? १. यवागू देने वाला एक तरह से आयु का ही देने वाला होता है; २. वर्ण (रूप) का...., ३. सुख का....४, बल का...., ५. प्रतिभा का देने वाला होता है; ६. उसकी दी हुई यवागू पीने पर, क्षुधा (भूख) मिट जाती है, ७. प्यास मिट जाती है; ८. वह (अपान) वायु को अनुकूल बना देती है; ९. वस्ति (पक्वाशय=मलाशय) का शोधन करती है तथा १०. अनपच को दूर कर देती है।

(इसी बात को गाथाओं में कहा जा रहा है—) जो संयत एव दूसरे का दिया लेकर खाने वाले

दसस्स ठानानि अनुप्पवेच्छति आयुं च वण्णं च सुखं बलं च॥
[B.316] पटिभानमस्स उपजायते ततो खुदं पिपासं च ब्यपनेति वातं।
सोधेति वत्थिं परिणामेति भुत्तं भेसज्जमेतं सुगतेन वण्णितं॥
तस्मा हि यागुं अलमेव दातुं निच्चं मनुस्सेन सुखत्थिकेन।
दिब्बानि वा पत्थयता सुखानि मनुस्ससोभग्यतमिच्छता वा॥ ति॥

[R.222] अथ खो भगवा तं ब्राह्मणं इमाहि गाथाहि अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामि। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि— **"अनुजानामि, भिक्खवे, यागुं च मधुगोळकं चा"** ति।

१२. तरुणपसन्नमहामत्तवत्थु

२४. अस्सोसुं खो मनुस्सा भगवता किर यागु अनुञ्ञाता मधुगोळकं चा ति। ते कालस्सेव भोज्जयागुं पटियादेन्ति मधुगोळकं च। भिक्खू कालस्सेव भोज्जयागुया धाता मधुगोळकेन च भत्तग्गे न चित्तरूपं परिभुञ्जन्ति। ते खो पन समयेन अञ्ञतरेन तरुणप्पसन्नेन महामत्तेन स्वातनाय बुद्धप्पमुखो भिक्खुसङ्घो निमन्तितो होति। अथ खो तस्स तरुणप्पसन्नस्स महामत्तस्स एतदहोसि—"यन्नूनाहं अड्ढतेरसन्नं भिक्खुसतानं अड्ढतेरसानि मंसपातिसतानि पटियादेय्यं, एकमेकस्स भिक्खुनो एकमेकं मंसपातिं उपनामेय्यं" ति। अथ खो तरुणप्पसन्नो महामत्तो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा अड्ढतेरसानि च मंसपातिसतानि, भगवतो कालं आरोचापेसि—"कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं" ति।

(भिक्षुओं) को सत्कारपूर्वक समय (पूर्वाह्न) पर खिलाता है उसके दश लाभ होते हैं। वह यवागू आयु, वर्ण, बल एवं प्रतिभा खाने वाले को मिलती है।

उससे भूख-प्यास मिट जाती है। वह वस्ति का शोधन कर देती है पहले खाये हुए को तथा खाये हुए को पचाती है। सुगत ने एक प्रकार की ओषधि के रूप में इसकी गणना की है।

अतः सौभाग्यकांक्षी, परलोक में दिव्य सुख चाहने वाले तथा इस लोक में ऐश्वर्य सुख की इच्छा वाले पुरुष को यवागू का नित्यदान करना चाहिये।

यों भगवान् ने इन (तीन) गाथाओं से यवागू की प्रशंसा की तथा आसन से उठकर एकान्त में साधनाहेतु जा बैठे। कुछ देर बाद भगवान् ने भिक्षुओं को इस प्रकरण में धार्मिक कथा कहते हुए यह आदेश दिया—**"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ यवागू एवं मधुगोलक (शहद से बने लड्डू) के खाद्य के रूप में उपयोग की।"**

१२. युवा श्रद्धालु महामात्य की कथा

निमन्त्रितों को अन्य स्थान से यवागू लेना निषिद्ध— २४. जब श्रद्धालु मनुष्यों ने सुना कि भगवान् ने यवागू एवं मधुपिण्डक के दान की अत्यधिक प्रशंसा की है तब वे प्रातः ही खाने योग्य यवागू एवं मधुगोलक तय्यार कराते थे। भिक्षु उस यवागू का जलपान के रूप में यथेच्छ ग्रहण कर प्रधान भोजन मन लगाकर ग्रहण नहीं कर पाते थे। उसी समय एक श्रद्धालु युवक महामात्य (राज्याधिकारी) ने दूसरे दिन के लिये बुद्धसहित भिक्षुसङ्घ को अपने घर पर भिक्षा हेतु आमन्त्रित किया। आमन्त्रित करने के बाद उस युवक महामात्य के ध्यान में यह आया कि क्यों न मै साढे बारह सौ भिक्षुओं के लिये साढ़े बारह सौ मांस की थालियाँ तैयार कराऊँ और एक एक भिक्षु को एक एक मांस की थाली प्रदान करूँ। तब उस श्रद्धालु युवक (तरुण) महामात्य ने उस रात्रि के बीतने पर, उत्तम खाद्य,

अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन तस्स तरुणप्पसन्नस्स महामत्तस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि, सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो सो तरुणप्पसन्नो महामत्तो भत्तग्गे भिक्खू परिविसति। भिक्खू एवमाहंसु—[N.239] "थोकं, आवुसो, देहि; थोकं, आवुसो, देही" ति। "मा खो तुम्हे, भन्ते,—अयं तरुणप्पसन्नो महामत्तो ति—थोकं थोकं पटिग्गण्हथ। बहुं मे खादनीयं भोजनीयं पटियत्तं, [B.317] अड्ढतेलसानि च मंसपातिसतानि। एकमेकस्स भिक्खुनो एकमेकं मंसपातिं उपनामेस्सामी" ति। "पटिग्गण्हथ, भन्ते, यावदत्थं" ति। "न खो मयं, आवुसो, एतङ्कारणा थोकं थोकं अपि च मयं कालस्सेव भोज्जयागुया धाता मधुगोलकेन च। तेन मयं थोकं थोकं पटिग्गण्हामा" ति। अथ खो सो तरुणप्पसन्नो महामत्तो उज्झायति खिय्यति विपाचेति—"कथं हि नाम भदन्ता मया निमन्तिता अञ्ञस्स भोज्जयागुं परिभुञ्जिस्सन्ति, न चाहं पटिबलो यावदत्थं दातुं!" ति कुपितो अनत्तमनो आसादनापेक्खो भिक्खूनं पत्ते पूरेन्तो अगमासि—'भुञ्जथ वा हरथ वा' ति। अथ खो सो तरुणप्पसन्नो महामत्तो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो तं तरुणप्पसन्नं महामत्तं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

अथ खो तस्स तरुणप्पसन्नस्स महामत्तस्स अचिरपक्कन्तस्स भगवतो अहुदेव कुक्कुच्चं, अहु विप्पटिसारो—"अलाभा वत मे, न वत मे लाभा; दुल्लद्धं वत मे, न वत मे

भोज्य तथा साढ़े बारह सौ मांस की थालियाँ तैयार करवाकर भगवान् को भोजन का समय सूचित किया कि भन्ते! भोजन तय्यार है अब जैसा आप उचित समझें।

तब भगवान् ने वस्त्र पहन कर पात्र चीवर लेकर उस तरुण महामात्य के घर जाकर भिक्षुसङ्घ सहित विछा आसन ग्रहण किया। तब वह महामात्य चौके में भिक्षुओं को भोजन परोसने लगा। तब भिक्षु बोले—"महामात्य! कुछ थोड़ा ही परोसो।" यह सुनकर महामात्य ने सोचा—"ये भिक्षु (दुर्भिक्ष के कारण) सङ्कोच करते हुए थोड़ा परोसने की बात कर रहे हैं।" उसने कहा—"आप लोग जितना भी आवश्यक हो उतना लें; "मैं छोटा अधिकारी हूँ, इसलिये मैंने कम ही भोजन बनवाया होगा'— ऐसा न सोचे।' मैंने साढ़े बारह सौ थालियों जितना मांस पकवाया है कि एक थाली भर कर मांस प्रत्येक भिक्षु को दूँगा। अतः भन्ते! आप लोग इच्छापूर्वक ग्रहण करें।" "भिक्षुओं ने कहा—"आयुष्मन्! हम इस कारण थोडा नहीं ले रहे; अपितु हमने प्रातः यवागू एवं मधुगोलक पेट भर कर खा लिये हैं अतः अब पेट में अधिक स्थान ही नहीं है।" तब यह सुनकर उस तरुण महामात्य को बहुत खेद एवं उद्वेग हुआ कि कैसे इन भिक्षुओं ने मेरा निमन्त्रण पाने का बाद भी प्रातःकाल ही दूसरों की दी हुई यवागू से पेट भर लिया! क्या मैं इन्हें पेटभर भोजन देने में समर्थ नहीं था।" यह कहकर वह कुपित होकर भिक्षुओं की थालियो में अधिक से अधिक मांस डालता चला गया कि "भले ही आप खायें या ले जाँय।"

यो वह श्रद्धालु महामात्य भगवान् को अपने हाथ से उत्तम खाद्य पदार्थ परोसते हुए सन्तुष्ट सन्तृप्त कर, भगवान् को पात्र से हाथ हटाया हुआ जानकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस

सुलद्धं; योहं कुपितो अनत्तमनो आसादनापेक्खो भिक्खूनं पत्ते पूरेन्तो अगमासिं—'भुञ्जथ वा हरथ वा' ति। किं नु खो मया बहुं पसुतं पुञ्ञं वा अपुञ्ञं वा'' ति? अथ खो सो तरुणप्पसन्नो महामत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—''इध मय्हं, भन्ते, अचिरपक्कन्तस्स भगवतो अहुदेव कुक्कुच्चं, अहु विप्पटिसारो—'अलाभा वत मे, न वत मे लाभा; दुल्लद्धं वत मे, न वत मे सुलद्धं; योहं कुपितो अनत्तमनो आसादनापेक्खो भिक्खूनं पत्ते पूरेन्तो अगमासिं—'भुञ्जथ वा हरथ वा' ति। किं नु खो मया बहुं पसुतं, पुञ्ञं वा अपुञ्ञं वा' ति! किं नु खो मया, भन्ते, बहुं पसुतं, पुञ्ञं वा अपुञ्ञं वा'' ति? ''यदग्गेन तया, आवुसो, स्वातनाय बुद्धप्पमुखो भिक्खुसङ्घो निमन्तितो तदग्गेन ते बहु [B.318] पुञ्ञं पसुतं। यदग्गेन ते एकमेकेन भिक्खुना एकमेकं सित्थं पटिग्गहितं तदग्गेन ते बहुं पुञ्ञं पसुतं, सग्गा ते आरद्धा'' ति। अथ खो सो तरुणप्पसन्नो महामत्तो—''लाभा किर मे, सुलद्धं किर मे, बहुं किर मया पुञ्ञं पसुतं, सग्गा किर मे आरद्धा'' ति—हट्ठो उदग्गो उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो भगवा एतस्मिं [N.240] निदाने एतस्मिं पकरणे भिक्खुसङ्घं सन्निपातेपेत्वा भिक्खू पटिपुच्छि—''सच्चं किर, भिक्खवे, भिक्खू अञ्ञत्र निमन्तिता अञ्ञस्स भोज्जयागुं परिभुञ्जन्ती'' ति? ''सच्चं, भगवा'' ति। विगरहि बुद्धो भगवा...पे०....कथं हि नाम ते, भिक्खवे, मोघपुरिसा अञ्ञत्र [R.224] निमन्तिता अञ्ञस्स भोज्जयागुं परिभुञ्जिस्सन्ति। नेतं, भिक्खवे, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०...विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**न, भिक्खवे, अञ्ञत्र निमन्तितेन अञ्ञस्स भोज्जयागु परिभुञ्जितब्बा। यो परिभुञ्जेय्य, यथाधम्मो कारेतब्बो**'' ति।

महामात्य को धार्मिक कथाओं द्वारा धर्म के प्रति समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। अन्त में भगवान् आसन से उठकर आराम में चले आये।

भगवान् के चले जाने के बाद उस महामात्य को यह पश्चात्ताप होने लगा—''क्यों मैंने कुपित होकर, भिक्षुओं की थाली में, उन्हें चिढ़ाने की इच्छा से अधिक अधिक मांस परोस दिया। इससे तो मुझे अपुण्य ही हुआ होगा। मैंने तो सङ्घ को दानकर पुण्यप्राप्ति की इच्छा की थी, परन्तु मैंने तो इसके विपरीत, उन्हें चिढ़ा कर क्रोधपूर्वक देते हुए अपुण्य ही अर्जित कर लिया!''

यों उद्विग्न होता हुआ वह सङ्घ के पीछे पीछे आराम में पहुँचा और भगवान् के सामने अपना उद्वेग रखते हुए पूछा—''भन्ते! इस कार्य से मुझे पुण्य हुआ या अपुण्य! भन्ते! मैंने तो पुण्य की इच्छा की थी।'' ''आयुष्मन्! जिस तरह से तुमने भिक्षुसङ्घ को निमन्त्रित किया था उससे तुमने बहुत पुण्य अर्जित किया। फिर तुमने जिस उदारता से परोसा उससे भी तुमने पुण्य ही अर्जित किया। इन सबसे तुमने अपने पुण्य (स्वर्ग) का मार्ग ही खोल दिया है।'' तब उस महामात्य को भगवान् के इस सान्त्वना-प्रवचन से विश्वास जमा कि उसने पुण्यकार्य ही किया है, अपुण्य नहीं। इससे प्रसन्न, प्रहृष्ट एवं गद्‌गद होकर आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर अपने निवास स्थान को लौट गया।

तब भगवान् ने इस प्रकरण में भिक्षुसङ्घ को एकत्र कर पूछा—भिक्षुओ! क्या वस्तुतः भिक्षु लोग दूसरी जगह का निमन्त्रण पाकर भी दूसरे को दी गयी यवागू लेते हैं?'' ''हाँ, भगवन्!'' तब भगवान् ने फटकार कर...पूर्ववत्....धार्मिक कथा कहते हुए आदेश दिया—''**भिक्षुओ! अन्यत्र निमन्त्रण**

१३. बेलट्ठकच्चानवत्थु

२५. अथ खो अन्धकविन्दे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन राजगहं तेन चारिकं पक्कमि, महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं, अड्ढतेरसेहि भिक्खुसतेहि। तेन खो पन समयेन बेलट्ठो कच्चानो राजगहा अन्धकविन्दं अद्धानमग्गपटिपन्नो होति, पञ्चमत्तेहि सकटसतेहि, सब्बेहेव गुळकुम्भपूरेहि। अद्दसा खो भगवा बेलट्ठं कच्चानं दूरतो व आगच्छन्तं, दिस्वान मग्गा ओक्कम्म अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसीदि। अथ खो बेलट्ठो कच्चानो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो बेलट्ठो कच्चानो भगवन्तं एतदवोच—"इच्छामहं, भन्ते, एकमेकस्स भिक्खुनो एकमेकं गुळकुम्भं दातुं" ति। "तेन हि त्वं, कच्चान, एकं येव गुळकुम्भं आहरा" ति। "एवं, भन्ते" ति खो बेलट्ठो कच्चानो भगवतो पटिस्सुणित्वा एकं येव गुळकुम्भं आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—"आभतो, भन्ते, गुळकुम्भो; कथाहं, भन्ते, पटिपज्जामी" ति? "तेन हि त्वं, कच्चान, भिक्खूनं गुळं देही" ति। "एवं, भन्ते" ति खो बेलट्ठो कच्चानो भगवतो पटिस्सुणित्वा भिक्खूनं गुळं दत्वा भगवन्तं एतदवोच—"दिन्नो, [B.319] भन्ते, भिक्खूनं गुळो. बहु चायं गुळो अवसिट्ठो। कथाहं, भन्ते, पटिपज्जामी" ति? "तेन हि त्वं, कच्चान, भिक्खूनं गुळं यावदत्थं देही" ति। "एवं, भन्ते" ति खो बेलट्ठो कच्चानो भगवतो पटिस्सुणित्वा भिक्खूनं गुळं यावदत्थं दत्वा भगवन्तं एतदवोच—"दिन्नो, भन्ते भिक्खूनं गुळो यावदत्थो बहु चायं गुळो अवसिट्ठो। कथाहं, भन्ते, पटिपज्जामी" ति? तेन हि त्वं, कच्चान, भिक्खू गुळेहि सन्तप्पेही" ति। "एवं, भन्ते" ति खो बेलट्ठो कच्चानो भगवतो पटिस्सुणित्वा भिक्खू गुळेहि सन्तप्पेसि। एकच्चे भिक्खू पत्ते पि पूरेसुं, परिस्सावनानि पि, थविकायो पि पूरेसुं।

मिलने के बाद दूसरी जगह से खादय के रूप में यवागू का उपयोग नहीं करना चाहिये। जो करे उसे धर्मानुसार दण्ड देना चाहिये।"

२५. वेलट्ठकच्चानवस्तु

२५. उस समय भगवान् अन्धकविन्द से, यथेच्छ धर्मसाधना करने के बाद साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के साथ राजगृह की तरफ चारिकाहेतु चल पड़े। उस समय वेलट्ठकच्चान (नामक व्यापारी) गुड़ के घड़ों से भरी पाँच सौ गाड़ियों के समूह के साथ रागृह से अन्धकबिन्द मार्ग पर जा रहा था। भगवान् ने दूर से ही वेलट्ठकच्चान को आते हुए देख लिया। देखकर, भगवान् मार्ग से हटकर एक वृक्ष की छाया में बैठ गये। तब वह वेलट्ठकच्चान जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गया। जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ खड़ा हो गया। एक तरफ खड़े वेलट्ठकच्चान ने भगवान् से कहा—"भन्ते! मै प्रत्येक भिक्षु को गुड से भरा एक एक घड़ा देना चाहता हूँ।" "तो कच्चान! तूँ एक ही गुड़ से भरा हुआ घड़ा ले आ।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर वेलट्ठकच्चान गुड़ से भरा हुआ एक घड़ा ले आया और भगवान् से पूछा—"भन्ते! मुझे इसका क्या करना चाहिये?" "तो कच्चान! यह भिक्षुओं में बाँट दे।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर घडे का समग्र गुड़ वेलट्ठकच्चान ने सभी भिक्षुओं को बाँट दिया। बाँटने के बाद अधिक गुड बच गया। तब उसने भगवान् से पुनः पूछा—"भन्ते! इस अवशिष्ट गुड का क्या करूँ?" "तो कच्चान! इस गुड़ से भिक्षुओं को सन्तृप्त कर। अधिक मात्रा मे गुड़ देकर उन्हें सन्तुष्ट

अथ खो बेलट्ठो कच्चानो भिक्खू गुळेहि सन्तप्पेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"सन्तप्पिता, [R.225] भन्ते, भिक्खू गुळेहि, बहु चायं गुळो अवसिट्ठो। कथाहं, भन्ते, पटिपज्जामी" ति? "तेन हि त्वं, कच्चान, विघासादानं गुळं देही" ति। "एवं, भन्ते" ति खो बेलट्ठो कच्चानो भगवतो पटिस्सुणित्वा विघासादानं गुळं यावदत्थं दत्वा भगवन्तं एतदवोच— [N.241] "दिन्नो, भन्ते, विघासादानं गुळो, बहु चायं गुळो अवसिट्ठो। कथाहं, भन्ते, पटिपज्जामी" ति? "तेन हि त्वं, कच्चानं, विघासादानं गुळं यावदत्थं देही" ति। "एवं, भन्ते" ति खो बेलट्ठो कच्चानो भगवतो पटिस्सुणित्वा विघासादानं गुळं यावदत्थं दत्वा भगवन्तं एतदवोच—"दिन्नो, भन्ते, विघासादानं गुळो यावदत्थो, बहु चायं गुळो अवसिट्ठो। कथाहं, भन्ते, पटिपज्जामी" ति? "तेन हि त्वं, कच्चान, विघासादे गुळेहि सन्तप्पेही" ति। "एवं, भन्ते" ति खो बेलट्ठो कच्चानो भगवतो पटिस्सुणित्वा विघासादे गुळेहि सन्तप्पेसि। एकच्चे विघासादा कोलम्बे पि घटे पि पूरेसुं, पिटकानि पि, उच्छङ्गे पि पूरेसुं।

अथ खो बेलट्ठो कच्चानो विघासादे गुळेहि सन्तप्पेत्वा भगवन्तं एतदवोच— "सन्तप्पिता, भन्ते, विघासादा गुळेहि, बहु चायं गुळो अवसिट्ठो। कथाहं, भन्ते, पटिपज्जामी" ति? "नाहं तं, कच्चान, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यस्स सो गुळो परिभुत्तो सम्मा परिणामं गच्छेय्य, अञ्ञत्र तथागतस्स वा तथागतसावकस्स वा। तेन हि त्वं, कच्चान, तं गुळं अपहरिते वा छड्डेहि, अप्पाणके वा उदके ओपिलापेही" ति। "एवं, भन्ते" ति खो बेलट्ठो कच्चानो भगवतो पटिस्सुणित्वा तं गुळं अप्पाणके उदके ओपिलापेसि। अथ खो सो गुळो उदके पक्खित्तो चिच्चिटायति। [B.320] चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपायति। सेय्यथापि नाम फालो दिवसं

कर दे।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर वेलट्ठकच्चान ने गुड़ की भेलियाँ विना गणना के लुटानी प्रारम्भ की। तब उस गुड़ को कुछ भिक्षुओं ने अपने पात्रों में भर लिया, कुछ ने जलछक्कों (वस्त्रों) में बाँध लिया, कुछ ने थैलों में भर लिया।

इस तरह वेलट्ठकच्चान ने भिक्षुओं को गुड़ से पूर्णतः सन्तृप्त कर दिया। फिर भी कुछ अधिक बच गया। उसके विषय में भगवान् से पूछने पर उन्होंने आदेश दिया—"तो इसे उच्छिष्टभोजी याचकों मे बाँट दे।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर उसने उच्छिष्टभोजियों को भी यथेच्छ गुड़ बाँट दिया। फिर भी कुछ गुड़ बच ही गया। भगवान् से पूछने पर उन्होंने उच्छिष्टभोजियों को सन्तृप्त करने के लिये कहा! तब उन उच्छिष्टभोजियों ने भी वेलट्ठकच्चान से अधिक मात्रा में गुड़ पाकर कुछ ने बड़े पात्रों में, कुछ ने घड़ों में, कुछ ने छाबड़ियों में, कुछ ने अपने धोती के पल्ले (उच्छङ्ग) में ही बाँध लिया। फिर भी गुड़ अधिक मात्रा में ही बच गया।

तब वेलट्ठकच्चान उस अवशिष्ट गुड़ के उपयोग के विषय में पूछने लगा। भगवान् ने कहा— "कच्चान! देवता एवं मार तथा ब्रह्मा सहित समग्र लोकों (ब्रह्माण्डों) की श्रमण–ब्राह्मण सहित देवमनुष्ययुक्त सम्पूर्ण प्रजा में, तथागत एवं तथागतश्रावकसदृश पुद्गल को छोड़कर मैं किसी अन्य को नहीं देखता जो इस गुड़ को खा कर पचा सके। अतः, कच्चान, तूँ इस अवशिष्ट गुड़ को या तो तृणरहित भूमि पर डाल दे, या फिर प्राणी (मछली आदि) से रहित जल में डाल दे।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर वेलट्ठ कच्चान ने उस गुड़ को प्राणिरहित जल में डाल दिया। तब वह जल में डाला हुआ गुड़

सन्तत्तो उदके पक्खित्तो; एवमेव सो गुळो उदके पक्खित्तो चिच्चिटायति चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपायति।

अथ खो बेलट्ठो कच्चानो संविग्गो लोमहट्ठजातो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नस्स खो बेलट्ठस्स कच्चानस्स भगवा अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथीदं— दानकथं सीलकथं सग्गकथं, कामानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, नेक्खम्मे आनिसंसं पकासेसि। यदा भगवा अञ्ञासि बेलट्ठं कच्चानं कल्लचित्तं, मुदुचित्तं, विनीवरणचित्तं, उदग्गचित्तं, पसन्नचित्तं, अथ या बुद्धानं सामुक्कंसिका धम्मदेसना, तं पकासेसि.....पे०....एवमेव बेलट्ठस्स कच्चानस्स तस्मिं येव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—'यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं [R.226] निरोधधम्मं' ति। अथ खो बेलट्ठो कच्चानो दिट्ठधम्मो पत्तधम्मो विदितधम्मो परियोगाळ्हधम्मो तिण्णविचिकिच्छो विगतकथङ्कथो वेसारज्जप्पत्तो अपरप्पच्चयो सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भन्ते! अभिक्कन्तं, भन्ते! सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य— 'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खिन्ती' ति, एवमेवं खो भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं, सरणं गच्छामि, धम्मं च, भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणगतं" ति।

अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन राजगहं तदवसरि। तत्र [N.242] सुदं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन राजगहे गुळो उस्सन्नो होति। भिक्खू—गिलानस्सेव भगवता गुळो अनुञ्ञातो, न अगिलानस्सा ति— कुक्कुच्चायन्ता गुळं न भुञ्जन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, गिलानस्स गुळं, अगिलानस्स गुळोदकं** ति।

उसी तरह चिटचिटाने तथा धुधुआँने लगा जैसे दिनभर धूप में पड़ी गर्म हुई थाली (या लोहे का फाल) जल में डालने से चिटचिटाने या धुधुआँ ने लगती है।"

तब वेलट्ठकच्चान घबराया हुआ, रोमाञ्चित होकर भगवान् के पास आया, तथा भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे वेलट्ठकच्चान को भगवान् ने आनुपूर्वी कथाप्रसङ्ग में दानकथा....पूर्ववत्....कही।....विदितधर्म....पूर्ववत्....हो भगवान् से यों बोला—"आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते!....पूर्ववत्....आज से जीवनपर्यन्त मुझे भगवान् अपना अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासक समझें।"

तब भगवान् क्रमशः चारिका करते हुए राजगृह पहुँचे और वहाँ वेणुवन के कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजे। उस समय राजगृह में गुड़ की पैदावार बहुत हुई थी। परन्तु भिक्षु लोग यह सोच कर कि भगवान् ने रोगी को ही पथ्य के रूप में गुड़ लेने की अनुमति दी है, स्वस्थ को नहीं; गुड़ का खाद्य रूप में ग्रहण करने में सङ्कोच करते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा—) **"भिक्षुओ! रोगी को पथ्य के रूप में गुड़ की तथा स्वस्थ भिक्षु को गुड़मिश्रित जल के उपयोग की अनुमति देता हूँ।"**

१४. पाटलिगामवत्थु

[B.321] २६. अथ खो भगवा राजगहे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन पाटलिगामो तेन चारिकं पक्कामि, महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं, अड्ढतेलसेहि भिक्खुसतेहि। अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन पाटलिगामो तदवसरि। अस्सोसुं खो पाटलिगामिका उपासका– "भगवा किर पाटलिगामं अनुप्पत्तो" ति। अथ खो पाटलिगामिका उपासका येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ने खो पाटलिगामिके उपासके भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि, समादपेसि, समुत्तेजेसि, सम्पहंसेसि। अथ खो पाटलिगामिका उपासका भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सिता समादपिता समुत्तेजिता सम्पहंसिता भगवन्तं एतदवोचुं–"अधिवासेतु नो, भन्ते, भगवा आवसथागारं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन।

अथ खो पाटलिगामिका उपासका भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं [R.227] अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन आवसथागारं तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा सब्बसन्थरिं आवसथागारं सन्थरित्वा, आसनानि पञ्ञापेत्वा, उदकमणिकं पतिट्ठापेत्वा, तेलपदीपं आरोपेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो पाटलिगामिका उपासका भगवन्तं एतदवोचुं– "सब्बसन्थरिसन्थतं, भन्ते, आवसथागारं। आसनानि पञ्ञत्तानि। उदकमणिको पतिट्ठापितो। तेलपदीपो आरोपितो। यस्स दानि, भन्ते, भगवा कालं मञ्ञती" ति।

अथ खो भगवा निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेन येनावसथागारं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पादे पक्खालेत्वा आवसथागारं पविसित्वा मज्झिमं थम्भं निस्साय

---

१४. पाटलिग्रामवस्तु

२६. तब कुछ समय बाद भगवान् राजगृह में यथेच्छ साधना के अनन्तर, पाटलिग्राम की तरफ साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के साथ चारिकाहेतु निकल पड़े। तब भगवान् क्रमशः चारिका करते हुए **पाटलिग्राम** पहुँचे। भगवान् के पाटलिग्राम पहुँचने पर जब पाटलिग्राम के उपासकों ने सुना कि 'भगवान् पाटलिग्राम पधारे हैं', तब वे पाटलिग्रामवासी उपासक भगवान् की सेवा में पहुँचे, तथा उन्हें प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक ओर बैठे उन उपासकों को भगवान् ने धार्मिक कथाएँ सुनाते हुए धर्म के प्रति समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। तब सम्प्रहृष्ट उन उपासकों ने भगवान् से निवेदन किया– "भन्ते! भगवान् भिक्षुसङ्घ सहित (पाटलिग्राम के) आवसथागार (अतिथिशाला) में चलकर विराजें।" भगवान् ने मौनभाव से उन उपासकों के इस निवेदन को स्वीकार कर लिया।

तब पाटलिग्रामवासी उन उपासकों ने भगवान् की एतदर्थ अनुमति जानकर वे आसन से उठ, भगवान् को अभिवादन–प्रदक्षिणा कर आवसथागार में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर, आवसथागार में विछायत की सफाई (झाड़ू–बुहारू) करवा कर आसन बिछवा कर, जल से भरे घड़े रखवा कर, तैल के दीपक रखवाकर पुनः भगवान् के पास पहुँचे। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ खड़े हो गये। एक तरफ खड़े उन लोगों ने भगवान् से निवेदन किया–"भन्ते! आवसथागार के फर्श (सन्थरि) साफ कर दी गयी है, आसन बिछा दिये है. ..अब, भन्ते! जैसा उचित समझे।'

तब भगवान् वस्त्र पहनकर, पात्र–चीवर ले, भिक्षुसङ्घ के साथ आवसथागार पहुँचे। जाकर,

पुरत्थाभिमुखो निसीदि। भिक्खुसङ्घो पि खो पादे पक्खालेत्वा आवसथागारं पविसित्वा पच्छिमं भित्तिं निस्साय पुरत्थाभिमुखो निसीदि, भगवन्तं येव पुरक्खत्वा। पाटिलिगामिका पि खो उपासका पादे पक्खालेत्वा आवसथागारं पविसित्वा पुरत्थिमं भित्तिं निस्साय पच्छिमाभिमुखा निसीदिंसु, भगवन्तं येव पुरक्खत्वा। अथ खो भगवा पाटलिगामिके उपासके आमन्तेसि—

"पञ्चिमे, गहपतयो, आदीनवा दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। कतमे [N.243, B.322] पञ्च? १. इध, गहपतयो, दुस्सीलो सीलविपन्नो पमादाधिकरणं महतिं भोगजानिं निगच्छति। अयं पठमो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। २. पुन च परं, गहपतयो, दुस्सीलस्स पापको कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति। अयं दुतियो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। ३. पुन च परं, गहपतयो, दुस्सीलो सीलविपन्नो यञ्ञदेव परिसं उपसङ्कमति, यदि खत्तियपरिसं, यदि ब्राह्मणपरिसं, यदि गहपतिपरिसं, यदि समणपरिसं, अविसारदो उपसङ्कमति मङ्कुभूतो। अयं ततियो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। ४. पुन च परं, गहपतयो, दुस्सीलो सीलविपन्नो सम्मूळ्हो कालं करोति। अयं चतुत्थो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। ५. पुन च परं, गहपतयो, दुस्सीलो सीलविपन्नो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। अयं पञ्चमो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। इमे खो, गहपतयो, पञ्च आदीनवा दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया।

पञ्चिमे, गहपतयो, आनिसंसा सीलवतो सीलसम्पदाय। कतमे पञ्च? १. इध, गहपतयो, सीलवा सीलसम्पन्नो अप्पमादाधिकरणं महन्तं भोगक्खन्धं अधिगच्छति। अयं पठमो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय। २. पुन च परं, गहपतयो, सीलवतो सीलसम्पन्नस्स

चरण धोकर, आवसथागार में प्रविष्ट होकर बीच के खम्भे के पास पूर्व की तरफ मुख करके बैठे। भिक्षुसङ्घ भी पैर धोकर....पश्चिम की दीवार के पास पूर्व की तरफ मुख करके बैठा। पाटलिग्राम के उपासक भी पैर धोकर...पूर्व की दीवार केपास पश्चिम की तरफ मुख करके भगवान् की तरफ ही मुख करके बैठे। तब भगवान् ने पाटलिग्राम के उपासकों को यों उपदेश करना प्रारम्भ किया—

दुःशील की निन्दा— "गृहपतियो! दुराचार (दुःशील) के ये पाँच दुष्परिणाम हैं। कौन से पाँच? यहाँ गृहपतियो! कोई दुराचारी अपने आचार (शील) से च्युत होकर आलस्य (प्रमाद) के कारण अपनी भोगसम्पत्ति की बहुत हानि उठाता है—यह **पहला** दुष्परिणाम है। इस दुःशील की समाज में निन्दा होने लगती है—यह उसके लिये **दूसरा** दुष्परिणाम है। फिर वह दुःशील जिस किसी भी सभा में जाता है, भले ही फिर वह क्षत्रियपरिषद् हो, ब्राह्मणपरिषद्, गृहस्थपरिषद् हो या श्रमणपरिषद् वहाँ वह मूर्ख की तरह गूँगा सा बना बैठा रहता है— यह **तीसरा** दुष्परिणाम है। गृहपतियो! फिर वह दुराचारी अपने दुराचार के कारण अत्यन्त मूढता को प्राप्त होता है— यह **चौथा** दुष्परिणाम है। इसी तरह गृहपतियो! फिर वह दुराचारी इस देहपात के बाद, मरणानन्तर दुर्गति, निरय, नरक योनि में जा गिरता है—यह **पाँचवाँ** दुष्परिणाम है। इस तरह, गृहपतियों! दुराचार के ये पाँच दुष्परिणाम हैं।

शीलवान् की प्रशंसा— गृहपतियों, इसी तरह शीलवान् (सदाचारी) की शीलसम्पवि के पाँच सुपरिणाम हैं। कौन से पाँच? गृहपतियों! वह सदाचारी उत्साहसम्पन्न होने के कारण बहुत सी भोगसम्पत्ति अर्जित कर लेता है—यह उस शील सम्पत्ति का **पहला** सुपरिणाम है। फिर उस शीलवान् का उसकी शीलसम्पत्ति का समाज मे यश फैलने लगता है यह **दूसरा** सुपरिणाम है। फिर वह

कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति। अयं दुतियो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय। ३. पुन च परं, गहपतयो, सीलवा सीलसम्पन्नो यञ्ञदेव परिसं उपसङ्कमति, यदि खत्तियपरिसं, यदि ब्राह्मणपरिसं, यदि गहपतिपरिसं, यदि समणपरिसं, विसारदो उपसङ्कमति अमङ्कुभूतो। अयं ततियो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय। ४. पुन च परं, गहपतयो, सीलवा सीलसम्पन्नो असम्मूळ्हो कालं करोति। अयं चतुत्थो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय। ५. पुन च परं, गहपतयो, सीलवा सीलसम्पन्नो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। अयं पञ्चमो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय। इमे खो, गहपतयो, पञ्च आनिसंसा सीलवतो सीलसम्पदाया ति।

अथ खो भगवा पाटलिगामिके उपासके बहुदेव रत्तिं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा [B.323] समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उय्योजेसि— "अभिक्कन्ता खो, गहपतयो, रत्ति। यस्सदानि तुम्हे कालं मञ्ञथा" ति। "एवं, भन्ते" ति, खो पाटलिगामिका उपासका भगवतो पटिस्सुणित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु। अथ खो भगवा अचिरपक्कन्तेसु पाटलिगामिकेसु उपासकेसु सुञ्ञागारं पाविसि।

१५. सुनिधवस्सकारवत्थु

२७. तेन खो पन समयेन सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता पाटलिगामे नगरं मापेन्ति वज्जीनं पटिबाहाय। अद्दसा खो भगवा रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सम्बहुला देवतायो पाटलिगामे वत्थूनि परिग्गण्हन्तियो। यस्मिं [N.244] पदेसे महेसक्खा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, महेसक्खानं तत्थ राजूनं राजमहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। यस्मिं पदेसे मज्झिमा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, मज्झिमानं तत्थ राजूनं राजमहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। यस्मिं पदेसे

शीलवान् अपनी शील सम्पत्ति के साथ जिस सभा में भी जाता है....पूर्ववत्....वहाँ वह विद्वानों की तरह निःसङ्कोच जाता है– यह तीसरा सुपरिणाम है। फिर, गृहपतियो! वह शीलवान् विना मूढ़ता प्राप्त किये मरता है– यह चतुर्थ सुपरिणाम है। फिर वह शीलवान् जाता है– यह पञ्चम सुपरिणाम है। शीलसम्पत्ति के ये पाँच सुपरिणाम हैं।

इस तरह भगवान् ने उन पाटलिग्रामवाली उपासकों को धार्मिक प्रवचनों से (धर्म के प्रति) समुत्तेजित सम्प्रहर्षित करते हुए अन्त में उनको सङ्केत किया–"गृहपतियो! रात्रि बहुत हो गयी है। अब आप लोग जैसे उचित समझें।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर उन उपासकों ने आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम–प्रदक्षिणा की। तथा वे अपने अपने घरों को चल दिये। उनके जाने के बाद भगवान् भी एकान्तवास में जा विराजे।

१५. सुनीध–वर्षकार द्वारा वास्तुनिर्माण

२७. उस समय मगधराज्य के सुनीध एवं वर्षकार नामक दो महामात्य (अधिकारी) वज्जियों से रक्षाहेतु पाटलिग्राम में सुरक्षित नगर बसा रहे थे। भगवान् ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में बहुत ही प्रातः उठकर अपने लोकोत्तर दिव्य चक्षु से देखा कि कई हजार देवता यहाँ पाटलिग्राम में घर (वास्तु) ग्रहण कर रहे हैं। जिस प्रदेश मे महाशक्तिसम्पन्न (महेसक्ख) देवता वास ग्रहण कर रहे हैं वहाँ महाशक्ति राजाओं तथा राजमहामात्यों का चित्त घर बनाने को होगा। तथा जिस प्रदेश में मध्यमदेवता

नीचा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, नीचानं तत्थ राजूनं राजहामहत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"के नु खो ते, आनन्द, पाटलिगामे नगरं मापेन्ती" ति? "सुनीधवस्सकारा, भन्ते, मगधमहामत्ता [R.229] पाटलिगामे नगरं मापेन्ति वज्जीनं पटिबाहाया" ति। "सेय्यथापि, आनन्द, देवेहि तावतिंसेहि सद्धिं मन्तेत्वा, एवमेव खो, आनन्द, सुनिवधस्सकारा मगधमहामत्ता पाटलिगामे नगरं मापेन्ति वज्जीनं पटिबाहाय। इधाहं, आनन्द, रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय अद्दसं दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सम्बहुला देवतायो पाटलिगामे वत्थूनि परिग्गण्हन्तियो। यस्मिं पदेसे महेसक्खा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, महेसक्खानं तत्थ राजूनं रामहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। यस्मिं पदेसे मज्झिमा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, मज्झिमानं तत्थ राजूनं रामहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। यस्मिं पदेसे नीचा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, नीचानं तत्थ राजूनं राजहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। यावता, आनन्द, अरियं आयतनं, यावता वणिप्पथो, इदं अग्गनगरं भविस्सति पाटलिपुत्तं पुटभेदनं। पाटलिपुत्तस्स खो, आनन्द, तयो अन्तराया भविस्सन्ति—[B.324] अग्गितो वा, उदकतो वा, अब्भन्तरतो वा मिथुभेदा" ति।

अथ खो सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता भगवन्तं एतदवोचुं—'अधिवासेतु नो भवं गोतमो अज्जतनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता भगवतो अधिवासनं विदित्वा पक्कमिंसु। अथ खो सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं

वास ग्रहण कर रहे हैं वहाँ मध्यम राजाओं एवं राजमहामात्यों का घर बनाने का चित्त होगा। एवं जिस प्रदेश में नीच देवता....वहाँ छोटे राजाओं तथा छोटे राजमहामात्यों का चित्त घर बनाने का होगा। तब भगवान् ने बाद में आनन्द को बुलाकर पूछा—"आनन्द! पाटलिग्राम में कौन नगर निर्माण करा रहा है?" "भन्ते! सुनीध एवं वर्षकार नामक मगधमहामात्य वज्जियों से मगध–साम्राज्य की रक्षा हेतु नये नगर का निर्माण करा रहे हैं।" "आनन्द! ज्ञात होता है जैसे त्रायस्त्रिंश देवों के साथ मन्त्रणा करके मानो ये दोनों महामात्य इस नये नगर का निर्माण करा रहे हैं; क्योंकि आनन्द! आज रात्रि में मैंने भी दिव्य चक्षु से देखा था कि बहुत से देवता पाटलिग्राम में आकर अपना वास बनाने का विचार कर रहे थे। जिस प्रदेश में महाशक्तिसम्पन्न देवता.....पूर्ववत्....छोटे राजामहामात्यों के घर बनेंगे। आनन्द! आजतक इस देश में जितने भी नगर हैं, जितने भी बड़े व्यापारिक केन्द्र–मार्ग है, बड़े बाजार हैं उन में यह पाटलिपुत्र सर्वश्रेष्ठ होगा। इस नगर के तीन ही विघ्न (=नाशक हेतु) होंगे—अग्नि, जल एवं आन्तरिक कलह (फूट)।"

कुछ समय बाद वे दोनों—सुनीध एवं वर्षकार महामात्य जहाँ भगवान् थे वहाँ आये। आकर भगवान् से कुशल–मङ्गल पूछ कर....एक तरफ खड़े हो गये। एक तरफ खड़े होकर उन लोगों ने भगवान् से निवेदन किया—"भो गोतम! आज आप अपने भिक्षुसङ्घ के साथ हमारा भोजन स्वीकार करें।" भगवान् ने मौन रहकर इसको स्वीकार किया। तब वे दोनों महामात्य भगवान् की स्वीकृति जानकर अपने आवास पर लौट गये। वहाँ जाकर उन्होंने उत्तम खादय भोज्य तैयार कराकर भगवान्

आरोचापेसुं--"कालो, भो गोतम, निट्ठितं भत्तं" ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन सुनिधवस्सकारानं मगधमहामत्तानं परिवेसना तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता [N.245] बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ने खो सुनिधवस्सकारे मगधमहामत्ते भगवा इमाहि गाथाहि अनुमोदि—

"यस्मिं पदेसे कप्पेति वासं पण्डितजातियो।
सीलवन्तेत्थ भोजेत्वा सञ्ञते ब्रह्मचारयो॥
या तत्थ देवता आसुं तासं दक्खिणमादिसे।
ता पूजिता पूजयन्ति मानिता मानयन्ति नं॥
[R.230] ततो नं अनुकम्पन्ति माता पुत्तं च ओरसं।
देवतानुकम्पितो पोसो सदा भद्रानि पस्सती" ति॥

अथ खो भगवा सुनिधवस्सकारे मगधमहामत्ते इमाहि गाथाहि अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामि। तेन खो पन समयेन सुनिधवस्सकारा मगधमहामत्ता भगवन्तं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धा होन्ति—"येनज्ज समणो गोतमो द्वारेन निक्खमिस्सति, तं **गोतमद्वारं** नाम [B.325] भविस्सति; येन तित्थेन गङ्गं नदिं उत्तरिस्सति, तं **गोतमतित्थं** नाम भवस्सती' ति। अथ खो भगवा येन द्वारेन निक्खमि, तं 'गोतमद्वारं' नाम अहोसि।

अथ खो भगवा येन गङ्गा नदी तेनुपसङ्कमि। तेन खो पन समयेन गङ्गा नदी पूरा

को भोजनकाल की सूचना दी। तब भगवान् पूर्वाह्न समय में वस्त्र पहनकर...सुनीध–वर्षकार के आवास पर जाकर भिक्षुसङ्घसहित प्रज्ञप्त आसन पर विराजे। तब उन महामात्यों ने अपने हाथ से उत्तम खाद्य पदार्थ परोसकर उन्हें सन्तृप्त एवं सन्तुष्ट किया। फिर भगवान् द्वारा पात्र से हाथ हटाया हुआ देखकर सुनीध एवं वर्षकार भी एक तरफ नीचे आसनों पर बैठ गये। एक तरफ बैठे उन महामात्यों को भगवान् ने इन गाथाओ द्वारा दानानुमोदन किया—

"जिस प्रदेश में पण्डितश्रेणि का सदाचारी पुरुष वास करता है वह वहाँ संयत ब्रह्मचारियों को भोजन कराता है।

"तो उसे वहाँ रहने वाले देवताओं को भी उस दान में से कुछ भाग देना चाहिये। उनकी पूजा करने से, सम्मान करने से वे देवता भी वहाँ रहने वाले को पूजा तथा सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

"तब वे उस निवासी पर उसी तरह अनुकम्पा करते हैं, जैसे माता अपनी कोंख से पैदा हुए पुत्र पर अनुकम्पा करती है। देवता की ऐसी अनुकम्पा पाकर उस पुरुष का निरन्तर कल्याण ही होता है।

तब भगवान् ने सुनीध एवं वर्षकार महामात्य को इन गाथाओ से धर्मानुमोदन कर अपने आश्रम की ओर प्रयाण किया। उस समय उक्त दोनो महामात्य भगवान् के पीछे पीछे यह सोचकर लग गये –"आज श्रमणगौतम जिस द्वार से निकलेगे उसे "**गौतमद्वार**" नाम दिया जायगा। जिस घाट से गङ्गा नदी पार करेंगे उस घाट का नाम "**गौतमतीर्थ**" रखा जायगा।" तब भगवान् उस पाटलिग्राम के जिस द्वार से निकले उसका नाम 'गौतमद्वार' पड़ गया।

होति समतित्थिका काकपेय्या। मनुस्सा अञ्ञे नावं परियेसन्ति, अञ्ञे उळुम्पं परियेसन्ति, अञ्ञे कुल्लं बन्धन्ति ओरा पारं गन्तुकामा। अद्दसा खो भगवा ते मनुस्से अञ्ञे नावं परियेसन्ते, अञ्ञे उळुम्पं परियेसन्ते, अञ्ञे कुल्लं बन्धन्ते ओरा पारं गन्तुकामे, दिस्वान— सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं व बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य, एवमेव—खो भगवा गङ्गाय नदिया ओरिमतीरे अन्तरहितो पारिमतीरे पच्चुट्ठासि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

"ये तरन्ति अण्णवं सरं सेतुं कत्वान विसज्ज पल्ललानि।
कुल्लं हि जनो पबन्धति तिण्णा मेधाविनो जना" ति॥

१६. कोटिगामे सच्चकथा

२८. अथ खो भगवा येन कोटिगामो तेनुपसङ्कमि। तत्र सुदं भगवा कोटिगामे विहरति। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"चतुन्नं, भिक्खवे, अरियसच्चानं अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। कतमेसं चतुन्नं? दुक्खस्स, भिक्खवे, अरियसच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं [N.246] सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। दुक्खसमुदयस्स अरियसच्चस्स....पे०..... दुक्खनिरोधस्स अरियसच्चस्स....पे०....दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपादाय अरियसच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। तयिदं, भिक्खवे, दुक्खं अरियसच्चं अनुबुद्धं पटिविद्धं, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं अनुबुद्धं

तब भगवान् गङ्गा नदी पर पहुँचे। उस समय गङ्गा नदी पूर्णतः बाढ़ पर थी, किनारों से जल ऐसे टकरा रहा था कि कौए भी उसमें जल पी सकें। वहाँ कुछ मनुष्य पार जाने के लिये नाव खोज रहे थे, कुछ उडुम्प (छोटी नाव=डोंगी) खोज रहे थे। कुछ इस पार से उस पार जाने के लिये बांस का कुल्ला बना रहे थे। यह देखकर, जैसे कोई बलवान् पुरुष सिकुड़ी बाँह को पसार दे, या पसरी हुई बाँह को सिकोड़ ले, इसी तरह भगवान् समग्र भिक्षुसङ्घ के साथ गङ्गा के इस पार पर अन्तर्हित होकर उस पार प्रकट हुए। तब भगवान् ने इसी भाव को प्रकट करते हुए ये उद्गार प्रकट किये—

"पण्डित जन छोटे जलाशयों (पल्वल) को छोड़कर बड़ी नदियों तथा समुद्र को पुल से पार करते हैं। जब तक साधारण जन कुल्ला बाँधते है तबतक बुद्धिमान् लोग उसे पार कर जाते है।"

१६. कोटिग्राम में आर्य सत्य का उपदेश

२८. तब भगवान् कोटिग्राम पहुँचे। वहाँ भी भगवान् कुछ समय साधनाहेतु विराजे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! चार आर्यसत्यों का अनुबोध-प्रतिबोध न होने से इस प्रकार यह जीवों का दौड़ना-धूपना (=संसरण=आवागमन) या संसार के प्रति आसक्ति के रूप में 'मेरा-तेरा' हो रहा है। किन चार का? भिक्षुओ! दुःख-आर्यसत्य का...दुःखसमुदय आर्यसत्य का ..दुःखनिरोध आर्य सत्य का....एव दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा (मार्ग) का अनुबोध....'मेरा-तेरा' हो रहा है। अतः, भिक्षुओ! मैंने दुःख आर्यसत्य का अनुबोध प्रतिबोध किया तो अन्त में मेरी भवतृष्णा

पटिविद्धं, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं अनुबुद्धं पटिविद्धं, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं अनुबुद्धं पटिविद्धं, उच्छिन्ना भवतण्हा, खीणा भवनेत्ति नत्थिदानि पुनब्भवो" [R.231] ति।

[B.326] चतुन्नं अरियसच्चानं यथाभूतं अदस्सना।
संसितं दीघमद्धानं तासु तास्वेव जातिसु॥
तानि एतानि दिट्ठानि भवनेत्ति समूहता।
उच्छिन्नं मूलं दुक्खस्स नत्थिदानि पुनब्भवो॥ ति॥

१७. अम्बपालीवत्थु

२९. अस्सोसि खो अम्बपाली गणिका–'भगवा किर कोटिगामं अनुप्पत्तो' ति। अथ खो अम्बपाली गणिका भद्रानि भद्रानि यानानि योजापेत्वा भद्रं भद्रं यानं अभिरुहित्वा भद्रेहि भद्रेहि यानेहि वेसालिया निय्यासि भगवन्तं दस्सनाय। यावतिका यानस्स भूमि, यानेन गन्त्वा, याना पच्चोरोहित्वा, पत्तिका व येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अम्बपालिं गणिकं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो अम्बपाली गणिका भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सिता समादपिता समुत्तेजिता सम्पहंसिता भगवन्तं एतदवोच– "अधिवासेतु मे, भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो अम्बपाली गणिका भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

उच्छिन्न हो गयी, भव की तरफ ले जाने वाली (=नेत्री) तृष्णा क्षीण हो गयी, दुःख मूलतः (जड़ से) कट गया। अब मेरा पुनर्जन्म नहीं हो सकता।

चार आर्यसत्यों का यथातथ रूप से अनुबोध (दर्शन=साक्षात्कार) न होने से हम लोग इतने लम्बे समय तक इस योनि से उस योनि में भटकते रहे॥

अब मैंने इस चारों आर्यसत्यों को समझ लिया, इनका साक्षात्कार कर लिया। अब मेरी भवतृष्णा (=संसार के प्रति आसक्ति) क्षीण हो गयी। दुःख समूल नष्ट हो गया। अतः अब मेरा पुनर्जन्म असम्भव है॥

१७. अम्बपाली का भगवान् को निमन्त्रण

२९. अम्बपाली गणिका ने जब सुना कि भगवान् कोटिग्राम पधारे हैं तो वह गणिका अच्छे-अच्छे रथयान जुतवा कर एक श्रेष्ठ रथ पर सवार होकर अच्छे अच्छे यानों से आगे-पीछे घिरी हुई भगवान् के दर्शनहेतु निकल पड़ी। जितनी दूर तक यान से जाया जा सकता था यान से गयी। फिर यान से उतर कर पैदल ही चल कर भगवान् के सम्मुख पहुँची। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर वह एक तरफ बैठ गयी। एक तरफ बैठी उस गणिका को भगवान् ने धार्मिक कथाएँ सुनाकर धर्म के प्रति समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। तब अम्बपाली गणिका ने भगवान् को निवेदन किया–"भन्ते! भिक्षुसङ्घ के साथ कल का भोजन मेरे घर पर स्वीकार करें।" भगवान् ने मौन भाव से स्वीकार किया। तब वह गणिका भगवान् की स्वीकृति जानकर, आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर चली गयी।

१८. लिच्छवीवत्थु

३०. अस्सोसुं खो वेसालिका लिच्छवी—'भगवा किर कोटिगामं अनुप्पत्तो' ति। अथ खो वेसालिका लिच्छवी भद्रानि भद्रानि यानानि योजापेत्वा भद्रं भद्रं यानं अभिरुहित्वा भद्रेहि भद्रेहि यानेहि वेसालिया निय्यासुं भगवन्तं दस्सनाय। अप्पेकच्चे लिच्छवी नीला होन्ति नीलवण्णा नीलवत्था नीलालङ्कारा, अप्पेकच्चे लिच्छवी पीता होन्ति पीतवण्णा पीतवत्था पीतालङ्कारा, अप्पेकच्चे लिच्छवी लोहितका होन्ति लोहितवण्णा लोहितवत्था लोहितालङ्कारा, अप्पेकच्चे लिच्छवी ओदाता होन्ति ओदातवण्णा ओदातवत्था ओदातालङ्कारा। अथ खो अम्बपाली गणिका दहरानं दहरानं लिच्छवीनं ईसाय ईसं युगेन युगं [N.247] चक्केन चक्कं अक्खेन अक्खं पटिवत्तेसि। अथ खो ते लिच्छवी अम्बपालिं गणिकं एतदवोचुं— "किस्स, जे अम्बपालि, दहरानं दहरानं लिच्छवीनं ईसाय ईसं युगेन [B.327, R.232] युगं चक्केन चक्कं अक्खेन अक्खं पटिवत्तेसी" ति? "तथा हि पन मया, अय्यपुत्ता, स्वातनाय बुद्धप्पमुखो भिक्खुसङ्घो निमन्तितो" ति। "देहि, जे अम्बपालि, अम्हाकं एतं भत्तं सतसहस्सेना" ति। "सचे पि मे, अय्यपुत्ता, वेसालिं साहारं दज्जेय्याथ, नेव दज्जाहं तं भत्तं" ति। अथ खो ते लिच्छवी अङ्गुलिं पोठेसुं—'जितम्हा वत, भो, अम्बकाय, पराजितम्हा वत, भो, अम्बकाया' ति।

अथ खो ते लिच्छवी येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु। अद्दसा खो भगवा ते लिच्छवी दूरतो व आगच्छन्ते, दिस्वान भिक्खू आमन्तेसि—"येहि, भिक्खवे, भिक्खूहि देवा तावतिंसा अदिट्ठपुब्बा, ओलोकेथ, भिक्खवे, लिच्छविपरिसं; अपलोकेथ, भिक्खवे, लिच्छविपरिसं; उपसंहरथ, भिक्खवे, लिच्छविपरिसं तावतिंसपरिसं" ति। अथ खो ते लिच्छवी यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा, याना पच्चोरोहित्वा पत्तिका व येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु,

---

१८. लिच्छविकथा

३०. वैशाली के लिच्छवियों ने भी सुना कि भगवान् कोटिग्राम में पधारे हैं, तो वे लिच्छवी उत्तम उत्तम यान....पूर्ववत्....भगवान् के दर्शनहेतु वैशाली से निकल पड़े। वहाँ कुछ लिच्छवि नीले, नीलवर्ण में, नीलवस्त्र पहने हुए नीले ही अलङ्कारों से अलङ्कृत थे कुछ पीले....कुछ रक्त.. कुछ श्वेत अलङ्कारों से अलङ्कृत थे। उस समय वापस लौटती हुई अम्बपाली गणिका ने तरुण तरुण लिच्छवियों के रथों के धुरों से धुरा, चक्कों से चक्का, जूए से जूआ टकराया। तब उन लिच्छवियो ने गणिका से पूछा—"अरी अम्बपालि! तूँ ऐसा क्यों कर रही है?" "आर्यपुत्रो! क्योंकि आज मैंने कल के भोजन के लिये भिक्षुसङ्घसहित भगवान् को निमन्त्रित किया है!" "अरी अम्बपालि! इस निमन्त्रण को सौ हजार लेकर भी तूँ हमें दे दे।" आर्यपुत्रो! यदि समग्र वैशाली जनपद भी मुझे दोगे तो भी मैं इस निमन्त्रण को तुम्हे नहीं दूँगी।" तब सभी लिच्छवि अपनी अंगुलियाँ कटकाने लगे और लज्जित होते हुए से बोले—"अरे इस अम्बिका ने हमको जीत लिया, हमें पराजित कर दिया!"

तब वे लिच्छवि जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। भगवान् ने उन लिच्छवियों को आते हुए दूर से ही देख लिया। देखकर भिक्षुओं से कहा—"जिन्होंने त्रायस्त्रिंश देव न देखे हों वे इन लिच्छिवियों को देख ले। बार-बार देख लें। वे इन्हें (ऐश्वर्य में) त्रायस्त्रिंश देव ही समझें।" तब वे लिच्छवि रथों से न जाने योग्य भूमि मे रथों से उतर कर पैदल ही चलकर भगवान् के सम्मुख पहुँचे।

उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ने खो ते लिच्छवी भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो ते लिच्छवी, भगवता, धम्मिया कथाय सन्दस्सिता समादपिता समुत्तेजिता सम्पहंसिता भगवन्तं एतदवोचुं— "अधिवासेतु नो, भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति। "अधिवुत्थोम्हि, लिच्छवी, स्वातनाय अम्बपालिया गणिकाय भत्तं" ति। अथ खो ते लिच्छवी अङ्गुलिं पोठेसुं— 'जितम्हा वत, भो अम्बकाय, पराजितम्हा वत, भो, अम्बकाया' ति! अथ खो ते लिच्छवी भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु।

अथ खो भगवा कोटिगामे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन नातिका तेनुपसङ्कमि। तत्र सुदं भगवा नातिके विहरति गिञ्जकावसथे। अथ खो अम्बपाली गणिका तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके आरामे पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि— [B.328] "कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं" ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन अम्बपालिया गणिकाय परिवेसना तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते [R.233] आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो अम्बपाली गणिका बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा भगवन्तं भुत्ताविं [N.248] ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्ना खो अम्बपाली गणिका भगवन्तं एतदवोच—"इमाहं, भन्ते, अम्बवनं बुद्धप्पमुखस्स भिक्खुसङ्घस्स दम्मी" ति। पटिग्गहेसि भगवा आरामं। अथ खो भगवा अम्बपालिं गणिकं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा

पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे उन लिच्छवियों को धार्मिक कथा सुनाकर भगवान् ने धर्म के प्रति समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। इस तरह धर्म के प्रति समुत्तेजित वे लिच्छवि भगवान् से बोले—"भन्ते! कल का निमन्त्रण आप भिक्षुसङ्घ के साथ हमारा स्वीकार करें।" "लिच्छवियो! कल का निमन्त्रण तो मैं पहले ही अम्बपाली गणिका का स्वीकार कर चुका हूँ।" तब उन लिच्छवियों ने निराशा में भरकर अपनी अङ्गुलियाँ चटकायी और कहा—"अरे, इस अम्बिका (स्त्री) ने तो हमको जीत ही लिया, पराजित ही कर दिया। तब वे लिच्छवि भगवान् के भाषण का अभिनन्दन–अनुमोदन कर, आसन से उठ भगवान् को प्रणाम–प्रदक्षिणा करते हुए वापस अपने घरों को लौट गये।

तदनन्तर भगवान् कोटिग्राम से चाकिा करते हुए नातिका ग्राम के मृञ्जकावसथ में आकर विराजे। तब अम्बपालिगणिका ने उस रात्रि के बीत जाने पर, प्रातःकाल अपने आवास पर उत्तम उत्तम खादय भोज्य पदार्थ तय्यार कराकर भगवान् को सूचित किया—"भन्ते! भोजन का समय हो गया है, अब आप जैसा उचित समझें।" तब भगवान् पूर्वाह्न के समय वस्त्र पहनकर, पात्र चीवर साथ में ले, अम्बपालिगणिका के आवास पर सङ्घ के साथ पहुँचे तथा विछे आसन पर विराजे। तब अम्बपालिगणिका बुद्धप्रमुख भिक्षुसङ्घ को उत्तम उत्तम खादय पदार्थ अपने हाथ से परोसते हुए सन्तुष्ट एवं सन्तृप्त कर, भगवान् को पात्र से हाथ खींचा हुआ देखकर एक तरफ बैठ गयी। एक तरफ बैठी अम्बपाली गणिका ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! आज से मैं अपना यह आम्रवन बुद्धसहित भिक्षुसङ्घ के लिये दान करती हूँ।" भगवान् ने वह आम्रवन दान में स्वीकार कर लिया। तब भगवान् आम्रपाली गणिका को धार्मिक कथाएँ सुनाते हुए धर्म के प्रति समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। यो उसे

समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना येन महावनं तेनुपसङ्कमि। तत्र सुदं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं॥

लिच्छविभाणवारो निट्ठितो ततियो॥

१९. सीहसेनापतिवत्थु

३१. तेन खो पन समयेन अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता लिच्छवी सन्थागारे सन्निसिन्ना सन्निपतिता अनेकपरियायेन बुद्धस्स वण्णं भासन्ति, धम्मस्स वण्णं भासन्ति, सङ्घस्स वण्णं भासन्ति। तेन खो पन समयेन सीहो सेनापति निगण्ठसावको तस्सं परिसायं निसिन्नो होति। अथ खो सीहस्स सेनापतिस्स एतदहोसि— "निस्संसयं खो सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो भविस्सति, तथा हिमे अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता लिच्छवी सन्थागारे सन्निसिन्ना सन्निपतिता अनेकपरियायेन बुद्धस्स वण्णं भासन्ति, धम्मस्स वण्णं भासन्ति, सङ्घस्स वण्णं भासन्ति। यन्नूनाहं तं भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमेय्यं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं" ति। अथ खो सीहो सेनापति येन निगण्ठो नाटपुत्तो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा निगण्ठं नाटपुत्तं एतदवोच— "इच्छामहं, भन्ते, समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं" ति। "किं, पन त्वं, सीह, किरियवादो समानो अकिरियवादं समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्ससि? समणो हि, सीह, गोतमो अकिरियवादो अकिरियाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती" ति। अथ खो [B.329] सीहस्स सेनापतिस्स यो अहोसि गमिकाभिसङ्खारो भगवन्तं दस्सनाय, सो पटिप्पस्सम्भि।

दुतियं पि खो अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता लिच्छवी सन्थागारे सन्निसिन्ना सन्निपतिता अनेकपरियानेन बुद्धस्स वण्णं भासन्ति, धम्मस्स वण्णं भासन्ति, सङ्घस्स वण्णं भासन्ति। दुतियं पि खो सीहस्स सेनापतिस्स एतदहोसि—"निस्संसयं खो सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो

समुत्तेजित, सम्प्रहृष्ट कर आसन से उठकर महावन की तरफ चल दिये। उस समय भगवान् वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे।

तृतीय लिच्छविभाणवार समाप्त॥

१९. सिंहसेनापतिवस्तु

३१. उस समय सभाभवन में एकत्र हुए प्रसिद्ध प्रसिद्ध लिच्छवि नाना प्रकार से बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ की प्रशंसा कर रहे थे। उस समय जैनों का श्रावक सिंह सेनापति भी उस सभा मे बैठा था। तब (यह सब सुनकर) सिंह सेनापति को विचार हुआ—"अवश्य ही वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध होंगे, तभी तो यहाँ एकत्र हुए ये प्रसिद्ध प्रसिद्ध लिच्छवि भी उनकी, उनके धर्म की, उनके सङ्घ की इस तह बढ़–चढ़कर प्रशंसा कर रहे हैं। क्यों न मैं उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के दर्शनहेतु चलूँ।"

तब सिंह सेनापति पहले जहाँ निगण्ठ नाटपुत्त थे वहाँ गया। जाकर उनसे आज्ञा लेते हुए बोला—"भन्ते! श्रमण गौतम के दर्शन हेतु जाना चाहता हूँ।" (निगण्ठ नाटपुत्त ने कहा–) "अरे सिंह! तुम क्रियावाद सिद्धान्त को मानने वाले होकर भी उस अक्रियावादी श्रमण गौतम के पास जाकर क्या करोगे? वह तो अक्रियावादी है, अपने शिष्यों को अक्रियावाद सिद्धान्त का ही उपदेश करता है।" गुरु के ये वचन सुनकर सिंह सेनापति का भगवान् के दर्शनहेतु जाने का उत्साह ठण्डा पड़ गया।

दूसरी बार भी.... पूर्ववत्....तीसरी बार भी सभाभवन में एकत्र हुए प्रसिद्ध प्रसिद्ध लिच्छवि ...सङ्घ

भविस्सति, तथा हिमे अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता लिच्छवी सन्थागारे सन्निसिन्ना सन्निपतिता अनेकपरियायेन बुद्धस्स वण्णं भासन्ति, धम्मस्स वण्णं भासन्ति, सङ्घस्स वण्णं भासन्ति। यन्नूनाहं तं भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमेय्यं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं'' ति। दुतियं पि खो [R.234] सीहो सेनापति येन निगण्ठो नाटपुत्तो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा निगण्ठं नाटपुत्तं एतदवोच—''इच्छामहं, भन्ते, समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं'' ति। ''किं पन त्वं, सीह, किरियवादो समानो अकिरियवादं समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्ससि ? समणो हि, सीह, गोतमो अकिरियवादो अकिरियाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेतीति। दुतियं [N.249] पि खो सीहस्स सेनापतिस्स यो अहोसि गमिकाभिसङ्खारो भगवन्तं दस्सनाय, सो पटिप्पस्सम्भि।

ततियं पि खो अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता लिच्छवी सन्थागारे सन्निसिन्ना सन्निपतिता अनेकपरियायेन बुद्धस्स वण्णं भासन्ति, धम्मस्स वण्णं भासन्ति, सङ्घस्स वण्णं भासन्ति। ततियं पि खो सीहस्स सेनापतिस्स एतदहोसि—''निस्संसयं खो सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो भविस्सति, तथा हिमे अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता लिच्छवी सन्थागारे सन्निसिन्ना सन्निपतिता अनेकपरियायेन बुद्धस्स वण्णं भासन्ति, धम्मस्स वण्णं भासन्ति, सङ्घस्स वण्णं भासन्ति। किं हि मे करिस्सन्ति निगण्ठा अपलोकिता वा अनपलोकिता वा ? यन्नूनाहं अनपलोकेत्वा व निगण्ठे तं भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमेय्यं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं'' ति।

अथ खो सीहो सेनापति पञ्चहि रथसतेहि दिवा दिवस्स वेसालिया निय्यासि भगवन्तं दस्सनाय। यावतिका यानस्स भूमि, यानेन गन्त्वा याना पच्चोरोहित्वा पत्तिको व येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सीहो सेनापति भगवन्तं एतदवोच—''सुतं मेतं, भन्ते, 'अकिरियवादो समणो गोतमो अकिरियाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति। ये ते, भन्ते, एवमाहंसु—'अकिरियवादो [B.330] समणो गोतमो, अकिरियाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति। कच्चि ते, भन्ते, भगवतो वुत्तवादिनो, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खन्ति, धम्मस्स च अनुधम्मं ब्याकरोन्ति, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छति ? अनब्भक्खातुकामा हि मयं, भन्ते, भगवन्तं'' ति।

की प्रशंसा करते हैं। मैं निगण्ठ नाटपुत्त को विना पूछे ही उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के दर्शन के लिये चलूँ।"

तब सिंह सेनापति पाँच सौ रथों के साथ दिन ही दिन (दोपहर) में भगवान् के दर्शनहेतु वैशाली से निकला। यान से जाने का जितना मार्ग था उस पर यान से जाकर, फिर यान से उतर कर पैदल ही आराम में प्रविष्ट हुआ। और जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ जाकर भगवान् से यो बोला—"भन्ते! मैंने सुना है—'श्रमण गौतम अक्रियावादी है, अक्रिया के लिये धर्मोपदेश करता है उसी में शिष्यों को लगाता है।' भन्ते! जो ऐसा कहता है क्या वह भगवान् के विषय में ठीक ही कहता है? या फिर वह आप पर मिथ्या आरोप लगाता हुआ आपकी निन्दा तो नहीं करता? क्या वह धर्मानुसार ही धर्म को कहता है? कोई सहधार्मिक वादानुवाद तो इससे निन्दित नहीं होता? भन्ते! हम भगवान् की निन्दा करना नहीं चाहते!"

३२. ''अत्थि, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य— 'अकिरियवादो समणो गोतमो, अकिरियाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति। अत्थि, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'किरियवादो समणो गोतमो किरियाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति। अत्थि, सीह, परियायो येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'उच्छेदवादो समणो गोतमो उच्छेदाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति। अत्थि, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य— 'जेगुच्छी समणो गोतमो, जेगुच्छिताय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति। अत्थि, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'वेनयिको समणो गोतमो, विनयाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति। अत्थि, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'तपस्सी समणो गोतमो, तपस्सिताय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति। अत्थि, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'अपगब्भो समणो गोतमो, अपगब्भताय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति। अत्थि, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'अस्सत्थो समणो गोतमो, अस्सासाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति।

३३. ''कतमो च, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो [N.250, R.235] वदेय्य—'अकिरियवादो समणो गोतमो, अकिरियाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति? अहं हि, सीह, अकिरियं वदामि कायदुच्चरितस्स वचीदुच्चरितस्स मनोदुच्चरितस्स; अनेकविहितानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अकिरियं वदामि। अयं खो, सीह, [B.331] परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'अकिरियवादो समणो गोतमो, अकिरियाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति।

''कतमो च, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—''किरियवादो

---

३२. ''सिंह! ऐसा कारण है, जिस कारण से ठीक कहता हुआ कोई मेरे विषय में यह कह सकता है—'श्रमण गौतम अक्रियवादी है, अक्रिया के लिये धर्मोपदेश करता है, तथा शिष्यों को उधर ही प्रेरित करता है। सिंह! ऐसा भी कारण है जिस कारण से.....श्रमण गौतम क्रियावादी है...। सिंह! ऐसा भी कारण है, जिस कारण से....श्रमण गौतम उच्छेदवादी हैं....। सिंह! ऐसा भी कारण है, जिस कारण से....श्रमण गौतम वैनयिक है....। सिंह! ऐसा भी कारण है, जिस कारण से....श्रमण गौतम जुगुप्सु है....। सिंह! ऐसा भी कारण है, जिस कारण से....श्रमण गौतम वैनयिक है....। सिंह! ऐसा भी कारण है, जिस कारण से....श्रमण गौतम तपस्वी है....। सिंह! ऐसा भी कारण है जिस कारण से....श्रमण गौतम अपगर्भ....आश्वस्त है....तथा शिष्यों को भी उधर प्रेरित करता है।

३३. ''सिंह! वह कौन सा कारण है जिसके सहारे से कोई मेरे विषय में यथार्थ कहता हुआ यह कहे—''श्रमण गौतम अक्रियवादी है....शिष्यों को भी उधर ही प्रेरित करता है? क्योंकि, सिह! मैं काय, वाक् एवं मन से होने वाले दुश्चरितों की अक्रिया (उनसे विरति) का उपदेश करता हूँ, नानाविध पापकर्मों की अक्रिया का उपदेश करता हूँ। सिंह! यह कारण है जिसके सहारे से मुझे....'अक्रियावादी' कहा जा सकता है।

''और सिंह! कौन सा कारण है....यह कहे—'श्रमण गौतम क्रियावादी है, क्रियावाद का

समणो गोतमो, किरियाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति? अहं हि, सीह, क़िरियं वदामि कायसुचरितस्स वचीसुचरितस्स मनोसुचरितस्स, अनेकविहितानं कुसलानं धम्मानं किरियं वदामि। अयं खो, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य— 'किरियवादो समणो गोतमो, किरियाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति।

"कतमो च, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'उच्छेदवादो समणो गोतमो, उच्छेदाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति? अहं हि, सीह, उच्छेदं वदामि रागस्स दोसस्स मोहस्स; अनेकविहितानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं उच्छेदं वदामि। अयं खो, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'उच्छेदवादो समणो गोतमो उच्छेदाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति।

"कतमो च, सीह, परियायो येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'जेगुच्छी समणो गोतमो, जेगुच्छिताय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति? अहं हि, सीह, जिगुच्छामि कायदुच्चरितेन वचीदुच्चरितेन मनोदुच्चरितेन; अनेकविहितानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं समापत्तिया जिगुच्छामि। अयं खो, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'जेगुच्छी समणो गोतमो, जेगुच्छिताय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति।

"कतमो च, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'वेनयिको समणो गोतमो, विनयाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति? अहं हि, सीह, विनयाय [B.332] धम्मं देसेमि रागस्स दोसस्स मोहस्स; अनेकविहितानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं विनयाय धम्मं देसेमि। अयं खो, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'वेनयिको समणो गोतमो, विनयाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति।

"कतमो च, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'तपस्सी समणो गोतमो, तपस्सिताय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति? तपनीयाहं, सीह,

---

उपदेश करता है....शिष्यों को भी उधर ही प्रेरित करता है?' क्योंकि, सिंह! मैं काय, वाक् एवं मन से होने वाली कुशल क्रियाओं (सुचरितों) का उपदेश करता हूँ....। सिंह! यह भी कारण है....क्रियावादी कहा जा सकता है।

"और, सिह! कौन सा कारण....यह कहे—'श्रमण गौतम उच्छेदवादी है....प्रेरित करता है? क्योंकि, सिंह! मैं श्रद्धालु जनता को राग, द्वेष एवं मोह के उच्छेद की देशना करता हूँ,....प्रेरित करता हूँ। सिंह! यह भी कारण है....।

"और, सिंह! कौन सा कारण है....यह कहे—'श्रमण गौतम जुगुप्सु (निन्दा करने वाला) है, जुगुप्सा का उपदेश करता है....प्रेरित करता है? क्योंकि सिंह! मैं काय, वाक् एवं मन से हो सकने वाले दुश्चरितों की निन्दा (घृणा) का उपदेश करता हूँ....प्रेरित करता हूँ। सिंह! यह भी कारण है....कहा जा सकता है।

"और सिंह! कौन सा कारण है...यह कहे—'श्रमण गौतम वैनयिक है, विनय के लिये धर्मोपदेश करता है....प्रेरित करता हैय' क्योंकि, सिंह मैं राग, द्वेष एवं मोह के विनय (दमन) का उपदेश करता हूँ...कहा जा सकता है।

"और, सिंह! कौन सा कारण है जिसके सहारे से...यह कहे;—'श्रमण गौतम तपस्वी है,

पापके अकुसले धम्मे वदामि—कायदुच्चरितं वचीदुच्चरितं मनोदुच्चरितं। यस्स खो, सीह, तपनीया पापका अकुसला धम्मा पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा, तमहं 'तपस्सी' ति वदामि। तथागतस्स खो, सीह, तपनीया पापका अकुसला धम्मा पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। [N.251] अयं खो, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'तपस्सी समणो गोतमो तपस्सिताय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति। [R.236]

"कतमो च, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'अपगब्भो समणो गोतमो अपगब्भताय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति? यस्स खो, सीह, आयतिं गब्भसेय्या पुनब्भवाभिनिब्बत्ति पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा, तमहं अपगब्भो ति वदामि। तथागतस्स खो, सीह, आयतिं गब्भसेय्या पुनब्भवाभिनिब्बत्ति पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। अयं खो, सीह, परियायो, तेन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'अपगब्भो समणो गोतमो अपगब्भताय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति।

"कतमो च, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'अस्सत्थो समणो गोतमो अस्सासाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' ति? अहं हि, सीह, अस्सत्थो परमेन अस्सासेन, अस्सासाय च धम्मं देसेमि, तेन च सावके विनेमि। अयं खो, सीह, परियायो, येन मं परियायेन सम्मा वदमानो वदेय्य—'अस्सत्थो समणो गोतमो अस्सासाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती' " ति।

३४. एवं वुत्ते सीहो सेनापति भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भन्ते,....[B.333] पे०.... उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति

तपस्विता के लिये धर्मोपदेश करता है....प्रेरित करता है? 'क्योंकि सिंह! मैं काय, वाक् एवं मन से होने वाले दुश्चरितों को अकुशल धर्मों को तपनीय (भस्म कर देने योग्य) मान कर वैसा ही उपदेश करता हूँ.. प्रेरणा करता हूँ। सिंह! जिसके ये तपनीय पापमय अकुशल धर्म प्रहीण हो चुके हैं, जड से उखड़ चुके हैं, जिनका अभाव हो चुका है, भविष्य में उनके उत्पाद की कोई स्थिति नहीं रह गयी है, उसको मैं 'तपस्वी' कहता हूँ। सिंह! क्योंकि तथागत के ये तपनीय पापमय...उत्पाद की कोई स्थिति नहीं रह गयी है, सिंह! यह कारण है , जिससे तथागत को 'तपस्वी' कहा जा सकता है।

और, सिंह! कौन सा कारण है जिसके सहारे से....यह कहे—'श्रमण गौतम अपगर्भ (पुनः जन्म न लेना वाला) है, अपगर्भ के लिये उपदेश....प्रेरित करता है?' क्योंकि, सिंह! मैं 'अपगर्भ' उसे कहता हूँ जिसका इस संसार में पुनर्भव (गर्भ में आना) क्षीण हो चुका है ..भविष्य में भी जिसके पुनरुत्पाद की आशा नहीं है। तथागत का पुनर्भव क्षीण हो चुका है.....भविष्य में भी पुनरुत्पाद की कोई आशा नहीं है, इस कारण से, सिंह! मुझको 'अपगर्भ' कहा जा सकता है।

'और, सिंह! कौन सा कारण है जिसके सहारे से....यह कहे—'श्रमण गौतम! आश्वस्त है, आश्वास के लिये ही वह उपदेश.. प्रेरित करता है?' क्योंकि, सिंह! मैं परम आश्वास से आश्वस्त हूँ अत. इस आश्वास के लिये ही उपदेश करता हूँ . प्रेरित करता हूँ। इस कारण से, सिह! मुझे 'आश्वस्त' कहा जा सकता है।"

३४. भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, सिह सेनापति यह बोला— आश्चर्य है, भन्ते! कितना

"अनुविच्चकारं खो, सीह, करोहि, अनुविच्चकारो तुम्हादिसानं ञातमनुस्सानं साधु होती" ति।

"इमिनापाहं, भन्ते, भगवतो वचनेन भिय्योसोमत्ताय अत्तमनो अभिरद्धो, यं मं भगवा एवमाह—'अनुविच्चकारं खो, सीह, करोहि; अनुविच्चकारो तुम्हादिसानं ञातमनुस्सानं साधु होती' ति। ममं हि, भन्ते, अञ्ञतित्थिया सावकं लभित्वा केवलकप्पं वेसालिं पटाकं परिहरेय्युं—'सीहो खा अम्हाकं सेनापति सावकत्तं उपगतो' ति। अथ च पन मं भगवा एवमाह—'अनुविच्चकारं खो, सीह, करोहि; अनुविच्चकारो तुम्हादिसानं ञातमनुस्सानं साधु होती" ति। एसाहं, भन्ते, दुतियं पि भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

"दीघरत्तं खो ते, सीह, निगण्ठानं ओपानभूतं कुलं, येन नेसं उपगतानं पिण्डकं दातब्बं मञ्ञेय्यासी" ति।

"इमिनापाहं, भन्ते, भगवतो वचनेन भिय्योसोमत्ताय अत्तमनो अभिरद्धो, यं मं भगवा एवमाह—"दीघरत्तं खो ते, सीह, निगण्ठानं ओपानभूतं कुलं, येन नेसं उपगतानं पिण्डकं दातब्बं मञ्ञेय्यासी" ति। सुतं मेतं, भन्ते, समणो गोतमो एवमाह—"मय्हमेव [N.252] दानं दातब्बं, न अञ्ञेसं दानं दातब्बं; मय्हमेव सावकानं दानं दातब्बं, न अञ्ञेसं [R.237] सावकानं दानं दातब्बं; मय्हमेव दिन्नं महप्फलं, न अञ्ञेसं दिन्नं महप्फलं;

अद्भुत है, भन्ते!....पूर्ववत्...आज से प्राण रहने तक भगवान् मुझ को अपना शरणागत उपासक समझें।"

"सिंह! जो कुछ करना है उसे पूर्णतः सोच समझ कर, विचार कर आगे पीछे की सोच कर तथा उसे तोल कर ही कोई निर्णय करो। इस तरह सोच विचार कर किये निर्णय से ही आप जैसे समाज में विख्यात पुरुषों का हित होगा।"

"भन्ते! आप के इस गम्भीर वचन से तो मैं आपमें पहले से भी अधिक श्रद्धालु हो गया हूँ कि आप मुझे अभी भी यही परामर्श दे रहे हैं कि जो कुछ करना हो सोच विचार कर करो। भन्ते! यदि मेरे जैसा समाज मे प्रतिष्ठित आदमी किसी अन्य धर्माचार्य के सम्मुख यह शरणगमन की बात कहता तो वह सुनते ही प्रमुदित होकर समग्र वैशाली में ध्वजा फहराता हुआ घोषणा करवा देता कि 'सिंह सेनापति जैसा प्रतिष्ठित पुरुष मेरा शिष्य बन गया है।' इसके विपरीत आप हैं कि मुझे सोच विचारकर निर्णय का परामर्श दे रहे हैं। अतः मैं, भन्ते! दूसरी बार भी भगवान् की, धर्म की एवं सङ्घ की शरण में आने की प्रार्थना करता हूँ।.....

"सिंह! तुम्हारा घर (कुल) दीर्घकाल से निगण्ठों के लिये (प्यासे के लिये) प्याऊ के समान रहा है। वहाँ से उनको निरन्तर भिक्षा मिलती रही है। अतः (मेरा उपासक बन जाने पर भी) 'निगण्ठों (के आने पर उन) को भिक्षा नहीं देनी चाहिये'—ऐसा विचार मन में न लाना।"

"भन्ते! आप के इस उपदेश से तो मैं और भी अधिक प्रसन्नमन एवं सन्तुष्टचित्त तथा आपके प्रति श्रद्धालु हो उठा हूँ....। भन्ते! मैंने तो लोगों को कहते सुना था—'श्रमण गौतम कहता है कि मुझको ही दान देना चाहिये, दूसरों को नहीं; मेरे ही शिष्यों को दान देना चाहिये, दूसरों को नहीं। मुझे... मेरे श्रावकों को दिये गये दान का ही फल होगा, अन्यों को दिये दान का कोई फल नहीं होगा।' जब कि भगवान् तो अभी भी मुझे निगण्ठों के लिये दान का उपदेश कर रहे हैं। मै आप के इस आदेश

मय्हमेव सावकानं दिन्नं महप्फलं, न अञ्ञेसं सावकानं दिन्नं महप्फलं'' ति। अथ च पन मं भगवा निगण्ठेसु पि दाने समादपेति। अपि च, भन्ते, मयमेत्थ कालं जानिस्साम। एसाहं, भन्ते, ततियं पि भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं ति।

अथ खो भगवा सीहस्स सेनापतिस्स अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथिदं—दानकथं.... पे०....अपरप्पच्चयो सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोच—''अधिवासेतु मे, भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना'' ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो सीहो [B.334] सेनापति भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

३५. अथ खो सीहो सेनापति अञ्ञतरं पुरिसं आणापेसि—''गच्छ, भणे, पवत्तमंसं जानाही'' ति। अथ खो सीहो सेनापति तस्सा रत्तिया अच्चयेन पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि—''कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं'' ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन सीहस्स सेनापतिस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन।

तेन खो पन समयेन सम्बहुला निगण्ठा वेसालियं रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति—''अज्ज सीहेन सेनापतिना थूलं पसुं वधित्वा समणस्स गोतमस्स भत्तं कतं, तं समणो गोतमो जानं उद्दिस्सकतं मंसं परिभुञ्जति पटिच्चकम्मं'' ति। अथ खो अञ्ञतरो पुरिसो येन सीहो सेनापति तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा सीहस्स सेनापतिस्स उपकण्णके आरोचेसि—''यग्घे, भन्ते, जानेय्यासि, एते सम्बहुला निगण्ठा वेसालियं रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति—'अज्ज सीहेन सेनापतिना थूलं पंसु वधित्वा समणस्स गोतमस्स भत्तं कतं, तं समणो गोतमो जानं उद्दिस्सकतं मंसं परिभुञ्जति

का निरन्तर ध्यान रखूँगा। परन्तु आपके इस हितकर आदेश से प्रभावित होकर मैं तीसरी बार भगवान् की, धर्म की तथा सङ्घ की शरण ग्रहण करता हूँ....।''

तब भगवान् ने सिंह सेनापति को आनुपूर्वी धर्म प्रवचन करना प्रारम्भ किया; जैसे दान के विषय में....पूर्ववत्....शास्ता के शासन में ही पूर्ण विश्वस्त (अपरप्पच्चयो) होकर भगवान् से यों निवेदन किया—''भन्ते! भिक्षुसङ्घ सहित भगवान् कल का भोजन मेरे घर पर स्वीकार करें।'' भगवान् ने मौनभाव से स्वीकृति दी। तब सिंह सेनापति, भगवान् की स्वीकृति जानकर आसन से उठकर, भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर, अपने आवास पर लौट आया।

३५. सिंह सेनापति ने किसी नौकर को आज्ञा दी—''जाओ, देखो बाजार में प्रवृत्त (तय्यार) मांस की क्या स्थिति है?'' तब सिंह सेनापति ने उस रात्रि के व्यतीत होनेपर, उत्तम उत्तम खाद्य पदार्थ तय्यार कराकर भगवान् को भोजन के समय की सूचना दी। भगवान् पूर्वाह्न में चीवर पहनकर पात्र-चीवर लेकर जहाँ सिंह सेनापति का घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षुसङ्घ के साथ प्रज्ञप्त आसन पर विराजे। उस समय बहुत से जैन साधु एक गली से दूसरी गली एवं एक चौराहे से दूसरे चौराहे पर हाथ उठा उठा कर चिल्लाते हुए से बोल रहे थे—''अरे! देखो! इस सिंह सेनापति ने एक विशालकाय पशु मारकर उसके मास से श्रमण गौतम का भोजन तय्यार करवाया है। श्रमण गौतम अपने ही उद्देश्य से काटे गये पशु के मांस से बने भोजन की बात जान कर भी वहाँ भिक्षुसङ्घ के साथ

पटिच्चकम्मं' ति। ''अलं अय्यो, दीघरत्तं पि ते आयस्मन्ता अवण्णकामा बुद्धस्स, अवण्णकामा धम्मस्स, अवण्णकामा सङ्घस्स; न च पन ते आयस्मन्ता जीरन्ति तं भगवन्तं असता तुच्छा मुसा अभूतेन अब्भाचिक्खन्ता; न च मयं जीवितहेतु पि सञ्चिच्च पाणं जीविता वोरोपेय्यामा'' ति।

अथ खो सीहो सेनापति बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन [R.238] सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदि। [N.253] एकमन्तं निसिन्नं खो सीहं सेनापतिं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं [B.335] पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—**''न, भिक्खवे, जानं उद्दिस्स—कतं मंसं परिभुञ्जितब्बं। यो परिभुञ्जेय्य आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, तिकोटिपरिसुद्धं मच्छमंसं—अदिट्ठं, असुतं, अपरिसङ्कितं''** ति।

२०. कप्पियभूमिअनुजानना

३६. तेन खो पन समयेन वेसाली सुभिक्खा होति सुसस्सा सुलभपिण्डा, सुकरा उञ्छेन पग्गहेन यापेतुं। अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—''यानि तानि मया भिक्खूनं अनुञ्ञातानि दुब्भिक्खे दुस्सस्से दुल्लभपिण्डे अन्तो वुत्थं अन्तो पक्कं सामं पक्कं उग्गहितपटिग्गहितकं ततो नीहटं पुरेभत्तं पटिग्गहितं वनट्ठं पोक्खरट्ठं, अज्जा पि नु खो तानि भिक्खू परिभुञ्जन्ती'' ति। अथ खो भगवा सायण्हसमयं

भोजन हेतु गये हैं।'' तब किसी आदमी ने सिंह सेनापति के कान में जाकर धीरे से उन जैन साधुओं का कथन सुनाया। सुनकर सिंह ने कहा—''जाने भी दो, आर्य! ये जैन तो बहुत समय से श्रमण गौतम पर नाना प्रकार के मिथ्या आरोप (लाञ्छन) लगाते आ रहे हैं। उनकी झूठी निन्दा करते आ रहे हैं। इन्हें इस कृत्य में कोई लज्जा सङ्कोच तो है नहीं। हम तो अपने प्राणों की रक्षार्थ भी किसी जीवित पशु को नहीं मार सकते!''

तब सिंह सेनापति ने बुद्धप्रमुख भिक्षुसङ्घ को अपने हाथ से उत्तम उत्तम खाद्य पदार्थ परोसते हुए पूर्णतः सन्तृप्त सन्तुष्ट किया। जब भगवान् को पात्र से हाथ हटाया हुआ देख लिया तो वह भी एक तरफ बैठ गया। तब भगवान् ने सिंह सेनापति को इस प्रसङ्ग में धार्मिक कथाएँ सुनाते हुए धर्म की ओर समुत्तेजित.....किया। बाद में वे अपने आराम में लौट आये।

(आराम में लौटकर भगवान् ने) इसी प्रसङ्ग में भिक्षुओं को एकत्र कर उन्हें आदेश दिया—**''भिक्षुओ! अपने उद्देश्य से काटे गये पशु के मांस को जानते-बूझते नहीं खाना चाहिये। भिक्षुओ! मैं तुम्हें जो न काटते देखा गया हो, न सुना गया हो एवं अपरिशङ्कित—यों त्रिकोटि (तीन तरफ से) परिशुद्ध मत्स्य मांस के उपयोग की ही अनुमति देता हूँ।''**

२०. कल्प्य भूमि की अनुज्ञा

दुर्भिक्ष काल के विधान सुभिक्ष में निषिद्ध— ३६. उस समय वैशाली नगरी में सुभिक्ष (धन-धान्य की समृद्धि) था। धान के खेत चारों ओर लहलहाने लगे थे। भिक्षा पाना सुलभ हो गया था। उञ्छ (खेत में गिरे दानों) से जीवनयापन सुगम हो गया था। तब एकान्त में चिन्तन करते भगवान् के मन में विचार उठा—''मैंने दुर्भिक्षकाल में भिक्षुओं के लिये जो नियम बनाये थे, जबकि भिक्षा मिलनी

पटिसल्लाना वुट्ठितो आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"यानि तानि, आनन्द, मया भिक्खूनं अनुञ्ञातानि दुब्भिक्खे दुस्सस्से दुल्लभपिण्डे अन्तो वुत्थं अन्तो पक्कं सामं पक्कं उग्गहितपटिग्गहितकं ततो नीहटं पुरेभत्तं पटिग्गहितं वनट्ठं पोक्खरट्ठं, अज्जा पि नु खो तानि भिक्खू परिभुञ्जन्ती" ति? "परिभुञ्जन्ति, भगवा" ति। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**यानि तानि, भिक्खवे, मया भिक्खूनं अनुञ्ञातानि दुब्भिक्खे दुस्सस्से दुल्लभपिण्डे अन्तो वुत्थं अन्तो पक्कं सामं पक्कं उग्गहितपटिग्गहितकं ततो नीहटं पुरेभत्तं पटिग्गहितं वनट्ठं पोक्खरट्ठं, तानाहं अज्जतग्गे पटिक्खिपामि। न, भिक्खवे, अन्तो वुत्थं अन्तो पक्कं उग्गहितपटिग्गहितकं परिभुञ्जितब्बं। यो परिभुञ्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। न च, भिक्खवे, ततो नीहटं पुरेभत्तं पटिग्गहितं वनट्ठं पोक्खरट्ठं भुत्ताविना पवारितेन अनतिरित्तं परिभुञ्जितब्बं। यो परिभुञ्जेय्य, यथाधम्मो कारेतब्बो**" ति।

तेन खो पन समयेन जानपदा मनुस्सा बहुं लोणं पि, तेलं पि, तण्डुलं पि, खादनीयं पि सकटेसु आरोपेत्वा बहारामकोट्ठके सकटपरिवट्टं करित्वा अच्छन्ति—"यदा पटिपाटिं लभिस्साम, तदा भत्तं करिस्सामा" ति। महा च मेघो उग्गतो। अथ खो ते मनुस्सा [R.239] येनायस्मा बहुं लोणं पि, तेलं पि, तण्डुलं पि, खादनीयं पि सकटेसु आरोपिता तिट्ठन्ति, महा च मेघो उग्गतो; कथं नु खो, भन्ते, पटिपज्जितब्बं" ति? अथ खो आयस्मा [B.336] आनन्दो भगवतो एतमत्थं आरोचेसि। "**तेन हानन्द, सङ्घो पच्चन्तिमं विहारं कप्पियभूमिं**

दुर्लभ हो गयी थी, खेतों में कहीं धान का कण भी नहीं दिखायी दे रहा था; जैसे—अन्दर रखे का, अन्दर पकाये का, अपने हाथ से पकाये का, ग्रहण—प्रतिग्रहण का, बाहर से लाये का, भोजन से पहले के लिये का, वन का, पुष्करिणी का अन्न ग्रहण करना आदि; क्या भिक्षु आज भी उनका पालन करते हैं?" तब भगवान् ने सायङ्काल ध्यानभावना से निवृत्त होकर आयुष्मान् आनन्द से पूछा—"आनन्द! मैंने दुर्भिक्षकाल में भिक्षुओं के लिये जो नियम बनाये थे....पूर्ववत्....क्या वे उनका आज भी पालन करते हैं?" "हाँ, भन्ते! पालन करते हैं।" तब भगवान् ने इस कारण, इस प्रसङ्ग में धार्मिक कथा करते हुए अन्त में भिक्षुओं से कहा—"**भिक्षुओ! दुर्भिक्षकाल में मैंने तुम लोगों के लिये जो नियम प्रज्ञप्त किये थे; जैसे—....पूर्ववत्....उनका पालन आज से निषिद्ध करता हूँ। भिक्षुओ! भीतर रखे....उद्गृहीत खाद्य का उपयोग नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसको 'दुष्कृत' दोष लगेगा। इसी तरह बाहर से लाये....पुष्करिणी से आहृत खाद्य का भोजन के बाद जो उपयोग करेगा उसे धर्मानुसार दण्ड देना चाहिये।**"

कल्प्यभूमि (भाण्डागार) का चयन— उस समय श्रद्धालु ग्रामवासी जन बहुत सा नमक, तैल, तण्डुल या ऐसे ही अन्य खाद्य पदार्थ गाड़ियों पर लादकर, भिक्षुआवास के बाहरी प्रकोष्ठ (बरामदा) में गाडियाँ खड़ी कर प्रतीक्षा करते थे कि "जब हमारा अवसर आयगा तो भिक्षुओं को भोजन (भत्तं) देंगे।" एक समय काली घटा उमड़ आयी। तब घबराकर वे ग्रामवासी आयुष्मान् आनन्द के पास गये और बोले—"भन्ते आनन्द! हम अपनी गाडियों में बहुत सा नमक तैल तण्डुल एवं ऐसा ही अन्य खादय पदार्थ लादे हुए प्रतीक्षा कर रहे हैं। परन्तु देख रहे हैं घटाएँ उमड़ आयी हैं; लगता है घनघोर वर्षा होगी। अब हमें क्या करना चाहिये, यों तो खुले आकाश में सब समान व्यर्थ हो जायगा।" तब आनन्द ने भगवान् से इस विषय में पूछा। "**तो, आनन्द! सङ्घ अन्तवाले विहार को**

सम्मन्नित्वा तत्थ वासेतु, यं सङ्घो आकङ्खति विहारं वा अड्ढयोगं वा पासादं वा हम्मियं वा गुहं वा।

एवं च पन, भिक्खवे, सम्मन्नितब्बा। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो— [N.254] "सुणातु मे, भन्ते सङ्घो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो इत्थन्नामं विहारं कप्पियभूमिं सम्मन्नेय्य, एसा ञत्ति।

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। सङ्घो इत्थन्नामं विहारं कप्पियभूमिं सम्मन्नति। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स विहारस्स कप्पियभूमिया सम्मुति, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

"सम्मतो सङ्घेन इत्थन्नामो विहारो कप्पियभूमि। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी" ति।

तेन खो पन समयेन मनुस्सा तत्थेव सम्मुतिया कप्पियभूमिया यागुयो पचन्ति, भत्तानि पचन्ति, सूपानि सम्पादेन्ति, मंसानि कोट्टेन्ति, कट्ठानि फालेन्ति। अस्सोसि खो भगवा रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय उच्चासद्दं महासद्दं काकोरवसद्दं, सुत्वान आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"किं नु खो सो, आनन्द, उच्चासद्दो महासद्दो काकोरवसद्दो" ति? एतरहि, भन्ते, मनुस्सा तत्थेव सम्मुतिया कप्पियभूमिया यागुयो पचन्ति, भत्तानि पचन्ति, सूपानि सम्पादेन्ति, मंसानि कोट्टेन्ति, कट्ठानि फालेन्ति। सो एसो, भगवा, उच्चासद्दो महासद्दो काकोरवसद्दो ति। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, सम्मुति कप्पियभूमि परिभुञ्जितब्बा। यो परिभुञ्जेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। अनुजानामि, भिक्खवे, तिस्सो कप्पियभूमियो—उस्सावनन्तिकं, गोनिसादिकं, गहपतिं**" ति।

कल्प्यभूमि (भाण्डागार) बनाने का निर्णय (=सम्मति) करके वहाँ यह सामान (खाद्य पदार्थ) रखवा दे। सङ्घ जिस विहार, अटारी, प्रासाद, हर्म्य या गुफा—जिसको चाहे कल्प्यभूमि बना ले।

"भिक्षुओ! यह सम्मति लेने की विधि यह होगी। कोई चतुर समर्थ भिक्षु सङ्घ को यों सूचित करे—

ज्ञप्ति (सूचना)— "भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। यदि सङ्घ उचित समझे तो एतन्नामक विहार को कल्प्यभूमि बनाने की अनुमति दे। यह सूचना है।

अनुश्रावण— "भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। सङ्घ इस नामवाले विहार को कल्प्यभूमि होने का निर्णय करता है। जिस आयुष्मान् को यह निर्णय स्वीकार हो वह चुप रहे। जिसे स्वीकार न हो वह बोले।

धारणा— "सङ्घ को यह निर्णय स्वीकृत है, इसीलिये चुप है—ऐसी मेरी धारणा है।"

कल्प्यभूमि में भोजन पकाना निषिद्ध— उस समय साधारण जन सङ्घ द्वारा उस निर्णीत कल्प्यभूमि में ही यवागू (खिचड़ी), भात, सूप, मांस पकाते थे, लकडियाँ फाड़ते थे। रात्रि में बहुत सबेरे उठकर भगवान् वह उच्च महान् एवं कौओं के काँव-काँव की तरह शब्द का सुना। सुनकर आयुष्मान् आनन्द को बुलाया, पूछा—"यह कौओ की तरह काँव-काँव कौन कर रहे है?" "भन्ते! इस समय लोग उसी सङ्घ द्वरा निर्णीत भूमि में यवागू आदि पका रहे हैं। उन्हीं का यह कोलाहल है।"

"भिक्षुओ! निर्णीत कल्प्यभूमि में भोजन नहीं खाना पकाना चाहिये। जो खाये उसे 'दुष्कृत'

तेन खो पन समयेन आयस्मा यसोजो गिलानो होति। तस्सत्थाय भेसज्जानि आहरीयन्ति। तानि भिक्खू बहि वासेन्ति। उक्कपिण्डका पि खादन्ति, चोरा पि हरन्ति। [B.337] भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सम्मुतिं कप्पियभूमिं परिभुञ्जितुं। अनुजानामि, भिक्खवे, चतस्सो कप्पियभूमियो**—[R.240] **उस्सावनन्तिकं, गोनिसादिकं, गहपतिं, सम्मुतिं** ति॥

सीहभाणवारो निट्ठितो चतुत्थो॥

२१. मेण्डकगहपतिवत्थु

३७. तेन खो पन समयेन भद्दियनगरे मेण्डको गहपति पटिवसति। तस्स एवरूपो इद्धानुभावो होति—सीसं नहायित्वा धञ्ञागारं सम्मज्जापेत्वा बहिद्वारे निसीदति, अन्तलिक्खा धञ्ञस्स धारा ओपतित्वा धञ्ञागारं पूरेति। भरियाय एवरूपो इद्धानुभावो होति—एकञ्ञेव आळ्हकथालिकं उपनिसीदित्वा एकं च सूपव्यञ्जनकं दासकम्मकरपोरिसं भत्तेन [N.255] परिविसति, न ताव तं खिय्यति याव सा न वुट्ठाति। पुत्तस्स एवरूपो इद्धानुभावो होति—एकं येव सहस्सथविकं गहेत्वा दासकम्मकरपोरिसस्स छम्मासिकं वेतनं देति, न ताव तं खिय्यति यावस्स हत्थगता। सुणिसाय एवरूपो इद्धानुभावो होति—एकं येव चतुदोणिकं पिटकं उपनिसीदित्वा दासकम्मकरपोरिसस्स छम्मासिकं भत्तं देति, न ताव तं खिय्यति

दोष लगे। अनुमति देता हूँ तीन प्रकार की कल्प्यभूमियाँ बनाने की—१. खम्भों पर उठी हुई, २. गौओं के लिये एवं ३. गृहस्थों के लिये।

चतुर्विध कल्प्यभूमियाँ— उस समय आयुष्मान् यशोज रोगाक्रान्त थे। उनके लिये ओषधियाँ लायी गयीं थीं। उन्हें भिक्षु बाहर ही रखते थे। अतः उन्हें चूहे आदि भी खा जाते या चोर भी चुरा ले जाते थे। भगवान् से यह बात कही गयी तो उन्होंने आज्ञा दी—"**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ निर्णीत कल्प्यभूमि के उपयोग की भी। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चार प्रकार की कल्प्यभूमियाँ बनाने की—१. खम्भों पर उठी हुई, २. गायों के बैठने की, ३. गृहस्थों के ठहरने की एवं ४. निर्णीत कल्प्यभूमि॥**

सिंहभाणवार चतुर्थ समाप्त॥

२१. मेण्डकगृहपतिवस्तु

३७. उस समय भद्दिय (भद्रिका) नगर में मेण्डक नामक गृहपति (वैश्य) रहता था। उसके पास (पूर्व पुण्य प्रभाव से) ऐसा ऋद्धिबल था कि वह प्रातःकाल शिरः स्नान कर धान्यागार में सफाई (झाड़ू–बुहारू) करवाकर बाहर दरवाजे पर बैठ जाता था। तब आकाश से धान्य की इतनी वर्षा होती थी कि उस का पूरा धान्यागार धान्य से भर जाता था। इसी तरह उसी भार्या के पास ऐसा दिव्य बल था कि वह एक आढक (चार प्रस्थ) भर चावल की हाँड़ी एवं एक बर्तन में दाल पकाकर दास, दासी, कर्मकर सभी पुरुषों को पेट भर खिला देती थी। वह दाल–भात तब तक समाप्त नहीं होता था जब तक वह भण्डार से बाहर नहीं निकलती थी। उसके पुत्र का ऐसा ऋद्धिबल था कि वह थैली में एक हजार मुद्राएँ लेकर बैठता था; परन्तु अपने दास–दासी–कर्मकर आदि को छह छह मास का वेतन दे देता था, फिर भी उस थैली की मुद्राएँ तब तक समाप्त नहीं होती थी जब तक वह उस थैली को अपने हाथ से भूमि पर न रख दे। उसकी पुत्रवधू के पास भी ऐसा ऋद्धिबल था कि वह एक द्रोण के एक बडे टोकरे में धान भरकर दास–दासी कर्मकारों को उनके खाने के लिये छह मास तक न समाप्त होने वाला धान बाँट देती थी तो भी उस टोकरे का धान तब तक समाप्त नहीं होता था जब

याव सा न वुट्ठाति। दासस्स एवरूपो इद्धानुभावो होति—एकेन नङ्गलेन कसन्तस्स सत्त सीतायो गच्छन्ति।

३८. अस्सोसि खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो—"अम्हाकं किर विजिते भद्दियनगरे मेण्डको गहपति पटिवसति। तस्स एवरूपो इद्धानुभावो—सीसं नहायित्वा धञ्ञागारं सम्मज्जापेत्वा बहिद्वारे निसीदति, अन्तलिक्खा धञ्ञस्स धारा ओपतित्वा धञ्ञागारं पूरेति। भरियाय एवरूपो इद्धानुभावो—एकं येव आळ्हकथालिकं उपनिसीदित्वा एकं च सूपव्यञ्जनकं दासकम्मकरपोरिसं भत्तेन परिविसति, न ताव तं खिय्यति याव सा न वुट्ठति। पुत्तस्स एवरूपो इद्धानुभावो—एकं येव सहस्सथविकं गहेत्वा दासकम्मकरपोसिस्स [B.338] छम्मासिकं वेतनं देति, न ताव तं खिय्यति यावस्स हत्थगता। सुणिसाय एवरूपो इद्धानुभावो—एकं येव चतुदोणिकं पिटकं उपनिसीदित्वा दासकम्मकरपोरिसस्स छम्मासिकं भत्तं देति, न ताव तं खिय्यति याव सा न वुट्ठाति। दासस्स एवरूपो इद्धानुभावो—एकेन नङ्गलेन कसन्तस्स सत्त सीतायो गच्छन्ती" ति। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो अञ्ञतरं सब्बत्थकं महामत्तं आमन्तेसि—"अम्हाकं किर, भणे, विजिते भद्दियनगरे मेण्डको [R.241] गहपति पटिवसति। तस्स एवरूपो इद्धानुभावो—सीसं नहायित्वा धञ्ञागारं सम्मपज्जापेत्वा बहिद्वारे निसीदति, अन्तलिक्खा धञ्ञस्स धारा ओपतित्वा धञ्ञागारं पूरेति। भरियाय....पे०.....पुत्तस्स....पे०.... सुणिसाय.... पे०......दासस्स....पे०....गच्छ, भणे, जानाहि। यथा मया सामं दिट्ठो, एवं तव दिट्ठो भविस्सती" ति।

३९. "एवं, देवा" ति खो सो महामत्तो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स पटिस्सुणित्वा चतुरङ्गिनिया सेनाय येन भद्दियं तेन पायासि। अनुपुब्बेन येन भद्दियं येन मेण्डको गहपति तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा मेण्डकं गहपतिं एतदवोच—"अहं हि, गहपति, रञ्ञा आणत्तो 'अम्हाकं किर, भणे, विजिते भद्दियनगरे मेण्डको गहपति पटिवसति तस्स एवरूपो इद्धानुभावो....पे०.....भरियाय....पे०....पुत्तस्स....पे०....सुणिसाय....पे०....दासस्स ....पे०...."गच्छ, भणे, जानाहि। यथा मया सामं दिट्ठो, एवं तव दिट्ठो भविस्सती' ति। पस्साम ते, गहपति, इद्धानुभावं" ति।

तक वह उसे छोड़कर वहाँ से उठ न जाती थी। उसके हलवाहे का भी ऐसा दिव्य प्रभाव था कि वह एक हल की जुताई में सात-सात हलाई (सीताएँ) निकाल देता था।

राजा बिम्बिसार द्वारा परीक्षा— ३८. राजा मागध श्रेणिय बिम्बिसार ने जब सुना कि उसके द्वारा शासित भद्दिय नगर में मेण्डक गृहपति रहता है। उसके पास ऐसा ऋद्धिबल है कि....पूर्ववत्....सात-सात हलाइयाँ निकाल देता है, तब...बिम्बिसार ने एक सर्वार्थक महामात्य को बुलाकर कर आज्ञा दी—"भाई! हमारे राज्य के भद्दिय नगर में मेण्डक गृहपति रहता है। उस का ऐसा ऋद्धिबल है कि....पूर्ववत् ...हलाइयाँ निकाल देता है। तुम जाओ सत्यता का पता लगाओ। तुम्हारा देखा हुआ मैं अपने देखे हुए जैसा ही मानूँगा।"

३९. "अच्छा, देव!" यों वह महामात्य राजा को उत्तर देकर चतुरङ्गिणी सेना के साथ क्रमशः भद्दियनगर में मेण्डक गृहपति के घर पहुँचा। पहुँचकर वह मेण्डक गृहपति को यों बोला— "गृहपति! मुझे राजा बिम्बिसार ने आज्ञा दी है—"जाओ, देखो! हमारे राज्य के अन्तर्गत भद्दिय नगर

अथ खो मेण्डको गहपति सीसं नहायित्वा धञ्ञागारं सम्मपज्जापेत्वा बहिद्वारे [N.256] निसीदि, अन्तलिक्खा धञ्ञस्स धारा ओपतित्वा धञ्ञागारं पूरेसि। ''दिट्ठो ते, गहपति, इद्धानुभावो। भरियाय ते इद्धानुभावं पस्सिस्सामा'' ति।

अथ खो मेण्डको गहपति भरियं आणापेसि—''तेन हि चतुरङ्गिनिं सेनं भत्तेन परिविसा'' ति। अथ खो मेण्डकस्स गहपतिस्स भरिया एकं येव आळ्हकथालिकं उपनिसीदित्वा एकं च सूपव्यञ्जनकं चतुरङ्गिनिं सेनं भत्तेन परिविसि, न ताव तं खीयि याव सा न वुट्ठासि। ''दिट्ठो ते, गहपति, भरियाय पि इद्धानुभावो। पुत्तस्स ते इद्धानुभावं पस्सिस्सामा'' ति।

अथ खो मेण्डको गहपति पुत्तं आणापेसि—''तेन हि चतुरङ्गिनिया सेनाय छम्मासिकं वेतनं देही'' ति। अथ खो मेण्डकस्स गहपतिस्स पुत्तो एकं येव सहस्सथविकं गहेत्वा[B.339] चतुरङ्गिनिया सेनाय छम्मासिकं वेतनं अदासि, न ताव तं खीयि यावस्स हत्थगता। ''दिट्ठो ते, गहपति, पुत्तस्स पि इद्धानुभावो। सुणिसाय ते इद्धानुभावं पस्सिस्सामा'' ति।

अथ खो मेण्डको गहपति सुणिसं आणापेसि—''तेन हि चतुरङ्गिनिया सेनाय छम्मासिकं भत्तं देही'' ति। अथ खो मेण्डकस्स गहपतिस्स सुणिसा एकं येव चतुदोणिकं पिटकं उपनिसीदित्वा चतुरङ्गिनिया सेनाय छम्मासिकं भत्तं अदासि, न ताव तं खीयि याव सा न वुट्ठासि। ''दिट्ठो ते, गहपति, सुणिसाय पि इद्धानुभावो। दासस्स ते इद्धानुभावं पस्सिस्सामा'' ति।

''मय्हं खो, सामि, दासस्स इद्धानुभावो खेत्ते पस्सितब्बो'' ति। ''अलं, गहपति,

---

में मेण्डक गृहपति रहता है।....पूर्ववत्....तुम्हारा देखा मैं अपने देखे के समान ही समझूँगा। तो गृहपति! हम तुम्हारा वह दिव्यानुभाव देखना चाहते हैं।''

तब मेण्डक गृहपति शीर्षस्नान करके धान्य भाण्डागार को साफ करवा कर द्वार पर बैठा तो आकाश से धान्य की वर्षा होने लगी और भाण्डागार धान्य से भर गया। (यह देखकर सर्वार्थक महामात्य बोला—) ''गृहपति! तुम्हारा ऋद्धिबल देख लिया, अब आप की धर्मपत्नी का ऋद्धिबल देखना चाहते हैं''।

तब मेण्डक गृहपति ने अपनी पत्नी को आज्ञा दी—''देवि! महामात्य की चतुरङ्गिणी सेना को भोजन कराओ।'' तब मेण्डक गृहपति की पत्नी ने एक आढक भर चावल एक हाँड़ी में पकाया एक बर्तन भर दाल पकायी। चतुरङ्गिणी सेना को भोजन परोसा गया । वह तब तक भण्डार मे बैठी रही, जब तक चतुरङ्गिणी सेना भोजन कर तृप्त न हो गयी।

.....तब गृहपति ने पुत्र को आज्ञा दी—''तूँ इस चतुरङ्गिणी सेना को छह मास का वेतन दे।'' यह सुनकर गृहपतिपुत्र एक थैली में एक सहस्रमुद्रा भर कर बैठ गया और उसी से समग्र चतुरङ्गिणी सेना के सिपाहियों को छह मास का वेतन बाँट दिया। वह थैली जब तक उसके हाथ में रही उसमें मुद्रा कम नहीं हुई।

....गृहपति ने पुत्रवधू को आज्ञा दी उसने एक टोकरा भर कर उसी से समग्र चतुरङ्गिणी सेना को छह मास तक का धान बाँट दिया तो भी उस टोकरे का धान समाप्त नहीं हुआ।

....गृहपति ने अपने दास को अपना दिव्यबल दिखाने की आज्ञा दी तो उसने खेत में जाकर

दिट्ठो ते दासस्स पि इद्धानुभावो'' ति। अथ खो सा महामत्तो चतुरङ्गिनिया सेनाय पुनदेव राजगहं पच्चागच्छि। येन राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स एतमत्थं आरोचेसि।

[R.242] ४०. अथ खो भगवा वेसालियं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन भद्दियं तेन चारिकं पक्कामि महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेलसेहि भिक्खुसतेहि। अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन भद्दियं तदवसरि। तत्र सुदं भगवा भद्दिये विहरति जातिया वने। अस्सोसि खो मेण्डको गहपति—''समणो खलु भो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो भद्दियं अनुप्पत्तो भद्दिये विहरति जातिया वने। तं खो पन भगवन्तं गोतमं एवं-कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथी सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती'' ति।

[B.340] अथ खो मेण्डको गहपति भद्रानि भद्रानि यानानि योजापेत्वा भद्रं भद्रं यानं अभिरुहित्वा भद्रेहि भद्रेहि यानेहि भद्दिया निय्यासि भगवन्तं दस्सनाय। अद्दसंसु खो सम्बहुला तित्थिया मेण्डकं गहपतिं दूरतो व आगच्छन्तं, दिस्वान मेण्डकं गहपतिं एतदवोचुं—[N.257] ''कहं त्वं, गहपति, गच्छसी'' ति? '' गच्छामहं, भन्ते, समणं गोतमं दस्सनाया''

दिव्य बल दिखाने को कहा। तब सर्वार्थक अमात्य ने कहा—''रहने दो, गृहपति! तुम्हारे दास का भी (सात हलाइयों वाला) दिव्य बल देखा हुआ ही समझ लेता हूँ।'' तब वह महामात्य अपनी चतुरङ्गिणी सेना के साथ पुनः राजगृह लौट आया। और राजा श्रेणिय बिम्बिसार के पास जाकर उन्हें समग्र घटना सुनायी।

४० उधर भगवान् (बुद्ध) भी वैशाली में धर्मसाधनाहेतु यथाभीष्ट ठहरकर, साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के सङ्घ के साथ भद्दिया (वर्तमान में बिहार में मुंगेर नगर) के लिये चारिका हेतु चल दिये। क्रमशः चारिका करते हुए वे भद्दिया में पहुँचे। वे वहाँ जातिकावन में जाकर साधनाहेतु विराजे। जब मेण्डक गृहपति ने सुना—''शाक्यकुल से प्रव्रजित शाक्यपुत्र श्रमण गौतम भद्दिया में पधारे हैं और जातियावन में विराजमान हैं। उन भगवान् गौतम का ऐसा कीर्ति—शब्द (यशोगान) चारों तरफ फैला हुआ है—'वे भगवान् अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध विद्या एवं आचरण से युक्त, सुगत, लोकविद्, सर्वश्रेष्ठ, पुरुषों के दमनसारथि (अनुशासक), देव—मनुष्यों के उपदेशक, बुद्ध भगवान् हैं।' वे देव—मार एवं ब्रह्मा सहित इस लोक को, श्रमण—ब्राह्मण सहित एवं देव—मनुष्यसहित इस प्रजा को पहले स्वयं साक्षात्कार कर धर्म का उपदेश करते हैं तथा केवल (एकान्ततः) परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य (धर्मसाधना) का प्रकाश करते हैं। ऐसे अर्हतों (ज्ञानियों) का दर्शन अत्युत्तम होता है।

तब मेण्डक गृहपति, अच्छे अच्छे रथ जुतवा कर, एक उत्तम रथ पर आरूढ़ हो, अच्छे—अच्छे रथों से घिरा हुआ भगवद्दर्शन हेतु भद्दिया नगरी से निकला। उस समय अन्य सम्प्रदाय के कई साधुओं ने दूर से ही आते हुए देख लिया। देखकर उसे रोककर पूछा—''गृहपति! इस समय तुम कहाँ

ति। "किं पन त्वं, गहपति, किरियवादो समानो अकिरियवादं समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सति? समणो हि, गहपति, गोतमो अकिरियवादो अकिरियाय धम्मं देसेति, तेन च सावके विनेती" ति। अथ खो मेण्डकस्स गहपतिस्स एतदहोसि—"निस्संसयं, खो सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो भविस्सति, यथयिमे तित्थिया उसूयन्ती" ति। यावतिका यानस्स भूमि, यानेन गन्त्वा याना पच्चोरोहित्वा पत्तिको व येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नस्स खो मेण्डकस्स गहपतिस्स भगवा अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथिदं—दानकथं.....पे०....अपरप्पच्चयो सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भन्ते....पे०....उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं ति। अधिवासेतु च मे, भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं [R.243] सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो मेण्डको गहपति भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

अथ खो मेण्डको गहपति तस्सा रत्तिया अच्चयेन पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटिया-दापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि— "कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं" ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीरमादाय येन मेण्डकस्स गहपतिस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो मेण्डकस्स गहपतिस्स भरिया च पुत्तो च सुणिसा च दासो च येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। तेसं भगवा अनुपुब्बि कथं कथेसि, सेय्यथिदं—दानकथं... पे०....अपरप्पच्चया सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोचुं—"अभिक्कन्तं, भन्ते....पे०....एते मयं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छाम धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासके नो भगवा धारेतु अज्जतग्गे

जा रहे हो?" "श्रमण गौतम के दर्शन हेतु जा रहा हूँ।" "अरे गृहपति! तुम क्रियावादी होकर भी उस अक्रियावादी श्रमण गौतम के पास जा रहे हो? गृहपति! श्रमण गौतम तो अक्रियावादी है और अपने शिष्यों को भी अक्रियावाद के लिये प्रेरित करता है।" यह सुनकर मेण्डक गृहपति को विचार हुआ—"अवश्य ही वे भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध होंगे; क्योंकि ये लोग उनसे ईर्ष्यावश उनकी निन्दा कर रहे हैं।" (तब वह उनकी बातों पर ध्यान न देता हुआ) जितना मार्गयान से जा सकने योग्य था उस पर यान से गया। बाकी मार्ग उसने यान से उतर कर पैदल चलकर ही पूर्ण किया और भगवान् के सम्मुख पहुँचा, पहुँचकर प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे मेण्डक गृहपति को भगवान् ने आनुपूर्वी कथा कहना प्रारम्भ किया; जैसे दानकथा....शास्ता के उपदेशों पर एकान्ततः श्रद्धा प्रकट करते हुए भगवान् से बोला—"आश्चर्य है, भन्ते!....शरणागत उपासक समझें। भन्ते! भगवान् भिक्षुसङ्घसहित कल मेरे घर पर भोजन स्वीकार करें।" भगवान् ने मौनभाव से स्वीकृत कर लिया। तब मेण्डक गृहपति भगवान् की स्वीकृति जानकर आसन से उठ कर भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर अपने घर को चल दिया।

मेण्डक गृहपति ने, उस रात्रि के बीत जाने पर, अपने घर पर उत्तम उत्तम खाद्य–भोज्य पदार्थ बनवाकर भगवान् को सूचित कराया—"भन्ते! भोजन का समय हो गया है, आप जैसा उचित समझें। तब भगवान् पूर्वाह्न में वस्त्र पहनकर, पात्र–चीवर साथ में लेकर, मेण्डक गृहपति के घर पहुँचे। पहुँचकर बिछे आसन पर विराजे। तब मेण्डक गृहपति, उसकी भार्या, पुत्र, पुत्रवधू तथा दास सभी भगवान् के पास आये। आकर उन्हें प्रणाम कर एक तरफ बैठे। भगवान् ने आनुपूर्वी धर्मकथा

पाणुपेते सरणं गते" ति। अथ खो मेण्डको गहपति बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन [B.341] खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मेण्डको गहपति भगवन्तं एतदवोच—"याव, भन्ते, भगवा भद्दिये विहरति ताव अहं बुद्धप्पमुखस्स भिक्खुसङ्घस्स धुवभत्तेना" ति। अथ खो भगवा मेण्डकं गहपतिं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

२२. पञ्चगोरसादिअनुजानना

४१. अथ खो भगवा भद्दिये यथाभिरन्तं विहरित्वा मेण्डकं गहपतिं अनापुच्छा येन अङ्गुत्तरापो तेन चारिकं पक्कामि महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेलसेहि भिक्खुसतेहि। अस्सोसि खो मेण्डको गहपति—"भगवा किर येन अङ्गुत्तरापो तेन चारिकं पक्कन्तो महता [N.258] भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेलसेहि भिक्खुसतेही" ति। अथ खो मेण्डको गहपति दासे च कम्मकरे च आणापेसि—"तेन हि, भणे, बहुं लोणं ति, तेलं पि, तण्डुलं पि, खादनीयं पि सकटेसु आरोपेत्वा आगच्छथ, अड्ढतेलसानि च गोपालकसतानि अड्ढतेलसानि च धेनुसतानि आदाय आगच्छन्तु, यत्थ भगवन्तं पस्सिस्साम तत्थ धारुण्हेन खीरेन भोजस्सामा" ति। अथ को मेण्डको गहपति भगवन्तं अन्तरामग्गे कन्तारे सम्भावेसि। अथ [R.244] खो मेण्डको गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो मेण्डको गहपति भगवन्तं एतदवोच—"अधिवासेतु मे, भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो मेण्डको गहपति भगवतो अधिवासनं विदित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

सुनायी ..हम सबको आज से अपना शरणागत उपासक समझे। तब मेण्डक गृहपति ने भिक्षुसङ्घसहित भगवान् को अपने हाथ से उत्तम उत्तम खाद्य परोसते हुए सन्तृप्त एवं सन्तुष्ट किया। अन्त में पात्र से हाथ हटाया हुआ देखकर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे मेण्डक गृहपति ने भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! भगवान् जब तक भद्दिया नगर में विराजें तब तक भिक्षुसङ्घसहित मेरे घर पर ही भोजन ग्रहण करें।" एतदनन्तर भगवान् मेण्डक गृहपति को धार्मिक कथाओं से धर्म के प्रति समुत्तेजित सम्प्रहर्षित कर आसन से उठकर (आश्रम की तरफ) चल दिये।

२२. पाँच गोरस आदि की अनुज्ञा

४१. तब भगवान् भद्दिया में इच्छानुसार साधना करते हुए, मेण्डक गृहपति को विना पूछे ही, साढे बारह सौ भिक्षुओं के सङ्घ के साथ अङ्गुत्तराप (मुँगेर जिले में गङ्गा नदी के उत्तर वाला भाग) की तरफ चारिका हेतु चल पड़े। जब मेण्डक गृहपति ने यह बात सुनी कि भगवान्.....चले गये तो उसने अपने दास-दासियों को आज्ञा दी—"भणे! तुम लोग बहुत सा नमक, तैल, मधु, तण्डुल और खाद्य पदार्थ गाडियों पर लादकर लाओ। साथ ही साढ़े बारह सौ ग्वाले भी साढ़े बारह सौ दूध देने वाली गौओं के साथ लेकर आवें। रास्ते में जहाँ हम भगवान् को देखेंगे वहाँ हम उन्हें धारोष्ण दुग्ध (स्तनों से तत्काल निकला हुआ दूध) के साथ भोजन करायेंगे।" इन सबके साथ चलते हुए मेण्डक गृहपति ने रास्ते मे एक जङ्गल में भगवान् को पाया। जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान् को

अथ खो मेण्डको गहपति तस्सा रत्तिया अच्चयेन पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि—"कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं" ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन मेण्डकस्स गहपतिस्स परिवेसना तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो [B.342] मेण्डको गहपति अड्ढतेलसानि गोपालकसतानि आणापेसि—"तेन हि, भणे, एकमेकं धेनुं गहेत्वा एकमेकस्स भिक्खुनो उपतिट्ठथ धारुण्हेन खीरेन भोजस्सामा" ति। अथ खो मेण्डको गहपति बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि, धारुण्हेन च खीरेन। भिक्खू कुक्कुच्चायन्ता खीरं न पटिग्गण्हन्ति। "पटिग्गण्हथ, भिक्खवे, परिभुञ्जथा" ति। अथ खो मेण्डको गहपति बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा धारुण्हेन च खीरेन भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मेण्डको गहपति भगवन्तं एतदवोच—"सन्ति, भन्ते, मग्गा कन्तारा, अप्पोदका अप्पभक्खा, न सुकरा अपाथेय्येन गन्तुं। साधु, भन्ते, भगवा भिक्खूनं पाथेय्यं अनुजानातू" ति।

अथ खो भगवा मेण्डकं गहपतिं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**अनुजानामि, भिक्खवे, पञ्च गोरसे—खीरं, दधिं, तक्कं, नवनीतं, सप्पिं।**

प्रणाम कर एक तरफ खडा हो गया। एक तरफ खड़े उसने भगवान् से निवेदन किया--"भन्ते! भगवान् कल का भोजन मेरे यहाँ स्वीकार करें। भगवान् ने मौन भाव से स्वीकार किया।....गृहपति चला गया।

तब मेण्डक गृहपति ने उस रात्रि के बीत जाने पर उत्तम उत्तम खाद्य–भोज्य पदार्थ बनवा कर भगवान् को भोजनकाल की सूचना दी कि भन्ते! भोजनकाल हो गया है, जैसा आप उचित समझें। तब भगवान् पूर्वाह्ण मे वस्त्र पहनकर.....बिछे आसन पर विराजे। तब मेण्डक गृहपति ने साढ़े बारह सौ गोपालकों को आदेश दिया—"भाइयो! आप लोग एक एक गौ लेकर एक एक भिक्षु के पास खड़े हो जाओ। हम धारोष्ण दुग्ध से इन्हें भोजन करायेंगे।" तब मेण्डक गृहपति ने सङ्घसहित भगवान् को अपने हाथ से उत्तम उत्तम खाद्य–भोज्य पदार्थ परोसते हुए सन्तृप्त एवं सन्तुष्ट किया। परन्तु भिक्षु उस धारोष्ण दुग्ध को स्वीकार करने में ननु–नच (सङ्कोच=आनाकानी) कर रहे थे। तब भगवान् ने आदेश दिया--"ग्रहण करो भिक्षुओ! इसका परिभोग करो।" यों, मेण्डक गृहपति सङ्घसहित भगवान् को अपने हाथ से धारोष्ण दुग्ध पिलाते हुए सन्तृप्त कर, अन्त मे सबको सन्तुष्ट हुआ जानकर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे मेण्डक गृहपति ने भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! चारिका के समय मार्ग में ऐसे ऐसे बीहड़ जङ्गल भी मिल जाते हैं, वहाँ पाथेय के विना चलना सरल नहीं है। अच्छा हो, भन्ते! भगवान् पाथेय की अनुज्ञा दे दें।"

तब भगवान् मेण्डक गृहपति को धर्मोपदेश कर, आसन से उठकर चल पड़े।

(मार्ग में) भगवान् ने भिक्षुओं को इस प्रकरण में धर्मप्रवचन करते हुए उपदेश किया— **"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दूध या दूध से बनी पाँच चीजों के , जैसे–दूध, दही, तक्र (छाछ), नवनीत एवं घृत के उपयोग की।"**

सन्ति, भिक्खवे, मग्गा कन्तारा अप्पोदका अप्पभक्खा, न सुकरा अपाथेय्येन गन्तुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, पाथेय्यं परियेसितुं तण्डुलो तण्डुलत्थिकेन, मुग्गो मुग्गत्थिकेन, मासो मासत्थिकेन, लोणं लोणत्थिकेन, गुळो गुळत्थिकेन,** [R.245] **तेलं तेलत्थिकेन, सप्पि सप्पित्थिकेन।**

[N.259] सन्ति, भिक्खवे, मनुस्सा, सद्धा पसन्ना, ते कप्पिय वारकानं हत्थे हिरञ्ञं उपनिक्खिपन्ति–'इमिना अय्यस्स यं कप्पियं तं देथा' ति। **अनुजानामि, भिक्खवे, यं ततो कप्पियं तं सादितुं; न त्वेवाहं, भिक्खवे, केनचि परियायेन जातरूपरजतं सादितब्बं परियेसितब्बं ति वदामी**'' ति।

२३. केणियजटिलवत्थु

४२. अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन आपणं तदवसरि। अस्सोसि खो केणियो जटिलो–''समणो खलु भो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो आपणं अनुप्पत्तो, तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो.....पे०.....साधु [B.343] खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती'' ति। अथ खो केणियस्स जटिलस्स एतदहोसि–''किं नु खो अहं समणस्स गोतमस्स हरापेय्यं'' ति। अथ खो केणियस्स जटिलस्स एतदहोसि–''ये पि खो ते ब्राह्मणानं पुब्बका इसयो मन्तानं कत्तारो मन्तानं पवत्तारो, येसमिदं एतरहि ब्राह्मणा पोराणं मन्तपदं गीतं पवुत्तं समिहितं, तदनुगायन्ति

पाथेय का विधान– ''भिक्षुओ! किसी किसी जङ्गल में मार्ग इतने बीहड एवं दुर्गम होते हैं कि उनको पार करना सुगम नहीं होता; क्योंकि वहाँ बीच में न जल मिलता है न भोजन। **अतः ऐसे मार्गों में चारिका करते समय भिक्षुओं को अपने साथ पाथेय (रास्ते में खाने योग्य सरल भोज्य वस्तु) रखने की अनुमति देता हूँ। भिक्षुओ! चावल खाने वाला भिक्षु चावल का, मूँग खाने वाला मूँग का, उडद खाने वाला उड़द का, नमकीन खाने वाला नमकीन का, गुड खाने वाला गुड़ का, तैल चाहने वाला तैल का, घी चाहने वाला घी का पाथेय उपयोग में ला सकता है।**

''भिक्षुओ! कुछ श्रद्धालु उपासक ऐसे भी होते हैं जो भिक्षुओं के साथ चलने वाले कल्प्यकारकों को सोने के सिक्के इसलिये दे जाते हैं कि मार्ग में भिक्षुओं को, जिस खाद्य की आवश्यकता हो, खरीद कर दे देना। ऐसे अवसरों पर भिक्षुओं को उनसे खरीदवा कर खाद्य–भोज्य का उपयोग करना चाहिये।

इतने पर भी, **भिक्षुओं को इस बात की कभी अनुमति नहीं है कि इस कार्य के लिये वे स्वयं सोना–चान्दी अपने पास रखें।''**

२३. केणियजटिलवस्तु

४२. तब भगवान् क्रमशः चारिका करते हुए जहाँ आपण (छोटा बाजार=जहाँ साधारण उपयोग की वस्तुएँ व्यापारियो द्वारा विक्रय हेतु रखी जाती हैं। ऐसे गाँवो को विहार में आज भी 'बाजार' या 'बजरिया' कहते है) था वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर केणिय जटिल ने सुना–''शाक्यकुल से प्रव्रजित श्रमण गौतम शाक्यपुत्र आपण में पधारे हैं ... पूर्ववत् .. दर्शन अत्यन्त मङ्गलमय होता है।'' तब केणिय जटिल ने सोचा कि मैं श्रमण गौतम को भेंट में क्या ले चलूँ। तब केणिय जटिल के ध्यान में आया कि ये जो ब्राह्मणों के पूर्वज ऋषि हुए है, जो मन्त्रों के कर्ता भी थे, प्रवक्ता भी थे, साक्षात्कर्ता भी थे; आज के ब्राह्मण भी जिनके द्वारा कथित मन्त्रों का ही गायन, प्रवचन तथा समीक्षण करते हैं,

तदनुभासन्ति, भासितमनुभासन्ति, वाचितमनुवाचेन्ति, सेय्यथिदं—अट्ठको वामको वामदेवो वेस्सामित्तो यमतग्गि अङ्गीरसो भारद्वाजो वासेट्ठो कस्सपो भगु, रत्तूपरतो विरतो विकालभोजना, अरहति, समणो पि गोतमो एवरूपानि पानानि सादियितुं'' ति पहूतं पानं पटियादापेत्वा, काजेहि गाहापेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो केणियो जटिलो भगवन्तं एतदवोच—''पटिग्गण्हातु मे भवं गोतमो पानं'' ति। ''तेन हि, केणिय, भिक्खूनं देही'' ति। अथ खो केणियो जटिलो भिक्खूनं देति। भिक्खू कुक्कुच्चायन्ता न पटिग्गण्हन्ति। ''पटिग्गण्हथ, भिक्खवे, परिभुञ्जथा'' ति। अथ खो केणियो जटिलो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पहूतेहि पानेहि सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा भगवन्तं धोतहत्थं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो केणियं जटिलं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेहि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। [R.246]

अथ खो केणियो जटिलो भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो भगवन्तं एतदवोच—''अधिवासेतु मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना'' ति। ''महा खो, केणिय, भिक्खुसङ्घो अड्ढतेलसानि भिक्खुसतानि, त्वं च ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो'' ति। दुतियं पि खो केणियो जटिलो भगवन्तं एतदवोच—''किञ्चा पि खो, भो गोतम, महा भिक्खुसङ्घो अड्ढतेलसानि भिक्खुसतानि, अहं, च [N.260. B.344] ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो, अधिवासेतु मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना'' ति। ''महा खो, केणिय, भिक्खुसङ्घो अड्ढतेलसानि भिक्खुसतानि, त्वं च ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो'' ति। ततियं पि खो केणियो जटिलो भगवन्तं एतदवोच—''किञ्चा पि खो, भो गोतम, महा भिक्खुसङ्घो अड्ढतेलसानि भिक्खुसतानि, अहं च ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो, अधिवासेतु भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना'' ति। अधिवासेसि

जैसे—अष्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अङ्गीरस, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, भृगु, ये सभी रात्रिभोजन से विरत रहते थे, विकाल भोजन भी नहीं करते थे, वे भी इस प्रकार का पान (पेय पदार्थ) ग्रहण करते थे। श्रमण गौतम भी रात्रिभोजन एवं विकाल भोजन से विरत रहते हैं, अतः वे भी यह पेयपदार्थ ग्रहण करना स्वीकार कर लेंगे। यह सोचकर वह जटिल अत्यधिक मात्रा में उक्त 'पान' तैयार करवा कर, बहँगी (काँवर) पर लदवा कर जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान् से कुशल मङ्गल पूछा। पूछकर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे केणिय जटिल ने भगवान् से यों निवेदन किया—''श्रीमान् गौतम यह पेय पदार्थ स्वीकार करें।'' (भगवान् ने कहा—) 'तो, केणिय! (पहले) यह सब भिक्षुओ को दो।'' तब केणिय ने वह पेय पदार्थ भिक्षुओं को देना चाहा, परन्तु भिक्षुओं ने लेने में सङ्कोच किया। तब भगवान् ने आदेश दिया—''ले लो भिक्षुओ! इस का उपयोग करो।'' तब केणिय जटिल ने वह पेय पदार्थ समग्र भिक्षुसङ्घसहित भगवान् को अपने हाथों से नम्रतापूर्वक परोस कर पिलाया। भगवान् को पात्र से हाथ हटाया हुआ देखकर, उन्हें सन्तृप्त जानकर केणिय एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे केणिय जटिल को भगवान् ने अपने अनुपम धर्मप्रवचन से धर्म के प्रति समुत्तेजित...किया। तब केणिय जटिल ने भगवान् से निवेदन किया—''श्रीमान् गौतम कल का भोजन भिक्षुसङ्घ के साथ (मेरे यहाँ) स्वीकार करें।'' (भगवान् ने कहा—) ''जटिल! मेरे साथ साढ़े बारह सौ

भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो केणियो जटिलो भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना पक्कामि।

अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**अनुजानामि, भिक्खवे, अट्ठ पानानि—अम्बपानं जम्बुपानं चोचपानं मोचपानं मधुपानं मुद्दिकपानं सालुकपानं फारुसकपानं। अनुजानामि, भिक्खवे, सब्बं फलरसं ठपेत्वा धञ्ञफलरसं। अनुजानामि, भिक्खवे, सब्बं पत्तरसं ठपेत्वा डाकरसं। अनुजानामि, भिक्खवे, सब्बं पुप्फरसं ठपेत्वा मधुकपुप्फरसं। अनुजानामि, भिक्खवे, उच्छुरसं**" ति।

अथ खो केणियो जटिलो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके अस्समे पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि—"कालो, भो गोतम, निट्ठितं भत्तं" ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन केणियस्स जटिलस्स अस्समो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो केणियो जटिलो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो केणियं जटिलं भगवा इमाहि गाथाहि अनुमोदि—

"अग्गिहुत्तमुखा यञ्ञा सावित्ती छन्दसो मुखं।
राजा मुखं मनुस्सानं नदीनं सागरो मुखं॥
[R.247] नक्खत्तानं मुखं चन्दो आदिच्चो तपतं मुखं।
पुञ्ञं आकङ्खमानानं सङ्घो वे यजतं मुखं ति॥

की सङ्ख्या में बहुत बड़ा भिक्षुसङ्घ भी है, तथा तुम यहाँ के ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धालु हो।" दूसरी बार भी .. जटिल ने कहा—"तो इससे क्या हुआ, भो गोतम! कि आपके साथ इतना बडा भिक्षुसङ्घ है, या मैं ब्राह्मणो में श्रद्धा रखता हूँ। आप कल का भोजन मेरे यहाँ स्वीकार करें।" दूसरी बार भी भगवान् ने कहा,...पूर्ववत्....। तीसरी बार भी । तब भगवान् ने केणिय जटिल का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। तब केणिय जटिल.. .चला गया। उसके जाने के बाद भगवान् ने भिक्षुओं को ... आदेश दिया— "**भिक्षुओ! इन आठ प्रकार के पान (पेय-पदार्थ) के उपयोग की अनुमति देता हूँ—आम, जामुन, चोच, केला (मोच), मधु, अंगूर, कोई की जड तथा फालसा का रस (पान)। अनुमति देता हूँ सभी फलरसों की; धान्य की फलियों के रस को छोडकर....केवल ढाक के पत्तों के रस को छोड़कर सभी प्रकार के पत्तों के रस की....महुआ के फूल के रस को छोड़कर सभी फूलों के रस की। अनुमति देता हूँ ईख के रस की।**

तब उस रात्रि के बीतने पर केणिय जटिल ने अपने आश्रम मे उत्तम उत्तम खाद्य, भोज्य तैयार करवा कर भगवान् को समय की सूचना दी। .तब भगवान् पूर्वाह्न में.. पूर्ववत्.. । केणिय जटिल के दान का भगवान् ने इन गाथाओं द्वारा अनुमोदन किया—

**"यज्ञों में प्रमुख है अग्निहोत्र, छन्दों में प्रमुख है सावित्री।
मनुष्यों में प्रमुख है राजा और नदियों में प्रमुख है सागर।।
नक्षत्रों में प्रमुख हैं चन्द्रमा और तपने वालों में प्रमुख है सूर्य।
पुण्याभिकांक्षियों में, यज्ञकर्ताओं के लिये सङ्घ को भोजन कराना प्रमुख है।।**

अथ खो भगवा केणियं जटिलं इमाहि गाथाहि अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामि।

२४. रोजमल्लवत्थु

[B.345] ४३. अथ खो भगवा आपणे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन कुसिनारा तेन चारिकं पक्कामि महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि भिक्खुसतेहि। अस्सोसुं खो कोसिनारका मल्ला—"भगवा किर कुसिनारं आगच्छति महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेलसेहि भिक्खुसतेही" ति। ते सङ्करं अकंसु—"यो भगवतो पच्चुग्गमनं न करिस्सति, पञ्चसतानिस्स दण्डो" ति। तेन खो पन समयेन रोजो मल्लो आयस्मतो आनन्दस्स सहायो होति। अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन कुसिनारा तदवसरि। अथ खो कोसिनारका मल्ला भगवतो पच्चुग्गमनं अकंसु। अथ खो रोजो मल्लो भगवतो पच्चुग्गमनं करित्वा येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं अभिवादेत्वा एकमन्तं [N.261] अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो रोजं मल्लं आयस्मा आनन्दो एतदवोच—"उळारं खो ते इदं, आवुसो रोज, यं त्वं भगवतो पच्चुग्गमनं अकासी" ति। "नाहं, भन्ते आनन्द, बहुकतो बुद्धेन वा धम्मेन वा सङ्घेन वा; अपि च ञातीहि सङ्करो कतो—"यो भगवतो पच्चुग्गमनं न करिस्सति, पञ्चसतानिस्स दण्डो' ति; सो खो अहं, भन्ते आनन्द, ञातीनं दण्डभया एवाहं भगवतो पच्चुग्गमनं अकासिं" ति। अथ खो आयस्मा आनन्दो अनत्तमनो अहोसि—'कथं हि नाम रोजो मल्लो एवं वक्खती' ति? अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"अयं, भन्ते, रोजो मल्लो अभिञ्ञातो ञातमनुस्सो।

यों, भगवान् केणिय जटिल के दान का अनुमोदन कर आसन से उठकर चल दिये।

२४. रोजमल्लवस्तु

४३. तब भगवान् आपण में यथानुकूल विहार कर साढ़े बारह सौ भिक्षुओं को साथ लेकर कुसिनारा की तरफ चल पड़े। कुसीनारा के मल्लों ने जब सुना कि भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के सङ्घ के साथ कुसीनारा पधार रहे हैं, तो उन्होंने पञ्चायत करके नियम (सामूहिक निर्णय) बनाया—"जो भगवान् के आगमन पर उनके सम्मान (प्रत्युद्गमन) में नहीं पहुँचेगा उसे पाँच सौ (मुद्रा) दण्ड लगेगा।" उस समय रोज नामक मल्ल आयुष्मान् आनन्द का मित्र (भी वहाँ) था। भगवान् क्रमशः चारिका करते हुए कुसीनारा पधारे। कुसीनारा के मल्लों ने भगवान् के सम्मुख श्रद्धा से जाकर उनका सम्मान किया। रोज मल्ल भी भगवान् का प्रत्युद्गमन कर जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्द को प्रणाम कर एक तरफ खड़ा हो गया। एक ओर खड़े रोज को आयुष्मान् आनन्द ने कहा—"आयुष्मन् रोज! यह तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम इस तरह भगवान् का सम्मान करने आये हो। (रोज बोला—) "नहीं, भन्ते आनन्द! मैं यहाँ भगवान् के सम्मान में नहीं आया। मुझे तो ज्ञातिजनों के सर्वसम्मत निर्णय के कारण यहाँ आना पडा; क्योंकि उनका निर्णय था कि जो भगवान् के सम्मान में नहीं जायगा उसे पाँच सौ (मुद्रा) दण्ड देना पड़ेगा। इस दण्ड के भय से ही मुझे इस सम्मान में आना पड़ा।" आयुष्मान् आनन्द रोज मल्ल का यह कथन सुनकर असन्तुष्ट हुए कि रोज मल्ल जैसा मेरा मित्र भगवान् के विषय में ऐसा कह रहा है। तब आयुष्मान् आनन्द भगवान् के पास गये और उन्हें प्रणाम कर एक तरफ बैठकर उन्होंने कहा—"भन्ते! यह रोज मल्ल यहाँ का वैभवसम्पन्न प्रख्यात पुरुष है।

महत्थिको खो पन एवरूपानं ञातमनुस्सानं इमस्मिं धम्मविनये पसादो। साधु, भन्ते, भगवा तथा करोतु, यथा रोजो मल्लो इमस्मिं धम्मविनये पसीदेय्या'' ति। ''न खो तं, आनन्द, दुक्करं तथागतेन, यथा रोजो मल्लो इमस्मिं धम्मविनये पसीदेय्या'' ति। अथ खो भगवा रोजं मल्लं मेत्तेन चित्तेन फरित्वा उट्ठायासना विहारं पाविसि।

अथ खो रोजो मल्लो भगवता मेत्तेन चित्तेन फुट्ठो, सेय्यथापि नाम गावी तरुणवच्छा; एवमेव, विहारेन विहारं परिवेणेन परिवेणं उपसङ्कमित्वा भिक्खू पुच्छति—''कहं नु खो, [B.346] भन्ते, एतरहि सो भगवा विहरति अरहं सम्मासम्बुद्धो, दस्सनकामा हि मयं तं [R.248] भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं'' ति। ''एसावुसो रोज, विहारो संवुतद्वारो, तेन अप्पसद्दो उपसङ्कमित्वा अतरमानो आलिन्दं पविसित्वा उक्कसित्वा अग्गळं आकोटेहि, विवरिस्सति ते भगवा द्वारं'' ति। अथ खो रोजो मल्लो येन सो विहारो संवुतद्वारो, तेन अप्पसद्दो उपसङ्कमित्वा अतरमानो आलिन्दं पविसित्वा उक्कसित्वा अग्गळं आकोटेसि। विवरि भगवा द्वारं। अथ खो रोजो मल्लो विहारं पविसित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नस्स खो रोजस्स मल्लस्स भगवा अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथिदं—दानकथं....पे०.... अपरप्पच्चयो सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोच—''साधु, भन्ते, अय्या ममं येव पटिग्गण्हेय्युं चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं, नो अञ्ञेसं'' ति। ''येसं खो, रोज, सेखेन ञाणेन सेखेन दस्सनेन धम्मो दिट्ठो सेय्यथापि तया, तेसं पि एवं होति—'अहो नून अय्या अम्हाकं येव पटिग्गण्हेय्युं चीवरपिण्डपातसेनासन-

---

इस प्रकार के प्रख्यात पुरुषों की इस धर्म के प्रति श्रद्धा होना अच्छी बात होगी। अच्छा हो, भन्ते! भगवान् वैसा करें कि जिससे रोज मल्ल इस (बुद्ध) धर्म में श्रद्धालु हो जाय।'' (भगवान् बोले—) ''आनन्द! तथागत के लिये यह दुष्कर नहीं है कि रोज मल्ल के हृदय में धर्म के प्रति श्रद्धोत्पाद हो जाय।'' तब भगवान् रोज मल्ल के चित्त को स्वकीय मैत्रीयुक्त चित्त से स्पर्श कर अपने साधनास्थल में चले गये।

तब भगवान् के मैत्रीचित्त से स्पृष्ट हुआ रोज मल्ल अपने बछड़े में मुग्ध गौ की तरह आराम के इस प्रकोष्ठ से उस प्रकोष्ठ में, इस परिवेण से उस परिवेण मे भगवान् को पूछता हुआ घूमने लगा कि ''भन्ते! इस समय भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध किस स्थान पर साधनाहेतु विराजमान हैं। हम उनके दर्शन करना चाहते हैं।'' (तब किसी ने बताया—) ''आयुष्मन् रोज! यह सामने भगवान् का विहारस्थल है, जिसके कपाट बन्द हैं। तुम शान्ति से, विना कोई शब्द करते हुए, आलिन्द (ड्योढी) में प्रवेश कर, खाँसते हुए जंजीर को खड़खड़ाना! तब भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोलेंगे। तब रोजमल्ल सामने के विहारस्थल.....भगवान् ने द्वार खोल दिया। रोजमल्ल विहार में प्रवेश कर भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे रोज मल्ल को भगवान् ने आनुपूर्वी (दान, शील आदि के माहात्म्य की) कथा. .पूर्ववत्....दूसरे किसी धर्म में श्रद्धा न रखने वाला, एवं एकान्ततः बुद्धशासन में ही श्रद्धा प्रकट करता हुआ भगवान् से यों बोला—''भन्ते! अच्छा हो कि आप आर्य जन (आज से) मेरे द्वारा दिये गये चीवर, पिण्डपात, शयनासन एवं ग्लानावस्था मे उपयोग में आनेवाली ओषधियाँ ही स्वीकार करें।'' (भगवान् बोले—) ''रोज! जिन अन्य उपासकों ने धर्मदर्शन कर लिया है उनकी भी यदि यही भावना हो जाय कि आर्यजन मेरे द्वारा दिये गये....ओषधियाँ ही स्वीकार करे, अन्य के द्वारा

गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं, नो अञ्ञेसं' ति। तेन हि रोज, तव चेव पटिग्गहिस्सन्ति अञ्ञेसं चा'' ति।

[N.262] ४४. तेन खो पन समयेन कुसिनारायं पणीतानं भत्तानं भत्तपटिपाटि अधिट्ठिता होति। अथ खो रोजस्स मल्लस्स पटिपाटिं अलभन्तस्स एतदहोसि—''यन्नूनाहं भत्तग्गं ओलोकेय्यं, यं भत्तग्गे नास्स तं पटियादेय्यं'' ति। अथ खो रोजो मल्लो भत्तग्गं ओलोकेन्तो द्वे नाद्दस—डाकं च, पिट्ठखादनीयं च। अथ खो रोजो मल्लो येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—''इध मे, भन्ते आनन्द, पटिपाटिं अलभन्तस्स एतदहोसि—'यन्नूनाहं भत्तग्गं ओलोकेय्यं, यं भत्तग्गे नास्स तं पटियादेय्यं' ति। सो खो अहं, भन्ते आनन्द, पटियादेय्यं डाकं च पिट्ठखादनीयं च, पटिग्गण्हेय्य मे भगवा'' ति? ''तेन हि, रोज, भगवन्तं पटिपुच्छिस्सामी' ति। अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवतो एतमत्थं आरोचेसि। ''तेन हानन्द, पटियादेतू'' ति। ''तेन हि, रोज, पटियादेही'' ति। अथ खो रोजो मल्लो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पहूतं डाकं च पिट्ठखादनीयं च पटियादापेत्वा भगवतो उपनामेसि— ''पटिग्गण्हातु मे, भन्ते, भगवा डाकं च पिट्ठखादनीयं चा'' ति। [B.347] ''तेन हि, रोज, भिक्खूनं देही'' ति। अथ खो रोजो मल्लो भिक्खूनं देति। भिक्खू कुक्कुच्चायन्ता न पटिग्गण्हन्ति। ''पटिग्गण्हथ, भिक्खवे, परिभुञ्जथा'' ति। अथ खो रोजो मल्लो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पहूतेहि डाकेहि च पिट्ठखादनीयेहि च सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा [R.249] भगवन्तं धोतहत्थं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो रोजं मल्लं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि। अथ

प्रदत्त करें, तब क्या होगा! अतः, रोज! भिक्षुजन तुम्हारा दिया भी स्वीकार करेंगे तथा अन्य उपासकों द्वारा दिया हुआ भी।''

४४ उस समय कुशीनारा में भिक्षुओ के लिये उत्तम भोजन का तॉता (परिपाटी) लगा हुआ था। तब अवसर न मिलने पर रोज मल्ल को विचार हुआ कि क्यो न मैं भोजन करने बैठे हुए भिक्षुओ की पंक्ति (पंगत) के दर्शन करूँ। उस समय उनके पात्र मे जो खाद्य पदार्थ न दिखायी दे उसे तय्यार कराकर भिक्षुओ को खिलाऊँ। तब पंक्ति मे बैठे हुए भिक्षुओ के पात्रो में रोज मल्ल को दो वस्तुएँ नहीं दिखायी दी—१. डाक (खाने योग्य पौधे=सलाद) एवं २. आटे से बनी मिठाई (पिट्ठखादनिय)। तब रोज मल्ल जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्द से यों बोला—''भन्ते! भोजनदान का अवसर न मिलने पर यों विचार हुआ—'....पूर्ववत्....पिट्ठखादनिय'। यदि भन्ते! मै उक्त दोनों खाद्य पदार्थ तय्यार कराऊँ तो भगवान् उन्हें स्वीकार करेंगे?'' ''तो, रोज! भगवान् से पूछकर बताऊँगा।'' तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से पूछा—भगवान् ने कहा—''ठीक है, आनन्द! रोज इन्हे तय्यार करावे।'' आनन्द ने आकर रोज से कहा—''रोज! तय्यार कराओ!'' तब रोज मल्ल उस रात्रि के बीतने पर अत्यधिक परिमाण में डाक और आटे के लड्डू बनावाकर भगवान् के पास लें गया। निवेदन किया—''भन्ते! भगवान् ये डाक एवं लड्डू स्वीकार करें।'' (भगवान् बोले—) ''तो रोज! पहले भिक्षुओं को दो।'' परन्तु भिक्षु उन दोनो पदार्थों को लेने में सङ्कोच कर रहे थे। (भगवान् ने कहा—) ''भिक्षुओ! ले लो और खा लो।'' तब रोज मल्ल ने सङ्घसहित भगवान् को वह डाक और आटे के लड्डू अपने हाथ से परोसे। और उन्हें सन्तृप्त किया। अन्त में भगवान् को पात्र से हाथ हटाया हुआ

खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि— **"अनुजानामि, भिक्खवे, सब्बं च डाकं सब्बं च पिट्ठखादनीयं"** ति।

२५. वुड्ढपब्बजितवत्थु

४५. अथ खो भगवा कुसिनारायं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन आतुमा तेन चारिकं पक्कामि महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतळसेहि भिक्खुसतेहि। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो वुड्ढपब्बजितो आतुमायं पटिवसति नहापितपुब्बो। तस्स द्वे दारका होन्ति, मञ्जुका पटिभानेय्यका, दक्खा परियोदातसिप्पा सके आचरियके नहापितकम्मे। अस्सोसि खो सो वुड्ढपब्बजितो—"भगवा किर आतुमं आगच्छति महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि भिक्खुसतेही" ति। अथ खो सो वुड्ढपब्बजितो ते दारके एतदवोच—"भगवा किर, ताता, आतुमं आगच्छति महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि भिक्खुसतेहि। गच्छथ तुम्हे, ताता, खुरभण्डं आदाय नाळियावापकेन अनुघरकं अनुघरकं आहिण्डथ, लोणं पि, तेलं पि, तण्डुलं पि, खादनीयं पि संहरथ, भगवतो आगतस्स यागुपानं करिस्सामा" ति। "एवं, ताता" ति खो ते दारका तस्स वुड्ढपब्बजितस्स पटिस्सुणित्वा खुरभण्डं आदाय नाळियावापकेन [N.263] अनुघरकं अनुघरकं आहिण्डन्ति, लोणं पि, तेलं पि, तण्डुलं पि, खादनीयं पि संहरन्ता। मनुस्सा ते दारके मञ्जुके पटिभानेय्यके पस्सित्वा ये पि न कारापेतुकामा ते पि कारापेन्ति, कारापेत्वा पि बहुं देन्ति। अथ खो ते दारका बहुं लोणं पि, तेलं पि, तण्डुलं पि, खादनीयं पि संहरिंसु।

[B.348] अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन आतुमा तदवसरि। तत्र सुदं

देखकर स्वयं भी एक तरफ बैठे। एक तरफ बैठे रोज मल्ल को भगवान् ने धार्मिक कथा द्वारा धर्म के प्रति समुत्तेजित एवं सम्प्रहर्षित किया।

तब भगवान् ने इसी सम्बन्ध में भिक्षुओं को धर्मप्रवचन के बाद अन्त में आदेश दिया— **"अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! सभी डाकों एवं सभी खाद्यपिष्टियों को खाने की।"**

२५. वृद्धप्रव्रजितभिक्षुकथा

४५. तब भगवान् कुसीनारा में इच्छानुकूल धर्मसाधना करते हुए जहाँ **आतुमा** थी, उधर चारिका हेतु.....चल पड़े। उस समय कोई एक वृद्धावस्था में प्रव्रजित हुआ पहले नाई जाति का भिक्षु आतुमा में रहता था। उसके दो पुत्र थे, दोनों ही रूप और विद्या में सुन्दर थे, वे प्रतिभाशाली, दक्ष एवं अपने शिल्प में परिशुद्ध थे। जब उस वृद्ध प्रव्रजित ने सुना कि भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के वृहत् सङ्घ के साथ आतुमा पधार रहे हैं तब उसने अपने दोनों पुत्रों से कहा—"पुत्रो! भगवान् आतुमा में पधार रहे हैं। तुम लोग क्षौरक्रिया (हजामत) का सामान लेकर प्रत्येक घर में जाओ तथा वहाँ से जो भी तैल, नामक, तण्डुल आदि खाद्य पदार्थ मिले उसे संगृहीत करो। आने पर भगवान् को यवागू का दान करेंगे।" "ठीक है, पिता जी!" कहकर उस वृद्ध प्रव्रजित के पुत्रों ने हजामत के साधन लेकर घर घर जाकर खाद्य-संग्रह प्रारम्भ किया। उन सुन्दर, मधुरभाषी एवं प्रतिभासम्पन्न लड़कों को देखकर जिनको क्षौर क्रिया न करानी थी वे भी करा लेते और अधिक से अधिक खाद्य वस्तु दे देते थे। जैसे—तैल....खाद्य पदार्थ।

तब भगवान् क्रमशः चारिका करते हुए आतुमा के भुसागार में आकर विराजे। रात्रि के बीत

भगवा आतुमायं विहरति भुसागारे। अथ खो सो वुड्डपब्बजितो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पहूतं यागुं पटियादापेत्वा भगवतो उपनामेसि—"पटिग्गण्हातु मे, भन्ते, भगवा यागुं" ति। जानन्ता पि तथागता पुच्छन्ति....पे०....सावकानं वा सिक्खापदं पञ्ञापेस्सामा ति। अथ [R.250] खो भगवा तं वुड्डपब्बजितं एतदवोच—"कुतायं, भिक्खु, यागू" ति? अथ खो सो वुड्डपब्बजितो भगवतो एतमत्थं आरोचेसि। विगरहि बुद्धो भगवा, अननुच्छविकं, मोघपुरिस, अननुलोमिकं अप्पनिरूपं अस्सामणकं अकप्पियं अकरणीयं। कथं हि नाम त्वं, मोघपुरिस, पब्बजितो अकप्पिये समादपेसि। नेतं, मोघपुरिस, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०.... विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, पब्बजितेन अकप्पिये समादपेतब्बं, यो समादपेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स। न च, भिक्खवे, नहापितपुब्बेन खुरभण्डं परिहरितब्बं। यो परिहरेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

२६. फलखादनीयानुजानना

४६. अथ खो भगवा आतुमायं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन सावत्थि तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन सावत्थि तदवसरि। तत्र सुदं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन सावत्थियं बहुं फलखादनीयं उप्पन्नं होति। अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"किं नु खो भगवता फलखादनीयं अनुञ्ञातं, किं अननुञ्ञातं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सब्बं फलखादनीयं** ति।

२७. सङ्घिकबीजानि

४७. तेन खो पन समयेन सङ्घिकानि बीजानि पुग्गलिकाय भूमिया रोपियन्ति, पुग्गलिकानि बीजानि सङ्घिकाय भूमिया रोपियन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

जाने पर उस वृद्ध प्रव्रजित ने भगवान् के सामने अत्यधिक मात्रा में खिचड़ी लाकर रख दी और निवेदन किया—"भगवन्! इसे ग्रहण करें।" जानते हुए भी तथागत पूछा करते हैं....पूर्ववत्....कि शिष्यों को शिक्षा दी जाय। अतः भगवान् ने उस वृद्ध प्रव्रजित से पूछा—"यह इतनी यवागू कहाँ से ले आये?" वृद्ध ने भगवान् से सत्य घटना का वर्णन कर दिया। तब भगवान् ने उसको धमकाते हुए कहा—"रे मूर्ख! यह ऐसा कृत्य तुम जैसे प्रव्रजितो के लिये अकरणीय है, अनुकूल नहीं है, तुम्हारे लिये शोभानुरूप नहीं है। अरे अविवेकिन्! तुमने प्रव्रजित (भिक्षु) होकर यह अकरणीय क्यों किया? यह बात अप्रसन्नों को ..पूर्ववत्.. भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"**भिक्षुओ! प्रव्रजित को अकरणीय नहीं करना चाहिये। जो करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा। तथा नाई जाति के भिक्षु को हजामत का सामान ग्रहण नहीं करना चाहिये। जो करे उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**"

२६. फलभक्षण की अनुमति

४७. उस समय भगवान् आतुमा में इच्छानुकूल विहरण कर श्रावस्ती की तरफ चारिका हेतु चल पड़े। यों क्रमशः चारिका करते हुए श्रावस्ती में पहुँचे। वहाँ जेतवन के अनाथपिण्डक के बनाये आराम में विराजे। उस समय श्रावस्ती मे बहुत अधिक खाने योग्य फल हुए थे। तब भिक्षुओं को यह हुआ—"क्या भगवान् ने फल खाने की अनुमति दी है, या नहीं दी?" भगवान् से यह बात पूछी गयी। (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! खाने योग्य फलों के खाने की अनुमति देता हूँ।**"

"सङ्घिकानि, भिक्खवे, बीजानि पुग्गलिकाय भूमिया रोपितानि भागं दत्वा परिभुञ्जितब्बानि। पुग्गलिकानि बीजानि सङ्घिकाय भूमिया रोपितानि भागं दत्वा परिभुञ्जितब्बानी" ति।

२८. चतुमहापदेसकथा

४८. तेन खो पन समयेन भिक्खूनं किस्मिं चि किस्मिं चि ठाने कुक्कुच्चं उप्पज्जति— "किं नु भगतो अनुञ्ञातं, किं अननुञ्ञातं" ति ? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।" [N.264] १. "यं, भिक्खवे, मया 'इदं न कप्पती' ति अप्पटिक्खित्तं तं चे अकप्पियं अनु- [R.251] लोमेति, कप्पियं पटिबाहति, तं वो न कप्पति। २. यं, भिक्खवे, मया 'इदं न कप्पती' [B.349] ति अप्पटिक्खित्तं तं चे कप्पियं अनुलोमेति, अकप्पियं पटिबाहति, तं वो कप्पति। ३. यं, भिक्खवे, मया 'इदं कप्पती' अननुञ्ञातं, तं चे कप्पियं अनुलोमेति, अकप्पियं पटिबाहति, तं वो न कप्पति। ४. यं, भिक्खवे, मया 'इदं कप्पती' अननुञ्ञातं तं चे कप्पियं अनुलोमेति, अकम्पियं परिबाहति, तं वो कप्पती" ति।

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"कप्पति नु खो यावकालिकेन यामकालिकं" न नु खो कप्पति ? कप्पति नु खो यावकालिकेन सत्ताहकालिकं, न नु खो कप्पति ? कप्पति नु खो यावकालिकेन यावजीविकं; न नु खो कप्पति ?; कप्पति नु खो यामकालिकेन सत्ताहकालिकं, न नु खो कप्पति ? कप्पति नु खो यामकालिकेन यावजीविकं, न नु खो

---

२७. सङ्घ के बीज

४७. उस समय सङ्घ के लिये कुछ खेती जनता के खेतों में भी होती थी और जनता भी अपनी कुछ खेती विहार की भूमि में करती थी। भगवान् से इन खेतों में उत्पन्न अन्न के उपयोग की बात पूछी गयी। भगवान् ने कहा— "**जनता के खेतों में बोये बीज का (दसवाँ) भाग उसे देकर ही उपयोग करना चाहिये। इसी तरह जनता द्वारा विहार की भूमि में बोये बीज का (दसवाँ) भाग देकर ही उपयोग करना चाहिये।**"

२८. करणीय या अकरणीय के विषय में चार सिद्धान्त

४८. उस समय भिक्षुओं को कभी कभी किसी विषय पर सन्देह होने लगता था कि भगवान् ने ऐसा करने की अनुमति दी है या नहीं? भगवान् से इस विषय में स्पष्ट निर्णय पूछा गया। भगवान् ने साधारण समीक्षा करते हुए चार सिद्धान्त निर्दिष्ट किये, जिनके आधार पर कर्तव्याकर्तव्य का स्वयं निर्णय किया जा सके। जैसे—

१. यदि भिक्षुओ! किसी कार्य के लिये भगवान् ने प्रत्यक्षतः यह नहीं कहा है कि 'यह उचित नहीं है', वह यदि अकरणीय के अनुकूल हो और करणीय के प्रतिकूल हो तो समझ लो वह 'अकरणीय' है।

२. यदि भिक्षुओ! किसी कार्य के प्रति प्रत्यक्षतः मैंने यह नहीं कहा है कि 'यह अकरणीय है', वह यदि करणीय के अनुकूल है और अकरणीय के प्रतिकूल तो उसके विषय में समझ लो कि वह 'करणीय' है।

३. और भिक्षुओ! जिसका मैंने 'यह करणीय है' कहकर प्रत्यक्षतः अनुमोदन न किया हो परन्तु वह यदि अकरणीय के अनुकूल पड़ता हो और करणीय के प्रतिकूल हो तो वह 'अकरणीय' ही है।

कप्पति? कप्पति नु खो सत्ताहकालिकेन यावजीविकं, न नु खो कप्पती'' ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''यावकालिकेन, भिक्खवे, यामकालिकं, तदहु पटिग्गहितं काले कप्पति, विकाले न कप्पति। यावकालिकेन, भिक्खवे, सत्ताहकालिकं, तदहु पटिग्गहितं काले कप्पति, विकाले न कप्पति। यावकालिकेन, भिक्खवे, यावजीविकं तदहु पटिग्गहितं काले कप्पति, विकाले न कप्पति। यामकालिकेन, भिक्खवे, सत्ताहकालिकं, तदहु पटिग्गहितं यामे कप्पति, यामातिक्कन्ते न कप्पति। यामकालिकेन, भिक्खवे, यावजीविकं, तदहु पटिग्गहितं यामे कप्पति, यामातिक्कन्ते न कप्पति। सत्ताहकालिकेन, भिक्खवे, यावजीविकं पटिग्गहितं, सत्ताहं कप्पति, सत्ताहातिक्कन्ते न कप्पती'' ति।

भेसज्जक्खन्धको छट्ठो॥

२९. तस्सुद्दानं

सारदिके विकाले पि वसं मूले पिट्ठेहि च।
कसावेहि पण्णं फलं जतु लोणं छकणं च॥ १॥
चुण्णं चालिनि मंसं च अञ्जनं उपपिंसनी।

---

४. तथा यदि, भिक्षुओ! जिसका मैनें 'यह करणीय है'—कहकर प्रत्यक्षतः अनुमोदन तो नहीं किया है परन्तु वह करणीय के अनुकूल है एव अकरणीय के प्रतिकूल तो उसे करणीय ही समझा जाना चाहिये।

किस काल में लिया भोजन किस काल तक विहित— तब भिक्षुओं को यह विचार हुआ—(क) क्या उतने काल वाले से याम भर काल वाला भोजन विहित है, या नहीं? (ख) उतने काल से सप्ताह भर काल वाला भोजन विहित है, या नहीं? (ग) उतने काल से जीवन भर वाला भोजन विहित है या नहीं? (घ) यामभर काल वाले से सप्ताह भर कालवाला भोजन विहित है, या नहीं? (ङ) सप्ताह भर काल वाले से जीवनपर्यन्त काल वाला भोजन विहित है, या नहीं? भगवान् से इस सन्देह का निराकरण पूछा गया। (भगवान् ने बताया—) ''**भिक्षुओ! उतने काल वाले से उसी दिन ग्रहण किया पूर्वाह्ण (काल) में विहित है, अपराह्ण (विकाल) में नहीं। भिक्षुओ! उतने काल वाले से सप्ताह भर काल वाला उसी दिन ग्रहण किया पूर्वाह्ण में विहित है, अपराह्ण में नहीं। भिक्षुओ! उतने काल (यावत्कालिक) से जीवन भर वाला उसी दिन ग्रहण किया होने पर प्रहर भर तक विहित है, प्रहर बीत जाने पर नहीं। भिक्षुओ! उसी दिन ग्रहण किये हुए से सप्ताह भर वाला प्रहर भर तक विहित है, प्रहर के बाद नहीं। भिक्षुओ! प्रहर भर वाले से यावज्जीवन वाला प्रहर भर तक विहित है, प्रहर के बाद नहीं। भिक्षुओ! सप्ताह भर काल वाले से यावज्जीवन वाला उसी दिन ग्रहण किया जाने पर सप्ताह भर विहित है, सप्ताह बीत जाने पर नहीं है॥**

भैषज्यस्कन्धक सम्पन्न॥

उसका उदान (विषयक्रम)

भगवान् ने भिक्षुओं को, शरदृऋतु में होने वाले रोगों से आक्रान्त होने पर, काल या विकाल में भी यथावसर इन पाँच ओषधियों के उपयोग की अनुमति दी— १ सर्पि, नवनीत, तैल, मधु एव गुड़। साथ ही वसा (चर्वी), जड़ वाली औषधियाँ, इन्हें पीसने के लिये छोटी बड़ी खरल, क्वाथ में प्रयुक्त होने वाली औषधियाँ, जैसे— पत्ते, फल, लाख, नमक या सूखे गोबर के भी ग्रहण की अनुमति दी॥ १॥

अञ्जनी उच्चा पारुता सलाका सलाकठानिं ॥ २ ॥
[B.350] थविकं सम्बद्धकं सुत्तं मुद्धनि तेलनत्थु च।
नत्थुकरणी धूमं न नेत्तञ्चाधिपनत्थवि ॥ ३ ॥
[N.265] तेल पाकेसु मज्जं च अतिक्खित्तं अब्भञ्जनं।
तुम्बं सेदं सम्भारं च महाभङ्गोदकं तथा ॥ ४ ॥
दककोट्ठं लोहितं च विसाणं पादब्भञ्जनं।
[R.252] पज्जं सत्थं कसावं च तिलकक्कं कबळिकं ॥ ५ ॥
चोळं सासपकुट्टं च धूमसक्खरिकाय च।
वणतेलं विकासिकं विकटं च पटिग्गहं ॥ ६ ॥
गूथं करोन्तो लोळिं च खारं मुत्तहरीतकं।
गन्धा विरेचनं चेव अच्छाकटं कटाकटं ॥ ७ ॥
पटिच्छादनि पब्भारा आराम सत्ताहेन च।
गुळं मुग्गं सोवीरं च सामंपाका पुनापचे ॥ ८ ॥
पुनानुञ्ञासि दुब्भिक्खे फलं च तिलखादनी।
पुरेभत्तं कायडाहो निब्बत्तं च भगन्दलं ॥ ९ ॥

चूर्ण की हुई ओषधियाँ, उनको कूटने तथा छानने के लिये ऊखल–मूसल तथा चालनी साथ ही मांसमिश्रित औषधियाँ, अञ्जन, उसके प्रयोग के लिये शलाका तथा शलाका का खोल (आवरण) रखने की भी अनुमति दी।। २।।

इन सब वस्तुओ को रखने के लिये थैला (झोला), बाँधने के लिये रस्सी, नस्य में प्रयुक्त होने वाली औषधियाँ, नस्य के उपकरणयन्त्र, चिलम से ओषधियो का धूआँ पीने की, इन वस्तुओ को थैले में रखकर साथ रखने की भी अनुमति प्रदान की।। ३।।

ओषधिमिश्रित तैलपाक में मज्जा का उपयोग, अधिक बनने पर उसका संग्रह, अभ्यञ्जन (तेल–मालिश), इस तैल के संग्रह के पात्रों का निर्धारण; वातरोग में स्वेदनविधि, सामान्य स्वेदविधि से रोग के निवृत्त न होने पर महामङ्गोदकविधि का प्रयोग भी उचित बताया।। ४।।

रोगशान्ति के लिये वस्ति का प्रयोग, विकृत रक्त का निःसारण, इसके लिये सींग का उपयोग, पैरो में मालिश, शल्यचिकित्सा, उष्ण जल से सेक तिलकल्क (पीठी), व्रणरोपक ओषधियों का लेप (कवळिका) की भी अनुमति दी गयी।। ५।।

व्रण पर पट्टी बाँधना, पिसी हुई सरसों की लुगदी रखना, वातव्याधि में महाविकट ओषधियों का प्रयोग तथा व्रणरोपक तैल के प्रयोग का विधान भी बताया गया।। ६।।

विषपान मे मल का प्रयोग, प्रेतबाधा में खेत की मिट्टी का प्रयोग, ग्रहणी रोग में यवक्षार, पाण्डुरोग में गोमूत्रसिक्त हरीतकी का प्रयोग, ज्वरापेत्ती रोग में गन्धक का प्रयोग, रक्तशून्यतारोग में विरेचन, स्वच्छ काँजी का उपयोग, तथा कृत अकृतयूष (जूस) का प्रयोग विहित बताया गया।। ७।।

भवननिर्माण में आरामिक (भृत्य) रखने की अनुमति, किसी वस्तु के ग्रहण की अनुमति, किसी वस्तु का सप्ताह से अधिक उपभोग्य संग्रह निषिद्ध, गुड मूँग सिरका के प्रयोग अनुमत, विहार में यवागू आदि के पाक का निषेध।। ८।।

दुर्भिक्ष के समय खादय वस्तुओं के संग्रह की तथा स्वयं लेकर फल खाने की अनुमति, मधुमिश्रित तिल खाने की अनुमति, प्रधान भोजन से पूर्व गृहीत पदार्थ को स्वीकार करने की अनुमति,

वत्थिकम्मं च सुप्पिं च मनुस्समंसमेव च।
हत्थि अस्सा सुनखो च अहि सीहब्यग्घ दीपिकं॥ १०॥
अच्छतरच्छमंसं च पटिपाटि च यागु च।
तरुणं अञ्ञत्र गुळं सुनिधावसथागारं॥ ११॥
गङ्गा कोटिसच्चकथा अम्बपाली च लिच्छवी।
उद्दिस्स कतं सुभिक्खं पुनदेव पटिक्खिपि॥ १२॥
मेघो यसो यो मेण्डको च गोरसं पाथेय्यकेन च।
केणि अम्बो जम्बु चोच मोचमधुमुद्दिकसालुकं॥ १३॥
फारुसका डाकपिट्ठं आतुमायं नहापितो।
सावत्थियं फलं बीजं किस्मिं ठाने च कालिके ति॥ १४॥

इमम्हि खन्धके वत्थूनि एकसतं छवत्थु॥

भेसज्जक्खन्धको निट्ठितो॥

भगन्दर रोग मे शस्त्रचिकित्सा का निषेध तथा वस्तिकर्म अनुमत, सारिपुत्र के कायदाह की मोग्गल्लान द्वारा आनीत कमलनाल से चिकित्सा।। ९।।

सुप्रिया प्रकरण में भिक्षुओ को मानवमांस भक्षण का निषेध, साथ ही हाथी, घोड़े, कुत्ते, सर्प, सिंह, व्याघ्र, चीते के मांस का खाना निषिद्ध किया गया।। १०।।

इसी तरह रींछ तथा लकड़वग्घे का मांस निषिद्ध, भोजनदानपरम्पराप्रकरण में यवागू एवं मधुगोलक (लड्डू) की प्रशंसा, तरुणप्रसन्न महामात्य के व्यवहार की प्रशंसा, वेलट्ठकच्चान के गुड़दान के प्रकरण में रोगी को गुड तथा स्वस्थ को गुडमिश्रित जल (रस) की अनुमति दी गयी। पाटलिग्राम में सुनीध एवं वर्षकारमाहामात्य द्वारा कृत भक्ताग्र का दानानुमोदन।। ११।।

पाटलिग्राम में, भगवान् बुद्ध के सम्मान में, 'गौतमद्वार' एवं गङ्गा नदी पर 'गङ्गाघाट' नामकरण, कोटिग्राम में आर्यसत्यचतुष्टयकथा, आम्रपाली एवं लिच्छवियों का भगवान् को भोजनदान में प्रतिद्वन्द्विता, सिंहसेनापति द्वारा प्रदत्त भोजनदान में जैनो द्वारा उठायी गयी आपत्ति के विरोध्र में उद्देश्य करके लाये गये माँस से बने भोजन का निषेध, सुभिक्ष में कल्प्यभूमि बनाने का निर्णय, दुर्भिक्ष के समय के क्षुद्रानुक्षुद्र नियमों का स्थगन।। १२।।

मेघ एवं यश उपासक के प्रकरण में चतुर्विध कल्प्यभूमि (भाण्डागार) के निर्माण की अनुज्ञा, मेण्डक गृहपति के सङ्घ को स्थायी भोजनदान के प्रस्ताव का भगवान् द्वारा निषेध, मेण्डक गृहपति का सङ्घ को धारोष्ण गोदुग्धपान, चारिका में भिक्षुओं को चावल आदि का पाथेय रखने की अनुज्ञा, केणिय जटिल द्वारा भिक्षुओं को आम्र आदि फलों का रसपान, भगवान् द्वारा भिक्षुओं को आम, जामुन, केला आदि फलों के रस के पान की अनुमति।। १३।।

फालसे के रस का पान, सलाद एवं खाद्यपिष्टियो को खाने की अनुमति, आतुमा के नापित भिक्षु को अकार्यकरण का निषेध, भिक्षुओं के कुछ फल तथा बीजों को खाने की अनुमति, भिक्षुओ के लिये कल्प्य (करणीय) तथा अकल्प्य (अकरणीय) का स्पष्टीकरण (इस स्कन्धक में हुआ है)।। १४।।

इस स्कन्धक में एक सौ छह विषयों का विशदीकरण है।।

भैषज्यस्कन्ध समाप्त।।

७. कठिनक्खन्धकं

१. कठिनानुजानना

[N.266, B.351, R.253] १. तेन समयेन बुद्धो भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन तिंसमत्ता पावेय्यका भिक्खू सब्बे आरञ्ञिका सब्बे पिण्डपातिका सब्बे पंसुकूलिका सब्बे तेचीवरिका सावत्थिं गच्छन्ता भगवन्तं दस्सनाय उपकट्ठाय वस्सूपनायिकाय नासक्खिंसु सावत्थियं वस्सूपनायिकं सम्भावेतुं; अन्तरा मग्गे साकेते वस्सं उपगच्छिंसु। ते उक्कण्ठितरूपा वस्सं वसिंसु— "आसन्नेव नो भगवा विहरति इतो छसु योजनेसु, न च मयं लभाम भगवन्तं दस्सनाया" ति। अथ खो ते भिक्खू वस्संवुट्ठा, तेमासच्चयेन कताय पवारणाय, देवे वस्सन्ते, उदकसङ्गहे उदकचिक्खल्ले ओकपुण्णेहि चीवरेहि किलन्तरूपा येन सावत्थि जेतवनं अनाथपिण्डिकस्स आरामो, येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु।

आचिण्णं खो पनेतं बुद्धानं भगवन्तानं आगन्तुकेहि भिक्खूहि सद्धिं पटिसम्मोदितुं। अथ खो भगवा ते भिक्खू एतदवोच—"कच्चि, भिक्खवे, खमनीयं, कच्चि यापनीयं, कच्चि समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना फासुकं वस्सं वसित्थ, न च पिण्डकेन किलमित्था" ति? "खमनीयं, भगवा; यापनीयं, भगवा; समग्गा च मयं, भन्ते, सम्मोदमाना अविवदमाना वस्सं वसिम्हा, न च पिण्डकेन किलमिम्हा। इध मयं, भन्ते, तिंसमत्ता पावेय्यका भिक्खू सावत्थिं आगच्छन्ता भगवन्तं दस्सनाय उपकट्ठाय वस्सूपनायिका नासक्खिम्हा सावत्थियं

---

७. कठिनस्कन्धक

१. 'कठिन' चीवर का विधान

१ उस समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती स्थित जेतवन के अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित आराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय पावेयक (पावा=कोसल प्रदेश के पश्चिम एक जनपद के रहने वाले) तीस भिक्षु जो सभी अरण्यवासी, भिक्षान्नभोजी, गलियो में फेंके फटे-पुराने वस्त्र पहनने वाले, तीन ही चीवर धारणा करने वाले थे, भगवान् के दर्शनहेतु श्रावस्ती जाते समय वर्षोपनायिका पर्वकाल (आषाढ़ी पूर्णिमा) समीप होने से उस दिन श्रावस्ती न पहुँच सके; अत: उन्होंने मार्ग में साकेत मे ही वर्षावास किया। यह वर्षावास उन्होंने इस उत्कण्ठा के साथ पूर्ण किया कि भगवान् यहाँ से छह योजन समीप ही साधनाहेतु विराजमान हैं, फिर भी हमे भगवान् का दर्शन नहीं हो पा रहा है। तब वे भिक्षु वर्षावाससमाप्ति के बाद प्रवारणानन्तर बरसती वर्षा में, जबकि मार्ग जल तथा कीचड़ से भरे हुए थे, भीगे चीवरो से ही श्रावस्ती के जेतवनाराम मे, जहाँ भगवान् विराजमान थे, पहुँचे। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये।

बुद्ध भगवानों की यह परम्परा रही है कि वे नवागन्तुक भिक्षु से स्वयं कुशल-समाचार पूछते हैं। अत: भगवान् ने उन भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ! मार्ग में कुशल तो रहा? यात्रा सुख से बीती? तुम लोगों ने एकमत होकर, विना किसी विवाद के, स्नेहपूर्वक ही वर्षावास पूर्ण किया ना? कभी भोजनकष्ट तो नहीं हुआ?" "हाँ, भन्ते! हम पावेयक तीस भिक्षुओ के लिये वर्षावास में तो सब कुछ ठीक रहा, हमने एकमत होकर....वर्षावास पूर्ण किया। भोजन का भी कोई कष्ट हमें नहीं हुआ। हम तीसों भिक्षु

वस्सूपनायिकं सम्भावेतुं, अन्तरामग्गे साकेते वस्सं उपगच्छिम्हा। ते मयं, भन्ते, उक्कण्ठितरूपा वस्सं वसिम्हा 'आसन्नेव नो भगवा विहरति इतो छसु योजनेसु, न च मयं लभाम [R.254] भगवन्तं दस्सनाया'ति। अथ खो मयं, भन्ते, वस्संवुट्ठा, तेमासच्चयेन कताय पवारणाय, देवे वस्सन्ते, उदकसङ्गहे उदकचिक्खल्ले ओकपुण्णेहि चीवरेहि किलन्तरूपा अद्धानं आगता'' ति। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि— **''अनुजानामि, भिक्खवे, वस्संवुट्ठानं भिक्खूनं कठिनं अत्थरितुं। अत्थत**-[B.352] **कठिनानं वो, भिक्खवे, पञ्च कप्पिस्सन्ति—'अनामन्तचारो, असमादानचारो, गणभोजनं, यावदत्थचीवरं, यो च तत्थ चीवरुप्पादो सो नेसं भविस्सती' ति। अत्थतकठिनानं वो, भिक्खवे, इमानि पञ्च कप्पिस्सन्ति।''**

२. एवं च पन, भिक्खवे, कठिनं अत्थरितब्बं। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—''सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। इदं सङ्घस्स कठिनदुस्सं उप्पन्नं। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो इमं कठिनदुस्सं इत्थन्नामस्स भिक्खुनो ददेय्य कठिनं अत्थरितुं। एसा ञत्ति।

''सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। इदं सङ्घस्स कठिनदुस्सं उप्पन्नं। सङ्घो इमं [N.267] कठिनदुस्सं इत्थन्नामस्स भिक्खुनो देति कठिनं अत्थरितुं। यस्सायस्मतो खमति इमस्स कठिनदुस्सस्स इत्थन्नामस्स भिक्खुनो दानं कठिनं अत्थरितुं, सो तुण्हस्स; तस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

''दिन्नं इदं सङ्घेन कठिनदुस्सं इत्थन्नामस्स भिक्खुनो कठिनं अत्थरितुं। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी'' ति।

श्रावस्ती में ही वर्षावास करना चाहते थे, परन्तु वर्षोपनायिका तिथि समीप होने के कारण विवशतः हमको साकेत में ही वर्षावास करना पडा। इस अन्तराल मे हमारी यह उत्कण्ठा निरन्तर बनी रही कि इतना समीप (छह योजन) होने पर भी हम भगवान् के दर्शन नहीं कर पा रहे हैं। ज्यो ही वर्षावास, समाप्त हुआ, प्रवारणा पूर्ण की कि हम लोग भरी वर्षा में भगवान् के दर्शनहेतु श्रावस्ती के लिये चल पड़े। इसीलिये हम भीगे चीवरों में ही यहाँ तक रास्ते में कष्ट पाते हुए पहुँच पाये हैं। तब भगवान् ने इस सम्बन्ध में इस प्रकरण की धार्मिक कथाएँ कहते हुए भिक्षुओं से कहा—**''भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ वर्षावास कर चुके भिक्षुओं को 'कठिन' (सङ्घ की सम्मति से सम्मानप्रदर्शन हेतु भिक्षु को दिया गया चीवर) पहनने की।''**

कठिनधारकों के पाँच नियम— ''कठिन पहन लेने का बाद, भिक्षुओ! तुम को इन पाँच नियमों से बंधे रहना पड़ेगा—१. विना आमन्त्रण के विचरना, २. विना तीनों चीवरों को लिये विचरना, ३ गण के साथ भोजन करना, ४. इच्छानुसार चीवर लेना, ५. तथा जो वहाँ चीवर मिलते समय होगा वह उसका होगा। ये पाँच नियम 'कठिन' धारण करने के बाद विहित होंगे।

२. ''भिक्षुओ! 'कठिन' धारण करने के लिये यह विधान है—चतुर एवं समर्थ भिक्षु सङ्घ को सूचित करे—

ज्ञप्ति—'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। यह सङ्घ के लिये कठिन बनाने का वस्त्र प्राप्त हुआ है। यदि सङ्घ उचित समझे तो इस कठिन के वस्त्र को इस नाम वाले भिक्षु को पहनने के लिये दे। यह सूचना है।'

अनुश्रवण— 'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। यह सङ्घ के लिये 'कठिन' का वस्त्र मिला है। सङ्घ इस 'कठिन' के वस्त्र को अमुक नाम के भिक्षु को पहनने के लिये दे रहा है। जिस आयुष्मान् को इस 'कठिन' का इस नाम वाले भिक्षु को देना अनुकूल हो वह चुप रहे; जिसको अनुकूल हो वह बोले।'

३. एवं खो, भिक्खवे, अत्थतं होति कठिनं, एवं अनत्थतं। कथं च पन, भिक्खवे, अनत्थतं होति कठिनं? न उल्लिखितमत्तेन अत्थतं होति कठिनं, न धोवनमत्तेन अत्थतं होति कठिनं, न चीवरविचारणमत्तेन अत्थतं होति कठिनं, न छेदनमत्तेन अत्थतं होति कठिनं, न बन्धनमत्तेन अत्थतं होति कठिनं, न ओवट्टिकरणमत्तेन अत्थतं होति कठिनं, न कण्डुस-करणमत्तेन अत्थतं होति कठिनं, न दळ्हिकम्मकरणमत्तेन अत्थतं होति कठिनं, न अनुवातकरणमत्तेन अत्थतं होति कठिनं, न परिभण्डकरणमत्तेन अत्थतं होति कठिनं, न ओवद्धेय्यकरणमत्तेन अत्थतं होति कठिनं, न कम्बलमद्दनमत्तेन अत्थतं होति कठिनं, न निमित्तकतेन अत्थतं होति कठिनं, न परिकथाकतेन अत्थतं होति कठिनं, न कुक्कुकतेन अत्थतं होति कठिनं, न सन्निधिकतेन अत्थतं होति कठिनं, न निस्सग्गियेन अत्थतं होति कठिनं, न अप्पकतेन अत्थतं होति कठिनं, न अञ्ञत्र सङ्घाटिया अत्थतं होति कठिनं, न [B.353, R.255] अञ्ञत्र उत्तरासङ्गेन अत्थतं होति कठिनं, न अञ्ञत्र पञ्चकेन वा अतिरेकपञ्चकेन वा तदहेव सञ्छिन्नेन समण्डलीकतेन अत्थतं होति कठिनं, न अञ्ञत्र पुग्गलस्स अत्थारा अत्थतं होति कठिनं; सम्मा चेव अत्थतं होति कठिनं, तं चे निस्सीमट्ठो अनुमोदति, एवं पि अनत्थतं होति कठिनं। एवं खो, भिक्खवे, अनत्थतं होति कठिनं।

४. कथं च, भिक्खवे, अत्थतं होति कठिनं? अहतेन अत्थतं होति कठिनं, अहतकप्पेन अत्थतं होति कठिनं, पिलोतिकाय अत्थतं होति कठिनं, पंसुकूलेन अत्थतं होति कठिनं, पापणिकेन अत्थतं होति कठिनं, अनिमित्तकतेन अत्थतं होति कठिनं, अपरिकथाकतेन अत्थतं होति कठिनं, अकुक्कुकतेन अत्थतं होति कठिनं, असन्निधिकतेन अत्थतं होति कठिनं, अनिस्सग्गियेन अत्थतं होति कठिनं, कप्पकतेन अत्थतं होति कठिनं,

---

धारणा– 'सङ्घ ने इस 'कठिन' के वस्त्र को अमुक नाम वाले भिक्षु को धारण करने के लिये दे दिया। सङ्घ को यह दान अनुकूल है इसीलिये चुप है–ऐसी मेरी धारणा है।'

कठिन का प्रसारण एवं अप्रसारण–३. यो, भिक्षुओ! 'कठिन' का प्रसारण होता है और यों अप्रसारण। कैसे, भिक्षुओ! 'कठिन' का प्रसारण नहीं होता? उल्लिखित (किसी चिह्न द्वारा प्रमाण) कर देने मात्र से, धोने मात्र से, चीवर के फैलाने मात्र से, छेदन मात्र से, बन्धन मात्र से, लपेटने मात्र से, कण्डुस (चमक लाने=कुन्दी करने) मात्र से, न दृढ़ कर्म (दो वस्त्रों को सिल देने) करने मात्र से, न हवा के अनुकूल करने मात्र से, न परिभण्ड (घेरने) मात्र से, न किसी वस्त्र से ढकने मात्र से, न कम्बल पर रगड़ने मात्र से, उस पर न कोई चिह्न कर देने मात्र से, न तत्सम्बन्धी चर्चा करने मात्र से, न मांड देने (कड़ा करने) मात्र से, न कुछ सीमा (माप) कर देने मात्र से, न जमा कर (समेट) देने मात्र से, न छोड़ने योग्य होने मात्र से, न अकल्प्य (अविहित) करने मात्र से, न सङ्घाटि से पृथक् होने मात्र से, न उत्तरासङ्ग से पृथक् होने मात्र से, न अन्तरवासक से पृथक् होने मात्र से, न पाँच या पाँच से अधिक होने पर, उसी दिन कटा होने पर, मण्डल (गोल) कर देने मात्र से, न किसी पुरुष का पहना होने से यदि उस का सीमा से बाहर रहकर अनुमोदन कर दिया हो, 'कठिन' का 'प्रसारण' नहीं कहलाता।

४. और, भिक्षुओ! 'कठिन' का 'प्रसारण' कैसे होता है? विना पहने कठिन का प्रसारण होता है, विना पहने रखे वस्त्र में...फटे-पुराने.....रास्ते से उठाये चीथडे.. दुकान पर रखे हुए पुराने न

सङ्घाटिया अत्थतं होति कठिनं, उत्तरासङ्गेन अत्थतं होति कठिनं, अन्तरवासकेन अत्थतं होति कठिनं, पञ्चकेन वा अतिरेकपञ्चकेन वा तदहेव सञ्छिन्नेन समण्डलीकतेन अत्थतं होति कठिनं, पुग्गलस्स अत्थारा अत्थतं होति कठिनं; सम्मा चेव अत्थतं होति कठिनं, तं चे सीमट्ठो अनुमोदति, एवं पि अत्थतं होति कठिनं। एवं खो, भिक्खवे, अत्थतं होति कठिनं।

५. कथं च, भिक्खवे, उब्भतं होति कठिनं? अट्ठिमा, भिक्खवे, मातिका [N.268] कठिनस्स उब्भाराय—**पक्कमनन्तिका, निट्ठानन्तिका, सन्निट्ठानन्तिका, नासनन्तिका, सवनन्तिका, आसावच्छेदिका, सीमातिक्कन्तिका, सहुब्भारा** ति।

२. आदायसत्तकं

६. (१) भिक्खू अत्थतकठिनो कतचीवरं आदाय पक्कमति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो पक्कमनन्तिको कठिनुद्धारो।

(२) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स [B.354] एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(३) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

चिह्नित किये....न चर्चा किये गये.....न माँड देकर कडा किये न एकत्र किये न छोड़े हुए न कल्प्य (विहित) वस्त्र में कठिन का प्रसारण होता है। सङ्घाटि से... उत्तरासङ्ग से.... अन्तरवासक से.....पाँच से या पाँच से अधिक होने से....उसी दिन कटा होने पर... मण्डल कर देने से . सीमा के अन्तर्गत अनुमोदन कर देने से भी कठिन का प्रसारण होता है। यों भिक्षुओ! 'कठिन' का प्रसारण होता है।

५ और, भिक्षुओ! 'कठिन' उद्धृत =उद्भुत (उत्पन्न) कैसे होता है? भिक्षुओ! कठिन के उद्धार में ये आठ मातृकाएँ (उत्पादक=मूल कारण) हैं—१. प्रक्रमणान्तिका, २ निष्ठानान्तिका, ३ सन्निष्ठानान्तिका ४. नाशनान्तिका, ५ श्रवणान्तिका, ६. आशावच्छेदिका, ७. सीमातिक्रान्तिका एवं ८ सहोत्पत्तिका।

२. आदाय–सप्तक

६. (१) भिक्षुओ! 'कठिन' के प्रसारित होने जाने पर जो भिक्षु यह सोचकर बने चीवर को लेकर चल देता है कि फिर नहीं लौटूँगा। ऐसे भिक्षु को **प्रक्रमणान्तिक** (चला जाना जिसका अन्त है) कठिन का उद्धार होता है।

(२) कोई भिक्षु कठिन के प्रसारित होने पर चीवर लेकर चल देता है, सीमा के बाहर उसके मन में यह होता है— 'यहीं इस चीवर को बनाऊँगा, फिर नहीं लौटूँगा' और वह उस चीवर को बनवा लेता है, ऐसे भिक्षु को **निष्ठानान्तिक** (बनवा चुकना अन्त है जिसका) नामक कठिन का उद्धार होता है।

(३) कोई भिक्षु कठिन के प्रसारित हो जाने पर चीवर लेकर चल देता है, सीमा के बाहर जाने पर उसके चित्त मे ऐसा विचार होता है—'न इस चीवर को बनवाऊँगा, न फिर लौटूँगा।' ऐसी स्थिति मे उस भिक्षु को **सन्निष्ठानान्तिक** (जिस का समाप्त करना अवशिष्ट है) कठिन का उद्धार होता है।

(४) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

(५) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो [R.256] बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो सुणाति—उब्भतं किर तस्मिं आवासे कठिनं ति। तस्स भिक्खुनो सवनन्तिको कठिनद्धारो।

(६) भिक्खु अत्थकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—"पच्चेस्सं पच्चेस्सं" ति— बहिद्धा कठिनुद्धारं वीतिनामेति। तस्स भिक्खुनो सीमातिक्कन्तिको कठिनुद्धारो।

(७) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति—पच्चेस्सं ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—"पच्चेस्सं पच्चेस्सं" ति—सम्भुणाति कठिनुद्धारं। तस्स भिक्खुनो सह भिक्खूहि कठिनुद्धारो।

आदायसत्तकं निट्ठितं॥

३. समादायसत्तकं

७. (१) भिक्खु अत्थतकठिनो कतचीवरं समादाय पक्कमति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो पक्कमनन्तिको कठिनुद्धारो।

---

(४)... चीवर लेकर चल देता है और सीमा से बाहर जाने पर उसे यह मन में होता है—'यहीं इस चीवर को बनवाऊँ तथा फिर न लौटूँगा।' वह उस चीवर को बनवाता है और बनवाते समय उसका वह चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षु का **नाशनान्तिक** (नाश हो जाना जिसका अन्त है) कठिन का उद्धार कहलाता है।

(५)... चीवर को लेकर चल देता है, यह सोच कर कि लौटूँगा। सीमा से बाहर जाकर बनवाता है। चीवर बन जाने पर वह सुनता है कि उस आवास में 'कठिन' उत्पन्न हुआ। उस भिक्षु को श्रवणान्तिक (सुनना है अन्त जिसका) कठिन का उद्धार होता है।

(६) ...चीवर को लेकर चल देता है यह सोचकर कि फिर लौटूँगा और सीमा से बाहर जाकर उस चीवर को बनवाता है। वह चीवर बन जाने पर "फिर लौटूँगा, फिर लौटूँगा" यह सोचते-सोचते बाहर ही कठिन के उद्धार का समय बिता देता है। ऐसे भिक्षु को सीमातिक्रान्तिक (सीमा का अतिक्रमण कर दिया है जिसमे) कठिन का उद्धार होता है।

(७)....चीवर लेकर 'फिर आऊँगा' सोचकर चल देता है। वह सीमा के बाहर जाने पर उस चीवर को बनवा लेता है। चीवर बन जाने पर 'फिर आऊँगा, फिर आऊँगा'—यह सोचते हुए 'कठिन' के उद्धार की प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षु का दूसरे भिक्षुओं के साथ सहोत्पत्तिक (सहुप्पत्ति) 'कठिन' का उद्धार होता है। (सहोत्पत्तिक)।

आदाय–सप्तक समाप्त।।

३. समादाय–सप्तक

७. (१–७) भिक्षुओ! भिक्षु कठिन प्रसारित हो जाने पर बने चीवर को ठीक से लेकर चल देता है ..पूर्ववत्.. उस भिक्षु का दूसरे भिक्षुओं के साथ 'कठिन' का उद्धार होता है।

समादायसप्तक समाप्त।।

(२) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं समादाय पक्कमति। तस्स बहिसीम-[B.355] गतस्स एवं होति—''इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(३) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं समादाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—''नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(४) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं समादाय पक्कमति। तस्स बहिसीम- [N.269] गतस्स एवं होति—''इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

(५) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं समादाय पक्कमति—''पच्चेस्सं'' ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो सुणाति—''उब्भतं किर तस्मिं आवासे कठिनं'' ति। तस्स भिक्खुनो सवनन्तिको कठिनुद्धारो।

(६) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं समादाय पक्कमति—''पच्चेस्सं'' ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—''पच्चेस्सं पच्चेस्सं'' ति—बहिद्धा कठिनुद्धारं वीतिनामेति। तस्स भिक्खुनो सीमातिक्कन्तिको कठिनुद्धारो।

(७) भिक्खु अत्थकठिनो चीवरं समादाय पक्कमति—पच्चेस्सं ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—''पच्चेस्सं पच्चेस्सं'' ति—सम्भुणाति कठिनुद्धारं। तस्स भिक्खूनो सह भिक्खूहि कठिनुद्धारो।

समादायसत्तकं दुतियं निट्ठितं॥

४. आदायछक्कं

८. (१) भिक्खु अत्थकठिनो विप्पकतचीवरं आदाय पक्कमति। तस्स [R.257] बहिसीमगतस्स एवं होति—''इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(२) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं आदाय पक्कमति। तस्स [B.356] बहिसीमगतस्स एवं होति—''नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(३) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं आदाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स

[यह सप्तक अक्षरश: ऊपर के आदाय-सप्तक के ही समान है। तदनुसार ही अर्थ कर लें। केवल 'लेकर चल देता है' के स्थान पर 'ठीक से लेकर चल देता है'—लगावें।]

४. आदायषट्क

८. (१) भिक्षुओ! भिक्षु 'कठिन' के प्रसारित होने पर विना बने चीवर को लेकर (=आदाय) चल देता है। उसको, सीमा के बाहर चलें जाने पर, यह विचार होता है—'यहीं चीवर बनवा लूँ और वापस न लौटूँ। और वह उस चीवर को बनवाये तो उस भिक्षु को 'निष्ठानान्तिक' नामक 'कठिन' का उद्धार होता है।

एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

(४) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं आदाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो सुणाति—"उब्भतं किर तस्मिं आवासे कठिनं" ति। तस्स भिक्खुनो सवनन्तिको कठिनुद्धारो।

(५) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं आदाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—"पच्चेस्सं पच्चेस्सं" ति—बहिद्धा कठिनुद्धारं वीतिनामेति। तस्स भिक्खुनो सीमातिक्कन्तिको कठिनुद्धारो।

(६) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं आदाय पक्कमति—पचचेस्सं [N.270] ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—पच्चेस्सं पच्चेस्सं ति—सम्भुणाति कठिनुद्धारं। तस्स भिक्खुनो सह भिक्खूहि कठिनुद्धारो।

आदायछक्कं निट्ठितं।।

५. समादायछक्कं

९. (१) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(२) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेसं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(३) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति। तस्स [B.357] बहिसीमगतस्स एवं होति— "इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

(४) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति—पच्चेस्सं ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो सुणाति—"उब्भतं किर तस्मिं आवासे कठिनं" ति। तस्स भिक्खुनो सवनन्तिको कठिनुद्धारो।

(२ से ६ तक) .....पूर्ववत्.....।

आदायषट्क समाप्त।।

[इस षट्क में पूर्व की 'प्रक्रमणान्तिक' मातृका को छोड़कर अवशिष्ट छह मातृकाओ का पाठ 'आदायसप्तक' की तरह ही है।]

५. समादायषट्क

९ (१) भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'कठिन' के प्रसारित होने पर, विना बने चीवर को ठीक से लेकर (=समादाय) चल देता है। 'यहीं चीवर बनवा लूँ और वाप्स न लौटूँ।' यह सोचकर वह वहीं चीवर बनवा लेता है तो उस भिक्षु को 'निष्ठानान्तिक' कठिन का उद्धार होता है।

(५) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—"पच्चेस्सं पच्चेस्सं" ति—बहिद्धा कठिनुद्धारं वीतिनामेति। तस्स भिक्खुनो सीमातिक्कन्तिको कठिनुद्धारो।

(६) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—"पच्चेस्सं पच्चेस्सं" ति—सम्भुणाति कठिनुद्धारं। तस्स भिक्खुनो सह भिक्खूहि कठिनुद्धारो।

समादायछक्कं॥

६. आदायपन्नरसकं

१०. (१) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(२) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स [N.271] एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(३) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं [B.358] चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

तिकं॥

(४) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(२ से ६).....पूर्ववत्..।

समादायषट्क समाप्त।।

[इस षट्क का पाठ 'आदायषट्क' के समान है। केवल 'लेकर' (आदाय) के स्थान पर 'ठीक से लेकर' (समादाय) शब्द पाठ में लगा लेना चाहिये।]

६. आदायपञ्चदशक

१०. (१) भिक्षु कठिन के प्रसारित हो जाने पर चीवर को लेकर (आदाय) चल देता है। उसको, सीमा से बाहर जाने पर यह विचार होता है—'इस चीवर को यहीं बनवाऊँ, फिर न लौटूँ', यों वह उस चीवर को बनवाता है। उस भिक्षु को यह 'निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' होता है।

(२) भिक्षु कठिन के प्रसारित होने पर चीवर को....विचार होता है—'न इस चीवर को बनवाऊँ, न फिर लौटूँ', यों यह उस भिक्षु को 'सन्निष्ठानान्तिक कठिन-उद्धार' होता है।

(३) भिक्षु...चीवर को....होता है—'यहीं इस चीवर को बनवाऊँ और फिर न लौटूँ', और फिर वह उस चीवर को बनवाये। परन्तु बनवाते समय वह चीवर नष्ट हो जाय तो उस भिक्षु को यह 'नाशनान्तिक कठिन उद्धार' होता है।

प्रथम त्रिक।।

(५) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहि-सीमगतस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(६) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स [R.258] बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

तिकं ॥

(७) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति अनधिट्ठितेन; नेवस्स होति—"पच्चेस्सं" ति, न पनस्स होति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(८) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति अनधिट्ठितेन; नेवस्स होति—"पच्चेस्सं" ति, न पनस्स होति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(९) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति अनधिट्ठितेन; नेवस्स होति—"पच्चेस्सं ति", न पनस्स होति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

तिकं ॥

---

(४) भिक्षु... चीवर को लेकर 'फिर नहीं लौटूँगा'—यह सोचकर चल देता है। सीमा के बाहर जाने पर उसको यह होता है—'यहीं इस चीवर को बनवा लूँ' और वह उस चीवर को बनवाता है। उस भिक्षु को यह 'निष्ठानान्तिक कठिन उद्धार' कहलाता है।

(५) ....चीवर को लेकर....यह होता है—'इस चीवर को नहीं बनवाऊँगा', तो उस भिक्षु को यह 'सन्निष्ठानान्तिक कठिन उद्धार' कहलाता है।

(६)....चीवर को लेकर 'नहीं लौटूँगा'—सोचकर चल देता है परन्तु सीमा से बाहर जाने पर... 'इसे यहीं बनवा लूँ।' वह बनवाता है। परन्तु बनवाते समय वह चीवर नष्ट हो जाय तो उसे यह 'नाशनान्तिक कठिन उद्धार' कहलाता है।

द्वितीय त्रिक ॥

(७) भिक्षु चीवर के प्रसारित होने पर विना कोई निश्चय किये ही चल देता है। उस समय वह न तो यह निश्चय कर पाता है कि 'लौटूँगा' और न यह निश्चय कर पाता है कि 'नहीं लौटूँगा।' परन्तु उसे सीमा के बाहर जाने पर यह विचार होता है कि 'यहीं इस चीवर को बनवा लूँगा, लौटूँगा नहीं।' वह इस चीवर को बनवा लेता है। उस भिक्षु का यह 'निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(८) ..पूर्ववत्.. 'न यहीं इस चीवर को बनवाऊँगा, न लौटूँगा ही'; तो उसको यह 'सन्निष्ठानान्तिक च कठिन-उद्धार' कहलाता है।

(९).. 'यहीं इस चीवर को बनवा लूँगा, लौटूँगा नहीं।' वह उस चीवर को वहीं बनवाता है।

(१०) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। [B.359] तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(११) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। [N.272] तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(१२) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। तस्स बहि-सीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

(१३) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो सुणाति—"उब्भतं किर तस्मिं आवासे कठिनं" ति। तस्स भिक्खुनो सवनन्तिको कठिनुद्धारो।

(१४) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—"पच्चेस्सं पच्चेस्सं" ति—बहिद्धा कठिनुद्धारं वीतिनामेति। तस्स भिक्खुनो सीमातिक्कन्तिको कठिनुद्धारो।

(१५) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं आदाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—"पच्चेस्सं पच्चेस्सं" ति सम्भुणाति [B.259] कठिनुद्धारं। तस्स भिक्खुनो सह भिक्खूहि कठिनुद्धारो।

आदायपन्नरसकं छक्कं॥

७. समादायपन्नरसकादि

११. भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरं समादाय पक्कमति....पे०.....। [B.360]

बनवाते समय वह चीवर नष्ट हो जाता है तो वह उस भिक्षु को 'नाशनान्तिक कठिन उद्धार' कहलाता है।

तृतीय त्रिक।।

(१०) भिक्षु कठिन के प्रसारित होने पर 'फिर आऊँगा'—सोचकर चीवर लेकर चल देता है। उसको सीमा के बाहर जाने पर यों विचार होता है—'इस चीवर को यहीं बनवाऊँगा, पुनः नहीं लौटूँगा।' वह उस चीवर को बनवा लेता है। ऐसे भिक्षु को 'निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' होता है।

(११) ....पूर्ववत्....सीमा के बाहर जाने पर उसे यों होता है—'न इस चीवर को बनवाऊँगा, न पुनः लौटूँगा। ऐसे भिक्षु को 'सन्निष्ठानान्तिक कठिन उद्धार' होता है।

(१२) ....'फिर आऊँगा'—सोचकर चीवर को लेकर चल देता है। सीमा के बाहर जाने पर उसे होता है—'यहीं इस चीवर को बनवा लूँगा, फिर नहीं लौटूँगा'। फिर उस चीवर को बनवाते समय वह नष्ट हो जाता है। उस भिक्षु को यह नाशनान्तिक कठिनोद्धार होता है।

(१३).. फिर उस चीवर को बनवा कर वह सुनता है—'अमुक आवास में कठिन उत्पन्न हुआ है।' उस भिक्षु को वह 'श्रवणान्तिक कठिन उद्धार' कहलाता है।

(१४) ..चीवर बन जाने पर 'अब लौटूँ, अब लौटूँ' कहता हुआ बाहर ही कठिनोद्धार का समय बिता देता है। उस भिक्षु का वह 'सीमातिक्रान्तिक कठिन उद्धार' कहलाता है।

(आदायवारसदिसं एवं वित्थारेतब्बं।)

(विप्पकतआदायपन्नरकं)

भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं आदाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति--''इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो.....पे०....।

(समादायवारसदिसं एवं वित्थारतब्बं।)

८. विप्पकतसमादायपन्नरसकं

१२. (१) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—''इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(२) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—''नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

[N.273] (३) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—''इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

तिकं॥

---

(१५)....चीवर बन जाने पर 'अब लौटूँ, अब लौटूँ' कहता हुआ कठिनोद्धार की प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षु को दूसरे भिक्षुओं के साथ कठिनोद्धार होता है।।

षट्क ।।

आदायपञ्चदशक समाप्त।।

७. समादायपञ्चदशक आदि

११. (१) भिक्षु कठिन के प्रसारित होने पर चीवर को ठीक तरह से लेकर (समादाय) चले देता है....पूर्ववत्....।

[इसे भी 'आदायपन्नरसक की तरह ही पढ़ना चाहिये 'लेकर' के स्थान पर 'ठीक तरह से लेकर' परिवर्तन के साथ।]

विप्रकृत आदायपञ्चदशक— भिक्षु कठिन के प्रसारित होने पर विना बने चीवर को लेकर चल देता है। सीमा के बाहर जाने पर उसे यों विचार होता है—'यहीं चीवर बनवाऊँगा, फिर नहीं लौटूँगा'। यों सोचकर वह वहीं बनवा लेता है। ऐसे भिक्षु का वह 'निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

[इसका भी समादायवारपञ्चदशक की तरह 'विना बने चीवर को' पाठ लगाकर विस्तार कर लेना चाहिये।]

८. विप्रकृतसमादायपञ्चदशक

१२ (१) भिक्षु कठिन के प्रसारित हो जाने पर बिना बने चीवर को लेकर चल देता है। उसको सीमा से बाहर जाने पर....निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार होता है।....पूर्ववत्...।

(४) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति—'न पच्चेस्सं' ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(५) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(६) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति—न पच्चेस्सं [B.361] ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

तिकं॥

(७) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति अनधिट्ठितेन; नेवस्स होति—"पच्चेस्सं" ति, न पनस्स होति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एव होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(८) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति अनधिट्ठितेन; नेवस्स होति—"पच्चेस्सं" ति, न पनस्स होति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(९) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति अनधिट्ठितेन; नेवस्स होति—"पच्चेस्सं" ति, न पनस्स होति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

तिकं॥

(१०) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति—पच्चेस्सं ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(११) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" [N.274] ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(१२) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" [B.362] ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं"

[इस पञ्चदशक का भी आदायपञ्चदशक के समान ही रूपान्तरण कर लेना चाहिये।]

षट्क॥

विप्रकृत समादायपञ्चदशक समाप्त।

आदायभाणवार समाप्त॥

ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

(१३) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो सुणाति—"उब्भतं किर तस्मिं आवासे कठिनं" ति। तस्स भिक्खुनो सवनन्तिको कठिनुद्धारो।

(१४) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—"पच्चेस्सं पच्चेस्सं" ति—बहिद्धा कठिनुद्धारं वीतिनामेति। तस्स भिक्खुनो सीमातिक्कन्तिको कठिनुद्धारो।

(१५) भिक्खु अत्थतकठिनो विप्पकतचीवरं समादाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—"पच्चेस्सं पच्चेस्सं" ति—सम्भुणाति कठिनुद्धारं। तस्स भिक्खुनो सह भिक्खूहि कठिनुद्धारो।

छक्कं ॥

समादायपन्नरसकं ॥

आदाय भाणवारोनिट्ठितो ॥

९. अनासादोळसकं

१३. (१) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति। सो बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(२) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति। सो बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

[B.363] (३) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति। सो बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

---

९. अनाशाद्वादशक

१३. (१) भिक्षु कठिन के प्रसारित होने पर चीवर की आशा से चल देता है। और सीमा से बाहर जाकर भी उस चीवर की आशा मन में बनाये रखता है। आशा न होने पर पा जाता है, आशा होने पर भी नहीं पाता। उसके मन में यह विचार होता है—'यहीं इस चीवर को बनवा लूँ, वापस नहीं लौटूँगा। वह चीवर बनवा लेता है। ऐसे भिक्षु की वह कठिन की प्राप्ति 'निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' कहलाती है।

(२).....'न इस चीवर को बनवाऊँगा, न वापस लौटूँगा।' ऐसे भिक्षु का वह सन्निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(३)...उसका वह चीवर बनवाते समय नष्ट हो जाता है तो ऐसे भिक्षु का वह 'नाशनान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(४) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स [N.275] एवं होति—"इधेविमं चीवरासं पयिरुपासिस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। तस्स सा चीवरासा उपच्छिज्जति। तस्स भिक्खुनो आसावच्छेदिको कठिनुद्धारो।

(५) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"न पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(६) भिक्खू अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"न पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(७) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"न पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

(८) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरासं पयिरुपासिस्सं" ति। सो तं [R.260] चीवरासं पयिरुपासति। तस्स सा चीवरासा उपच्छिज्जति। तस्स भिक्खुनो आसावच्छेदिको कठिनुद्धारो।

---

(४)....होता है—'यहीं ठहर कर कुछ समय इस चीवर के मिलने की आशा में बिताऊँ, वापस न लौटूँ। और वह वहीं उस चीवर की आशा में ठहरता है। कुछ प्रतीक्षा के बाद उसकी वह चीवरप्राप्ति की आशा उपच्छिन्न हो (टूट) जाती है। उस भिक्षु को वह 'आशोपच्छेदिक (जिसमें आशा टूट जाय) कठिनोद्धार' कहलाता है।

(प्रथम चतुष्क)

(५) भिक्षु कठिन के प्रसारित होने पर, चीवर की आशा से 'लौट कर न आऊँगा'—यह सोचकर चल देता है। सीमा से बाहर जाकर भी उस चीवर की आशा मन में लगाये रखता है। आशा न होने पर पा जाता है और आशा होने पर भी नहीं पाता। उसको ऐसा विचार होता है—'यहीं इस चीवर को बनवाऊँ।' वह उस चीवर को बनवा लेता है। उस भिक्षु को यह 'निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' होता है।

(६)....उसको ऐसा विचार होता है—'लौटकर न आऊँगा।' और वह सीमा के बाहर जाकर भी उस चीवर की आशा लगाये रखता है।....अन्त में उसको यही विचार होता है—'इस चीवर को नहीं बनवाऊँगा।' यह उस भिक्षु का 'सन्निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(७)....उसको यह विचार होता है—'इस चीवर को यहीं बनवाऊँगा।' यदि बनवाते समय वह चीवर नष्य हो जाय तो वह नाशनान्तक कठिनटोद्धार' कहलाता है।

(८)....उसको यह होता है—'यहीं ठहर कर इस चीवर की प्रतीक्षा करता है। (कुछ समय बीतने पर) उसकी वह चीवरप्रात्याशा क्षीण हो जाती है, तो वह 'आशावच्छेदिक कठिन उद्धार' कहलाता है।

(द्वितीय चतुष्क)

(९) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति अनधिट्ठितेन; नेवस्स होति— "पच्चेस्सं" ति, न पनस्स होति—"न पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति [B.364] अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(१०) भिक्खु अत्थकठिनो चीवरासाय पक्कमति अनधिट्ठितेन; नेवस्स होति— "पच्चेस्सं" ति, न पनस्स होति—"न पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(११) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति अनधिट्ठितेन; नेवस्स होति— "पच्चेस्सं" ति, न पनस्स होति—"न पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

[N.276] (१२) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति अनधिट्ठितेन; नेवस्स होति— "पच्चेस्सं" ति, न पनस्स होति-"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति— "इधेविमं चीवरासं पयिरुपासिस्सं, पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। तस्स सा चीवरासा उपच्छिज्जति। तस्स भिक्खुनो आसावच्छेदिको कठिनुद्धारो।

अनासादोळसकं निट्ठितं॥

१०. आसादोळसकं

१४. (१) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो

---

(९) भिक्षु कठिन के प्रसारित होने के बाद चीवरप्राप्ति की आशा मे विना निश्चय किये ही चल देता है। उस समय न तो उसको यह होता है कि लौटूँगा, न यह होता है कि नहीं लौटूँगा। वह सीमा के बाहर जाकर उस चीवर की प्राप्ति की आशा मन मे लिये रहता है। । उसको यह विचार होता है— 'इस चीवर को यही बना लूँगा, फिर नही लौटूँगा। उसका यह 'निष्ठानान्तिक कठिन उद्धार' हुआ।

(१०) फिर नहीं लौटूगा। उसका यह 'सन्तिष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(११) पूर्ववत् । उसका वह चीवर बनवाते समय नष्ट हो जाता है तो यह कठिनोद्धार 'नाशनान्तिक' कहलाता है।

(१२) सीमा के बाहर जाने पर उसको यह होता है-'कुछ समय यहीं ठहरकर इस चीवर प्राप्ति की प्रतीक्षा करूँगा। समय बीतने पर उसकी वह चीवरप्राप्ति की आशा क्षीण हो जाती है। ऐसा वह कठिनोद्धार 'आशावच्छेदिक' कहलाता है।

(तृतीय चतुष्क)

अनाशाद्वादशक समाप्त॥

१०. आशाद्वादशक

१४ (१) भिक्षु कठिन के प्रसारित होने पर चीवर की आशा मे चल देता है। वह सीमा के

बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति। आसाय लभति, अनासाय न लभति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(२) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। [B.365] सो बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति। आसाय लभति, अनासाय न लभति। तस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(३) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति। आसाय लभति, अनासाय न लभति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

(४) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरासं पयिरुपासिस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। तस्स सा चीवरासा उपच्छिज्जति। तस्स भिक्खुनो आसावच्छेदिको कठिनुद्धारो।

(५) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो सुणाति—"उब्भतं किर तस्मिं आवासे कठिनं" ति। तस्स एवं होति—" यतो [R.261] तस्मिं आवासे उब्भतं कठिनं, इधेविमं चीवरासं पयिरुपासिस्सं" ति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। आसाय लभति, अनासाय न लभति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

बाहर जाकर भी उस चीवर की आशा लगाये रहता है। आशा से मिल जाता है, निराशा होने पर नहीं मिलता। उसको यह विचार होता है–'यहीं इस चीवर को बनवा लूँगा, फिर नहीं लौटूँगा।' वह उस चीवर को बनवा लेता है। तो यह उस भिक्षु का 'निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' होता है।

(२) ...चीवर की आशा में यह सोचकर चल देता है–फिर लौटूँगा। ...। उसको यह विचार होता है– 'न इस चीवर का बनवाऊँगा, न फिर लौटूँगा ही।' उस भिक्षु का यह 'सन्निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' है।

(३) .....चीवर बनवाते समय नष्ट हो जाय तो उसका वह 'नाशनान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(४)....'यहीं चीवर बनवा लूँगा, फिर नहीं लौटूँगा।'... उसकी वह आशा कुछ समय बीतने पर क्षीण हो जाय तो ऐसी स्थिति में उस भिक्षु का वह कठिनोद्धार 'आशोपच्छेदिक' कहलाता है।

(प्रथम चतुष्क)

५.....'फिर लौटूँगा' यह सोचकर चीवर की आशा में चल देता है। सीमा में बाहर जाकर सुनता है–'उस आवास में कठिन उद्धृत हुआ है।' तब उसको ऐसा विचार होता है 'क्योंकि उस आवास में कठिन उद्धृत हुआ है, इसलिये यहीं इस चीवर की आशा मे प्रतीक्षा करूँ।' वह उस चीवर की प्रतीक्षा करता है। आशा होने पर ....तब उसको ऐसा होता है–'यही इस चीवर को बनवाऊँ।' तब वह उस चीवर को बनवाता है। तो उस भिक्षु को यह 'निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(६) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो सुणाति—"उब्भतं किर तस्मिं आवासे कठिनं" ति। तस्स एवं होति—"यतो तस्मिं आवासे उब्भतं कठिनं, इधेविमं चीवरासं पयिरुपासिस्सं" ति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। आसाय लभति, अनासाय न लभति। तस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

[N.277] (७) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो सुणाति—"उब्भतं किर तस्मिं आवासे कठिनं" ति। तस्स एवं होति—[B.366] "यतो तस्मिं आवासे उब्भतं कठिनं, इधेविमं चीवरासं पयिरुपासिस्सं" ति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। आसाय लभति, अनासाय न लभति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

(८) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो सुणाति—"उब्भतं किर तस्मिं आवासे कठिनं" ति। तस्स एवं होति—"यतो तस्मिं आवासे उब्भतं कठिनं, इधेविमं चीवरासं पयिरुपासिस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। तस्स सा चीवरासा उपच्छिज्जति। तस्स भिक्खुनो आसावच्छेदिको कठिनुद्धारो।

(९) भिक्खु अत्थकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति। आसाय लभति, अनासाय न लभति। सो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो सुणाति—"उब्भतं किर तस्मिं आवासे कठिनं" ति। तस्स भिक्खुनो सवनन्तिको कठिनुद्धारो।

(१०) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरासं पयिरुपासिस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। तस्स सा चीवरासा उपच्छिज्जति। तस्स भिक्खुनो आसावच्छेदिको कठिनुद्धारो।

(११) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति। आसाय लभति, अनासाय न लभति। सो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—"पच्चेस्सं पच्चेस्सं" ति—बहिद्धा कठिनुद्धारं वीतिनामेति। तस्स भिक्खुनो सीमातिक्कन्तिको कठिनुद्धारो।

---

(६). सुनता है... आशा होने पर. सन्निष्ठनान्तिक कठिन उद्धार होता है।

(७) ...सुनता है....आशा होने पर पाता है ..नष्ट हो जाता है। ..नाशनान्तिक कठिनोद्धार कहलाता है।

(८) ...फिर लौटकर न आऊँ।...आशा क्षीण हो जाती है। ...आशोपच्छेदिक.. होता है।

(द्वितीय चतुष्क)

(९) .. सुनता है... 'श्रवणान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(१०) ...आशा क्षीण हो जाती है।. 'आशोपच्छेदिक ...कहलाता है।

(११) . बाहर ही कठिनोद्धार का समय बिता देता है।..सीमातिक्रान्तिक कठिनोद्धार कहलाता है।

(१२) भिक्खु अत्थतकठिनो चीवरासाय पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरासं पयिरुपासति। आसाय लभति, अनासाय न लभति। सो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—"पच्चेस्सं पच्चेस्सं" ति—सम्भुणाति कठिनुद्धारं। तस्स भिक्खुनो सह भिक्खूहि कठिनुद्धारो।

आसादोळसकं निट्ठितं॥

११. करणीयदोळसकं

१५. (१) भिक्खु अत्थतकठिनो केनचिदेव करणीयेन पक्कमति। [B.367, R.262] तस्स बहिसीमगतस्स चीवरासा उप्पज्जति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—'इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो। [N.278]

(२) भिक्खु अत्थतकठिनो केनचिदेव करणीयेन पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स चीवरासा उप्पज्जति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(३) भिक्खु अत्थतकठिनो केनचिदेव करणीयेन पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स चीवरासा उप्पज्जति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

(४) भिक्खु अत्थकठिनो केनचिदेव करणीयेन पक्कमति। तस्स बहिसीमगतस्स चीवरासा उप्पज्जति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरासं पयिरुपासिस्सं, न पच्चेस्सं"

---

(१२) ....चीवर बन जाने पर 'लौटूँगा, लौटूंगा' कहता हुआ कठिनोद्धार की प्रतीक्षा करता है। ऐसे भिक्षु को दूसरे भिक्षुओं के साथ कठिनोद्धार होता है।

(तृतीय चतुष्क)

आशाद्वादशक समाप्त।।

११. करणीयद्वादशक

१५. (१) भिक्षु कठिन के प्रसारित होने पर, किसी कार्य से चला जाता है। सीमा से बाहर जाने पर उसे चीवर–आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवर की आशा में लगा रहता है। न आशा होने पर पाता है, आशा होने पर नहीं आता। उसको ऐसा विचार होता है–'यहीं उस चीवर को बनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' वह उस चीवर को बनवाता है। उस भिक्षु को 'निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' होता है।

(२)...कार्य से चला जाता है। .....ऐसा होता है...'न इस चीवर को बनवाऊँ, न फिर लौटूँ।'....उस भिक्षु को 'सन्निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' होता है।

(३).....कार्य से चला जाता है। ....ऐसा होता है–'यहीं इस चीवर को बनवाऊँगा और फिर न लौटूँगा।'....बनवाते समय उस का वह चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षु को 'नाशनान्तिक कठिनोद्धार' होता है।

ति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। तस्स सा चीवरासा उपच्छिज्जति। तस्स भिक्खुनो आसावच्छेदिको कठिनुद्धारो।

(५) भिक्खु अत्थतकठिनो केनचिदेव करणीयेन पक्कमति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स चीवरासा उप्पज्जति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(६) भिक्खु अत्थतकठिनो केनचिदेव करणीयेन पक्कमति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स चीवरासा उप्पज्जति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्नि- [B.368] ट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(७) भिक्खु अत्थतकठिनो केनचिदेव करणीयेन पक्कमति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स चीवरासा उप्पज्जति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

(८) भिक्खु अत्थतकठिनो केनचिदेव करणीयेन पक्कमति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स चीवरासा उप्पज्जति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरासं पयिरुपासिस्सं" ति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। तस्स सा चीवरासा उपच्छिज्जति। तस्स भिक्खुनो आसावच्छेदिको कठिनुद्धारो।

(९) भिक्खु अत्थतकठिनो केनचिदेव करणीयेन पक्कमति अनधिट्ठितेन; नेवस्स होति—"पच्चेस्सं" ति, न पनस्स होति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स चीवरासा [N.279] उप्पज्जति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति।

---

(४) ...कार्य से चला जाता है।....उस की वह आशा क्षीण हो जाती है। उस भिक्षु का यह 'आशोपच्छेदिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(प्रथम चतुष्क)

(५) .....किसी कार्य से 'फिर न लौटूँगा' कहकर चला जाता है।....'यहीं इस चीवर को बनवाऊँ।' वह उस चीवर को बनवाता है। उस भिक्षु को 'निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' होता है।

(६) ....कार्य से 'फिर न लौटूँगा' कहकर चला जाता है। ....ऐसे भिक्षु को 'सन्निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' होता है।

(७) ....कार्य से 'फिर न लौटूँगा'....बनवाते समय चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षु को यह 'नाशनान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(८) ....कार्य से 'फिर न लौटूँगा' कह कर चला जाता है। ...मिलने की आशा क्षीण हो जाती है। भिक्षु का यह 'आशोपच्छेदिक कठिनउद्धार' कहलाता है।

(द्वितीय चतुष्क)

(९) भिक्षु कठिन के प्रसारित होने पर अधिष्ठान (निश्चय) के विना ही किसी कार्य से चला जाता है। उसको न यह होता है कि फिर न आऊँगा, न यह होता है कि फिर आऊँगा। सीमा के बाहर जाने पर उसे चीवर की आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवर की आशा का सेवन करता है। न आशा

तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(१०) भिक्खु अत्थतकठिनो केनचिदेव करणीयेन पक्कमति अनधिट्ठितेन; नेवस्स होति—"पच्चेस्सं" ति, न पनस्स होति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स चीवरासा उप्पज्जति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनायास लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति— "नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको [R.263] कठिनुद्धारो।

(११) भिक्खु अत्थतकठिनो केनचिदेव करणीयेन पक्कमति अनधिट्ठितेन; नेवस्स होति—"पच्चेस्सं" ति, न पनस्स होति—"न पचेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स चीवरासा उप्पज्जति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। अनासाय लभति, आसाय न लभति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स [B.369] तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासन्तिको कठिनुद्धारो।

(१२) भिक्खु अत्थतकठिनो केनचिदेव करणीयेन पक्कमति अनधिट्ठितेन; नेवस्स होति—"पच्चेस्सं" ति, न पनस्स होति—"न पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स चीवरासा उप्पज्जति। तस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरासं पयिरुपासिस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरासं पयिरुपासति। तस्स सा चीवरासा उपच्छिज्जति। तस्स भिक्खुनो आसावच्छेदिको कठिनुद्धारो।

करणीयदोळसकं निट्ठितं॥

१२. अ-पविलायननवकं

१६. (१) भिक्खु अत्थतकठिनो दिसङ्गमिको पक्कमति चीवरपटिवीसं अपविलायमानो। तमेनं दिसङ्गतं भिक्खू पुच्छन्ति—"कहं त्वं, आवुसो, वस्सं वुट्ठो, कत्थ च ते चीवरपटिवीसो" ति? सो एवं वदेति—"अमुकस्मिं आवासे वस्सं वुट्ठोम्हि। तत्थ च मे

होने पर पाता है, आशा होने पर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है–'यहीं इस चीवर को बनवाऊँ, फिर न लौटूँ।' वह उस चीवर को बनवाता है। उस का यह 'निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' है।

(१०)...किसी कार्य से अधिष्ठान के विना ही चला जाता है। 'न इस चीवर को बनाऊँगा, न फिर लौटूँगा' तो उस भिक्षु का यह 'सन्निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(११) ....किसी कार्य से....चीवर बनवाते समय नष्ट हो जाय तो यह उसका 'नाशनान्तिक कठिनोउद्धार' कहलाता है।

(१२) ..किसी कार्य से सीमा से बाहर जाने पर उसे चीवराशा उत्पन्न होती है।..यह उसका 'आशोपच्छेदक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(तृतीय चतुष्क)

करणीयद्वादशक समाप्त।।

१२. अप्रविलायननवक

१६. (१) भिक्षु कठिन के प्रसारित होने के बाद अपने हिस्से में प्राप्त चीवर पर अपना अधिकार छोड़ते हुए (अपविलायमानो) किसी भी दिशा मे चल देता है। ऐसे भिक्षु को दूसरे भिक्षु पूछते

चीवरपटिवीसो'' ति। ते एवं वदन्ति—''गच्छावुसो, तं चीवरं आहर, मयं ते इध चीवरं करिस्साम'' ति। सो तं आवासं गन्त्वा भिक्खू पुच्छति—''कहं मे, आवुसो, चीवरपटिवीसो'' ति? ते एवं वदन्ति—''अयं ते, आवुसो, चीवरपटिवीसो; कहं गमिस्ससी'' ति? सो एवं वदेति—''अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि, तत्थ मे भिक्खू चीवरं करिस्सन्ती'' ति। ते एवं वदन्ति—''अलं, आवुसो, मा अगमासि। मयं ते इध चीवरं करिस्सामा'' ति। [N.280] तस्स एवं होति—''इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(२) भिक्खु अत्थतकठिनो दिसङ्गमिको पक्कमति....पे०....''नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(३) भिक्खु अत्थतकठिनो दिसङ्गमिको पक्कमति....पे०....''इधेविमं चीवरं [B.370] कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

१७. (४) भिक्खु अत्थतकठिनो दिसङ्गमिको पक्कमति चीवरपटिवीसं अपविलायमानो। तमेनं दिसङ्गतं भिक्खू पुच्छन्ति—''कहं त्वं, आवुसो, वस्सं वुट्ठो, कत्थ च ते चीवरपटिवीसो'' ति? सो एवं वदेति—अमुकस्मिं आवासे वस्सं वुट्ठोम्हि, तत्थ च मे चीवरपटिवीसो'' ति। ते एवं वदन्ति—''गच्छावुसो, तं चीवरं आहर, मयं ते इध चीवरं करिस्सामा'' ति। सो तं आवासं गन्त्वा भिक्खू पुच्छति—''कहं मे, आवुसो, चीवरपटिवीसो'' ति? ते एवं वदन्ति—''अयं ते, आवुसो, चीवरपटिवीसो'' ति। सो तं चीवरं आदाय तं आवासं गच्छति। तमेनं अन्तरामग्गे भिक्खू पुच्छन्ति—''आवुसो, कहं गमिस्ससी'' ति?

हैं—''आयुष्मन्! तुमने कहाँ वर्षावास किया था? तुम्हारे अधिकारप्राप्त चीवर का भाग कहाँ है?'' वह कहता है—''अमुक आवास में मैंने वर्षावास किया था, मेरा अधिकारप्राप्त चीवरभाग वहीं पडा है।'' वे कहते हैं—''आयुष्मन्! जाओ, उसे ले आओ! हम तुम्हें उसका चीवर यहाँ बनवा देंगे।'' वह उस आवास में जाकर भिक्षुओं से पूछता है—''आयुष्मानो! मेरा (अधिकारप्राप्त) चीवर का भाग (अंश) कहाँ है?'' वे कहते हैं—''आयुष्मन्! यह है तुम्हारा चीवर का भाग, (इसे लेकर) कहाँ जाओगे?'' वह उत्तर देता है—''अमुक नाम के आवास में जाऊँगा। वहाँ के भिक्षु मेरा यह चीवर बना देंगे।'' तब वे भिक्षु कहते हैं—''रहने दो, आयुष्मन्! वहाँ न जाओ। हम यहीं तुम्हारा यह चीवर बनवा देंगे।'' तब उसके मन में यह होता है—''यहीं चीवर बनवा लूँगा, फिर नहीं लौटूँगा।'' और वह भिक्षु अपना चीवर वहीं बनवा लेता है। उस भिक्षु का यह 'निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(२) भिक्षु ...पूर्ववत्...मन में यह होता है—'न यह चीवर यहाँ बनवाऊँगा, न फिर लौटूँगा।'....उस भिक्षु को यह 'सन्निष्ठानान्तिक कठिनउद्धार' कहलाता है।

(३) भिक्षु... पूर्ववत्... वह वहीं उस चीवर को बनवाता है, परन्तु बनवाते समय वह चीवर नष्ट हो जाता है।....'नाशनान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(प्रथम त्रिक)

१७ (४) भिक्षु . पूर्ववत्...''आयुष्मन्! यह तुम्हारा चीवर है।'' वह चीवर को लेकर चल देता है। रास्ते में दूसरे भिक्षु उससे पूछते हैं—''आयुष्मन्! कहाँ जाओगे?'' वह कहता है—''अमुक नाम के आवास में जाऊँगा, वहाँ के भिक्षु मेरा चीवर बनवा देंगे।'' वे कहते हैं—''रहने दो, भिक्षु! वहाँ

सो एवं वदेति—अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि, तत्थ मे भिक्खू चीवरं करिस्सन्ती'' ति। ते एवं वदन्ति—''अलं, आवुसो, मा अगमासि, मयं ते इध चीवरं करिस्सामा'' ति। तस्स एवं होति—''इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो। [R.264]

(५) भिक्खु अत्थतकठिनो दिसङ्गमिको पक्कमति चीवरपटिवीसं अपविलायमानो। तमेनं दिसङ्गतं भिक्खू पुच्छन्ति—''कहं त्वं, आवुसो, वस्सं वुट्ठो, कत्थ च ते चीवरपटिवीसो'' ति। ते एवं वदेति—''अमुकस्मिं आवासे वस्सं वुट्ठोम्हि, तत्थ च मे चीवरपटिवीसो'' ति। ते एवं वदन्ति—''गच्छावुसो, तं चीवरं आहर, मयं ते इध चीवरं करिस्सामा'' ति। सो तं आवासं गन्त्वा भिक्खू पुच्छति—''कहं मे, आवुसो, चीवरपटिवीसो'' ति? ते एवं वदन्ति—''अयं ते, आवुसो, चीवरपटिवीसो'' ति। सो तं चीवरं आदाय तं आवासं गच्छति। तमेनं अन्तरामग्गे भिक्खू पुच्छन्ति—''आवुसो, कहं गमिस्ससी'' ति? सो एवं वदेति—''अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि, तत्थ मे भिक्खू चीवरं करिस्सन्ती'' ति। ते एवं वदन्ति—''अलं, आवुसो, मा अगमासि, मयं ते इध चीवरं करिस्सामा'' ति। तस्स एवं होति—''नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(६) भिक्खु अत्थतकठिनो दिसङ्गमिको पक्कमति....पे०...''इधेविमं चीवरं [B.371] कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

१८. (७) भिक्खु अत्थकठिनो दिसङ्गमिको पक्कमति चीवरपटिवीसं [N.281] अपविलायमानो। तमेनं दिसङ्गतं भिक्खू पुच्छन्ति—''कहं त्वं, आवुसो, वस्सं वुट्ठो, कत्थ च ते चीवरपटिवीसो'' ति? सो एवं वदेति—''अमुकस्मिं आवासे वस्सं वुट्ठोम्हि, तत्थ च मे चीवरपटिवीसो'' ति। ते एवं वदन्ति—''गच्छावुसो, तं चीवरं आहर, मयं ते इध चीवरं करिस्सामा'' ति। सो तं आवासं गन्त्वा भिक्खू पुच्छति—''कहं मे, आवुसो, चीवरपटिवीसो'' ति? ते एवं वदन्ति—''अयं ते, आवुसो, चीवरपटिवीसो'' ति। सो तं चीवरं आदाय तं आवासं गच्छति। तस्स तं आवासं गतस्स एवं होति—''इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं'' ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

न जाओ!'' तब उसको यह विचार होता है—''यहीं इस चीवर को बनवा लूँ, फिर न लौटूँ।'' फिर वह वहीं चीवर बनवा लेता है। उस भिक्षु का यह 'निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(५) भिक्षु...पूर्ववत्...'न मै इस चीवर को बनवाऊँगा, न फिर लौटूँगा।'' उस भिक्षु का यह 'सन्निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' है।

(६) भिक्षु....पूर्ववत् ...चीवर बनवाते समय नष्ट हो जाता है। यह उस भिक्षु का 'नाशनान्तिक कठिनोद्धार' है।

(द्वितीय त्रिक)

१८. (७) भिक्षु... पूर्ववत् वह चीवर लेकर उस आवास मे पहुँच जाता है। वहाँ जाने पर उसे यों मन में होता है—''यहीं चीवर बनवा लूँगा, फिर नहीं लौटूँगा।'' वह चीवर बनवा लेता है। यह उसका 'निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' है।

(८) भिक्खु अत्थतकठिनो दिसङ्गमिको पक्कमति ...पे०...."नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(९) भिक्खु अत्थतकठिनो दिसङ्गमिको पक्कमति....पे०....."इधेवेमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

अपविलायननवकं निट्ठितं॥

१३. फासुविहारपञ्चकं

१९. (१) भिक्खु अत्थतकठिनो फासुविहारिको चीवरं आदाय पक्कमति— "अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि; तत्थ मे फासु भविस्सति वसिस्सामि, नो चे मे फासु भविस्सति, अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि; तत्थ मे फासु भविस्सति वसिस्सामि, नो चे मे फासु [B.372] भविस्सति, अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि; तत्थ मे फासु भविस्सति वसिस्सामि, नो चे मे फासु भविस्सति, पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति— "इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स भिक्खुनो निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

(२) भिक्खु अत्थतकठिनो फासुविहारिको चीवरं आदाय पक्कमति—"अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि; तत्थ मे फासु भविस्सति वसिस्सामि, नो चे मे फासु भविस्सति, अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि; तत्थ मे फासु भविस्सति वसिस्सामि, ना चे मे फासु भविस्सति, अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि; तत्थ मे फासु भविस्सति वसिस्सामि, नो चे मे फासु भविस्सति, पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"नेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। तस्स भिक्खुनो सन्निट्ठानन्तिको कठिनुद्धारो।

---

(८) भिक्षु....पूर्ववत् ...''न यह चीवर बनवाऊँगा, न पुनः लौटूँगा।'' उस भिक्षु का 'सन्निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार' है।

(९) भिक्षु....पूर्ववत्....वह चीवर बनवाते समय नष्ट हो जाता है। यह उस भिक्षु का नाशनान्तिक कठिनोद्धार' है।

(तृतीय त्रिक)

अप्रविलायननवक समाप्त।।

१३. प्राशुविहारपञ्चक

१९. (१) भिक्षु कठिन के प्रसारित होने के बाद, चीवर लेकर, यह सोचकर चल देता है—''अमुक नाम के विहार सें जाऊँगा वहीं बस जाऊँगा। वहाँ मुझे सुविधा होगी। यदि मुझे वहाँ सुविधा न होगी तो अमुक विहार मे जाऊँगा....। वहाँ भी सुविधा न होगी तो अमुक विहार में जाऊँगा और वहीं रहूँगा, वापस नहीं लौटूँगा।'' उसको सीमा के बाहर जाने पर, मन में यह होता है—''यही चीवर बनवा लूँगा, वापस नही लौटूँगा।' तब वह उस चीवर को बनवा लेता है। यह हुआ उसका निष्ठानान्तिक कठिन–उद्धार'।

(२) भिक्षु.....। उसको सीमा से बाहर जाने पर यह विचार होता है–''न तो इसका चीवर बनवाऊँगा, न वापस ही लौटूँगा।' उसका वह 'सन्निष्ठानान्तिक कठिन–उद्धार' है।

(३) भिक्खु अत्थतकठिनो फासुविहारिको चीवरं आदाय पक्कमति—"अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि; तत्थ मे फासु भविस्सति वसिस्सामि, नो चे मे फासु भविस्सति, अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि; तत्थ मे फासु भविस्सति वसिस्सामि, नो चे मे फासु भविस्सति, अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि; तत्थ मे फासु भविस्सति वसिस्सामि, [N.282] नो चे मे फासु भविस्सति, पच्चेस्सं" ति। तस्स बहिसीमगतस्स एवं होति—"इधेविमं चीवरं कारेस्सं, न पच्चेस्सं" ति। सो तं चीवरं कारेति। तस्स तं चीवरं कयिरमानं नस्सति। तस्स भिक्खुनो नासनन्तिको कठिनुद्धारो।

(४) भिक्खु अत्थतकठिनो फासुविहारिको चीवरं आदाय पक्कमति—"अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि; तत्थ मे फासु भविस्सति वसिस्सामि, नो चे मे फासु भविस्सति, अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि; तत्थ मे फासु भविस्सति वसिस्सामि, नो चे मे फासु भविस्सति, पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—[R.265] 'पच्चेस्सं पच्चेस्सं' ति—बहिद्धा कठिनुद्धारं वीतिनामेति। तस्स भिक्खुनो सीमातिक्कन्तिको कठिनुद्धारो।

(५) भिक्खु अत्थतकठिनो फासुविहारिको चीवरं आदाय पक्कमति—[B.373] "अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि; तत्थ मे फासु भविस्सति वसिस्सामि, नो चे मे फासु भविस्सति, अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि; तत्थ मे फासु भविस्सति वसिस्सामि, नो चे मे फासु भविस्सति, अमुकं नाम आवासं गमिस्सामि; तत्थ मे फासु भविस्सति वसिस्सामि, नो चे मे फासु भविस्सति, पच्चेस्सं" ति। सो बहिसीमगतो तं चीवरं कारेति। सो कतचीवरो—'पच्चेस्सं पच्चेस्सं' ति—सम्भुणाति कठिनुद्धारं। तस्स भिक्खुनो सह भिक्खूहि कठिनुद्धारो।

फासुविहारपञ्चकं निट्ठितं॥

१४. पलिबोधापलिबोधकथा

२०. द्वे, भिक्खवे, कठिनस्स पलिबोधा, द्वे अपलिबोधा। कतमे च, भिक्खवे, द्वे कठिनस्स पलिबोधा? आवासपलिबोधो च, चीवरपलिबोधो च।

कथं च, भिक्खवे, आवासपलिबोधो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु वसति वा

---

(३) भिक्षु...। वापस नहीं लौटूँगा।.... चीवर बनवाते समय उसका वह चीवर नष्ट हो जाता है तो उस भिक्षु का वह 'नाशनान्तिक कठिनोद्धार' कहलाता है।

(४) भिक्षु....सुविधा न होगी तो वापस लौट जाऊँगा। तथा वह बाहर ही कठिनोद्धार का समय बिता देता है। उस भिक्षु का वह 'सीमातिक्रान्तिक कठिनोउद्धार' कहलाता है।

(५) भिक्षु....यदि सुविधा न होगी तो लौट आऊँगा। वह सीमा के बाहर जाकर उस चीवर को बनवाता है। चीवर बन जाने पर 'लौटूँगा, लौटूँगा'—कहते हुए भी वह कठिनोउद्धार की प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षु को दूसरे भिक्षुओं के साथ कठिनोद्धार होता है।

प्राशुविहारपञ्चक समाप्त॥

१४. कठिन चीवर में विघ्न–अविघ्न कथा

२० "भिक्षुओ! भिक्षु को कठिन की प्राप्ति में दो विघ्न होते हैं और दो अविघ्न।

तस्मिं आवासे, सापेक्खो वा पक्कमति—"पच्चेस्सं" ति। एवं खो, भिक्खवे, आवासपलिबोधो होति।

कथं च, भिक्खवे, चीवरपलिबोधो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो चीवरं अकतं वा होति विप्पकतं वा, चीवरासा वा अनुपच्छिन्ना। एवं खो, भिक्खवे, चीवरपलिबोधो होति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे कठिनस्स पलिबोधा।

कतमे च, भिक्खवे, द्वे कठिनस्स अपलिबोधा? आवासअपलिबोधो च चीवरअपलिबोधो च।

कथं च, भिक्खवे, आवासअपलिबोधो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु पक्कमति तम्हा आवासा चत्तेन वन्तेन मुत्तेन अनपेक्खो—"न पच्चेस्सं" ति। एवं खो, भिक्खवे, आवासअपलिबोधो होति। कथं च, भिक्खवे, चीवरअपलिबोधो होति? इध, भिक्खवे, [N.283, B.374] भिक्खुनो चीवरं कतं वा होति, नट्ठं वा विनट्ठं वा दड्ढं वा, चीवरासा वा उपच्छिन्ना। एवं खो, भिक्खवे, चीवरअपलिबोधो होति। इमे खो, भिक्खवे, द्वे कठिनस्स अपलिबोधा ति।

कठिनक्खन्धको निट्ठितो सत्तमो॥

१५. तस्सुद्दानं

तिंस पावेय्यका भिक्खू साकेतुक्कण्ठिता वसुं।
वस्संवुट्ठोकपुण्णेहि अगमं जिनदस्सनं॥ १॥

---

(१) भिक्षुओ! कठिन के दो विघ्न कौन से हैं? (क) आवास का विघ्न और (ख) चीवर का विघ्न।

(क) "भिक्षुओ! कैसे आवास का विघ्न होता है? जब भिक्षुओ! एक भिक्षु उस आवास में वास करता है या 'फिर लौटूँगा' यह सोचकर चल देता है तो वह 'आवास का विघ्न' कहलाता है।

(ख) "भिक्षुओ! चीवर का विघ्न कैसे होता है? यहाँ भिक्षुओ! जब भिक्षु का चीवर बना नहीं होता या ठीक से बना नहीं होता, या चीवर–प्राप्ति की आशा उपच्छिन्न (क्षीण) नहीं हो पाती है तो यह 'चीवर का विघ्न' कहलाता है।

(२) "भिक्षुओ! कठिन के दो अविघ्न कौन से हैं? आवास का अविघ्न और चीवर का अविघ्न।

(क) "भिक्षुओ! कैसे आवास का अविघ्न होता है? जब, भिक्षुओ! भिक्षु 'फिर न लौटूँगा'— सोचकर इच्छारहित होकर उस आवास को त्यागकर, (आसक्तियों का) वमन कर, छोड़कर चल देता है; इस प्रकार, भिक्षुओ! 'आवास का अविघ्न' होता है।

(ख) "भिक्षुओ! कैसे चीवर का अविघ्न होता है? जब भिक्षुओ! भिक्षु का चीवर बन गया होता है, या नष्ट (खोया) हो गया होता है या जल गया होता है, या चीवराशा क्षीण हो चुकीहोती है, भिक्षुओ! इस प्रकार 'चीवर का अविघ्न' होता है। यों, भिक्षुओ! ये दो 'कठिन' के अविघ्न होते हैं।

कठिनस्कन्धक समाप्त।।

कठिनस्कन्धक का उदान (विषयक्रम)

इस स्कन्ध में सर्वप्रथम तीस पावावासी भिक्षुओ को भगवान् के उपदेश का वर्णन है जो भगवान् के दर्शनहेतु श्रावस्ती जाना चाहते हुए भी, वर्षा के कारण विवश होकर, साकेत में ही वर्षावास करने के लिये ठहर गये थे। वे वर्षा ऋतु बीतने के साथ ही भगवान् के दर्शनहेतु श्रावस्ती की तरफ गीले वस्त्रों में कीचड़ भरे मार्ग से ही चल पड़े।। १।।

इदं वत्थु कठिनस्स कप्पिस्सन्ति च पञ्चका।
अनामन्ता असमाचारा तथेव गणभोजनं॥ २॥
यावदत्थं च उप्पादो अत्थतानं भविस्सति।
ञत्ति एवत्थतं चेव एवं चेव अनत्थतं॥ ३॥
उल्लिखि धोवना चेव विचारणं च छेदनं।
बन्धनो वट्टि कण्डूस दळ्हीकम्मानुवातिका॥ ४॥
परिभण्डं ओवद्धेय्यं मद्दना निमित्तं कथा। [R.266]
कुक्कु सन्निधि निस्सग्गि नकप्पञ्ञत्र ते तयो॥ ५॥
अञ्ञत्र पञ्चातिरेके सञ्छिन्नेन समण्डली।
नाञ्ञत्र पुग्गला सम्मा निस्सीमट्ठोनुमोदति॥ ६॥
कठिनानत्थतं होति एवं बुद्धेन देसितं।
अहताकप्पपिलोति पंसु पापणिकाय च॥ ७॥
अनिमित्ता परिकथा तथा अकुक्कु च असन्निधि।
अनिस्सग्गि कप्पकते तिचीवरेन च॥ ८॥

भगवान् ने इनको कठिन चीवर (सङ्घ की सम्मति से, सम्मान प्रदर्शन हेतु, भिक्षु को प्रदान किया जाने वाला वस्त्र) देने की अनुमति दी। तथा इस कठिन को धारण करने वाले के पाँच नियम बनाये। १. कठिनधारी भिक्षु विना आमन्त्रण के २. त्रिचीवर के विना, ३. गण के साथ भोजन।। २।।

४. जितने चीवर की आवश्यकता हो उतने ही चीवर का ग्रहण तथा ५ चीवरदान के समय जो अतिरिक्त चीवर आवे उसमे उनका भाग– इन पाँच नियमो के साथ लोक में विचरण करे। आवश्यकता का अनावश्यकता का निर्णय सङ्घ करेगा।

इस 'कठिन' के प्रसारण एवं अप्रसारण के नियम भी बनाये गये।। ३।।

(क) किसी चिह्न द्वारा उल्लेख कर देने से, धोने मात्र से, फैलाने मात्र से, छेदनमात्र से, बन्धनमात्र से, लपेटने मात्र से, चमक ला देने मात्र से, दो वस्त्रों को सिल देने मात्र से, हवा के अनुकूल कर देने मात्र से।। ४।।

न घेर देने (परिगण्ड) मात्र से, न किसी वस्त्र से ढक देने मात्र से, न कम्बल पर रगड़ (मर्दन) देने मात्र से, उस पर कोई चिह्न (निमित्त) कर देने मात्र से, न तत्सम्बन्धी चर्चा कर देने मात्र से, न माँड देने मात्र से, न कुछ सीमा (सन्निधि) कर देने मात्र से, न छोड़ने योग्य या अकल्प्य कह देने मात्र से, न सङ्घाटि, उत्तरासङ्ग, या अन्तरवासक से पृथक् होने मात्र से।। ५।।

न पाँच या पाँच से अतिरिक्त होने मात्र से, उसी दिन कटा होने से, गोल कर देने मात्र से या किसी पुरुष का पहना होने से यदि उसका सीमा से बाहर रहकर अनुमोदन कर दिया गया हो तो भी ऐसे कठिन चीवर का 'प्रसारण' नहीं कहलाता।। ६।।

कठिन का 'अप्रसारण' भगवान् ने इसी प्रकार बताया है।

(ख) 'कठिन' का प्रसारण इसे कहते हैं– जो 'कठिन' विना पहना हुआ हो, पहनने के लिये रखा हुआ हो, फटा–पुराना न हो, मार्ग से उठाये गये चीथडो जैसा न हो, दुकान पर रखा हुआ।। ७।।

अचिह्नित, न उसकी चर्चा की गयी हो, न माँड देकर कड़ा किया गया हो, न समेटा गया हो, न किसी के द्वारा परित्यक्त हो, न किसी अन्य के लिये विहित हो, सङ्घाटि, उत्तरासङ्ग या अन्तरवासक के योग्य हो।। ८।।

पञ्चके वातिरेके वा छिन्ने समण्डलीकते।
पुग्गलस्सत्थारा सम्मा सीमट्ठो अनुमोदति॥ ९॥
एवं कठिनत्थरणं उब्भारस्सट्ठमातिका।
पक्कमनंति निट्ठानं सन्निट्ठानं च नासनं॥ १०॥
[B.375] सवनं आसावच्छेदि सीमा सहुब्भारट्ठमी।
कतचीवरमादाय "न पच्चेस्सं" ति गच्छति॥ ११॥
तस्स तं कठिनुद्धारो होति पक्कमनन्तिको।
आदाय चीवरं याति निस्सीमे इदं चिन्तयि॥ १२॥
[N.284] "कारेस्सं न पच्चेस्सं" ति निट्ठाने कठिनुद्धारो।
आदाय निस्सीमं "नेव च पच्चेस्सं" ति मानसो॥ १३॥
तस्स तं कठिनुद्धारो सन्निट्ठानन्तिको भवे।
आदाय चीवरं याति निस्सीमे इदं चिन्तयि॥ १४॥
"कारेस्स न पच्चेस्सं" ति कयिरं तस्स नस्सति।
तस्स तं कठिनुद्धारो भवति नासनन्तिको॥ १५॥
आदाय याति "पच्चेस्सं" बहि कारेति चीवरं।
कतचीवरो सुणाति उब्भतं कठिनं तहिं॥ १६॥
तस्स तं कठिनुद्धारो भवति सवनन्तिको।
आदाय याति "पच्चेस्सं" बहि कारेति चीवरं॥ १७॥
कतचीवरो बहिद्धा नामेति कठिनुद्धारं।
तस्स तं कठिनुद्धारो सीमातिक्कन्तिको भवे॥ १८॥
आदाय याति "पच्चेस्सं बहि कारेति चीवरं।
कतचीवरो बहिद्धा पच्चेस्सं सम्भोति कठिनुद्धारं॥ १९॥

पाँच या पाँच से अधिक हो, उसी दिन कटा हो, गोल किया (समेटा) हुआ हो, सीमा के अन्तर्गत रहकर अनुमोदित किया गया हो।। ९।।

ऐसे इस 'कठिन' चीवर का प्रसारण कहलाता है।

'कठिन' के उद्धार (उत्पादन का मूल कारण) के भगवान् ने ये आठ नियम बनाये— १. प्रक्रमण, २. निष्ठान, ३. सन्निष्ठान, ४. नाश, ५. श्रवण, ६. आशावच्छेद, ७. सीमातिक्रमण एवं ८. सहोत्पत्ति।। १०।।

चीवर लेकर, 'वापस नहीं लौटूँगा'— यह सङ्कल्प कर चला आवास की सीमा के पार चले जाने वाले भिक्षु का **प्रक्रमणान्तिक कठिनोद्धार** कहलाता है।। ११–१२।।

चीवर लेकर "यहीं, बनवाऊँगा, वापस नहीं लौटूँगा'— यह सङ्कल्प कर आवास की सीमा से बाहर चले जाने वाले भिक्षु का **निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार** कहलाता है।।

नहीं ही लौटूँगा' यह मन में सङ्कल्प कर . **सन्निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार**...।। १३।।

चीवर लेकर सीमा से बाहर चले जाने पर यदि यह सोचता है कि यहीं बनवाऊँगा, वापस नहीं लौटूँगा तो उसका यह कठिनोद्धार **नाशनान्तिक** ..।। १४–१५।।

(इसी तरह आगे के कठिनोद्धार भी पीछे इसी स्कन्धक में आये आदायसप्तक, समादायसप्तक,

तस्स तं कठिनुद्धारो सह भिक्खूहि जायति।
आदाय च समादाय सत्त–सत्तविधा गति॥ २०॥
पक्कमनन्तिका नत्थि छक्के विप्पकते गति।
आदाय निस्सीमगतं ''कारेस्सं'' इति जायति॥ २१॥
निट्ठानं सन्निट्ठानं च नासनं च इमे तयो।
आदाय ''न पच्चेस्सं'' ति बहिसीमे करोमि ति॥ २२॥
निट्ठानं सन्निट्ठानं पि नासनं पि इदं तयो।
अनधिट्ठितेन नेवस्स हेट्ठा तीणि नयाविधि॥ २३॥
आदाय याति ''पच्चेस्सं'' बहिसी मे करोमि ति। [B.376]
''न पच्चेस्सं'' ति कारेति निट्ठाने कठिनुद्धारो॥ २४॥ [R.267]
सन्निट्ठानं नासनं च सवनसीमातिक्कमा।
सह भिक्खूहि जायेथ एवं पन्नरसं गति॥ २५॥
समादाय विप्पकता समादाय पुना तथा।
इमे ते चतुरो वारा सब्बे पन्नरसं विधि॥ २६॥
अनासाय च आसाय करणीयो च ते तयो। [N.285]
नयतो तं विजानेय्य तयो द्वादस द्वादस॥ २७॥
अ–पविलाना नेत्थ फासु पञ्चविधा तहिं।
पलिबोधापलिबोधा उद्दानं नयतो कतं ति॥ २८॥

इमम्हि खन्धके वत्थूनि दोळसकपेय्यालमुखानि एकसतं अट्ठारस॥

सत्तमं कठिनक्खन्धकं निट्ठितं॥

आदायषट्क, समादायषट्क, आदायपञ्चदशक, समादायपञ्चदशक प्रकरणों के आधार पर समझ लेना चाहिये।। १६–२६।।

चीवराशा तथा चीवरनिराशा तथा करणीय अकरणीय भेदों को भी आशाद्वादशक, निराशाद्वादशक, करणीय द्वादशक प्रकरणो के आधार पर समझना चाहिये।। २७।।

लेने का अधिकार छोडे हुए चीवर के विषय मे अप्रविलायन प्रकरण के आधार पर, तथा पॉच प्रकार के फासुविहार–चीवरो के विषय में, पाशुविहारपञ्चक प्रकरण के आधार पर एवं पलिबोध (विघ्न), अपलिबोध (अविघ्न) के विषय में पीछे आये पलिबोधापलिबोधकथा के आधार पर जानना सुखकर होगा।। २८।।

इस स्कन्ध में द्वादशकपेय्यालों के साथ एक सौ अट्ठारह वस्तुओं का वर्णन है।।

सातवाँ कठिनस्कन्धक समाप्त।।

८. चीवरक्खन्धकं

१. जीवकवत्थु

[N.296,B.377, B.268] १. तेन खो समयेन बुद्धो भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन वेसाली इद्धा चेव होति फीता च बहुजना च आकिण्णमनुस्सा च सुभिक्खा च; सत्त च पासादसहस्सानि सत्त च पासादसतानि सत्त च पासादा; सत्त च कूटागारसहस्सानि सत्त च कूटामारसतानि सत्त च कूटागारानि; सत्त च आरामसहस्सानि सत्त च आरामसतानि सत्त च आरामा; सत्त च पोक्खरणीसहस्सानि सत्त च पोक्खरणीसतानि सत्त च पोक्खरणियो; अम्बपाली च गणिका अभिरूपा होति दस्सनीया पासादिका परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागता, पदक्खा नच्चे च गीते च वादिते च, अभिसटा अत्थिकानं अत्थिकानं मनुस्सानं पञ्ञासाय च रत्तिं गच्छति; ताय च वेसाली भिय्योसोमत्ताय उपसोभति।

अथ खो राजगहको नेगमो वेसालिं आगमासि केनचिदेव करणीयेन। अद्दसा खो राजगहको नेगमो वेसालिं इद्धं चेव फीतं च बहुजनं च आकिण्णमनुस्सं च सुभिक्खं च; सत्त च पासादसहस्सानि सत्त च पासादसतानि सत्त च पासादे; सत्त च कूटागारसहस्सानि सत्त च कूटागारसतानि सत्त च कूटागारानि; सत्त च आरामसहस्सानि सत्त च आरामसतानि सत्त च आरामे; सत्त च पोक्खरणीसहस्सानि सत्त च पोक्खरणीसतानि सत्त च पोक्खरणियो; अम्बपालिं च गणिकं अभिरूपं दस्सनीयं पासादिकं परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतं, पदक्खं नच्चे च गीते च वादिते च, अभिसटं अत्थिकानं अत्थिकानं मनुस्सानं पञ्ञासाय च रत्तिं गच्छन्तिं, ताय च वेसालिं भिय्योसोमत्ताय उपसोभन्तिं।

२. अथ खो राजगहको नेगमो वेसालियं तं करणीयं तीरेत्वा पुनदेव राजगहं पच्चागञ्छि। येन राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा राजानं मागधं

---

८. चीवरस्कन्धक

१. जीवकवस्तु

१. उस समय भगवान् बुद्ध राजगृहस्थित वेणुवन के कलन्दकनिवाप विहार में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय वैशाली (नगरी) समृद्ध, सम्पन्न, मनुष्यसमूहों से आकीर्ण एवं धन धान्य से युक्त थी। वह सात हजार सात सौ सात प्रासादों से, सात हजार सात सौ सात कूटागारों से, सात हजार सात सौ सात उद्यानों से, सात हजार सात सौ सात पुष्करिणियों से शोभित थी। वहाँ की रहने वाली गणिका अम्बपाली भी, सुन्दर, नेत्रों को प्रिय लगने वाली, मन को लुभाने वाली एवं परम रूप–सौन्दर्य से समन्वित थी। वह नृत्य गीत वाद्य में विशेष दक्ष थी। वह चाहने वालों से एक रात्रि का पचास कार्षापण लेती थी। इस गणिका के कारण भी वैशाली की रमणीयता में चार चाँद लगे हुए थे।

उस समय राजगृह का कोई निगम–सभासद् किसी कार्यविशेष से वैशाली गया था। वह वैशाली के सौन्दर्य ...पूर्ववत्....वह उस पर मुग्ध होता हुआ अपना कार्य पूर्ण कर फिर राजगृह लौट आया।

२. तब वह राजगृह का निगम–सभासद जहाँ राजा मागध श्रेणिय बिम्बिसार थे, वहाँ गया। जाकर वह सभासद उनसे यों बोला–"देव! वैशाली नगरी तो अत्यन्त समृद्ध, सम्पन्न. ..पूर्ववत्...चार

सेनियं बिम्बिसारं एतदवोच—"वेसाली, देव, इद्धा चेव फीता च बहुजना च [B.378] आकिण्णमनुस्सा च सुभिक्खा च; सत्त च पासादसहस्सानि....पे०...ताय च वेसाली भिय्योसोमत्ताय उपसोभति। साधु, देव, मयं पि गणिकं वुट्ठापेय्यामा" ति। "तेन हि, भणे, तादिसिं कुमारिं जानाथ यं तुम्हे गणिकं वुट्ठापेय्याथा" ति। तेन खो पन समयेन राजगहे सालवती नाम कुमारी अभिरूपा होति दस्सनीया पासादिका परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागता। अथ खो राजगहको नेगमो सालवतिं कुमारिं गणिकं वुट्ठापेसि। अथ [R.269] खो सालवती गणिका नचिरस्सेव पदक्खा अहोसि नच्चे च गीते च वादिते च, अभिसटा अत्थिकानं अत्थिकानं मनुस्सानं पटिसतेन च रत्तिं गच्छति।

अथ खो सालवती गणिका नचिरस्सेव गब्भिनी अहोसि। अथ खो [N.287] सालवतिया गणिकाय एतदहोसि—"इत्थी खो गब्भिनी पुरिसानं अमनापा। सचे मं कोचि जानिस्सति 'सालवती गणिका गब्भिनी' ति, सब्बो मे सक्कारो परिहायिस्सति। यन्नूनाहं गिलानं पटिवेदेय्यं" ति। अथ खो सालवती गणिका दोवारिकं आणापेसि—"मा, भणे दोवारिका, कोचि पुरिसो पाविसि। यो च मं पुच्छति, 'गिलाना' ति पटिवेदेही" ति। "एवं, अय्ये", ति खो सो दोवारिको सालवतिया गणिकाय पच्चस्सोसि। अथ खो सालवती गणिका तस्स गब्भस्स परिपाकमन्वाय पुत्तं विजायि। अथ खो सालवती गणिका दासिं आणापेसि—"हन्द, जे, इमं दारकं कत्तरसुप्पे पक्खिपित्वा नीहरित्वा सङ्कारकूटे छड्डेही" ति। "एवं, अय्ये" ति खो सा दासी सालवतिया गणिकाय पटिस्सुत्वा तं दारकं कत्तरसुप्पे पक्खिपित्वा नीहरित्वा सङ्कारकूटे छड्डेसि।

३. तेन खो पन समयेन अभयो नाम राजकुमारो कालस्सेव राजुपट्ठानं गच्छन्तो

चान्द लगे हुए हैं। अच्छा हो, देव! हम भी अपने राजगृह नगर में कोई ऐसी ही रूप-सौन्दर्यसम्पन्न गणिका रखें। (राजा बोले—) "तो भाई! ऐसी कुमारी सुन्दरी खोज कर लाओ जिसे गणिका (नगरवधू) के रूप में रखा जा सके।" उस समय शालवती नामक कुमारी सुन्दर, नयनानन्दकरी, जनमनोह्लादिनी, परम रूप-सौन्दर्यसम्पन्न थी। उस निगमसभासद् ने राजाज्ञा से शालवती कुमारी को ही राजगृह की नगरवधू बना दिया। तब वह शालवती कुमारी कुछ ही समय में नृत्य, गीत एवं वाद्य कला में चतुर हो गयी। चाहने वाले मनुष्यों से वह सौ कार्षापण लेकर ही अपने पास आने देती थी।

वह शालवती गणिका कुछ समय बाद गर्भवती हो गयी। तब शालवती गणिका को यह विचार हुआ—"गर्भवती स्त्री लोगों को अप्रिय होती है। यदि कोई मेरे विषय में यह जान लेगा कि शालवती गर्भवती है तो उसके सामने मेरा अपमान होगा। तो क्यों न मैं अपने आप को रोगी घोषित कर दूँ।" तब उस गणिका ने अपने द्वारपाल से कहा—"अरे! देखो, कोई पुरुष हमारे घर में न घुसे। कोई पूछे तो कह देना कि शालवती रुग्ण है।" "अच्छा, आर्ये!" कहकर उस द्वारपाल ने उत्तर दिया। तब शालवती गणिका ने गर्भ पूर्ण होने के बाद एक पुत्र को जन्म दिया। शालवती ने दासी को बुलाकर आज्ञा दी—"अरी! इस शिशु को कूड़ेदानी में रखकर, बाहर ले जाकर कूड़े के ढेर पर फेंक आ।" "अच्छा, आर्ये" यों शालवती से कहकर दासी ने उस जन्मजात बालक को कूड़ेदानी में रखकर बाहर ले जाकर कूड़े के ढेर पर फेंक दिया।

३. उस समय अभय नामक राजकुमार समय से ही राजदर्बार में जा रहा था कि उसने उस

अद्दस तं दारकं काकेहि सम्परिकिण्णं, दिस्वान मनुस्से पुच्छि—"किं एतं, भणे, काकेहि सम्परिकिण्णं" ति? "दारको, देवा" ति। "जीवति, भणे, ति?" "जीवति, देवा" ति। "तेन हि, भणे, तं दारकं अम्हाकं अन्तेपुरं नेत्वा धातीनं देथ पोसेतुं" ति। "एवं, देवा," ति [B.379] खो ते मनुस्सा अभयस्स राजकुमारस्स पटिस्सुत्वा तं दारकं अभयस्स राजकुमारस्स अन्तेपुरं नेत्वा धातीनं अदंसु—'पोसेथा' ति। तस्स जीवती ति 'जीवको' ति नामं अकंसु। कुमारेन पोसापितो ति 'कोमारभच्चो' ति नामं अकंसु। अथ खो जीवको कोमारभच्चो नचिरस्सेव विञ्ञुतं पापुणि। अथ खो जीवको कोमारभच्चो येन अभयो राजकुमारो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा अभयं राजकुमारं एतदवोच—"का मे, देव, माता, को पिता" ति? "अहं पि खो ते, भणे जीवक, मातरं न जानामि; अपि चाहं ते पिता; मयासि पोसापितो" ति। अथ खो जीवकस्स कोमारभच्चस्स एतदहोसि—"इमानि खो राजकुलानि न सुकरानि असिप्पेन उपजीवितुं। यन्नूनाहं सिप्पं सिक्खेय्यं" ति।

४. तेन खो पन समयेन तक्कसिलायं दिसापामोक्खो वेज्जो पटिवसति। अथ खो [R.270] जीवको कोमारभच्चो अभयं राजकुमारं अनापुच्छा येन तक्कसिला तेन पक्कामि। अनुपुब्बेन येन तक्कसिला, येन सो वेज्जो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा तं वेज्जं एतदवोच—"इच्छामहं, आचरिय, सिप्पं सिक्खितुं" ति। "तेन हि, भणे जीवक, सिक्खस्सू" ति। अथ खो जीवको कोमारभच्चो बहुं च गण्हाति लहुं च गण्हाति सुट्ठु च उपधारेति, गहितं चस्स न सम्मुस्सति। अथ खो जीवकस्स कोमारभच्चस्स सत्तन्नं वस्सानं अच्चयेन एतदहोसि—

कूड़े के ढेर पर कौओं से घिरे बालक को देखकर अपने अङ्गरक्षकों से पूछा—"देखो तो इस कूड़े...के ढेर पर क्या पड़ा है जिसे कौए घेरे हुए है।" "देव! यह तो कोई जन्मजात बालक है।" "क्या यह जीवित है?" "हाँ, देव! जीवित है।" "तो तुम लोग इस बालक को हमारे अन्तःपुर में ले जाकर धात्रियों को सौंप दो कि वे इसका पालन–पोषण करें।" उन्होंने "यह जीवित है"—ऐसा सोचकर इसका 'जीवक' नाम रख दिया। कुमार के द्वारा पाला–पोसा गया इसलिये इसे 'कौमारभृत्य' भी कहने लगे। वह जीवक कौमारभृत्य कुछ ही समय में समझदार हो गया। एक दिन उस जीवक कौमारभृत्य ने अभय राजकुमार के पास जाकर पूछा—'देव! मेरी माता कौन है? और मेरा पिता कौन है?" "भणे जीवक! तुम्हारी माता के विषय में तो मैं कुछ नहीं जानता, हाँ, मै तुम्हारा पिता हूँ; क्योंकि मैंने तुम्हें पाला–पोसा है।" तब जीवक कौमारभृत्य को यह (विचार) हुआ—"ये ऐसे बड़े बडे राजपरिवार किसी शिल्प के ज्ञाता हुए विना ससम्मान रहने योग्य नहीं हैं। अतः मैं भी किसी न किसी शिल्प में पारङ्गत होऊँगा।"

४. उस समय तक्षशिला नगरी में कोई लोकप्रसिद्ध (दिसापामोक्ख) वैद्य रहते थे। तब वह जीवक कौमारभृत्य, अभय राजकुमार से विना पूछे, तक्षशिला की तरफ चल दिये। और क्रमशः तक्षशिला पहुँच कर जहाँ वैद्य रहते थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर उनसे प्रार्थना की—"आचार्य! मैं शिल्प (वैद्यविद्या) सीखना चाहता हूँ।" (वैद्य ने कहा—) "तो, जीवक! सीख लो।" एतदन्तर, जीवक गुरु से जो भी थोडा या बहुत सुनता था उसे भलीभाँति समझकर तत्काल स्मरण कर लेता था, यह स्मरण किया हुआ कभी नहीं भूलता था। यों सात वर्ष बीतने पर एक दिन कौमारभृत्य के मन में यह हुआ—"मैं थोड़ा या बहुत जो कुछ भी गुरुमुख से सुन पाया था, वह सबकुछ भलीभाँति समझते हुए

"अहं खो बहुं च गण्हामि लहुं च गण्हामि सुट्ठु च उपधारेमि, गहितं च मे न सम्मुस्सति, सत्त च मे वस्सानि अधीयन्तस्स, नयिमस्स सिप्पस्स अन्तो पञ्ञायति। कदा [N.288] इमस्स सिप्पस्स अन्तो पञ्ञायिस्सती" ति। अथ खो जीवको कोमारभच्चो येन सो वेज्जो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा तं वेज्जं एतदवोच–"अहं खो, आचरिय, बहुं च गण्हामि लहुं च गण्हामि सुट्ठु च उपधारेमि, गहितं च मे न सम्मुस्सति, सत्त च मे वस्सानि अधीयन्तस्स, नयिमस्स सिप्पस्स अन्तो पञ्ञायति। कदा इमस्स सिप्पस्स अन्तो पञ्ञायिस्सती" ति? "तेन हि, भणे जीवक, खणित्तिं अदाय तक्कसिलाय समन्ता योजनं आहिण्डित्वा यं किञ्चि अभेसज्जं पस्सेय्यासि तं आहरा' ति। "एवं, आचरिया" ति खो जीवको कोमार- [B.380] भच्चो तस्स वेज्जस्स पटिसुत्वा खणित्तिं आदाय तक्कसिलाय समन्ता योजनं आहिण्डन्तो न किञ्चि अभेसज्जं अद्दस। अथ खो जीवको, कोमारभच्चो येन सो वेज्जो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा तं वेज्जं एतदवोच–"आहिण्डन्तोम्हि, आचरिय, तक्कसिलाय समन्ता योजनं, न किञ्चि अभेसज्जं अद्दसं" ति। "सुसिक्खितोसि, भणे जीवक! अलं ते एत्तकं जीविकाया" ति जीवकस्स कोमारभच्चस्स परित्तं पाथेय्यं पादासि। अथ खो जीवको कोमारभच्चो तं परित्तं पाथेय्यं आदाय येन राजगहं तेन पक्कामि। अथ खो जीवकस्स कोमारभच्चस्स तं परित्तं पाथेय्यं अन्तरामग्गे साकेते परिक्खयं अगमासि। अथ खो जीवकस्स कोमारभच्चस्स एतदहोसि–"इमे खो मग्गा कन्तारा अप्पोदका अप्पभक्खा, न सुकरा अपाथेय्येन गन्तुं। यन्नूनाहं पाथेय्यं परियेसेय्यं" ति।

२. सेट्ठिभरियावत्थु

५. तेन खो पन समयेन साकेते सेट्ठिभरियाय सत्तवस्सिको सीसाबाधो होति। बहू महन्ता महन्ता दिसापामोक्खा वेज्जा आगन्त्वा नासक्खिंसु अरोगं कातुं। बहुं हिरञ्ञं आदाय

स्मरण कर चुका हूँ। उसे मैं कभी भूलूँगा नहीं। अब पढ़ते हुए मुझे सात वर्ष हो चले हैं। ऐसे शिल्प का कहीं अन्त भी नहीं दीखता। इसका अन्त कब होगा?" यह सोचकर जीवक गुरु (वैद्य जी) के पास गया और उनसे पूछा–"आचार्य! मैं थोड़ा या बहुत...पूर्ववत्....अन्त कब होगा?" (वैद्य जी बोले–) "तो, जीवक! खनती (खुरपी) लेकर तक्षशिला के चारों तरफ एक एक योजन तक घूमकर देखो और जहाँ तुम्हें ऐसी वनस्पति मिले जिसका किसी ओषधि के रूप में उपयोग न हो पावे, उसे उखाड़ लाओ।" "अच्छा, आचार्य!" कहकर जीवक कौमारभृत्य तक्षशिला के चारों तरफ....जिसका ओषधि रूप में प्रयोग न हो सकता हो। तब उसने पुनः लौटकर अपने आचार्य से निवेदन किया– "आचार्यप्रवर! मैं तो तक्षशिला के चारों तरफ एक–एक योजन तक घूम आया, परन्तु मुझे एक भी वनस्पति ऐसी न मिली जिसका किसी न किसी रोग के शमन हेतु ओषधिरूप में प्रयोग न हो सकता है।" (वैद्य बोले–) "तात जीवक! तब तो तुम बहुत कुछ सीख चुके। तुम्हारे लिये इतना ही सीखा गया शिल्प जीविकाहेतु पर्याप्त है।" कहकर उन्होंने जीवक को यात्रा मे उपयोग के लिये कुछ पाथेय (रास्ते मे किये जाने योग्य भोजन) देकर अपने घर लौटने की आज्ञा दी। तब उस जीवक कौमारभृत्य का वह पाथेय साकेत नगरी पहुँचने से पहले ही मार्ग में समाप्त हो गया। तब उसको यह विचार हुआ–"आगे तो यह रास्ता और भी बीहड़ एवं जनशून्य है। इसमे विना पाथेय के चलना बहुत कठिन है। निश्चय ही साथ में कुछ पाथेय की व्यवस्था करके मुझे आगे बढ़ना चाहिये।"

अगमंसु। अथ खो जीवको कोमारभच्चो साकेतं पविसित्वा मनुस्से पुच्छि—"को, भणे, [R.271] गिलानो, कं तिकिच्छामी" ति?"एतिस्सा, आचरिय, सेट्ठिभरियाय सत्तवस्सिको सीसाबाधो, गच्छ, आचरिय, सेट्ठिभरियं तिकिच्छाही" ति। अथ खो जीवको कोमारभच्चो येन सेट्ठिस्स गहपतिस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा दोवारिकं आणापेसि—"गच्छ, भणे दावारिक, सेट्ठिभरियाय पावद—'वेज्जो, अय्ये, आगतो, सो तं दट्ठुकामो'' ति।"एवं, आचरिया", ति खो सो दोवारिको जीवकस्स कोमारभच्चस्स पटिस्सुत्वा येन सेट्ठिभरिया तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा सेट्ठिभरियं एतदवोच—"वेज्जो, अय्ये, आगतो; सा तं दट्ठुकामो" ति।"कीदिसो, भणे दोवारिक, वेज्जो ति?""दहरको, अय्ये" ति। अलं, भणे दोवारिक, [B.381] किं मे दहरको वेज्जो करिस्सति! बहू महन्ता दिसापामोक्खा वेज्जो पि आगन्त्वा नासक्खिंसु अरोगं कातुं। बहुं हिरञ्ञं आदाय अगमंसू" ति। अथ खो सो दोवारिको येन जीवको कोमारभच्चो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा जीवकं कोमारभच्चं एतदवोच—"सेट्ठिभरिया, आचरिय, एवमाह—"अलं, भणे दोवारिक, किं मे दहरको वेज्जो करिस्सति? बहू महन्ता महन्ता दिसापामोक्खा वेज्जा पि आगन्त्वा नासक्खिंसु अरोगं कातुं। बहुं हिरञ्ञं [N.289] आदाय अगमंसू" ' ति।"गच्छ, भणे दोवारिक, सेट्ठिभरियाय पावद—'वेज्जो, अय्ये, एवमाह—मा किर, अय्ये, पुरे किञ्चि अदासि। यदा अरोगा होसि यदा यं इच्छेय्यासि तं दज्जेय्यासी" ' ति।"एवं, आचरिया" ति खो सो दोवारिको जीवकस्स कोमारभच्चस्स पटिस्सुत्वा—'मा किर, अय्ये, पुरे किञ्चि अदासि। यदा अरोगा होसि तदा यं इच्छेय्यासि तं दज्जेय्यासी" ति।"तेन हि, भणे दावारिका, वेज्जो आगच्छतू" ति।"एवं, अय्ये" ति खो सो दोवारिको सेट्ठिभरियाय पटिस्सुत्वा येन जीवको कोमारभच्चो तेनुपसङ्कमि,

---

२. श्रेष्ठिभार्यावस्तु

५. उस समय साकेत नगरी में किसी धनाढ्य श्रेष्ठी की भार्या सात वर्ष से भयङ्कर पीड़ादायक शिरोरोग से आक्रान्त थी। बहुत प्रसिद्ध प्रसिद्ध वैद्यों से चिकित्सा करायी गयी, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। वह श्रेष्ठी बहुत अधिक धन खर्च कर चुका था। तब जीवक ने साकेत मे प्रवेश कर लोगों से पूछताछ की कि यहाँ कोई ऐसी रोगी है जिसकी चिकित्सा कर उसे स्वस्थ कर सकूँ। तब लोगों ने जीवक को बताया—"आचार्य! अमुक श्रेष्ठी की भार्या को सात वर्ष से शिरोरोग है, जाओ, उसकी चिकित्सा कर सको तो करो।" तब जीवक ..उस श्रेष्ठी के घर पहुँचा। पहुँचकर द्वारपाल से कहा—"भो द्वारपाल! जाओ और श्रेष्ठी की भार्या से कहो—"द्वार पर एक वैद्य आये है, आपको (चिकित्सा हेतु) देखना चाहते है।' " "अच्छा! आचार्य!" कहकर वह द्वारपाल श्रेष्ठी भार्या के सम्मुख आया और बोला—"आर्ये! एक वैद्य आये हैं, आपका रोग देखना चाहते हैं।" "द्वारपाल! वह वैद्य (आयु से) कैसा है?" "आर्ये! अभी तो युवक ही लगता है।" "तो जाने दे द्वारपाल! युवक वैद्य मेरे रोग की क्या चिकित्सा करेगा! जब कि बड़े-बड़े लोकप्रसिद्ध वैद्य भी मेरी चिकित्सा न कर सके। और बहुत सा धन भी व्यर्थ ही लेकर चले गये।" तब वह द्वारपाल पुनः द्वार पर आया और जीवक...से यो बोला—"आचार्य! श्रेष्ठी की भार्या ने यह कहा है ..पूर्ववत्...। तब जीवक ने द्वारपाल से कहा—द्वारपाल तुम एक बार फिर जाओ, और श्रेष्ठी की भार्या से कहो—'वैद्य कहते हैं, आर्ये! पहले कुछ भी न देना। जब आप नीरोग हो जाँय तो जो इच्छा हो दे देना।" "अच्छा, आचार्य"—यों द्वारपाल जीवक को उत्तर दे, श्रेष्ठी की भार्या के पास पुनः गया और बोला—"आर्ये!. .जो इच्छा हो वह दे देना।"

उपसङ्कमित्वा जीवकं कोमारभच्चं एतदवोच—"सेट्ठिभरिया तं, आचरिय, पक्कोसती" ति।

अथ खो जीवको कोमारभच्चो येन सेट्ठिभरिया तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा सेट्ठिभरियाय विकारं सल्लक्खेत्वा सेट्ठिभरियं एतदवोच—"पसतेन मे, अय्ये, सप्पिना अत्थो" ति। अथ खो सेट्ठिभरिया जीवकस्स कोमारभच्चस्स पसतं सप्पिं दापेसि। अथ खो जीवको कोमारभच्चो तं पसतं सप्पिं नानाभेसज्जेहि निप्पचित्वा सेट्ठिभरियं मञ्चके उत्तानं निपज्जापेत्वा नत्थुतो अदासि। अथ खो तं सप्पिं नत्थुतो दिन्नं मुखतो उग्गञ्छि। अथ खो सेट्ठिभरिया पटिग्गहे निट्ठुभित्वा दासिं आणापेसि—"हन्द, जे, इमं सप्पिं पिचुना गण्हाही" ति। अथ खो जीवकस्स कोमारभच्चस्स एतदहोसि—"अच्छरियं याव लूखायं घरणी, यत्र हि नाम इमं छड्डुनीयधम्मं सप्पिं पिचुना गाहापेस्सति। बहुकानि च मे महग्घानि महग्घानि [R.272] भेसज्जानि उपगतानि। किं पि मायं किञ्चि देय्यधम्मं दस्सती" ति! अथ खो सेट्ठिभरिया जीवकस्स कोमारभच्चस्स विकारं सल्लक्खेत्वा जीवकं कोमारभच्चं एतदवोच—[B.382] "किस्स त्वं, आचरिय, विमनोसी" ति? इध मे एतदहोसि—"अच्छरियं याव लूखायं घरणी, यत्र हि नाम इमं छड्डुनीयधम्मं सप्पिं पिचुना गाहापेस्सति। बहुकानि च मे महग्घानि महाग्घानि भेसज्जानि उपगतानि। किं पि मायं किञ्चि देय्यधम्मं दस्सती" ति। "मयं खो, आचरिय, अगारिका नाम; उपजानामेतस्स संयमस्स। वरमेतं सप्पि दासानं वा कम्मकरानं वा पादब्भञ्जनं वा पदीपकरणे वा आसित्तं। मा त्वं, आचरिय, विमनो अहोसि। न ते देय्यधम्मो हायिस्सती" ति। अथ खो जीवको कोमारभच्चो सेट्ठिभरियाय सत्तवस्सिकं सीसाबाधं एकेनेव नत्थुकम्मेन अपकड्ढि। अथ खो सेट्ठिभरिया अरोगा समाना जीवकस्स

"द्वारपाल! यदि ऐसी बात है तो वैद्य को ले आओ।" "अच्छा, आर्य!" कहकर जीवक कौमारभृत्य को 'आचार्य! श्रेष्ठी की भार्या आपको घर में बुला रही हैं"—कहकर ससम्मान घर में ले आया।

तब जीवक....श्रेष्ठी की भार्या के पास गये। उसके रोग का निदान समझकर उससे यों बोले —"आर्य! मुझे (ओषधि के लिये) एक पसर घी की आवश्यकता है।" श्रेष्ठी की भार्या ने एक पसर घी दिलवा दिया। तब जीवक.....ने उस एक पसर घी में नाना प्रकार की विशिष्ट ओषधियाँ पका कर श्रेष्ठी की भार्या को सीधा चित्त (उतान) लेटाकर नथुनों (नासाछिद्रों) में डाला। तब वह नाक में डाला हुआ घी कुछ ही देर में मुख से निकलने लगा। श्रेष्ठी की भार्या ने, पीकदान (परिग्गह) में थूक कर, दासी को आदेश दिया—"अरी दासि! इसे रूई से उठाकर पात्र में रख ले।" तब जीवक....को विचार हुआ—"अरे! यह गृहिणी तो अत्यन्त कृपण है! यह तो बाहर फेंकने योग्य घी को पात्र में रखवा रही है। मैंने जो अत्यधिक मँहगी ओषधियाँ इस घी में मिलायी है; इनकी इसे कोई चिन्ता ही नहीं। ऐसी कृपण महिला मेरी चिकित्सा का क्या प्रतिदान देगी!" तब उस श्रेष्ठी की भार्या ने जीवक...की मुखाकृति से उसके मनोभावों को पहचान कर उनसे पूछा—'आचार्य! आप इतने उदास (विमना) क्यों हो गये?" (जीवक ने कहा—) "मुझे यह विचार हो रहा था कि यह गृहिणी....क्या प्रतिदान देगी?" (भार्या ने कहा—) "आचार्य! हमलोग गृहस्थ हैं। हम लोग गृहस्थ के उपयोग में आने वाली प्रत्येक वस्तु का महत्त्व समझते है। यह घी अभी भी दासों कर्मकरो के पैरों की अभ्यङ्ग (मालिश) में या दीपक जलाने मे काम मे आ सकता है। आप इसके कारण उदास न होइये। आपके लिये जो देय है उसमे कोई कमी नहीं होगी।" यों जीवक....ने उस श्रेष्ठि भार्या का सात वर्ष का पुराना रोग एक मात्रा नस्य कर्म से निवृत्त कर दिया। तब उस भार्या ने नीरोग होकर जीवक....को चार हजार दिये। पुत्र ने—'मेरी

कोमारभच्चस्स चत्तारि सहस्सानि पादासि। पुत्तो—"माता मे अरोगा ठिता" ति चत्तारि [N.290] सहस्सानि पादासि। सुणिसा—"सस्सु मे अरोगा ठिता" ति चत्तारि सहस्सानि पादासि। सेट्ठि गहपति—"भरिया मे अरोगा ठिता" ति चत्तारि सहस्सानि पादासि दासं दासिं च अस्सरथं च।

अथ खो जीवको कोमारभच्चो तानि सोळसहस्सानि आदाय दासं च दासिं च अस्सरथं च येन राजगहं तेन पक्कामि। अनुपुब्बेन येन राजगहं येन अभयो राजकुमारो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा अभयं राजकुमारं एतदवोच—"इदं मे, देव, पठमकम्मं सोळससहस्सानि दासो च दासी च अस्सरथो च। पटिग्गण्हातु मे देवो पोसावनिकं" ति। "अलं, भणे जीवक; तुय्हमेव होतु। अम्हाकं येव अन्तेपुरे निवेसनं मापेही" ति। "एवं, देवा" ति खो जीवको कोमारभच्चो अभयस्स राजकुमारस्स पटिस्सुत्वा अभयस्स राजकुमारस्स अन्तेपुरे निवेसनं मापेसि।

३. बिम्बिसारराजवत्थु

६. तेन खो पन समयेन रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स भगन्दलाबाधो होति। साटका लोहितेन मक्खियन्ति। देवियो दिस्वा उप्पण्डेन्ति—"उतुनी दानि देवो, पुप्फं देवस्स उप्पन्नं, नचिरं देवो विजायिस्सती" ति। तेन राजा मङ्कु होति। अथ खो राजा [B.383] मागधो सेनियो बिम्बिसारो अभयं राजकुमारं एतदवोच—"मय्हं खो, भणे अभय, तादिसो आबाधो, साटका लोहितेन मक्खियन्ति, देवियो मं दिस्वा उप्पण्डेन्ति—'उतुनी दानि देवो, पुप्फं देवस्स उप्पन्नं, नचिरं देवो विजायिस्सती' ति। इङ्घ, भणे अभय, तादिसं

माता निरोग हो गयी'—यह सोचकर चार हजार दिये। पुत्रवधू ने भी 'मेरी सास नीरोग हो गयी'— यह सोचकर चार हजार दिये। श्रेष्ठी गृहपति ने भी--'मेरी पत्नी नीरोग हो गयी'—यह सोचकर प्रसन्न हो, दास दासी एवं घोडे–जुते एक रथ के साथ चार हजार (कार्षापण) दिये।

तब वह जीवक उन सोलह हजार कार्षापणों को तथा साथ में दास–दासी तथा घोड़े–जुते रथ को लेकर राजगृह की तरफ चल दिया। क्रमशः राजगृह पहुँचकर अभय राजकुमार के घर जाकर उससे यों बोला—"देव! ये सोलह हजार एवं दास–दासी तथा घोड़े जुता यह रथ मेरे प्रथम कार्य का फल है। इसे देव मेरे पालन–पोषण मे हुए खर्च के बदले में (पोसावनिक) स्वीकार करें।" (अभय बोले–) "रहने दो, जीवक! इसे तुम अपने पास ही रखो। हमारे ही घर की सीमा (अन्तःपुर) में तुम इनसे अपना नया भवन बनवा लो।" "अच्छा, देव !" कहकर जीवक ने अभय राजकुमार के भवन की सीमा के अन्तर्गत ही अपना नया भवन बनवा लिया।

३. बिम्बिसारवस्तु

६. उस समय राजा मागध श्रेणिय बिम्बिसार को भगन्दर रोग हो गया था। पहने हुए वस्त्र रक्तरञ्जित हो जाते थे। रानियाँ इसे देखकर राजा से परिहास करतीं—देव! 'ऋतुमती' (रजस्वला) हो गये है। आपको गर्भपुष्प प्रस्फुटित हो गया है। शीघ्र ही आप बालक को जन्म देंगे।" इससे राजा सङ्कुचित होकर मूक रह जाता था। तब राजा बिम्बिसार ने अभय राजकुमार से कहा—"राजकुमार! हमें ऐसा रोग हो गया है कि उससे रक्त बहने पर, वस्त्र रक्तरञ्जित हो जाते है। रानियाँ परिहास करती है। तो भणे अभय! ऐसा कोई वैद्य ढूँढो जो मेरी चिकित्सा में समर्थ हो।" (अभय बोला–)

वेज्जं जानाहि यो मं तिकिच्छेय्या'' ति। ''अयं, देव, अम्हाकं जीवको वेज्जो तरुणो भद्रको। सो देवं तिकिच्छिस्सती'' ति। ''तेन हि, भणे अभय, जीवकं वेज्जं [R.273] आणापेहि; सो मं तिकिच्छिस्सती'' ति। ''एवं, देवा'', ति खो जीवको कोमारभच्चो अभयस्स राजकुमारस्स पटिस्सुत्वा नखेन भेसज्जं आदाय येन राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा राजानं मागधं सेनियं बिम्बिसारं एतदवोच—''आबाधं ते, देव, पस्सामा'' ति? अथ खो जीवको कोमारभच्चो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स भगन्दलाबाधं एकेनेव आलेपेन अपकड्ढि। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो अरोगो समानो पञ्च इत्थिसतानि सब्बालङ्कारं विभूसापेत्वा ओमुञ्चापेत्वा पुञ्जं कारापेत्वा जीवकं कोमारभच्चं एतदवोच—''एतं, भणे जीवक, पञ्चन्नं इत्थिसतानं सब्बालङ्कारं तुय्हं होतू'' ति। ''अलं, देव, अधिकारं मे देवो सरतू'' ति। ''तेन हि, भणे जीवक, मं उपट्ठह, इत्थागारं च, बुद्धप्पमुखं च भिक्खुसङ्घं'' ति। ''एवं, देवा'' ति खो जीवको [N.291] कोमारभच्चो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स पच्चस्सोसि॥

४. राजगहसेट्ठिवत्थु

७. तेन खो पन समयेन राजगहकस्स सेट्ठिस्स सत्तवस्सिको सीसाबाधो होति। बहू महन्ता महन्ता दिसापामोक्खा वेज्जा आगन्त्वा नासक्खिंसु अरोगं कातुं। बहुं हिरञ्ञं आदाय अगमंसु। अपि च, वेज्जेहि पच्चक्खातो होति। एकच्चे वेज्जा एवमाहंसु—''पञ्चमं दिवसं सेट्ठि गहपति कालं करिस्सती'' ति। एकच्चे वेज्जा एवमाहंसु—''सत्तमं दिवसं सेट्ठि गहपति कालं करिस्सती'' ति। अथ खो राजगहकस्स नेगमस्स एतदहोसि—[B.384]

''देव! ऐसा कुशल वैद्य तो हमारे ही घर में है। जिसका नाम जीवक .है, जो अभी तरुण भी है और सहृदय भी। वह आप की चिकित्सा कर देगा।'' ''तो राजकुमार! जीवक वैद्य को आज्ञा दो कि वह मेरी चिकित्सा करे।'' तब अभय राजकुमार ने जीवक. .वैद्य को आज्ञा दी—''जाओ, जीवक! राजा की चिकित्सा करो।'' ''अच्छा, देव!'' कहकर जीवक कौमारभृत्य नख में एक विशिष्ट ओषधि ले कर राजा मगध बिम्बिसार के पास गया और बोला—''देव! मैं पहले आप का रोग देखना चाहता हूँ।'' तब जीवक ने राजा मागध बिम्बिसार का वह भगन्दर रोग एक ही बार के लेप में निकाल बाहर किया। तब राजा. .ने अपने को नीरोग एवं स्वस्थ मानते हुए पाँच सौ स्त्रियो को सभी अलङ्कारों से भूषित कर फिर उनके अलङ्कारो को उतरवा कर उनको एकत्र कर जीवक ..को देते हुए कहा—''ये सब आभूषण तुम्हारे हैं।'' ''देव! मेरे लिये तो यही बहुत है कि मेरे इस कृत्य के कारण आप मुझे स्मरण करते रहें।'' ''तो जीवक! आज से मेरे यहाँ (राजवैद्य के रूप मे) कार्य करते हुए मेरी, मेरे अन्तःपुर के तथा बुद्धप्रमुख भिक्षुसङ्घ के स्वास्थ्य की देखभाल करने का भार तुम पर रहेगा।'' ''अच्छा, देव'' कहकर जीवक....ने राजा...को आश्वासन दिया।।

४. राजगृहश्रेष्ठिवस्तु

७. उस समय राजगृह का कोई श्रेष्ठी सात वर्ष से शिरोरोग से पीडित था। उसे बडे–बडे वैद्य भी अपनी चिकित्सा से स्वस्थ नहीं कर पाये। जबकि उसका इस रोग के कारण उन वैद्यों को देने में बहुत धन खर्च हो गया। अपितु वैद्यों ने उसके रोग को असाध्य घोषित कर दिया। उनमें से कुछ वैद्यो ने कहा—'इस श्रेष्ठी का आज से पॉचवे दिन देहपात (मृत्यु) हो जायगा।' और कुछ ने

"अयं खो सेट्ठि गहपति बहूपकारो रञ्ञो चेव नेगमस्स च। अपि च, वेज्जेहि पच्चक्खातो। एकच्चे वेज्जा एवमाहंसु—'पञ्चमं दिवसं सेट्ठि गहपति कालं करिस्सती' ति। एकच्चे वेज्जा एवमाहंसु—'सत्तमं दिवसं सेट्ठि गहपति कालं करिस्सती' ति। अयं च रञ्ञो जीवको वेज्जो तरुणो भद्रको। यन्नून मयं राजानं जीवकं वेज्जं याचेय्याम सेट्ठिं गहपतिं तिकिच्छितुं" ति। अथ खो राजगहको नेगमो येन राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा राजानं मागधं सेनियं बिम्बिसारं एतदवोच—"अयं, देव, सेट्ठि गहपति बहूपकारो देवस्स चेव नेगमस्स च; अपि च, वेज्जेहि पच्चक्खातो। एकच्चे वेज्जा एवमाहंसु—'पञ्चमं दिवसं सेट्ठि गहप.ति कालं करिस्सती' ति। एकच्चे वेज्जा एवमाहंसु—'सत्तमं दिवसं सेट्ठि गहपति [R.274] कालं करिस्सती' ति। साधु देवो जीवकं वेज्जं आणापेतु सेट्ठिं गहपतिं तिकिच्छितुं" ति।

अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो जीवकं कोमारभच्चं आणापेसि—"गच्छ, भणे जीवक, सेट्ठिं गहपतिं तिकिच्छाही" ति। "एवं, देवा" ति खो जीवको कोमारभच्चो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स पटिस्सुत्वा येन सेट्ठि गहपति तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा सेट्ठिस्स गहपतिस्स विकारं सल्लक्खेत्वा सेट्ठिं गहपतिं एतदवोच—"सचे त्वं, गहपति, अरोगो भवेय्यासि किं मे अस्स देय्यधम्मो" ति? "सब्बं सापतेय्यं च ते, आचरिय, होतु, अहं च ते दासो" ति। "सक्खिस्ससि पन त्वं, गहपति, एकेन पस्सेन सत्तमासे निपज्जितुं" ति? "सक्कोमहं, आचरिय, एकेन पस्सेन सत्तमासे निपज्जितुं" ति। "सक्खिस्ससि पन त्वं, गहपति, दुतियेन पस्सेन सत्तमासे निपज्जितुं" ति? "सक्कोमहं, आचरिय, दुतियेन पस्सेन सत्तमासे निपज्जितुं" ति। "सक्खिस्ससि पन त्वं, गहपति, उत्तानो सत्तमासे निपज्जितुं" ति? "सक्कोमहं, आचरिय, उत्तानो सत्तमासे निपज्जितुं" ति।

कहा—'इस श्रेष्ठी का आज से सातवें दिन देहपात हो जायगा।' तब राजगृहवासी नैगमों के मन में यह विचार हुआ—"यह श्रेष्ठी गृहपति राजा और हम सब के लिये अत्यधिक उपकारक (उपयोगी) है। इसके रोग को वैद्यों ने असाध्य बता दिया है। उनमें से कुछ ने....पूर्ववत्....। राजा का यह तरुण वैद्य जीवक अच्छा है। क्यों न हम लोग राजा....बिम्बिसार से इस श्रेष्ठी की चिकित्सा के लिये जीवक वैद्य को माँग लें।" तब उनमें से निगम-सभासद राजा के पास गया और बोला—"यह श्रेष्ठी गृहपति . पूर्ववत्....आप इस श्रेष्ठी की चिकित्सा के लिये जीवक वैद्य को आज्ञा दे दे।"

तब राजा ने जीवक वैद्य को उक्तश्रेष्ठी की चिकित्सा के लिये आदेश दिया। जीवक वैद्य ने "अच्छा, देव!" कहकर राजा की आज्ञा स्वीकार की। वह श्रेष्ठी गृहपति के आवास पर गया और उसके रोग का समीक्षण कर श्रेष्ठी से यों बोला—"गृहपति! यदि तुम इस रोग से मुक्त हो जाओ तो मुझे पारिश्रमिक के रूप में क्या दोगे?" "आचार्य! मेरी समग्र सम्पत्ति आप की हो जायगी। मैं जीवनपर्यन्त आप का दास बन जाऊँगा।" "तो क्या गृहपति! तुम सात मास तक निरन्तर एक करवट से लेटे रह सकते हो?" "हाँ, आचार्य!. ..रह सकता हूँ।" "तो क्या, गृहपति! तुम दूसरी करवट से भी सात मास तक निरन्तर लेटे रह सकते हो?" "हाँ, आचार्य! रह सकता हूँ।" "तो क्या, गृहपति! तुम सात मास तक उतान (सीधे, चित) लेटे रह सकते हो?" "हाँ, आचार्य .रह सकता हूँ।"

अथ खो जीवको कोमारभच्चो सेट्ठिं गहपतिं मञ्चके निपज्जापेत्वा मञ्चके सम्बन्धित्वा सीसच्छविं उप्पाटेत्वा सिब्बिनिं विनामेत्वा द्वे पाणके नीहरित्वा महाजनस्स [N.292, B.385] दस्सेसि— पस्सेय्याथ इमे द्वे पाणके, एकं खुद्दकं एकं महल्लकं। ये ते आचरिया एवमाहंसु— 'पञ्चमं दिवसं सेट्ठि गहपति कालं करिस्सती' ति—तेहायं महल्लको पाणको दिट्ठो। पञ्चमं दिवसं सेट्ठिस्स गहपतिस्स मत्थलुङ्गं परियादियिस्सति। मत्थलुङ्गस्स परियादाना सेट्ठि गहपति कालं करिस्सति। सुदिट्ठो तेहि आचरियेहि। ये ते आचरिया एवमाहंसु—'सत्तमं दिवसं सेट्ठि गहपति कालं करिस्सती' ति—तेहायं खुद्दको पाणको दिट्ठो। सत्तमं दिवसं सेट्ठिस्स गहपतिस्स मत्थलुङ्गं परियादियिस्सति। मत्थलुङ्गस्स परियादाना सेट्ठि गहपति कालं करिस्सति। सुदिट्ठो तेहि आचरियेही'' ति। सिब्बिनिं सम्पटिच्छादेत्वा सीसच्छविं सिब्बेत्वा आलेपं अदासि।

अथ खो सेट्ठि गहपति सत्ताहस्स अच्चयेन जीवकं कोमारभच्चं एतदवोच—''नाहं, आचरिय, सक्कोमि एकेन पस्सेन सत्तमासे निपज्जितुं'' ति। ''ननु मे त्वं, गहपति, पटिस्सुणि— 'सक्कोमहं, आचरिय, एकेन पस्सेन सत्तमासे निपज्जितुं' '' ति? ''सच्चाहं, आचरिय, पटिस्सुणिं, अपाहं मरिस्सामि, नाहं सक्कोमि एकेन पस्सेन सत्तमासे निपज्जितुं'' ति। ''तेन हि त्वं, गहपति, दुतियेन पस्सेन सत्तमासे निपज्जाही'' ति। अथ खो सेट्ठि गहपति सत्ताहस्स अच्चयेन जीवकं कोमारभच्चं एतदवोच—''नाहं, आचरिय, सक्कोमि दुतियेन पस्सेन [R.275] सत्तमासे निपज्जितुं'' ति। ''ननु मे त्वं, गहपति, पटिस्सुणि—सक्कोमहं, आचरिय, दुतियेन पस्सेन सत्तमासे निपज्जितुं'' ति? ''सच्चाहं, आचरिय, पटिस्सुणिं, अपाहं मरिस्सामि, नाहं, आचरिय, सक्कोमि दुतियेन पस्सेन सत्तमासे निपज्जितुं'' ति। ''तेन हि त्वं, गहपति, उत्तानो सत्तमासे निपज्जाही'' ति। अथ खो सेट्ठि गहपति सत्ताहस्स अच्चयेन जीवकं कोमारभच्चं एतदवोच—''नाहं, आचरिय, सक्कोमि उत्तानो सत्तमासे निपज्जितुं'' ति। ''ननु

तब जीवक कौमारभृत्य ने श्रेष्ठी गृहपति को मञ्च पर लिटा कर, मञ्च से बाँध कर, शिर की त्वचा को फाड़कर, खोपड़ी (कपाल) खोलकर, चिमटी से दो कीड़े वहाँ से निकालकर उपस्थित लोगो को दिखाये—''देखो! ये दो कीड़े हैं—एक छोटा और एक बडा। जिन वैद्यों ने कहा था कि श्रेष्ठी का पाँचवें दिन देहपात हो जायगा, उन्होंने इनमें से बड़ा कीड़ा ही देखा था। (उसे देखकर वे समझ गये थे कि) पाँचवें दिन यह कीड़ा श्रेष्ठी के मस्तिष्क को काट लेगा, उससे श्रेष्ठी का देहपात सुनिश्चित है। उन वैद्यों का निदान ठीक ही था। तथा जिन वैद्यों ने कहा था कि श्रेष्ठी का सातवे दिन देहपात हो जायगा, उन्होंने यह छोटा कीड़ा देखा था। (उसे देखकर वे समझ गये थे कि) सातवे दिन यह कीड़ा श्रेष्ठी के मस्तिष्क को काट लेगा, इसके मस्तिष्क के काट लेने से श्रेष्ठी का देहपात हो जाता। यों उन वैद्यों ने भी निदान ठीक ही किया था।'' तब जीवक ने खोपड़ी को पुनः जोड़कर, सिलकर लेप (मलहम) लगा दी।

तब श्रेष्ठी गृहपति ने सप्ताह बीतने पर, जीवक....से कहा—''आचार्य! अब मै अधिक काल तक इस करवट नहीं लेट पाऊँगा।'' ''अरे! तुमने प्रतिज्ञा की थी कि सात मास तक एक करवट लेटा रहूँगा?'' ''हाँ, आचार्य! ऐसा मैंने कहा तो अवश्य था परन्तु अब मैं मर भले ही जाऊँ पर इस करवट नहीं लेटा रह सकता।'' ''तो ठीक है, गृहपति! तुम दूसरी करवट से लेट जाओ।'' तब श्रेष्ठी गृहपति

मे त्वं, गहपति, पटिस्सुणि—'सक्कोमहं, आचरिय, उत्तानो सत्तमासे निपज्जितुं' '' ति? ''सच्चाहं, आचरिय, पटिस्सुणिं, अपाहं मरिस्सामि, नाहं सक्कोमि उत्तानो सत्तमासे निपज्जितुं'' ति। ''अहं चे तं, गहपति, न वदेय्यं, एत्तकं पि त्वं न निपज्जेय्यासि, अपि च पटिकच्चेव [B.386] मया ञातो—'तीहि सत्ताहेहि सेट्ठि गहपति अरोगो भविस्सती'' ति। उट्ठेहि, गहपति, अरोगोसि। जानासि किं मे देय्यधम्मो'' ति? ''सब्बं सापतेय्यं च ते, आचरिय, होतु, अहं च ते दासो'' ति। ''अलं, गहपति, मा मे त्वं सब्बं सापतेय्यं अदासि, मा च मे दासो। रञ्ञो सतसहस्सं देहि, मय्हं सतसहस्सं'' ति। अथ खो सेट्ठि गहपति अरोगो समानो रञ्ञो सतसहस्सं अदासि, जीवकस्स कोमारभच्चस्स सतसहस्सं।

५. सेट्ठिपुत्तवत्थु

८. तेन खो पन समयेन वाराणसेय्यकस्स सेट्ठिपुत्तस्स मोक्खचिकाय कीळन्तस्स [N.293] अन्तगण्ठाबाधो होति, येन यागु पि पीता न सम्मा परिणामं गच्छति, भत्तं पि भुत्तं न सम्मा परिणामं गच्छति, उच्चारो पि पस्सावो पि न पगुणो। सो तेन किसो होति लूखो दुब्बण्णो उप्पण्डुप्पण्डुकजातो धमनिसन्थतगत्तो। अथ खो बाराणसेय्यकस्स सेट्ठिस्स एतदहोसि—''मय्हं खो पुत्तस्स तादिसो आबाधो, येन यागु पि पीता न सम्मा परिणामं गच्छति, भत्तं पि भुत्तं न सम्मा परिणामं गच्छति, उच्चारो पि पस्सावो पि न पगुणो। सो तेन किसो लूखो दुब्बण्णो उप्पण्डुप्पण्डुकजातो धमनिसन्थतगत्तो। यन्नूनाहं राजगहं गन्त्वा राजानं जीवकं वेज्जं याचेय्यं पुत्तं मे तिकिच्छितुं'' ति। अथ खो बाराणसेय्यको सेट्ठि राजगहं गन्त्वा येन राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा राजानं मागधं सेनियं बिम्बिसारं एतदवोच—''मय्हं खो, देव, पुत्तस्स तादिसो आबाधो, येन यागु पि पीता न सम्मा परिणामं गच्छति, भत्तं पि भुत्तं न सम्मा परिणामं गच्छति, उच्चारो पि

ने सप्ताह बीतने पर....पूर्ववत्. उतान (चित) सात मास लेटो। तब श्रेष्ठी गृहपति सात दिन उतान लेटने के बाद फिर वैद्य जी से बोला--''आचार्य! मैं मर भले ही जाऊँ, परन्तु अब इससे अधिक समय तक उतान भी नहीं लेट पाऊँगा।'' तब जीवक बोले--''गृहपति! यदि मैंने सात मास की लम्बी अवधि लेटने की न रखी होती तो तूँ इतना भी नहीं लेटता; परन्तु मैं जानता था कि तूँ इस इक्कीस दिन की अवधि मे ही स्वस्थ हो जायगा। उठो, गृहपति! अब तुम स्वस्थ हो गये हो। जानते हो, तुम्हें मेरा क्या पारिश्रमिक देना है?'' श्रेष्ठी ने कहा—''आचार्य! मेरा सब धन आप का, अब मै आपका दास हूँ।'' ''श्रेष्ठिन्! अपना सब धन मुझे न दो, केवल एक सौ हजार मुद्रा राजा को दे दो तथा एक सौ हजार मुझे दे दो।'' तब गृहपति ने अपने को स्वस्थ देखकर राजा तथा जीवक को एक–एक लाख मुद्राएँ भेंट चढ़ायीं।

५. श्रेष्ठिपुत्रवस्तु

८ उस समय वाराणसी के नगर सेठ (श्रेष्ठी) के पुत्र को मोक्खचिका (शिर के बल चक्कर काटना) के कारण आँतो मे ग्रन्थि–रोग हो गया। जिसके कारण यागू जैसा पेय पदार्थ पीकर भी वह पचा नहीं पाता था। खाया हुआ साधारण भात भी ठीक से नहीं पचता था। तथा मल–मूत्र भी ठीक से नहीं हो पाता था। इस कारण वह इतना दुर्बल, रूक्ष, दुर्वर्ण हो गया था कि उसके शरीर की एक एक नस (स्नायु=धमनी) दिखायी देती थी। तब वाराणसी के नगरसेठ ने यह सोचा—मेरे पुत्र का ऐसा

पस्सावो पि न पगुणो। सो तेन किसो लूखो दुब्बण्णो उप्पण्डुप्पण्डुकजातो धमनिसन्थतगत्तो। साधु देवो जीवकं वेज्जं आणापेतु पुत्तं मे तिकिच्छितुं'' ति [R.276]

अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो जीवकं कोमारभच्चं आणापेसि—''गच्छ, भणे जीवक, बाराणसिं गन्त्वा बाराणसेय्यकं सेट्ठिपुत्तं तिकिच्छाही'' ति। ''एवं, देवा'', ति खो जीवको कोमारभच्चो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स पटिस्सुत्वा बाराणसिं गन्त्वा येन बाराणसेय्यको सेट्ठिपुत्तो तेनुपङ्कमि, उपसङ्कमित्वा बाराणसेय्यकस्स [B.387] सेट्ठिपुत्तस्स विकारं सल्लक्खेत्वा जनं उस्सारेत्वा तिरोकरणियं परिक्खिपित्वा थम्भे उब्बन्धित्वा भरियं पुरतो ठपेत्वा उदरच्छविं उप्पाटेत्वा अन्तगण्ठिं नीहरित्वा भरियाय दस्सेसि—''पस्स ते सामिकस्स आबाधं, इमिना यागु पि पीता न सम्मा परिणामं गच्छति, भत्तं पि भुत्तं न सम्मा परिणामं गच्छति, उच्चारो पि पस्सावो पि न पगुणो; इमिनायं किसो लूखो दुब्बण्णो उप्पण्डुप्पण्डुकजातो धमनिसन्थतगत्तो'' ति। अन्तगण्ठिं विनिवेठेत्वा अन्तानि पटिपवेसेत्वा उदरच्छविं सिब्बेत्वा आलेपं अदासि। अथ खो बाराणसेय्यको सेट्ठिपुत्तो नचिरस्सेव अरोगो अहोसि। अथ खो बाराणसेय्यको सेट्ठि—'पुत्तो मे अरोगो ठितो' ति जीवकस्स कोमारभच्चस्स सोळससहस्सानि पादासि। अथ खो जीवको कोमारभच्चो तानि सोळससहस्सानि आदाय पुनदेव राजगहं पच्चागञ्छि।

६. पज्जोतराजवत्थु

९. तेन खो पन समयेन उज्जेनियं रञ्ञो पज्जोतस्स पण्डुरोगाबाधो होति। बहू महन्ता महन्ता दिसापामोक्खा वेज्जा आगन्त्वा नासक्खिंसु अरोगं कातुं। बहुं हिरञ्ञं आदाय

रोग हो गया है, जिसके कारण उसको पतली यागू... पूर्ववत्... दिखायी देती है। क्यों न मैं राजगृह जाकर अपने पुत्र की चिकित्सा के लिये राजा से जीवक वैद्य को माँग लूँ।'' तब बनारस का वह श्रेष्ठी राजगृह जाकर...राजा बिम्बिसार के पास गया, जाकर उनसे यो बोला—''देव! मेरे पुत्र को ऐसा रोग....उसकी चिकित्सा के लिये जीवक वैद्य को आज्ञा दें।

तब राजा....ने जीवक कौमारभृत्य को आज्ञा दी—''जाओ, आचार्य जीवक! नगरसेठ के पुत्र की चिकित्सा करो।'' जीवक.....ने ''अच्छा, देव!'' कहकर, वाराणसी जाकर उस श्रेष्ठी के घर पहुँचकर श्रेष्ठिपुत्र के रोग का निदान किया। निदानकर, लोगों की भीड़ को वहाँ से हटाकर, कनात (पर्दा) करवा कर, खम्भे से बन्धवा कर, उसकी पत्नी को उसके सामने बैठाकर, पेट की त्वचा को चीरते हुए आँतों की गाँठ को निकाल कर उसकी पत्नी को दिखाया—''देखो अपने स्वामी का रोग। इसीके कारण यह यागू जैसा पतला पदार्थ भी पचा नहीं पाता था....पूर्ववत्....इसकी नस-नस दिखायी देती थीं।'' (फिर) उसने आँतों को सुलझा कर, उन्हे उदर मे यथास्थान रखकर, त्वचा पहले की तरह सिलकर लेप लगा दिया। यो वह नगर सेठ का पुत्र कुछ ही समय में पूर्ण स्वस्थ हो गया। पुत्र को स्वस्थ देखकर नगरसेठ ने जीवक वैद्य को प्रसन्नतापूर्वक सोलह हजार मुद्राएँ दीं। तब जीवक वैद्य वे सोलह हजार मुद्राएँ लेकर पुन: राजगृह लौट आया।

६. प्रद्योतराजवस्तु

९. उस समय उज्जयिनी नगरी में राजा प्रद्योत को पाण्डुरोग से कष्ट था। बहुत से प्रख्यात वैद्यो से चिकित्सा करायी गयी, परन्तु उन्हें कोई लाभ नही हुआ। इसमे बहुत सा धन भी व्यर्थ नष्ट

पस्सावो पि न पगुणो। सो तेन किसो लूखो दुब्बण्णो उप्पण्डुप्पण्डुकजातो धमनिसन्थतगत्तो। साधु देवो जीवकं वेज्जं आणापेतु पुत्तं मे तिकिच्छितुं'' ति [R.276]

अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो जीवकं कोमारभच्चं आणापेसि—''गच्छ, भणे जीवक, बाराणसिं गन्त्वा बाराणसेय्यकं सेट्ठिपुत्तं तिकिच्छाही'' ति। ''एवं, देवा'', ति खो जीवको कोमारभच्चो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स पटिस्सुत्वा बाराणसिं गन्त्वा येन बाराणसेय्यको सेट्ठिपुत्तो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा बाराणसेय्यकस्स [B.387] सेट्ठिपुत्तस्स विकारं सल्लक्खेत्वा जनं उस्सारेत्वा तिरोकरणियं परिक्खिपित्वा थम्भे उब्बन्धित्वा भरियं पुरतो ठपेत्वा उदरच्छविं उप्पाटेत्वा अन्तगण्ठिं नीहरित्वा भरियाय दस्सेसि—''पस्स ते सामिकस्स आबाधं, इमिना यागु पि पीता न सम्मा परिणामं गच्छति, भत्तं पि भुत्तं न सम्मा परिणामं गच्छति, उच्चारो पि पस्सावो पि न पगुणो; इमिनायं किसो लूखो दुब्बण्णो उप्पण्डुप्पण्डुकजातो धमनिसन्थतगत्तो'' ति। अन्तगण्ठिं विनिवेठेत्वा अन्तानि पटिपवेसेत्वा उदरच्छविं सिब्बेत्वा आलेपं अदासि। अथ खो बाराणसेय्यको सेट्ठिपुत्तो नचिरस्सेव अरोगो अहोसि। अथ खो बाराणसेय्यको सेट्ठि—'पुत्तो मे अरोगो ठितो' ति जीवकस्स कोमारभच्चस्स सोळससहस्सानि पादासि। अथ खो जीवको कोमारभच्चो तानि सोळससहस्सानि आदाय पुनदेव राजगहं पच्चागञ्छि।

६. पज्जोतराजवत्थु

९. तेन खो पन समयेन उज्जेनियं रञ्ञो पज्जोतस्स पण्डुरोगाबाधो होति। बहू महन्ता महन्ता दिसापामोक्खा वेज्जा आगन्त्वा नासक्खिंसु अरोगं कातुं। बहुं हिरञ्ञं आदाय

रोग हो गया है, जिसके कारण उसको पतली यागू....पूर्ववत्.....दिखायी देती है। क्यों न मैं राजगृह जाकर अपने पुत्र की चिकित्सा के लिये राजा से जीवक वैद्य को माँग लूँ।'' तब बनारस का वह श्रेष्ठी राजगृह जाकर...राजा बिम्बिसार के पास गया, जाकर उनसे यों बोला—''देव! मेरे पुत्र को ऐसा रोग....उसकी चिकित्सा के लिये जीवक वैद्य को आज्ञा दें।

तब राजा.. ..ने जीवक कौमारभृत्य को आज्ञा दी—''जाओ, आचार्य जीवक! नगरसेठ के पुत्र की चिकित्सा करो।'' जीवक.....ने ''अच्छा, देव!'' कहकर, वाराणसी जाकर उस श्रेष्ठी के घर पहुँचकर श्रेष्ठिपुत्र के रोग का निदान किया। निदानकर, लोगों की भीड़ को वहाँ से हटाकर, कनात (पर्दा) करवा कर, खम्भे से बन्धवा कर, उसकी पत्नी को उसके सामने बैठाकर, पेट की त्वचा को चीरते हुए आँतों की गाँठ को निकाल कर उसकी पत्नी को दिखाया—''देखो अपने स्वामी का रोग। इसीके कारण यह यागू जैसा पतला पदार्थ भी पचा नहीं पाता था....पूर्ववत्....इसकी नस-नस दिखायी देती थीं।'' (फिर) उसने आँतो को सुलझा कर, उन्हें उदर में यथास्थान रखकर, त्वचा पहले की तरह सिलकर लेप लगा दिया। यों वह नगर सेठ का पुत्र कुछ ही समय में पूर्ण स्वस्थ हो गया। पुत्र को स्वस्थ देखकर नगरसेठ ने जीवक वैद्य को प्रसन्नतापूर्वक सोलह हजार मुद्राएँ दीं। तब जीवक वैद्य वे सोलह हजार मुद्राएँ लेकर पुनः राजगृह लौट आया।

६. प्रद्योतराजवस्तु

९. उस समय उज्जयिनी नगरी में राजा प्रद्योत को पाण्डुरोग से कष्ट था। बहुत से प्रख्यात वैद्यों से चिकित्सा करायी गयी, परन्तु उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। इसमे बहुत सा धन भी व्यर्थ नष्ट

[N.294] अगमंसु। अथ खो राजा पज्जोतो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स सन्तिके दूतं पाहेसि—"मय्हं खो तादिसो आबाधो, साधु देवो जीवकं वेज्जं आणापेतु, सो मं तिकिच्छिस्सती" ति। अथ खो राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो जीवकं कोमारभच्चं आणापेसि—"गच्छ, भणे जीवक; उज्जेनिं गन्त्वा राजानं पज्जोतं तिकिच्छाही" ति। "एवं, देवा" ति खो जीवको कोमारभच्चो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स पटिस्सुत्वा उज्जेनिं गन्त्वा येन राजा पज्जोतो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा रञ्ञो पज्जोतस्स विकारं सल्लक्खेत्वा राजानं पज्जोतं एतदवोच—"सप्पिं, देव, निप्पचिस्सामि। तं देवो पिविस्सती" ति। "अलं, भणे जीवक, यं ते सक्का विना सप्पिना अरोगं कातुं तं करोहि। जेगुच्छं मे [R.277] सप्पि, पटिकूलं" ति। अथ खो जीवकस्स कोमारभच्चस्स एतदहोसि—"इमस्स [B.388] खो रञ्ञो तादिसो आबाधो, न सक्का विना सप्पिना अरोगं कातुं। यन्नूनाहं सप्पिं निप्पचेय्यं कसाववण्णं कसावगन्धं कसावरसं" ति। अथ खो जीवको कोमारभच्चो नानाभेसज्जेहि सप्पिं निप्पचि कसाववण्णं कसावगन्धं कसावरसं। अथ खो जीवकस्स कोमारभच्चस्स एतदहोसि—"इमस्स खो रञ्ञो सप्पि पीतं परिणामेन्तं उद्देकं दस्सति। चण्डोयं राजा घातापेय्या पि मं। यन्नूनाहं पटिकच्चेव आपुच्छेय्यं" ति। अथ खो जीवको कोमारभच्चो येन राजा पज्जोतो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा राजानं पज्जोतं एतदवोच—"मयं खो, देव, वेज्जा नाम तादिसेन मुहुत्तेन मूलानि उद्धराम भेसज्जानि संहराम। साधु देवो वाहनागारेसु च द्वारेसु च आणापेतु—'येन वाहनेन जीवको इच्छति तं कालं गच्छतु, यं कालं इच्छति तं कालं पविसतू' " ति। अथ खो राजा पज्जोतो वाहनागारेसु च द्वारेसु च आणापेसि—"येन वाहनेन जीवको इच्छति तेन वाहनेन गच्छतु, येन द्वारेन इच्छति तेन द्वारेन गच्छतु, यं कालं इच्छति तं कालं गच्छतु, यं कालं इच्छति तं कालं पविसतू" ति।

हो गया। राजा प्रद्योत ने राजा....बिम्बिसार के पास दूत भेजा—"मुझे बहुत भयङ्कर रोग हो गया है, अच्छा हो कि आप अपने जीवक वैद्य को भेज दें कि वह मेरे रोग की चिकित्सा कर सके।" तब राजा....बिम्बिसार ने जीवक कौमारभृत्य को आदेश दिया—"आचार्य जीवक! उज्जयिनी जाकर राजा प्रद्योत के रोग की चिकित्सा करो।" "अच्छा, देव!" कहकर जीवक....राजा प्रद्योत के यहाँ पहुँचा। वहाँ उसके रोग का निदान कर राजा को यों कहा—"देव! इसके लिये मैं एक घृतपाक बनाऊँगा, उसे आप पीएँगें तो स्वस्थ हो जाँयगे।" "नहीं, जीवक रहने दो; मैं घी नहीं पी सकूँगा। घी तो मुझे अनुकूल नहीं पड़ता।" तब जीवक वैद्य ने सोचा—"इस राजा को ऐसा रोग है जो विना घी के ठीक हो ही नहीं सकता। तो क्यों न मैं उस घी को इस तरह बनाऊँ कि वह गन्ध, वर्ण और रस में काषाय हो जाय और दीखने में वह घी न लगे।" वैसा घी बना लेने के बाद जीवक ने फिर सोचा—"इस राजा को यह घी पीते ही वमन होगा। हो सकता है, तब यह क्रोधी राजा मुझे मरवा डाले। तो क्यों न मैं पहले ही इसका प्रतीकारात्मक उपाय सोच लूँ।" जीवक यह सोचकर राजा के पास पहुँचकर कहा—"देव! हम वैद्य लोग विशेष मुहूर्त (काल) देखकर ही उन उन रोगों के लिये उन उन ओषधियों को जङ्गल से लाते है। अतः अच्छा हो, देव! कि आप अपने नगर के द्वारपालों तथा वाहनागारपालकों को ऐसा आदेश प्रसारित करा दें कि जीवक वैद्य जिस किसी भी वाहन पर चढ़कर नगर के जिस किसी भी द्वार से जब चाहे तब विना किसी रोक-टोक के निःसरण या प्रवेश कर सकता है।" राजा प्रद्योत ने वाहनागारपालकों एवं द्वारपालकों को ऐसी आज्ञा दे दी।

तेन खो पन समयेन रञ्ञो पज्जोतस्स भद्दवतिका नाम हत्थिनिका पञ्ञासयोजनिका होति। अथ खो जीवको कोमारभच्चो रञ्ञो पज्जोतस्स सप्पिं उपनामेसि—"कसावं देवो पिवतू" ति। अथ खो जीवको कोमारभच्चो राजानं पज्जोतं सप्पिं पायेत्वा हत्थिसालं गन्त्वा भद्दवतिकाय हत्थिनिकाय नगरम्हा निप्पति।

अथ खो रञ्ञो पज्जोतस्स तं सप्पि पीतं परिणामेन्तं उद्देकं अदासि। अथ खो राजा पज्जोतो मनुस्से एतदवोच—"दुट्ठेन, भणे, जीवकेन सप्पि पायितोम्हि। तेन हि, भणे, जीवकं वेज्जं विचिनथा" ति। "भद्दवतिकाय, देव, हत्थिनिकाय नगरम्हा निप्पतितो" ति। तेन खो पन समयेन रञ्ञो पज्जोतस्स काको नाम दासो सट्ठियोजनिको होति, अमनुस्सेन पटिच्च जातो। अथ खो राजा पज्जोतो काकं दासं आणापेसि—"गच्छ, भणे, काक, जीवकं वेज्जं निवत्तेहि—'राजा तं, आचरिय, निवत्तापेती' ति। एते खो, [N.295, B.389] भणे, काक,वेज्जा नाम बहुमाया। मा चस्स किञ्चि पटिग्गहेसी" ति।

अथ खो काको दासो जीवकं कोमारभच्चं अन्तरामग्गे कोसम्बियं सम्भावेसि पातरासं करोन्तं। अथ खो काको दासो जीवकं कोमारभच्चं एतदवोच—"राजा तं, आचरिय, निवत्तापेती" ति। "आगमेहि, भणे काक, याव भुञ्जामि। हन्द, भणे काक, भुञ्जस्सू" ति। "अलं, आचरिय, रञ्ञाम्हि आणत्तो—'एते खो, भणे काक, वेज्जा, नाम बहुमाया, मा चस्स किञ्चि पटिग्गहेती' ति। तेन खो पन समयेन जीवको कोमारभच्चो नखेन भेसज्जं ओलुम्पेत्वा आमलकं च खादति पानीयं च पिवति। अथ खो जीवको कोमारभच्चो काकं दासं एतदवोच—"हन्द, भणे, काक, आमलकं च खाद पानीयं च पिवस्सू" ति। अथ खो

उस समय राजा प्रद्योत की (हस्तिशाला में) भद्रवतिका नाम की हथिनी थी जो एक दिन में पचास योजन चल सकती थी। जीवक कौमारभृत्य ने राजा प्रद्योत के सामने वह घी रखा और कहा—"देव! आप यह काषाय पीवें, इससे आप नीरोग हो जाँयगें" यों जीवक वैद्य राजा को वह घी पिलाते ही हस्तिशाला में जा कर भद्रवती हथिनी पर चढ़कर नगर से निकल गया।

उधर राजा प्रद्योत को वह ओषधि पीते ही वमन होने लगा। तब राजा प्रद्योत ने अङ्गरक्षक पुरुषों से कहा—"अरे! इस दुष्ट जीवक ने ता मुझको घी पिला दिया। तो तुम लोग उस वैद्य को पकड़कर मेरे सामने लाओ। (उन्होंने कहा—) "देव! वह तो भद्दवतिका हथिनी पर चढ़कर नगर से बाहर निकल गया।" उस समय राजा प्रद्योत की सेवा में काक नामक दास रहता था, जो अमनुष्य से उत्पन्न था, वह एक दिन साठ योजन तक जा सकता था। राजा प्रद्योत ने उस काक को आदेश दिया—"भणे काक! जा, जीवक वैद्य को लौटा ला। उनसे कहना—'आचार्य! आपको राजा बुला रहे हैं।' और हाँ, उससे सावधान रहना, ये वैद्य लोग बहुत मायावी होते हैं, अतः उसके हाथ का दिया कुछ भी न लेना।"

राजा की आज्ञा से काक दास ने उज्जयिनी से प्रस्थान कर जीवक कौमारभृत्य को मार्ग मे ही कौशाम्बी में प्रातराश (कलेवा) करते हुए जा पकड़ा और उनसे कहा—"आचार्य! राजा आपको फिर बुला रहे हैं।" जीवक बोले—"अरे काक! कुछ देर ठहरो, मैं प्रातराश कर लूँ। हाँ, अरे काक! लो, इतने तुम भी कुछ खा लो।" "बस, आचार्य! राजा ने आज्ञा दी है कि आप का दिया कुछ भी न खाऊँ; क्योकि वैद्य बहुत मायावी होते है।" उस समय जीवक कौमारभृत्य नख मे ओषधि लगाकर आँवला खा रहे थे और जल पी रहे थे। तब जीवक. ..ने काक से फिर कहा—"अरे भाई काक! यह

काको दासो—"अयं खो वेज्जो आमलकं च खादति पानीयं च पिवति, न अरहति किञ्चि पापकं होतुं" ति—उपड्ढामलकं च खादि पानीयं च अपायि। तस्स तं उपड्ढामलकं खादितं तत्थेव निच्छारेसि। अथ खो काको दासो जीवकं कोमारभच्चं एतदवोच—"अत्थि मे, आचरिय, जीवितं" ति? "मा, भणे काक, भायि, त्वं चेव अरोगो भविस्ससि राजा च। चण्डो सो राजा घातापेय्या पि मं, तेनाहं न निवत्तामी" ति भद्दवतिकं हत्थिनिकं काकस्स निय्यादेत्वा येन राजगहं तेन पक्कामि। अनुपुब्बेन येन राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स एतमत्थं आरोचेसि। "सुट्ठु, भणे जीवक, अकासि यं पि न निवत्तो, चण्डो सो राजा घातापेय्या पि तं" ति। अथ खो राजा पज्जोतो अरोगो समानो जीवकस्स कोमारभच्चस्स सन्तिके दूतं पाहेसि—"आगच्छतु जीवको, वरं दस्सामी" ति। "अलं, अय्यो, अधिकारं मे देवो सरतू" ति।

१०. तेन खो पन समयेन रञ्ञो पज्जोतस्स सीवेय्यकं दुस्सयुगं उप्पन्नं होति—बहूनं दुस्सानं बहूनं दुस्सयुगानं बहूनं दुस्सयुगसतानं बहूनं दुस्सयुगसहस्सानं बहूनं दुस्सयुगसतसहस्सानं अग्गं च सेट्ठं च पामोक्खं च उत्तमं च पवरं च। अथ खो राजा [B.390] पज्जोतो तं सीवेय्यकं दुस्सयुगं जीवकस्स कोमारभच्चस्स पाहेसि। अथ खो जीवकस्स कोमारभच्चस्स एतदहोसि—"इदं खो मे सीवेय्यकं दुस्सयुगं रञ्ञा पज्जोतेन पहितं—बहूनं दुस्सानं बहूनं दुस्सयुगानं बहूनं दुस्सयुगसतानं बहूनं दुस्सयुगसहस्सानं बहूनं दुस्सयुगसतसहस्सानं अग्गं च सेट्ठं च पामोक्खं च उत्तमं च पवरं च। नयिदं अञ्ञो कोचि पच्चारहति परिभुञ्जितुं, अञ्ञत्र तेन भगवता अरहता सम्मासम्बुद्धेन, रञ्ञा वा मागधेन सेनियेन बिम्बिसारेना" ति।

एक आँवला तो खा लो और जल पी लो।" काक ने सोचा—"यह वैद्य केवल आँवला खा रहा है और जल पी रहा है। तो क्यों न मै इसका दिया आँवला खा लूँ और जल पी लूँ। एक आँवले में क्या धोखा हो सकता है!" उसने भी आधा आँवला खाया और जल पी लिया। वह उसका खाया हुआ आधा आँवला वहीं वमन के रूप मे निकल गया। तब उस दास ने जीवक से गिड़गिड़ा कर पूछा—'आचार्य! मैं जीवित तो बच जाऊँगा?" (वैद्य बोले—) "काक! डरो नहीं, तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगे। राजा भी स्वस्थ हो जाँयगें। वह क्रोधी राजा मेरी हत्या न करवा दे, इसीलिये मैं शीघ्र से शीघ्र राजगृह पहुँच जाना चाहता हूँ। वापस नहीं लौटना चाहता।" और उसने भद्दवतिका हथिनी भी काक को दे दी और वह (अन्य किसी साधन से) राजगृह लौट गये। क्रमशः वे राजगृह पहुँच कर राजा ..बिम्बिसार के पास पहुँचे तथा अविकल घटनाक्रम सुनाया। सुनकर राजा ने कहा—"अच्छा किया, जीवक! कि तुम लौटकर नहीं गये। वह राजा बहुत क्रोधी है। वह तुम्हारी हत्या भी करा सकता था।"

राजा प्रद्योत ने कुछ समय बाद स्वस्थ होकर, जीवक कौमारभृत्य के पास दूत भेजा—"जीवक! आवे, मैं उन्हें वर (पुरस्कार) दूँगा।" जीवक ने उत्तर दिलवा दिया—"बस! देव, पुरस्कार की बात रहने दें। मेरा अधिकार (कृत उपकार) स्मरण रहे—इतना ही मैं चाहता हूँ।"

१०. उस समय राजा प्रद्योत के पास शिवि देश का बना एक दुशाला आया जो सैकड़ों हजारो लाखों दुशालों में अग्र, श्रेष्ठ, प्रमुख, उत्तम एवं प्रवर था। राजा प्रद्योत ने वह श्रेष्ठ दुशाला जीवक कौमारभृत्य को भिजवाया। तब जीवक कौभारभृत्य ने उस दुशाले के विषय में विचार किया—"यह शिवि देश का बना दुशाला, जो कि राजा प्रद्योत ने भेजा है और हजारो हजार दुशालों मे प्रथम

७. समतिंसविरेचनकथा

११. तेन खो पन समयेन भगवतो कायो दोसाभिसन्नो होति। अथ खो [N.296] भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"दोसाभिसन्नो खो, आनन्द, तथागतस्स कायो। इच्छति तथागतो विरेचनं पातुं" ति। अथ खो आयस्मा येन जीवको कोमारभच्चो [R.279] तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा जीवकं कोमारभच्चं एतदवोच—"दोसाभिसन्नो खो, आवुसो जीवक, तथागतस्स कायो। इच्छति तथागतो विरेचनं पातुं" ति। "तेन हि, भन्ते आनन्द, भगवतो कायं कतिपाहं सिनेहेथा" ति। अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवतो कायं कतिपाहं सिनेहेत्वा येन जीवको कोमारभच्चो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा जीवकं कोमारभच्चं एतदवोच—"सिनिद्धो खो, आवुसो जीवक, तथागतस्स कायो। यस्स दानि कालं मञ्ञसी" ति।

अथ खो जीवकस्स कोमारभच्चस्स एतहोसि—जीवकस्स कोमारभच्चस्स एतदहोसि—"न खो मेतं पतिरूपं योहं भगवतो ओळारिकं विरेचनं ददेय्यं" ति। तीणि उप्पलहत्थानि नानाभेसज्जेहि परिभावेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा एकं उप्पलहत्थं भगवतो उपनामेसि—"इमं, भन्ते, भगवा पठमं उप्पलहत्थं उपसिङ्घतु। इदं भगवन्तं दसक्खत्तुं विरेचेस्सती" ति। दुतियं उप्पलहत्थं भगवतो उपनामेसि—"इमं, भन्ते, भगवा दुतियं उप्पलहत्थं उपसिङ्घतु। इदं भगवन्तं दसक्खत्तुं विरेचेस्सती" ति। ततियं उप्पहलहत्थं भगवतो उपनामेसि— "इमं, भन्ते, भगवा ततियं उप्पलहत्थं [B.391] उपसिङ्घतु। इदं भगवन्तं दसक्खत्तुं विरेचेस्सती ति। एवं भगवतो समतिंसाय विरेचनं भविस्सती" ति। अथ खो जीवको कोमारभच्चो भगवतो समतिंसाय विरेचनं दत्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो जीवकस्स कोमारभच्चस्स बहि द्वारकोट्ठका

है...प्रवर है। इसका उपयोग उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को छोड़कर दूसरा कोई नहीं कर सकता। या फिर राजा श्रेणिय मागध बिम्बिसार पर ही यह शोभा देता है।"

७. त्रिंशद्विरेचनकथा

११. उस समय भगवान् का शरीर व्याधिग्रस्त था। तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को बुलाया और कहा—"मेरा शरीर इस समय कुछ भारी है। मैं चाहता हूँ कुछ विरेचन पी लूँ।" तब आयुष्मान् आनन्द जीवक वैद्य के पास गये। जाकर वे बोले—"भगवान् का शरीर कुछ भारी (दोषग्रस्त) लग रहा है। अत: ये विरेचन (जुलाब) लेना चाहते हैं। "तो, भन्ते आनन्द! भगवान् के शरीर को पहले कुछ दिन स्निग्ध करो।" तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को कुछ दिन स्नेहपान कराया तब फिर वे जीवक से जाकर बोले—"आयुष्मन् जीवक! भगवान् का शरीर स्निग्ध हो गया है, अब जैसा आप उचित समझें।"

तब जीवक कौमाभृत्य के मन में यह हुआ—"यह मेरे लिये उचित न होगा कि मैं भगवान् को साधारण विरेचन दूँ।" उसने तीन चम्मच (उत्पलहस्त) जल को नाना ओषधियों से भावित कर, भगवान् के पास जाकर एक चम्मच औषध देकर कहा—"भन्ते! भगवान् यह एक चम्मच ओषध नस्य के रूप मे ले लें, इससे भगवान् को दश विरेचन होगे।" इसी तरह (समय पर) दूसरा चम्मच देकर कहा—"भन्ते! भगवान् दूसरा चम्मच ओषध भी नस्य के रूप मे ले लें, इससे भी आपको दश विरेचन होंगे।" फिर समय पर तीसरा चम्मच ओषधि देकर कहा—"भन्ते! भगवान् यह तीसरा चम्मच औषध

निक्खन्तस्स एतदहोसि—"मया खो भगवतो समतिंसाय विरेचनं दिन्नं। दोसाभिसन्नो तथागतस्स कायो। न भगवन्तं समतिंसक्खत्तुं विरेचेस्सति, एकूनतिंसक्खत्तुं भगवन्तं विरेचेस्सति। अपि च, भगवा विरित्तो नहायिस्सति। नहातं भगवन्तं सकिं विरेचेस्सति। एवं भगवतो समतिंसाय विरेचनं भविस्सती" ति।

अथ खो भगवा जीवकस्स कोमारभच्चस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"इधानन्द, जीवकस्स कोमारभच्चस्स बहि द्वारकोट्ठका निक्खन्तस्स एतदहोसि—'मया खो भगवतो समतिंसाय विरेचनं दिन्नं। दोसाभिसन्नो तथागतस्स कायो। न भगवन्तं समतिंसक्खत्तुं विरेचेस्सति, एकूनतिंसक्खत्तुं भगवन्तं विरेचेस्सति। अपि च, भगवा विरित्तो नहायिस्सति। नहातं भगवन्तं सकिं विरेचेस्सति। एवं भगवतो समतिंसाय विरेचनं भविस्सती' ति। तेन हानन्द, उण्होदकं पटियादेही" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुणित्वा उण्होदकं पटियादेसि।

[N.297] अथ खो जीवको कोमारभच्चो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं [R.280] अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो जीवको कोमारभच्चो भगवन्तं एतदवोच—"विरित्तो, भन्ते, भगवा" ति? "विरित्तोम्हि, जीवका" ति। "इध मय्हं, भन्ते, बहि द्वारकोट्ठका निक्खन्तस्स एतदहोसि—"मया खो भगवतो समतिंसाय विरेचनं दिन्नं। दोसाभिसन्नो तथागतस्स कायो। न भगवन्तं समतिंसक्खत्तुं विरेचेस्सति, एकूनतिंसक्खत्तुं भगवन्तं विरेचेस्सति। अपि च, भगवा विरित्तो नहायिस्सति। नहातं भगवन्तं सकिं विरेचेस्सति। एवं भगवतो समतिंसाय विरेचनं भविस्सती ति। नहायतु, भन्ते, भगवा, नहायतु सुगतो" ति। अथ खो भगवा उण्होदकं नहायि। नहातं भगवन्तं सकिं विरेचेसि। एवं भगवतो समतिंसाय विरेचनं अहोसि। अथ खो जीवको कोमारभच्चो भगवन्तं एतदवोच— "याव, [B.392] भन्ते, भगवतो कायो पकतत्तो होति, अलं यूसपिण्डपातेना" ति।

भी नस्य रूप में ले लें, इससे भी आपको दस विरेचन होंगे। यों, भगवान् को बराबर तीस विरेचन होंगे।" तब जीवक वैद्य भगवान् को, तीस विरेचन देकर, उन्हें प्रणाम कर, अपने आवास पर चल दिये। तब जीवक को भगवान् के आवास के द्वार पर आते–आते यह विचार हुआ—"मैंने भगवान् को तीस विरेचन के लिये औषध तो दी, परन्तु इससे भगवान् को उनतीस (एक कम तीस) विरेचन ही होंगे। बाकी एक तब होगा, जब वे उष्ण जल से स्नान करेंगे; क्योंकि भगवान् का शरीर दोषग्रस्त है।"

तब भगवान् ने, जीवक कौमारभृत्य का यह मनश्चिन्तन अपने मन से जानकर, आयुष्मान् आनन्द को आदेश दिया—" ...आनन्द! जल गरम करो, मैं स्नान करूँगा।" "अच्छा, भन्ते" कहकर आयुष्मान् आनन्द ने जल गरम किया और भगवान् के सामने रखा।

इसी समय जीवक वैद्य पुनः भगवान् के पास आये, प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठकर उन्होंने भगवान् से निवेदन किया—"भगवान् को विरेचन हो चुके?" "हाँ, जीवक! विरेचन हो चुके।" "भन्ते! मुझे उस समय द्वार से बाहर निकलते समय यह विचार हुआ था....तो भगवान् गरम जल तय्यार है। आए स्नान करें।" तब भगवान् ने गरम जल से स्नान किया। स्नान करने पर, भगवान् को एक ओर विरेचन हुआ। इस प्रकार भगवान् को पूरे तीस विरेचन हुए। तब जीवक

८. वरयाचनाकथा

१२. अथ खो भगवतो कायो नचिरस्सेव पकतत्तो अहोसि। अथ खो जीवको कोमारभच्चो तं सीवेय्यकं दुस्सयुगं आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो जीवको कोमारभच्चो भगवन्तं एतदवोच—"एकाहं, भन्ते, भगवन्तं वरं याचामी" ति। "अतिक्कन्तवरा खो, जीवक, तथागता" ति। "यं च,भन्ते, कप्पति यं च अनवज्जं" ति। "वदेहि, जीवका" ति। "भगवा, भन्ते, पंसुकूलिको, भिक्खुसङ्घो च। इदं मे,भन्ते, सीवेय्यकं दुस्सयुगं रञ्ञा पज्जोतेन पहितं—बहूनं दुस्सानं बहूनं दुस्सयुगसतानं बहूनं दुस्सयुगसहस्सानं बहूनं दुस्सयुगसतसहस्सानं अग्गं च सेट्ठं च पामोक्खं च उत्तमं च पवरं च। पटिग्गण्हातु मे, भन्ते, भगवा सीवेय्यकं दुस्सयुगं; भिक्खुसङ्घस्स च गहपतिचीवरं अनुजानातू" ति। पटिग्गहेसि भगवा सीवेय्यकं दुस्सयुगं। अथ खो भगवा जीवकं कोमारभच्चं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो जीवको कोमारभच्चो भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**अनुजानामि, भिक्खवे, गहपतिचीवरं। यो इच्छति, पंसुकूलिको होतु। यो इच्छति, गहपतिचीवरं सादियतु। इतरीतरेनपाहं, भिक्खवे, सन्तुट्ठिं वण्णेमी**" ति।

अस्सोसुं खो राजगहे मनुस्सा—'भगवता किर भिक्खूनं गहपतिचीवरं [R.281]

ने भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! भगवान् जब तक दुर्बल हैं तब तक पतला यूष ही पथ्य के रूप में लें।।

८. वरयाचनकथा

१२ तब भगवान् कुछ ही समय बाद शरीर से पूर्णत: स्वस्थ हो गये। तब जीवक कौमारभृत्य वह शिविदेश का दुशाला लेकर भगवान् के सम्मुख उपस्थित होकर प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे जीवक कौमारभृत्य ने भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! भगवान् से मैं एक वर माँगना चाहता हूँ।" "जीवक! तथागत तो किसी को वर आदि देने से ऊपर उठ चुके हैं।" "भन्ते! ऐसा वर तो दीजिए जो युक्त है, निर्दोष है।" "तब कहो, जीवक" "भन्ते! भगवान् और आपका समग्र भिक्षुसङ्घ पांसुकूलिक (पुराणवस्त्रधारी) है। भन्ते! यह शिविदेश का बना दुशाला मैंने उज्जायिनी के राजा प्रद्योत से पाया है, जो कि बहुत अच्छा बना हुआ है अत: बाजार में बने सभी दुशालों में श्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम है। मैं चाहता हूँ, भन्ते! आप इसे स्वीकार करें और इसका उपयोग करें। साथ ही (आज से) भिक्षुसङ्घ को अनुज्ञा दें कि वे भी गृहपतियों द्वारा प्रदत्त चीवर का ग्रहण कर लिया करे।" तब भगवान् ने जीवक वैद्य से वह दुशाला, भेंट के रूप में, स्वीकार कर लिया। एतदनन्तर भगवान् ने जीवक कौमारभृत्य को धार्मिक कथाएँ सुनाकर धर्म के प्रति समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। भगवान् ने इसी प्रकरण में, इसी प्रसङ्ग में धार्मिक कथाएँ कहते हुए भिक्षुओं को आदेश दिया—"**भिक्षुओ! मैं तुम्हें गृहपतियों द्वारा प्रदत्त चीवर लेने की अनुज्ञा देता हूँ। जो चाहे वह गृहपतियों द्वारा दिया चीवर पहने और जो चाहे वह पांसुकूलिक रहे। दोनों ही तरह से मैं सन्तुष्टि (नियमपालन में पूर्णता) कहता हूँ।**"

अनुञ्ञातं' ति। ते च मनुस्सा हट्ठा अहेसुं उदग्गा—'इदानि खो मयं दानानि दस्साम [N.298] पुञ्ञानि करिस्साम, यतो भगवता भिक्खूनं गहपतिचीवरं अनुञ्ञातं' ति। एकाहेनेव राजगहे बहूनि चीवरसहस्सानि उप्पज्जिंसु।

[B.393] अस्सोसुं खो जानपदा मनुस्सा—' भगवता किर भिक्खुनं गहपतिचीवरं अनुञ्ञातं ति। ते च मनुस्सा हट्ठा अहेसुं उदग्गा—'इदानि खो मयं दानानि दस्साम पुञ्ञानि करिस्साम, यतो भगवतो भिक्खूनं गहपतिचीवरं अनुञ्ञातं' ति। जनपदे पि एकाहेनेव बहूनि चीवरसहस्सानि उप्पज्जिंसु।

तेन खो पन समयेन सङ्घस्स पावारो उप्पन्नो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, पावारं** ति। कोसेय्यपावारो उप्पन्नो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, कोसेय्यपावारं** ति। कोजवं उप्पन्नं होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, कोजवं** ति॥

पठमभाणवारो निट्ठितो॥

९. कम्बलानुजाननादिकथा

१३. तेन खो पन समयेन कासिराजा जीवकस्स कोमारभच्चस्स अड्ढकासिकं कम्बलं पाहेसि उपड्ढकासिनं खममानं। अथ खो जीवको कोमारभच्चो तं अड्ढकासिकं कम्बलं आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो जीवको कोमारभच्चो भगवन्तं एतदवोच—''अयं मे, भन्ते, अड्ढकासिको

जब राजगृह के वासियों ने सुना—''भगवान् ने भिक्षुओं को गृहपतिप्रदत्त चीवरों के उपयोग की भी अनुज्ञा दे दी है।'' तब वे मनुष्य बहुत प्रहृष्ट एव प्रमुदित हुए—''अब हमें दान देने का तथा उसके द्वारा पुण्य अर्जित करने का पूरा अवसर मिलेगा; क्योंकि भगवान् ने भिक्षुओं का गृहपतिप्रदत्त चीवरों के उपयोग हेतु अनुज्ञात कर दिया है।'' यो, राजगृहवासी दानियों से भिक्षुओं को हजारों चीवर प्राप्त हो गये।

इसी तरह राजगृह के समीपवर्ती ग्रामवासियों (जानपदों) ने भी जब यह सुना....पूर्ववत्.....बहुत प्रमुदित हुए....एक ही दिन में हजारे चीवर मिल गये।

उस समय सङ्घ को ओढ़ने के लिये प्रावार (चादरें) मिली थीं। भगवान् को बताया गया। भगवान् ने अनुज्ञा दी—''**अनुमति देता हूँ ओढ़ने के वस्त्र के उपयोग की।**

उस समय सङ्घ को ओढ़ने केलिये रेशमी (कोषेय) वस्त्र मिले। भगवान् को बताया गया। भगवान् ने अनुमति दी....।

उस समय सङ्घ को जब (लम्बे बालों वाला) कम्बल मिला था। भगवान् ने . पूर्ववत् . . अनुमति दी....।

प्रथम भाणवार समाप्त।।

९. कम्बलानुजाननादिकथा

१३. उस समय काशिराज (कोसलनरेश प्रसेनजित् के सहोदर भ्राता) ने जीवक कौमारभृत्य को पाँच सौ[1] मुद्राओं मे क्रीत क्षौमवस्त्र (अलसी की छाल का बना कपडा) भेजा। तब जीवक कौमारभृत्य वह क्षौमवस्त्र लेकर जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आया तथा भगवान् का प्रणाम कर

---

१ 'कासी' कहते है 'एक हजार' को। उसका आधा पाँच सौ (उपड्ढकासि)—अट्ठकथा।

कम्बलो कासिरञ्ञा पहितो उपड्ढकासिनं खममानो। पटिग्गण्हातु मे, भन्ते, भगवा कम्बलं, यं मम अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया'' ति। पटिग्गहेसि भगवा कम्बलं। अथ खो भगवा जीवकं कोमारभच्चं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि....पे०....पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि— **''अनुजानामि, भिक्खवे, कम्बलं''** ति।

१४. तेन खो पन समयेन सङ्घस्स उच्चावचानि चीवरानि उप्पज्जन्ति। अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—''किं नु खो भगवता चीवरं अनुञ्ञातं, किं अननुञ्ञातं'' [B.394] ति? भगवतो एतमत्थं आराचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, छ चीवरानि— खोमं, कप्पासिकं, कोसेय्यं, कम्बलं, साणं, भङ्गं** ति।

१५. तेन खो पन समयेन ये ते भिक्खू गहपतिचीवरं सादियन्ति ते [R.282] कुक्कुच्चायन्ता पंसुकूलं न सादियन्ति—एकं येव भगवता चीवरं अनुञ्ञातं, न द्वे ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **''अनुजानामि, भिक्खवे, गहपतिचीवरं सादियन्तेन पंसुकूलं पि सादियितुं; तदुभयेनपाहं, भिक्खवे, सन्तुट्ठिं वण्णेमी''** ति। [N.299]

१०. पंसुकूलपरियेसनकथा

१६. तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खू कोसलेसु जनपदेसु अद्धानमग्गप्पटिपन्ना

एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठकर जीवक ने भगवान् से निवेदन किया—''भन्ते! मुझको काशिराज ने यह पाँच सौ मुद्राओं में खरीदा गया क्षौम वस्त्र भेजा है, भन्ते! भगवान् मेरे इस कम्बल को स्वीकार करें। जिससे यह (वस्त्रदान का पुण्य) चिरकाल तक मेरे लिये हितकर एवं सुखकर हो।'' भगवान् ने वह कम्बल स्वीकार किया। तथा जीवक....को धार्मिक कथाएँ कहकर धर्म के प्रति समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। तब वह जीवक आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर चला गया। भगवान् ने बाद में, इसी प्रकरण एवं प्रसङ्ग में धार्मिक कथाएँ कहते हुए भिक्षुओं को सम्बोधित किया—**''भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कम्बल के उपयोग की।''**

छह प्रकार के चीवर का विधान— १४. उस समय सङ्घ का नाना प्रकार के चीवर (वस्त्र) मिले। तब भिक्षुओं को यह विचार हुआ—'भगवान् ने किस चीवर की अनुमति दी है, किसकी नहीं?'' भगवान् से यह बात पूछी गयी। (भगवान् ने कहा—) **''भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इन छह प्रकार के वस्त्रों के उपयोग की—१. क्षौम, २. कपास (रूई) के बना, ३. कौशेय, ४. ऊनी कम्बल, ५. सण का बना, तथा ६. भाँग की छाल का बना वस्त्र।**

नये चीवर के साथ पांसुकूल की भी अनुमति— १५. उस समय कुछ भिक्षु गृहपतियों द्वारा नये चीवरों को धारण करते हुए पांसुकूल (पुराने वस्त्रों) को धारण करने में सङ्कोच करते थे कि भगवान् ने एक ही तरह के वस्त्रों को धारण करने की अनुमति दी है, दो तरह के वस्त्रों की नहीं। भगवान् से यह बात पूछी गयी कि ऐसे प्रसङ्ग में क्या किया जाय? भगवान् ने कहा—**''भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गृहपतियों द्वारा प्रदत्त नये चीवरों के साथ पुराने (पांसुकूल) चीवरों को भी धारण करने की भी। मैं इन दोनों ही पद्धतियों में सन्तुष्टि (त्यागभावना) मानता हूँ।''**

१०. पांशुकूलपर्येषणकथा

१६. उस समय बहुत से भिक्षु कोसल राज्य के देहात में मार्ग में जा रहे थे। उनमें से कुछ

होन्ति। एकच्चे भिक्खू सुसानं ओक्कमिंसु पंसुकूलाय, एकच्चे भिक्खू नागमेसुं। ये ते भिक्खू सुसानं ओक्कमिंसु पंसुकूलाय ते पंसुकूलानि लभिंसु। ये ते भिक्खू नागमेसुं ते एवमाहंसु— "अम्हाकं पि, आवुसो, भागं देथा" ति। ते एवमाहंसु—"न मयं, आवुसो, तुम्हाकं भागं दस्साम। किस्स तुम्हे नागमित्था" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, नागमेन्तानं नाकामा भागं दातुं**" ति। (१)

तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खू कोसलेसु जनपदेसु अद्धानमग्गप्पटिपन्ना होन्ति। एकच्चे भिक्खू सुसानं ओक्कमिंसु पंसुकूलाय, एकच्चे भिक्खू आगमेसुं। ये ते भिक्खू सुसानं ओक्कमिंसु पंसुकूलाय ते पंसुकूलानि लभिंसु। ये ते भिक्खू आगमेसुं ते एवमाहंसु—"अम्हाकं पि, आवुसो, भागं देथा" ति। ते एवमाहंसु—"न मयं, आवुसो, तुम्हाकं भागं दस्साम। किस्स तुम्हे न ओक्कमित्था" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, आगमेन्तानं अकामा भागं दातुं**" ति। (२)

तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खू कोसलेसु जनपदेसु अद्धानमग्गप्पटिपन्ना होन्ति। एकच्चे भिक्खू पठमं सुसानं ओक्कमिंसु पंसुकूलाय, एकच्चे भिक्खू पच्छा ओक्कमिंसु। [B.395] ये ते भिक्खू पठमं सुसानं ओक्कमिंसु पंसुकूलाय ते पंसुकूलानि लभिंसु। ये ते भिक्खू पच्छा ओक्कमिंसु ते न लभिंसु। ते एवमाहंसु—"अम्हाकं पि, आवुसो, भागं देथा" ति। ते एवमाहंसु—"न मयं, आवुसो, तुम्हाकं भागं दस्साम। किस्स तुम्हे पच्छा ओक्कमित्था" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, पच्छा ओक्कमन्तानं नाकामा भागं दातुं**" ति। (३)

तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खू कोसलेसु जनपदेसु अद्धानमग्गप्पटिपन्ना होन्ति। ते सदिसा सुसानं ओक्कमिंसु पंसुकूलाय। एकच्चे भिक्खू पंसुकूलानि लभिंसु, एकच्चे [R.283] भिक्खू न लभिंसु। ये ते भिक्खू न लभिंसु, ते एवमाहंसु—"अम्हाकं पि, आवुसो, भागं देथा" ति। ते एवमाहंसु—"न मयं, आवुसो, तुम्हाकं भागं दस्साम। किस्स

श्मशान में पड़ा पांसुकूल उठाने के लिये गये और कुछ नहीं गये। उनमें जो भिक्षु श्मशान गये थे उन्होंने पांसुकूल पा लिया, जो नहीं गये थे उन्हें नहीं मिला। तब वे भिक्षु जो नहीं गये थे, उन्होंने पानेवालों से कहा—"इसमें से हमारा भाग भी दो।" पाने वाले भिक्षुओं का उत्तर था—"हम तुम्हें नहीं देंगे; तुम लोग स्वयं क्यों नहीं गये!" तब भगवान् के सम्मुख यह विवाद गया। भगवान् में निर्णय दिया—"**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ। इच्छा न होने पर, न आने वालों को भाग (हिस्सा) न देने की।**" (१)

उस समय बहुत से भिक्षु....पूर्ववत्...श्मशान गये, कुछ वहीं प्रतीक्षा करते रहे।...."**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इच्छा न होने पर, प्रतीक्षा करने वाले को भाग देने की।**" (२)

उस समय बहुत से भिक्षु.....पूर्ववत्.....पहले श्मशान गये, कुछ बाद मे। पहले जाने वालों का पांसुकूल मिल गया, बाद में जाने वालों को नहीं मिला। "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इच्छा न होने पर, बाद में जाने वालों को भाग न देने की।**" (३)

उस समय बहुत से भिक्षु....पूर्ववत्....एक साथ श्मशान गये। उनमें से कुछ को मिला, कुछ

तुम्हे न लभित्था'' ति ? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, सदिसानं ओक्कमन्तानं अकामा भागं दातुं** ति। (४)

तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खू कोसलेसु जनपदेसु अद्धानमग्गप्पटिपन्ना होन्ति। ते कतिकं कत्वा सुसानं ओक्कमिंसु पंसुकूलाय। एकच्चे भिक्खू पंसुकूलानि लभिंसु, एकच्चे भिक्खू न लभिंसु। ये ते भिक्खू न लभिंसु ते एवमाहंसु—''अम्हाकं पि, [N.300] आवुसो, भागं देथा'' ति। ते एवमाहंसु—''न मयं, आवुसो, तुम्हाकं भागं दस्साम। किस्स तुम्हे न लभित्था'' ति ? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**अनुजानामि, भिक्खवे, कतिकं कत्वा ओक्कमन्तानं अकामा भागं दातुं**'' ति। (५)

११. चीवरपटिग्गाहकसम्मुतिकथा

१७. तेन खो पन समयेन मनुस्सा चीवरं आदाय आरामं आगच्छन्ति। ते पटिग्गाहकं अलभमाना पटिहरन्ति। चीवरं परित्तं उप्पज्जति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतं भिक्खुं चीवरपटिग्गाहकं सम्मन्नितुं—यो न छन्दागतिं गच्छेय्य, न दोसागतिं गच्छेय्य, न मोहागतिं गच्छेय्य, न भयागतिं गच्छेय्य, गहितागहितं च जानेय्य।**

एवं च पन, भिक्खवे, सम्मन्नितब्बो। पठमं भिक्खु याचितब्बो; याचित्वा ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

''सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो इत्थन्नामं भिक्खुं चीवर-पटिग्गाहकं सम्मन्नेय्य। एसा ञत्ति। सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। सङ्घो इत्थन्नामं [B.396]

का नहीं मिला।....''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ साथ जाने वालों को, इच्छा न होने पर भी, समान भाग देने की।**'' (४)

उस समय बहुत से भिक्षु....प्रण (कतिका) करके श्मशान में पांसुकूल के लिये गये।....''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, इच्छा न होने पर भी, प्रण कर के जाने वालों को समान भाग देने की।**'' (५)

११. चीवरप्रतिग्राहकनिर्वाचनकथा

१७. उस समय दानी पुरुष चीवर लेकर आराम (भिक्षु–आवास) में जाते थे। वहाँ वे चीवर ग्रहण करने वाले को न पा कर लौट आते थे। यों भिक्षुओं को चीवर मिलने कम हो गये। भगवान् को यह बात बतायी गयी।....''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इन पाँच गुणों से युक्त चीवरप्रतिग्राहक भिक्षु के चुनाव (सम्मुति) की। १. जो न स्वेच्छाचारी हो, २. जो न द्वेष करने वाला हो, ३. न मोह में पड़ने वाला हो, ४. जो न व्यर्थ डरने वाला हो तथा ५. जो गृहीत–अगृहीत के विषय में ज्ञान रखता हो।**

और भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु का चुनाव इस प्रकार करना चाहिये—पहले उस भिक्षु से (इस कार्य के करने की) अनुमति ले लेनी चाहिये। अनुमति (स्वीकृति) के बाद किसी चतुर एवं समर्थ भिक्षु द्वारा सङ्घ को यों सूचना देनी चाहिये—

'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने। यदि सङ्घ उचित समझे तो सङ्घ इस नाम के भिक्षु को चीवरप्रतिग्राहक के रूप में चुन ले।' यह सूचना है।

'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने! सङ्घ इस नाम के भिक्षु को चीवर प्रतिग्राहक के रूप में चुनता है। जो इससे सहमत हो वह चुप रहे। परन्तु जो सहमत न हो वह बोले।

भिक्खुं चीवरपटिग्गाहकं सम्मन्नति। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स भिक्खुनो चीवरपटिग्गाहकस्स सम्मुति, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य। सम्मतो सङ्घेन इत्थन्नामो भिक्खु चीवरपटिग्गाहको। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी'' ति।

तेन खो पन समयेन चीवरपटिग्गाहका भिक्खू चीवरं पटिग्गहेत्वा तत्थेव उज्झित्वा पक्कमन्ति। चीवरं नस्सति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। अनुजानामि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि [R.284] **समन्नागतं भिक्खुं चीवरनिदहकं सम्मन्नितुं—यो न छन्दागतिं गच्छेय्य, न दोसागतिं गच्छेय्य, न मोहागतिं गच्छेय्य, न भयागतिं गच्छेय्य, निहितानिहितं च जानेय्य।**

एवं च पन, भिक्खवे, सम्मन्नितब्बो पठमं भिक्खु याचितब्बो; याचित्वा ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

''सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो इत्थन्नामं भिक्खुं चीवरनिदहकं सम्मन्नेय्य। एसा ञत्ति। सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। सङ्घो इत्थन्नामं भिक्खुं चीवरनिदहकं सम्मन्नति। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स भिक्खुनो चीवरनिदहकस्स सम्मुति, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य। सम्मतो सङ्घेन इत्थन्नामो भिक्खु चीवरनिदहको। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी'' ति।

१२. भण्डागारसम्मुतिआदिकथा

१८. तेन खो पन समयेन चीवरनिदहका भिक्खू मण्डपे पि रुक्खमूले पि निम्बकोसे पि चीवरं निदहन्ति। उन्दूरेहि पि उपचिकाहि पि खज्जन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। [N.301] **''अनुजानामि, भिक्खवे, भण्डागारं सम्मन्नितुं, यं सङ्घो आकङ्खति विहारं वा अड्ढयोगं वा पासादं वा हम्मियं वा गुहं वा।**

'भन्ते! सङ्घ मेरी सुने! सङ्घ इस नाम के भिक्षु को चीवरप्रतिग्राहक के रूप में स्वीकार करता है, अतः चुप है—मेरी ऐसी धारणा है।' ''

उस समय चीवरप्रतिगाहक भिक्षु चीवर ग्रहण कर वहीं छोड़कर चल देते थे। इस तरह चीवर खोये जाते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। (भगवान् ने कहा—) **''अनुज्ञा देता हूँ ऐसे चीवरनिदहक (चीवरों का रखवाला) के चुनाव की जो इन पाँच गुणों से सम्पन्न हो; जैसे—१. जो न स्वेच्छाचारी हो....पूर्ववत्....५, जो रक्षा अरक्षा के विषय में ज्ञान रखता हो।**

वह चुनाव यों करना चाहिये—पहले भिक्षु से स्वीकृति ले लेनी चाहिये।....पूर्ववत्....'भन्ते! सङ्घ को यह इस नाम का भिक्षु चीवर-निदहक के रूप में स्वीकार है—ऐसी मेरी धारणा है।' ''

१२. चीवर-भण्डार के स्थान का निश्चय

१८. उस समय के चीवर निदहक भिक्षु भी प्राप्त चीवर को मण्डप में या किसी वृक्ष के कोटर (कोष) में ख देते थे. यों उसे चूहे या दीमक नष्ट कर देते थे। भगवान् से यह बात बतायी गयी। ..**''अनुज्ञा देता हूँ, भिक्षुओ! चीवर भाण्डागार को ऐसा स्थान चुनने (निश्चित करने) की जिसे सङ्घ चाहे। फिर भले ही वह विहार हो, दुमंजिला मकान हो, प्रासाद हो, हर्म्य या फिर कोई सुरक्षित गुफा हो।''**

एवं च पन, भिक्खवे, सम्मन्नितब्बो। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

'सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यदि सङ्घस्स पत्तकलं, सङ्घो इत्थन्नामं विहारं भण्डागारं सम्मन्नेय्य। ऐसा ञत्ति। सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। सङ्घो इत्थन्नामं विहारं भण्डागारं सम्मन्नति। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स विहारस्स भण्डागारस्स सम्मुति, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति,सो भासेय्य। सम्मतो सङ्घेन इत्थन्नामो विहारो भण्डागारं। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी'' ति। [B.397]

तेन खो पन समयेन सङ्घस्स भण्डागारे चीवरं अगुत्तं होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**अनुजानामि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतं भिक्खुं भण्डागारिकं सम्मन्नितुं—यो न छन्दागतिं गच्छेय्य, न दोसागतिं गच्छेय्य, न मोहागतिं गच्छेय्य, न भयागतिं गच्छेय्य, गुत्तागुत्तं च जानेय्य।**

एवं च पन, भिक्खवे, सम्मन्नितब्बो। पठमं भिक्खु याचितब्बो; याचित्वा ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

'सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो इत्थन्नामं भिक्खुं भण्डागारिकं सम्मन्नेय्य। एसा ञत्ति। सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। सङ्घो इत्थन्नामं भिक्खुं भण्डागारिकं सम्मन्नति। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स भिक्खुनो भण्डागारिकस्स सम्मुति, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य। सम्मतो सङ्घेन इत्थन्नामो भिक्खु भण्डागारिको। खमति [R.285] सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारेयामी' '' ति।

तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू भण्डागारिकं वुट्ठापेन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।''**न, भिक्खवे, भण्डागारिको वुट्ठापेतब्बो। यो वुट्ठापेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**'' ति।

''भिक्षुओ! इस स्थान को चुनाव की विधि यह है—कोई चतुर एवं समर्थ भिक्षु सङ्घ को सूचित करे....पूर्ववत्....ऐसी मेरी धारणा है।

भाण्डागारिक की नियुक्ति— उस समय उपयुक्त भण्डार में भी चीवर, उत्तरदायी व्यक्ति के विना असुरक्षित रहता था। भगवान् से यह समस्या कही गयी। (भगवान् ने कहा–) ''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इन पाँच गुणों से युक्त भाण्डागारिक नियुक्त करने की।**....पूर्ववत्....। ऐसी मेरी धारणा है।''

चीवर का वितरण— उस समय चीवर बाँटते समय षड्वर्गीय भिक्षु भाण्डागारिक को उठा देते थे। भगवान् को यह बात बतायी गयी। (भगवान् ने कहा–) ''**भिक्षुओ! भाण्डागारिक को उठाना नहीं चाहिये। जो उठायगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा।**''

एकत्र चीवर का विभाजन— उस समय सङ्घ के भण्डार में बहुत अधिक चीवर एकत्र हो गया। भगवान् से इसके वितरण की विधि पूछी गयी। (भगवान् ने कहा–) ''**भिक्षुओ! समग्र सङ्घ के एकत्र होने पर ही चीवर के वितरण की अनुमति देता हूँ।**''

उस समय सङ्घ में चीवर बाँटते समय बहुत अधिक कोलाहल होता था। भगवान् से कहा गया।... ''**आज्ञा देता हूँ, भिक्षुओ! पाँच गुणों से युक्त चीवर–विभाजक भिक्षु के नियोजन की।** ....पूर्ववत्...जो विभाजन करना जानता हो, ऐसी मेरी धारणा है।''

जब चीवर विभाजन के विषय में भिक्षुओं को सन्देह हुआ तो उन्होंने भगवान् से पूछा। तब भगवान् ने कहा—''**अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! पहले चीवर को जाति आदि के अनुसार छाँट कर,**

तेन खो पन समयेन सङ्घस्स भण्डागारे चीवरं उस्सन्नं होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, सम्मुखीभूतेन सङ्घेन भाजेतुं**" ति।

तेन खो पन समयेन सङ्घो चीवरं भाजेन्तो कोलाहलं अकासि। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतं भिक्खुं चीवरभाजकं सम्मन्नितुं—यो न छन्दागतिं गच्छेय्य, न दोसागतिं गच्छेय्य, न मोहागतिं गच्छेय्य, न भयागतिं गच्छेय्य, भाजिताभाजितं च जानेय्य।**

एवं च पन, भिक्खवे, सम्मन्नितब्बो। पठमं भिक्खु याचितब्बो; याचित्वा ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

[B.398] 'सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो इत्थन्नामं भिक्खुं चीवरभाजकं सम्मन्नेय्य। एसा ञत्ति। सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। सङ्घो इत्थन्नामं भिक्खुं चीवरभाजकं सम्मन्नति। यस्सायस्मतो खमति इत्थन्नामस्स भिक्खुनो चीवरभाजकस्स सम्मुति, सो तुण्हस्स; [N.302] यस्स नक्खमति, सो भासेय्य। सम्मतो सङ्घेन इत्थन्नामो भिक्खु चीवरभाजको। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी'ति।

अथ खो चीवरभाजकानं भिक्खूनं एतदहोसि—"कथं नु खो चीवरं भाजेतब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, पठमं उच्चिनित्वा तुलयित्वा वण्णावण्णं कत्वा भिक्खू गणेत्वा वग्गं बन्धित्वा चीवरपटिवीसं ठपेतुं**" ति।

अथ खो चीवरभाजकानं भिक्खूनं एतदहोसि—"कथं नु खो सामणेरानं चीवरपटिवीसो दातब्बो" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, सामणेरानं उपड्ढपटिवीसं दातुं**" ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु सकेन भागेन उत्तरितुकामो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, उत्तरन्तस्स सकं भागं दातुं**" ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु अतिरेकभागेन उत्तरितुकामो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, अनुक्खेपे दिन्ने अतिरेकभागं दातुं**" ति।

अथ खो चीवरभाजकानं भिक्खूनं एतदहोसि—"कथं नु खो चीवरपटिवीसो दातब्बो,

---

तुलना कर, रंग-रंग से पृथक् कर फिर भिक्षुओं की गणना कर, उन्हें समूह (वर्ग) में विभाजित कर तदनुसार चीवर का भाग दिया जाय।"

...सन्देह हुआ कि श्रामणेरों को यह चीवर कैसे बाँटा जाय? (भगवान् ने कहा—) "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ श्रामणेरों को भिक्षुओं की अपेक्षा उपार्ध (दो तिहाई) भाग देने की।**"

उस समय कोई भिक्षु अपना अधिकारप्राप्त चीवर का कुछ भाग छोड़ना चाहता था। भगवान् से यह बात कही गयी।.. "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अपना अधिक भाग दे देने की।**"

उस समय एक भिक्षु अपना अतिरिक्त भाग छोड देना चाहता था। भगवान् से यह बात कही गयी।.. "**भिक्षुओ! अनुत्क्षेप (पूर्ति) दे देने पर अधिक भाग दे देने की।**"

तब चीवर बाँटने वाले भिक्षुओं को यह विचार हुआ कि फटा-कटा चीवर आने पर क्या करना चाहिये, क्या जैसा क्रमशः हाथ में आवे वैसे ही क्रमप्राप्त भिक्षु को दे दिया जाय या पुराने क्रम

आगतपटिपाटिया नु खो उदाहु यथावुड्ढं'' ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**अनुजानामि, भिक्खवे, विकलके तोसेत्वा कुसपातं कातुं**'' ति।

१३. चीवररजनकथा

१९. तेन खो पन समयेन भिक्खू छकणेन पि पण्डुमत्तिकाय पि [R.286, B.399] चीवरं रजन्ति। चीवरं दुब्बण्णं होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**अनुजानामि, भिक्खवे, छ रजनानि—मूलरजनं, खन्धरजनं, तचरजनं, पत्तरजनं, पुप्फरजनं, फलरजनं** ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू सीतुदकाय चीवरं रजन्ति। चीवरं दुग्गन्धं होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**अनुजानामि, भिक्खवे, रजनं पचितुं चुल्लं रजनकुम्भि**'' ति। रजनं उत्तरियति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**अनुजानामि, भिक्खवे, उत्तराळुम्पं बन्धितुं**'' ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू न जानन्ति रजनं पक्कं वा अपक्कं वा। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, उदके वा नखपिट्ठिकाय वा थेवकं दातुं** ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू रजनं ओरोपेन्ता कुम्भि आविञ्छन्ति। कुम्भी भिज्जति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**अनुजानामि, भिक्खवे, रजनुळुङ्कं दण्डकथालकं**'' ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खूनं रजनभाजनं न संविज्जति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**अनुजानामि, भिक्खवे, रजनकोलम्बं रजनघटं**'' ति।

से? भगवान् से यह बात पूछी गयी। (भगवान् ने कहा–) ''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जीर्ण शीर्ण वस्त्र आने पर उसके लिये याचक को सन्तुष्ट कर शलाका निर्णय (कुशपात) करना चाहिये।**

१३. चीवररजनकथा

छह रङ्ग– १९. उस समय भिक्षु गोबर से या पीली मिट्टी से अपना चीवर रङ्गते थे। उससे चीवर देखने में कुरूप हो जाता था। भगवान् से चीवर रंगने की विधि पूछी गयी। (भगवान् ने कहा–) ''**भिक्षुओ! छह रङ्गों से चीवर रङ्गने की अनुमति देता हूँ। जैसे– (१) मूल (जड़) से निकला रंग, (२) स्कन्ध से निकला रंग, (३) छाल से निकला रङ्ग, (४) पत्ते से निकला रङ्ग, (५) पुष्प से निकला रंग, (६) फल से निकला रंग।**

रंग पकाने की विधि– उस समय कुछ भिक्षु ठंडे जल में ही रङ्ग डालकर चीवर रङ्ग लेते थे, उससे चीवर में दुर्गन्ध आने लगती थी। भगवान् से यह बात पूछी गयी। (भगवान् ने कहा–) ''**अनुज्ञा देता हूँ, भिक्षुओ! चीवरजन के चूल्हा एवं छोटे रजनपात्र विहार में रखने की।**''

पक्का रङ्ग– उस समय कच्चा होने से चीवर से रङ्ग छूट जाता था। (भगवान् ने कहा–) ''**अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! रङ्ग पकाने के पात्र में रङ्ग पकाने का सामान (=उत्तराळुम्प) रखने की।**''

पके रङ्ग की परीक्षा– उस समय भिक्षु नहीं समझ पाते थे कि रङ्ग पका कि नहीं? भगवान् से पूछा गया। (भगवान् ने बताया–) ''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जल में या नख पर रङ्ग की एक बूँद डालकर परीक्षा करने की।**''

रजनपात्र– उस समय भिक्षु हाँड़ी में रङ्ग पकाते थे। चूल्हे की हाँड़ी उतारते समय हाँड़ी फूट जाती थी। भगवान् से यह कहा गया–....''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रङ्ग के लिये बड़े नाद की तथा दण्ड सहित थाल की।**''

[N.303] तेन खो पन समयेन भिक्खू पातिया पि पत्ते चीवरं ओमद्दन्ति। चीवरं ओमद्दन्ति। चीवरं परिभिज्जति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, रजनदोणिकं**" ति।

तेन खो पनस समयेन भिक्खू छमाय चीवरं पत्थरन्ति। चीवरं पंसुकितं होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, तिणसन्थारकं**" ति।

तिणसन्थारको उपचिकाहि खज्जति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, चीवरवंसं चीवररज्जुं**" ति।

मज्झेन लग्गेन्ति। रजनं उभतो गलति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, कण्णे बन्धितुं**" ति।

[B.400] कण्णो जीरति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, कण्णसुत्तकं**" ति।

रजनं एकतो गलति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, सम्परिवत्तकं रजेतुं, न च अच्छिन्ने थेवे पक्कमितुं**" ति।

तेन खो पन समयेन चीवरं पत्थिन्नं होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, उदके ओसारेतुं**" ति।

तेन खो पन समयेन चीवरं पत्थिन्नं होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, उदके ओसारेतुं**" ति।

उस समय भिक्षुओं के पास रजनपात्र नहीं। भगवान् से अनुमति ली। "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रङ्ग के लिये कूंड़े नाद की तथा दण्डसहित थाल की।**"

उस समय भिक्षुओं के पास रजनपात्र नहीं। भगवान् से अनुमति ली। "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रङ्ग के लिये कूंड़े की तथा बड़े घर की।**"

रजनद्रोणी– उस समय भिक्षु थाली में या पत्ते पर चीवर को रखकर मसलते थे। चीवर विखर जाते थे। भगवान् के सम्मुख यह समस्या रखी गयी। (भगवान् ने कहा–) **अनुमति देता हूँ– पत्थर या लौह की बनी विशाल रजनद्रोणी की।**"

रङ्गे चीवर सुखाने का साधन– उस समय भिक्षु चीवर रङ्ग कर भूमि पर ही उसे पसार देते थे। चीवर में धूल लग जाती थी। भगवान् से यह बात कही गयी। "**अनुमति देता हूँ चीवर सुखाने के लिये तृण से बनी रस्सी की।**

उस तृण से बनी रस्सी को दीमक (कीड़े) खा जाती थीं। भगवान् से इस का उपाय पूछा गया।" **अनुमति देता हूँ– चीवर फैलाने के लिये बांस तथा उससे बनी रस्सी की।**"

रङ्गने का ढंग– (भिक्षु चीवर) बीच में डालते थे, जिससे रङ्ग दोनों तरफ से बह जाता था। भगवान् से यह बात कही। "**अनुमति देता हूँ (चीवर के) कोनों का बाँधने की।**"

कोने निर्बल हो जाते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। "**अनुमति देता हूँ कोना बाँधने के लिये सूत की।**"

रंग एक तरफ से बह जाता था।....'**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चीवर को बराबर उलटते–पलटते हुए रङ्गने की और बूँद की धार न टूटने तक दूर न हटने की।**"

तेन खो पन समयेन चीवरं फरुसं होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। [R.287] "**अनुजानामि, भिक्खवे, पाणिना आकोटेतुं**" ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खू अच्छिन्नकानि चीवरानि धारेन्ति दन्तकासावानि। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति.... सेय्यथापि नाम गिही कामभोगिनो ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**न, भिक्खवे, अच्छिन्नकानि चीवरानि धारेतब्बानि। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

१४. छिन्नकचीवरानुजानना

२०. अथ खो भगवा राजगहे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन दक्खिणागिरि तेन चारिकं पक्कामि। अद्दसा खो भगवा मगधखेत्तं अच्छिबन्धं पाळिबन्धं मरियादबन्धं सिङ्घाटकबन्धं दिस्वान आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"पस्ससि नो त्वं, आनन्द, मगधखेत्तं अच्छिबन्धं पाळिबन्धं मरियादबन्धं सिङ्घाटकबन्धं" ति? "एवं, भन्ते" ति। "उस्सहसि त्वं, आनन्द, भिक्खूनं एवरूपानि चीवरानि संविदहितुं" ति? "उस्सहामि, भगवा" ति। अथ खो भगवा दक्खिणागिरिस्मिं यथाभिरन्तं विहरित्वा पुनदेव राजगहं पच्चागञ्छि।

अथ खो आयस्मा आनन्दो सम्बहुलानं भिक्खूनं चीवरानि संविदहित्वा येन [N.304] भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—"पस्सतु मे, भन्ते, भगवा चीवरानि संविदहितानी" ति। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"पण्डितो, भिक्खवे, आनन्दो; महापञ्ञो, भिक्खवे, आनन्दो; यत्र हि नाम मया सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानिस्सति, कुसिं पि नाम करिस्सति,

---

उस समय कहीं कहीं घना रंगा जाता था।...."**अनुमति देता हूँ चीवर को जल में डालकर समान रङ्ग करने की।**"

उस समय चीवर रूखा हो जाता था।....**अनुमति देता हूँ चीवर को हाथ से कूटने की।**

उस समय भिक्षु विना कटे वस्त्र उद्दान्तकाषाय रंग में रंग कर धारण करने लगे। उन्हें देखकर साधारण नागरिक भी खिन्न एवं उद्विग्न होते थे कि ये शाक्यपुत्रीय श्रमण भी गृहस्थों की तरह कैसे उद्दीप्त वस्त्र धारण करते हैं? भगवान् से यह बात कही गयी। भगवान् ने कहा—"**भिक्षुओ! तुम लोगों को विना कटे चीवर नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**"

१४. छिन्न चीवरों की अनुज्ञा

२०. तदनन्तर भगवान् राजगृह में इच्छानुकूल धर्मसाधना कर दक्षिणागिरि की तरफ चारिका हेतु निकल पड़े। भगवान् मगध प्रदेश के देहात के खेतों को मेड–बन्धा, पंक्ति में बन्धा, मर्यादा में तथा चारों तरफ से घिरा हुआ देखा। यह देखकर आनन्द को सम्बोधित किया—"आनन्द! देख रहे हो तुम मगध के इन सुव्यवस्थित खेतों को जो सबके सब मेडों से बन्धे....चारों तरफ से घिरे हुए (सुरक्षित) हैं?" "हाँ, भन्ते!" "आनन्द! क्या तूँ भिक्षुओं के लिये ऐसे चीवर बना सकता है?" "अवाय बना सकता हूँ, भन्ते!" तब भगवान् दक्षिणागिरि में यथेच्छ धर्मसाधना कर पुनः राजगृह लौट आये।

तब आयुष्मान् आनन्द बहुत से भिक्षुओं के लिये चीवर बना कर भगवान् के सम्मुख गये। जाकर भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! भगवान् मेरे बनाये इन चीवरों को देखें।" तब भगवान् ने इस प्रकरण में, इस प्रसङ्ग में धार्मिक कथाएँ कहते हुए भिक्षुओ को सम्बोधित किया—"आनन्द पण्डित है, महाप्राज्ञ है, जो कि इसने मेरे संक्षिप्त कथन का यों विस्तार से अर्थ समझ लिया। इसने

अड्ढकुसिं पि नाम करिस्सति, मण्डलं पि नाम करिस्सति, अड्ढमण्डलं पि नाम करिस्सति, [B.401] विवट्टं पि नाम करिस्सति, अनुविवट्टं पि नाम करिस्सति, गीवेय्यकं पि नाम करिस्सति, जङ्घेय्यकं पि नाम करिस्सति, बाहन्तं पि नाम करिस्सति, छिन्नकं च भविस्सति, सत्थलूखं समणसारुप्पं पच्चत्थिकानं च अनभिच्छितं। **अनुजानामि, भिक्खवे, छिन्नकं सङ्घाटिं छिन्नकं उत्तरासङ्गं छिन्नकं अन्तरवासकं**'' ' ति।

१५. तिचीवरानुजानना

२१. अथ खो भगवा राजगहे यथाभिरन्तं विहरित्वा येन वेसाली तेन चारिकं पक्कामि। अद्दसा खो भगवा अन्तरा च राजगहं अन्तरा च वेसालिं अद्धानमग्गप्पटिपन्नो सम्बहुले भिक्खू चीवरेहि उब्भण्डिते सीसे पि चीवरभिसिं करित्वा खन्धे पि चीवरभिसिं करित्वा कटिया पि चीवरभिसिं करित्वा आगच्छन्ते, दिस्वान भगवतो एतदहोसि—''अतिलहुं खो इमे मोघपुरिसा चीवरे बाहुल्लाय आवत्ता। यन्नूनाहं भिक्खूनं चीवरे सीमं बन्धेय्यं, [R.288] मरियादं ठपेय्यं'' ति।

अथ खो भगवा अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन वेसाली तदवसरि। तत्र सुदं भगवा वेसालियं विहरति गोतमके चेतिये। तेन खो पन समयेन भगवा सीतासु हेमन्तिकासु रत्तीसु अन्तरट्ठकासु हिमपातसमये रत्तिं अज्झोकासे एकचीवरो निसीदि। न भगवन्तं सीतं अहोसि। निक्खन्ते पठमे यामे सीतं भगवन्तं अहोसि। दुतियं भगवा चीवरं पारुपि। न भगवन्तं सीतं अहोसि। निक्खन्ते मज्झिमे यामे सीतं भगवन्तं अहोसि। ततियं भगवा चीवरं पारुपि। न भगवन्तं सीतं अहोसि। निक्खन्ते मज्झिमे यामे सीतं भगवन्तं अहोसि। ततियं भगवा चीवरं

इनमें क्यारी भी बनायी, आधी क्यारी भी बनायी, मण्डल भी बनाया, अर्धमण्डल भी बनाया, ग्रैवेयक (=गर्दन के स्थान पर चीवर को सुदृढ़ करने के लिये दोहरी पट्टी) भी बनाया, जाङ्घेयक (पिण्डली के स्थान पर चीवर को सुदृढ़ करने के लिये दोहरी पट्टी) भी बनाया। ऐसा छिन्नक (काटकर सिला चीवर) पहनने वालों के लिये रूखा और श्रमणों के लिये अनुकूल होगा, चुराने वालो के लिये भी यह उपयोगी न होगा। अतः ''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सङ्घाटी, उत्तरासङ्ग एवं अन्तरवासक को छिन्नक (काट कर सिला हुआ) बनाने की।**''

१५. त्रिचीवरानुजानना

२१. तब भगवान् राजगृह में इच्छानुकूल विहार (धर्मसाधना) कर वैशाली की तरफ चारिका हेतु चल पड़े। भगवान् राजगृह और वैशाली के बीच में मार्ग में जाते हुए भिक्षुओ को चीवरों से लदे हुए (उद्भण्डित) देखा। वे सिर पर भी, कन्धे पर भी, कमर पर भी चीवरों की गठड़ी बाँध कर जा रहे थे। देख कर भगवान् को यह विचार हुआ—''ये मूर्ख इतना जल्दी चीवर-परिग्रही हो गये। तो क्यों न मैं इन भिक्षुओं के चीवर-प्रतिग्रहण की एक सीमा बाँध दूँ। एक मर्यादा (परम्परा) स्थापित कर दूँ।''

तब भगवान् क्रमशः चारिका करते हुए वैशाली पहुँचे। वहाँ वैशाली में भगवान् गौतमक चैत्य में साधनाहेतु विराजे। उस समय भगवान् हेमन्त ऋतु के हिमपात के समय, अन्तराष्टक (माघ मास की अन्तिम चार एवं फाल्गुन मास के आरम्भ की चार) शीत रात्रियों में भी खुले आकाश के नीचे एक ही चीवर धारण किये हुए विराजमान रहे। तब भगवान् को शीत का अनुभव नहीं हुआ; परन्तु पहला याम (पहर) बीतने पर भगवान् को कुछ शीत का अनुभव हुआ। तब उन्होंने ओढ़ने के लिये एक वस्त्र और

पारुपि। न भगवन्तं सीतं अहोसि। निक्खन्ते पच्छिमे यामे उद्धस्ते अरुणे नन्दिमुखिया रत्तिया सीतं भगवन्तं अहोसि। चतुत्थं भगवा चीवरं पारुपि। न भगवन्तं सीतं अहोसि। अथ खो भगवतो एतदहोसि—"ये पि खो ते कुलपुत्ता इमस्मिं धम्मविनये सीतालुका सीतभीरुका ते पि सक्कोन्ति तिचीवरेन यापेतुं। यन्नूनाहं भिक्खूनं चीवरे सीमं बन्धेय्यं, मरियादं ठपेय्यं, तिचीवरं अनुजानेय्यं" ति।

अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि— "इधाहं, भिक्खवे, अन्तरा च राजगहं अन्तरा च वेसालिं [B.402] अद्धानमग्गप्पटिपन्नो अद्दसं सम्बहुले भिक्खू चीवरेहि उब्भण्डिते सीसे पि चीवरभिसिं करित्वा खन्धे पि चीवरभिसिं करित्वा कटिया पि चीवरभिसिं करित्वा आगच्छन्ते, दिस्वान मे एतदहोसि—'अतिलहुं खो इमे मोघपुरिसा चीवरे बाहुल्लाय आवत्ता। यन्नूनाहं भिक्खूनं चीवरे सीमं बन्धेय्यं, मरियादं ठपेय्यं' ति। इधाहं, भिक्खवे, सीतासु हेमन्तिकासु [N.305] रत्तीसु अन्तरट्ठकासु हिमपातसमये रत्तिं अज्झोकासे एकचीवरो निसीदिं। न मं सीतं अहोसि। निक्खन्ते पठमे यामे सीतं मं अहोसि। दुतियाहं चीवरं पारुपिं। न मं सीतं अहोसि। निक्खन्ते मज्झिमे यामे सीतं मं अहोसि। ततियाहं चीवरं पारुपिं। न मं सीतं अहोसि। निक्खन्ते पच्छिमे यामे उद्धस्ते अरुणे नन्दिमुखिया रत्तिया सीतं मं अहोसि। चतुत्थाहं चीवरं पारुपिं। न मं सीतं अहोसि। तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—"ये पि खो ते कुलपुत्ता इमस्मिं धम्मविनये सीतालुका सीतभीरुका ते पि सक्कोन्ति तिचीवरेन यापेतुं। यन्नूनाहं भिक्खूनं चीवरे सीमं बन्धेय्यं, मरियादं ठपेय्यं, तिचीवरं अनुजानेय्यं' [R.289] ति। अनुजानामि, भिक्खवे, तिचीवरं—**दिगुणं सङ्घाटिं, एकच्चियं उत्तरासङ्गं, एकच्चियं अन्तरवासकं**" ति।

१६. अतिरेकचीवरकथा

२२. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू "भगवता तिचीवरं अनुञ्ञातं" ति

ले लिया। तब भगवान् को शीत का अनुभव नहीं हुआ। मध्यम याम बीतने पर भगवान् को फिर कुछ शीत का अनुभव हुआ। भगवान् ने तीसरा चीवर ओढ लिया। तब उन्हें शीतानुभव नहीं हुआ। अन्तिम याम के बीतने पर रात्रि के नन्दिमुखी (व्यतीत) होने पर भगवान् को कुछ शीत का अनुभव होने लगा। तब भगवान् ने चौथा वस्त्र ओढ़ लिया। तब भगवान् को शीतानुभव कम हो गया। तब भगवान् को यह विचार हुआ—"ज़ो कोई शीतालु, शीत से भय मानने वाला है। वह भी इस भयङ्कर शीत ऋतु में तीन चीवर से कार्य चला सकता है। तो क्यों न मैं निश्चय ही भिक्षुओं के लिये चीवर रखने की सीमा बाँध दूँ, मर्यादा बना दूँ। तीन चीवर मात्र की अनुज्ञा दे दूँ।"

तब भगवान् ने इस प्रसङ्ग में इस प्रकरण में धार्मिक कथाएँ कहते हुए भिक्षुओं को सम्बोधित किया—भिक्षुओ! यहाँ अभी पिछले दिनों में मैंने राजगृह एवं वैशाली के बीच चारिका करते हुए रास्ते में....पूर्ववत्....अनुज्ञा दे दूँ। अत: **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ—१. दोहरी सङ्घाटी, २. इकहरा उत्तरासङ्ग एवं ३. इकहरा अन्तर्वासक—इन तीन चीवरों को धारण करने की।**

१६. अतिरिक्तचीवरविषयक नियम

२२. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु "भगवान् द्वारा तीन चीवर अनुज्ञात हैं"—यह मानकर भिक्षा

अञ्ञेनेव तिचीवरेन गामं पविसन्ति, अञ्ञेन तिचीवरेन आरामे अच्छन्ति, अञ्ञेन तिचीवरेन नहानं ओतरन्ति। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति–''कथं हि नाम छब्बग्गिया भिक्खू अतिरेकचीवरं धारेस्सन्ती'' ति। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि–''**न, भिक्खवे, अतिरेकचीवरं धारेतब्बं। यो धारेय्य, यथाधम्मो कारेतब्बो**'' ति।

तेन खो पन समयेन आयस्मतो आनन्दस्स अतिरेकचीवरं उप्पन्नं होति। आयस्मा च आनन्दो तं चीवरं आयस्मतो सारिपुत्तस्स दातुकामो होति। आयस्मा च सारिपुत्तो साकेते विहरति। अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि–''भगवता सिक्खापदं पञ्ञत्तं 'न [B.403] अतिरेकचीवरं धारेतब्बं' ति। इदं च मे अतिरेकचीवरं उप्पन्नं। अहं चिमं चीवरं आयस्मतो सारिपुत्तस्स दातुकामो। आयस्मा च सारिपुत्तो साकेते विहरति। कथं नु खो मया पटिपज्जितब्बं'' ति? अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवतो एतमत्थं आरोचेसि। ''कीवचिरं पनानन्द, सारिपुत्तो आगच्छिस्सती'' ति? ''नवमं वा, भगवा, दिवसं, दसमं वा'' ति। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि– ''**अनुजानामि, भिक्खवे, दसाहपरमं अतिरेकचीवरं धारेतुं**'' ति।

तेन खो पन समयेन भिक्खूनं अतिरेकचीवरं उप्पन्नं होति। अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि–''कथं नु खो अम्हेहि अतिरेकचीवरे पटिपज्जितब्बं'' ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**अनुजानामि, भिक्खवे, अतिरेकचीवरं विकप्पेतुं**'' ति।

के लिये अन्य तीन चीवर पहन कर जाते थे, विहार में अन्य तीन चीवर पहन कर रहते थे तथा स्नानहेतु अन्य तीन चीवर पहन कर जाते थे। अल्पेच्छ भिक्षु यह देखकर दुःखी एव उद्विग्न होते थे कि कैसे ये षड्वर्गीय भिक्षु अतिरिक्त तीन चीवर धारण करते हैं? उन भिक्षुओं ने भगवान् से यह बात कही। भगवान् ने इस प्रसङ्ग में धार्मिक कथाएँ कहते हुए भिक्षुओं को सम्बोधित किया–**भिक्षुओ! अतिरिक्त चीवर नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे धर्मानुसार (दण्डित) किया जाय।**

उस समय आयुष्मान् आनन्द का (किसी श्रद्धालु उपासक से) अतिरिक्त चीवर मिला। आयुष्मान् आनन्द आयुष्मान् सारिपुत्र को वह चीवर देना चाहते थे। आयुष्मान् सारिपुत्र उस समय साकेत मे धर्मसाधना कर रहे थे। तब आयुष्मान् आनन्द को यह विचार उठा–भगवान् का यह आदेश (शिक्षापद) प्रज्ञप्त है कि किसी भी भिक्षु को तीन चीवर से अतिरिक्त नहीं रखना चाहिये। और मुझे यह अतिरिक्त चीवर मिल गया है। मैं यह चीवर आयुष्मान् सारिपुत्र को देना चाहता हूँ। और सारिपुत्र इस समय साकेत में रहकर धर्मसाधना कर रहे है। अब मुझे इस विषय मे क्या करना चाहिये? आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह बात कही। (भगवान् ने पूछा–) ''सारिपुत्र कितने समय में पुनः यहाँ लौटेंगे?'' 'भगवन्! नौ या दश दिन तक'। ''तब भगवान् ने.. **दश दिन तक अतिरिक्त चीवर अपने पास रखने की अनुमति देता हूँ।''**

उस समय कुछ अन्य भिक्षुओं को अतिरिक्त चीवर मिल गये। तब उन भिक्षुओं के मन में यह हुआ–'इन अतिरिक्त चीवरो का क्या करना चाहिये?'' भगवान् से पूछा गया। . **''अनुमति देता हूँ अतिरिक्त चीवर का विकल्प (दूसरी व्यवस्था) करने की।''**

२३. अथ खो भगवा वेसालियं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन वाराणसी तेन [N.306] चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन वाराणसी तदवसरि। तत्र सुदं भगवा वाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो अन्तरवासको छिद्दो होति। अथ खो तस्स भिक्खुनो एतदहोसि—"भगवता तिचीवरं अनुञ्ञातं—दिगुणा सङ्घाटि, एकच्चियो उत्तरासङ्गो, एकच्चियो अन्तरवासको। अयं [R.290] च मे अन्तरवासको छिद्दो। यन्नूनाहं अग्गळं अच्छुपेय्य, समन्ततो दुपट्टं भविस्सति, मज्झे एकच्चियं" ति। अथ खो सो भिक्खु अग्गलं अच्छुपेसि। अद्दसा खो भगवा सेनासनुचारिकं आहिण्डन्तो तं भिक्खुं अग्गळं अच्छुपेन्तं, दिस्वान येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं एतदवोच—"किं त्वं, भिक्खु, करोसी" ति? "अग्गळं, भगवा, अच्छुपेमी" ति। "साधु साधु, भिक्खु; साधु खो त्वं, भिक्खु, अग्गळं अच्छुपेसी" ति।

अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**अनुजानामि, भिक्खवे, अहतानं दुस्सानं अहतकप्पानं दिगुणं सङ्घाटिं, एकच्चियं उत्तरासङ्गं, एकच्चियं अन्तरवासकं; उतुद्धटानं दुस्सानं चतुग्गुणं सङ्घाटिं, दिगुणं उत्तरासङ्गं, दिगुणं अन्तरवासकं; पंसुकूले यावदत्थं; पापणिके** [B.404] **उस्साहो करणीयो। अनुजानामि, भिक्खवे, अग्गळं तुन्नं ओवट्टिकं कण्डूसकं दळ्हीकम्मं**" ति।

१७. विसाखावत्थु

२४. अथ खो भगवा बाराणसियं यथाभिरन्तं विहरित्वा येन सावत्थि तेन चारिकं

फटे चीवर को सिलकर पहनना— २३. तब भगवान् वैशाली में यथेच्छ धर्मसाधना कर वाराणसी की तरफ चारिका हेतु निकल पड़े। यों, ये क्रमशः चारिका करते हुए वाराणसी पहुँच कर ऋषिपतन मृगदाव मे साधनाहेतु विराजे। उस समय एक भिक्षु के अन्तरवासक में छिद्र हो गया था। तब उस भिक्षु को यह विचार हुआ—"भगवान् ने तीन ही चीवरों का विधान किया है—दोहरी सङ्घाटी, इकहरा उत्तरासङ्ग एवं इकहरा अन्तरवासक। मेरे इस अन्तरवासक में छिद्र हो गया है, क्यों न मैं इस छिद्र पर दूसरा वस्त्र का टुकड़ा लगा कर इसे सिल डालूँ, जिससे कि यह छिद्र के चारों तरफ दोहरा हो जाय और बीच में इकहरा।" तब उस भिक्षु ने उस अन्तरवासक को इसी तरह सिलना प्रारम्भ किया। आवास मे शयनासनों का निरीक्षण करते समय भगवान् ने उस भिक्षु को वैसा करते (सिलते) देखा। देखकर वे भिक्षु के पास गये। पास जाकर उससे पूछा—"भिक्षु! क्या कर रहे हो?" "भगवन्! अन्तरवासक सिल रहा हूँ।" "ठीक कर रहे हो, भिक्षु! तुम उचित ही कार्य कर रहे हो।"

तब भगवान् ने इस प्रकरण में...भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"**भिक्षुओ! अनुज्ञा देता हूँ नये या नये जैसे वस्त्र की दोहरी सङ्घाटी, इकहरे उत्तरासङ्ग एवं इकहरे अन्तरवासक की। ऋतु में जीर्ण हुए वस्त्र की चौहरी सङ्घाटी, दोहरे उत्तरासङ्ग एवं दोहरे अन्तरवासक की। पांसुकूल (फेंके चिथड़े) होने पर यथेच्छ। दूकान से फेंके वस्त्र को अवश्य ले लेना चाहिये। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ—सिले वस्त्र, रफू किये, हाँड़े, टाँके एवं दृढकार्य वाले वस्त्र की भी।**"

१७. विशाखावस्तु

२४ तब भगवान् वाराणसी में इच्छानुसार धर्मसाधना कर श्रावस्ती की तरफ चारिकाहेतु

पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन सावत्थि तदवसरि। तत्र सुदं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो विसाखा मिगारमाता येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो [R.291] विसाखं मिगारमातरं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो विसाखा मिगारमाता, भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सिता समादपिता समुत्तेजिता सम्पहंसिता, भगवन्तं एतदवोच—"अधिवासेतु मे, भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो विसाखा मिगारमाता भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

तेन खो पन समयेन तस्सा रत्तिया अच्चयेन चातुद्दीपिको महामेघो पावस्सि। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"यथा, भिक्खवे, जेतवने वस्सति एवं चतूसु दीपेसु वस्सति। ओवस्सापेथ, भिक्खवे, कायं। अयं पच्छिमको चातुद्दीपिको महामेघो" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पटिस्सुणित्वा निक्खित्तचीवरा कायं ओवस्सापेन्ति। अथ खो विसाखा मिगारमाता पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा दासिं आणापेसि—"गच्छ, जे। आरामं गन्त्वा कालं आरोचेहि—कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं" ति। "एवं, अय्ये" ति [N.307] खो सा दासी विसाखाय मिगारमातुया पटिस्सुणित्वा आरामं गन्त्वा अद्दस भिक्खू निक्खित्तचीवरे कायं ओवस्सापेन्ते, दिस्वान 'नत्थि आरामे भिक्खू, आजीवका कायं ओवस्सापेन्ती' ति येन विसाखा मिगारमाता तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा विसाखं मिगारमातरं एतदवोच—"नत्थय्ये, आरामे भिक्खू, आजीवका कायं ओवस्सापेन्ती" ति। अथ खो

निकल पड़े। वहाँ वे श्रावस्ती के जेतवन में अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित आराम में साधनाहेतु विराजे। तब विशाखा मृगारमाता भगवान् के दर्शनहेतु पहुँची। पहुँचकर भगवान् का अभिवादन कर एक तरफ बैठ गयी। एक तरफ बैठी हुई विशाखा को भगवान् ने धार्मिक कथाएँ सुनकार धर्म के प्रति समुत्तेजित एव सम्प्रहर्षित किया। अन्त में विशाखा ने निवेदन किया—"भन्ते! भगवान् भिक्षुसङ्घसहित कल मेरे आवास पर भोजन स्वीकार करें।" भगवान् ने उसका यह निवेदन मौन भाव से स्वीकार किया। तब विशाखा मृगारमाता भगवान् की स्वीकृति जानकर, आसन से उठकर, भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर चली गयी।

उस समय उस रात्रि के बीतने पर ऐसी वृष्टि प्रारम्भ हुई जो प्रायः समग्र पृथ्वी पर एक ही साथ हो रही थी। तब भगवान् ने भिक्षुओं को प्रेरित किया—"भिक्षुओ! यह वर्षा इस समय जैसे जेतवन मे हो रही है इसी तरह चारों द्वीपों मे हो रही है। भिक्षुओं इस ऋतु की यह अन्तिम वर्षा है। इसमे तुम स्नान कर लो।" "अच्छा, भन्ते! कहकर उन भिक्षुओं ने चीवर उतार कर वर्षा में अपने नग्न शरीर को स्नान कराया। तब विशाखा मृगारमाता ने उत्तम उत्तम खाद्य पदार्थ बनाकर दासी को आज्ञा दी—'जा री! आराम मे जाकर सूचना दे—'भन्ते! भोजन का समय हो चुका है। अब जैसा आप उचित समझें।" "अच्छा, आर्ये" कहकर दासी जेतवनाराम गयी। वहाँ उसने देखा कि सभी भिक्षु निर्वस्त्र होकर नग्न शरीर से वर्षा में नहा रहे हैं। यह देखकर उसने समझा कि आराम मे भिक्षु नहीं हैं। ये तो आजीवक (नग्न सम्प्रदाय वाले) साधु वर्षा में खेल रहे हैं। वह पुन लौटकर विशाखा मृगारमाता से बोली—"आर्ये! आराम में भिक्षु नहीं है। वहाँ तो आजीवक साधु वर्षा मे खेल रहे है।" तब चतुर बुद्धिमती विशाखा

विसाखाय मिगारमातुया पण्डिताय वियत्ताय मेधाविनिया एतदहोसि—"निस्संसयं खो अय्या निक्खित्तचीवरा कायं आवस्सापेन्ति। सायं बाला मञ्ञित्थ—नत्थि आरामे [B.405] भिक्खू, आजीवका कायं ओवस्सापेन्ती" ति, पुन दासिं आणापेसि—"गच्छ, जे! आरामं गन्त्वा कालं आरोचेहि—'कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं'" ति। अथ खो ते भिक्खू गत्तानि सीतिं करित्वा कल्लकाया चीवरानि गहेत्वा यथाविहारं पविसिंसु। अथ खो सा दासी आरामं गन्त्वा भिक्खू अपस्सन्ती 'नत्थि आरामे भिक्खू, सुञ्ञो आरामो' ति येन विसाखा मिगारमाता तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा विसाखं मिगारमातरं एतदवोच—"नत्थय्ये, आरामे भिक्खू, सुञ्ञो आरामो" ति। अथ खो विसाखाय मिगारमातुया पण्डिताय वियत्ताय मेधाविनिया एतदहासि—"निस्संसयं खो अय्या गत्तानि सीतिं करित्वा कल्लकाया चीवरानि गहेत्वा यथाविहारं पविट्ठा। सायं बाला मञ्ञित्थ—'नत्थि आरामे भिक्खू, सुञ्ञो आरामो' ति, पुन दासिं आणापेसि—"गच्छ, जे। आरामं गन्त्वा कालं आरोचेहि—'कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं'" ति।

२५. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"सन्दहथ, भिक्खवे, पत्तचीवरं; कालो भत्तस्सा" ति। "एवं, भन्ते", ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य, एवमेव—जेतवने अन्तरहितो विसाखाय मिगारमातुया कोट्ठके पातुरहोसि। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने सद्धिं भिक्खुसङ्घेन। अथ खो विसाखा मिगारमाता—अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो, तथागतस्स महिद्धिकता महानुभावता, यत्र हि नाम जण्णुकमत्तेसु पि ओघेसु पवत्तमानेसु, कटिमत्तेसु पि ओघेसु

को यह ध्यान आया—'निश्चय ही आर्य लोग निर्वस्त्र होकर नग्न शरीर से वर्षा में क्रीड़ा कर रहे होंगे! और इस मूर्ख ने समझ लिया कि वहाँ आजीवक खेल रहे हैं, भिक्षु नहीं हैं।" उसने पुनः दासी को आज्ञा दी।...। इसी बीच भिक्षु लोग वर्षा में स्नान कर चुकने के बाद, वस्त्र पहनकर अपने अपने साधना–प्रकोष्ठ में चले गये। तब वह दासी आराम में गयी। वहाँ मैदान में किसी भिक्षु को न देखकर, आराम को सूना समझ कर पुनः विशाखा मृगारमाता के पास आकर कहा—"इस बार तो आराम सूना दिखायी दिया, वहाँ वे आजीवक भी नहीं दिखायी दिये जो पिछली बार वर्षास्नान कर रहे थे।" तब चतुर बुद्धिमती विशाखा ने समझ लिया कि इस बार दासी के जाने से पूर्व ही भिक्षुजन शरीर को वर्षाजल से शान्त कर चीवर पहन कर अपने अपने साधना–प्रकोष्ठ में चले गये होंगे। अतः इसको आराम शून्य (भिक्षुरहित) दिखायी दिया। अतः उसने पुनः भिक्षुजन को समय सूचित करने के लिये दासी को भेजा।

२५. तब भगवान् ने भिक्षुओं से कहा—"भिक्षुओ! अपना अपना पात्र–चीवर तय्यार कर लो। भोजन का समय हो चला है।" "अच्छा, भन्ते!" कहकर भिक्षु जन तय्यार हो गये। तब भगवान् पात्र चीवर लेकर, जैसे कोई बलवान् पुरुष...जेतवन से अन्तर्हित होकर विशाखा मृगारमाता के आवास पर पहुँचे। तथा भिक्षुसङ्घ के साथ बिछे आसन पर विराजमान हुए। तब विशाखा मृगारमाता चकित होकर उठी—"कितने आश्चर्य की बात है, तथागत की दिव्य शक्ति अद्भुत है कि जाँघ भर, कमर भर बाढ़ के जल में भी किसी भी भिक्षु के न चीवर भीगे न पैर ही।" यों प्रहृष्ट, प्रमुदित होकर विशाखा

[R.292] पवत्तमानेसु, न हि नाम एकभिक्खुस्स पि पादा वा चीवरानि वा अल्लानि भविस्सन्ती ति—हट्ठा उदग्गा बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्ना खो विसाखा मिगारमाता भगवन्तं एतदवोच—"अट्ठाहं, भन्ते, भगवन्तं वरानि याचामी" ति। "अतिक्कन्तवरा खो, विसाखे, तथागता" ति। "यानि च, भन्ते, कप्पियानि यानि च [B.406] अनवज्जानी" ति। "वदेहि, विसाखे", ति। "इच्छामहं, भन्ते, सङ्घस्स यावजीवं वस्सिकसाटिकं दातुं, आगन्तुकभत्तं दातुं, गमिकभत्तं दातुं, गिलानभत्तं दातुं, गिलानुपट्ठाकभत्तं [N.308] दातुं, गिलानभेसज्जं दातुं, धुवयागुं दातुं, भिक्खुनीसङ्घस्स उदकसाटिकं दातुं" ति। "किं पन त्वं, विसाखे, अत्थवसं सम्पस्समाना तथागतं अट्ठ वरानि याचसी" ति?

इधाहं, भन्ते, दासिं आणापेसिं—"गच्छ, जे। आरामं गन्त्वा कालं आरोचेहि—कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं" ति। अथ खो सा, भन्ते, दासी आरामं गन्त्वा अद्दस भिक्खू निक्खित्तचीवरे कायं ओवस्सापेन्ते, दिस्वान 'नत्थि आरामे भिक्खू, आजीवका कायं ओवस्सापेन्ती' ति येनाहं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा मं एतदवोच—"नत्थय्ये, आरामे भिक्खू, आजीवका कायं ओवस्सापेन्ती" ति। असुचि, भन्ते, नग्गियं जेगुच्छं पटिकूलं। इमाहं, भन्ते, अत्थवसं सम्पस्समाना इच्छामि सङ्घस्स यावजीवं वस्सिकसाटिकं दातुं। (१)

"पुन च परं, भन्ते, आगन्तुको भिक्खु न वीथिकुसलो न गोचरकुसलो किलन्तो पिण्डाय चरति। सो मे आगन्तुकभत्तं भुञ्जित्वा वीथिकुसलो गोचरकुसलो अकिलन्तो पिण्डाय चरिस्सति। इमाहं, भन्ते, अत्थवसं सम्पस्समाना इच्छामि सङ्घस्स यावजीवं आगन्तुकभत्तं दातुं। (२)

ने भिक्षुसङ्घसहित भगवान् को अपने हाथों से उत्तम उत्तम खाद्य पदार्थ परोसते हुए सन्तुष्ट एवं सन्तृप्त किया। अन्त मे भगवान् को पात्र से हाथ हटाया हुआ देखकर स्वयं भी एक तरफ बैठ गयी।

वार्षिक शाटी का विधान— एक तरफ बैठी विशाखा मृगारमाता ने भगवान् से यह निवेदन किया—"भन्ते! मै भगवान् से आठ वर माँगना चाहती हूँ।" "विशाखे! तथागत तो वरदान से ऊपर उठ चुके है।" "भन्ते! जो वर उचित हैं, निर्दोष है, उन्हे तो आपको देना ही चाहिये।" "तो बोलो, विशाखे!" "भन्ते! मैं यावज्जीवन (१) सङ्घ के लिये वर्षा ऋतु में पहनने के लिये धोती, (२) नवागन्तुकों को भोजन, (३) प्रस्थान करने वालों को पाथेय (गमिक भत्त), (४) रोगी को भोजन, (५) रोगी के परिचारक को भोजन, (६) रोगी को ओषधि, (७) प्रतिदिन प्रातःकाल यागू, तथा भिक्षुणीसङ्घ को उदकशाटी (मासिक धर्म के समय उपयोग मे लाया जाने वाला वस्त्र) देना चाहती हूँ।" "विशाखे! क्या बात देखकर तूने ये वर माँगे?"

(१) "भन्ते! आज मैने दासी को आज्ञा दी-- जा री! आराम में जाकर भोजनकाल की सूचना दे।' तब उस दासी ने आराम में जाकर देखा कि भिक्षु लोग चीवर छोड़कर (नग्न शरीर) वर्षास्नान कर रहे है। भन्ते! नग्नता तो सज्जनो द्वारा निन्दित घृणित एव त्याज्य है। भन्ते! यह देखकर मैं सङ्घ को यावज्जीवन वार्षिक शाटिका देना चाहती हूँ।

(२) "फिर, भन्ते! नवागन्तुक भिक्षु इस नगर की गलियो तथा मार्गों को नहीं जानते, थके

"पुन च परं, भन्ते, गमिको भिक्खु अत्तनो भत्तं परियेसमानो सत्था वा विहायिस्सति, यत्थ वा वासं गन्तुकामो भविस्सति तत्थ विकाले उपगच्छिस्सति, किलन्तो अद्धानं गमिस्सति। सो मे गमिकभत्तं भुञ्जित्वा सत्था न विहायिस्सति, यत्थ वासं गन्तुकामो भविस्सति तत्थ काले उपगच्छिस्सति, अकिलन्तो अद्धानं गमिस्सति। इमाहं, भन्ते, अत्थवसं सम्पस्समाना इच्छामि सङ्घस्स यावजीवं गमिकभत्तं दातुं। (३)

"पुन च परं, भन्ते, गिलानस्स भिक्खुनो सप्पायानि भोजनानि अलभन्तस्स आबाधो वा अभिवड्ढिस्सति, कालङ्किरिया वा भविस्सति। तस्स मे गिलानभत्तं भुत्तस्स [R.293] आबाधो न अभिवड्ढिस्सति,कालङ्किरिया न भविस्सति। इमाहं, भन्ते, अत्थवसं सम्पस्समाना इच्छामि सङ्घस्स यावजीवं गिलानभत्तं दातुं। (४)

"पुन च परं, भन्ते, गिलानुपट्ठाको भिक्खु अत्तनो भत्तं परियेसमानो [B.407] गिलानस्स उस्सूरे भत्तं नीहरिस्सति, भत्तच्छेदं करिस्सति। सो मे गिलानुपट्ठाकभत्तं भुञ्जित्वा गिलानस्स कालेन भत्तं नीहरिस्सति, भत्तच्छेदं न करिस्सति। इमाहं, भन्ते, अत्थवसं सम्पस्समाना इच्छामि सङ्घस्स यावजीवं गिलानुपट्ठाकभत्तं दातुं। (५)

"पुन च परं, भन्ते, गिलानस्स भिक्खुनो सप्पायानि भेसज्जानि अलभन्तस्स आबाधो वा अभिवड्ढिस्सति, कालङ्किरिया वा भविस्सति। तस्स मे गिलानभेसज्जं परिभुत्तस्स आबाधो न अभिवड्ढिस्सति, कालङ्किरिया न भविस्सति। इमाहं, भन्ते, अत्थवसं सम्पस्समाना इच्छामि सङ्घस्स यावजीवं गिलानभेसज्जं दातुं। (६)

हुए भटके हुए भिक्षाटन करते हैं। उन्हें मेरे द्वारा प्रथम दिन दिये भोजन को खाकर नगर के गली–कूँचो से परिचित होकर दूसरे दिन से भिक्षाटन मे सुविधा होगी।

(३) "इसी तरह, भन्ते! यहाँ से प्रस्थान करने वालों भिक्षुओं को अपना भोजन ढूँढ़ते रह जाने में विलम्ब के कारण उनका समूह से साथ छूट जाता है या आगे गन्तव्य स्थल पर विलम्ब से पहुँचते हैं तो वहाँ विकाल हो जाने के कारण उस दिन की भिक्षा से च्युत रह जाँयेंगे। ये प्रस्थान करने वाले भिक्षु मेरे यहाँ भोजन कर न समूह से पृथक् होंगे न गन्तव्य स्थल पर विकाल में पहुँचने पर भी उस दिन की भिक्षा से ही च्युत होंगे। भन्ते! इस बात को देखकर मैं चाहती हूँ कि सङ्घ को यावज्जीवन मैं गमिक भोजन देती रहूँ।

(४) "और फिर, भन्ते! रोगी भिक्षु को समय पर अनुकूल भोजन न मिलने से उसका रोग बढ़ जाता है या उसकी मृत्यु ही हो जाती है। भन्ते! ऐसे रोगी को मेरे यहाँ भोजन मिल जाने से उसका रोग नहीं बढ़ पायगा, न उसकी भोजन के विना होने वाली मृत्यु ही होगी। भन्ते! इस बात को देखकर मैं चाहती हूँ कि सङ्घ को जीवनपर्यन्त किसी के रोगी होने पर रोगी–भोजन देती रहूँ।

(५) फिर, भन्ते, रोगी का परिचारक भिक्षु अपने भोजन की खोज में, रोगी की सेवा में विलम्ब से पहुँचेगा, उसका पथ्य देर से ले जायगा या उस दिन खा न सकेगा। इसके विपरीत मेरे यहाँ बना भोजन खा कर रोगी के लिये समय से पथ्य ले जायगा तो उसका भक्तच्छेद न होगा। भन्ते! इस बात को देखकर मैं चाहती हूँ कि ऐसे रोगिपरिचारकों को मै जीवनपर्यन्त रोगिपरिचारकभोजन देती रहूँ।

(६) फिर, भन्ते! रोगी भिक्षु को अनुकूल औषध न मिलने पर रोग बढ़ जाता है या फिर

[N.309] "पुन च परं, भन्ते, भगवता अन्धकविन्दे दसानिसंसे सम्पस्समानेन यागु अनुञ्ञाता त्याहं, भन्ते, आनिसंसे सम्पस्समाना इच्छामि सङ्घस्स यावजीवं धुवयागुं दातुं। (७)

"इध, भन्ते, भिक्खुनियो अचिरवतिया नदिया वेसियाहि सद्धिं नग्गा एकतित्थे नहायन्ति। ता, भन्ते, वेसियो भिक्खुनियो उप्पण्डेसुं—"किं नु खो नाम तुम्हाकं, अय्ये, दहरानं ब्रह्मचरियं चिण्णेन, ननु नाम कामा परिभुञ्जितब्बा; यदा जिण्णा भविस्सथ तदा ब्रह्मचरियं चरिस्सथ। एवं तुम्हाकं उभो अत्था परिग्गहिता भविस्सन्ती" ति। ता, भन्ते, भिक्खुनियो वेसियाहि उप्पण्डियमाना मङ्कू अहेसुं। असुचि, भन्ते, मातुगामस्स नग्गियं जेगुच्छं पटिकूलं। इमाहं, भन्ते, अत्थवसं सम्पस्समाना इच्छामि भिक्खुनीसङ्घस्स यावजीवं उदकसाटिकं दातुं" ति। (८)

२६. "किं पन त्वं, विसाखे, आनिसंसं सम्पस्समाना तथागतं अट्ठ वरानि याचसी" ति? "इध, भन्ते, दिसासु वस्संवुट्ठा भिक्खू सावत्थिं आगच्छिस्सन्ति भगवन्तं दस्सनाय। ते भगवन्तं उपसङ्कमित्वा पुच्छिस्सन्ति—'इत्थन्नामो, भन्ते, भिक्खु कालङ्कतो, तस्स का गति? को अभिसम्परायो" ति? तं भगवा ब्याकरिस्सति सोतापत्तिफले वा सकदागामिफले वा अनागामिफले वा अरहत्ते वा। त्याहं उपसङ्कमित्वा पुच्छिस्सामि—'आगतपुब्बा नु खो, भन्ते, तेन अय्येन सावत्थी' ति? सचे मे वक्खन्ति—'आगतपुब्बा तेन भिक्खुना सावत्थी' [B.408] ति निट्ठमेत्थ गच्छिस्सामि—'निस्संसयं मे परिभुत्तं तेन अय्येन वस्सिकसाटिका [R.294] वा आगन्तुकभत्तं वा गमिकभत्तं वा गिलानभत्तं वा गिलानुपट्ठाकभत्तं वा

उसकी मृत्यु ही हो जाती है। भन्ते! इस बात को देखकर मैं चाहती हूँ कि मैं जीवनपर्यन्त रोगी भिक्षुओं के लिये औषध की व्यवस्था करती रहूँ।

(७) और फिर, भन्ते! भगवान् ने अन्धकविन्द में यागू के दश गुणों को देखते हुए उसके उपयोग की अनुमति दी है। भन्ते! मैं भी उन्हीं गुणों से अभिभूत होकर सङ्घ के लिये प्रतिदिन यागू की व्यवस्था करती रहूँ।

(८) भन्ते! एक बार कुछ भिक्षुणियाँ अचिरवती (राप्ती) नदी में वेश्याओं के साथ एक ही घाट पर नग्न होकर स्नान कर रही थीं। तब, भन्ते! उन वेश्याओं ने भिक्षुणियों को यों व्यङ्ग्य वचन कहे– तुम नवयुवतियों को ब्रह्मचर्यपालन से क्या प्रयोजन है? तुम्हें तो इस आयु में कामभोगों का सेवन करना चाहिये। यह ब्रह्मचर्यपालन तो वृद्धावस्था की चीज है। यों तुम लोगों के दोनों प्रयोजन सिद्ध हो जाँयगें।' तब, भन्ते! उन वेश्याओ के व्यङ्ग्य सुनकर वे भिक्षुणियाँ चुप ही रह गयी। भन्ते! स्त्रियों का नग्न होकर स्नान करना बहुत निन्दित एव त्याज्य माना गया है। भन्ते! इसी बात को देखकर मैं चाहती हूँ कि भिक्षुणियों के लिये यावज्जीवन उदकशाटी देती रहूँ।"

२६. "विशाखे! तुम इन बातों में क्या माहात्म्य देखकर इनका वर माँग रही हो?" भन्ते! जब दिशाओ से वर्षावास कर भिक्षु श्रावस्ती आयेंगे तब भगवान् के पास आकर पूछेंगे–'भन्ते! अमुक नाम वाला भिक्षु मर गया, उसकी क्या गति है? क्या परलोक है?' उसके लिये भगवान् स्रोतआपत्तिफल, सकृदागामिफल, अनागामिफल या अर्हत्त्वफल का व्याकरण करेंगे। उन भिक्षुओं से मैं जाकर पूछूँगी–'क्या वह (मृत) आर्य कभी श्रावस्ती आये थे?' यदि वे मुझसे कहेंगे–'हाँ, वे आये थे।' तो मैं निश्चय कर लूँगी कि निःसन्देह उस आर्य ने मेरे यहाँ वर्षिकशाटिका या नवागन्तुक भोजन या गमिक भोजन या रोगिभोजन या रोगिपरिचारक भोजन या रोगिभेषज या यवागू का ग्रहण किया होगा।

गिलानभेसज्जं वा धुवयागु वा' ति। तस्सा मे तदनुस्सरन्तिया पामुज्जं जायिस्सति, पमुदिताय पीति जायिस्सति, पीतिमनाय कायो पस्सम्भिस्सति, पस्सद्धकाया सुखं वेदियिस्सामि, सुखिनिया चित्तं समाधियिस्सति। सा मे भविस्सति इन्द्रियभावना, बलभावना, बोज्झङ्गभावना। इमाहं, भन्ते, आनिसंसं सम्पस्समाना तथागतं अट्ठ वरानि याचामी'' ति। ''साधु साधु, विसाखे; साधु खो त्वं, विसाखे, इमं आनिसंसं सम्पस्समाना तथागतं अट्ठ वरानि याचसि। **अनुजानामि ते, विसाखे, अट्ठ वरानी**'' ति। अथ खो भगवा विसाखं मिगारमातरं इमाहि गाथाहि अनुमोदि—

''या अन्नपानं ददतिप्पमोदिता, सीलूपपन्ना सुगतस्स साविका।
ददाति दानं अभिभुय्य मच्छरं, सोवग्गिकं सोकनुदं सुखावहं॥
''दिब्बं सा लभते आयुं, आगम्म मग्गं विरजं अनङ्गणं। [N.310]
सा पुञ्ञकामा सुखिनी अनामया, सग्गम्हि कायम्हि चिरं पमोदती'' ति॥

२७. अथ खो भगवा विसाखं मिगारमातरं इमाहि गाथाहि अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कमि। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि— **''अनुजानामि, भिक्खवे, वस्सिकसाटिकं, आगन्तुकभत्तं, गमिकभत्तं, गिलानभत्तं, गिलानभत्तं, गिलानुपट्ठाकभत्तं, गिलानभेसज्जं, धुवयागुं, भिक्खुनीसङ्घस्स उदकसाटिकं**'' ति।

विसाखाभाणवारो निट्ठितो॥

१८. निसीदनादिअनुजानना

२८. तेन खो पन समयेन भिक्खू पणीतानि भोजनानि भुञ्जित्वा मुट्ठस्सती [B.409] असम्पजाना निद्दं ओक्कमन्ति। तेसं मुट्ठस्सतीनं असम्पजानानं निद्दं ओक्कमन्तानं सुपिनन्तेन

उसका स्मरण कर मेरा चित्त प्रमुदित होगा, प्रमुदित होने से प्रीति उत्पन्न होगी, प्रीतियुक्त होने से काया शान्त होगी, काया के शान्त होने पर सुखानुभूति होगी, इस सुखानुभूति से चित्त समाधि की तरफ बढ़ेगा। यों होगी मेरी इन्द्रियभावना, बलभावना एव बोध्यङ्गभावना। इसी माहात्म्य को देखते हुए भन्ते! मैंने ये आठ वर माँगे हैं।''

''बहुत ठीक है, विशाखे! बहुत ठीक! कि तू इनमें ऐसा माहात्म्य देखकर ये आठ वर माँग रही है।'' तब भगवान् ने विशाखा मृगारमाता की बातों का इन गाथाओ से अनुमोदन किया—

''जो भिक्षुओं को सहर्ष अन्न-पान का दान करती है, शीलवती है, सुगत की जानी-मानी उपासिका है। जो निरभिमान होकर ऐसा ऐसा दान करती रहती है जो स्वर्ग-सुखप्रद एव शोकनाशक होता है।।

वह निर्मल निर्दोष धर्ममार्ग पर आरूढ़ है तथा दिव्य आयु दुख भोग रही है। वह पुण्याभिकाङ्क्षिणी यहाँ सुखिनी एवं नीरोग रहती हुई स्वर्ग मे भी देवकाय से चिरकाल तक प्रमुदित रहेगी।।''

तब भगवान् ने इस प्रसङ्ग में सम्बोधित किया—**''अनुमति देता हूँ वर्षिकशाटिका, नवागन्तुक भोजन, गमिकभोजन, रोगिभोजन, रोगिपरिचारकभोजन, रोगि-भेषज तथा नित्य यागू की एवं भिक्षुणीसङ्घ को उदकशाटी की''**॥

विशाखाभाणवार समाप्त।

असुचि मुच्चति, सेनासनं असुचिना मक्खियति। अथ खो भगवा आयस्मता आनन्देन पच्छासमणेन सेनासनचारिकं आहिण्डन्तो अद्दस सेनासनं असुचिना मक्खितं, दिस्वान आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"किं एतं, आनन्द, सेनासनं मक्खितं" ति? "एतरहि, भन्ते, भिक्खू पणीतानि भोजनानि भुञ्जित्वा मुट्ठस्सती असम्पजाना निद्दं ओक्कमन्ति। तेसं [R.295] मुट्ठस्सतीनं असम्पजानानं निद्दं ओक्कमन्तानं सुपिनन्तेन असुचि मुच्चति; तयिदं, भगवा, सेनासनं असुचिना मक्खितं" ति। "एवमेतं, आनन्द, एवमेतं, आनन्द। मुच्चति हि, आनन्द, मुट्ठस्सतीनं असम्पजानानं निद्दं ओक्कमन्तानं सुपिनन्तेन असुचि। ये ते, आनन्द, भिक्खू उपट्ठितस्सती सम्पजाना निद्दं ओक्कमन्ति, तेसं असुचि न मुच्चति। ये पि ते, आनन्द, पुथुज्जना कामेसु वीतरागा, तेसं पि असुचि न मुच्चति। अट्ठानमेतं, आनन्द, अनवकासो यं अरहतो असुचि मुच्चेय्या" ति।

अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"इधाहं, भिक्खवे, आनन्देन पच्छासमणेन सेनासनचारिकं आहिण्डन्तो अद्दसं सेनासनं असुचिना मक्खितं, दिस्वान आनन्दं आमन्तेसिं—'किं एतं, आनन्द, सेनासनं मक्खितं' ति? 'एतरहि, भन्ते, भिक्खू पणीतानि भोजनानि भुञ्जित्वा मुट्ठस्सती असम्पजाना निद्दं ओक्कमन्ति। तेसं मुट्ठस्सतीनं असम्पजानानं निद्दं ओक्कमन्तानं सुपिनन्तेन असुचि मुच्चति; तयिदं, भगवा, सेनासनं असुचिना मक्खितं' ति। 'एवमेतं, आनन्द, एवमेतं, आनन्द, मुच्चति हि, आनन्द, मुट्ठस्सतीनं असम्पजानानं निद्दं ओक्कमन्तानं सुपिनन्तेन असुचि। ये ते, [N.311] आनन्द, भिक्खू उपट्ठितस्सती सम्पजाना निद्दं ओक्कमन्ति, तेसं असुचि न मुच्चति। ये पि ते, आनन्द, पुथुज्जना कामेसु वीतरागा तेसं पि असुचि न मुच्चति। अट्ठानमेतं, आनन्द, अनवकासो यं अरहतो असुचि मुच्चेय्या' ति।

"पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा मुट्ठस्सतिस्स असम्पजानस्स निद्दं ओक्कमतो—दुक्खं

---

१८. निषीदनादि अनुजानना

२८. उस समय भिक्षु उत्तम उत्तम खाद्य भोज्य खाकर स्मृतिभ्रष्ट एवं जागरूकतारहित होकर निद्रा लेते थे। इस कारण उन्हें स्वप्नदोष हो जाता था। जिससे वीर्यपात होने के कारण उनका शयनासन मलिन हो जाता था। किसी समय आनन्द को साथ लेकर भगवान् ने शयनासनों का निरीक्षण करते समय वह मलिनता देखी। उन्होंने आनन्द से पूछा—"यह सब क्या है?" आनन्द ने वास्तविकता बता दी। भगवान् ने कहा—"हाँ आनन्द! तुम ठीक कह रहे हो। उत्तम उत्तम खाद्य पदार्थ खाकर स्मृतिभ्रष्ट एवं जागरूकतारहित सोने से स्वप्नदोष के कारण वीर्यपात हो जाया करता है। जिससे शयनासन मैला हो जाता है। तथा, आनन्द! जो साधक स्मृतियुक्त एवं जागरूकता (सावधानी=शुद्धचित्त) के साथ सोते हैं उन्हे स्वप्नदोष नहीं होता। और जो, आनन्द कामभोगों से वीततृष्ण हैं उन्हें यह स्वप्नदोष नहीं होता। यह सम्भव नहीं, आनन्द! यह उचित नहीं कि अर्हतों (ज्ञानियों) को स्वप्नदोष हो।"

इस प्रसङ्ग में भगवान् ने भिक्षुओं को एकत्र कराकर उन्हें धार्मिक प्रवचन करते हुए सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! आज मैंने आनन्द को साथ लेकर आश्रम के शयनासनों का निरीक्षण करते समय...पूर्ववत्...अर्हतों का स्वप्नदोष हो।

सुपति, दुक्खं पटिबुज्झति, पापकं सुपिनं पस्सति, देवता न रक्खन्ति, असुचि मुच्चति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा मुट्ठस्सतिस्स असम्पजानस्स निद्दं ओक्कमतो।

''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा उपट्ठितस्सतिस्स सम्पजानस्स निद्दं [B.410] ओक्कमतो—सुखं सुपति, सुखं पटिबुज्झति, न पापकं सुपिनं पस्सति, देवता रक्खन्ति, असुचि न मुच्चति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा उपट्ठितस्सतिस्स सम्पजानस्स निद्दं ओक्कमतो।

''**अनुजानामि, भिक्खवे, कायगुत्तिया चीवरगुत्तिया सेनासनगुत्तिया निसीदनं**'' ति।

तेन खो पन समयेन अतिखुद्दकं निसीदनं न सब्बं सेनासनं गोपेति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **अनुजानामि, भिक्खवे, यावमहन्तं पच्चत्थरणं आकङ्खति तावमहन्तं पच्चत्थरणं कातुं** ति।

२९. तेन खो पन समयेन आयस्मतो आनन्दस्स उपज्झायस्स आयस्मतो बेलट्ठसीसस्स थुल्लकच्छाबाधो होति। तस्स लसिकाय चीवरानि काये लग्गन्ति। तानि भिक्खू उदकेन तेमेत्वा तेमेत्वा अपकड्ढन्ति। अद्दसा खो भगवा सेनासनचारिकं आहिण्डन्तो ते भिक्खू तानि चीवरानि उदकेन तेमेत्वा तेमेत्वा अपकड्ढन्ते, दिस्वान येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एतदवोच—''किं इमस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो आबाधो'' ति? ''इमस्स, भन्ते, आयस्मतो थुल्लकच्छाबाधो। लसिकाय चीवरानि काये लग्गन्ति। तानि मयं उदकेन [R.296] तेमेत्वा तेमेत्वा अपकड्ढामा'' ति। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**अनुजानामि, भिक्खवे, यस्स कण्डु वा पिळका वा अस्सावो वा थुल्लकच्छु वा आबाधो कण्डुपटिच्छादिं**'' ति।

''भिक्षुओं! स्मृतिभ्रष्ट एव जागरूकता रहित होकर निद्रा लेने के ये पाँच दोष हैं; जैसे– १ कष्ट के साथ सोता है, २. कष्ट के साथ जागता है, ३ सोते समय पापमय स्वप्न देखता है, ४ निद्राकाल में देवता उसकी रक्षा नहीं करते तथा ५ सोते–सोते ही उनका वीर्यपात हो जाता है। भिक्षुओ! स्मृतिभ्रष्ट....निद्रा लेने **के ये पाँच दोष हैं**।

(इसके विपरीत) स्मृति एव सम्प्रजन्य के साथ निद्रा लेने के ये पाँच गुण है–१ सुख से सोता है, २ सुख से जागता है, ३ अशुभ स्वप्न नहीं देखता, ४ स्वप्नावस्था मे देवता उसकी रक्षा करते है, ५ एव वीर्यपात नही होता। भिक्षुओ! स्मृतिसम्प्रजन्ययुक्त होकर निद्रा लेने में ये पाँच गुण हैं। **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ काया की रक्षा करते हुए चीवर की रक्षा करते हुए शयनासन की रक्षा करते हुए बैठने की।**''

बिछौने की चादर– उस समय बिछौना बहुत छोटा होता था। वह सम्पूर्ण आसन को नही ढक पाता था। भगवान् से यह बात कही गयी। ..''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ प्रत्यस्तरण (आसन की चादर) जितनी बडी चाहे उतनी बडी बनाने की।**''

रोगी की कौपीन– २९ उस समय आयुष्मान् आनन्द के उपाध्याय वेलट्ठसीस को स्थूलकक्ष (हाथी दाद) रोग था। उसे द्रव (पानी) से चीवर शरीर में लिपट जाते थे। उन्हे भिक्षु जल से भिगो भिगो कर छुडाते थे। आश्रम मे घूमते समय भगवान् ने भी यह सब कुछ देखा। देखकर वे उस भिक्षु

३०. अथ खो विसाखा मिगारमाता मुखपुञ्छनचोळकं आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो विसाखा मिगारमाता भगवन्तं एतदवोच—"पटिग्गण्हातु मे, भन्ते, भगवा मुखपुञ्छनचोळकं, यं मम अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति। पटिग्गहेसि भगवा मुखपुञ्छनचोळकं। अथ [B.411] खो भगवा विसाखं मिगारमातरं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पसहंसेसि। अथ खो बिसाखा मिगारमाता भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सिता समादपिता समुत्तेजिता सम्पहंसिता उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि— "**अनुजानामि, भिक्खवे, मुखपुञ्छनचोळकं**" ति।

३१. तेन खो पन समयेन रोजो मल्लो आयस्मतो आनन्दस्स सहायो होति। रोजस्स मल्लस्स खोमपिलोतिका आयस्मतो आनन्दस्स हत्थे निक्खित्ता होति। आयस्मतो च आनन्दस्स खोमपिलोतिकाय अत्थो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "अनुजानामि, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतस्स विस्सासं गहेतुं—सन्दिट्ठो च होति, सम्भत्तो च, आलपितो च, जीवति च, जानाति च, गहिते मे अत्तमनो भविस्सती ति। **अनुजानामि, भिक्खवे, इमेहि पञ्चहङ्गेहि समन्नागतस्स विस्सासं गहेतुं**" ति।

३२. तेन खो पन समयेन भिक्खूनं परिपुण्णं होति तिचीवरं। अत्थो च होति परिस्सावनेहि पि थविकाहि पि। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, परिक्खारचोळकं**" ति।

के पास भये। जाकर भिक्षुओं से पूछा— "**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ—जिस भिक्षु को खुजली, मलिन रक्त बहता व्रण या स्थूलकक्ष रोग हो उस को कण्डूप्रतिच्छादन हेतु कौपीन धारण करने की।**"

अङ्गोछा (मुखप्रोञ्छक वस्त्र)— ३०. तब विशाखा मृगारमाता किसी दिन एक मुँह पोंछने के लिये एक वस्त्रखण्ड (अंगोछा) लेकर भगवान् के पास आयी। आकर भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गयी। एक तरफ बैठकर विशाखा मिगारमाता ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! भगवान् यह मुखप्रोञ्छक वस्त्र स्वीकार करें। जिससे प्राप्त पुण्य मेरे लिये दीर्घकाल तक हितकर एवं सुखकर होगा। तब भगवान् ने विशाखा मृगारमाता को धार्मिक कथाएँ कहकर धर्म के प्रति समुत्तेजित एवं सम्प्रहर्षित किया। यों वह मृगारमाता उस धार्मिक कथा के श्रवण से धर्म के प्रति समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट होकर भगवान् को प्रणाम–प्रदक्षिणा कर चली गयी। इसी प्रकरण में भगवान् ने....सम्बोधित किया—"**भिक्षुओ! मुखप्रोञ्छनक वस्त्र रखने की अनुमति देता हूँ।**"

विश्वसनीय व्यक्ति— ३१. उस समय आयुष्मान् आनन्द का रोज मल्ल नामक एक साथी था। रोज ने अलसी की छाल से बने कपड़े का एक टुकड़ा (पिलोतिका=रुमाल) आनन्द के हाथ में दिया। आयुष्मान् आनन्द को भी पिलोतिका की आवश्यकता थी। भगवान् से यह बात पूछी गयी।...."**अनुमति देता हूँ पाँच बातों से युक्त पुरुष पर विश्वास करने की— (१) जो प्रसिद्ध हो, (२) सम्भ्रान्त हो, (३) जिस से पहले खुलकर बातचीत हो चुकी हो, (४) जीवित हो एवं (५) जिसके विषय में यह समझा जा चुका हो इसके लेने पर वह सन्तुष्ट ही होगा। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ—इन पाँच बातों से युक्त व्यक्ति पर विश्वास करने की।**"

जल छानने पर वस्त्र— ३२. उस समय भिक्षुओं के पास तीनों चीवर तो पूर्ण थे; पर उन्हें

१९. पच्छिमविकप्पनुपगचीवरादिकथा

३३. अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि—"यानि तानि भगवता अनुञ्ञातानि तिचीवरं ति वा वस्सिकसाटिका ति वा निसीदनं ति वा पच्चत्थरणं ति वा कण्डुप्पटिच्छादी [R.297] ति वा मुखपुञ्छनचोळकं ति वा परिक्खारचोळकं ति वा, सब्बानि तानि अधिट्ठातब्बानि नु खो, उदाहु, विकप्पेतब्बानी" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, तिचीवरं अधिट्ठातुं न विकप्पेतुं; वस्सिकसाटिकं वस्सानं चातुमासं अधिट्ठातुं न विकप्पेतुं; कण्डुप्पटिच्छादिं याव आबाधा अधिट्ठातुं ततो परं विकप्पेतुं; मुखपुञ्छनचोळकं अधिट्ठातुं न विकप्पेतुं; परिक्खारचोळकं अधिट्ठातुं न विकप्पेतुं**" ति।

अथ खो भिक्खूनं एतदहोसि— "कित्तकं पच्छिमं नु खो चीवरं विकप्पे-[B.412] तब्बं" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, आयामेन अट्ठङ्गुलं सुगतङ्गुलेन चतुरङ्गुलवित्थतं पच्छिमं चीवरं विकप्पेतुं**" ति।

३४. तेन खो पन समयेन आयस्मतो महाकस्सपस्स पंसुकूलकतो गरुको होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, सुत्तलूखं कातुं**" ति। विकण्णो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, विकण्णं उद्धरितुं**" ति।

जलछन्ने एवं थैले (स्थविका) की आवश्यकता भगवान् से यह बात कही गयी।...."**अनुमति देता हूँ परिष्कार (उपयोग) के वस्त्र की।**"

१९. वस्त्रों की उपयोगविधि

३३. तब भिक्षुओं को यह विचार हुआ—भगवान् ने जितने वस्त्रों के रखने की अनुज्ञा दी है; जैसे— त्रिचीवर, वर्षिकशाटिका, आसन, बिछौने की चादर, कण्डू-प्रतिच्छादन, मुखप्रोञ्छक या जलछन्ना आदि; क्या इन सभी का उपयोग करना चाहिये? भगवान् से इस विषय में पूछा गया। (भगवान् ने कहा—) **भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (१) तीनों चीवरों का सदा उपयोग करने की; इनका विकल्प करना उचित नहीं है। (२) वर्षिकशाटिका का वर्षा के चार मास निरन्तर उपयोग करने की, उसके बाद विकल्प करने की। (३) आसन का निरन्तर उपयोग करने की, इसमें विकल्प नहीं। (४) प्रत्यस्तरण का निरन्तर उपयोग करने की, इसमें विकल्प नहीं।** (५) कण्डू-प्रतिच्छादक वस्त्र का रोगकाल में उपयोग करना, बाद में विकल्प। (६-७) मुख पोंछने तथा परिष्कार के वस्त्र का भी निरन्तर उपयोग करना चाहिये। इसमें कोई विकल्प नहीं।"

तब भिक्षुओं को यह हुआ—"कितने पीछे के चीवर का विकल्प करना चाहिये?" भगवान् से पूछा गया।....."भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, बुद्ध के अङ्गुल से लम्बाई में आठ अङ्गुल, चौड़ाई में चार अङ्गुल पीछे के चीवर को विकल्प करने की।"

चीवर को हल्का या स्निग्ध आदि करने का नियम— ३४. उस समय (क) आयुष्मान् महाकाश्यप का पांसुकूल से बना चीवर भारी था। भगवान् से इस विषय में पूछा गया।....."**अनुज्ञा करता हूँ, भिक्षुओ! ऐसे भिक्षुओ! ऐसे चीवर को सूत्ररूक्ष[1] करने की।**

---

१. कपडे की कटी क्यारियों के किनारों को दोहरा करना होता है। 'सूत्ररूक्ष' करने में वस्त्र को दोहरा करने की अपेक्षा सूत की सिलाई से ही यह कार्य सम्पन्न किया जाता है।

सुत्ता ओकिरियन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, अनुवातं परिभण्डं आरोपेतुं**" ति।

[N.313] ३५. तेन खो पन समयेन सङ्घाटिया पत्ता लुज्जन्ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, अट्ठपदकं कातुं**" ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो तिचीवरे कयिरमाने सब्बं छिन्नकं नप्पहोति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, द्वे छिन्नकानि एकं अच्छिन्नकं**" ति।

द्वे छिन्नकानि एकं अच्छिन्नकं नप्पहोति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, द्वे अच्छिन्नकानि एकं छिन्नकं**" ति।

द्वे अच्छिन्नकानि एकं छिन्नकं नप्पहोति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, अन्वाधिकं पि आरोपेतुं, न च, भिक्खवे, सब्बं अच्छिन्नकं धारेतब्बं। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

३६. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो बहु चीवरं उप्पन्नं होति। सो च तं चीवरं मातापितूनं दातुकामो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। मातापितरो ति खो, भिक्खवे, [R.298] ददमाने किं वदेय्याम! "**अनुजानामि, भिक्खवे, मातापितूनं दातुं। न च, भिक्खवे, सद्धादेय्यं विनिपातेतब्बं। यो विनिपातेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

[B.413] ३७. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु अन्धवने चीवरं निक्खिपित्वा सन्तरुत्तरेन

(ख) किसी के चीवर का कान (किनारा) लटका था। भगवान् से....."**अनुमति देता हूँ भिक्षुओ! लटके कान को निकालने की।**"

(ग) (किसी के चीवर के) सूत बिखरे रहते थे। भगवान् से...."**अनुमति देता हूँ हवा के रुख में ऊपर चढ़ा लेने की।**"

३५. उस समय भिक्षुओं की सङ्घाटी की टक्कर से पात्र टूट जाते थे। भगवान् से...."**अनुमति देता हूँ....अष्टपदक (मुख सिलकर ढक्कन बनाने) की।**"

वस्त्र कम होने पर तीनों चीवरों को छिन्नक बनाने का निषेध– (क) उस समय किसी भिक्षु का तीन चीवर बनाने के लिये कटा हुआ (छिन्नक) वस्त्र कम पड़ रहा था। भगवान् से...."**अनुमति देता हूँ ऐसे समय में दो अच्छिन्नक एवं एक छिन्नक वस्त्र रखने की।**

(ख) दो अच्छिन्नक एवं एक अच्छिन्नक रखने पर भी तिचीवर नहीं बन पा रहे थे। भगवान् से...."**अनुमति देता हूँ....कम–अधिक कर के त्रिचीवर धारण की। परन्तु इस स्थिति में भी यह ध्यान रखना चाहिये कि पूरा त्रिचीवर अच्छिन्नक (विना सिला) नहीं धारण करना चाहिये। जो धारणा करे उसे दुष्कृत दोष होगा।**"

वस्त्र अधिक होने पर वह माता को दिया जा सकता है– ३६. उस समय किसी भिक्षु को दान में बहुत अधिक वस्त्र मिल गया था। वह अधिक मिला वस्त्र अपने माता–पिता को देना चाहता था। भगवान् से...."भिक्षुओ! माता–पिता को देने का मैं कैसे निषेध करूँ! **अनुमति देता हूँ.....अधिक वस्त्र होने पर माता–पिता को समर्पित करने की। श्रद्धा से दिये दान को निरादरपूर्वक फैंकना नहीं चाहिये। जो ऐसा करे उसे दुष्कृत दोष होगा।**"

एक चीवर से ग्राम में प्रवेश न करना– ३७. उस समय कोई भिक्षु अन्धवन में अपना

गामं पिण्डाय पाविसि। चोरा तं चीवरं अवहरिंसु। सो भिक्खु दुच्चोळो होति लूखचीवरो। भिक्खू एवमाहंसु—"किस्स त्वं, आवुसो, दुच्चोळो लूखचीवरोसी" ति? इधाहं, आवुसो, अन्धवने चीवरं निक्खिपित्वा सन्तरुत्तरेन गामं पिण्डाय पाविसिं। चोरा तं चीवरं अवहरिंसु। तेनाहं दुच्चोळो लूखचीवरो ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे, सन्तरुत्तरेन गामो पविसितब्बो। यो पविसेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

तेन खो पन समयेन आयस्मा आनन्दो असतिया सन्तरुत्तरेन गामं पिण्डाय पाविसि। भिक्खू आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोचुं—"ननु खो, आवुसो आनन्द, भगवता पञ्ञत्तं—'न सन्तरुत्तरेन गामो पविसितब्बो' ति? किस्स त्वं, आवुसो आनन्द, सन्तरुत्तरेन गामं पविट्ठो" ति? "सच्चं, आवुसो, भगवता पञ्ञत्तं—'न सन्तरुत्तरेन गामो पविसितब्बो' ति। अपि चाहं असतिया पविट्ठो" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

"पञ्चिमे, भिक्खवे, पच्चया सङ्घाटिया निक्खेपाय—गिलानो वा [B.408] **होति, वस्सिकसङ्केतं वा होति, नदीपारं गन्तुं वा होति, अग्गळगुत्तिविहारो वा होति, अत्थतकठिनं वा होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च पच्चया सङ्घाटिया निक्खेपाय।**

"पञ्चिमे, भिक्खवे, पच्चया उत्तरासङ्गस्स निक्खेपाय....पे०...अन्तर-[N.314] **वासकस्स निक्खेपाय—गिलानो वा होति, वस्सिकसङ्केतं वा होति, नदीपारं गन्तुं वा होति, अग्गळगुत्तिविहारो वा होति, अत्थतकठिनं वा होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च पच्चया उत्तरासङ्गस्स अन्तरवासकस्स निक्खेपाय।**

"पञ्चिमे, भिक्खवे, पच्चया वस्सिकसाटिकाय निक्खेपाय—गिलानो वा होति, निस्सीमं गन्तुं वा होति, नदीपारं गन्तुं वा होति, अग्गळगुत्तिविहारो वा होति, वस्सिकसाटिका अकता वा होति विप्पकता वा। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च पच्चया वस्सिकसाटिकाय निक्खेपाया" ति।

अतिरिक्त चीवर छोड़कर अपने पास के पहले पुराने चीवर को ही पहन कर ग्राम में भिक्षा हेतु चला गया। पीछे से उसके अतिरिक्त चीवर को चोर उठा ले गये। तब वह भिक्षु अपने उस पुराने और मैले चीवर मे ही रहने लगा। भिक्षुओं ने उससे पूछा कि वह ऐसा पुराना—मैला चीवर क्यों पहनता है? तब भिक्षु ने उनको अपने साथ बीती हुई घटना सुना दी। भगवान् से ....'**"भिक्षुओ! एक ही चीवर से ग्राम में प्रवेश नहीं करना चाहिये। जो प्रवेश करे उसे दुष्कृत दोष हो।"**

तीन चीवरों में से किसी एक को छोड़ रखने में कारण— उस समय आयुष्मान् आनन्द (पहने चीवर को छोड़कर तथा) दूसरे चीवर के न रहते, भिक्षा हेतु ग्राम मे चले गये। ऐसा करने पर भिक्षुओं ने आनन्द से पूछा कि एक चीवर से ग्राम में प्रवेश करना तो भगवान् ने निषिद्ध कर रखा है, फिर तुमने ऐसा क्यों किया? आनन्द ने उत्तर दिया—"हाँ, भगवान् ने ऐसा निषेध अवश्य कर रखा है; परन्तु दूसरे चीवर के रहते उन्होंने निषेध किया है। मेरे पास तो दूसरा चीवर था ही नहीं।" भगवान् से यह घटना कही गयी। भगवान् ने कहा—**"भिक्षुओ! इन पाँच कारणों से सङ्घाटी आवासस्थान पर छोड़ी जा सकती है— (१) भिक्षु रोगी हो, (२) उस समय वर्षा होने के लक्षण हों, (३) नदी पार जाना हो, (४) या विहार किवाड़ों से सुरक्षित हो, एवं (५) या कठिनप्राप्ति का समय आ गया हो। भिक्षुओ! इन्हीं पाँच कारणों से उत्तरासङ्ग ....पूर्ववत्.....अन्तरवासक छोड़ा जा सकता है....पूर्ववत्.....। इन्हीं पाँच कारणों वर्षिकशाटिका (वर्षा से रक्षा हेतु वस्त्र) भी आवास में छोड़ी**

२०. सङ्घिकचीवरुप्पादकथा

३८. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु एको वस्सं वसि। तत्थ मनुस्सा [B.414] 'सङ्घस्स देमा' ति चीवरानि अदंसु। अथ खो तस्स भिक्खुनो एतदहोसि— [R.299] ''भगवतो पञ्ञत्तं 'चतुवग्गो पच्छिमो सङ्घो' ति। अहं चम्हि एकको। इमे च मनुस्सा 'सङ्घस्स देमा' ति चीवरानि अदंसु। यन्नूनाहं इमानि सङ्घिकानि चीवरानि सावत्थिं हरेय्यं'' ति। अथ खो सो भिक्खु तानि चीवरानि आदाय सावत्थिं गन्त्वा भगवतो एतमत्थं आरोचेसि। ''तुय्हेव, भिक्खु, तानि चीवरानि याव कठिनस्स उब्भाराया'' ति। इध पन, भिक्खवे, भिक्खु एको वस्सं वसति। तत्थ मनुस्सा 'सङ्घस्स देमा' ति चीवरानि देन्ति। **अनुजानामि, भिक्खवे, तस्सेव, तानि चीवरानि याव कठिनस्स उब्भाराय** ति।

(२) तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु उतुकालं एको वसि। तत्थ मनुस्सा 'सङ्घस्स देमा' ति चीवरानि अदंसु। अथ खो तस्स भिक्खुनो एतदहोसि—''भगवता पञ्ञत्तं 'चतुवग्गो पच्छिमो सङ्घो' ति। अहं चम्हि एकको। इमे च मनुस्सा 'सङ्घस्स देमा' ति चीवरानि अदंसु। यन्नूनाहं इमानि सङ्घिकानि चीवरानि सावत्थिं हरेय्यं'' ति। अथ खो सो भिक्खु तानि चीवरानि आदाय सावत्थिं गन्त्वा भिक्खूनं एतमत्थं आरोचेसि। भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''**अनुजानामि, भिक्खवे, सम्मुखीभूतेन सङ्घेन भाजेतुं।**'

(३) इध, पन, भिक्खवे, भिक्खु उतुकालं एको वसति। तत्थ मनुस्सा 'सङ्घस्स देमा' ति चीवरानि देन्ति। **अनुजानामि, भिक्खवे, तेन भिक्खुना तानि चीवरानि अधिट्ठातुं—मय्हिमानि चीवरानी** ति।

जा सकती है–(१) भिक्षु रोगी हो....पूर्ववत्....(५) यह वर्षिकशाटिका या तो न बनी हो, या ठीक से न बनी हो। इन पाँच कारणों से वर्षिकशाटिका भी आवास में छोड़कर ग्राम में प्रवेश किया जा सकता है।''

२०. सङ्घ के लिये मिले चीवर का विभाजन

सङ्घ के लिये दिये गये चीवर पर अधिकार— ३८. (१) उस समय एक भिक्षु ने अकेले ही वर्षावास किया। वहाँ कुछ श्रद्धालुजनों ने उसको 'सङ्घ के लिये देते हैं'—ऐसा कहकर कुछ चीवर दिये। तब उस भिक्षु को यह विचार हुआ—''भगवान् का आदेश है कि कम से कम चार भिक्षु एकत्र होने पर ही वे 'सङ्घ' के रूप में कहलायेंगे। मैं तो यहाँ एकाकी हूँ। इन श्रद्धालुओं ने मुझको 'सङ्घ के लिये देते हैं'—कहकर यह चीवर दान किया है। तो क्यों न मैं इन चीवरों को श्रावस्ती में भगवान् के सम्मुख ले चलूँ।'' तब उस भिक्षु ने उन चीवरों को श्रावस्ती में भगवान् के सम्मुख रख समग्र घटना सुना दी। भगवान् ने....''भिक्षु! जब तक 'कठिन' न मिल जाय इन चीवरों पर तेरा ही अधिकार है। और, भिक्षुओ! जहाँ कोई भिक्षु अकेला ही वर्षावास करे और उसे सङ्घ के निमित्त चीवर दान मिले तो ऐसी स्थिति में, **अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ! जब तक 'कठिन' न मिल जाय तब तक उन चीवरों पर उस वर्षावासी भिक्षु का ही अधिकार रहेगा।''**

(२) उस समय किसी अन्य भिक्षु ने एक ऋतु पर्यन्त अकेले ही किसी आवास में वास किया। वहाँ कुछ श्रद्धालुजनों ने...उपरिवत्....भगवान् से....''**भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ऐसे चीवरों को सङ्घ के सामने वितरण करने की।**''

(४) तस्स चे, भिक्खवे, भिक्खुनो तं चीवरं अनधिट्ठिते अञ्ञो भिक्खु आगच्छति, समको दातब्बो भागो। तेहि चे, भिक्खवे, भिक्खूहि तं चीवरं भाजियमाने, अपातिते कुसे, अञ्ञो भिक्खु आगच्छति, समको दातब्बो भागो। तेहि चे, भिक्खवे, भिक्खूहि तं चीवरं भाजियमाने, पातिते कुसे, अञ्ञो भिक्खु आगच्छति, नाकामा दातब्बो भागो ति।

(५) तेन खो पन समयेन द्वे भातिका थेरा—आयस्मा च इसिदासो आयस्मा च इसिभद्दो, सावत्थियं वस्संवुट्ठा अञ्ञतरं गामकावासं अगमंसु। मनुस्सा 'चिरस्सा पि थेरा आगता' ति सचीवरानि भत्तानि अदंसु। आवासिका भिक्खू थेरे पुच्छिंसु—"इमानि, [N.315] भन्ते, सङ्घिकानि चीवरानि थेरे आगम्म उप्पन्नानि, सादियिस्सन्ति थेरा भागं" [B.415] ति। थेरा एवमाहंसु—"यथा खो मयं, आवुसो, भगवता धम्मं देसितं आजानाम, तुम्हाकं येव तानि चीवरानि याव कठिनस्स उब्भाराया' ति।

(६) तेन खो पन समयेन तयो भिक्खू राजगहे वस्सं वसन्ति। तत्थ मनुस्सा सङ्घस्स देमा ति चीवरानि देन्ति। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—"भगवतो पञ्ञत्तं 'चतुवग्गो पच्छिमो सङ्घो' ति। मयं चम्हा तयो जना। इमे च मनुस्सा 'सङ्घस्स [R.300] देमा' ति चीवरानि देन्ति। कथं नु खो अम्हेहि पटिपज्जितब्बं" ति? तेन खो पन समयेन

---

(३) "परन्तु भिक्षुओ! कोई भिक्षु एक ऋतुपर्यन्त कहीं एकाकी वास करे वहाँ श्रद्धालुजन 'सङ्घ के लिये देते हैं'—कहकर उसे चीवरदान करें तो अनुज्ञा देता हूँ, भिक्षुओ! कि वह भिक्षु उन चीवरों को अपने स्वत्व में रखना चाहे तो रख सकता है। हाँ! यदि इसी बीच यदि कोई अन्य भिक्षु उस आवास में आ जाय तो उसे भी उस चीवर में से, यदि वह उपयौग में न लिया गया हो तो, समान भाग दे दे।

(४) "उस प्रथम भिक्षु द्वारा उपयोग में न लिये जाने पर, आगत भिक्षु को उसका अंश दिये जाते समय वस्त्र को समता में काटने के लिये कुश (माप का काष्ठदण्ड) रखने से पूर्व यदि कोई तीसरा भिक्षु आ जाय तो उसे भी उसमें से उस चीवर का भाग देना चाहिये। हाँ, उस पर कुश रखे जाने के बाद कोई अन्य भिक्षु वहाँ पहुँचता है तो, वे दोनों न देना चाहें तो, उस तीसरे भिक्षु को उस चीवर में कोई अंश लेने का अधिकार नहीं बनता।"

(५) उस समय दो सहोदर स्थविर—आयुष्मान् ऋषिदास एवं आयुष्मान् ऋषिभद्र श्रावस्ती में वर्षावास कर, एक ग्राम के आवास में जा ठहरे। वहाँ श्रद्धालु जनों ने, 'भिक्षु विलम्ब से आये हैं'—यह सोचकर उनके लिये चीवर एवं भोजन की व्यवस्था की। भोजन के बाद आवास के निवासी भिक्षुओं ने दोनों स्थविरों से पूछा—"भन्ते! ये चीवर सङ्घ के लिये दान के निमित्त आप दोनों के उद्देश्य से श्रद्धालुजनों द्वारा दिये गये हैं; क्या आप दोनों इस दान में से अपना अंश लेंगे?" स्थविरों ने कहा—"आयुष्मानों इस विषय में भगवान् की अनुमति का हमें जो ज्ञान है तदनुसार ये चीवर, कठिन का अवसर आने तक, आपके ही स्वामित्व में रहें।"

(६) उस समय तीन भिक्षु राजगृह मे वर्षावास कर रहे थे। वहाँ श्रद्धालुजन 'सङ्घ को देते हैं'—कहकर चीवरदान कर जाते थे। तब उन तीनों भिक्षुओं ने विचार हुआ—भगवान् ने कम से कम चार भिक्षुओं को 'सङ्घ' घोषित किया है, जब कि हम तीन ही हैं। और ये श्रद्धालु जन 'सङ्घ के निमित्त दे रहे हैं' कहकर दान देते हैं। हमें इस विषय में क्या करना चाहिये?" उस समय पाटलिपुत्र के कुक्कुटारामविहार में बहुत से स्थविर भिक्षु निवास करते थे; जैसे— आयुष्मान् नीलवासी, आयुष्मान्

सम्बहुला थेरा—आयस्मा च नीलवासी, आयस्मा च साणवासी, आयस्मा च गोपको, आयस्मा च भगु, आयस्मा च फळिकसन्दानो, पाटलिपुत्ते विहरन्ति कुक्कुटारामे। अथ खो ते भिक्खू पाटलिपुत्तं गन्त्वा थेरे पुच्छिंसु। थेरा एवमाहंसु—"यथा खो मयं, आवुसो, भगवता धम्मं देसितं आजानाम, तुम्हाकं येव तानि चीवरानि याव कठिनस्स उब्भाराया" ति[१]।

२१. उपनन्दसक्यपुत्तवत्थु

३९. तेन खो पन समयेन आयस्मा उपनन्दो सक्यपुत्तो सावत्थियं वस्संवुट्ठो अञ्ञतरं गामकावासं अगमासि। तत्थ च भिक्खू चीवरं भाजेतुकामा सन्निपतिंसु। ते एवमाहंसु—"इमानि खो, आवुसो, सङ्घिकानि चीवरानि भाजियिस्सन्ति, सादियिस्ससि भागं" ति? "आमावुसो, सादियिस्सामी" ति। ततो चीवरभागं गहेत्वा अञ्ञं आवासं अगमासि। तत्थ पि भिक्खू चीवरं भाजेतुकामा सन्निपतिंसु। ते पि एवमाहंसु—"इमानि खो, आवुसो, सङ्घिकानि चीवरानि भाजियिस्सन्ति, सादियिस्ससि भागं" ति? "आमावुसो, सादियिस्सामी" ति। ततो पि चीवरभागं गहेत्वा अञ्ञं आवासं अगमासि। तत्थ पि भिक्खू चीवरं भाजेतुकामा सन्निपतिंसु। ते पि एवमाहंसु—"इमानि खो, आवुसो, सङ्घिकानि चीवरानि भाजियिस्सन्ति, सादियिस्ससि भागं" ति? "आमावुसो, सादियिस्सामी" ति। ततो पि चीवरभागं गहेत्वा महन्तं चीवरभण्डिकं आदाय पुनदेव सावत्थिं पच्चागञ्छि। [B.416] भिक्खू एवमाहंसु—"महापुञ्ञोसि त्वं, आवुसो उपनन्द, बहुं ते चीवरं उप्पन्नं" ति। "कुतो मे, आवुसो, पुञ्ञं? इधाहं, आवुसो, सावत्थियं वस्संवुट्ठो अञ्ञतरं गामकावासं

साणवासी, आयुष्मान् गोपक, आयुष्मान् भृगु एवं आयुष्मान् फलिकसन्दान। तब उन तीनों भिक्षुओं ने पाटलिपुत्र नगर में जाकर उन स्थविरों से अपनी जिज्ञासा प्रकट की। स्थविरों ने निर्णय दिया—"आयुष्मानो! जैसा कि हम भगवदुपदिष्ट धर्म का आशय समझे हैं, जब तक कठिन न मिले, ये चीवर तुम्हारे ही होते हैं।[१]

२१. उपनन्दशाक्यपुत्रकथा

वर्षावास से अतिरिक्त स्थान में प्राप्त चीवर में अंशविभाजन नहीं— ३९. उस समय उपनन्द शाक्यपुत्र श्रावस्ती में वर्षावास कर एक ग्राम के आवास में गये। वहाँ सङ्घ के निमित्त मिला चीवर बाँटने के लिये भिक्षु एकत्र हुए थे। उन्होंने उपनन्द शाक्यपुत्र से पूछा—"आयुष्मन्! ये साङ्घिक चीवर बाँटे जा रहे है, क्या आप भी इनमें से अपना अंश लेंगे। उपनन्द शाक्यपुत्र "हाँ, लूँगा"—कहकर वहाँ से चीवर भाग लेकर दूसरे आवास में गये। वहाँ भी....वहाँ से भी...तीसरे आवास में गये। वहाँ भी ...वहाँ से भी चौथे आवास भी...तीसरे आवास में गये। वहाँ भी ..वहाँ से भी चौथे आवास मे...वहाँ से भी अपना चीवरभाग लेकर, उन चीवरों की बडी गठरी बाँध कर पुनः श्रावस्ती में लौट आये। उनके पास चीवरों की यह भारी गठरी देखकर श्रावस्तीवासी भिक्षुओं ने कहा— आयुष्मन्! उपनन्द तुम तो बहुत पुण्यशाली हो, तुम्हें तो बहुत चीवर मिला है।" (यह सुनकर उपनन्द बोले—) "अरे

---

१. **यहाँ श्री राहुल जी की टिप्पणी है**— यह अंश बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद का है। पाटलिपुत्र (पाटलिग्राम नहीं) नगर एवं कुक्कुटाराम विहार—दोनों ही भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद ही अस्तित्व में आये थे।

अगमासिं। तत्थ भिक्खू चीवरं भाजेतुकामा सन्निपतिंसु। ते मं एवमाहंसु—'इमानि खो, आवुसो, सङ्घिकानि चीवरानि भाजियिस्सन्ति, सादियिस्ससि भागं' ति? 'आमावुसो, सादियिस्सामी' ति। ततो चीवरभागं गहेत्वा अञ्ञं आवासं अगमासिं। तत्थ पि [R.301] भिक्खू चीवरं भाजेतुकामा सन्निपतिंसु। ते पि मं एवमाहंसु—'इमानि खो, आवुसो, [N.316] सङ्घिकानि चीवरानि भाजियिस्सन्ति, सादियिस्ससि भागं' ति? 'आमावुसो, सादियिस्सामी' ति। ततो पि चीवरभागं गहेत्वा अञ्ञं आवासं अगमासिं। तत्थ पि भिक्खू चीवरं भाजेतुकामा सन्निपतिंसु। ते पि मं एवमाहंसु—''इमानि खो, आवुसो, सङ्घिकानि चीवरानि भाजियिस्सन्ति, सादियिस्ससि भागं'' ति?''आमावुसो, सादियिस्सामी ति। ततो पि चीवरभागं अग्गहेसिं। एवं मे बहुं चीवरं उप्पन्नं'' ति।''किं पन त्वं, आवुसो उपनन्द, अञ्ञत्र वस्संवुट्ठो अञ्ञत्र चीवरभागं सादियी'' ति?''एवमावुसो'' ति। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा.... पे०.....ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम आयस्मा उपनन्दो सक्यपुत्तो अञ्ञत्र वस्संवुट्ठो अञ्ञत्र चीवरभागं सादियिस्सती'' ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं.... पे....''सच्चं किर त्वं, उपनन्द, अञ्ञत्र वस्संवुट्ठो अञ्ञत्र चीवरभागं सादियी'' ति? ''सच्चं भगवा'' ति। विगरहि बुद्धो भगवा....पे०....कथं हि नाम त्वं, मोघपुरिस, अञ्ञत्र वस्संवुट्ठो अञ्ञत्र चीवरभागं सादियिस्ससि। नेतं, मोघपुरिस, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**न, भिक्खवे, अञ्ञत्र वस्संवुट्ठेन अञ्ञत्र चीवरभागो सादितब्बो।** यो सादियेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा'' ति।

तेन खो पन समयेन आयस्मा उपनन्दो सक्यपुत्तो एको द्वीसु आवासेसु वस्सं वसि—'एवं मे बहुं चीवरं उप्पज्जिस्सती' ति। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—''कथं

आयुष्मानों! मेरा इतना पुण्य कहाँ! मैं तो यहाँ श्रावस्ती में वर्षावास कर यहाँ से....पूर्ववत्.. इस तरह मुझे यह बहुत सा चीवर मिल गया।''

(भिक्षुओं ने पूछा—) ''आयुष्मन् उपनन्द! क्या तुमने अन्यत्र वर्षावास करते हुए भी वहाँ से अन्यत्र जाकर चीवरदान लिया?'' ''हाँ, आयुष्मानो!'' तब वहाँ जो अल्पेच्छ. . पूर्ववत्....भिक्षु थे, वे खिन्न एवं उद्विग्न होते हुए सोचने लगे कि कैसे इस आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र ने अन्यत्र वर्षावास करके भी वहाँ से अन्यत्र जाकर चीवरदान लिया! उन्होंने भगवान् के सम्मुख जाकर यह सब घटना सुनायी।. पूर्ववत्.. ''उपनन्द! क्या तूँने वस्तुतः ही अन्यत्र वर्षावास करते हुए भी वहाँ से अन्यत्र जाकर चीवरदान लिया?'' ''हाँ, भन्ते!'' तब भगवान् ने उपनन्द के इस दुष्कृत्य की निन्दा करते हुए उससे कहा—'अरे निकम्मे आदमी! तूँने अन्यत्र वर्षावास करते हुए वहाँ से अन्यत्र जाकर चीवरदान क्यो लिया? मै यह बात तुम्हे इसलिये नहीं कह रहा हूँ कि इससे जो लोग सङ्घ में श्रद्धा नही रखते वे इसे सुन कर श्रद्धा करने लगे....पूर्ववत्....भगवान् ने भिक्षुओ को एकत्र बुलाकर कहा—''**भिक्षुओ! अन्यत्र वर्षावास करते हुए को वहाँ से अन्यत्र जाकर चीवरभाग नहीं स्वीकार करना चाहिये। जो करेगा उसे दुष्कृत दोष (आपत्ति) लगेगा।''**

दो स्थानों पर वर्षावास करने पर दो स्थानों से अर्ध अंश की प्राप्ति— उस समय आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र ने दूसरी चालाकी सोची। उसने आगामी वर्षावास में दो स्थानों पर वर्षावास किया कि यो मुझे अधिक चीवर मिलेगा। यह देखकर अन्य भिक्षुओ को यह विचार आया कि यह आयुष्मान्

नु खो आयस्मतो उपनन्दस्स सक्यपुत्तस्स चीवरपटिवीसो दातब्बो'' ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''देथ, भिक्खवे, मोघपुरिसस्स एकाधिप्पायं। **इध पन, भिक्खवे, भिक्खु एको द्वीसु आवासेसु वस्सं वसति—'एवं मे बहुं चीवरं उप्पज्जिस्सती' ति। सचे अमुत्र उपड्ढं अमुत्र उपड्ढं वसति, अमुत्र उपड्ढो अमुत्र उपड्ढो चीवरपटिवीसो दातब्बो। यत्थ वा पन बहुतरं वसति, ततो चीवरपटिवीसो दातब्बो''** ति।

२२. गिलानवत्थुकथा

[B.417] ४०. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो कुच्छिविकाराबाधो होति। सो सके मुत्तकरीसे पलिपन्नो सेति। अथ खो भगवा आयस्मता आनन्देन पच्छासमणेन सेनासनचारिकं आहिण्डन्तो येन तस्स भिक्खुनो विहारो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो भगवा तं भिक्खुं सके मुत्तकरीसे पलिपन्नं सयमानं, दिस्वान येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं एतदवोच—''किं ते, भिक्खु, आबाधो'' ति? ''कुच्छिविकारो मे, भगवा'' ति। ''अत्थि पन ते, भिक्खु, उपट्ठाको'' ति? ''नत्थि, भगवा'', ति। ''किस्स तं भिक्खू [R.302] न उपट्ठहन्ती'' ति? ''अहं खो, भन्ते, भिक्खूनं अकारको; तेन मं भिक्खू न [N.317] उपट्ठेन्ती'' ति। अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—''गच्छानन्द, उदकं आहर, इमं भिक्खु नहापेस्सामा'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुणित्वा उदकं आहरि। भगवा उदकं आसिञ्चि। आयस्मा आनन्दो परिधोवि। भगवा सीसतो अग्गहेसि, आयस्मा आनन्दो पादतो उच्चारेत्वा मञ्चके निपातेसुं। अथ खो

उपनन्द शाक्यपुत्र चीवर के लोभ में दो स्थानों पर वर्षावास क्यों कर रहा है? उन्होंने इस बात से खिन्न एवं उद्विग्न होकर यह सब भगवान् से जाकर कहा। भगवान् ने 'भिक्षुओ! उस निकम्मे को दोनों स्थानों में प्राप्य चीवर में से आधा आधा भाग दे दो।'—कहा। और आदेश दिया—''**भिक्षुओ! जो भी कोई भिक्षु इस लोभ में पड़कर कि दो स्थानों पर वर्षावास करने से द्विगुण चीवर की प्राप्ति होगी—यदि वह वर्षावासकाल में जहाँ आधे समय यहाँ आधे समय वहाँ रहे तो उसे दोनों स्थानों का प्राप्य अंश में से आधा भाग ही दिया जाना चाहिये। या फिर इस काल में जहाँ वह अधिक समय रहे वहाँ का ही पूरा भाग उसे दिया जाना चाहिये।**

२२. रोगी भिक्षु की सेवाकथा

४० किसी भिक्षु को उस समय प्रबल उदर रोग (अतिसार) हो गया। वह असहाय होने के कारण अपने मूत्र–पुरीष में ही लिपटा पड़ा रहता था। एक दिन आयुष्मान् आनन्द को साथ लिये हुए भगवान् उस रोगी भिक्षु के आवास पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर भगवान् ने उस भिक्षु से पूछा—''भिक्षु! तुम्हें क्या हुआ है?'' ''भगवन्! मुझे प्रबल अतिसार रोग हुआ है।'' ''भिक्षु! क्या तुम्हारा कोई परिचारक (सेवा शुश्रूषा करने वाला) नहीं है?'' ''नहीं भगवन्!'' ''क्यों कोई अन्य भिक्षु तुम्हारी सेवा–परिचर्या नहीं करता?'' ''क्योंकि, भन्ते! मैं किसी का कोई कार्य नहीं करता, अत. भिक्षु भी मेरी उपेक्षा करते हैं।'' तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आदेश दिया—''जाओ! आनन्द! जल लाओ। इस भिक्षु को स्नान करायेंगे।'' ''अच्छा, भन्ते!'' कहकर आयुष्मान् आनन्द ने उसको स्नान कराया। फिर भगवान् ने उस रोगी भिक्षु को सिर की तरफ से एवं आनन्द ने पैरों की तरफ से पकड़ कर शय्या पर लिटाया।

भगवा एतस्मिं निदाने एतस्मिं पकरणे भिक्खुसङ्घं सन्निपातापेत्वा भिक्खू पटिपुच्छि— "अत्थि, भिक्खवे, अमुकस्मिं विहारे भिक्खु गिलानो" ति? "अत्थि, भगवा" ति। "किं तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो आबाधो" ति? "तस्स, भन्ते, आयस्मतो कुच्छिविकाराबाधो" ति। "अत्थि पन, भिक्खवे, तस्स भिक्खुनो उपट्ठाको" ति? "नत्थि, भगवा" ति। "किस्स तं भिक्खू न उपट्ठेन्ती" ति? "एसो,भन्ते, भिक्खु भिक्खूनं अकारको; तेन तं भिक्खू न उपट्ठेन्ती" ति। "नत्थि वो, भिक्खवे, माता, नत्थि पिता, ये वो उपट्ठहेय्युं। तुम्हे चे, भिक्खवे, अञ्ञमञ्ञं न उपट्ठहिस्सथ, अथ खो चरहि उपट्ठहिस्सति! यो, भिक्खवे, मं उपट्ठहेय्य सो गिलानं उपट्ठहेय्य। सचे उपज्झायो होति, उपज्झायेन यावजीवं उपट्ठातब्बो; वुट्ठानमस्स आगमेतब्बं। सचे आचरियो होति, आचरियेन यावजीवं उपट्ठातब्बो; वुट्ठानमस्स आगमेतब्बं। सचे सद्धिविहारिको होति, सद्धिविहारिकेन यावजीवं उपट्ठातब्बो; [B.418] वुट्ठानमस्स आगमेतब्बं। सचे समानुपज्झायको होति, समानुपज्झायकेन यावजीवं उपट्ठातब्बो; वुट्ठानमस्स आगमेतब्बं। सचे न होति उपज्झायो वा आचरियो वा सद्धिविहारिको वा अन्तेवासिको वा समानुपज्झायको वा समानाचरियको वा, सङ्घेन उपट्ठातब्बो। नो चे उपट्ठहेय्य, आपत्ति दुक्कटस्स।

४१. "पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो गिलानो दूपट्ठो होति—१. असप्पायकारी होति, २. सप्पाये मत्तं न जानाति, ३. भेसज्जं न पटिसेविता होति, ४. अत्थकामस्स गिलानुपट्ठाकस्स यथाभूतं आबाधं नाविकत्ता होति—'अभिक्कमन्तं वा अभिक्कमती ति,

---

तब भगवान् ने इस प्रकरण में इस प्रसङ्ग में उस आवास में रहने वाले भिक्षुओं को बुलाकर पूछा—"भिक्षुओ! इस भिक्षु आवास में कोई रोगी भिक्षु है?" "हाँ, है, भगवन्" "उस भिक्षु को क्या रोग है?" "उस आयुष्मान् को प्रबल अतिसार रोग है।" "भिक्षुओ! उस भिक्षु का कोई परिचारक है?" "नहीं, भगवन्!" "आप भिक्षु उसकी परिचर्या क्यों नहीं करते?" "क्योकि, भन्ते! यह भिक्षु भी किसी अन्य भिक्षु के किसी कार्य में कोई सहयोग नहीं करता।" (तब भगवान् ने कहा—) "भिक्षुओ! यहाँ न तुम्हारी माता है, न तुम्हारे पिता; जो तुम्हारे रुग्ण हाने पर तुम्हारी सेवा शुश्रूषा कर सकें। यदि भिक्षुओ! ऐसी स्थिति में, तुम लोग परस्पर सहयोग नहीं करोगे तो दूसरा कौन तुम्हारी सहायता करने हेतु यहाँ आयगा। जो मेरी सेवा करना चाहता है, वही रोगी भिक्षु की भी सेवा करेगा। यदि उसका उपाध्याय है तो (उस) उपाध्याय को उस रोगी भिक्षु की तब तक सेवा परिचर्या करनी चाहिये जब तक कि वह पूर्ण स्वस्थ न हो जाय। यदि उसका आचार्य है तो.. पूर्ववत्.....यदि उसका साथ रहने वाला (सद्धिविहारिक) है तो.. यदि उसका शिष्य (अन्तेवासी) है तो....यदि एक ही गुरु से पढ़ा हुआ साथी (समानुपज्झायक=सतीर्थ्य) है तो.....यदि एक ही आचार्य से....जब तक कि वह रोगी भिक्षु पूर्ण स्वस्थ न हो जाय। यदि उसके पास उस रुग्णावस्था में उसका कोई उपाध्याय, आचार्य, साथी, शिष्य, एक गुरु एक आचार्य से पढ़ा हुआ साथी आदि कोई भी न हो तो सङ्घ को उसकी सेवा परिचर्या की व्यवस्था करनी चाहिये। जो ऐसे रोगी भिक्षु की सेवा शुश्रूषा न करे उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।

कैसे रोगी की सेवा दुष्कर है— ४१. "भिक्षुओ! इन पाँच कारणों से कोई रोगी कठिनता से सेवा करने योग्य होता है—१ रोगी कुपथ्य (असप्पाय=प्रतिकूल) करता हो, २. रोग में पथ्य

पटिक्कमन्तं वा पटिक्कमती ति, ठितं वा ठितो' ति, ५. उप्पन्नानं सारीरिकानं वेदनानं दुक्खानं तिब्बानं खरानं कटुकानं असातानं अमनापानं पाणहरानं अनधिवासकजातिको होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतो गिलानो दूपट्ठो होति।

"पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो गिलानो सूपट्ठो होति—१. सप्पायकारी [R.303] होति,२. सप्पाये मत्तं जानाति, ३. भेसज्जं पटिसेविता होति, ४. अत्थकामस्स गिलानुपट्ठाकस्स यथाभूतं आबाधं आविकत्ता होति— 'अभिक्कमन्तं वा अभिक्कमती ति, पटिक्कमन्तं वा पटिक्कमती ति, ठितं वा ठितो' ति, ५. उप्पन्नानं सारीरिकानं वेदनानं दुक्खानं तिब्बानं खरानं कटुकानं असातानं अमनापानं पाणहरानं अधिवासकजातिको होति। इमेहि [N.318] खो, भिक्खवे, पञ्चङ्गेहि समन्नागतो गिलानो सूपट्ठो होति।

"पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो गिलानुपट्ठाको नालं गिलानं उपट्ठातुं—न पटिबलो होति भेसज्जं संविधातुं, सप्पायासप्पायं न जानाति असप्पायं उपनामेति सप्पायं अपनामेति, आमिसन्तरो गिलानं उपट्ठाति नो मेत्तचित्तो, जेगुच्छी होति उच्चारं वा पस्सावं वा खेळं वा वन्तं वा नीहातुं, न पटिबलो होति गिलानं कालेन कालं धम्मिया कथाय सन्दस्सेतुं समादपेतुं समुत्तेजेतुं सम्पहंसेतुं। इमेहि खो, भिक्खवे,पञ्चहङ्गेहि समन्नागतो गिलानुपट्ठाको नालं गिलानं उपट्ठातुं।

"पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो गिलानुपट्ठाको अलं गिलानं उपट्ठातुं— [B.419] पटिबलो होति भेसज्जं संविधातुं, सप्पायासप्पायं जानाति असप्पायं अपनामेति सप्पायं उपनामेति, मेत्तचित्तो गिलानं उपट्ठाति नो आमिसन्तरो, अजेगुच्छी होति उच्चारं वा

(सप्पाय–अनुकूल) का महत्त्व न जानता हो, ३ समय पर औषध का सेवन न करता हो, ४. हितचिन्तक परिचारक से अपने रोग की वास्तविक स्थिति न बताता हो, एवं ५ रोग के समय उत्पन्न हुई दुःखदा, तीव्र, खर (कठोर), असह्य, प्रतिकूल, अप्रिय एवं प्राणहर शारीरिक वेदनाओं को सहन करने में समर्थ न हो। भिक्षुओ! ये पाँच कारण हैं जिनसे युक्त (समन्वागत) भिक्षु की परिचर्या दुष्कर होती है।

१ **सुकर सेवायोग्य रोगी**— "फिर भिक्षुओ! ये अन्य पाँच कारण हैं जिनसे युक्त रोगी की सेवा करना सरल (सूपट्ठ) होता है—१. रोगी पथ्य से रहता हो, २. कुपथ्य के दुष्परिणाम जानता हो, ३. समय पर ओषध–सेवन करने मे सावधान हो, ४. हितचिन्तक परिचारक को अपने रोग की समग्र वास्तविक स्थिति रोग के उतार–चढ़ाव आदि को बतलाने वाला हो, एवं ५. रोग के समय उत्पन्न हुई....उपरिवत् ...प्राणहर शारीरिक वेदनाओं को सहन करने की क्षमता रखता हो। ....पूर्ववत्....परिचर्या सुकर है।

अयोग्य परिचारक— "भिक्षुओ! इन पाँच बातों से युक्त रोगिपरिचारक रोगी की सेवा के लिये अयोग्य होता है—१. औषध ठीक तरह से बना कर देना न जानता हो, २. अनुकूल–प्रतिकूल को न जानता हुआ अनुकूल के स्थान पर प्रतिकूल एवं प्रतिकूल के स्थान पर अनुकूल परिचर्या करने लगे, ३. किसी लाभ के लोभ से रोगी की परिचर्या करता हो, उसका हितचिन्तन (मैत्रीचिन्तन) करते हुए नहीं; ४. उसका मल, मूत्र, खँखार, सिणक एवं वमन आदि उठाने मे घृणा करता हो, ५ समय समय पर रोगी को धार्मिक कथाएँ कह कर उस का मन बहलाने में रोग की कठोरता सहने में उसको साहस बन्धाने में समर्थ न हो।....।

पस्सावं वा खेळं वा वन्तं वा नीहातुं, पटिबलो होति गिलानं कालेन कालं धम्मिया कथाय सन्दस्सेतुं समादपेतुं समुत्तेजेतुं सम्पहंसेतुं। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतो गिलानुपट्ठाको अलं गिलानं उपट्ठातुं'' ति।

२३. मतसन्तककथा

४२. तेन खो पन समयेन द्वे भिक्खू कोसलेसु जनपदे अद्धानमग्गप्पटिपन्ना होन्ति। ते अञ्ञतरं आवासं उपगच्छिंसु। तत्थ अञ्ञतरो भिक्खु गिलानो होति। अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—''भगवता खो, आवुसो, गिलानुपट्ठानं वण्णितं। हन्द, मयं, आवुसो, इमं भिक्खुं उपट्ठहेमा'' ति। ते तं उपट्ठहिंसु। सो तेहि उपट्ठहियमानो कालमकासि। अथ खो ते भिक्खू तस्स भिक्खुनो पत्तचीवरं आदाय सावत्थिं गन्त्वा भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। ''भिक्खुस्स, भिक्खवे, कालङ्कते सङ्घो सामी पत्तचीवरे, अपि च गिलानुपट्ठाका बहूपकारा। **अनुजानामि, भिक्खवे, सङ्घेन तिचीवरं च पत्तं च गिलानुपट्ठाकानं दातुं।** [R.304]

एवं च पन, भिक्खवे, दातब्बं। तेन गिलानुपट्ठाकेन भिक्खुना सङ्घं उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—''इत्थन्नामो, भन्ते, भिक्खु कालङ्कतो। इदं तस्स तिचीवरं च पत्तो चा'' ति। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

''सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। इत्थन्नामो भिक्खु कालङ्कतो। इदं तस्स तिचीवरं च पत्तो

योग्य रोगी परिचारक-- ''परन्तु, भिक्षुओ! इन पाँच बातों से युक्त रोगि-परिचारक रोगी की परिचर्या के लिये उपयुक्त होता है- १. औषध को ठीक तरह बनाकर देना जानता हो; २. अनुकूल को अनुकूल की तरह एवं प्रतिकूल को प्रतिकूल जानकर रोगी की परिचर्या करे; ३. लोभचित्त से नहीं अपितु मैत्रीचित्त से रोगी की परिचर्या करे; ४. रोगी का मल, मूत्र, कफ एव वमन उठाने में घृणा न करे; ५. एवं रोगी को समय समय पर धार्मिक कथाएँ सुनाकर उसका मन बहलाता रहे तथा उसे रोग के सहने का साहस बँधाता रहे। भिक्षुओ! इन पाँच बातों से युक्त परिचारक ही रोगी की परिचर्या के लिये उपयोगी होता है।

२३. मृत भिक्षु एवं श्रामणेर की वस्तुओं का स्वामी सङ्घ होता है

४२. उस समय दो भिक्षु कोशल देश के किसी जनपद मे मार्ग से जा रहे थे। यात्रा के बीच में ही वे दोनों किसी आवास में ठहर गये। वहाँ दोनों मे से एक भिक्षु रुग्ण (ग्लान) हो गया। तब वहाँ के निवासी भिक्षुओं ने विचार किया कि भगवान् ने रोगी भिक्षु की सेवा परिचर्या का आदेश किया है., अतः हम इस रोगी भिक्षु की सेवा परिचर्या करें। यों, भिक्षुओं ने रोगी भिक्षु की यथासम्भव परिचर्या की। परन्तु वह रोगी सेवा करने पर भी अन्त में मर ही गया। तब वे भिक्षु उस मृत भिक्षु का पात्र-चीवर लेकर, श्रावस्ती जाकर, भगवान् के सम्मुख पहुँचे। उन्होंने भगवान् को सब स्थिति बतायी। भगवान् ने कहा--''**भिक्षुओ! यद्यपि किसी भिक्षु के मर जाने पर, उसके पात्र-चीवर का स्वामी सङ्घ होता है; परन्तु उस मृत रोगी की, उसकी रुग्णावस्था में परिचारक ने बहुत सेवा की होती है; अतः उसके बदले में ये पात्र चीवर उन परिचारकों में ही बाँट देने चाहिये।**

उस परिचारक को पात्र चीवर देने की यह पद्धति है। उस मृत रोगी के परिचारक को सङ्घ के सम्मुख उपस्थित होकर यों निवेदन करना चाहिये—

'भन्ते सङ्घ मेरा निवेदन सुने। इस नाम के भिक्षु का देहावसान हो गया है। यह उसका पात्र

च। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो इमं तिचीवरं च पत्तं च गिलानुपट्ठकानं ददेय्य। एसा ञत्ति।

[N.319] "सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। इत्थन्नामो भिक्खु कालङ्कतो। इदं तस्स तिचीवरं च पत्तो च। सङ्घो इमं तिचीवरं च पत्तं च गिलानुपट्ठाकानं देति। यस्सायस्मतो खमति इमस्स तिचीवरस्स च पत्तस्स च गिलानुपट्ठाकानं दानं, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

[B.420] "दिन्नं इदं सङ्घेन तिचीवरं च पत्तो च गिलानुपट्ठाकानं। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी" ति।

४३. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो सामणेरो कालङ्कतो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **सामणेरस्स, भिक्खवे, कालङ्कते सङ्घो सामी पत्तचीवरे, अपि च गिलानुपट्ठाका बहूपकारा। अनुजानामि, भिक्खवे, सङ्घेन चीवरं च पत्तं च गिलानुपट्ठाकानं दातुं।**

एवं च पन, भिक्खवे, दातब्बं। तेन गिलानुपट्ठाकेन भिक्खुना सङ्घं उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—"इत्थन्नामो, भन्ते, सामणेरो कालङ्कतो, इदं तस्स चीवरं च पत्तो चा" ति। ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। इत्थन्नामो सामणेरो कालङ्कतो। इदं तस्स चीवरं च पत्तो च। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो इमं चीवरं च पत्तं च गिलानुपट्ठाकानं ददेय्य। एसा ञत्ति।

"सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। इत्थन्नामो सामणेरो कालङ्कतो। इदं तस्स चीवरं च पत्तो च। सङ्घो इमं चीवरं च पत्तं च गिलानुपट्ठाकानं देति। यस्सायस्मतो खमति इमस्स चीवरस्स च पत्तस्स च गिलानुपट्ठाकानं दानं, सो तुण्हस्स; यस्स नक्खमति, सो भासेय्य।

"दिन्नं इदं सङ्घेन चीवरं च पत्तो च गिलानुपट्ठाकानं। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धायामी" ति।

४४. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु च सामणेरो च गिलानं उपट्ठहिंसु। सो [R.305] तेहि उपट्ठहियमानो कालमकासि। अथ खो तस्स गिलानुपट्ठाकस्स भिक्खुनो

एवं त्रिचीवर हैं। यदि सङ्घ को उचित लगे तो ये पात्र चीवर मृत रोगी के परिचारक को दे दिये जाँय। यह मेरी ज्ञप्ति (सूचना) है।

"फिर सङ्घ में कोई चतुर समर्थ भिक्षु सङ्घ को यों सूचित करे—'भन्ते सङ्घ मेरी कही बात सुने। इस नाम के भिक्षु का देहावसान हो गया है, यह उसका पात्र एवं त्रिचीवर है। सङ्घ इस पात्र एव त्रिचीवर को उस रोगी की सेवा करने वाले परिचारक भिक्षु को देता है। जिस आयुष्मान् को इस पात्र एवं त्रिचीवर का रागी परिचारक को देना उचित लगे, वह चुप रहे और जिसे उचित न लगे वह अपना मत प्रकट करे।'

'सङ्घ यह पात्र एवं त्रिचीवर उक्त परिचारक को देना उचित समझता है, इसीलिये सङ्घ चुप है—ऐसी मेरी धारणा (निश्चय) है।"

४३ उस समय किसी श्रामणेर का देहावसान हो गया। भगवान् के सम्मुख यह बात रखी गयी। भगवान् ने कहा—'पूर्ववत्....(मृत भिक्षु वाले पाठ को 'श्रामणेर' शब्द लगाकर दोहरा लें)।

४४ (क) उस समय किसी रोगी भिक्षु की दो परिचारकों ने परिचर्या की। उनमें एक था

एतदहोसि—"कथं नु खो गिलानुपट्ठाकस्स सामणेरस्स चीवरपटिवीसो दातब्बो" ति? भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "**अनुजानामि, भिक्खवे, गिलानुपट्ठाकस्स सामणेरस्स समकं पटिवीसं दातुं**" ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु बहुभण्डो बहुपरिक्खारो कालङ्कतो होति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। "भिक्खुस्स, भिक्खवे, कालङ्कते सङ्घो सामी पत्तचीवरे, अपि च गिलानुपट्ठाका बहूपकारा। **अनुजानामि, भिक्खवे, सङ्घेन तिचीवरं च** [B.421] **पत्तं च गिलानुपट्ठाकानं दातुं। यं तत्थ लहुभण्डं लहुपरिक्खारं तं सम्मुखीभूतेन सङ्घेन भाजेतुं। यं तत्थ गरुभण्डं गरुपरिक्खारं तं आगतानागतस्स चातुद्दिसस्स सङ्घस्स अविस्सज्जिकं अवेभङ्गिकं**" ति।

२४. नग्गिकपटिक्खेपकथा

४५. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु नग्गो हुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—"भगवा, भन्ते, अनेकपरियायेन अप्पिच्छस्स [N.320] सन्तुट्ठस्स सल्लेखस्स धुतस्स पासादिकस्स अपचयस्स विरियारम्भस्स वण्णवादी। इदं, भन्ते, नग्गियं अनेकपरियायेन अप्पिच्छताय सन्तुट्ठिताय सल्लेखाय धुतत्ताय पासादिकाय अपचयाय विरियारम्भाय संवत्तति। साधु, भन्ते, भगवा भिक्खूनं नग्गियं अनुजानातू" ति।

भिक्षु एवं श्रामणेर। दोनों द्वारा अत्यधिक सेवा किये जाने पर भी वह रोगी भिक्षु अन्त में मरणभाव को प्राप्त हो ही गया। तब उस परिचारक भिक्षु को यह विचार हुआ—"इस परिचारक श्रामणेर को मृत भिक्षु के चीवर का कितना भाग दिया जाय?" भगवान् के सम्मुख यह समस्या रखे जाने पर भगवान् ने आदेश दिया— "**भिक्षुओ! अनुज्ञा देता हूँ ऐसे समय में श्रामणेर को मृत भिक्षु की वस्तुओं में से समान भाग देने की।**

(ख) उस समय कोई भिक्षु बहुत सा सामान एवं बहुत सी वस्तुएँ छोडकर मर गया। भगवान् को यह सब बताया गया। भगवान् ने कहा— "भिक्षुओ! भिक्षु के मरणानन्तर, उसके पात्र चीवर आदि का स्वामी सङ्घ होता है। यदि रोगी–परिचारक ने उसकी बहुत सेवा की हो तो सङ्घ को अनुमति देता हूँ कि वह उस मृत रोगी के त्रिचीवर एवं पात्र परिचारक को देने की। जो उसके छोटे–छोटे भाण्ड एव सामान हो उन्हे परिचारक आदि मे बॉट देने की। परन्तु जो उस मृत रोगी के बड़े सामान बड़े भाण्ड थे उन्हे विना दिये, विना बॉटे सुरक्षित रखने की अनुमति देता हूँ। क्योकि वे भाण्ड आदि उस विहार मे आने वाले या वर्तमान भिक्षुओं के उपयोग में आ सकते हैं, अत. वे अविसर्जनीय (अदेय) हैं, अविभाज्य (अवेभङ्गिक) हैं।"

२४. भिक्षु को नग्न रहने का निषेध

४५. उस समय कोई भिक्षु नग्न (निर्वस्त्र) होकर भगवान् के सामने गया। सामने जाकर वह भगवान् से यों बोला—"भगवान् ने नाना प्रकार से त्यागमय जीवन (अल्पेच्छता), सन्तोष, तप (सल्लेख), अवधूत रहना, प्रासादिकता, अपरिग्रह एव उपासना में उद्योग की प्रशसा की है। भन्ते! यह नग्नता उपर्युक्त गुणो की तरफ साधक को प्रवृत्त करती है। अतः अच्छा हो, भन्ते! कि आप भिक्षुओं को नग्न रहने का आदेश दे दे।" भगवान् ने उस भिक्षु के कथन की निन्दा करते हुए कहा—"ओ निकम्मे आदमी! यह (तेरा कथन) अयुक्त है, अनुचित है, अप्रतिरूप (अननुकूल) है, श्रमणो के आचार

विगरहि बुद्धो भगवा—"अननुच्छविकं, मोघपुरिस, अननुलोमिकं अप्पत्तिरूपं अस्सामणकं अकप्पियं अकरणीयं। कथं हि नाम त्वं, मोघपुरिस, नग्गियं तित्थियसमादानं समादियिस्ससि। नेतं, मोघपुरिस, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०...." विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, नग्गियं तित्थियसमादानं समादियितब्बं। यो समादियेय्य,** [R.306] **आपत्ति थुल्लच्चयस्सा**" ति।

२५. कुसचीरादिपटिक्खेपकथा

४६. तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु कुसचीरं निवासेत्वा....पे०....वाकचीरं निवासेत्वा....पे०....फलकचीरं निवासेत्वा....पे०....केसकम्बलं निवासेत्वा....पे०.... वाळकम्बलं निवासेत्वा....पे०....उलूकपक्खं निवासेत्वा...पे०....अजिनक्खिपं निवासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—"भगवा, भन्ते, अनेकपरियायेन अप्पिच्छस्स सन्तुट्ठस्स सल्लेखस्स धुतस्स पासादिकस्स अपचयस्स विरियारम्भस्स वण्णवादी। इदं, भन्ते, अजिनक्खिपं अनेकपरियायेन अप्पिच्छताय सन्तुट्ठिताय सल्लेखाय धुतत्ताय [B.422] पासादिकताय अपचयाय विरियारम्भाय संवत्तति। साधु, भन्ते, भगवा भिक्खूनं अजिनक्खिपं अनुजानातू" ति। विगरहि बुद्धो भगवा—"अननुच्छविकं, मोघपुरिस, अननुलोमिकं अप्पतिरूपं अस्सामणकं अकप्पियं अकरणीयं। कथं हि नाम त्वं, मोघपुरिस, अजिनक्खिपं तित्थियधजं धारेस्ससि। नेतं, मोघपुरिस, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०...." विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, अजिनक्खिपं तित्थियधजं धारेतब्बं। यो धारेय्य, आपत्ति थुल्लच्चयस्सा**" ति।

तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु अक्कनाळं निवासेत्वा....पे०....पोत्थकं निवासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—"भगवा, भन्ते, अनेकपरियायेन अप्पिच्छस्स सन्तुट्ठस्स सल्लेखस्स धुतस्स पासादिकस्स अपचयस्स विरियारम्भस्स, वण्णवादी। अयं, भन्ते, पोत्थको अनेकपरियायेन अप्पिच्छताय सन्तुट्ठिताय

से विरुद्ध है, अतः अविहित एवं अकरणीय है। कैसे मोघपुरुष! तूने इस तीर्थिकों द्वारा अपनायी जाने वाली नग्नता को स्वीकार कर लिया। मेरा यह कथन ...पूर्ववत्....। फिर भगवान् ने इस प्रसङ्ग में भिक्षुओं को एकत्र कराकर स्पष्ट आदेश दिया— "**भिक्षुओ! किसी भी भिक्षु को तीर्थिकों के सामान नग्न (निर्वस्त्र) रहने का स्वभाव नहीं डालना चाहिये। जो नग्न रहे उसे स्थूलात्यय दोष लगेगा।**"

२५. कुश चीर आदि धारण का निषेध

४६ उस समय कुश का बना वस्त्र पहनकर....पूर्ववत्...वल्कल-वस्त्र पहन कर...फलक (काष्ठ) चीवर पहन कर ...केशों से बना कम्बल ओढकर...वाल-कम्बल ओढ़कर...उलू के पङ्खो से बना वस्त्र पहनकर....मृग चर्म से बना वस्त्र पहनकर भगवान् के सामने आया और उनसे यह बोला—"भगवन्! आपने नाना प्रकार से.. .उपरिवत्.. *(पैरा नं ४५ की तरह समग्र पाठ को दोहरा लें)* **मृग चर्म, जो कि तीर्थिकों की पहचान है, नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसको स्थूलात्यय दोष लगेगा।**

उस समय कोई भिक्षु अर्क नाल (मदार की छाल) से बना वस्त्र....पोत्थक (बोरा) से बना

सल्लेखाय धुतत्ताय पासादिकताय अपचयाय विरियारम्भाय संवत्तति। साधु, भन्ते, भगवा भिक्खूनं पोत्थकं अनुजानातू'' ति। विगरहि बुद्धो भगवा—''अननुच्छविकं, मोघपुरिस, अननुलोमिकं अप्पतिरूपं अस्सामणकं अकप्पियं अकरणीयं। कथं हि नाम त्वं, मोघपुरिस, पोत्थकं निवासेस्सति। नेतं, मोघपुरिस, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०....'' विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—''**न, भिक्खवे, पोत्थको निवासेतब्बो।** [N.321] **यो निवासेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**'' ति।

२६. सब्बनीलकादिपटिक्खेपकथा

४७. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सब्बनीलकानि चीवरानि धारेन्ति....पे०....सब्बपीतकानि चीवरानि धारेन्ति....पे०....सब्बलोहितकानि चीवरानि धारेन्ति....पे०....सब्बमञ्जिट्ठकानि चीवरानि धारेन्ति...पे०....सब्बकण्हानि चीवरानि धारेन्ति.... पे०....अच्छिन्नदसानि चीवरानि धारेन्ति....पे०...फणदसानि चीवरानि धारेन्ति....पे०...कञ्चुकं धारेन्ति...पे०....तिरीटकं धारेन्ति....पे०....वेठनं धारेन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया वेठनं धारेस्सन्ति, सेय्यथापि गिही कामभोगिनो'' ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं। **न, भिक्खवे,** [B.423] **सब्बनीलकानि चीवरानि धारेतब्बानि, न सब्बपीतकानि चीवरानि धारेतब्बानि, न सब्बलोहितकानि चीवरानि धारेतब्बानि, न सब्बमञ्जिट्ठकानि चीवरानि धारेतब्बानि, न सब्बकण्हानि चीवरानि धारेतब्बानि, न सब्बमहारङ्गरत्तानि चीवरानि धारेतब्बानि, न सब्बमहानामरत्तानि चीवरानि धारेतब्बानि, न अच्छिन्नदसानि चीवरानि धारेतब्बानि, न दीघदसानि चीवरानि धारेतब्बानि, न पुप्फदसानि चीवरानि धारेतब्बानि, न फणदसानि चीवरानि धारेतब्बानि, न कञ्चुकं धारेतब्बं, न तिरीटकं धारेतब्बं, न वेठनं धारेतब्बं। यो धारेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा** ति।

२७. वस्संवुट्ठानं अनुप्पन्नचीवरकथा

४८. तेन खो पन समयेन वस्संवुट्ठा भिक्खू अनुप्पन्ने चीवरे पक्कमन्ति पि, [R.307]

वस्त्र पहनकर...पूर्व....*(पैरा सं. ४५ की तरह समग्र पाठ दोहरा लें)* **भिक्षुओ! टाट (बोरा) से बना वस्त्र नहीं पहनना चाहिये। जो पहनेगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा।**

२६. सर्वथा नील आदि रङ्गों से रङ्गे वस्त्र के धारण का निषेध

४७. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु पूर्णतः नीले रङ्ग से रङ्गे.. पीले रङ्ग से रङ्गे....लाल रङ्ग से रङ्गे....मजीठ रङ्ग से रङ्गे .....काले रङ्ग से रङ्गे....महारङ्ग से रङ्गे. .महानाम (हल्दी के) रङ्ग से रङ्गे चीवर धारण करने लगे, कटी किनारी वाले....लम्बी किनारी वाले चीवरों को धारण करने लगे; फूलदार किनारी वाले....साँप के फण की तरह किनारी वाले....कञ्चुक (पारदर्शी).....तिरीटक (छाल) का बना चीवर पहनने लगे और वैसा ही वेष्टन (कायबन्धन) बाँधने लगे। गृहस्थ जन इन्हें देखकर खिन्न एवं उद्विग्न होने लगे कि कैसे ये भले दिखायी देने वाले श्रमण शाक्यपुत्र भी गृहस्थो के जैसा वेष्टन बाँधते है। उन्होंने भगवान् से यह सब कहा। भगवान् ने आदेश दिया—''**भिक्षुओ! न पूर्णतः नीले रङ्ग से रङ्गे ....पूर्ववत्.... वेठन धारण करना चाहिये। जो ऐसा करेगा उसे 'दुष्कृत' दोष लगेगा।**''

विब्भमन्ति पि, कालं पि करोन्ति, सामणेरा पि पटिजानन्ति, सिक्खं पच्चक्खातका पि पटिजानन्ति, अन्तिमवत्थुं अज्झापन्नका पि पटिजानन्ति, उम्मत्तका पि पटिजानन्ति, खित्तचित्ता पि पटिजानन्ति, वेदनाट्टा पि पटिजानन्ति, आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तका पि पटिजानन्ति, आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खित्तका पि पटिजानन्ति, पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिसग्गे उक्खित्तका पि पटिजानन्ति, पण्डका पि पटिजानन्ति, थेय्यसंवासका पि पटिजानन्ति, तित्थियपक्कन्तका पि पटिजानन्ति, तिरच्छानगता पि पटिजानन्ति, मातुघातका पि पटिजानन्ति, पितुघातका पि पटिजानन्ति, अरहन्तघातका पि पटिजानन्ति, भिक्खुनिदूसका पि पटिजानन्ति, सङ्घभेदका पि पटिजानन्ति, लोहितुप्पादका पि पटिजानन्ति, उभतोब्यञ्जनका पि पटिजानन्ति। [N.322] भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

४९. **''इध पन, भिक्खवे, वस्संवुट्ठो भिक्खु अनुप्पन्ने चीवरे पक्कमति, सन्ते पतिरूपे गाहके दातब्बं।**

''इध पन, भिक्खवे, वस्संवुट्ठो भिक्खु अनुप्पन्ने चीवरे विब्भमति, कालं करोति, सामणेरो पटिजानाति, सिक्खं पच्चक्खातको पटिजानाति, अन्तिमवत्थु अज्झापन्नको पटिजानाति, सङ्घो सामी।

''इध पन, भिक्खवे, वस्संवुट्ठो भिक्खु अनुप्पन्ने चीवरे उम्मत्तको पटिजानाति, खित्तचित्तो पटिजानाति, वेदनाट्टो पटिजानाति, आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तको [B.424] पटिजानाति, आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खित्तको पटिजानाति, पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खित्तको पटिजानाति, सन्ते पतिरूपे गाहके दातब्बं।

''इध पन, भिक्खवे, वस्संवुट्ठो भिक्खु अनुप्पन्ने चीवरे पण्डको पटिजानाति, थेय्यसंवासको पटिजानाति, तित्थियपक्कन्तको पटिजानाति, तिरच्छानगतो

---

२७. वर्षावासिकों द्वारा न लिये चीवरों का उपयोग

४८. उस समय वर्षावासिक भिक्षु, चीवर न मिलने के कारण, अन्यत्र चले जाते थे या भिक्षु आश्रम ही छोड़ देते थे; या मर जाते थे। श्रामणेर बन जाते थे, भिक्षु–शिक्षा का प्रत्याख्यान करने वाले बन जाते थे। या अन्तिम वस्तु (चार पाराजिक) के मानने वाले बन जाते थे। उन्मत्त.. विक्षिप्तचित्त.....वेदनार्त.... दोष (आपत्ति) न देखने पर भी अपने को सङ्घ से निष्कासित माने जानेवाले, मिथ्यादृष्टियों को न त्यागने से भी.. पण्डक (नपुंसक) भी हो जाते थे, चोरी से काषाय वस्त्र पहनने वाले....पुनः तीर्थिकों के धर्म में लौट जाने वाले.. पशु और प्रेत योनि में चले जाने वाले....मातृघातक....पितृघातक...अर्हद्घातक.... भिक्षुणीदूषक....सङ्घभेदक....बुद्ध के रक्तोत्पादक दोष को मानने वाले....स्त्री पुरुष–दोनों के चिह्नो वाले बन जाते थे। भगवान् से यह बात कही गयी। भगवान् ने कहा–

४९ (क) **यदि, भिक्षुओ! वर्षावास करके चीवर न मिलने पर कोई भिक्षु चला जाता है तो योग्य, संग्रह करने योग्य भिक्षु को वह दे देना चाहिये।**

(ख) यदि, भिक्षुओ! वर्षावास सम्पन्न करने वाला भिक्षु चीवर न मिलने से भिक्षु आश्रम छोड जाता है, मर जाता है, श्रामणेर बन जाता है, भिक्षुशिक्षा का प्रत्याख्यान करने वाला बन जाता है, पाराजिक का दोषी बन जाता है, तो सङ्घ उसके चीवर का स्वामी होगा।

पटिजानाति, मातुघातको पटिजानाति, पितुघातको पटिजानाति, अरहन्तघातको पटिजानाति, भिक्खुनिदूसको पटिजानाति, सङ्घभेदको पटिजानाति, लोहितुप्पादको पटिजानाति, उभतोब्यञ्जनको पटिजानाति, सङ्घो सामी।

५०. ''इध पन, भिक्खवे, वस्संवुट्ठो भिक्खु उप्पन्ने चीवरे अभाजिते पक्कमति, सन्ते पतिरूपे गाहके दातब्बं।

''इध पन, भिक्खवे, वस्संवुट्ठो भिक्खु उप्पन्ने चीवरे अभाजिते विब्भमति, कालं करोति, सामणेरो पटिजानाति, सिक्खं पच्चक्खातको पटिजानाति, अन्तिमवत्थुं अज्झापन्नको पटिजानाति, सङ्घो सामी।

''इध पन, भिक्खवे, वस्संवुट्ठो भिक्खु उप्पन्ने चीवरे अभाजिते उम्मत्तको पटिजानाति। खित्तचित्तो पटिजानाति, वेदनाट्टो पटिजानाति, आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तको पटिजानाति, आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खित्तको पटिजानाति, पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खित्तको पटिजानाति, सन्ते पतिरूपे गाहके दातब्बं।

''इध पन, भिक्खवे, वस्संवुट्ठो भिक्खु उप्पन्ने चीवरे अभाजिते पण्डको पटिजानाति, थेय्यसंवासको पटिपजानाति, तित्थियपक्कन्तो पटिजानाति, तिरच्छानगतो पटिजानाति, मातुघातको पटिजानाति, पितुघातको पटिजानाति, अरहन्तघातको पटिजानाति, भिक्खुनिदूसको पटिजानाति, सङ्घभेदको पटिजानाति, लोहितुप्पादको पटिजानाति, उभतोब्यञ्जनको पटिजानाति, सङ्घो सामी।

२८. सङ्घे भिन्ने चीवरुप्पादकथा

५१. ''इध पन, भिक्खवे, वस्संवुट्ठानं भिक्खूनं अनुप्पन्ने [N.323, B.425]

(ग) यदि...भिक्षु उन्मत्तक....मिथ्यादृष्टियों को न त्यागने से उत्क्षिप्तक माना जाता है तो योग्य, संग्रह करने योग्य भिक्षु मिलने पर वह चीवर उसे दे देना चाहिये।

(घ) यदि वर्षावास करने वाला भिक्षु चीवर न मिलने पर पण्डक....पूर्ववत्.....या स्त्री–पुरुष दोनों चिह्नों वाला बन जाता है तो उसके चीवर का स्वामी सङ्घ होता है।

५०. (क) ''भिक्षुओ! यदि वर्षावासिक भिक्षु चीवर मिल जाने पर भी उसका विभाजन–वितरण होने से पूर्व ही वहाँ से चला जाता है तो योग्य एवं सङ्घ के लिये संग्रहणीय भिक्षु को वह चीवर दे देना चाहिये।

(ख) ''भिक्षुओ! यदि ..पूर्व ही अन्यत्र चला जाता है, मर जाता है, श्रामणेर.....अन्तिम वस्तु (पाराजिक) का दोषी हो जाता है तो उसके चीवर का स्वामी सङ्घ माना जाता है।

(ग) ''भिक्षुओ! यदि.. पूर्व ही उन्मत्त....विक्षिप्तचित्त....वेदनार्त ..मिथ्यादृष्टियों को न त्याग से उत्क्षिप्तक कर दिया जाता है या पापमय दृष्टि को न छोडने के कारण उत्क्षिप्तक मान लिया जाता है तो उसका चीवर किसी योग्य ग्राहक भिक्षु को दे देना चाहिये।

(घ) भिक्षुओ! यदि....विभाजन होने से पूर्व ही पण्डक मान लिया जाता है....पूर्ववत्.. लोहितोत्पादक या स्त्री–पुरुष उभयलिङ्ग वाला मान लिया जाता है तो उसके चीवर का स्वामी सङ्घ होता है।

२८. सङ्घभेद के बाद प्राप्त चीवर का निर्णय

५१ (क) यहाँ, भिक्षुओ! वर्षावासिक भिक्षुओं को चीवरप्राप्ति से पूर्व ही सङ्घ में फूट पड़ जाय।

चीवरे सङ्घो भिज्जति। तत्थ मनुस्सा एकस्मिं पक्खे उदकं देन्ति, एकस्मिं पक्खे चीवरं देन्ति—'सङ्घस्स देमा' ति। सङ्घस्सेवेतं।

"इध पन, भिक्खवे, वस्संवुट्ठानं भिक्खूनं अनुप्पन्ने चीवरे सङ्घो भिज्जति। तत्थ मनुस्सा एकस्मिं पक्खे उदकं देन्ति, तस्मिं येव चीवरं देन्ति—'सङ्घस्स देमा' ति। [R.308] **सङ्घस्सेवेतं।**

"इध पन, भिक्खवे, वस्संवुट्ठानं भिक्खूनं अनुप्पन्ने चीवरे सङ्घो भिज्जति। तत्थ मनुस्सा एकस्मिं पक्खे उदकं देन्ति, एकस्मिं पक्खे चीवरं देन्ति—'पक्खस्स देमा' ति। पक्खस्सेवेतं।

"इध पन, भिक्खवे, वस्संवुट्ठानं भिक्खूनं अनुप्पन्ने चीवरे सङ्घो भिज्जति। तत्थ मनुस्सा एकस्मिं पक्खे उदकं देन्ति, तस्मिं येव पक्खे चीवरं देन्ति—'पक्खस्स देमा' ति। पक्खस्सेवेतं।

"इध पन, भिक्खवे, वस्संवुट्ठानं भिक्खूनं उप्पन्ने चीवरे अभाजिते सङ्घो भिज्जति। सब्बेसं समकं भाजेतब्बं" ति।

२९. दुग्गहितसुग्गहितादिकथा

५२. तेन खो पन समयेन आयस्मा रेवतो अञ्ञतरस्स भिक्खुनो हत्थे आयस्मतो सारिपुत्तस्स चीवरं पाहेसि—"इमं चीवरं थेरस्स देही" ति। अथ खो सो भिक्खु अन्तरामग्गे आयस्मतो रेवतस्स विस्सासा तं चीवरं अग्गहेसि। अथ खो आयस्मा रेवतो आयस्मता सारिपुत्तेन समागन्त्वा पुच्छि—"अहं, भन्ते, थेरस्स चीवरं पाहेसिं। सम्पत्तं तं चीवरं ति"?

वहाँ श्रद्धालु जन एक पक्ष को (सङ्कल्प का) जल मात्र दें और एक पक्ष को 'सङ्घ को देते है'—कहकर चीवर दें तो वह चीवर सङ्घ का ही होता है।

(ख) "यहाँ, भिक्षुओ! वर्षावासिक भिक्षुओं का श्रद्धालुओं द्वारा चीवरदान से पूर्व ही सङ्घ में फूट पड जाय। तब श्रद्धालु जन जिस पक्ष को (सङ्कल्प का) जल दें उसी पक्ष को चीवरदान भी 'सङ्घ को देते हैं'—यह कहते हुए करें तो उस चीवर का स्वामी सङ्घ ही होगा।

(ग) "यहाँ, भिक्षुओ!....पूर्ववत्.....*[५१ (क) की तरह]* यह कहते हुए चीवरदान करें कि 'यह इस पक्ष को दे रहे हैं, तो उस चीवर का स्वामी वह पक्ष ही होगा।

(घ) "यहाँ भिक्षुओ!.....जिस पक्ष को सङ्कल्प का जल देते है उसी पक्ष को, यह कहते हुए कि 'इस पक्ष को यह चीवर दे रहे हैं', चीवरदान भी करें तो वह चीवर उसी पक्ष का होगा।

(ङ) "यहाँ, भिक्षुओ! वर्षावासिक भिक्षुओं को चीवर मिल जाने पर, परन्तु उसका विभाजन होने से पूर्व ही सङ्घ में भेद हो जाता है तो ऐसी स्थिति में उस चीवर का सभी भिक्षुओं मे समरूप से विभाजन (वितरण) कर देना चाहिये।".

२९. दूसरे के लिये भेजे गये चीवर के विषय में निर्णय

५२ उस समय आयुष्मान् रेवत ने किसी भिक्षु के हाथ आयुष्मान् सारिपुत्र के लिये यह कह कर चीवर भेजा कि यह चीवर स्थविर को दे देना। तब उस भिक्षु ने मार्ग में ही, यह सोच कर कि आयुष्मान् रेवत माँगने पर यह चीवर मुझे दे ही देंगे, उस चीवर का स्वयं उपयोग करना आरम्भ कर दिया। उधर, आयुष्मान् रेवत ने कभी मिलने पर, आयुष्मान् सारिपुत्र से पूछा कि यह चीवर आपको

"नाहं तं, आवुसो, चीवरं पस्सामी" ति। अथ खो आयस्मा रेवतो तं भिक्खुं एतदवोच— "अहं, आवुसो, आयस्मतो हत्थे थेरस्स चीवरं पाहेसिं। कहं तं चीवरं ति?" "अहं, भन्ते, आयस्मतो विस्सासा तं चीवरं अग्गहेसिं" ति। भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं।

५३. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स हत्थे चीवरं पहिणति—'इमं चीवरं [B.426] इत्थन्नामस्स देही" ति। सो अन्तरामग्गे यो पहिणति तस्स विस्सासा गण्हाति। सुग्गहितं। यस्स पहिय्यति तस्स विस्सासा गण्हाति। दुग्गहितं।

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भिक्खुस्स हत्थे चीवरं पहिणति—"इमं चीवरं इत्थन्नामस्स देही" ति। सो अन्तरामग्गे यस्स पहिय्यति तस्स विस्सासा गण्हाति। दुग्गहितं। यो पहिणति तस्स विस्सासा गण्हाति। सुग्गहितं।

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भिक्खुस्स हत्थे चीवरं पहिणति—इमं [N.324] **चीवरं इत्थन्नामस्स देही ति। सो अन्तरामग्गे सुणाति—यो पहिणति सो कालङ्कतो ति। तस्स मतकचीवरं अधिट्ठाति। स्वाधिट्ठितं। यस्स पहिय्यति तस्स विस्सासा गण्हाति। दुग्गहितं।**

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भिक्खुस्स हत्थे चीवरं पहिणति—'इमं चीवरं इत्थन्नामस्स देही' ति। सो अन्तरामग्गे सुणाति—उभो कालङ्कता ति। यो [R.309] **पहिणति तस्स मतकचीरं अधिट्ठाति। स्वाधिट्ठितं। यस्स पहिय्यति तस्स मतकचीवरं अधिट्ठाति। द्वाधिट्ठितं।**

अमुक भिक्षु ने दिया?" आयुष्मान् सारिपुत्र ने कहा—"मैंने तो वह चीवर देखा भी नहीं।" तब आयुष्मान् रेवत ने उस भिक्षु से पूछा—"मैंने जो चीवर तुम्हारे हाथ स्थविर को देने के लिये भेजा था, वह कहाँ है?" भिक्षु ने कहा—"भन्ते! मैंने तो आप पर यह विश्वास कर कि माँगने पर उसे आप मुझे दे ही देंगे'—मैंने उस चीवर को अपने उपयोग में ले लिया।" भगवान् के सम्मुख यह बात गयी।

५३ (क) भगवान् ने कहा— "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु किसी भिक्षु के हाथ किसी भिक्षु को यह कहकर भिजवावे कि यह चीवर इस नाम वाले भिक्षु को दे देना। वह ले जाने वाला भिक्षु देने वाले के विश्वास पर उस चीवर का स्वयं उपयोग कर ले, तब तो ठीक है। परन्तु वही चीवर जिसके लिये ले जाया जा रहा है, उस पर यह विश्वास कर कि वह तो इसे मुझे दे ही देगा, तो यह उचित (न्याय्य) नहीं है।

(ख) " इसी तरह, भिक्षुओ! कोई भिक्षु किसी भिक्षु के हाथ चीवर भेजता है कि यह इस नाम वाले भिक्षु को दे देना तो वह ले जाने वाला भिक्षु, जिस भिक्षु को देना है उसके विश्वास पर उस चीवर का उपयोग करने लगे तो यह अनुचित है। हाँ, जिसने भेजा है उसके विश्वास पर यदि स्वयं उपयोग कर लेता है तो उसे उचित (सुगृहीत) कहा जा सकता है।

(ग) "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु किसी भिक्षु के हाथ . .दे देना। वह मार्ग में सुने कि जिसने यह चीवर भेजा था वह मर गया। वह ले जाने वाला भिक्षु उसे मृतक चीवर मानकर उसका उपयोग करने लगे तो ठीक ही है। परन्तु यदि जिसके लिये भेजा गया है उस पर देने का विश्वास कर उसका उपयोग करने लगे तो यह अनुचित है।

(घ) "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु किसी भिक्षु के हाथ. .दे देना। वह मार्ग में किसी से सुने कि जिस भिक्षु के लिये यह चीवर भेजा गया वह भिक्षु तो मर गया। यदि उसको मृतकचीवर मानकर

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भिक्खुस्स हत्थे चीवरं पहिणति—'इमं चीवरं इत्थन्नामस्स दम्मी' ति। सो अन्तरामग्गे यो पहिणति तस्स विस्सासा गण्हाति। दुग्गहितं। यस्स पहिय्यति तस्स विस्सासा गण्हाति। सुग्गहितं।

''इध पन, भिक्कवे, भिक्खु भिक्खुस्स हत्थे चीवरं पहिणति—'इमं चीवरं इत्थन्नामस्स दम्मी' ति। सो अन्तरामग्गे यस्स पहिय्यति तस्स विस्सासा गण्हाति। सुग्गहितं। यो पहिणति तस्स विस्सासा गण्हाति। दुग्गहितं।

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भिक्खुस्स हत्थे चीवरं पहिणति—'इमं चीवरं [B.427] इत्थन्नामस्स दम्मी' ति। सो अन्तरामग्गे सुणाति—यो पहिणति सो कालङ्कतो ति। तस्स मतकचीवरं अधिट्ठाति। द्वाधिट्ठितं। यस्स पहिय्यति तस्स विस्सासा गण्हाति। सुग्गहितं।

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भिक्खुस्स हत्थे चीवरं पहिणति—'इमं चीवरं इत्थन्नामस्स दम्मी' ति। सो अन्तरामग्गे सुणाति—'यस्स पहिय्यति सो कलाङ्कतो' ति। तस्स मतकचीवरं अधिट्ठाति। स्वाधिट्ठितं। यो पहिणति तस्स विस्सासा गण्हाति। दुग्गहितं।

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भिक्खुस्स हत्थे चीवरं पहिणति—'इमं चीवरं इत्थन्नामस्स दम्मी' ति। सो अन्तरामग्गे सुणाति—'उभो कालङ्कता' ति। यो पहिणति तस्स मतकचीवरं अधिट्ठाति। द्वाधिट्ठितं। यस्स पहिय्यति तस्स मतकचीवरं अधिट्ठाति। स्वाधिट्ठितं।

उसका स्वयं उपयोग करने लगे तो यह अनुचित है। हाँ, जो भेजता है उसका विश्वास मान कर उपयोग करने लगे तो उचित कहा जा सकता है।

(ङ) ''भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु.....दे देना। वह मार्ग में किसी से सुने कि भेजने वाला और पाने वाला–दोनों ही मर गये। तब वह भिक्षु जिसने भेजा है उसका मृतकचीवर मानकर उसका उपयोग करे तब तो ठीक है। परन्तु जिसको भेजा गया है उसका मृतकचीवर मानकर उपयोग करना तो अनुचित ही है।

(क) ''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु....देता हूँ। वह मार्ग में, भेजने वाले पर विश्वास कर उसका स्वय उपयोग करने लगे तो उचित है। परन्तु जिसके लिये भेजा गया है उस पर विश्वास कर उपयोग करना उचित नहीं।

(ख) ''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु....देता हूँ। वह मार्ग में, जिसके लिये भेजा गया है उस पर विश्वास कर उस चीवर का उपयोग करने लगे तो ठीक; परन्तु जिसने भेजा है उस पर विश्वास करके उसका उपयोग करना उचित नहीं।

(ग) ''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु....देता हूँ वह मार्ग में किसी से यह सुने कि भेजने वाले का देहावसान हो गया। तो वह उसे मृतकचीवर मान कर उपयोग करने लगे तो यह अनुचित है। जिसको भेजा गया है उस पर विश्वास कर उसका उपयोग करे तो ठीक है।

(घ) ''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु.....देता हूँ। वह मार्ग में किसी से सुने कि जिसको भेजा गया उसका देहावसान हो गया। उसका मृतकचीवर मानकर वह भिक्षु स्वयं उपयोग करने लगे–यह तो ठीक है; परन्तु जिसने भेजा है उसका विश्वास कर उपयोग करने लगे–यह अनुचित है।

३०. अट्ठचीवरमातिका

५४. अट्ठिमा, भिक्खवे, मातिका चीवरस्स उप्पादाय—सीमाय देति, कतिकाय देति, भिक्खापञ्ञत्तिया देति, सङ्घस्स देति, उभतो-सङ्घस्स देति, वस्संवुट्ठसङ्घस्स देति, आदिस्स देति, पुग्गलस्स देति।

(१) सीमाय देति—यावतिका भिक्खू अन्तोसीमगता तेहि भाजेतब्बं।(२) कतिकाय देति—सम्बहुला आवासा समानलाभा होन्ति एकस्मिं आवासे दिन्ने सब्बत्थ दिन्नं होति।(३) भिक्खापञ्ञत्तिया देति—यत्थ सङ्घस्स धुवकारा करिय्यन्ति तत्थ देति।(४) सङ्घस्स [N.325] देति—सम्मुखीभूतेन सङ्घेन भाजेतब्बं।(५) उभतो-सङ्घस्स देति—बहुका पि भिक्खू होन्ति एका भिक्खुनी होति, उपड्ढं दातब्बं; बहुका पि भिक्खुनियो होन्ति एको भिक्खु होति, उपड्ढं दातब्बं।(६) वस्संवुट्ठसङ्घस्स देति—यावतिका भिक्खू तस्मिं आवासे वस्संवुट्ठा तेहि भाजेतब्बं।(७)आदिस्स देति—यागुया वा भत्ते वा खादनीये वा चीवरे वा सेनासने वा भेसज्जे वा।(८) पुग्गलस्स देति—इमं चीवरं इत्थन्नामस्स दम्मी ति। [R.310]

चीवरक्खन्धको अट्ठमो॥

(ङ) "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु....देता हूँ। वह मार्ग में किसी से यह सुने कि चीवर के प्रेषक एवं प्रेष्य–दोनों ही मर गये। तो जिसने भेजा है उसका मृतकचीवर मानकर उस चीवर का उपयोग अनुचित है, परन्तु जिसको भेजा गया है उसका मृतकचीवर मानकर उपयोग करना उचित कहा जा सकता है।

३०. आठ चीवर मातृकाएँ

५४. "भिक्षुओ! ये आठ (८) चीवर की मातृकाएँ (उपलब्धि के कारण) हैं–

१. सीमा में देता है, २. वचनबद्ध (कतिका) होने से देता है, ३. भिक्षा के स्वीकार से देता है, ४. भिक्षुसङ्घ को देता है, ५. दोनों (भिक्षु, भिक्षुणी) सङ्घों को देता है, ६. वर्षावास कर चुके सङ्घ को देता है। ७. वस्तु का नाम लेकर देता है। ८. या व्यक्तिविशेष को नाम ग्रहणपूर्वक देता है।

(१) **सीमा में देता है**– इस विहार की सीमा में रहने वाले सभी भिक्षुओं को परस्पर बाँट लेना चाहिये।

(२) **वचनबद्धता से देता है**– एक प्रकार के लाभ वाले जितने आवास हैं , एक आवास को देने पर सभी आवासों के लिये दिया हुआ मान लिया जाता है।

(३) **भिक्षा देने की स्वीकृति से देता है**– जहाँ दाता निरन्तर सङ्घ का कार्य करता रहता है वहाँ के लिये दिया होता है।

(४) **सङ्घ को देता है**– तब सङ्घ को समान रूप से बाँट लेना चाहिये।

(५) **दोनों सङ्घों को देता है**– तो भले ही भिक्षु अधिक हों और भिक्षुणी एक ही हो तो भी इन सङ्घों को आधा–आधा बाँट देना चाहिये।

(६) **वर्षावास कर चुके सङ्घ को देता है**– जितने भिक्षुओं ने उस विहार में वर्षावास किया है, उन सबको बाँटना चाहिये।

(७) **'वस्तु' कहकर देता है**– तो यागू, भात या अन्य खाद्य वस्तु, चीवर, आसन या भैषज्य जिसके लिये कहा हो वह देना चाहिये।

३१. तस्सुद्दानं

[B.428] राजगहको नेगमो दिस्वा वेसालियं गणिं।
पुन राजगहं गन्त्वा रञ्ञो तं पटिवेदयि॥ १॥
पुत्तो सालवतिकाय अभयस्स हि अत्रजो।
जीवती ति कुमारेन सङ्खातो जीवको इति॥ २॥
सो हि तक्कसिलं गन्त्वा उग्गहेत्वा महाभिसो।
सत्तवस्सिकआबाधं नत्थुकम्मेन नासयि॥ ३॥
रञ्ञो भगन्दलाबाधं आलेपेन अपाकड्ढि।
ममं च इत्थागारं च बुद्धसङ्घं चुपट्ठहि॥ ४॥
राजगहिको च सेट्ठि अन्तगण्ठि तिकिच्छितं।
पज्जोतस्स महारोगं घतपानेन नासयि॥ ५॥
अधिकारं च सीवेय्यं अभिसन्नं सिनेहति।
तीहि उप्पलहत्थेहि समत्तिंसविरेचनं॥ ६॥

---

(८) व्यक्ति को देता है– 'यह चीवर अमुक नाम वाले को देता हूँ' तो उसी नाम वाले भिक्षु को देना चाहिये।।

अष्टम चीवरस्कन्धक समाप्त।।

३१. उस की विषय सूची

किसी विशेष कार्य से वैशाली में गये राजगृह के एक निगम सदस्य ने वैशाली की नगरवधू (गणिका) को देखकर पुनः राजगृह लौटकर राजा के सम्मुख उस गणिका के नयनाभिराम सौन्दर्य का वर्णन किया।। १।।

राजा ने शालवती नाम की गणिका को राजगृह की नगरवधू बना दिया। इसी शालवती को समय आने पर एक पुत्र उत्पन्न हुआ। गणिका ने उस शिशु को कूडे के ढेर पर फेंकवा दिया। वहाँ उसको अभय राजकुमार ने देखा, जीवित समझकर घर लाकर उसका पालन-पोषण किया। वह जीवित मिला था अतः उसका नाम जीवक रखा।। २ ।।

बडा होने पर वह (जीवक) विद्या प्राप्ति हेतु तक्षशिला गया, वहाँ वह वैद्यविद्या को पूर्णतः अधिगत कर प्रमुख वैद्य के रूप में प्रसिद्ध हुआ। घर वापस लौटते हुए उसने साकेत नगरी के 'नगरसेठ' की पत्नी का सात वर्ष पुराना रोग नस्य कर्म की एक ही मात्रा से ठीक कर दिया।। ३।।

उसने राजा बिम्बिसार का भगन्दर रोग भी अपनी चिकित्सापद्धति से ठीक कर दिया। राजा ने जीवक को अपना, अपने अन्तःपुर का तथा भगवान् बुद्ध एवं सङ्घ का चिकित्सक नियुक्त कर दिया।। ४।।

उस समय राजगृह के नगरसेठ के शिर मे एक ग्रन्थिव्रण हो गया था, जीवक ने उसकी भी चिकित्सा कर अपने यश में वृद्धि की। एवं राजा चण्डप्रद्योत का प्रबल रोग घृत की एक ही नस्यमात्रा से ठीक कर दिया।। ५ ।।

उस चिकित्सा से सन्तुष्ट होकर राजा प्रद्योत ने जीवक को 'राजवैद्य' की उपाधि एवं सम्मान हेतु शिविदेश का बना दुशाला भेट किया। फिर उसने भगवान् को (रुग्ण होने पर) तीस विरेचन तक कराने वाली तीन चम्मच भर ओषधि-मात्रा दी।। ६।।

पकतत्तं वरं याचि सीवेय्यं च पटिग्गहिं।
चीवरं च गिहिदानं अनुञ्ञासि तथागतो॥ ७॥
राजगहे जनपदे बहु उप्पज्जि चीवरं।
पावारो कोसियो चेव कोजवो अड्ढकासिकं॥ ८॥
उच्चावचा च सन्तुट्ठि नागमे सागमेसु च।
पठमं पच्छा सदिसा कतिका च पटीहरुं॥ ९॥
भण्डागारं अगुत्तं च वुट्ठापेन्ति तथेव च।
उस्सन्नं कोलाहलं च कथं भाजे कथं ददे॥ १०॥
सकातिरेकभागेन पटिवीसो कथं ददे। [N.326]
छकणेन सीतुदका उत्तरितु न जानरे॥ ११॥
ओरोपेन्ता भाजनं च पातिया च छमाय च।
उपचिकामज्झे जीरन्ति एकतो पत्थिन्नेन च॥ १२॥
फरुसाच्छिन्नच्छिबन्धा अद्दसासि उब्भण्डिते।
वीमंसित्वा सक्यमुनि अनुञ्ञासि तिचीवरं॥ १३॥ [B.429]
अञ्ञेन अतिरेकेन उप्पज्जि छिद्दमेव च।
चातुद्दीपो वरं याचि दातुं वस्सिकसाटिकं॥ १४॥

भगवान् के स्वस्थ होने पर, उनसे अनुमति लेकर, उनको वही शिवि देश का दुशाला भेंट कर दिया जो उसे राजा प्रद्योत से अपने सम्मान में मिला था। तभी से तथागत ने भिक्षुओं को भी गृहस्थों द्वारा प्रदत्त चीवर-दान स्वीकार करने की अनुमति दे दी।। ७।।

जब राजगृहवासी धनपतियों ने सुना कि भगवान् ने भिक्षुओं को चीवरदान की अनुमति दे दी है तो उन्होंने भी भिक्षुओं को मुक्तहस्त होकर चीवर देना प्रारम्भ किया। उस दान में चादर भी, रेशमी वस्त्र भी, कम्बल एवं मँहगे वस्त्र भी होते थे।। ८।।

वे परस्पर ऊँचा-नीचा दान देकर भी सन्तुष्ट नहीं होते थे। सब एक दूसरे के समान ही (अधिक से अधिक) दान करना चाहते थे। उनमें अहमहमिकापूर्वक पहले वाले से पीछे वाला अधिक ही दान करने की सोचता था।। ९।।

उन्होंने भिक्षुओं के लिये अपने सभी (वस्त्र-) भण्डार खोल दिये। उनमें बहुत से तो अपने भण्डारों का सब संग्रह लेकर सीधे विहारों में ही पहुँच जाते थे। और वहाँ कोलाहल करते थे कि किसको दें, कितना दें और कैसे दें।। १०।।

भिक्षु दान में प्राप्त अपने वस्त्रों का कैसे और क्या उपयोग करें-यह भी नहीं जानते थे। वे घोड़ों की लीद से ठण्डे जल में वस्त्रों को रङ्गना चाहते थे।। ११।।

अधिक वस्त्र हो जाने के कारण वे उन वस्त्रों को घड़े आदि में, थाली से ढककर या खाली भूमि पर ही रख देते थे, तो उनमें दीमक लग जाती थी। या कहीं एक तरफ से कट-पिट जाते थे।। १२।।

यों उपेक्षा से पड़े उन वस्त्रों में सलवटें पड़ जाती थीं, वे कठोर (रूखे) हो जाते थे। भिक्षुओं की ऐसी बहुत सी कठिनाई (परेशानी) देखकर भगवान् ने भिक्षुओं को एक समय में केवल तीन चीवर का ही उपयोग करने की अनुमति प्रदान की।। १३।।

आगन्तुगमिगिलानं उपट्ठाकं च भेसज्जं।
धुवं उदकसाटिं च पणीतं अतिखुद्दकं॥ १५॥
थुल्लकच्छुमुखं खोमं परिपुण्णं अधिट्ठानं।
पच्छिमं कतो गरुको विकण्णो सुत्तमोकिरि॥ १६॥
लुज्जन्ति नप्पहोन्ति च अन्वाधिकं बहूनि च।
[R.311] अन्धवने अस्सतिया एको वस्सं उतुम्हि च॥ १७॥
द्वे भातुका राजगहे उपनन्दो पुन द्विसु।
कुच्छिविकारो गिलानो उभो चेव गिलानका॥ १८॥
नग्गा कुसा वाकचीरं फलकं केसकम्बलं।
वाळउलूकपक्खं च अजिनं अक्कनाळकं॥ १९॥
पोत्थकं नीलपीतं च लोहितं मञ्जिट्ठेन च।
कण्हा महारङ्गनामा अच्छिन्नदसिका तथा॥ २०॥
दीघपुप्फफणदसा कञ्चुतिरीटवेठनं।
अनुप्पन्ने पक्कमति सङ्घो भिज्जति तावदे॥ २१॥

अन्य अधिक (अतिरिक्त) वस्त्र से अपने फटे–फुराने चीवरों को सँवारने–सुधारने की अनुमति प्रदान की। और उसी वस्त्र से वर्षा मे उपयोग हेतु वर्षिकशाटिका के उपयोग की भी आज्ञा दी।। १४।।

(विशाखा से निवेदन करने पर) बाहर से आने वाले या बाहर जाने वाले रोगी भिक्षुओं के निमित्त परिचारक, औषध, जलपान, पाथेय, भिक्षुणियों के लिये उदकशाटी के उपयोग को भी भगवान् ने स्वीकार किया।। १५।।

खुजली आदि रोग होने पर अतिरिक्त वस्त्र एवं मुँह पोंछने के निमित्त रुमाल के लिये, सण से वने आसन–वस्त्र की अनुज्ञा करते हुए भगवान् ने भिक्षुओं को फटे पुराने वस्त्रों के उपयोग की विधि भी बतायी।। १६।।

कटे–फटे या छोटे हो गये, न्यून या अधिक या अतिरिक्त वस्त्रों के विषय में अथवा न होने पर या वर्षा के समय एक ही वस्त्र के उपयोग के विषय में भगवान् ने अपना निर्णय दिया।। १७।।

राजगृह के वासी नन्द–उपनन्द दो भिक्षुओं में से उपनन्द द्वारा वर्षावास के बाद अधिक चीवर लेने पर भगवान् का निर्णय, रोगी भिक्षु की परिचर्या का आदेश।। १८।।

भिक्षु को नग्न रहने का निषेध, कुश, छाल आदि के चीवरों का निषेध, इसी तरह बड़े बालों के कम्बल की निषेध, उल्लू के पङ्खों से बने वस्त्र का एवं मृग–चर्म या मदार (अर्क) की छाल से बने वस्त्रों के निषेध का भी वर्णन है।। १९।।

चित्रित (पोत्थक), नीले, पीले, लाल, मञीठ, काले या महारङ्ग में रङ्गे चीवरों के, या जिनके किनारे फट गये हैं ऐसे चीवरों के धारण का निषेध।। २०।।

लम्बी, फूलदार या साँप के फण के सदृश चौड़ी किनारी वाले या कञ्चुक (पारदर्शी) एवं छाल से बने चीवरों के धारण का निषेध एवं वर्षावास में चीवरदान के बाद विभाजन होने से पूर्व ही भिक्षु के चले जाने पर उसके अंश पर सङ्घ का अधिकार या सङ्घभेद के बाद चीवर आदि पर अधिकार का निर्णय।। २१।।

पक्खे ददन्ति सङ्घस्स आयस्मा रेवतो पहि।
विस्सासगाहाधिट्ठाति अट्ठ चीवरमातिका ति॥ २२॥

इमम्हि खन्धके वत्थू छन्नवुति।
चीवरक्खन्धको निट्ठितो॥

दूसरे के लिये भेजे गये चीवर पर मृत्यु आदि विशेष परिस्थिति मे अधिकार का निर्णय, इ॰ प्रसङ्ग में आयुष्मान् रेवत की कथा, मिल जाने का विश्वास होने पर चीवर पर अधिकार का वर्ण अन्त में चीवरविषयक आठ मातृकाओ का वर्णन इस स्कन्धक मे हुआ है।। २२।।

इस स्कन्धक में छयानवें विषयों पर विचार किया गया
चीवरस्कन्धक स॰॰॰त।।

१. चम्पेय्यक्खन्धकं

१. कस्सपगोत्तभिक्खुवत्थु

[N.327, B.430, R.312] १. तेन समयेन बुद्धो भगवा चम्पायं विहरति गग्गराय पोक्खरणिया तीरे। तेन खो पन समयेन कासीसु जनपदे वासभगामो नाम होति। तत्थ कस्सपगोत्तो नाम भिक्खु आवासिको होति तन्तिबद्धो उस्सुक्कं आपन्नो—किं ति अनागता च पेसला भिक्खू आगच्छेय्युं, आगता च पेसला भिक्खू फासु विहरेय्युं, अयं च आवासो वुद्धिं विरुळ्हिं वेपुल्लं आपज्जेय्या ति। तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खू कासीसु चारिकं चरमाना येन वासभगामो तदवसरुं। अद्दसा खो कस्सपगोत्तो भिक्खु ते भिक्खू दूरतो व आगच्छन्ते, दिस्वान आसनं पञ्ञापेसि, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपि, पच्चुग्गन्त्वा पत्तचीवरं पटिग्गहेसि, पानीयेन आपुच्छि, नहाने उस्सुक्कं अकासि, उस्सुक्कं पि अकासि यागुया खादनीये भत्तस्मिं। अथ खो तेसं आगन्तुकानं भिक्खूनं एतदहोसि—"भद्दको खो अयं, आवुसो, आवासिको भिक्खु नहाने उस्सुक्कं करोति, उस्सुक्कं पि करोति यागुया खादनीये भत्तस्मिं। हन्द, मयं आवुसो, इधेव वासभगामे निवासं कप्पेमा" ति। अथ खो ते आगन्तुका भिक्खू तत्थेव वासभगामे निवासं कप्पेसुं।

अथ खो कस्सपगोत्तस्स भिक्खुनो एतदहोसि—"यो खो इमेसं आगन्तुकानं भिक्खूनं आगन्तुककिलमथो सो पटिप्पस्सद्धो। ये पि मे गोचरे अप्पकतञ्ञुनो ते दानि मे गोचरे पकतञ्ञुनो। दुक्करं खो पन परकुलेसु यावजीवं उस्सुक्कं कातुं, विञ्ञत्ति च मनुस्सानं

---

१. चाम्पेयस्कन्धक

१. काश्यपगोत्रभिक्षुकथा

१. उस समय भगवान् बुद्ध चम्पा नगरी की गग्गरा पुष्करिणी के तट पर साधनाहेतु विराजमान थे। तब काशी जनपद के वासभग्राम में काश्यपगोत्र नामक भिक्षु का आवास था। वह निरन्तर इस बात के लिये प्रयत्नशील रहता था कि उसके आवास पर नित्य नये नये भद्रभिक्षु आते रहें और वे भिक्षु उसके आवास में सुखपूर्वक साधनाहेतु ठहर सकें, ताकि उसका वह आवास भी इस तरह अधिक से अधिक लोकप्रसिद्धि, वृद्धि एवं विपुलता की तरफ बढ़ता रहे। उस समय बहुत से भिक्षु काशी जनपद में चारिका करते हुए वासभग्राम में आते रहते थे। वह काश्यपगोत्र भिक्षु जब ऐसे भिक्षुओं को वहाँ आते हुए दूर से ही देखता तो उनके बैठने के लिये आसन बिछा देता। आने पर, पैर धोने के लिये जल देता, पीढ़ा आदि सामग्री प्रस्तुत कर देता। आगे बढ़कर उनके पात्र-चीवर ले लेता, उन्हें पीने का जल पूछता। स्नान करने के लिये जल पूछता। चाय (यागू) एवं जलपान लेने हेतु मनुहार (विनती) करता। उसका यह व्यवहार देखकर उन आगन्तुक भिक्षुओं को यह हुआ कि अरे! यह भिक्षु तो बहुत भद्र है यह आगन्तुकों के लिये स्नान, जलपान, भोजन आदि में इतना सावधान है कि आगन्तुकों को कोई असुविधा नहीं होती। तो, क्यों न इसी वासभग्राम में कुछ दिन ठहरा जाय। यह सोचकर वे आगन्तुक भिक्षु उसी वासभग्राम में रह गये।

कुछ समय बाद काश्यपगोत्र भिक्षु के मन में यह विचार उठा कि अब तो, बहुत समय हो गया, इन आगन्तुक भिक्षुओं की थकावट भी दूर हो गयी होगी, पुराने हो जाने के कारण इनका भिक्षा

अमनापा। यन्नूनाहं न उस्सुक्कं करेय्यं यागुया खादनीये भत्तस्मिं" ति। सो न उस्सुक्कं अकासि यागुया खादनीये भत्तस्मिं।

अथ खो तेसं आगन्तुकानं भिक्खूनं एतदहोसि—"पुब्बे ख्वायं, आवुसो, [R.313] आवासिको भिक्खु नहाने उस्सुक्कं अकासि, उस्सुक्कं पि अकासि यागुया खादनीये भत्तस्मिं। सो दानायं न उस्सुक्कं करोति यागुया खादनीये भत्तस्मिं। दुट्ठो दानायं, आवुसो, आवासिको भिक्खु। हन्द, मयं, आवुसो, आवासिकं भिक्खुं उक्खिपामा" ति। अथ खो ते [B.431] आगन्तुको भिक्खु सन्निपतित्वा कस्सपगोत्तं भिक्खुं एतदवोचुं—"पुब्बे खो त्वं, आवुसो, नहाने उस्सुक्कं करोसि, उस्सुक्कं पि करोसि यागुया खादनीये भत्तस्मिं। सो दानि त्वं न उस्सुक्कं करोसि यागुया खादनीये भत्तस्मिं। आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो। पस्ससेतं आपत्तिं" ति? "नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति, यमहं पस्सेय्यं" ति। अथ खो ते आगन्तुका भिक्खू कस्सपगोत्तं भिक्खुं आपत्तिया अदस्सने उक्खिपिंसु।

अथ खो कस्सपगोत्तस्स भिक्खुनो एतदहोसि—"अहं खो एतं न जानामि [N.328] 'आपत्ति वा एसा अनापत्ति वा, आपन्नो चम्हि अनापन्नो वा, उक्खित्तो चम्हि अनुक्खित्तो वा, धम्मिकेन वा अधम्मिकेन वा, कुप्पेन वा अकुप्पेन वा, ठानारहेन वा अट्ठानारहेन वा।' यन्नूनाहं चम्पं गन्त्वा भगवन्तं एतमत्थं पुच्छेय्यं" ति। अथ खो कस्सपगोत्तो भिक्खु सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय येन चम्पा तेन पक्कामि। अनुपुब्बेन येन चम्पा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि।

आदि प्राप्ति के स्थानों से भी अपरिचय नहीं रह गया है। श्रद्धालु गृहस्थों के घरों में प्रतिदिन जाकर दूसरों के लिये माँगते रहना उतना अच्छा नहीं लगता। यह उचित भी नहीं है। क्यों न मैं अब इनके लिये जलपान आदि की व्यवस्था करना छोड़ दूँ! यह सोचकर उसने आगन्तुक भिक्षुओं की सेवा–शुश्रूषा में उत्साह दिखाना कम कर दिया।

यह व्यवहार देखकर उन आगन्तुक भिक्षुओं ने सोचा–"अरे! यह भिक्षु पहले तो हमारे सत्कार में बहुत उत्साह दिखाता था, समय से स्नान, जलपान आदि सब कुछ प्रस्तुत कर देता था, अब इस सबमें इसका अनुत्साह एवं उपेक्षा दिखायी दे रही है। यह आवासिक (स्थानपति) भिक्षु हमारे प्रति दुर्भावनाग्रस्त हो गया है। आयुष्मानो! क्यों न हम इस भिक्षु को उत्क्षेपणीय दण्ड (स्थान से हटाना) दे डालें।" तब उन आगन्तुक भिक्षुओं ने उस आवासिक भिक्षु से पूछा–"आयुष्मन्! प्रारम्भ में तो तुम हम लोगों के सेवा–सत्कार में बहुत उत्सुकता दिखाते थे। अब धीरे धीरे इन सब कार्यों में तुम्हारी उपेक्षा होती जा रही है। यह तुम्हारा अपराध है। क्या तुम अपने किये अपराध (आपत्ति) को समझ पा रहे हो?" 'आवासिक भिक्षु ने कहा–"मैं तो अपने में ऐसा अपराध नहीं देखता कि जिस पर मैं ध्यान दूँ!" तब उन आगन्तुक भिक्षुओं ने उस आवासिक भिक्षु को अपराधी मानते हुए उसे उत्क्षेपणीय दण्ड देते हुए उस आवास से निकाल दिया।

तब उस काश्यपगोत्र भिक्षु को यह विचार हुआ–"मैं नहीं समझ पाया कि मैं अपराधी हूँ या निरपराध, मेरा कोई अपराध था भी या नहीं, मैं वस्तुतः इस उत्क्षेपणीय दण्ड के योग्य था या नहीं, यह दण्ड धर्मपूर्वक दिया गया है या अधर्मपूर्वक, यह दण्ड उचित है या अनुचित, यह दण्ड सकारण हुआ है या निष्कारण! तो क्यों न मैं चम्पा जाकर भगवान् से इसका निर्णय करा लूँ।" तब वह काश्यपगोत्र भिक्षु अपना शयनासन समेटकर पात्र चीवर साथ में लेकर चम्पा की तरफ चल दिया।

आचिण्णं खो पनेतं बुद्धानं भगवन्तानं आगन्तुकेहि भिक्खूहि सद्धिं पटिसम्मोदितुं। अथ खो भगवा कस्सपगोत्तं भिक्खुं एतदवोच—"कच्चि, भिक्खु, खमनीयं, कच्चि यापनीयं, कच्चि अप्पकिलमथेन अद्धानं आगतो, कुतो च त्वं, भिक्खु, आगच्छसी" ति ? "खमनीयं, भगवा; यापनीयं, भगवा; अप्पकिलमथेन चाहं, भन्ते, अद्धानं आगतो। अत्थि, भन्ते, कासीसु जनपदे वासभगामो नाम। तत्थाहं, भगवा, आवासिको तन्तिबद्धो उस्सुक्कं आपन्नो—'किं ति अनागता च पेसला भिक्खू आगच्छेय्युं, आगता च पेसला भिक्खू फासु विहरेय्युं, अयं च आवासो वुद्धिं विरुळ्हिं वेपुल्लं आपज्जेय्या' ति। अथ खो, भन्ते, सम्बहुला भिक्खू कासीसु चारिकं चरमाना येन वासभगामो तदवसरुं। अद्दसं खो अहं, भन्ते, ते भिक्खू दूरतो व आगच्छन्ते, दिस्वान आसनं पञ्ञपेसिं, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपिं, पच्चुग्गन्त्वा पत्तचीवरं पटिग्गहेसिं, पानीयेन अपुच्छिं, नहाने उस्सुक्कं अकासिं, उस्सुक्कं पि [B.432] अकासिं यागुया खादनीये भत्तस्मिं। अथ खो तेसं, भन्ते, आगन्तुकानं भिक्खूनं एतदहोसि—'भद्दको खो अयं आवासिको भिक्खु नहाने उस्सुक्कं करोति, उसुक्कं पि करोति [R.314] यागुया खादनीये भत्तस्मिं। हन्द, मयं, आवुसो, इधेव वासभगामे निवासं कप्पेमा' ति। अथ खो ते, भन्ते, आगन्तुका भिक्खू तत्थेव वासभगामे निवासं कप्पेसुं।

तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि—'यो खो इमेसं आगन्तुकानं भिक्खूनं आगन्तुककिलमथो सो पटिप्पस्सद्धो। ये पि मे गोचरे अप्पकतञ्ञुनो ते दानि मे गोचरे पकतञ्ञुनो। दुक्करं खो पन परकुलेसु यावजीवं उस्सुक्कं कातुं, विञ्ञत्ति च मनुस्सानं अमनापा। यन्नूनाहं न उस्सुक्कं करेय्यं यागुया खादनीये भत्तस्मिं' ति। सो खो अहं, भन्ते, न उस्सुक्कं अकासिं यागुया खादनीये भत्तस्मिं। अथ खो तेसं, भन्ते, आगन्तुकानं भिक्खूनं एतदहोसि—'पुब्बे ख्वायं, आवुसो, आवासिको भिक्खु नहाने उस्सुक्कं करोति, उस्सुक्कं पि करोति यागुया खादनीये भत्तस्मिं। सो दानायं न उस्सुक्कं करोति यागुया खादनीये भत्तस्मिं। दुट्ठो दानायं, आवुसो, [N.329] आवासिको भिक्खु। हन्द, मयं, आवुसो, आवासिकं भिक्खुं उक्खिपामा' ति। अथ खो ते, भन्ते, आगन्तुका भिक्खू सन्निपतित्वा मं एतदवोचुं—'पुब्बे खो त्वं, आवुसो, नहाने उस्सुक्कं करोसि, उस्सुक्कं पि करोसि यागुया खादनीये भत्तस्मिं। सो दानि त्वं न उस्सुक्कं करोसि यागुया खादनीये भत्तस्मिं। आपत्तिं त्वं आवुसो, आपन्नो। पस्ससेतं आपत्तिं'

यो, क्रमशः चम्पा पहुँचकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया।

भगवान् बुद्ध की यह पहले से चली आ रही परिपाटी है कि वे आगन्तुक से उसका कुशल-क्षेम एवं यात्रा-सम्बन्धी कठिनाई अवश्य पूछते हैं। अतः उस काश्यपगोत्र भिक्षु से भी भगवान् ने पूछा—"कहो, भिक्षु! अच्छा तो रहा, यापनीय तो रहा, मार्ग में कोई कठिनाई तो सामने नहीं आयी? भिक्षु! तुम कहाँ से आ रहे हो? (भिक्षु ने कहा—) "भगवान् सब ठीक ही रहा, यापनीय ही रहा, मार्ग में कोई कठिनाई भी सामने नहीं आयी। भन्ते! काशी जनपद में एक वासभग्राम है। वहाँ मै एक आवास में रहता हुआ इस बात के लिये प्रयत्नशील . पूर्ववत्...(ऊपर पैरा के प्रारम्भ में देखें) तो क्यों न मैं चम्पा जाकर भगवान् से ही इस का निर्णय करा लूँ। यही सोचकर, भगवन्! मैं आपके सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ।"

ति? "नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति यमहं पस्सेय्यं" ति। अथ खो ते भन्ते, आगन्तुका भिक्खू मं आपत्तिया अदस्सने उक्खिपिंसु। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि—'अहं खो एतं न जानामि 'आपत्ति वा एसा अनापत्ति वा, आपन्नो चम्हि अनापन्नो वा, उक्खित्तो चम्हि अनुक्खित्तो वा, धम्मिकेन वा अधम्मिकेन वा, कुप्पेन वा अकुप्पेन वा, ठानारहेन वा अट्ठानारहेन वा'। यन्नूनाहं चम्पं गन्त्वा भगवन्तं एतमत्थं पुच्छेय्यं" ति। ततो अहं, भगवा, आगच्छामी" ति।

"अनापत्ति एसा, भिक्खु, नेसा आपत्ति। अनापन्नोसि, नसि आपन्नो। अनुक्खित्तोसि, नसि उक्खित्तो। अधम्मिकेनासि कम्मेन उक्खित्तो कुप्पेन अट्ठानारहेन। गच्छ त्वं, भिक्खु, तत्थेव वासभगामे निवासं कप्पेही" ति। "एवं, भन्ते" ति खो कस्सपगोत्तो भिक्खु भगवतो पटिस्सुणित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन वासभगामो तेन पक्कामि।

२. अथ खो तेसं आगन्तुकानं भिक्खूनं अहुदेव कुक्कुच्चं, अहु [B.433] विप्पटिसारो—"अलाभा वत नो, न वत नो लाभा, दुल्लद्धं वत नो, न वत नो सुलद्धं, ये मयं सुद्धं भिक्खुं अनापत्तिकं अवत्थुस्मिं अकारणे उक्खिपिम्हा। हन्द, मयं, आवुसो, चम्पं गन्त्वा भगवतो सन्तिके अच्चयं अच्चयतो देसेमा" ति। अथ खो ते आगन्तुका भिक्खू सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय येन चम्पा तेन पक्कमिंसु। अनुपुब्बेन येन चम्पा येन भगवा तेनुपङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। आचिण्णं खो पनेतं बुद्धानं भगवन्तानं आगन्तुकेहि भिक्खूहि सद्धिं पटिसम्मोदितुं। अथ खो भगवा ते भिक्खू एतदवोच—"कच्चि, भिक्खवे, खमनीयं, कच्चि यापनीयं, कच्चित्थ अप्पकिलमथेन अद्धानं आगता, कुतो च तुम्हे, भिक्खवे, आगच्छथा" ति? "खमनीयं, भगवा; यापनीयं, भगवा; अप्पकिलमथेन च मयं, भन्ते, अद्धानं आगता। अत्थि, भन्ते, कासीसु जनपदे वासभगामो नाम। ततो मयं, भगवा, आगच्छामा" ति। "तुम्हे, भिक्खवे, आवासिकं

(भगवान् ने कहा—) "यह बात तो अपराधरहित (निर्दोष) है, इसमें कोई अपराध (दोष=आपत्ति) नहीं है। तुम निरपराध हो, तुमने कोई अपराध नहीं किया है। अतः तुम (सङ्घ से) अनुत्क्षिप्त हो, उत्क्षिप्त नहीं हो। तुमको दिया गया यह दण्ड अनुचित ही है, उचित नहीं है। तुम धर्मविरुद्ध कर्म से उत्क्षिप्त किये गये हो, धर्मानुकूल से नहीं। तुम अपने वासभग्राम मे अपने आवास में लौट जाओ तथा वहीं साधनारत रहो।"

"अच्छा, भन्ते!" कहकर वह काश्यपगोत्र भिक्षु, भगवान् का आदेश मानकर, आसन से उठकर, भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर पुनः वासभग्राम लौट आया।

२. बाद में उन आगन्तुक भिक्षुओं को भी इस घटना से बहुत सङ्कोच एवं पश्चात्ताप हुआ कि यह तो हमारी बहुत (धार्मिक) हानि हुई, हमें (धार्मिक) लाभ नहीं हुआ। इससे हमने अपना बहुत कुछ (पुण्य) खो दिया, बदले में हमें मिला कुछ नहीं कि हमने उस शुद्ध निष्पाप एवं निर्दोष भिक्षु को अकारण ही उत्क्षेपणीय दण्ड दे डाला। तो क्यों न हम चम्पा जाकर भगवान् के सम्मुख इस अपराध के लिये क्षमा मांगकर अपने को अपराधमुक्त करावें!

तब वे आगन्तुक भिक्षु भी अपना शयनासन समेटकर....पूर्ववत्...काशी जनपद के वासभग्राम

भिक्खुं उक्खिपित्था" ति? "एवं, भन्ते" ति। "किस्मिं, भिक्खवे, वत्थुस्मिं कारणे" ति? "अवत्थुस्मिं, भगवा, अकारणे" ति। विगरहि बुद्धो भगवा—"अननुच्छविकं, [B.315] मोघपुरिसा, अननुलोमिकं अप्पटिरूपं अस्सामणकं अकप्पियं अकरणीयं। कथं हि नाम तुम्हे, मोघपुरिसा, सुद्धं भिक्खुं अनापत्तिकं अवत्थुस्मिं अकारणे उक्खिपिस्सथ। नेतं, मोघपुरिसा, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०...." विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू [N.330] आमन्तेसि—"**न, भिक्खवे, सुद्धो भिक्खु अनापत्तिको अवत्थुस्मिं अकारणे उक्खिपितब्बो। यो उक्खिपेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

अथ खो ते भिक्खू उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोचुं—"अच्चयो नो, भन्ते, अच्चगमा यथाबाले यथामूळ्हे यथाअकुसले, ये मयं सुद्धं भिक्खुं अनापत्तिकं अवत्थुस्मिं अकारणे उक्खिपिम्हा। तेसं नो, भन्ते, भगवा अच्चयं अच्चयतो पटिग्गण्हातु आयतिं संवराया" ति। "तग्घ, तुम्हे, भिक्खवे, अच्चयो अच्चगमा यथाबाले यथामूळ्हे यथाअकुसले, ये तुम्हे सुद्धं भिक्खुं अनापत्तिकं अवत्थुस्मिं अकारणे उक्खिपित्थ। यतो च खो तुम्हे, भिक्खवे, अच्चयं अच्चयतो दिस्वा [B.434] यथाधम्मं पटिकरोथ, तं वो मयं पटिग्गण्हाम। वुद्धि हेसा, भिक्खवे, अरियस्स विनये यो अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोति, आयतिं संवरं आपज्जती" ति।

२. अधम्मेन वग्गादिकम्मकथा

३. तेन खो पन समयेन चम्पायं भिक्खू एवरूपानि कम्मानि करोन्ति—अधम्मेन

से आपके दर्शनहेतु चले आये। (भगवान् बोले—) "तो तुम ही वे भिक्षु हो जिन्होंने उस आवासीय भिक्षु को उत्क्षेपणीय कर्म से दण्डित किया था?" "हाँ! भन्ते!" "भिक्षुओ! किस घटना पर, किस कारण से?" "भगवन्! विना कोई घटना के, विना किसी कारण के।" भगवान् ने उनको इस बात पर डाँटते हुए कहा—"निकम्मे आदमियो! यह कार्य तो तुम्हारी शोभा के अनुरूप नहीं हुआ, इसे अनुकूल भी नहीं कहा जा सकता, यह तो प्रतिकूल ही था; क्योंकि यह तुम्हारे श्रमणभाव के अनुरूप नहीं है, यह तो अनुचित (अकल्प्य) एवं अकरणीय था! मोघपुरिसो! कैसे तुमने उस निरपराध निर्दोष भिक्षु को विना किसी घटना के, विना किसी कारण के उत्क्षेपणीय दण्ड देने का साहस किया।....पूर्ववत्...." **भिक्षुओ! निरपराध एवं निर्दोष भिक्षु को अकारण या विना किसी घटना के उत्क्षेपणीय दण्ड नहीं देना चाहिये। जो ऐसा करेगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा।"**

तब वे भिक्षु, अपने आसन से उठकर, उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर, भगवान् के चरणों पर शिर नवाकर भगवान् से यों निवेदन करने लगे—"भन्ते! हमलोगों ने निश्चित ही यह ऐसा अपराध किया है जैसे किसी मूर्ख, अज्ञ या बालक ने किया हो। हमने उस शुद्ध निर्दोष भिक्षु को अकारण उत्क्षेपणीय दण्डकर्म कर बहुत बड़ा प्रमाद किया है। भन्ते! आप हमारे इस अपराध को अपराध ही मानते हुए क्षमा कर दें। आगे से हम ऐसा करने में अपने पर संयम रखेंगे।"

"हाँ, भिक्षुओ! अपराध तो तुम लोगों ने मूर्खों की तरह किया है, परन्तु तुम भविष्य में वैसा न करने का आश्वासन भी दे रहे हो, तो हम उसे स्वीकार करते हैं और क्षमा करते हैं। भिक्षुओ! आर्यविनय में यह वृद्धि की बात कहलाती है कि कोई अपराध कर उसके लिये क्षमायाच्ञा करे और भविष्य में वैसा न करने के संयम का आश्वासन दें।"

२. भिक्षुओं द्वारा अधर्मपूर्वक दिये गये निर्णयों का विभाजन

३. उस समय चम्पा नगरी में बहुत से भिक्षु ऐसे दण्ड कर्म करते थे; जैसे—अधर्म से वर्ग

वग्गकम्मं करोन्ति, अधम्मेन समग्गकम्मं करोन्ति; धम्मेन वग्गकम्मं करोन्ति, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं करोन्ति; धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं करोन्ति; एको पि एकं उक्खिपति, एको पि द्वे उक्खिपति, एको पि सम्बहुले उक्खिपति, एको पि सङ्घं उक्खिपति; द्वे पि एकं उक्खिपन्ति, द्वे पि द्वे उक्खिपन्ति, द्वे पि सम्बहुले उक्खिपन्ति, द्वे पि सङ्घं उक्खिपन्ति; सम्बहुला पि एकं उक्खिपन्ति; सङ्घो पि सङ्घं उक्खिपति। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा....पे०....ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम चम्पायं भिक्खू एवरूपानि कम्मानि करिस्सन्ति—अधम्मेन वग्गकम्मं करिस्सन्ति, अधम्मेन समग्गकम्मं करिस्सन्ति, धम्मेन वग्गकम्मं करिस्सन्ति, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं करिस्सन्ति, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं करिस्सन्ति, एको पि एकं उक्खिपिस्सति, एको पि द्वे उक्खिपिस्सति, एको पि सम्बहुले उक्खिपिस्सति, एको पि सङ्घं उक्खिपिस्सति, द्वे पि एकं उक्खिपिस्सन्ति, द्वे पि द्वे उक्खिपिस्सन्ति, द्वे पि सम्बहुले उक्खिपिस्सन्ति, द्वे पि सङ्घं उक्खिपिस्सन्ति, सम्बहुला पि एकं उक्खिपिस्सन्ति, सम्बहुला पि द्वे उक्खिपिस्सन्ति, सम्बहुला पि सम्बहुले उक्खिपिस्सन्ति, सम्बहुला पि सङ्घं उक्खिपिस्सन्ति, सङ्घो पि सङ्घं उक्खिपिस्सती" ति।

अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं....पे०.....सच्चं किर, भिक्खवे, चम्पायं भिक्खू एवरूपानि कम्मानि करोन्ति—अधम्मेन वग्गकम्मं करोन्ति....पे०.... [R.316] सङ्घो पि सङ्घं उक्खिपती ति? "सच्चं, भगवा" ति। विगरहि, बुद्धो भगवा—"अननुच्छविकं, भिक्खवे, तेसं मोघपुरिसानं अननुलोमिकं अप्पतिरूपं अस्सामणकं [N.331] अकप्पियं अकरणीयं। कथं हि नाम ते, भिक्खवे, मोघपुरिसा एवरूपानि कम्मानि करिस्सन्ति—अधम्मेन वग्गकम्मं करिस्सन्ति....पे०....सङ्घो पि सङ्घं उक्खिपिस्सति। नेतं, भिक्खवे, अप्पसन्नानं वा पसादाय....पे०...." विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—

४. "अधम्मेन चे, भिक्खवे, वग्गकम्मं अकम्मं न च करणीयं, अधम्मेन [B.435] समग्गकम्मं अकम्मं न च करणीयं, धम्मेन वग्गकम्मं अकम्मं न च करणीयं; धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं अकम्मं न च करणीयं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं अकम्मं न च करणीयं; एको पि एकं उक्खिपति अकम्मं न च करणीयं, एको पि द्वे उक्खिपति अकम्मं न च

(छोटे समूह) का दण्डकर्म करते थे, अधर्म से समग्र (पूरे समूह) का दण्डकर्म करते थे। धर्म से वर्गकर्म, धर्मसदृश से वर्गकर्म, धर्मसदृश से समग्र कर्म करते थे। एक भिक्षु ही बहुतों का उत्क्षेपण (सङ्घ से निष्कासन), एक भिक्षु दो का, एक भिक्षु ही सङ्घ का उत्क्षेपण करता था। दो भी सङ्घ का उत्क्षेपण कर डालते थे, या फिर सङ्घ ही सङ्घ का उत्क्षेपण कर देता था। यह सब देखकर, वहाँ जो भिक्षु अल्पेच्छ....थे बहुत उद्विग्न तथा खिन्न होते थे कि कैसे ये भिक्षु अधर्म से सङ्घ का उत्क्षेपण कर देता है !

उन अल्पेच्छ भिक्षुओं ने इस घटना की भगवान् से चर्चा की। भगवान् से इस प्रसङ्ग में सब भिक्षुओं को एकत्र कर पूछा—"क्या भिक्षुओ! वास्तव में ही चम्पा में रहने वाले भिक्षु ऐसा अधर्ममय कर्म करते हैं....पूर्ववत्...." "हाँ, भगवन्!" इस बात की निन्दा करते हुए....बताया—

करणीयं, एको पि सम्बहुले उक्खिपति अकम्मं न च करणीयं, एको पि सङ्घं उक्खिपति अकम्मं न च करणीयं, द्वे पि एकं उक्खिपन्ति अकम्मं न च करणीयं, द्वे पि द्वे उक्खिपन्ति अकम्मं न च करणीयं, द्वे पि सम्बहुले उक्खिपन्ति अकम्मं न च करणीयं, द्वे पि सङ्घं उक्खिपन्ति अकम्मं न च करणीयं; सम्बहुला पि एकं उक्खिपन्ति अकम्मं न च करणीयं, सम्बहुला पि द्वे उक्खिपन्ति अकम्मं न च करणीयं, सम्बहुला पि सम्बहुले उक्खिपन्ति अकम्मं न च करणीयं, सम्बहुला पि सङ्घं उक्खिपन्ति अकम्मं न च करणीयं; सङ्घो पि सङ्घं उक्खिपति अकम्मं न च करणीयं।

५. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, कम्मानि—अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मेन समग्गकम्मं। (१) तत्र, भिक्खवे, यदिदं अधम्मेन वग्गकम्मं, इदं, भिक्खवे, कम्मं अधम्मत्ता वग्गत्ता कुप्पं अट्ठानारहं; न, भिक्खवे, एवरूपं कम्मं कातब्बं, न च मया एवरूपं कम्मं अनुञ्ञातं। (२) तत्र, भिक्खवे, यदिदं अधम्मेन समग्गकम्मं, इदं, भिक्खवे, कम्मं अनुञ्ञातं। (३) तत्र, भिक्खवे, यदिदं धम्मेन वग्गकम्मं, इदं, भिक्खवे, कम्मं वग्गत्ता कुप्पं अट्ठानारहं; न, भिक्खवे, एवरूपं कम्मं कातब्बं, न च मया एवरूपं कम्मं अनुञ्ञातं। (४) तत्र, भिक्खवे, यदिदं धम्मेन समग्गकम्मं, इदं, भिक्खवे, कम्मं धम्मत्ता समग्गत्ता अकुप्पं ठानारहं; एवरूपं, भिक्खवे, कम्मं कातब्बं, एवरूपं च मया कम्मं अनुञ्ञातं। तस्मातिह, **भिक्खवे, 'एवरूपं कम्मं करिस्साम यदिदं धम्मेन समग्गं' ति—एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं"** ति।

---

४. "भिक्षुओ! यदि कोई वर्गकर्म अधर्म है तो वह भिक्षु के लिये अकर्म (अकरणीय) है। इसी तरह अधर्म से किया गया समग्र कर्म भी अकर्म है।....पूर्ववत्....यदि सङ्घ भी सङ्घ का उत्प्रेक्षण अधर्म से करता है तो वह सङ्घ के लिये अकर्म है। उसे नहीं करना चाहिये।

५. "भिक्षुओ! ये दण्डकर्म चार प्रकार के होते हैं—१. अधर्म से वर्गकर्म, २ अधर्म से समग्र कर्म, ३. धर्म से वर्गकर्म एवं ४. धर्म से समग्र कर्म।

(१) "भिक्षुओ! इनमें जो अधर्म से कृत वर्गकर्म है वह, अधर्मता से किया गया होने के कारण, एवं वर्गता (गुटबाजी) के कारण कोप्य (त्याज्य) एवं अयोग्य (अस्थानार्ह) है। अतः भिक्षुओ! ऐसा कर्म नहीं करना चाहिये। न मैंने ऐसे कर्म की अनुज्ञा (सम्मति) ही की है।

(२) अधर्म से कृत समग्र कर्म भी, भिक्षुओ! अधर्मता से किया गया होने के कारण...पूर्ववत्....न मैंने ऐसे कर्म की अनुज्ञा ही की है।

(३) धर्म से कृत वर्गकर्म भी, भिक्षुओ! वर्गता (गुटबाजी) के कारण भिक्षुओं के लिये त्याज्य एवं अनुचित ही है। अतः भिक्षुओ! ऐसा कर्म भी नहीं करना चाहिये। ऐसे कर्म की भी मैंने तुम लोगों को कोई कभी अनुज्ञा की है।

(४) "हाँ, भिक्षुओ! यह जो धर्म से कृत समग्र कर्म है, यह धर्मता एवं समग्रता (एकता) का उत्पादक होने के कारण, भिक्षुओं के लिये अत्याज्य है, उचित है, करणीय है। अतः ऐसा कर्म करना चाहिये। ऐसे कर्म की मैंने अनुज्ञा भी की है।

"इसलिये, **भिक्षुओ! 'हमलोग ऐसा ही कर्म करेंगे जो धर्मपूर्वक किया जाने से समग्रता (एकता) की तरफ ले जाने वाला हो'—ऐसा तुम लोगों को सीखना चाहिये।**

३. ञत्तिविपन्नकम्मादिकथा

६. तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू एवरूपानि कम्मानि करोन्ति—अधम्मेन वग्गकम्मं करोन्ति, अधम्मेन समग्गकम्मं करोन्ति; धम्मेन वग्गकम्मं करोन्ति, [B.436] धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं करोन्ति, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं करोन्ति; [N.332, R.317] ञत्तिविपन्नं पि कम्मं करोन्ति अनुस्सावनसम्पन्नं, अनुस्सावनविपन्नं पि कम्मं करोन्ति ञत्तिसम्पन्नं, ञत्तिविपन्नं पि अनुस्सावनविपन्नं पि कम्मं करोन्ति; अञ्ञत्रा पि धम्मा कम्मं करोन्ति, अञ्ञत्रा पि विनया कम्मं करोन्ति। अञ्ञत्रा पि सत्थुसासना कम्मं करोन्ति; पटिकुट्ठकतं पि कम्मं करोन्ति अधम्मिकं कुप्पं अट्ठानारहं।

ये ते भिक्खू अप्पिच्छा....पे०.....ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—"कथं हि नाम छब्बग्गिया भिक्खू एवरूपानि कम्मानि करिस्सन्ति—अधम्मेन वग्गकम्मं करिस्सन्ति, अधम्मेन समग्गकम्मं करिस्सन्ति; धम्मेन वग्गकम्मं करिस्सन्ति, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं करिस्सन्ति, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं करिस्सन्ति; ञत्तिविपन्नं पि कम्मं करिस्सन्ति अनुस्सावनसम्पन्नं, अनुस्सावनविपन्नं पि कम्मं करिस्सन्ति ञत्तिसम्पन्नं, ञत्तिविपन्नं पि अनुस्सावनविपन्नं पि कम्मं करिस्सन्ति; अञ्ञत्रा पि धम्मा कम्मं करिस्सन्ति, अञ्ञत्रा पि विनया कम्मं करिस्सन्ति, अञ्ञत्रा पि सत्थुसासना कम्मं करिस्सन्ति; पटिकुट्ठकतं पि कम्मं करिस्सन्ति अधम्मिकं कुप्पं अट्ठानारहं" ति। अथ खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं...पे०....।

"सच्चं किर, भिक्खवे, छब्बग्गिया भिक्खू एवरूपानि कम्मानि करोन्ति—अधम्मेन वग्गकम्मं करोन्ति....पे०....पटिकुट्ठकतं पि कम्मं करोन्ति अधम्मिकं कुप्पं अट्ठानारहं" ति? "सच्चं, भगवा" ति। विगरहि बुद्धो भगवा...पे०....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—

७. "अधम्मेन चे, भिक्खवे, वग्गकम्मं अकम्मं न च करणीयं, अधम्मेन समग्गकम्मं

---

३. ज्ञप्तिविपन्न कर्मों (अकर्मों) के भेद

६. उस समय षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे कर्म भी करते रहते थे; जैसे—वे अधर्म से वर्गकर्म, अधर्म से सभग्र कर्म, धर्म से वर्गकर्म एवं धर्मतुल्य (अधर्म) से वर्गकर्म, धर्मतुल्य (अधर्म) से समग्र कर्म करते थे। सङ्घ को ज्ञप्ति (सूचना) किये विना ही अनुश्रावणमात्र करके कर्म करते थे, अनुश्रावणमात्र किये विना केवल ज्ञप्ति करके कर्म करते थे, कभी कभी ज्ञप्ति एवं अनुश्रावण के विना ही वे ऐसे कर्म कर डालते थे। वे धर्म से बाहर जाकर भी, विनय से बाहर जाकर भी, शास्ता के आदेशों का उल्लङ्घन करके भी कर्म कर डालते थे, घृणित सदोष (पटिकुट्ठ) अतएव धर्मविरुद्ध अनुचित कर्म करने में भी उन्हें सङ्कोच नहीं होता था।

उनके इन अधार्मिक कर्मों को देखकर सङ्घ के अल्पेच्छ भिक्षु खिन्न एवं उद्विग्न होते थे कि कैसे ये....पूर्ववत् ...धर्मविरुद्ध अनुचित करने में भी इन्हें कोई सङ्कोच नहीं होता! उन्होंने भगवान् से इन बातों की चर्चा की। तब इस प्रकरण में भगवान् ने भिक्षुओं को एकत्र कर पूछा—"भिक्षुओ! क्या वस्तुतः....पूर्ववत्.....भगवान् ने उपदेश किया—

७. "भिक्षुओ! अधर्म से सम्पन्न होने वाला वर्गकर्म, यदि अकर्म घोषित है, तो उसे नहीं करना

अकम्मं न च करणीयं; धम्मेन वग्गकम्मं अकम्मं न च करणीयं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं अकम्मं न च करणीयं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं अकम्मं न च करणीयं; ञत्तिविपन्नं चे, भिक्खवे, कम्मं अनुस्सावनसम्पन्नं अकम्मं न च करणीयं, अनुस्सावनविपन्नं चे, भिक्खवे, कम्मं ञत्तिसम्पन्नं अकम्मं न च करणीयं, ञत्तिविपन्नं चे, भिक्खवे, कम्मं अनुस्सावनविपन्नं अकम्मं न च करणीयं, अञ्ञत्रा पि धम्मा कम्मं अकम्मं न च करणीयं; अञ्ञत्रा पि विनया कम्मं अकम्मं न च करणीयं, अञ्ञत्रा पि सत्थुसासना कम्मं अकम्मं न च करणीयं; पटिकुट्ठकतं चे, भिक्खवे, कम्मं अधम्मिकं कुप्पं अट्ठानारहं अकम्मं न च करणीयं।

८. छयिमानि, भिक्खवे, कम्मानि—१. अधम्मकम्मं, २. वग्गकम्मं, ३. समग्गकम्मं, ४. धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, ५. धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, ६. धम्मेन समग्गकम्मं।

(१) कतमं च, भिक्खवे, अधम्मकम्मं? ञत्तिदुतिये चे, भिक्खवे, कम्मे [B.437] एकाय ञत्तिया कम्मं करोति, न च कम्मवाचं अनुस्सावेति—अधम्मकम्मं। ञत्तिदुतिये चे, भिक्खवे, कम्मे द्वीहि ञत्तीहि कम्मं करोति, न च कम्मवाचं अनुस्सावेति—अधम्मकम्मं। ञत्तिदुतिये चे, भिक्खवे, कम्मे एकाय कम्मवाचाय कम्मं करोति, न च ञत्तिं ठपेति—अधम्मकम्मं। ञत्तिदुतिये चे, भिक्खवे, कम्मे द्वीहि कम्मवाचाहि कम्मं करोति, न च ञत्तिं [N.333] ठपेति—अधम्मकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे एकाय ञत्तिया कम्मं करोति, न च कम्मवाचं अनुस्सावेति—अधम्मकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे द्वीहि ञत्तीहि कम्मं करोति, न च कम्मवाचं अनुस्सावेति—अधम्मकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे,

---

चाहिये। धर्म से सम्पन्न होने वाला वर्गकर्म भी....धर्मसदृश से सम्पाद्य वर्गकर्म....धर्मसदृश से सम्पादनीय समग्र कर्म भी....ज्ञप्तिरहित अनुश्रावण सम्पन्न वर्गकर्म.....अनुश्रावणसम्पन्न परन्तु ज्ञप्तिरहित कर्म भी....अनुश्रावण एवं ज्ञप्ति—दोनों से रहित कर्म भी 'अकर्म' है, नहीं करना चाहिये। धर्मबाह्य, विनयबाह्य एवं शास्ता द्वारा अननुमोदित कर्म भी 'अकर्म' ही कहलाता है, उसे नहीं करना चाहिये। भिक्षुओ! जो कर्म घृणित हो, सदोष हो, दूसरे की निन्दा–स्तुति में किया जा रहा हो वह भी अकर्म है, अनुचित है, उसे भी नहीं करना चाहिये।

८. भिक्षुओ! कर्म छह होते हैं; जैसे— १. अधर्मकर्म, २. वर्गकर्म, ३. समग्र कर्म, ४. धर्मसदृश= धर्माभास (परन्तु वास्तविक धर्म नहीं) वर्गकर्म, ५ धर्मसदृश समग्रकर्म, ६. धर्मपूर्वक समग्रकर्म।

अधर्मकर्म – (१–क) भिक्षुओ! यहाँ 'अधर्म कर्म' क्या है? (क) 'भिक्षुओ! कोई ज्ञप्तिद्वितीय कर्म में केवल ज्ञप्ति से कर्म करता है, वहाँ कर्मवाक् का अनुश्रावण नहीं कराता तो वह 'अधर्मकर्म' है। (ख) भिक्षुओ! ज्ञप्ति के साथ दो वचनो के साथ किये जाने वाले कर्म में दो ज्ञप्तियों से कर्म करता है और कर्मवाक् का अनुश्रावण नहीं कराता वह भी 'अधर्मकर्म' है। (ग) ज्ञप्तिसहित दो वचनों से किये जाने वाले कर्म में एक ही कर्मवाक् के अनुश्रावण से कर्म करता है और वहाँ ज्ञप्ति को स्थापित नहीं करता, वह भी 'अधर्म कर्म' है। (घ) ज्ञप्तिसहित दो वचनों के साथ किये जाने वाले कर्म में दो कर्मवाक् कर्म करता है परन्तु ज्ञप्ति की स्थापना नहीं करता वह भी 'अधर्म कर्म' है।

(१–ख) (क) ''भिक्षुओ! कोई ज्ञप्तिसहित चार वचनों से किये जाने वाले कर्म में एक ज्ञप्ति से कर्म करता है और कर्मवाक् का अनुश्रावण नहीं करता, यह अधर्मकर्म है। (ख) भिक्षुओ! ज्ञप्तिसहित चार वचनों से किये जाने वाले कर्म में दो ज्ञप्तियों से ही. ..। (ग) भिक्षुओ! ज्ञप्तिसहित चार वचनों से

भिक्खवे, कम्मे तीहि ञत्तीहि कम्मं करोति, न च कम्मवाचं अनुस्सावेति—[R.318] अधम्मकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे चतूहि ञत्तीहि कम्मं करोति, न च कम्मवाचं अनुस्सावेति—अधम्मकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे एकाय कम्मवाचाय कम्मं करोति, न च ञत्तिं ठपेति—अधम्मकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे द्वीहि कम्मवाचाहि कम्मं करोति, न च ञत्तिं ठपेति—अधम्मकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे तीहि कम्मवाचाहि कम्मं करोति, न च ञत्तिं ठपेति—अधम्मकम्मं। 'ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे चतूहि कम्मवाचाहि कम्मं करोति न च ञत्तिं ठपेति—अधम्मकम्मं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, अधम्मकम्मं।

(२) कतमं च, भिक्खवे, वग्गकम्मं? ञत्तिदुतिये चे, भिक्खवे, कम्मे यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते अनागता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो अनाहटो होति, सम्मुखीभूता पटिक्कोसन्ति—वग्गकम्मं। ञत्तिदुतिये चे, भिक्खवे, कम्मे यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते आगता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो अनाहटो होति, सम्मुखीभूता पटिक्कोसन्ति—वग्गकम्मं। ञत्तिदुतिये चे, भिक्खवे, कम्मे यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते आगता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो आहटो होति, सम्मुखीभूता पटिक्कोसन्ति—वग्गकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे, [B.438] भिक्खवे, कम्मे यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते अनागता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो अनाहटो होति, सम्मुखीभूता पटिक्कोसन्ति—वग्गकम्मं। 'ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते आगता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो अनाहटो होति, सम्मुखीभूता पटिक्कोसन्ति—वग्गकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते आगता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो आहटो होति, सम्मुखीभूता पटिक्कोसन्ति-वग्गकम्मं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, वग्गकम्मं।

किये जाने वाले कर्म में तीन ज्ञप्तियों से ही.....। (घ) भिक्षुओ! चार ज्ञप्तियों से किये जाने वाले कर्म में चार ज्ञप्तियों से....। (ङ) ....कोई एक कर्मवाक् से ही कर्म करता है, ज्ञप्ति स्थापित नहीं करता। (च)....दो कर्मवाक् से...। (छ) तीन कर्मवाक् से....। (ज) चार कर्मवाक् से कर्म करता है और ज्ञप्ति स्थापित नहीं करता— यह 'अधर्म' कर्म है। भिक्षुओ! यह कहा जाता है अधर्मकर्म अर्थात् भिक्षुओं द्वारा दिया गया नियमविरुद्ध दण्ड।

वर्गकर्म– (२–क) भिक्षुओ! क्या है वर्गकर्म? (क) भिक्षुओ! ज्ञप्तिसहित दो वचनों से किये जाने वाले कर्म में जितने भिक्षु कर्मदण्ड प्राप्त हैं वे न आये हों, जिनको छन्द (मत) देना है उनका मत न आया हो, और सम्मुख होने पर यदि निन्दावचन (प्रतिक्रोश) बोलें तो यह 'वर्गकर्म' है। (ख).....जितने भिक्षु कर्मदण्ड प्राप्त हैं वे तो आये हों परन्तु मत देने वाले न आये हों....। (ग) .....कर्मदण्ड प्राप्त भिक्षु भी आये हों, मतदाता भी आये हों, परन्तु सम्मुख होने पर निन्दावचन करे तो यह 'वर्गकर्म' कहलाता है।

(२–ख) (क) ज्ञप्तिसहित चार वचनों से किये जाने वाले कर्म में जितने भिक्षु कर्मदण्ड प्राप्त हैं वे न आये हों, जिनका छन्द (मत) करना है वे न आये हो, और सम्मुख होने पर निन्दा–वचन बोलने लगे तो वह 'वर्गकर्म' कहलाता है। (ख)....कर्मदण्ड प्राप्त भिक्षु तो आये हों परन्तु मत न मँगाये गये हों, और सम्मुख होने पर निन्दावचन भी कहे जायँ तो यह 'वर्गकर्म' होता है। (ग) .....दण्डप्राप्त भिक्षु भी आये हों, मत भी मँगा लिये गये हों, परन्तु सम्मुख होने पर निन्दावचन कहें तो यह 'वर्गकर्म' है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं–'वर्ग कर्म'।

(३) कतमं च, भिक्खवे, समग्गकम्मं? ञत्तिदुतिये चे, भिक्खवे, कम्मे यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते आगता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो आहटो होति, सम्मुखीभूता न पटिक्कोसन्ति—समग्गकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते आगता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो आहटो होति, सम्मुखीभूता न पटिक्कोसन्ति—समग्गकम्मं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, समग्गकम्मं।

(४) कतमं च, भिक्खवे, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं? ञत्तिदुतिये चे, भिक्खवे, कम्मे पठमं कम्मवाचं अनुस्सावेति, पच्छा ञत्तिं ठपेति, यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते अनागता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो अनाहटो होति, सम्मुखीभूता पटिक्कोसन्ति—धम्मपति- [N.334] रूपकेन वग्गकम्मं। ञत्तिदुतिये चे, भिक्खवे, कम्मे पठमं कम्मवाचं अनुस्सावेति, पच्छा ञत्तिं ठपेति, यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते आगता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो अनाहटो होति, सम्मुखीभूता पटिक्कोसन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं। ञत्तिदुतिये चे, भिक्खवे, कम्मे पठमं कम्मवाचं अनुस्सावेति, पच्छा ञत्तिं ठपेति, यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते आगता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो आहटो होति, सम्मुखीभूता पटिक्कोसन्ति— [R.319] धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे पठमं कम्मवाचं अनुस्सावेति, पच्छा ञत्तिं ठपेति, यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते अनागता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो अनाहटो होति, सम्मुखीभूता पटिक्कोसन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे पठमं कम्मवाचं अनुस्सावेति, पच्छा ञत्तिं ठपेति, यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते आगता होन्ति; छन्दारहानं छन्दो अनाहटो होति, सम्मुखीभूता पटिक्कोसन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे पठमं कम्मवाचं अनुस्सावेति,

---

समग्रकर्म– (३) (क) और, भिक्षुओ! यह 'समग्र कर्म' कौन सा कहलाता है? (क) ज्ञप्ति सहित दो वचनों द्वारा किये जाने वाले कर्म में जितने भिक्षु दण्डकर्म प्राप्त हो वे सब आये हों, सभी मत भी मँगा लिये गये हों, किसी के प्रति निन्दावचनों का भी प्रयोग न हो– ऐसा कर्म 'समग्र कर्म' कहलाता है।

(ख) ''और भिक्षुओ! ज्ञप्तिसहित चार वचनों से किये जाने वाले कर्म में सभी भिक्षु आये हों, छन्द (मत) भी मँगा लिये गये हों, निन्दावचनों का प्रयोग भी न हो– ऐसा कर्म भी 'समग्रकर्म कहलाता है। भिक्षुओ! यह कहा जाता है समग्र कर्म।

धर्माभास से कृत वर्गकर्म– (४) क्या है, भिक्षुओ! धर्माभास से किया गया वर्गकर्म?

(क) जहाँ ज्ञप्ति सहित दो वचनों से किये जाने वाले कर्म में पहले कर्मवाक् का अनुश्रावण करावे, फिर ज्ञप्ति की स्थापना करें, जितने भिक्षु कर्म–प्राप्त हों वे न आये हों, छन्द देने वालो का छन्द न आया हो, सम्मुख होने पर निन्दावचन कहे तो यह होता है धर्माभास से किया गया वर्गकर्म।

(ख)...भिक्षु आये हों परन्तु छन्द न मँगाया गया हो, सम्मुख होने पर निन्दावचन कहें तो यह भी धर्माभास से किया गया वर्गकर्म कहलाता है।

(ग) ज्ञप्तिसहित दो वचनों से किये जाने वाले कर्म में पहले कर्मवाक् का अनुश्रावण करता है, फिर ज्ञप्ति की स्थापना करता है, जितने भिक्षु कर्मपास हैं वे आये हों, मत भी मँगा लिया गया हो, परन्तु सम्मुख होने पर निन्दावचन बोलते हैं– यह 'धर्माभासकृत वर्गकर्म' है।

(क) ज्ञप्तिरहित चार वचनों से किये जाने वाले कर्म में...जितने भिक्षु कर्म प्राप्त हैं वे न आये

पच्छा ञत्तिं ठपेति, यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते आगता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो आहटो होति, सम्मुखीभूता पटिक्कोसन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं। इदं वुच्चति, [B.439] भिक्खवे, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं।

(५) कतमं च, भिक्खवे, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं? ञत्तिदुतिये चे, भिक्खवे, कम्मे पठमं कम्मवाचं अनुस्सावेति, पच्छा ञत्तिं ठपेति, यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता, ते आगता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो आहटो होति, सम्मुखीभूता न पटिक्कोसन्ति—धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे पठमं कम्मवाचं अनुस्सावेति, पच्छा ञत्तिं ठपेति, यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते आगता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो आहटो होति, सम्मुखीभूता न पटिक्कोसन्ति—धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं।

(६) कतमं च, भिक्खवे, धम्मेन समग्गकम्मं? ञत्तिदुतिये चे, भिक्खवे, कम्मे पठमं ञत्तिं ठपेति, पच्छा एकाय कम्मवाचाय कम्मं करोति, यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता ते आगता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो आहटो होति, सम्मुखीभूता न पटिक्कोसन्ति—धम्मेन समग्गकम्मं। ञत्तिचतुत्थे चे, भिक्खवे, कम्मे पठमं ञत्तिं ठपेति, पच्छा तीहि कम्मवाचाहि कम्मं करोति, यावतिका भिक्खू कम्मप्पत्ता, ते आगता होन्ति, छन्दारहानं छन्दो आहटो होति, सम्मुखीभूता न पटिक्कोसन्ति, धम्मेन समग्गकम्मं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, धम्मेन समग्गकम्मं।

४. चतुवग्गकरणादिकथा

९. पञ्च सङ्घा—१. चतुवग्गो भिक्खुसङ्घो, २. पञ्चवग्गो भिक्खुसङ्घो, ३. दसवग्गो भिक्खुसङ्घो, ४. वीसतिवग्गो भिक्खुसङ्घो, ५. अतिरेकवीसतिवग्गो भिक्खुसङ्घो। तत्र, भिक्खवे, य्वायं चतुवग्गो भिक्खुसङ्घो, ठपेत्वा तीणि कम्मानि—उपसम्पदं पवारणं [N.335]

हों, छन्द भी न आया हो, निन्दा वचन भी बोले जाँय तो यह भी 'धर्माभासकृत वर्गकर्म' कहलाता है।

(ख) ज्ञप्तिसहित चार वचनों से....मत भी न मँगाया हो और सम्मुख होने पर निन्दावचनों का प्रयोग किया जाय तो यह भी....।

(ग) ज्ञप्तिसहित चार वचनों से.....मत मँगा लिया हो, परन्तु निन्दावचनों प्रयोग होता रहे तो यह भी धर्माभासकृत वर्गकर्म है। इसे कहते हैं भिक्षुओ! धर्माभास कृत वर्गकर्म।

धर्माभासयुक्त समग्र कर्म— (५) (क) भिक्षुओ! ज्ञप्तिसहित दो वचनों से किये जाने वाले कर्म में पहले कर्मवाक् का अनुश्रावण किया गया हो, फिर ज्ञप्ति की स्थापना की गयी हो, जितने भिक्षु कर्मप्राप्त हों वे आये हों, छन्द देने वालों का छन्द भी आ गया हो, सम्मुख होने पर निन्दावचन भी न बोलते हों तो यह होता है धर्माभासयुक्त समग्र कर्म।

(ख) इसी तरह भिक्षु ज्ञप्तिसहित चार वचनों से किये जाने वाले कर्म में पहले....निन्दावचन भी न बोलते हों तो यह होता है, भिक्षुओ! धर्माभासयुक्त समग्र कर्म।

वास्तविक धर्मपूर्वक समग्र कर्म क्या होता है? (६) भिक्षुओ! ज्ञप्तिसहित दो वचनों से होने वाले कर्म में पहले ज्ञप्ति की स्थापना की जाय, फिर एक वाचा से कर्म का अनुश्रावण किया जाय, जितने भिक्षु कर्मप्राप्त हों वे सभी आये हों, मत भी मँगा लिये गये हों, सम्मुख होने पर निन्दावचन भी नहीं बोलते तो यह होता है, भिक्षुओ! वास्तविक धर्मपूर्वक समग्रकर्म।

अब्भानं, धम्मेन समग्गो सब्बकम्मेसु कम्मप्पत्तो। तत्र, भिक्खवे, य्वायं पञ्चवग्गो भिक्खुसङ्घो, ठपेत्वा द्वे कम्मानि—मज्झिमेसु जनपदेसु उपसम्पदं अब्भानं, धम्मेन समग्गो सब्बकम्मेसु कम्मप्पत्तो। तत्र, भिक्खवे, य्वायं दसवग्गो भिक्खुसङ्घो, ठपेत्वा एकं कम्मं—अब्भानं, [B.440, R.320] धम्मेन समग्गो सब्बकम्मेसु कम्मप्पत्तो। तत्र, भिक्खवे, य्वायं वीसतिवग्गो भिक्खुसङ्घो धम्मेन समग्गो सब्बकम्मेसु कम्मप्पत्तो। तत्र, भिक्खवे, य्वायं अतिरेकवीसति-वग्गो भिक्खुसङ्घो धम्मेन समग्गो सब्बकम्मेसु कम्मप्पत्तो।

१०. चतुवग्गकरणं चे, भिक्खवे, कम्मं भिक्खुनिचतुत्थो कम्मं करेय्य—अकम्मं न च करणीयं। चतुवग्गकरणं चे, भिक्खवे, कम्मं सिक्खमानचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं....पे०....। सामणेरचतुत्थो कम्मं करेय्य...अकम्मं न च करणीयं। सामणेरिचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। सिक्खं पच्चक्खातकचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। अन्तिमवत्थुं अज्झापन्नकचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तकचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खित्तकचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खित्तकचतुत्थो कम्मं करेय्य.....अकम्मं न च करणीयं। पण्डकचतुत्थो कम्मं करेय्य.....अकम्मं न च करणीयं। थेय्यसंवासकचतुत्थो कम्मं करेय्य.....अकम्मं न च करणीयं। तित्थियपक्कन्तकचतुत्थो कम्मं करेय्य......अकम्मं न च

---

४. चतुवर्गकरण आदि की कथा

पञ्चविध सङ्घ— ९. "सङ्घ पञ्चविध होते हैं— १. चार वर्गों (व्यक्तियों) वाला सङ्घ, २. पाँच वर्गों वाला, ३. दश वर्गों वाला, ४. बीस वर्गों वाला एवं ५. बीस से अधिक सङ्ख्यावाला वर्ग-सङ्घ।

इन सङ्घों के अधिकार— "भिक्षुओ! उपर्युक्त चार व्यक्तियों वाला सङ्घ उपसम्पदा, प्रवारणा एवं आह्वान—इन तीन कर्मों को छोड़कर धर्मपूर्वक सभी समग्र करने के लिये अधिकृत है।

और भिक्षुओ! पाँच वर्गों से युक्त भिक्षुसङ्घ दो कर्मों—१. मध्यम जनपदों में उपसम्पदा एवं २. आह्वान (एक प्रकार का दण्ड) को छोड़कर धर्मपूर्वक सभी कर्मों को करने हेतु अधिकारप्राप्त है।

"और भिक्षुओ! यह जो दश व्यक्तियों वाला भिक्षुसङ्घ है वह एक कर्म (आह्वान) को छोड़कर धर्मपूर्वक अन्य समग्र करने में अधिकार प्राप्त है।

"और भिक्षुओ बीस व्यक्तियों वाला भिक्षुसङ्घ धर्मपूर्वक सभी समग्रकर्मों को पूर्ण करने में अधिकारप्राप्त है।

और, भिक्षुओ! बीस व्यक्तियों से अधिक सङ्ख्या वाला भिक्षु सङ्घ तो धर्मपूर्वक समग्र कर्मों को पूर्ण करने में अधिकृत है ही।

१०. वर्ग पूरा करने का उपाय— (क) भिक्षुओ! यदि चतुर्वर्ग से करने योग्य कर्म हो तो चौथी किसी भिक्षुणी को मिलाकर वर्ग (कोरम) पूरा कर कर्म कर लेना चाहिये, परन्तु अकर्म (अयुक्त रीति से कर्म) नहीं करना चाहिये। (ख)....शिक्षमाणा को मिलाकर.. ..। (ग) श्रामणेर को मिलाकर.... (घ) चौथी श्रामणेरी को मिलाकर.....। (ङ)......शिक्षाप्रख्यातक को मिलाकर.....। (च)... अन्तिमवस्तु-प्राप्त को मिलाकर....। (छ)...दोष न देखने से उत्क्षिप्तक...। (ज) ....आपत्ति (दोष) न देखने से प्रतीकार न करने वाले उत्क्षिप्तक....। (झ).....दोष का प्रायश्चित्त न किये उत्क्षिप्तक....। (ञ).. .पापमय दृष्टि को न त्यागने वाले उत्क्षिप्तक....। (ट)....पण्डक....। (ठ)....स्तेयसंवासक ...। (ड)....दूसरे सम्प्रदाय

करणीयं। तिरच्छानगतचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। मातुघातकचतुत्थो कम्मं करेय्य.....अकम्मं न च करणीयं। पितुघातकचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। अरहन्तघातकचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। भिक्खुनिदूसकचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। सङ्घभेदकचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। लोहितुप्पादकचतुत्थो कम्मं करेय्य.....अकम्मं न च करणीयं। उभतोब्यञ्जनकचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। नानासंवासकचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। नानासीमाय ठितचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। इद्धिया वेहासे ठितचतुत्थो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। यस्स सङ्घो कम्मं करोति, तं-चतुत्थो कम्मं करेय्य.....अकम्मं न च करणीयं।

चतुवग्गकरणं॥

११. पञ्चवग्गकरणं चे, भिक्खवे, कम्मं भिक्खुनिपञ्चमो कम्मं करेय्य....अकम्मं न च करणीयं। पञ्चवग्गकरणं चे, भिक्खवे, कम्मं सिक्खमानपञ्चमो कम्मं करेय्य....पे०...। सामणेरपञ्चमो कम्मं करेय्य....सामणेरिपञ्चमो कम्मं करेय्य.....सिक्खं [N.336, B.441] पच्चक्खातकपञ्चमो कम्मं करेय्य....अन्तिमवत्थुं अज्झापन्नकपञ्चमो कम्मं करेय्य....आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तकपञ्चमो कम्मं करेय्य....आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खित्तकपञ्चमो कम्मं करेय्य...पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खित्तकपञ्चमो कम्मं करेय्य....पण्डकपञ्चमो कम्मं करेय्य.....थेय्यसंवासकपञ्चमो कम्मं करेय्य....तित्थियपक्कन्तकपञ्चमो कम्मं करेय्य.... तिरच्छानगतपञ्चमो कम्मं करेय्य....मातुघातकपञ्चमो कम्मं करेय्य....पितुघातकपञ्चमो कम्मं करेय्य....अरहन्तघातकपञ्चमो कम्मं करेय्य....भिक्खुनिदूसकपञ्चमो कम्मं करेय्य.... सङ्घभेदकपञ्चमो कम्मं करेय्य....लोहितुप्पादकपञ्चमो कम्मं करेय्य....उभतोब्यञ्जनकपञ्चमो कम्मं करेय्य....नानासंवासकपञ्चमो कम्मं करेय्य....नानासीमाय ठितपञ्चमो कम्मं करेय्य....इद्धिया वेहासे ठितपञ्चमो कम्मं करेय्य....यस्स सङ्घो कम्मं करोति, तं-पञ्चमो कम्मं करेय्य—अकम्मं न च करणीय।

पञ्चवग्गकरणं॥

में मिले हुए को....।(ढ).....तिरच्छानगत को....।(ण).....मातृघातक को.....।(त).....पितृघातक को.....। (थ) ... ..अरहद्घातक को.....।(द).....भिक्षुणीदूषक को....।(ध).....सङ्घभेदक को.....।(न)....लोहितोत्पादक को....। (प). .उभतोव्यञ्जनक (स्त्री-पुरुष दोनों लिङ्गों वाले) को.....। (फ) नानासंवासक को....। (ब)......नाना सीमाओं में रहने वाले को.....। (भ) ऋद्धि के सहारे आकाश में स्थित को मिलाकर वर्ग पूरा कर कर्म कर लेना चाहिये; परन्तु अयुक्त कर्म नहीं करना चाहिये। यदि अन्य कोई भी न मिले तो उसी (अभियुक्त) को चौथे व्यक्ति के रूप में मिलाकर सङ्घकर्म कर लेना चाहिये; परन्तु अयुक्त कर्म नहीं करना चाहिये।

चतुर्वर्गकरण समाप्त।।

११. भिक्षुओ! यदि पञ्चवर्ग से करने योग्य कार्य हो तो पाँचवे व्यक्ति के रूप में किसी भिक्षुणी को मिलाकर सङ्घकर्म पूरा कर लेना चाहिये; परन्तु कोई अयुक्त कर्म नहीं करना चाहिये।.....शिक्षमाणा

१२. दसवग्गकरणं चे, भिक्खवे, कम्मं भिक्खुनिदसमो कम्मं करेय्य, अकम्मं न च करणीयं। दसवग्गकरणं चे, भिक्खवे, कम्मं सिक्खमानदसमो कम्मं करेय्य, अकम्मं न च करणीयं....पे०....। दसवग्गकरणं चे, भिक्खवे, कम्मं यस्स सङ्घो कम्मं करोति, तं-दसमो कम्मं करेय्य—अकम्मं न च करणीयं।

दसवग्गकरणं॥

१३. वीसतिवग्गकरणं चे, भिक्खवे, कम्मं भिक्खुनिवीसो कम्मं करेय्य—अकम्मं न च करणीयं। वीसतिवग्गकरणं चे, भिक्खवे, कम्मं सिक्खमानवीसो कम्मं करेय्य....पे०....। सामणेरवीसो कम्मं करेय्य....सामणेरिवीसो कम्मं करेय्य....सिक्खं पच्चक्खातकवीसो कम्मं करेय्य....अन्तिमवत्थुं अज्झापन्नकवीसो कम्मं करेय्य....आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तकवीसो कम्मं करेय्य....आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खित्तकवीसो कम्मं करेय्य....पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खित्तकवीसो कम्मं करेय्य....पण्डकवीसो कम्मं करेय्य.... थेय्य-संवासकवीसो कम्मं करेय्य....तित्थियपक्कन्तकवीसो कम्मं करेय्य.....तिरच्छानगतवीसो कम्मं करेय्य....मातुघातकवीसो कम्मं करेय्य.....पितुघातकवीसो कम्मं करेय्य....अरहन्त-[B.442] घातकवीसो कम्मं करेय्य....भिक्खुनिदूसकवीसो कम्मं करेय्य....सङ्घभेदकवीसो कम्मं करेय्य....लोहितुप्पादकवीसो कम्मं करेय्य....उभतोब्यञ्जनकवीसो कम्मं करेय्य....नानासंवासकवीसो कम्मं करेय्य....नानासीमाय ठितवीसो कम्मं करेय्य....इद्धिया वेहासे ठितवीसो कम्मं करेय्य.....यस्स सङ्घो कम्मं करोति, तं-वीसो कम्मं करेय्य—अकम्मं न च करणीयं।

वीसतिवग्गकरणं॥

५. पारिवासिकादिकथा

[N.337] १४. "पारिवासिकचतुत्थो चे, भिक्खवे, परिवासं ददेय्य, मूलाय पटिकस्सेय्य,

---

को....उपरिवत्... .(१०वें पैरा की तरह पाठ दोहरा लें)। यदि कोई न मिले तो उसी को पाँचवे व्यक्ति के रूप में मिलाकर सङ्घकर्म पूर्ण कर लेना चाहिये; परन्तु अयुक्त कर्म नहीं करना चाहिये।

पञ्चवर्ग प्रकरण समाप्त।।

१२. इसी तरह, भिक्षुओ! यदि दशवर्ग से करने योग्य कार्य हो तो दशम व्यक्ति के रूप में किसी भिक्षुणी को मिलाकर सङ्घकर्म पूर्ण कर लेना चाहिये। परन्तु कोई अयुक्त कर्म नहीं करना चाहिये।...शिक्षमाणा को....उपरिवत्...(पैरा स. १० की तरह पाठ दोहरा लें)। यदि कोई भी न मिले तो जिसका कार्य करना है उसी को दशम व्यक्ति के रूप में सम्मिलित कर कार्य पूर्ण कर लेना चाहिये; परन्तु अयुक्त कर्म नहीं करना चाहिये।

दशवर्गप्रकरण समाप्त।।

१३. "भिक्षुओ! यदि विंशतिवर्ग से कोई कार्य करना हो और एक व्यक्ति कम पड़ रहा हो तो वीसवें व्यक्ति के रूप मे किसी भिक्षुणी को मिलाकर सङ्घ कर्म पूर्ण कर लें, परन्तु अयुक्त कर्म न करें। ... शिक्षणमाणा को....(चतुर्वर्गप्रकरण की तरह पूरा पाठ दोहरा लें)। अयुक्त कर्म नहीं करना चाहिये।

विंशतिवर्ग समाप्त।।

मानत्तं ददेय्य, तं-वीसो अब्भेय्य—अकम्मं न च करणीयं। मूलाय पटि- [R.321] कस्सनारहचतुत्थो चे, भिक्खवे, परिवासं ददेय्य, मूलाय पटिकस्सेय्य, मानत्तं ददेय्य, तं-वीसो अब्भेय्य—अकम्मं न च करणीयं। मानत्तारहचतुत्थो चे, भिक्खवे, परिवासं ददेय्य, मूलाय पटिकस्सेय्य, मानत्तं ददेय्य, तं-वीसो अब्भेय्य—अकम्मं न च करणीयं। मानत्तचारिकचतुत्थो चे, भिक्खवे, परिवासं ददेय्य, मूलाय पटिकस्सेय्य, मानत्तं ददेय्य, तं-वीसो अब्भेय्य—अकम्मं न च करणीयं। अब्भानारहचतुत्थो चे, भिक्खवे, परिवासं ददेय्य, मूलाय पटिकस्सेय्य, मानत्तं ददेय्य, तं-वीसो अब्भेय्य—अकम्मं न च करणीयं।

१५. "एकच्चस्स, भिक्खवे, सङ्घमज्झे पटिक्कोसना रुहति, एकच्चस्स न रुहति। कस्स च, भिक्खवे, सङ्घमज्झे पटिक्कोसना न रुहति? भिक्खुनिया, भिक्खवे, सङ्घमज्झे पटिक्कोसना न रुहति। सिक्खमानाय, भिक्खवे....पे०....सामणेरस्स, भिक्खवे....सामणेरिया, भिक्खवे....सिक्खापच्चक्खातकस्स भिक्खवे....अन्तिमवत्थुं अज्झापन्नकस्स, भिक्खवे.... उम्मत्तकस्स, भिक्खवे.....खित्तचित्तस्स, भिक्खवे....वेदनाट्टस्स, भिक्खवे....आपत्तिया अदस्सने उक्खित्तकस्स, भिक्खवे.....आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खित्तकस्स, भिक्खवे..... पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खित्तकस्स, भिक्खवे....पण्डकस्स, भिक्खवे..... थेय्यसंवासकस्स, भिक्खवे.....तित्थियपक्कन्तकस्स, भिक्खवे.....तिरच्छानगतस्स, भिक्खवे .....मातुघातकस्स, भिक्खवे,....पितुघातकस्स, भिक्खवे.... अरहन्तघातकस्स,.[B.443] भिक्खवे....उभतोब्यञ्जनकस्स, भिक्खवे....नानासंवासकस्स, भिक्खवे ....नानासीमाय

---

५. पारिवासिकादिकथा

१४. (क) "भिक्षुओ! यदि (चतुर्वर्ग सङ्घ) अपने में चौथे व्यक्ति के रूप में पारिवासिक को मिला कर किसी को परिवास दे, किसी का मूल से प्रतिकर्षण करे, मानत्व दे, (तो उस कर्म प्राप्त व्यक्ति को) बीस वर्ग वाले सङ्घ में निवेदन करना चाहिये। वह बीस वर्ग वाला सङ्घ भी अपने में (उस कर्म प्राप्त को) बीसवें व्यक्ति के रूप में सम्मिलित कर उसका आह्वान (भविष्य में सावधान रहने) का आदेश दे तो वह उचित है। हाँ, उस सङ्घ को कोई नियमविरुद्ध नहीं करना चाहिये।

(ख)... मूल से प्रतिकर्षणयोग्य चतुर्थ को....नहीं करना चाहिये।

(ग) मानत्वयोग्य चतुर्थ को....नहीं करना चाहिये।

(घ) ....आह्वानयोग्य चतुर्थ को....नहीं करना चाहिये।

सङ्घ के बीच बैठा कर प्रतिक्रोशन— १५. "भिक्षुओ! किसी अपराधयुक्त को सङ्घ के बीच बैठाकर उसकी प्रतिक्रोशना करना (उसे लज्जित या तिरस्कृत करने हेतु कठोर वचन कहना) लाभदायक होता है और किसी किसी के लिये ऐसा करना लाभदायक नहीं होता। भिक्षुओ! किसके लिये सङ्घ के बीच में बैठाकर प्रतिक्रोशन लाभदायक नहीं होता? भिक्षुओ! भिक्षुणी को सङ्घ के बीच में बैठा कर प्रतिक्रोशन करना लाभदायक नहीं होता। ..शिक्षमाणा को ... श्रामणेर को ...श्रामणेरी को ....शिक्षा के प्रत्याख्यातक को. ..अन्तिम वस्तु (पाराजिक) के दोषी को.....उन्मत्त को . विक्षिप्तचित्त को ...मूर्च्छित (या दुःखी) को....आपत्ति (दोष) न देखने के कारण उत्क्षिप्तक (सङ्घ से निष्कासित) को ..आपत्ति का स्वीकार तथा अप्रतीकार न करने से उत्क्षिप्तक को....पापमय विचार (धारणा) का त्याग न करने वाले को ..पण्डक (नपुंसक) को...स्तेयसवासक को. ..दूसरे सम्प्रदाय मे मिल जाने वाले को ..पशु योनि का व्यवहार करने वाले को... .मातृघातक को. पितृघातक को....अर्हद्घातक

ठितस्स, भिक्खवे....इद्धिया वेहासे ठितस्स, भिक्खवे, यस्स सङ्घो कम्मं करोति, तस्स च, भिक्खवे, सङ्घमज्झे पटिक्कोसना न रुहति। इमेसं खो, भिक्खवे, सङ्घमज्झे पटिक्कोसना न रुहति।

"कस्स च, भिक्खवे, सङ्घमज्झे पटिक्कोसना रुहति? भिक्खुस्स, पकतत्तस्स, मानसंवासकस्स समानसीमाय ठितस्स, अन्तमसो आनन्तरिकस्सा पि भिक्खुनो विञ्ञापेन्तस्स सङ्घमज्झे पटिक्कोसना रुहति। इमस्स खो, भिक्खवे, सङ्घमज्झे पटिक्कोसना रुहति"।

६. द्वे-निस्सारणादिकथा

१६. "द्वेमा, भिक्खवे, निस्सारणा। अत्थि, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पत्तो निस्सारणं। तं चे सङ्घो निसारेति, एकच्चो सुनिस्सारितो, एकच्चो दुनिस्सारितो। कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पत्तो निस्सारणं, तं चे सङ्घो निस्सारेति—दुन्निस्सारितो? इध पन, भिक्खवे, [N.338] भिक्खु सुद्धो होति अनापत्तिको। तं चे सङ्घो निस्सारेति—दुन्निस्सारितो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पत्तो निस्सारणं, तं चे सङ्घो निस्सारेति—दुन्निस्सारितो। (१)

"कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पत्तो निस्सारणं, तं चे सङ्घो निस्सारेति—सुनिस्सारितो? इध पन, भिक्खवे, भिक्खु बालो होति अब्यत्तो आपत्तिबहुलो अनपदानो, [R.322] गिहिसंसट्ठो विहरति अननुलोमिकेहि गिहिसंसग्गेहि, तं चे सङ्घो निस्सारेति—

को.....भिक्षुणीदूषक को.....सङ्घ में फूट डालने वाले को.....(बुद्ध के) लोहितोत्पादक को....स्त्रीपुरुष—दोनो चिह्न वाले को...नाना आवासों मे रहने वाले को...नाना सीमाओं में. ऋद्धिबल द्वारा आकाशचारी को....यहाँ तक कि सङ्घ जिसको अपना वर्ग (कोरम) पूरा करने के लिये बीसवाँ सदस्य बनावे उसका भी प्रतिक्रोशन नहीं करना उचित नहीं है।

"और, भिक्षुओ! सङ्घ के बीच में बैठा कर किसका प्रतिक्रोशन लाभदायक होता है? भिक्षुओ! सदाचारी (=पकतत्त), एक ही आवास में रहने वाले, एक ही (समान) सीमा मे रहने वाले, यहाँ तक कि निरन्तर अपने पास बैठने वाले भिक्षु को सूचित करके सङ्घ के बीच मे बैठा कर उसका प्रतिक्रोशन लाभदायक होता है। भिक्षुओ! ऐसे व्यक्ति को सङ्घ के बीच में बैठा कर प्रतिक्रोशन लाभदायक होता है।

६. उचित अनुचित निःसारण का भेद

निःसारण— १६. "भिक्षुओ! यहाँ ये दो निस्सारणाएँ हैं— १ यहाँ भिक्षुओ! कभी कभी ऐसा भी होता है कि किसी निरपराध भिक्षु का अकारण निष्कासन कर दिया जाय, यह निस्सारण कभी कभी तो उचित होता है कभी कभी अनुचित भी। भिक्षुओ! कौन सा निःसारण अनुचित होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु सदाचारी (शुद्ध) एवं निर्दोष होता है, उसे यदि सङ्घ निःसृत कर दे तो वह अनुचित निःसारण है। भिक्षुओ! यह (उस सदाचारी भिक्षु का सङ्घ द्वारा निःसारण) अनुचित निःसारण कहलाता है। (१)

"और, भिक्षुओ! कौन सा भिक्षु, जो वस्तुत निःसारण का अधिकारी तो नहीं है, परन्तु सङ्घ यदि उसे निकाल देता है तो उसका यह निकालना (बहिष्कार) उचित ही कहलाता है? यहाँ भिक्षुओ! जो भिक्षु मूर्ख, अविवेकी, पुन: पुनः अपराध की तरफ प्रवृत्त होने वाला, असच्चरित्र, गृहस्थों के साथ

सुनिस्सारितो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पत्तो निस्सारणं, तं चे सङ्घो निस्सारेति—सुनिस्सारितो। (२)

१७. "द्वेमा, भिक्खवे, ओसारणा। अत्थि, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पत्तो ओसारणं तं चे सङ्घो ओसारेति, एकच्चो सोसारितो, एकच्चो दोसारितो। कतमो च, भिक्खवे, [B.444] पुग्गलो अप्पत्तो ओसारणं, तं चे सङ्घो ओसारेति—दोसारितो ? पण्डको, भिक्खवे, अप्पत्तो ओसारणं, तं चे सङ्घो ओसारेति—दोसारितो। थेय्यसंवासको, भिक्खवे, अप्पत्तो ओसारणं, तं चे सङ्घो ओसारेति—दोसारितो। तित्थियपक्कन्तको, भिक्खवे....पे०....तिरच्छानगतो, भिक्खवे, मातुघातको, भिक्खवे.....पितुघातको, भिक्खवे....अरहन्तघातको, भिक्खवे....भिक्खुनिदूसको, भिक्खवे....सङ्घभेदको, भिक्खवे.....लोहितुप्पादको, भिक्खवे....उभतोब्यञ्जनको, भिक्खवे, अप्पत्तो, ओसारणं, तं चे सङ्घो ओसारेति—दोसारितो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पत्तो ओसारणं, तं चे सङ्घो ओसारेति—दोसारितो। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, पुग्गला अप्पत्ता ओसारणं, ते चे सङ्घो ओसारेति—दोसारिता। (१)

"कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पत्तो ओसारणं, तं चे सङ्घो ओसारेति—सोसारितो ? हत्थच्छिन्नो, भिक्खवे, अप्पत्तो ओसारणं, तं चे सङ्घो ओसारेति, सोसारितो। पादच्छिन्नो, भिक्खवे....पे०.....हत्थपादच्छिन्नो, भिक्खवे....कण्णच्छिन्नो, भिक्खवे.... नासच्छिन्नो, भिक्खवे....कण्णनासच्छिन्नो, भिक्खवे....अङ्गुलिच्छिन्नो, भिक्खवे.... अळच्छिन्नो, भिक्खवे....कण्डरच्छिन्नो, भिक्खवे....फणहत्थको, भिक्खवे....खुज्जो, भिक्खवे....वामनो, भिक्खवे....गलगण्डी, भिक्खवे....लक्खणाहतो, भिक्खवे....कसाहतो,

---

अधिक संसर्ग रखते हुए उनके साथ भिक्षु के आचार से प्रतिकूल संसर्ग रखता है गृहस्थोचित आचरण करता है , उसे यदि सङ्घ बाहर निकाल देता है तो भिक्षुओ! ऐसा निस्सारण 'सुनिस्सारण' कहलाता है। (२)

अवसारण (सङ्घ में पुनः मिलाना) – १७. (क) भिक्षुओ! दो प्रकार के अवसारण होते हैं। कोई व्यक्ति अवसारण की योग्यता नहीं रखता, परन्तु सङ्घ उसकी अवसारण कर लेता है तो उनमें से कोई अवसारण उचित कहलाता है, कोई अनुचित।

"भिक्षुओ! इनमें कौन सा अवसारण (भिक्षुसङ्घ में पुनः मिला लेना) अनुचित कहलाता है?...पण्डक को....चौरी से (विना प्रव्रज्या के) भिक्षुवस्त्र धारण करने वाले को....दूसरे सम्प्रदाय वालों में मिले हुए को. .पशुयोनि की तरह आचरण करने वाले को....मातृघातक ..पितृघातक को. ..अर्हद्घातक को ...भिक्षुणीदूषक को....बुद्ध के लोहितोत्पादक को....दोनों (स्त्री–पुरुष) चिह्नों के धारक को. ..भिक्षुओ! यह कहलाता है अप्राप्त (अनधिकृत) का अवसारण 'दुःसारण'। भिक्षुओ! ऐसे पुद्गल का अवसारण (हमारी दृष्टि में) 'दुःसारण' है। (१)

(ख) और भिक्षुओ! कैसे अनधिकृत पुद्गल का अवसारण उचित अवसारण कहलाता है? भिक्षुओ! कटे हाथ वाले का ...कटे पैर वाले का....कटे कान वाले का....कटे नाक वाले का. .कटे कान नाक वाले का...कटी अङ्गुलियों वाले का....कटे पंजे (हाथ के अङ्गुलियो वाले भाग) वाले का....कटी हुई मोटी नस (स्नायु) वाले का....साँप के फण की तरह हाथ वाले का .. कुबड़े का ..बौने का ..गलगण्ड रोगी का...लक्षणाहत (शरीर पर श्वेत कुष्ठ के चिह्नों वाले) का ..चाबुक (या कोडे) से

भिक्खवे.....लिखितको, भिक्खवे.....सीपदिको, भिक्खवे.,...पापरोगी, भिक्खवे... परिसदूसको, भिक्खवे....काणो, भिक्खवे....कुणी, भिक्खवे.....खञ्जो, भिक्खवे...पक्खहतो, भिक्खवे.....छिन्निरियापथो, भिक्खवे.....जरादुब्बलो, भिक्खवे....अन्धो, भिक्खवे.....मूगो, भिक्खवे....बधिरो, भिक्खवे....अन्धमूगो, भिक्खवे, ...अन्धबधिरो, भिक्खवे....मूगबधिरो, भिक्खवे.... अन्धमूगबधिरो, भिक्खवे, अप्पत्तो ओसारणं, तं चे सङ्घो ओसारेति—सोसारितो। [N.339] अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पत्तो ओसारणं, तं चे सङ्घो ओसारेति—सोसोरितो। इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, पुग्गला अप्पत्ता ओसारणं, ते चे सङ्घो ओसारेति—सोसारिता। (२)

वासभगामभाणवारो निट्ठितो पठमो।।

७. अधम्मकम्मादिकथा

[B.445] १८. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स न होति आपत्ति दट्ठब्बा। तमेनं चोदेसि सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा—"आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो, पस्ससेतं आपत्तिं" ति ? सो एवं वदेति—"नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति, यमहं पस्सेय्यं" ति। तं सङ्घो आपत्तिया अदस्सने उक्खिपति—अधम्मकम्मं। (१)

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स न होति आपत्ति पटिकातब्बा। तमेनं चोदेसि सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा— 'आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो, पटिकरोहि तं आपत्तिं" ति। सो एवं वदेति—'नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति, यमहं पटिकरेय्यं' ति। तं सङ्घो आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खिपति—अधम्मकम्मं। (२)

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स न होति पापिका दिट्ठि पटिनिस्सज्जेता। तमेनं

पीटे हुए का चिह्न वाले का. राजकीय दण्डनीय अपराध–पुस्तक में लिखे हुए नाम वाले का....श्लीपद (फीलपॉव) रोगी का....यक्ष्मा आदि असाध्य रोगों से ग्रस्त का...पक्षाघात वाले रोगी का...टेढ़ी–मेढ़ी चाल वाले का...अतिवृद्ध का....अन्धे का...गूँगे का....बहरे का....मूक–वधिर (गूँगे–बहरे) का....अन्धे–गूंगे का..अन्धे–गूँगे–बहरे का अवसारण अनधिकृत अवसारण है; ऐसे पुद्गल का सङ्घ के द्वारा अवसारण उचित अवसारण कहलाता है। अतः यदि सङ्घ ऐसे अनधिकृत पुद्गलों का भी सङ्घ में अवसारण कर लेता है तो यह 'उचित अवसारण' ही कहलाता है।" (२)

प्रथम वासभग्रामभाणवार समाप्त।।

७. अधर्म से उत्क्षेपणीयादिकर्म कथा

अधर्मकर्म— १८. "यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु को कोई आपत्ति (अपराध=दोष) न हो और उसे सङ्घ, बहुत से भिक्षु या एक भिक्षु प्रेरित करता है–'आयुष्मन्! तुम से यह आपत्ति हुई है, क्या तुम उस आपत्ति को नहीं देख रहे हो?' और वह उत्तर दे–'आयुष्मानो! मुझसे कोई आपत्ति नहीं हुई है, जिसे मैं देखूँ।' सङ्घ उसे, इस आपत्ति को न देखने (स्वीकारने) के कारण, यदि निष्कासित कर देता है तो यह सङ्घ का अधर्म कर्म है। (१)

"भिक्षुओ! किसी भिक्षु को कोई भी आपत्ति प्रतिकार करने के लिये अवशिष्ट हो और उसे

चोदेति सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा—"पापिका ते, आवुसो, दिट्ठि, पटिनिस्सज्जेतं पापिकं दिट्ठिं" ति। सो एवं वदेति—"नत्थि मे, आवुसो, पापिका दिट्ठि, यमहं पटिनिस्सज्जेय्यं" ति। तं सङ्घो पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खिपति— [R.323] अधम्मकम्मं। (३)

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स न होति आपत्ति दट्ठब्बा, न होति आपत्ति पटिकातब्बा। तमेनं चोदेति सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा—'आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो, पस्ससेतं आपत्तिं? पटिकरोहि तं आपत्तिं' ति। सो एवं वदेति—'नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति, यमहं पस्सेय्यं। नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति, यमहं पटिकरेय्यं' ति। तं सङ्घो अदस्सने वा अप्पटिकम्मे वा उक्खिपति—अधम्मकम्मं। (४)

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स न होति आपत्ति दट्ठब्बा, न होति पापिका दिट्ठि पटिनिस्सज्जेता। तमेनं चोदेति सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा—'आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो, पस्ससेतं आपत्तिं? पापिका ते दिट्ठि, पटिनिस्सज्जेतं पापिकं दिट्ठिं' ति। सो एवं वदेति—'नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति, यमहं पस्सेय्यं; नत्थि मे, आवुसो, पापिका दिट्ठि, यमहं पटिनिस्सज्जेय्यं' ति। तं सङ्घो अदस्सने वा अप्पटिनिस्सग्गे वा उक्खिपति—अधम्मकम्मं। (५)

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स न होति, आपत्ति पटिकातब्बा, न होति [B.446] पापिका दिट्ठि पटिनिस्सज्जेता। तमेनं चोदेति सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा—'आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो, पटिकरोहि तं आपत्तिं; पापिका ते दिट्ठि, पटिनिस्सज्जेतं पापिकं दिट्ठिं' ति। सो एवं वदेति—'नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति, यमहं पटिकरेय्यं। [N.340] नत्थि मे, आवुसो, पापिका दिट्ठि, यमहं पटिनिस्सज्जेय्यं' ति। तं सङ्घो अप्पटिकम्मे वा अप्पटिनिस्सग्गे वा उक्खिपति—अधम्मकम्मं। (६)

सङ्घ: अनेक या एक भिक्षु प्रेरित करे—'आयुष्मन्! तुमको यह आपत्ति अवशिष्ट है, इसका तुम प्रतीकार करो।' वह भिक्षु उत्तर दे—'नहीं, मुझे कोई आपत्ति अवशिष्ट नहीं है, मैं किसका प्रतीकार करूँ?" ऐसी स्थिति में यदि उस भिक्षु, को आपत्ति (दोष) का प्रतीकार न करने के कारण सङ्घ से निष्कासित कर दे तो यह सङ्घ का अधर्मकर्म है। (२)

"भिक्षुओ! यहाँ किसी भिक्षु को कोई भी पापमय दृष्टि (विचार) त्यागने के लिये न अवशिष्ट हो, उसे यदि सङ्घ....पूर्ववत्....त्याग न करने के कारण सङ्घ से निष्कासित कर दे तो यह सङ्घ का अधर्मकर्म है। (३)

"भिक्षुओ! यहाँ किसी भिक्षु ने न तो अपने मे कोई आपत्ति ही देखी है, न किसी आपत्ति का प्रतीकार ही अवशिष्ट है, उसे यदि सङ्घ, बहुत से भिक्षु या एक भिक्षु उस आपत्ति या आपत्ति के प्रतीकार हेतु कहें और वह वैसा करने का निषेध कर दे, तब उसे यदि बहिष्कृत कर दिया जाय तो यह सङ्घ का अधर्मकर्म है। (४)

"भिक्षुओ! यहाँ किसी भिक्षु को न कोई आपत्ति, न किसी पापमय विचार का त्याग (प्रतिनिसर्ग) ही अवशिष्ट हो, उसे यदि सङ्घ....बहिष्कृत कर दे तो यह सङ्घ का अधर्मकर्म है। (५)

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स न होति आपत्ति दट्ठब्बा, न होति आपत्ति पटिकातब्बा, [R.324] न होति, पापिका दिट्ठि पटिनिस्सज्जेता। तमेनं चोदेति सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा—'आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो, पस्ससेतं आपत्तिं? पटिकरोहि तं आपत्तिं; पापिका ते दिट्ठि, पटिनिस्सज्जेतं पापिकं दिट्ठिं' ति। सो एवं वदेति—'नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति, यमहं पस्सेय्यं। नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति, यमहं पटिकरेय्यं। नत्थि मे, आवुसो, पापिका दिट्ठि, यमहं पटिनिस्सज्जेय्यं' ति। तं सङ्घो अदस्सने वा अप्पटिकम्मे वा अप्पटिनिस्सग्गे वा उक्खिपति—अधम्मकम्मं। (७)

१९. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स होति आपत्ति दट्ठब्बा। तमेनं चोदेति सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा—''आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो, पस्ससेतं आपत्तिं' ति? सो एवं वदेति—'आमावुसो, पस्सामी' ति। तं सङ्घो आपत्तिया अदस्सने उक्खिपति—अधम्मकम्मं। (८)

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स होति आपत्ति पटिकातब्बा। तमेनं चोदेति सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा—'आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो, पटिकरोहि तं आपत्तिं' ति। सो एवं वदेति—'आमावुसो, पटिकरिस्सामी' ति। तं सङ्घो आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खिपति—अधम्मकम्मं। (९)

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स होति पापिका दिट्ठि पटिनिस्सज्जेता। तमेनं चोदेति [B.447] सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा—'पापिका ते, आवुसो, दिट्ठि; पटिनिस्सज्जेतं पापिकं दिट्ठिं' ति। सो एवं वदेति—'आमावुसो, पटिनिस्सज्जिस्सामी' ति। तं सङ्घो पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खिपति—अधम्मकम्मं। (१०)

''यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु को आपत्ति का प्रतिकार या किसी पापमय दृष्टि का परित्याग ही...उसका यदि सङ्घ उत्क्षेप (बहिष्कार) कर दे तो यह सङ्घ का अधर्म कर्म है। (६)

''यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु ने न कोई आपत्ति न किसी आपत्ति का प्रतिकार और न किसी पापमय दृष्टि का परित्याग ही बाकी छोडा हो,... यदि सङ्घ उसे इस अप्रतीकार एवं अपरित्याग हेतु सङ्घ से निष्कासित कर दे तो यह सङ्घ का अधर्मकर्म है। (७)

१९. यहाँ भिक्षुओ! किसी भिक्षु में कोई आपत्ति हो, इसके लिये सङ्घ, बहुत से भिक्षु या कोई एक भिक्षु सङ्केत करे कि 'भिक्षु! तुम अपने में यह आपत्ति देख रहे हो?' भिक्षु उसे स्वीकारते हुए कहे—'हाँ, मैं अपने में अमुक आपत्ति देख रहा हूँ।' फिर (स्वीकार करने पर) भी सङ्घ यदि उसे इस आपत्ति के कारण बहिष्कृत कर दे तो यह सङ्घ का अधर्मकर्म है। (८)

''भिक्षुओ! यहाँ किसी भिक्षु को किसी आपत्ति का प्रतिकार अवशिष्ट हो, उसको सङ्घ... प्रेरित करे कि तुम्हें इस आपत्ति का प्रतिकार करना चाहिये और वह भिक्षु इस आपत्ति का प्रतिकार करना स्वीकार कर ले। इतने पर यदि सङ्घ उस भिक्षु को बहिष्कृत कर दे तो यह सङ्घ का 'अधर्मकर्म' है। (९)

''भिक्षुओ! यहाँ किसी भिक्षु को पापमय विचार का परित्याग अवशिष्ट हो। सङ्घ ....उसे उस पापमय विचार हेतु प्रेरित करे और वह भिक्षु उसे स्वीकार कर ले तो भी यदि सङ्घ उसे निष्कासित कर दे तो यह सङ्घ की 'अधर्मकर्म' है। (१०)

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स होति आपत्ति दट्ठब्बा होति आपत्ति पटिकातब्बा.... पे०..... होति आपत्ति दट्ठब्बा, होति पापिका दिट्ठि पटिनिस्सज्जेता...पे०....होति आपत्ति पटिकातब्बा, होति पापिका दिट्ठि पटिनिस्सज्जेता....पे०....होति आपत्ति दट्ठब्बा, होति आपत्ति पटिकातब्बा, होति पापिका दिट्ठि पटिनिस्सज्जेता। तमेनं चोदेति सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा—'आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो, पस्ससेतं आपत्तिं? पटिकरोहि तं आपत्तिं; पापिका ते दिट्ठि, पटिनिस्सज्जेतं पापिकं दिट्ठिं' ति। सो एवं वदेति—'आमावुसो, पस्सामि, आम पटिकरिस्सामि, आम पटिनिस्सज्जिस्सामी' ति। तं सङ्घो अदस्सने वा अप्पटिकम्मे वा अप्पटिनिसग्गे वा उक्खिपति—अधम्मकम्मं। (११-१४) [N.341]

२०. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स होति आपत्ति दट्ठब्बा। तमेनं चोदेति सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा—'आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो, पस्ससेतं आपत्तिं' ति? सो एवं वदेति—'नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति, यमहं पस्सेय्यं" ति। तं सङ्घो आपत्तिया [R.325] अदस्सने उक्खिपति—धम्मकम्मं। (१)

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स होति आपत्ति पटिकातब्बा। तमेनं चोदेति सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा—'आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो, पटिकरोहि तं आपत्तिं' ति। सो एवं वदेति—'नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति, यमहं पटिकरेय्यं" ति। तं सङ्घो आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खिपति—धम्मकम्मं। (२)

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स होति पापिका दिट्ठि पटिनिस्सज्जेता। तमेनं चोदेति सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा—'पापिका ते, आवुसो, दिट्ठि, पटिनिस्सज्जेतं पापिकं दिट्ठिं" ति। सो एवं वदेति—"नत्थि मे, आवुसो, पापिका दिट्ठि, यमहं पटिनिस्सज्जेय्यं' ति। तं सङ्घो पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिसग्गे उक्खिपति—धम्मकम्मं। (३)

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खुस्स होति आपत्ति दट्ठब्बा होति पटिकातब्बा,.... पे०....होति आपत्ति दट्ठब्बा, होति पापिका दिट्ठि पटिनिस्सज्जेता...पे०....होति [B.448]

"यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु को अपना दोषदर्शन एवं उसका प्रतिकार....दोषदर्शन एवं पापमय विचार का परित्याग...दोष का प्रतिकार एवं पापमय दृष्टि का परित्याग....दोष का परित्याग एवं पापमय दृष्टि का परित्याग अवशिष्ट हो, उसे सङ्घ...प्रेरित करे, उसे भिक्षु स्वीकार कर ले, फिर भी, इस कारण को लेकर सङ्घ उसे बहिष्कृत कर दे तो यह सङ्घ का 'अधर्मकर्म' है। (११-१४)

धर्मकर्म— २०. "भिक्षुओ! किसी भिक्षु का दोष दिखायी दे तो उसे सङ्घ बहुत से भिक्षु या एक भिक्षु प्रेरित करे—'भिक्षु! तुममें यह दोष हमें दिखायी दे रहा है, इसे तुम देख रहे हो?' तब वह यदि ऐसा कहे—'नहीं, आयुष्मानो! मुझे अपने में ऐसा कोई दोष दिखायी नहीं दे रहा।' तो सङ्घ यदि उसे दोष-अदर्शन के अपराध में सङ्घ से बहिष्कृत (उत्क्षेपण) कर देता है तो यह सङ्घ का 'धर्मकर्म' है। (१)

".....भिक्षु को प्रतीकारयोग्य आपत्ति हो....उसे स्वीकार न करे तब सङ्घ उसे उत्क्षिप्त कर दे तो यह सङ्घ का धर्मकर्म है। (२)

.....भिक्षु को पापमय विचारों का परित्याग....भिक्षु उसे स्वीकार न करे तब यदि सङ्घ उसका उत्क्षेपण कर दे तो यह सङ्घ का 'धर्मकर्म' है। (३)

आपत्ति पटिकातब्बा, होति पापिका दिट्ठि पटिनिस्सज्जेता....पे०....होति आपत्ति दट्ठब्बा, होति आपत्ति पटिकातब्बा, होति पापिका दिट्ठि पटिनिस्सज्जेता। तमेनं चोदेति सङ्घो वा सम्बहुला वा एकपुग्गलो वा—'आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो, पस्ससेतं आपत्तिं ? पटिकरोहि तं आपत्तिं। पापिका ते दिट्ठि, पटिनिस्सज्जेतं पापिकं दिट्ठिं' ति। सो एवं वदेति—'नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति, यमहं पस्सेय्यं। नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति यमहं पटिकरेय्यं। नत्थि मे, आवुसो, पापिका दिट्ठि, यमहं पटिनिस्सज्जेय्यं' ति। तं सङ्घो अदस्सने वा अप्पटिकम्मे वा अप्पटिनिस्सग्गे वा उक्खिपति—धम्मकम्मं'' ति। (४-७)

८. उपालिपुच्छाकथा

२१. अथ खो आयस्मा उपालि येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा उपालि भगवन्तं एतदवोच— ''यो नु खो, भन्ते, समग्गो सङ्घो सम्मुखाकरणीयं कम्मं असम्मुखा करोति, धम्मकम्मं नु खो तं, भन्ते, विनयकम्मं'' ति ? ''अधम्मकम्मं तं, उपालि, अविनयकम्मं।''

(क) यो नु खो, भन्ते, समग्गो सङ्घो पटिपुच्छाकरणीयं कम्मं अप्पटिपुच्छा [N.342] करोति.... पे०....पटिञ्ञायकरणीयं कम्मं अप्पटिञ्ञाय करोति....सतिविनयारहस्स अमूळ्हविनयं देति....अमूळ्हविनयारहस्स तस्सपापिय्यसिकाकम्मं करोति.....तस्स-

---

.....भिक्षु को दर्शनीय दोष एवं प्रतिकरणीय दोष हों, सङ्घ उन के लिये सङ्केत करे, फिर भी भिक्षु उसे स्वीकार न करे तब यदि सङ्घ उसका उत्क्षेपण करता है तो यह उसका 'धर्मकर्म' है। (४)

....भिक्षु को दर्शनीय दोष एवं परित्याग योग्य मिथ्यादृष्टि हो, सङ्घ उसे सङ्केत करे....फिर भी वह भिक्षु उसे स्वीकार न करे तब यदि सङ्घ उसका उत्क्षेपण कर दे तो यह उसका 'धर्मकर्म' ही है। (५)

''....भिक्षु को प्रतीकारयोग्य दोष एवं परित्यागयोग्य पापमय दृष्टि उपस्थित हो, सङ्घ उसके लिये सङ्केत करे, फिर भी भिक्षु उसे अस्वीकार कर दे, तब सङ्घ द्वारा उसका उत्क्षेपण 'धर्मकर्म' ही माना जाता है। (६)

''.....भिक्षु को द्रष्टव्य आपत्ति, प्रतीकार्य आपत्ति एवं परित्याज्य मिथ्या धारणा हो, उसे सङ्घ प्रेरित करे.. भिक्षु उसे स्वीकार न करे तो सङ्घ उसे इन अपराधों के कारण सङ्घ से उत्क्षिप्त कर दे तो सङ्घ का यह कार्य 'धर्मकर्म' माना जायगा। (७)

८. इसी विषय में उपालि के प्रश्न

२१. तब आयुष्मान् उपालि जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठ कर उपालि ने भगवान् से पूछा—''भन्ते! जो भिक्षु, सङ्घ उपस्थित हो, उसके सम्मुख करने योग्य कर्म को सम्मुख न होकर करता है क्या उसका यह कर्म 'धर्म कर्म' या 'विनयकर्म' कहलायगा?''

''उपालि! वह तो अधर्मकर्म एवं अविनयकर्म ही है।''

''और भन्ते! जो भिक्षु, समग्र सङ्घ उपस्थित हो, उस समय पूछने योग्य कर्म को विना पूछे करता है....पूर्ववत्....।

''..प्रतिज्ञा करने योग्य कर्म को विना प्रतिज्ञा किये करता है.....।

''..स्मृतिविनय योग्य कर्म को अमूढ़विनय (अधिकरणशमथ) देता है.. ..।

पापिय्यसिकाकम्मारहस्स तज्जनीयकम्मं करोति....तज्जनीयकम्मारहस्स नियस्सकम्मं करोति ....नियस्सकम्मारहस्स पब्बाजनीयकम्मं करोति....पब्बाजनीयकम्मारहस्स [R.326] पटिसारणीयकम्मं करोति.... पटिसारणीयकम्मारहस्स उक्खेपनीयकम्मं करोति.... उक्खेपनीयकम्मारहस्स परिवासं देति....परिवासारहं मूलाय पटिकस्सति....मूलाय-पटिकस्सनारहस्स मानत्तं देति....मानत्तारहं अब्भेति....अब्भानारहं उपसम्पादेति, धम्मकम्मं नु खो तं, भन्ते, विनयकम्मं ति ?" "अधम्मकम्मं तं, उपालि अविनयकम्मं।

(ख) "यो खो, उपालि, समग्गो सङ्घो सम्मुखाकरणीयं कम्मं असम्मुखा करोति, एवं खो, उपालि, अधम्मकम्मं होति अविनयकम्मं, एवं च न सङ्घो सातिसारो होति। यो खो, उपालि, समग्गो सङ्घो पटिपुच्छाकरणीयं कम्मं अप्पटिपुच्छा करोति.... पे०....पटिञ्ञायकरणीयं कम्मं अप्पटिञ्ञाय करोति.....सतिविनयारहस्स अमूळ्हविनयं देति....अमूळ्हविनयारहस्स तस्सपापिय्यसिकाकम्मं करोति....तस्स-[B.449] पापिय्यसिकाकम्मारहस्स तज्जनीयकम्मं करोति.... तज्जनीयकम्मारहस्स नियस्सकम्मं करोति....नियस्सकम्मारहस्स पब्बाजनीयकम्मं करोति....पब्बाजनीयकम्मारहस्स पटि-सारणीयकम्मं करोति....पटिसारणीयकम्मारहस्स उक्खेपनीयकम्मं करोति...उक्खेपनीय-कम्मारहस्स परिवासं देति....परिवासारहं मूलाय पटिकस्सति.....मूलायपटिकस्सनारहस्स मानत्तं देति....मानत्तारहं अब्भेति....अब्भानारहं उपसम्पादेति, एवं खो, उपालि, अधम्मकम्मं होति अविनयकम्मं। एवं च पन सङ्घो सातिसारो होती" ति।

२२. "यो नु खो, भन्ते, समग्गो सङ्घो सम्मुखाकरणीयं कम्मं सम्मुखा करोति, धम्मकम्मं नु खो तं, भन्ते, विनयकम्मं ति ?" "धम्मकम्मं तं, उपालि, विनयकम्मं"।

"यो नु खो, भन्ते, समग्गो सङ्घो पटिपुच्छाकरणीयं कम्मं पटिपुच्छा करोति....पे०....

" ....अमूढविनय योग्य कर्म के लिये तस्य पापीयस् कर्म करता है.....।

" ....तर्जनीय कर्म योग्य कर्म के लिये न्यस्य कर्म करता है.....।

" .....न्यस्य कर्म योग्य कर्म के लिये प्रव्राजनीय कर्म करता है....।

" .....प्रव्राजनीय कर्म के लिये प्रतिसारणीय कर्म करता है.....।

" .....प्रतिसारणीय कर्म के लिये उत्क्षेपणीय कर्म करता है.....।

" .....उत्क्षेपणीय कर्म के लिये परिवास देता है....।

" .....परिवास योग्य कर्म के लिये मूल हेतु प्रतिकर्षण देता है.....।

" ......मूल हेतु प्रतिकर्षण योग्य कर्म के लिये मानत्वार्ह देता है.....।

" ....मानत्व योग्य कर्म के लिये उपसम्पदा देता है, तो भन्ते! यह धर्मकर्म या विनयकर्म है?

"नहीं, उपालि! यह तो अधर्मकर्म एवं अविनयकर्म ही है।

(ख) "उपालि! यह जो समग्र सङ्घ सम्मुख करने योग्य कर्म को सम्मुख नहीं करता, यों, उपालि, वह अधर्मकर्म एवं अविनयकर्म होता है। इससे सङ्घ सदोष होता है और इससे उस का सीमातिक्रमण भी होता है। यह जो, उपालि! समग्र सङ्घ पूछने योग्य कर्म को विना पूछे करता है....पूर्ववत्...आह्वानयोग्य को उपसम्पदा देता है...इससे सङ्घ की सीमा (मर्यादा) का उल्लङ्घन होता है"।

२२. (उपालि ने पूछा–) "और जो, भन्ते! समग्र सङ्घ सम्मुखकरणीय कर्म को सम्मुख ही करता है वह कर्म धर्मकर्म या विनयकर्म कहलाता है?" "हाँ, उपालि! वह धर्मकर्म एवं विनयकर्म ही कहलाता है।"

पटिञ्ञायकरणीयं कम्मं पटिञ्ञाय करोति....सतिविनयारहस्स सतिविनयं देति.... अमूळ्हविनयारहस्स अमूळ्हविनयं देति....तस्सपापिय्यसिकाकम्मारहस्स तस्सपापिय्यसिकाकम्मं करोति....तज्जनीयकम्मारहस्स तज्जनीयकम्मं करोति....नियस्सकम्मारहस्स नियस्सकम्मं करोति....पब्बाजनीयकम्मारहस्स पब्बाजनीयकम्मं करोति....पटिसारणीयकम्मारहस्स पटिसारणीयकम्मं करोति....उक्खेपनीयकम्मारहस्सुक्खेपनीयकम्मं करोति...परिवासारहस्स परिवासं देति...मूलायपटिकस्सनारहं मूलाय पटिकस्सति.... मानत्तारहस्स मानत्तं देति....अब्भानारहं अब्भेति....उपसम्पदारहं उपसम्पादेति, धम्मकम्मं नु खो तं, भन्ते, विनयकम्मं ति ?" "धम्मकम्मं तं, उपालि, विनयकम्मं।

"यो खो, उपालि, समग्गो सङ्घो सम्मुखाकरणीयं कम्मं सम्मुखा करोति. एवं खो, उपालि, धम्मकम्मं होति विनयकम्मं। एवं च पन सङ्घो अनतिसारो होति। यो खो, उपालि, [N.343] समग्गो सङ्घो पटिपुच्छाकरणीयं कम्मं पटिपुच्छा करोति.....पटिञ्ञायकरणीयं कम्मं पटिञ्ञाय करोति....सतिविनयारहस्स सतिविनयं देति....अमूळ्हविनयारहस्स अमूळ्हविनयं देति.....तस्सपापिय्यसिकाकम्मारहस्स तस्सपापिय्यसिकाकम्मं करोति....तज्जनीयकम्मारहस्स तज्जनीयकम्मं करोति....नियस्सकम्मारहस्स नियस्सकम्मं करोति....पब्बाजनीयकम्मारहस्स पब्बाजनीयकम्मं करोति....पटिसारणीयकम्मारहस्स [B.450] पटिसारणीयकम्मं करोति....उक्खेपनीयकम्मारहस्स उक्खेपनीयकम्मं करोति.... परिवासारहस्स परिवासं देति....मूलाय पटिकस्सनारहं मूलाय पटिकस्सति....मानत्तारहस्स मानत्तं देति....अब्भानारहं अब्भेति....उपसम्पदारहं उपसम्पादेति, एवं खो, उपालि, धम्मकम्मं होति विनयकम्मं। एवं च पन सङ्घो अनतिसारो होती" ति।

२३. "यो नु खो, भन्ते, समग्गो सङ्घो सतिविनयारहस्स अमूळ्हविनयं देति, अमूळ्हविनयारहस्स सतिविनयं देति, धम्मकम्मं नु खो तं, भन्ते, विनयकम्मं ति ?" "अधम्मकम्मं तं, उपालि, अविनयकम्मं।"

"यो नु खो, भन्ते, समग्गो सङ्घो अमूळ्हविनयारहस्स तस्सपापिय्यसिकाकम्मं

"और यह, जो, भन्ते! समग्र सङ्घ पूछने योग्य कर्म को पूछकर करता है?.... पूर्ववत्.... उपसम्पदायोग्य को ही उपसम्पदा देता है, भन्ते! वह धर्मकर्म एवं विनयकर्म ही है ना?" "हाँ, उपालि! वह सब धर्मकर्म ही है, विनयकर्म ही है।"

"और यह जो, उपालि! समग्र सङ्घ सम्मुख करने योग्य कर्म को सम्मुख ही करता है तो यह धर्मकर्म एव विनयकर्म ही कहलाता है। इस तरह सङ्घ अपनी मर्यादा का अतिक्रमण भी नहीं करता। और, उपालि! यह जो समग्र सङ्घ पूछने योग्य कर्म को पूछ कर ही करता है .पूर्ववत् . उपसम्पदायोग्य को ही उपसम्पन्न करता है, तो उपालि! यह धर्मकर्म ही....विनयकर्म ही कहलाता है। इससे सङ्घ की मर्यादा का भी अतिक्रमण नहीं होता।

२३. (उपालि ने पूछा—) और, भन्ते! यह जो समग्र सङ्घ यदि स्मृति विनयार्ह को अमूढ़विनय दण्ड देता है, एवं अमूढविनयार्ह को स्मृतिविनय (दण्ड) देता है तो यह धर्मकर्म है? विनयकर्म है?" "नहीं, उपालि! यह तो अधर्मकर्म ही है। अविनय कर्म ही है।" यह जो, उपालि! समग्र सङ्घ अमूढ़ विनयार्ह को तस्सपापियास्सिका दण्ड देता है और तस्सपापिय्यसिकार्ह को अमूढ़विनय देता

करोति, तस्सपापिय्यसिकाकम्मारहस्स अमूळ्हविनयं देति.... पे०.... तस्सपापि-[R.327] य्यसिकाकम्मारहस्स तज्जनीयकम्मं करोति, तज्जनीयकम्मारहस्स तस्सपापिय्यसिकाकम्मं करोति.....तज्जनीयकम्मारहस्स नियस्सकम्मं करोति, नियस्सकम्मारहस्स तज्जनीयकम्मं करोति....नियस्सकम्मारहस्स पब्बाजनीयकम्मं करोति, पब्बाजनीयकम्मारहस्स नियस्सकम्मं करोति....पब्बाजनीयकम्मारहस्स पटिसारणीयकम्मं करोति, पटिसारणीयकम्मारहस्स पब्बाजनीयकम्मं करोति....पटिसारणीयकम्मारहस्स उक्खेपनीयकम्मं करोति, उक्खेपनीय-कम्मारहस्स परिवासं देति, परिवासारहस्स उक्खेपनीयकम्मं करोति...., परिवासारहं मूलाय पटिकस्सति, मूलायपटिकस्सनारहस्स परिवासं देति...., मूलायपटिकस्सनारहस्स मानत्तं देति, मानत्तारहं मूलाय पटिकस्सति.....मानत्तारहं अब्भेति, अब्भानारहस्स मानत्तं देति....अब्भानारहं उपसम्पादेति, उपसम्पदारहं अब्भेति, धम्मकम्मं नु खो तं, भन्ते, विनयकम्मं'' ति?

''अधम्मकम्मं तं, उपालि, अविनयकम्मं।

''यो खो, उपालि, समग्गो सङ्घो सतिविनयारहस्स अमूळ्हविनयं देति, अमूळ्ह-विनयारहस्स सतिविनयं देति, एवं खो, उपालि, अधम्मकम्मं होति अविनयकम्मं। एवं च पन सङ्घो सातिसारो होति। यो खो, उपालि, समग्गो सङ्घो अमूळ्हविनयारहस्स तस्स-पापियसिकाकम्मं करोति, तस्स पापिय्यसिकाकम्मारहस्स अमूळ्हविनयं देति....पे०.... तस्सपायिय्यसिकाकम्मारहस्स तज्जनीयकम्मं करोति, तज्जनीयकम्मारहस्स तस्सपापिय्य-सिकाकम्मं करोति....तज्जनीयकम्मारहस्स नियस्सकम्मं करोति, नियस्स-[B.451] कम्मारहस्स तज्जनीयकम्मं करोति....नियस्सकम्मारहस्स पब्बाजनीयकम्मं करोति, पब्बा-जनीयकम्मारहस्स नियस्सकम्मं करोति....पब्बाजनीयकम्मारहस्स पटिसारणीयकम्मं करोति, पटिसारणीयकम्मारहस्स पब्बाजनीयकम्मं करोति....पटिसारणीयकम्मारहस्स [N.344] उक्खेपनीयकम्मं परिवासं देति, परिवासारहस्स उक्खेपनीयकम्मं करोति....परिवासारहं मूलाय पटिकस्सति, मूलायपटिकस्सनारहस्स परिवासं देति....मूलायपटिकस्सनारहस्स मानत्तं

है...पूर्ववत्....तस्सपापिय्यसिका योग्य अपराधी का तर्जनीय कर्म करता है और तर्जनीय कर्मयोग्य अपराधी को तस्स पायिप्यसिका दण्ड देता है...तर्जनीय कर्मार्ह को न्यस्य कर्मदण्ड देता है और न्यस्यकर्मदण्डार्ह को तर्जनीय कर्मदण्ड देता है....न्यस्स कर्म दण्डार्ह को प्रव्राजनीय कर्म (दण्ड) देता है और प्रव्राजनीय कर्मार्ह न्यस्यकर्म देता है...प्रव्राजनीय कर्मार्ह को प्रतिसारणीय दण्ड देता है, और प्रतिसारणीय दण्डार्ह को प्रव्राजनीयकर्म दण्ड देता है....प्रतिसारणीय दण्डार्ह को उत्क्षेपणीय दण्ड देता है और उत्क्षेपणीय दण्डार्ह को प्रतिसारणीय दण्ड देता है.....उत्क्षेपणीय दण्डार्ह को परिवासदण्ड देता है एवं परिवासार्ह को उत्क्षेपणीय दण्ड देता है.....परिवासदण्डार्ह को मूल से प्रतिकर्षण दण्ड देता है और मूल से प्रतिकर्षणार्ह को परिवासदण्ड देता है....मूल से प्रतिकर्षणार्ह को मानत्व देता है और मानत्वयोग्य को मूल से प्रतिकर्षण दण्ड देता है....मानत्वयोग्य को आह्वानदण्ड देता है और आह्वानार्ह को मानत्व देता है. आह्वानार्ह को उपसम्पदा दे देता है और उपसम्पदार्ह को आह्वान दण्ड देता है तो, भन्ते! यह सब धर्मकर्म एवं विनयकर्म हो सकता है?''

''नहीं, उपालि! ये तो 'अधर्म कर्म'' ही है, 'अविनयकर्म' ही है।

देति, मानत्तारहं मूलाय पटिकस्सति....मानत्तारहं अब्भेति, अब्भानारहस्स मानत्तं देति....अब्भानारहं उपसम्पादेति, उपसम्पदारहं अब्भेति, एवं खो, उपालि, ओंधम्मकम्मं होति अविनयकम्मं ति। एवं च पन सङ्घो सातिसारो होती'' ति।

२४. ''यो नु खो, भन्ते, समग्गो सङ्घो सतिविनयारहस्स सतिविनयं देति, अमूळ्ह-विनयारहस्स अमूळ्हविनयं देति, धम्मकम्मं नु खो तं, भन्ते, विनयकम्मं'' ति? ''धम्मकम्मं तं, उपालि, विनयकम्मं।

''यो नु खो, भन्ते, समग्गो सङ्घो अमूळ्हविनयारहस अमूळ्हविनयं देति.... पे०.... तस्सपापिय्यसिकाकम्मारहस्स तस्सपापिय्यसिकाकम्मं करोति....पे०.... तज्जनीयकम्मारहस्स तज्जनीयकम्मं करोति....पे०....नियस्सकम्मारहस्स नियस्सकम्मं करोति.... पे०.... पब्बाजनीयकम्मारहस्स पब्बाजनीयकम्मं करोति....पे०....पटिसारणीयकम्मारहस्स पटि-सारणीयकम्मं करोति....पे०....उक्खेपनीयकम्मारहस्स उक्खेपनीयकम्मं करोति.... पे०..... परिवासारहस्स परिवासं देति....पे०...मूळायपटिकस्सनारहं मूलाय पटिकस्सति.... पे०.... मानत्तारहस्स मानत्तं देति....पे०....अब्भानारहं अब्भेति, उपसम्पदारहं उपसम्पादेति, धम्मकम्मं नु खो तं, भन्ते, विनयकम्मं'' ति? ''धम्मकम्मं तं, उपालि, विनयकम्मं।

''यो खो, उपालि, समग्गो सङ्घो सतिविनया-रहस्स सतिविनयं देति, अमूळ्हविनयारहस्स अमूळ्हविनयं देति, एवं खो, उपालि धम्मकम्मं होति विनयकम्मं। [R.328] एवं च पन सङ्घो अनतिसारो होति। यो खो, उपालि, समग्गो सङ्घो अमूळ्हविनया-रहस्स अमूळ्हविनयं देति....पे०.....तस्सपापिय्यसिकाकम्मारहस्स तस्सपापिय्यसिकाकम्मं करोति...पे०....तज्जनीयकम्मारहस्स तज्जनीयकम्मं करोति....पे०.... नियस्सकम्मारहस्स नियस्सकम्मं करोति...पे०....पब्बाजनीयकम्मारहस्स पब्बाजनीयकम्मं करोति...पे०... पटिसारणीयकम्मारहस्स पटिसारणीयकम्मं करोति...पे०... उक्खेपनीय-कम्मारहस्स उक्खेपनीयकम्मं करोति....पे०....परिवासारहस्स परिवासं देति....पे०.....मूलाय पटिकस्सनारहं मूळायपटिकस्सति....पे०.....मानत्तारहस्स मानत्तं देति....पे०....अब्भानारहं अब्भेति, उपसम्पदारहं उपसम्पादेति, एवं खो, उपालि, धम्मकम्मं होति विनयकम्मं। एवं च पन सङ्घो अनतिसारो होती'' ति।

''उपालि! यह जो समग्र सङ्घ स्मृतिविनययोग्य को अमूढ़विनय दण्ड देता है....पूर्ववत्... उपसम्पादार्ह को आह्वान दण्ड देता है तो, उपालि! यह सब अधर्मकर्म ही है, अविनयकर्म ही है। इस कृत्य से सङ्घ की मर्यादा का ही अतिक्रमण होता है।

२४. हाँ, उपालि! यदि समग्र सङ्घ स्मृतिविनयार्ह व्यक्ति को स्मृतिविनय ही दे या अमूढ़विनयार्ह को अमूढ़विनय ही दे तो यह धर्मकर्म एवं विनयकर्म कहलाता है और इस तरह कर्म करते हुए सङ्घ अपनी मर्यादा का भी अतिक्रमण नहीं करता। उपालि! यहाँ जो समग्र सङ्घ अमूढ़विनयार्ह को अमूढ़विनय ही देता है ..पूर्ववत्...उपसम्पदार्ह को उपसम्पदा ही देता है तो, उपालि यह सब कर्म 'धर्मकर्म' एवं 'विनयकर्म' ही कहलाता है। ऐसे कर्म से सङ्घ सीमातिक्रमण का दोषी भी नहीं माना जाता।

२५. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"यो खो, भिक्खवे, समग्गो सङ्घो सतिविनयारहस्स अमूळ्हविनयं देति, एवं खो, भिक्खवे, अधम्मकम्मं होति [N.345] अविनयकम्मं। एवं च पन सङ्घो सातिसारो होति। यो खो, भिक्खवे, समग्गो सङ्घो सतिविनया-रहस्स तस्स पापिय्यसिकाकम्मं करोति....पे०.....सतिविनयारहस्स तज्जनीयकम्मं करोति.... सतिविनयारहस्स नियस्सकम्मं करोति....सतिविनयारहस्स पब्बाजनीयकम्मं करोति....सतिविनयारहस्स पटिसारणीयकम्मं करोति....सतिविनयारहस्स उक्खेपनीयकम्मं करोति...सतिविनयारहस्स परिवासं देति....सतिविनयारहं मूलाय पटिकस्सति.... सतिविनयारहस्स मानत्तं देति....सतिविनयारहं अब्भेति....सतिविनयारहं उपसम्पादेति, एवं खो, भिक्खवे, अधम्मकम्मं होति अविनयकम्मं। एवं च पन सङ्घो सातिसारो होति।

२६ "यो खो, भिक्खवे, समग्गो सङ्घो अमूळ्हविनयारहस्स तस्सपापिय्यसिकाकम्मं करोति, एवं खो, भिक्खवे, अधम्मकम्मं होति अविनयकम्मं। एवं च पन सङ्घो सातिसारो होति। यो खो, भिक्खवे, समग्गो सङ्घो अमूळ्हविनयारहस्स तज्जनीयकम्मं करोति... पे०....अमूळ्हविनयारहस्स नियस्सकम्मं करोति....अमूळ्हविनयारहस्स पब्बाजनीयकम्मं करोति...अमूळ्हविनयारहस्स पटिसारणीयकम्मं करोति....अमूळ्हविनयारहस्स उक्खेपनीय-कम्मं करोति.... अमूळ्हविनयारहस्स परिवासं देति....अमूळ्हविनयारहं मूलाय पटिकस्सति... अमूळ्हविनयारहस्स मानत्तं देति...अमूळ्हविनयारहं अब्भेति....अमूळ्हविनयारहं उपसम्पादेति....अमूळ्हविनयारहस्स सतिविनयं देति, एवं खो, भिक्खवे, अधम्मकम्मं होति अविनयकम्मं। एवं च पन सङ्घो सातिसारो होति।

२७. "यो खो, भिक्खवे, समग्गो सङ्घो तस्सपापिय्यसिकाकम्मारहस्स [B.453] तज्जनीयकम्मं करोति...पे०....तज्जनीयकम्मारहस्स....नियस्सकम्मारहस्स.... पब्बाजनीय-कम्मारहस्स.... पटिसारणीयकम्मारहस्स....उक्खेपनीयकम्मारहस्स.... परिवासारहं.... मूळायपटिकस्सनारहस्स.... मानत्तारहं....अब्भानारहं....उपसम्पदारहस्स सतिविनयं देति, एवं खो, भिक्खवे, अधम्मकम्मं होति अविनयकम्मं। एवं च पन सङ्घो सातिसारो होति।

---

२५. तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ! यह जो समग्र सङ्घ यदि स्मृतिविनययोग्य को अमूढविनय दण्ड दे तो सङ्घ का यह कर्म अधर्मकर्म एव अविनय कर्म ही कहलायगा। इस तरह, भिक्षुओ! जो समग्र सङ्घ स्मृति विनयार्ह को....पूर्ववत्...(२३वे पैरा के प्रारम्भ का पाठ दोहरा लें) सङ्घ की सीमा का अतिक्रमण भी होता है।

२६. "भिक्षुओ! यदि समग्र सङ्घ अमूढविनयार्ह का तस्सपापिय्यसिका कर्म (दण्ड) दे तो, भिक्षुओ! यह अधर्मकर्म एवं अविनयकर्म होता है। इस तरह भिक्षुओ! सङ्घ (अपने इस कर्म से) अपनी मर्यादा का भी अतिक्रमण करता है। भिक्षुओ! जो समग्र सङ्घ अमूढविनयार्ह को तर्जनीय कर्म करता है. पूर्ववत्. . (२१वें पैरा का पाठ दोहरा लें) मूढ़विनय को स्मृतिविनय देता है, तो यह अधर्म एव अविनय कर्म है। इससे सङ्घ की मर्यादा का भी अतिक्रमण होता है।

२७ "भिक्षुओ! जो समग्र सङ्घ तस्सपापिय्यसिकाकर्मार्ह को तर्जनीय कर्म से दण्ड दे पूर्ववत् . तर्जनीय कर्मार्ह को.. न्यस्यकर्मार्ह को....प्रव्राजनीय कर्मार्ह को...प्रतिसारणीय कर्मार्ह को.. .उत्क्षेपणीय

"यो खो, भिक्खवे, समग्गो सङ्घो उपसम्पदारहस्स अमूळ्हविनयं देति....पे०..... उपसम्पदारहस्स तस्सपापिय्यसिकाकम्मं करोति.....उपसम्पदारहस्स तज्जनीयकम्मं करोति..... उपसम्पदारहस्स तस्सपायिय्यसिकाकम्मं करोति....उपसम्पदारहस्स तज्जनीयकम्मं करोति...उपसम्पदारहस्स नियस्सकम्मं करोति....उपसम्पदारहस्स पब्बाजनीयकम्मं करोति....उपसम्पदारहस्स पटिसारणीयकम्मं करोति....उपसम्पदारहस्स उक्खेपनीयकम्मं करोति.... उपसम्पदारहस्स परिवासं देति....उपसम्पदारहं मूलाय पटिकस्सति....उपसम्पदारहस्स मानत्तं देति....उपसम्पदारहं अब्भेति, एवं खो, भिक्खवे, अधम्मकम्मं होति अविनयकम्मं। एवं च पन सङ्घो सातिसारो होती" ति॥

उपालिपुच्छाभाणवारो निट्ठितो दुतियो।।

९. तज्जनीयकम्मकथा

[N.346] २८. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भण्डनकारको होति कलहकारको विवादकारको भस्सकारको सङ्घे अधिकरणकारको। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—"अयं खो, आवुसो, भिक्खु भण्डनकारको कलहकारको विवादकारको भस्सकारको सङ्घे अधिकरणकारको। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा" ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—"अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा" ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा" ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन समग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—"अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन [R.329] तज्जनीयकम्मकतो अधम्मेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा" ति।

कर्मार्ह को..परिवासार्ह को मूल से प्रतिकर्षणार्ह को.. मानत्वार्ह को ...आह्वानार्ह को उपसम्पदार्ह को स्मृतिविनय देता है तो यह उसका अधर्मकर्म है.....।

"भिक्षुओ! जो समग्र सङ्घ उपसम्पदार्ह को अमूढविनय. उपसम्पदार्ह को तस्सपायिय्यसिका कर्म . तर्जनीय कर्म.. न्यस्य कर्म....प्रव्राजनीय कर्म....प्रतिसारणीय कर्म ..उत्क्षेपणीय कर्म.. परिवासकर्म.. मूल से प्रतिकर्षण ..मानत्व ..आह्वान दण्ड देता है तो, भिक्षुओ! यह उसका अधर्म कर्म एवं अविनयकर्म ही है। उसके इस कर्म से वह सीमातिक्रमण दोष का भी भागी होता है।।

द्वितीय उपालिपृच्छाभाणवार समाप्त।।

९. तर्जनीयकर्मकथा

२८. "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु झगडालू स्वभाव का, कलह करने वाला, विवाद करने वाला, निरर्थक बातें करने वाला (बकवादी), एव सङ्घ में अधिकरणकारक (नाना प्रकार के वैधानिक दाव पेच लगाने वाला) हो। उसके विषय में कभी सङ्घ को यह हो—'आयुष्मानो! यह भिक्षु बहुत झगडालू, कलहकारक...है, तो आओ, हम इसका तर्जनीय कर्म (भयोत्पादन हेतु फटकारना) कर डालें और वह (सङ्घ) अधर्म से वर्ग (गुटबाजी) के रूप में उस का तर्जनीय कर्म कर दे। तब वह भिक्षु किसी दूसरे आवास में चला जाय। (१)

"वहाँ के निवासी भिक्षुओं को भी ऐसा विचार हो—"आयुष्मानो! इस भिक्षु का अधर्म से वर्ग

ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं [R.329] आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु [B.454] सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो धम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो धम्मपतिरूपकेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मपतिरूपकेन समग्गा।

२९. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भण्डनकारको होति कलहकारको विवादकारको भस्सकारको सङ्घे अधिकरणकारको। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु भण्डनकारको कलहकारको विवादकारको भस्सकारको सङ्घे अधिकरणकारको। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन समग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो अधम्मेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो धम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो धम्मपतिरूपकेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा'' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मपतिरूपकेन समग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—"अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो [N.347]

द्वारा तर्जनीय कर्म किया है, आओ, हम इस का तर्जनीय कर्म करें। वे उसका अधर्म से, परन्तु समग्र ही तर्जनीय कर्म करें। तब वह भिक्षु वहाँ से किसी दूसरे आवास मे चला जाय। (२)

"वहाँ के भिक्षुओं को भी यह हो—'आयुष्मानो! इस भिक्षु का अधर्म से समग्र द्वारा तर्जनीय कर्म किया गया है। आओ! हम इस का तर्जनीय कर्म करें।' वे धर्म से वर्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करे। तब वह भिक्षु वहाँ से कही अन्यत्र चला जाय। (३)

"वहाँ भी भिक्षुओं को ऐसा विचार हो—"आयुष्मानो! इस भिक्षु का सङ्घ ने धर्म से वर्ग द्वारा तर्जनीय कर्म किया है। आओ! हम इस का तर्जनीय कर्म करे।' वे उसका धर्माभास वर्ग द्वारा तर्जनीय कर्म करें। वह वहाँ से कहीं अन्यत्र चला जाय। (४)

"वहाँ भी भिक्षुओं को ऐसा हो ..पूर्ववत्...धर्माभास समग्र द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करें। (५)

२९ "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु झगडालू स्वभाव का ..पूर्ववत् ..वे उसका तर्जनीय कर्मकरे। अधर्मपूर्वक समग्र द्वारा वह वहाँ से दूसरे आवास में चला जाय। (१)

".....धर्म से वर्ग द्वारा।....। (२)

".....धर्माभासपूर्वक वर्ग द्वारा....। (३)

"...धर्माभास से समग्र द्वारा.....। (४)

धम्मपतिरूपकेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयं करोमा"ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा।

३०. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भण्डनकारको होति कलहकारको विवादकारको भस्सकारको सङ्घे अधिकरणकारको। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, [B.455] भिक्खु भण्डनकारको कलहकारको विवादकारको भस्सकारको सङ्घे अधिकरण-कारको। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करान्ति—धम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो धम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो धम्मपतिरूपकेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मपतिरूपकेन समग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो धम्मपतिरूपकेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन समग्गा।

३१. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भण्डनकारको होति कलहकारको विवादकारको भस्सकारको सङ्घे अधिकरणकारको। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु भण्डनकारको कलहकारको विवादकारको भस्सकारको सङ्घे अधिकरणकारको। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो धम्मपतिरूपकेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मपतिरूपकेन समग्गा। सो

".....अधर्म से वर्ग द्वारा.....। (५)

३०. "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु झगड़ालु प्रकृति का....पूर्ववत्....तर्जनीय कर्म करते है धर्म से परन्तु वर्ग द्वारा.....। (१)

"......धर्माभासपूर्वक वर्ग द्वारा......। (२)

".....धर्माभासपूर्वक समग्र द्वारा....। (३)

".....अधर्मपूर्वक वर्गद्वारा.....। (४)

".....अधर्मपूर्वक समग्र द्वारा....। (५)

३१. "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु झगड़ालु प्रकृति का....पूर्ववत्....तर्जनीय कर्म करें धर्माभासपूर्वक वर्ग द्वारा। (१)

".....धर्माभासपूर्वक समग्र द्वारा.....। (२)

तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—"अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो धम्मपतिरूपकेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा" ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन समग्गा। सो तम्हा पि आवासा [B.456] अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो अधम्मेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते [N.348] तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मेन वग्गा।

३२. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भण्डनकारको होति कलहकारको विवादकारको भस्सकारको सङ्घे अधिकरणकारको। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु भण्डनकारको कलहकारको विवादकारको भस्सकारको सङ्घे [R.330] अधिकरणकारको। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मपतिरूपकेन समग्गा। तो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो धम्मपतिरूपकेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खू सिङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन समग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो अधम्मेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा" ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो धम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गा।

"....अधर्मपूर्वक वर्ग द्वारा.....। (३)

"....अधर्मपूर्वक समग्र द्वारा.....। (४)

"......धर्मपूर्वक परन्तु वर्ग द्वारा....। (५)

३२. "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु कलहप्रकृति का....पूर्ववत्... तर्जनीय कर्म करें धर्माभास से समग्र होकर....। (१)

"........अधर्मपूर्वक वर्ग से....। (२)

"......अधर्मपूर्वक समग्र से....। (३)

"......धर्मपूर्वक वर्ग से......। (४)

"....धर्माभासपूर्वक वर्ग से.....। (५)

१०. नियस्सकम्मकथा

३३. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु बालो होति अब्यत्तो आपत्तिबहुलो अनपदानो, [B.457] गिहिसंसट्ठो विहरति अननुलोमिकेहि गिहिसंसग्गेहि। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु बालो अब्यत्तो आपत्तिबहुलो अनपदानो, गिहिसंसट्ठो विहरति अननुलोमिकेहि गिहिसंसग्गेहि। हन्दस्स मयं नियस्सकम्मं करोमा' ति। ते तस्स नियस्सकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति।

तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन नियस्सकम्मकतो अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं नियस्सकम्मं करोमा' ति। ते तस्स नियस्सकम्मं करोन्ति—अधम्मेन समग्गा....पे०....धम्मेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा...पे०....।

(यथा हेट्ठा, तथा चक्कं कातब्बं॥)

११. पब्बाजनीयकम्मकथा

[N.349] ३४. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु कुलदूसको होति पापसमाचारो। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—''अयं खो, आवुसो, भिक्खु कुलदूसको पापसमाचारो। हन्दस्स मयं पब्बाजनीयकम्मं करोमा'' ति। ते तस्स पब्बाजनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो

---

१०. न्यस्यकर्मकथा

३३. ''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु मूर्ख, अज्ञ, बहुत से दोषों से ग्रस्त, आचाररहित, श्रमणभाव विरुद्ध, गृहस्थों से अधिक संसर्ग रखता था। उसके विषय में कभी भिक्षुओं ने सोचा—'यह भिक्षु मूर्ख.. गृहस्थो से अधिक संसर्ग रखता है, अतः आयुष्मानो! आओ, इसे हम न्यस्य[1] दण्ड दे दें। उन्होंने उसका अधर्म से वर्ग द्वारा न्यस्य कर्म कर दिया। तब वह उस आवास से दूसरे आवास में चला गया। (१)

''वहाँ भी, भिक्षुओं को ऐसा विचार होता है....पूर्ववत्....वहाँ उन्होंने उसका अधर्म से समग्र द्वारा....। (२)

..धर्मपूर्वक वर्ग द्वारा.....। (३)

.... .धर्माभासपूर्वक वर्ग द्वारा.....। (४)

.... धर्माभासपूर्वक समग्र द्वारा....। (५)

(जैसे ऊपर तर्जनीय कर्म मे वर्णन हुआ है उसी आधार पर यहाँ भी चक्र बना लेना चाहिये।)

११. प्रव्राजनीयकर्मकथा

३४. ''यहाँ कोई भिक्षु कुलदूषक (घरों में जाकर स्त्रियों से व्यभिचार करने वाला) एवं दुश्चरित्र हो। उसके विषय में अन्य भिक्षुओं को यह विचार हुआ—'आयुष्मानो! यह भिक्षु कुलदूषक एवं दुश्चरित्र है, तो क्यों न हम इसका प्रव्राजनीय कर्म (निष्कासन या हटा देना) कर दे।' तब वे उसका

---

१ हमने इस 'न्यस्य' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के पाणिनीय व्याकरण से यो समझी है—नि+अस्+क्त्वा, ल्यप् + यण् सन्धि=न्यस्स=रखकर (सरक्षण मे देकर)। (पूर्वकालिक क्रिया)। इसी का पालि मे रूप बना है—नियस्स।

रीज डेविस इसे भाषाविज्ञान के आधार पर निस्सय (निश्रय=संरक्षण) का विकृत रूप (य का पूर्व प्रयोग करके) निस्सय बना मानते है। इसीलिये पालिटेक्स्ट सोसायटी, लन्दन द्वारा प्रकाशित त्रिपिटक के सभी ग्रन्थो मे यथाप्रसङ्ग 'नियस्स' के स्थान पर 'निस्सय' शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु छट्ठ सङ्गायन के त्रिपिटक मे सर्वत्र 'नियस्स' का ही प्रयोग हुआ है। —अनु०।

तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन पब्बाजनीयकम्मकतो अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं पब्बाजनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स पब्बाजनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन समग्गा...पे०....धम्मेन वग्गा.... धम्मपतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा....पे०....।

चक्कं कातब्बं॥

१२. पटिसारणीयकम्मकथा

३५. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु गिही अक्कोसति परिभासति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—''अयं खो, आवुसो, भिक्खु गिही अक्कोसति परिभासति। हन्दस्स मयं पटिसारणीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स पटिसारणीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन पटिसारणीयकम्मकतो अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं पटिसारणीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स पटिसारणीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन समग्गा....पे०....धम्मेन [B.458] वग्गा.... धम्मपतिरूपकेन वग्गा.... धम्मपतिरूपकेन समग्गा....पे०....।

चक्कं कातब्बं॥

१३. अदस्सने उक्खेपनीयकम्मकथा

३६. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु आपत्तिं आपज्जित्वा न इच्छति आपत्तिं पस्सितुं। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु आपत्तिं आपज्जित्वा न इच्छति

प्रव्राजनीय कर्म करते हैं, परन्तु अधर्मपूर्वक वर्ग द्वारा। तब वह भिक्षु उस आवास से दूसरे आवास में चला जाता है।

''......अधर्म से समग्र द्वारा.....।

''.....धर्म से वर्ग द्वारा.......।

''......धर्माभास से वर्ग द्वारा.....।

''......धर्माभास से समग्र द्वारा.....। (चक्र बना लेना चाहिये।)

१२. प्रतिसारणीय कर्म

३५. ''यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु गृहस्थों से (व्यर्थ ही) आक्रोश (अपशब्द) एवं परिभाषण (दोषारोपण) करता हो। उसके विषय में अन्य भिक्षु ऐसा सोचें—'आयुष्मानो! यह भिक्षु गृहस्थों से.. पूर्ववत्.. तो क्यों न हम इसका प्रतिसारणीय कर्म कर दें।' वे अधर्म से वर्गपूर्वक उसका प्रतिसारण कर दें। तब वह उस आवास से दूसरे आवास में चला जाय।

''.....अधर्म से समग्र द्वारा.....।

''......धर्म से वर्ग द्वारा... ...।

''.....धर्माभास से वर्ग द्वारा......। —

''......धर्माभास से समग्र द्वारा.....। (चक्र बना लेना चाहिये।)

१३. दोष को न मानने पर उत्क्षेपणीय कर्म

३६. ''भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु अपराध करके भी उसे मानना नहीं चाहता। तब अन्य

आपत्तिं पस्सितुं। हन्दस्स मयं आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मकतो अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन समग्गा...पे०....धम्मेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा...पे०....।

चक्कं कातब्बं॥

१४. अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मकथा

[N.350] ३७. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु आपत्तिं आपज्जित्वा न इच्छति आपत्तिं पटिकातुं। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु आपत्तिं आपज्जित्वा न [R.331] इच्छति आपत्तिं पटिकातुं। हन्दस्स मयं आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खू सङ्घेन आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मकतो अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन समग्गा....पे०....धम्मेन वग्गा.... धम्मपतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा...पे०....।

चक्कं कातब्बं॥

भिक्षुओं को, उसके विषय में, यह विचार हो—'यह भिक्षु अपराध करके उसे स्वीकार नहीं करता। तो, आयुष्मानो! हम इसका उत्क्षेपणीय कर्म क्यों न कर दें। और वे उसको उत्क्षेपणीय दण्ड दे देते हैं, परन्तु अधर्म से वर्ग होकर। तब वह भिक्षु दूसरे आवास में चला जाता है।

"....अधर्म से समग्र होकर....।

"....धर्म से वर्ग होकर.. ..।

"....धर्माभास से वर्ग होकर.....।

"....धर्माभास से समग्र होकर....।

(चक्र बना लेना चाहिये।)

१४. दोष का प्रतिकार न करने पर उत्क्षेपणीय कर्मकथा

३७."भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु अपना दोष स्वीकार करके भी उसका प्रतिकार करने को उदयत न होता हो। उसके विषय में भिक्षु यह सोचें—'यह भिक्षु.. नहीं होता है तो क्यों न हम इसका उत्क्षेपणीय कर्म करे दें।' वे उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं अधर्म से वर्ग के द्वारा। वह उस आवास से दूसरे आवास में चला जाता है। (१)

"....अधर्म से समग्र होकर....। (२)

"....धर्म से, परन्तु वर्ग होकर.....। (३)

"....धर्म्माभास से वर्ग होकर....। (४)

"....धर्माभास से समग्र होकर.....। (५) (पूर्ववत् चक्र बना लेना चाहिये)

१५. अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मकथा

३८. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु न इच्छति पापिकं दिट्ठिं पटिनिस्सज्जितुं। [B.459] तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु न इच्छति पापिकं दिट्ठिं पटिनिस्सज्जितुं। हन्दस्स मयं पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मकतो अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मं करोमा" ति। ते तस्स पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन समग्गा.... पे०.....धम्मेन वग्गा.....धम्मपतिरूपकेन वग्गा.....धम्मपतिरूपकेन समग्गा.....पे०....।

चक्कं कातब्बं॥

१६. तज्जनीयकम्मपटिप्पस्सद्धिकथा

३९. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो,

---

१५. दोष का त्याग न करने पर उत्क्षेपणीयकर्मकथा

३८. "यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु अपनी किसी पापमय दृष्टि (विचार) का परित्याग नहीं करना चाहता हो। वहाँ अन्य भिक्षु उसके विषय में यह सोचे—'यह भिक्षु अपनी पापमय दृष्टि का परित्याग नहीं करना चाहता है, तो क्यों न ह म इसका उत्क्षेपणीय कर्म कर दें।' और वे उसका उत्क्षेपणीय कर्म अधर्म से वर्ग होकर कर दें। फिर वह भिक्षु दूसरे आवास में चला जाय। (१)

"......अधर्म से समग्र होकर.....। (२)

".....धर्म से वर्ग होकर......। (३)

".....धर्माभास से वर्ग होकर....। (४)

".....धर्माभास से समग्र होकर.....। (५)

(चक्र बना लें)

१६. तर्जनीय कर्म की शान्तिकथा

३९. यहाँ, भिक्षुओ! सङ्घ ने किसी भिक्षु का तर्जनीय कर्म किया है। तब वह अनुकूल तथा विनयपूर्वक रहता हुआ अपने छुटकारे के लिये प्रयास करता है। तर्जनीय कर्म की प्रतिप्रश्रब्धि (शान्ति या क्षमा) चाहता है। तब यदि भिक्षुओं को यह ध्यान आवे—"आयुष्मानो! यह भिक्षु सङ्घ द्वारा यद्यपि तर्जनीय कर्मकृत है, परन्तु अब यह अनुकूल विनयपूर्वक अपने छुटकारे के लिये प्रयास कर रहा है तो आओ, इसका उस तर्जनीय कर्म से प्रतिप्रश्रम्भ (शान्ति) कर दें।' यों वे उसके तर्जनीय कर्म की प्रतिप्रश्रब्धि कर तो दे परन्तु करें अधर्म से वर्ग द्वारा। वह वहाँ से दूसरे आवास में चला जाय। (१)

[N.351] भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पसद्धं अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन समग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं अधम्मेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पसम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—धम्मेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। 'तत्थ पि भिक्खूनं एवं [B.460] होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं धम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पसम्भेन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। 'तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं धम्मपतिरूपकेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—धम्मपतिरूपकेन समग्गा।

४०. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—"अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा" ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन समग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स, खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं अधम्मेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—धम्मेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं धम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं धम्मपतिरूपकेन वग्गेहि। हन्दस्स

"वहाँ भी.....अधर्म से समग्र द्वारा.....। (२)
"......धर्म से वर्ग द्वारा......। (३)
".....धर्माभास से वर्ग द्वारा......। (४)
".....धर्माभास से समग्र द्वारा.....। (५)
४०. ".....अधर्म से समग्र द्वारा.....। (१)
"......धर्म से वर्ग द्वारा......। (२)
"......धर्माभास से वर्ग द्वारा.....। (३)
".....धर्माभास से समग्र द्वरा......। (४)
"......अधर्म से वर्ग होकर.....। (५)

मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति— धम्मपतिरूपकेन समग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं धम्मपतिरूपकेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा।

४१. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पापेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं [B.461] एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं [N.352] तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—धम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—''इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं धम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति— ''इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं धम्मपतिरूपकेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति— धम्मपतिरूपकेन समग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं धम्मपतिरूपकेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिणस्सम्भेन्ति—अधम्मेन समग्गा।

४२. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—''अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति,

---

४१. ''....धर्म से वर्ग द्वारा.....। (१)
''......धर्माभास से वर्ग द्वारा....। (२)
''......अधर्म से वर्ग द्वारा.....। (४)
''.....अधर्म से समग्र द्वारा.....। (५)
४२. ''.....धर्माभास से वर्ग द्वारा.....। (१)
''.....धर्माभास से समग्र द्वारा......। (२)
''...अधर्म से वर्ग द्वारा......। (३)
''......अधर्म से समग्र द्वारा.....। (४)

नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा'' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—''इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं धम्मपतिरूपकेन वग्गेहि। हन्दस्स [B.462] मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—धम्मपतिरूपकेन समग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं धम्मपतिरूपकेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स [N.353] तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन समग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—''इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं अधम्मेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—धम्मेन वग्गा।

४३. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—''अयं खो आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति—हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—धम्मपतिरूपकेन समग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं धम्मपतिरूपकेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—''इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन समग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं अधम्मेन समग्गेहि। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—

''.....धर्म से वर्ग द्वारा......। (५)

४३. ''धर्माभास से समग्र द्वारा....। (१)

''.....अधर्म से वर्ग द्वारा.....। (२)

''.....अधर्म से समग्र द्वारा.......। (३)

''......धर्म से वर्ग द्वारा......। (४)

धम्मेन वग्गा। सो तम्हा पि आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति— "इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं धम्मेन वग्गेहि। [B.463] हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति— धम्मपतिरूपकेन वग्गा।

१७. नियस्सकम्मपटिप्पस्सद्धिकथा

४४. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन नियस्सकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, नियस्सस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—"अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन नियस्सकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, नियस्सस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं नियस्सकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा" ति। ते तस्स नियस्सकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो, सङ्घेन नियस्सकम्मं पटिप्पस्सद्धं अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं नियस्सकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स नियस्सकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन समग्गा....पे०.... धम्मेन वग्गा.... धम्मपतिरूपकेन समग्गा....पे०....। [N.354]

चक्कं कातब्बं॥

१८. पब्बाजनीयकम्मपटिप्पस्सद्धिकथा

४५. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन पब्बाजनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, पब्बाजनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं

" .....धर्माभास से वर्ग द्वारा.....। (५)

१७. न्यस्यकर्मशान्ति कथा

४४. "भिक्षुओ! यहाँ सङ्घ द्वारा न्यस्य (संरक्षण) कर्मदण्ड प्राप्त कोई भिक्षु अनुकूल तथा विनयपूर्वक रहता हुआ न्यस्य कर्म की प्रतिप्रश्रब्धि चाहता हो। उसके विषय में विचार करने पर भिक्षुओं को ऐसा लगे कि 'यह आयुष्मान्.....न्यस्यकर्म की शान्ति चाहता है, तो क्यों न इसके लिये ऐसा कर दिया जाय। और वे उसके न्यस्यकर्म की शान्ति (क्षमा) कर दें, परन्तु अधर्म से वर्ग होकर। फिर वह भिक्षु वहाँ से दूसरे आवास में चला जाय। (१)

" .....अधर्म से वर्ग होकर....। (२)

" ...धर्म से वर्ग होकर ....। (३)

" .....धर्माभास से वर्ग होकर.....। (४)

" .....धर्माभास से समग्र होकर। (५)

(पूर्ववत् चक्र बना लेना चाहिये।)

१८. प्रव्राजनीय कर्म की प्रतिप्रश्रब्धिकथा

४५. "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु सङ्घ द्वारा प्रव्राजनीय दण्ड पाने के बाद अनुकूल तथा विनयपूर्वक रहता हुआ प्रव्राजनीय कर्म की क्षमा (प्रतिप्रश्रब्धि) चाहता हो। उसके विषय में भिक्षु यह

होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन पब्बाजनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, पब्बाजनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं पब्बाजनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स पब्बाजनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन पब्बाजनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं पब्बाजनीय-कम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन समग्गा....पे०.....धम्मेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा....पे०.....।

चक्कं कातब्बं॥

१९. पटिसारणीयकम्मपटिप्पस्सद्धिकथा

[B.464] ४६. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन पटिसारणीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, पटिसारणीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन पटिसारणीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, पटिसारणीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं पटिसारणीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स पटिसारणीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन पटिसारणीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं पटिसारणीयकम्मं पटिप्पसम्भेमा' ति। ते तस्स पटिसारणीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन समग्गा.....पे०....धम्मेन वग्गा.... धम्म पतिरूपकेन वग्गा.... धम्मपतिरूपकेन समग्गा....पे०.... ।

चक्क कातब्बं॥

सोचें—'आयुष्मानो! यह भिक्षु सङ्घ से.....प्रतिप्रश्रब्धि कर दें।' वे उसके प्रव्राजनीय कर्म की प्रतिप्रश्रब्धि करें परन्तु अधर्म से वर्ग द्वारा। वह उस आवास से दूसरे आवास में चला जाय। (१)

''....अधर्म से समग्र द्वारा....। (२)

''......धर्म से वर्ग द्वारा....। (३)

''.....धर्माभास से वर्ग द्वारा....। (४)

''.....धर्माभास से समग्र द्वारा....। (२५)

(पूर्ववत् चक्र बना लें।)

१९. प्रतिसारणीय कर्म प्रतिप्रश्रब्धिकथा

४६. ''यहाँ भिक्षुओ! कोइ भिक्षु सङ्घ द्वारा प्रतिसारणीय दण्ड प्राप्त करने के बाद अनुकूल तथा.....अधर्म से वर्ग द्वारा....। (१)

''....अधर्म से समग्र द्वारा....। (२)

''. ...धर्म से वर्ग द्वारा....। (३)

''.....धर्माभास से वर्ग द्वारा.....। (४)

''.....धर्माभास से समग्र द्वारा.....। (५)

(पूर्ववत् चक्र बना लें।)

२०. अदस्सने उक्खेपनीयकम्मपटिप्पस्सद्धिकथा

४७. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खू सङ्घेन आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पापेति, नेत्थारं वत्तति, आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं [N.355] आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीय-[B.465] कम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन समग्गा.....पे०.....धम्मेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन वग्गा.....धम्मपतिरूपकेन समग्गा.... पे०....।

चक्कं कातब्बं॥

२१. अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मपटिप्पस्सद्धिकथा

४८. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीय-कम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—''इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन

---

२०. दोष न मानने पर उत्क्षेपणीयकर्म......

४७. ''भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु अपना दोष न स्वीकार करने के कारण सङ्घ द्वारा उत्क्षेपणीय दण्ड प्राप्त करने के बाद अनुकूल एवं विनयपूर्वक रहता हुआ....पूर्ववत्....अधर्म से वर्ग द्वारा...। (१)

''....अधर्म से समग्र द्वारा.....। (२)

''.....धर्म से वर्ग द्वारा.....। (३)

''.....धर्माभास से वर्ग द्वारा.....। (४)

''....धर्माभास से समग्र द्वारा....। (५)

२१. दोष का प्रतिकार न करने पर उत्क्षेपणीयकर्म.......

४८. ''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु अपने दोष का प्रतिकार न करने पर सङ्घ द्वारा उत्क्षेपणीय दण्ड प्राप्त करने के बाद अनुकूल एव विनयपूर्वक रहता हुआ....अधर्म से वर्ग द्वारा ...। (१)

''......अधर्म से समग्र द्वारा.....। (२)

''.....धर्म से वर्ग द्वारा.....। (३)

आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं—अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन समग्गा.....पे०....धम्मेन वग्गा....धम्म-पतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा....पे०.....।

चक्कं कातब्बं॥

२२. अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मपटिप्पस्सद्धिकथा

४९. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, पापिकाय दिट्ठिया अप्पटि-निस्सग्गे उक्खेपनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयस्स [N.356, R.332] कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिसग्गे उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स पापिकाय दिट्ठिया अप्पटि-[B.466] निस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा। सो तम्हा आवासा अञ्ञं आवासं गच्छति। तत्थ पि भिक्खूनं एवं होति—'इमस्स खो, आवुसो, भिक्खुनो सङ्घेन पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सद्धं—अधम्मेन वग्गेहि। हन्दस्स मयं पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति.....अधम्मेन समग्गा....पे०....धम्मेन वग्गा.... धम्मपतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा....पे०....।

चक्कं कातब्बं॥

२३. तज्जनीयकम्मविवादकथा

५०. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भण्डनकारको होति कलहकारको विवादकारको

''......धर्माभास से वर्ग द्वारा.....। (४)
''.....धर्माभास से समग्र द्वारा.....। (५)

(पूर्ववत् चक्र बना लें।)

२२. पापदृष्टि का त्याग न करने के कारण उत्क्षेपणीय कर्म......

४९. पापमय दृष्टि का त्याग न करने पर सङ्घ द्वारा उस पापमय दृष्टि का त्याग करने के कारण उत्क्षेपणीय दण्ड देने के बाद अनुकूल एवं विनयपूर्वक रहता हुआ...अधर्म से वर्ग द्वारा....। (१)
''.......अधर्म से समग्र द्वारा.....। (२)
''.....धर्म से वर्ग द्वारा.....। (३)
''.......धर्माभास से वर्ग द्वारा........। (४)
''........धर्माभास से समग्र द्वारा,.....। (५)

(पूर्ववत् चक्र बना लें)

भस्सकारको सङ्घे अधिकरणकारको। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—''अयं खो, आवुसो, भिक्खु भण्डनकारको....पे०....सङ्घे अधिकरणकारको। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा'' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—''अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—''अधम्मेन वग्गकम्मं'' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—''अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं'' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

५१. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भण्डनकारको होति....पे०....सङ्घे अधिकरणकारको। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—''अयं खो, आवुसो, भिक्खु भण्डनकारको....पे०....सङ्घे अधिकरणकारको। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—''अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—''अधम्मेन समग्गकम्मं'' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—''अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं'' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

५२. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भण्डनकारको होति....पे०....सङ्घे [B.467] अधिकरणकारको। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु भण्डनकारको....पे०....सङ्घे अधिकरणकारको हन्दस्स मयं तज्जनयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मेन वग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—''अधम्मेन [N.357] वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं'' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—'धम्मेन वग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

---

२३. तर्जनीय कर्म विवादकथा

५०. ''भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु कलहप्रिय (झगडालू) कलह करने वाला, विवादी, वकवादी एवं आरोप (आधिकरण) लगाने वाला हो। उस के विषय में कभी अन्य सदाचारी भिक्षुओं को यह विचार हो—'आयुष्मानो! यह भिक्षु कलहप्रिय .....पूर्ववत्.....उसको तर्जनीय (भय दिखाने योग्य) दण्ड देते हैं, परन्तु अधर्म से वर्ग द्वारा। इस निर्णय को सुनकर वहाँ उपस्थित भिक्षुओं में उस विषय में मतभेद हो जाता है। उनमें से कोई कहता है—'यह तो अधर्म से वर्गकर्म हैं। कोई कहता है—अधर्म से समग्र कर्म है।' कोई कहता है—'धर्म से परन्तु वर्ग कर्म है।' कोई कहता है—'धर्माभास से वर्गकर्म है।' कोई कहता है— 'धर्माभास से वर्ग कर्म है।' कोई कहता है—'धर्माभास से समग्र कर्म है।' कोई कहता है—'यह नहीं किया कर्म है, दुष्कर्म है, पुनः किया जाने योग्य कर्म है।' भिक्षुओ! इन भिक्षुओं में ऐसा जो कहते थे कि वह अधर्म से वर्गकर्म है, या जो ऐसा कहते थे कि यह नहीं किया कर्म है, दुष्कृत कर्म है, पुनः करने योग्य कर्म है—वहाँ ये भिक्षु धर्मवादी (न्याय के पक्ष की बात कहने वाले) हैं।

५३. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भण्डनकारको होति....पे०....सङ्घे अधिकरण-कारको। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु भण्डनकारको....पे०....सङ्घे अधिकरणकारको। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—''धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं'' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—''अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं'' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

५४. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु भण्डनकारको होति....पे०....सङ्घे अधिकरण-कारको। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु भण्डनकारको होति....पे०....सङ्घे अधिकरणकारको। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं करोन्ति—धम्मपतिरूपकेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—'धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

२४. नियस्सकम्मविवादकथा

[B.468] ५५. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु बालो होति अब्यत्तो आपत्तिबहुलो अनपदानो, गिहिसंसट्ठो विहरति अननुलोमिकेहि गिहिसंसग्गेहि। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु बालो अब्यत्तो आपत्तिबहुलो अनपदानो, गिहिसंसट्ठो विहरति अननुलोमिकेहि गिहिसंसग्गेहि। हन्दस्स मयं नियस्सकम्मं करोमा' ति। ते तस्स नियस्सकम्मं

---

५१. '' ...वे अधर्म से समग्र होकर दण्ड देते हैं। इस निर्णय को सुनकर ....पूर्ववत्.....पुनः किया जाने योग्य कर्म हैं—ऐसा जो कहते हैं वे धर्मवादी न्याय का पक्ष ग्रहण करने वाले हैं।

५२. ''....वे धर्म से वर्ग होकर दण्ड देते हैं। इस निर्णय को सुनकर. .पूर्ववत्....पुनः किया जाने योग्य कर्म है—ऐसा जो कहते हैं वे ही न्याय के पक्षपाती हैं।

५३ ''. . वे धर्माभास से समग्र होकर दण्ड देते है। इस निर्णय को सुनकर....पूर्ववत्....पुनः किया जाने योग्य कर्म है—ऐसा कहने वाले ही धर्मवादी हैं।

५४. '' . .वे धर्माभास से समग्र होकर दण्ड देते है। इस निर्णय को सुनकर....पूर्ववत्....पुनः किया जाने योग्य कर्म है—ऐसा कहने वाले ही धर्मवादी हैं।

२४. न्यस्यकर्मविवादकथा

५५. ''भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु मूर्ख, अज्ञ, दोषों से लिप्त, दुश्चरित्र हो, श्रमण भाव के प्रतिकूल गृहस्थों से संसर्ग रखने वाला हो। उसके विषय में अन्य सद् भिक्षुओं को यह विचार आये—'आयुष्मानो! यह भिक्षु...गृहस्थों से संसर्ग रखता है। आओ, इसको न्यस्य दण्ड दें।' तब वे उसे न्यस्य दण्ड (अच्छे भिक्षुओ के संरक्षण में रखना) दे, परन्तु अधर्म से वर्ग होकर ...पूर्ववत् ...अधर्म से समग्र

करोन्ति—अधम्मेन वग्गा....पे०....अधम्मेन समग्गा...धम्मेन वग्गा...धम्म-पतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू [N.358] एवमाहंसु— 'धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

इमे पञ्च वारा सङ्खित्ता॥

२५. पब्बाजनीयकम्मविवादकथा

५६. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु कुलदूसको होति पापसमाचारो। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—"अयं खो, आवुसो, भिक्खु कुलदूसको पापसमाचारो। हन्दस्स मयं पब्बाजनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स पब्बाजनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा....पे०.... अधम्मेन समग्गा....धम्मेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—'धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

इमे पञ्च वारा सङ्खित्ता॥

होकर....पूर्ववत् ...धर्म से वर्ग होकर...पूर्ववत्....धर्माभास से वर्ग होकर.....पूर्ववत्....। यह निर्णय सुनकर वहाँ बैठे भिक्षुओं में से कोई यह कहे—यह निर्णय तो अधर्म से वर्ग कर्म है, ...अधर्म से समग्र कर्म है....धर्म से वर्गकर्म है....धर्माभास से वर्गकर्म है.....धर्माभास से समग्र कर्म है,.....यह तो न किया कर्म है, यह दुष्कृत है. यह पुनः करने योग्य कर्म है। तो भिक्षुओ! यहाँ जो भिक्षु ऐसा कहते हैं—'धर्माभास से समग्र कर्म है', या जो ऐसा कहते हैं—'यह न किया कर्म है, यह दुष्कृत (मिथ्या निर्णय) है, या यह पुनः किये जाने योग्य कर्म दण्ड निर्णय है'— वही भिक्षु इस विवाद के विषय में धर्म का पक्ष लेते हैं।

इस तरह यह पाँच वारों (चक्रों) से संक्षिप्त वर्णन हुआ।।

२५. प्रव्राजनीयकर्मविवादकथा

५६. "यहाँ कोई भिक्षु कुलीन घरों की स्त्रियों को दूषित करने वाला दुश्चरित्र हो। वहाँ उसके विषय मे अन्य भिक्षुओं को यह विचार आवे—'आयुष्मानो! यह भिक्षु कुलदूषक एवं दुश्चरित्र है, क्यों न इसको प्रव्राजनीय दण्ड दे दिया जाय।' उस को प्रव्राजनीय दण्ड दे, परन्तु अधर्म से वग्ग होकर....अधर्म से समग्र होकर...धर्म से वर्ग होकर... धर्माभास से वर्ग होकर....धर्माभास से समग्र होकर। इस निर्णय को सुनकर वहाँ उपस्थित कुछ भिक्षुओं ने कहा—'यह निर्णय तो धर्माभास से समग्र होकर हुआ है। कुछ ने कहा—'यह अकृत है', कुछ ने कहा—'यह दुष्कृत है', कुछ ने कहा—'यह पुन किये जाने योग्य है। तो भिक्षुओ! यहाँ उस कर्म अकृत, दुष्कृत या पुन. किये जाने योग्य कहने वाले ही न्याय की बात कहने वाले हैं।

इस तरह यह पाँच वारों से संक्षिप्त वर्णन समाप्त हुआ।।

२६. पटिसारणीयकम्मविवादकथा

[B.469] ५७. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु गिही अक्कोसति परिभासति। तत्र चे भिक्खूनं [R.333] एवं होति–'अयं खो, आवुसो, भिक्खु गिही अक्कोसति परिभासति। हन्दस्स मयं पटिसारणीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स पटिसारणीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा.... पे०.... अधम्मेन समग्गा...धम्मेन वग्गा.....धम्मपतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—'धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

इमे पञ्च वारा सङ्खित्ता॥

२७. अदस्सने उक्खेपनीयकम्मविवादकथा

५८. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु आपत्तिं आपज्जित्वा न इच्छति आपत्तिं पस्सितुं। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति— 'अयं खो, आवुसो, भिक्खु आपत्तिं आपज्जित्वा न इच्छति आपत्तिं पस्सितुं। हन्दस्स मयं आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा....पे०.....अधम्मेन समग्गा... धम्मेन वग्गा.....धम्मपतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति— 'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, [N.359] भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—'धम्मपतिरूपकेन सम्मग्गकम्मं' ति, ये च ते

---

२६. प्रतिसारणीयकर्मविवादकथा

५७. ''भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु गृहस्थों से अपशब्द बोले, कटुवचन बोले। उसके विषय में दूसरे भिक्षु यह सोचें–'यह भिक्षु गृहस्थों को...बोलता है, तो क्यों न हम इसको प्रतिसारणीय दण्ड दे दें।' वे उसे प्रतिसारणीय दण्ड देते हैं परन्तु अधर्म से वर्ग द्वारा....पूर्ववत् .....अधर्म से समग्र द्वारा.....धर्म से वर्ग द्वारा.....धर्माभास से वर्ग द्वारा ....धर्माभास से समग्र द्वारा.....पूर्ववत्.....।

इन पाँचों वारों के संक्षेप का विस्तार कर लेना चाहिये।।

२७. दोष स्वीकार न करने पर उत्क्षेपणीय दण्ड विवादकथा

५८. ''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु दोष करके भी उसे स्वीकार न करना चाहता हो, उसके विषयमें अन्य भिक्षु यह विचार करें–'आयुष्मानो! यह भिक्षु दोष करके भी उसे स्वीकार करना नहीं चाहता, तो क्यों न हम इसका दोष न स्वीकार करने पर उत्क्षेपणीय कर्म कर दें।' तब वे उसको 'दोष न स्वीकार करने पर उत्क्षेपणीय दण्ड देते हैं; परन्तु अधर्म से वर्ग द्वारा....पूर्ववत्....अधर्म से समग्र द्वारा धर्म से वर्ग द्वारा.....धर्माभास से वर्ग द्वारा....धर्माभास से समग्र द्वारा.....। वहाँ उपस्थित भिक्षु यह निर्णय सुनकर विवाद करते हैं। उनमें कोई कहता है–'यह अधर्म से वर्ग कर्म है', ...'अधर्म से समग्र कर्म है'.....'धर्म से वर्गकर्म है'.....'धर्माभास से वर्गकर्म है'.....धर्माभास से समग्र कर्म है'....'यह अकृत

भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

इमे पञ्च वारा सङ्खित्ता॥

२८. अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मविवादकथा

५९. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु आपत्तिं आपज्जित्वा न इच्छति आपत्तिं पटिकातुं। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु आपत्तिं आपज्जित्वा न इच्छति आपत्तिं पटिकातुं। हन्दस्स मयं आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा....पे०....अधम्मेन समग्गा....धम्मेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा। [B.470] तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—"धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं' ति; ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

इमे पञ्च वारा सङ्खित्ता॥

२९. अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मविवादकथा

६०. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु न इच्छति पापिकं दिट्ठिं पटिनिस्सज्जितुं। तत्र चे

कर्म है'....'यह दुष्कृत कर्म है'.....'यह पुनः करने योग्य कर्म है।' वहाँ, भिक्षुओ! जो भिक्षु ऐसा कह रहे हैं—'धर्माभास से यह समग्र कर्म किया है', वे....या फिर जो भिक्षु ऐसा कह रहे हैं—'यह कर्म अकृत है', 'दुष्कृत है', 'पुनः करने योग्य हैं' वे ही धर्मानुसार चिन्तन करने वाले हैं।।

यों ये पाँच वार भी ऊपर की तरह संक्षिप्त रूप से कह दिये।।

२८. प्रतीकार न करने पर उत्क्षेपणीयकर्म विवादकथा

५९. "यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु दोष (प्रमाद) करके भी उसका प्रतीकार न करना चाहता हो। तब दूसरे भिक्षुओं को यह विचार हो—'यह भिक्षु दोष करके भी उसका प्रतीकार करना नहीं चाहता, तो क्यों न हम इसका 'प्रतीकार न करने पर उत्क्षेपणीय दण्ड' कर दें। तो, वे उसका 'प्रतीकार न करने पर उत्क्षेपणीय दण्ड' कर दें, परन्तु अधर्म से वर्ग द्वारा.....अधर्म से समग्र द्वारा....धर्म से वर्ग द्वारा....धर्माभास से वर्ग द्वारा....धर्माभास से समग्र द्वारा। वहाँ उपस्थित कुछ भिक्षु इस निर्णय को सुनें और उनमें से कोई यह कहे—'यह अधर्म से वर्ग कर्म किया गया है'.....''यह अधर्म से समग्र कर्म किया गया है'.....'धर्म से वर्ग कर्म किया गया है'.....'धर्माभास से वर्गकर्म किया गया है'....'यह उचित रूप से न किया गया कर्म है'.....'यह दुष्कृत है'.....'यह पुनः किये जाने योग्य कर्म है।' भिक्षुओ! इनमें जो यह कह रहा है—'यह अकृत कर्म है, दुष्कृत कर्म है, पुनः करने योग्य कर्म है'; वही उचित (न्याय्य वाद) का पक्ष ले रहा है।

यों ये पाँच वार भी ऊपर की तरह संक्षेप से वर्णित किये गये।।

२९. त्याग न करने पर उत्क्षेपणीयकर्मविवादकथा

६०. "भिक्षुओ! यहाँ कोई अपनी पापमय दृष्टि का परित्याग नहीं करना चाहता। उसे देखकर

भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु न इच्छति पापिकं दिट्ठिं पटिनिस्सज्जितुं। हन्दस्स मयं पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मं करोमा' ति। ते तस्स पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मं करोन्ति—अधम्मेन वग्गा....पे०..... अधम्मेन समग्गा....धम्मेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—'धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

इमे पञ्च वारा सङ्खित्ता॥

३०. तज्जनीयकम्मपटिप्पस्सद्धिकथा

६१. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा। तत्रट्ठो [N.360] सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन

दूसरे भिक्षुओं को यह विचार होता है—'यह भिक्षु.....तो क्यों न इसका पापमय दृष्टि का परित्याग न करने पर उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं....अधर्म से समग्र द्वारा....धर्म से वर्ग द्वारा....धर्माभास से वर्ग द्वारा.....धर्माभास से समग्र द्वारा उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। इस निर्णय को सुनकर वहाँ उपस्थित भिक्षुओं में से कुछ.....'पुनः करने योग्य कर्म हैं।' वहाँ भिक्षुओ! जो भिक्षु यह कहते हैं.....'पुनः करने योग्य कर्म है', वे ही धर्मवादी कहे जायँगें।।

यों इन पाँच वारों का सक्षिप्त वर्णन समाप्त।।

३०. तर्जनीय कर्म की प्रतिप्रश्रब्धि (शान्ति) कथा

६१. भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु सङ्घ द्वारा तर्जनीय कर्म प्राप्त करने के बाद अनुकूल रहकर विनयपूर्वक उचित व्यवहार कर रहा हो। वह सङ्घ से अपने को मिले तर्जनीय दण्ड की क्षमा (शमन) माँगना चाहता हो। तब उसके विषय में भिक्षुओं को यह विचार हो कि यह भिक्षु तर्जनीय दण्ड प्राप्त करने के बाद अनुकूल रहकर विनयपूर्वक उचित व्यवहार करता हुआ क्षमायाच्ना कर रहा है, तो क्यों न इसे क्षमा कर दिया जाय। वे उसका वह तर्जनीय दण्ड क्षमा कर दें, परन्तु अधर्म से वर्गपूर्वक। उस निर्णय को सुनकर वहाँ उपस्थित भिक्षुसङ्घ में से कुछ भिक्षु कहने लगें—'यह कर्म तो अधर्म से वर्गपूर्वक हुआ है'.....'अधर्म से समग्र कर्म हुआ है'...'धर्म से वर्गपूर्वक हुआ है'. .. .धर्माभास से वर्गकर्म हुआ है'....धर्माभास से समग्र कर्म हुआ है'.....'यह कर्म उचित रीति से (अकृत) धर्माभास से समग्र कर्म हुआ है' ....'यह कर्म उचित रीति से (अकृत) धर्माभास से समग्र कर्म हुआ है'.. .'यह कर्म उचित रीति से (अकृत) धर्माभास से समग्र कर्म हुआ है'....'यह कर्म उचित रीति से (अकृत)

कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—'अधम्मेन वग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो। [B.471]

६२. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—'अधम्मेन समग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

६३. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति— 'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—धम्मेन वग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—'धम्मेन वग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

६४. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं

धर्माभास से समग्र कर्म हुआ है'....'यह कर्म उचित रीति से (अकृत) धर्माभास से समग्र कर्म हुआ है'....'यह कर्म उचित रीति से (अकृत) है'....'यह दुष्कृत है'....'अतः यह पुनः करने योग्य है।' 'भिक्षुओ! इनमें 'पुनः करने योग्य' मानने वाले ही धर्मवादी हैं।

६२. "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु सङ्घ द्वारा तर्जनीय कर्म किये जाने के बाद अनुकूल.. पूर्ववत्.... अधर्म से समग्र होकर इस निर्णय को सुनकर वहाँ बैठे....यह कहते हैं कि 'यह निर्णय तो अधर्म से समग्र कर्म द्वारा हुआ है', या कुछ यह कहें—'यह निर्णय नहीं (अकृत) हुआ, दुष्कृत हुआ, यह पुनः किये जाने योग्य है'—यहाँ ये दो प्रकार के भिक्षु ही धर्म का पक्ष ले रहे होते हैं।

६३. "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु सङ्घ द्वारा....पूर्ववत्.....धर्म से, परन्तु वर्ग होकर। तब उपस्थित भिक्षुओं में से कोई भिक्षु यह निर्णय सुनकर कहे—यह निर्णय अधर्म से वर्ग....अधर्म से समग्र....धर्म से वर्ग....धर्माभास से वर्ग....धर्माभास से समग्र....अकृत....दुष्कृत....पुनः करने योग्य कहते हैं। उनमें 'धर्म से वर्ग' एवं अकृत, दुष्कृत तथा पुनः करने योग्य कहने वाले ही यहाँ धार्मिक पक्ष के कहने वाले हैं।

पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, [B.472] नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—धम्मपतिरूपकेन वग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन [N.361] वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—'धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं' ति, ये च भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

६५. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन तज्जनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, तज्जनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं तज्जनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स तज्जनीयकम्म पटिप्पस्सम्भेन्ति—धम्मपतिरूपकेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—"अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—"धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

३१. नियस्सकम्मपटिप्पस्सद्धिकथा

६६. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन नियस्सकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, नियस्सस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति— "अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन नियस्सकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, नियस्सस्स कम्मस्स पटिप्पसद्धिं याचति। हन्दस्स मयं नियस्सकम्मं

---

६४. "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु ..पूर्ववत्... धर्माभास से वर्गपूर्वक करते हैं। ....उस निर्णय को सुनकर कोई भिक्षु. .'धर्माभास से वर्गपूर्वक' या 'अकृत', 'दुष्कृत' या पुन. करने वाले भिक्षु न्याय के पक्षधर हैं।

६५. "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु ...पूर्ववत्.,.. धर्माभास से समग्रपूर्वक करते हैं।.....'धर्माभास से समग्र कर्म' या 'अकृत' 'दुष्कृत' या 'पुनः करने योग्य' कहने वाले धर्मवादी हैं।

३१. न्यस्यकर्मप्रतिप्रश्रब्धिकथा

६६. "भिक्षुओ! यहाँ किसी भिक्षु का सङ्घ ने न्यस्य कर्म (संरक्षण दण्ड) किया हो। वह तब से अनुकूल रहता हुआ विनयपूर्वक उचित (नम्र) व्यवहार करता है। तब भिक्षुओं को उसके विषय में. ..पूर्ववत्....वे उसका न्यस्य कर्म समाप्त कर देते हैं, परन्तु अधर्म से वर्ग के द्वारा. ...अधर्म से समग्र के द्वारा......धर्म से वर्ग के द्वारा.. ..धर्माभास से वर्ग के द्वारा.....धर्माभास से समग्र के द्वारा....। ....यह

पटिप्पस्सम्भेमा'' ति। ते तस्स नियस्सकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा....पे०.... अधम्मेन समग्गा....धम्मेन वग्गा.....धम्मपतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—''अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं'' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—'धम्मपतिरूपकेन [B.473] समग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

इमे पि पञ्च वारा सङ्खित्ता॥

३२. पब्बाजनीयकम्मपटिप्पस्सद्धिकथा

६७. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन पब्बाजनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, पब्बाजनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन पब्बाजनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, पब्बाजनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं पब्बाजनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स पब्बाजनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा... [N.362] पे०.... अधम्मेन समग्गा....धम्मेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन वग्गा.....धम्मपतिरूपकेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं'' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खु एवमाहंसु—'धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

इमे पि पञ्च वारा सङ्खित्ता॥

३३. पटिसारणीयकम्मपटिप्पस्सद्धिकथा

६८. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन पटिसारणीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, पटिसारणीयस्स कम्मस्स पटिप्पसद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं

तो अकृत, दुष्कृत या पुनः करने योग्य कर्म है—ऐसा कहने वाले ही वहाँ न्याय (धर्म) के पक्षपाती हैं।

ये पाँच वार संक्षेप से कहे गये।।

३२. प्रवाजनीय कर्म प्रतिप्रश्रब्धिकथा

६७. यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु सङ्घ द्वारा प्रव्रजनीय दण्ड पाता है। दण्ड पाने के बाद वह अनुकूल.....अधर्म से वर्ग द्वारा....अधर्म से समग्र द्वारा....धर्म से वर्ग द्वारा....धर्माभास से वर्ग द्वारा....धर्माभास से समग्र द्वारा.....। इस निर्णय को सुनकर.....पूर्ववत्.....धर्माभास से वर्ग द्वारा....या अकृत.....कहने वाले भिक्षु ही धर्म के पक्षपाती हैं।

ये पाँच वार भी संक्षेप से कह दिये गये।।

३३. प्रतिसारणीय कर्म प्रतिप्रश्रब्धिकथा

६८. यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु सङ्घ से प्रतिसारणीय दण्ड.....पूर्ववत्.....परन्तु अधर्म से वर्ग

एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन पटिसारणीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, पटिसारणीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं पटिसारणीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स पटिसारणीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा....पे०....अधम्मेन समग्गा....धम्मेन वग्गा.....धम्मपतिरूपकेन वग्गा.....धम्मपतिरूपकेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, [B.474] अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—'धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—''अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

इमे पि पञ्च वारा सङ्खित्त॥

३४. अदस्सने उक्खेपनीयकम्मपटिप्पस्सद्धिकथा

६९. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं, पातेति, नेत्थारं वत्तति, आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स आपत्तिया अदस्सने उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा....पे०....अधम्मेन समग्गा....धम्मेन वग्गा....धम्म-पतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं'' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु— 'अकतं [N.363] कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

इमे पि पञ्च वारा सङ्खित्ता॥

द्वारा.....अधर्म से समग्र द्वारा....धर्म से वर्ग द्वारा....धर्माभास से वर्ग द्वारा....धर्माभास से समग्र द्वारा....। उस निर्णय को सुनकर....धर्माभास से समग्र कर्म.....या अकृत, दुष्कृत.....कहने वाले भिक्षु ही वहाँ न्याय के पक्षधर हैं।

ये पाँच वार भी संक्षेप से कहे गये।।

३४. अस्वीकार करने पर उत्क्षेपणीयकर्मप्रतिप्रश्रब्धिकथा

६९. ''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु सङ्घ से दोष के अस्वीकार करने पर उत्क्षेपणीय दण्ड प्राप्त करने के बाद अनुकूल.....अधर्म से वर्ग द्वारा....अधर्म से समग्र द्वारा.....धर्म से वर्ग द्वारा......धर्माभास से वर्ग द्वारा.....धर्माभास से समग्र द्वारा.....। उस निर्णय को.....धर्माभास से समग्र कर्म....या अकृत कर्म....दुष्कृत कर्म.....कहने वाले भिक्षु ही न्याय (धर्म) के पक्षपाती कहे जाते हैं।

ये पाँच वार भी संक्षेप से कहे गये।।

३५. अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मपटिप्पस्सद्धिकथा

७०. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स [B.475] आपत्तिया अप्पटिकम्मे उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा....पे०.... अधम्मेन समग्गा....धम्मेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—"अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—'धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो।

इमे पि पञ्च वारा सङ्खित्ता॥

३६. अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मपटिप्पसद्धिकथा

७१. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु सङ्घेन पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। तत्र चे भिक्खूनं एवं होति—'अयं खो, आवुसो, भिक्खु सङ्घेन पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मकतो सम्मा वत्तति, लोमं पातेति, नेत्थारं वत्तति, पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयस्स कम्मस्स पटिप्पस्सद्धिं याचति। हन्दस्स मयं पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेमा' ति। ते तस्स पापिकाय दिट्ठिया अप्पटिनिस्सग्गे उक्खेपनीयकम्मं पटिप्पस्सम्भेन्ति—अधम्मेन वग्गा....पे०....अधम्मेन समग्गा...धम्मेन

---

३५. प्रतीकार न करने पर उत्क्षेपणीयकर्मप्रतिप्रश्रब्धिकथा

७०. "यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु सङ्घ से दोष का प्रतीकार न करने के कारण उत्क्षेपणीय दण्ड प्राप्त करने के बाद अनुकूल....पूर्ववत्....अधर्म से वर्ग द्वारा.....अधर्म से समग्र द्वारा....धर्म से वर्ग द्वारा....धर्माभास से वर्ग द्वारा.....धर्माभास से समग्र द्वारा....। यह निर्णय....धर्माभास से समग्र द्वारा.....या अकृत....दुष्कृत......कहने वाले भिक्षु ही न्यायवादी हैं।

३६. दोष का परित्याग न करने पर उत्क्षेपणीयप्रतिप्रश्रब्धिकथा

७१. "भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु पापमय दृष्टि का परित्याग न करने के कारण सङ्घ द्वारा उत्क्षेपण दण्ड प्राप्त करने के बाद, अनुकूल रहता हुआ.....पूर्ववत्.. .अधर्म से वर्ग द्वारा... .अधर्म से समग्र द्वारा.....धर्म से वर्ग द्वारा....धर्माभास से वर्ग द्वारा....धर्माभास से समग्र द्वारा....। यह निर्णय

वग्गा...धम्मपतिरूपकेन वग्गा....धम्मपतिरूपकेन समग्गा। तत्रट्ठो सङ्घो विवदति—'अधम्मेन वग्गकम्मं, अधम्मेन समग्गकम्मं, धम्मेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन वग्गकम्मं, धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं, अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति। तत्र, भिक्खवे, ये ते भिक्खू एवमाहंसु—''धम्मपतिरूपकेन समग्गकम्मं' ति, ये च ते भिक्खू एवमाहंसु—'अकतं कम्मं दुक्कटं कम्मं पुन कातब्बं कम्मं' ति, इमे तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो''॥

इमे पि पञ्च वारा सङ्खित्ता॥

चम्पेय्यक्खन्धको नवमो निट्ठितो॥

३७. तस्सुद्दानं

[N.364] चम्पायं भगवा आसि वत्थु वासभगामके।
[B.476] आगन्तुकानमुस्सुक्कं अकासि इच्छितब्बके॥ १॥
पकतञ्ञुनो ति ञत्वा उस्सुक्कं न करी तदा।
उक्खित्तो न करोती ति सागमा जिनसन्तिके॥ २॥
[R.334] अधम्मेन वग्गकम्मं समग्गं अधम्मेन च।
धम्मेन वग्गकम्मं च पतिरूपकेन वग्गिकं॥ ३॥
पतिरूपकेन समग्गं एको उक्खिपतेककं।
एको च द्वे सम्बहुले सङ्घं उक्खिपतेकको॥ ४॥

सुनकर वहाँ उपस्थित भिक्षुओं में से कोई यह कहे—'यह धर्माभास से समग्र कर्म हुआ है' या यह कहे कि 'अकृत', 'दुष्कृत' तथा 'पुनः किये जाने योग्य कर्म है'—तो यहाँ धर्मवादी कहलाता है।

ये पाँच वार संक्षेप से कहे गये।।

नवम चाम्पेयस्कन्धक समाप्त।।

उसका उदान (विषयसूची)

कभी भगवान् कुछ समय के लिये चम्पा नगरी में गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय वासभग्राम में काश्यपगोत्र नामक ब्राह्मण अपने आवास में आगन्तुकों को ठहराने में बहुत उत्सुकता दिखाता हुआ उनका सर्वथा सब प्रकार से स्वागत सत्कार करता था।। १।।

२. परन्तु जब धीरे-धीरे वे आगन्तुक अतिथि ग्राम से परिचित हो गये तो भिक्षु ने उनके सत्कार में अपनी तरफ से उत्सुकता दिखाना कम कर दिया। इस क्रिया से वे आगन्तुक भिक्षु उस ब्राह्मण पर कुपित हो गये और ब्राह्मण को सङ्घ से उत्क्षिप्त कर दिया। इससे दुःखी होकर ब्राह्मण भगवान् के सम्मुख पहुँचा।। २।।

३. इस प्रकरण के उपस्थित होने पर भगवान् ने भिक्षुओं के अधर्मपूर्वक किये गये कर्मों (दण्डों) का विभाजन किया। जैसे— (१) अधर्म से वर्गकर्म, (२) अधर्म से समग्रकर्म, (३) धर्म से वर्गकर्म, (४) धर्माभास से वर्गकर्म एवं (५) धर्माभास से समग्र कर्म।। ३।।

अन्य अधर्म कर्म ये हैं—एक भिक्षु एक का एक भिक्षु दो या समग्र सङ्घ का उत्क्षेपण कर दे,

दुवे पि सम्बहुला पि सङ्घो सङ्घं च उक्खिपि।
सब्बञ्ञुपवरो सुत्वा अधम्मं ति पटिक्खिपि॥ ५॥
ञत्तिविपन्नं यं कम्मं सम्पन्नं अनुसावनं।
अनुसावनविपन्नं सम्पन्नं ञत्तिया च यं॥ ६॥
उभयेन विपन्नं च अञ्ञत्र धम्ममेव च।
विनया सत्थु पटिकुट्ठं कुप्पं अट्ठानारहिकं॥ ७॥
अधम्मवग्गं समग्गं धम्मपतिरूपानि ये दुवे।
धम्मेनेव च सामग्गिं अनुञ्ञासि तथागतो॥ ८॥
चतुवग्गो पञ्चवग्गो दसवग्गो च वीसति।
परोवीसतिवग्गो च सङ्घो पञ्चविधो तथा॥ ९॥
ठपेत्वा उपसम्पदं यं च कम्मं पवारणं।
अब्भानकम्मेन सह चतुवग्गेहि कम्मिको॥ १०॥
दुवे कम्मे ठपेत्वान मज्झदेसूपसम्पदं।
अब्भानं पञ्चवग्गिको सब्बकम्मेसु कम्मिका॥ ११॥
अब्भानेकं पठेत्वा ये भिक्खू दसवग्गिका।
सब्बकम्मकरो सङ्घो वीसो सब्बत्थ कम्मिको॥ १२॥
भिक्खुनी सिक्खमाना च सामणेरो सामणेरी।
पच्चक्खातन्तिमवत्थू उक्खित्तापत्तिदस्सने॥ १३॥ [N.365]

दो भिक्षु बहुत से भिक्षुओं का या एक सङ्घ दूसरे सङ्घ का उत्क्षेपण कर दे। सर्वज्ञ भगवान् ने इन सब कर्मों का निषेध किया है।। ४–५।।

ज्ञप्तिरहित एवं श्रावणयुक्त या श्रावणरहित ज्ञप्तिसम्पन्न या ज्ञप्ति एवं श्रावण—दोनों से रहित कर्म अधर्मकर्म कहलाता है। भगवान् तथागत ने ऐसे सभी कर्मों का निषेध किया है जो शास्ता के विनय की दृष्टि में घृणित (प्रतिक्रुष्ट) हों, अस्थिर (कुप्प) हों, उचित न (अट्ठानारहिक) हो।। ६–७।।

इसी तरह पूर्वोक्त सभी अधर्मवर्ग, अधर्मसमग्र एवं दोनों (वर्ग एवं समग्र) धर्माभास कर्म अकर्म ही कहे हैं। तथागत ने तो एकाग्रतापूर्वक किये गये धर्मों की ही अनुज्ञा की है।। ८।।

सङ्घ पाँच (५) प्रकार का होता है– (१) जिसमें चार भिक्षु (चतुर्वर्ग) हों, (२) पाँच भिक्षु हों (पञ्चवर्ग), (३) दश भिक्षु हों (दशवर्ग), (४) या जिसमे बीस (२०) भिक्षु (विंशतिवर्ग) हों एवं (५) बीस से अधिक सङ्ख्या में भिक्षु हों।। ९।।

चार वर्ग वाले भिक्षुसङ्घ को उपसम्पदा एवं प्रवारणा कर्म के अतिरिक्त आह्वानसहित सभी कर्म करने के अधिकार हैं।। १०।।

पाँच वर्ग वाले भिक्षुसङ्घ को मध्य देश में उपसम्पदा एवं आह्वान–ये दो कर्म छोड़कर सभी विनयकर्म करने के अधिकार हैं।। ११।।

दशवर्ग वाले भिक्षुसङ्घ आह्वान कर्म को छोड़कर अन्य सभी विनयोक्त कर्म करने के लिये अधिकृत हैं।। १२।।

भिक्षुणी, शिक्ष्यमाणा, श्रामणेर, श्रामणेरी, प्रत्याख्यात, अन्तिम वस्तु (पाराजिक) का अधिकारी, उत्क्षिप्तक, दोष स्वीकार न करना, दोष का प्रतिकार न करने वाला , पापमयदृष्टि, पण्डक (नपुंसक),

अप्पटिकम्मे दिट्ठिया पण्डको थेय्यसंवासकं।
तित्थिया तिरच्छानगतं मातु पितु च घातकं॥ १४॥
अरहं भिक्खुनीदूसिं भेदकं लोहितुप्पादं।
ब्यञ्जनं नानासंवासं नानासीमाय इद्धिया॥ १५॥
यस्स सङ्घो करे कम्मं होन्तेते चतुवीसति।
सम्बुद्धेन पटिक्खित्ता न हेते गणपूरका॥ १६॥
पारिवासिकचतुत्थो परिवासं ददेय्य वा।
मूला-मानत्तमब्भेय्य अकम्मं न च कारणं च॥ १७॥
मूला-अरहमानत्ता अब्भानारहमेव च।
न कम्मकारका पञ्च सम्बुद्धेन पकासिता॥ १८॥
भिक्खुनी सिक्खमाना च सामणेरो सामणेरिका।
पच्चक्खन्तिमउम्मत्ता खित्तावेदनदस्सने॥ १९॥
अप्पटिकम्मे दिट्ठिया पण्डका पि च ब्यञ्जना।
नानासंवासका सीमा वेहासं यस्स कम्म च॥ २०॥
अट्ठारसन्नमेतेसं पटिक्कोसं न रुहति।
[R.335] भिक्खुस्स पकतत्तस्स रुहति पटिक्कोसना॥ २१॥
सुद्धस्स दुन्निसारिता बालो हि सुनिस्सारितो।
पण्डको थेय्यसंवासो पक्कन्तो तिरच्छानगतो॥ २२॥

स्तेयसंवासक, तीर्थिक (अन्यसम्प्रदायगत) पशु योनि का आचरणकर्ता, मातृघातक, पितृघातक, अर्हद्धातक, भिक्षुणीदूषक, सङ्घभेदक, बुद्धलोहितोत्पादक, स्त्रीपुरुष उभय लक्षणवाला, नाना आवासों में रहने वाला, नाना सीमाओं में रहने वाला, ऋद्धि प्रदर्शक–ये चौबीस (२४) अपराधी भगवान् ने गिनाये हैं जिनके प्रति सङ्घ को दण्ड कर्म करना चाहिये। ये ऐसे किसी भी वर्ग में, जो दण्ड के लिये अधिकृत हों, उसके सदस्य (वर्गपूरक) नहीं हो सकते।। १३–१६।।

(१) जिसको पारिवासिक किया जा चुका हो, (२) या यह दण्ड किया जाना हो, (३) मूल से प्रतिकर्षणीय को, (४) मानत्वयोग्य चतुर्थ को एवं (५) आह्वानयोग्य को समग्र सङ्घ (विंशतिसङ्घचक) के विना इन पाँच को दण्ड कर्म नहीं करना चाहिये–ऐसा भगवान् का आदेश है।। १७–१८।।

भिक्षुणी, शिक्षमाणा, श्रामणेर, श्रामणेरी, प्रत्याख्यात, अन्तिम वस्तु का अधिकारी, उन्मत्त, उत्क्षिप्तक, दोष को न स्वीकार करने वाला, दोष का प्रतिकार न करना चाहने वाला, पाप दृष्टि को न स्वीकार एवं न त्यागने वाला, पण्डक (स्त्री–पुरुष) उभय चिह्न वाला, नानासवासक, नाना सीमाओं में रहने वाला, ऋद्धिबल से आकाशस्थित, एवं जिसको दण्ड देना है–इन अट्ठारह (१८) को दण्डसमिति में बैठाकर प्रतिक्रोशन नहीं कराना चाहिये। हाँ, प्रकृतात्म (सदाचारी) भिक्षु का प्रतिकोशन किया जा सकता है।। १९–२१।।

सदाचारी (शुद्ध) भिक्षु का निःसारण अनुचित एवं मूर्ख का निःसारण उचित कहा गया है। पण्डक, स्तेयसंवासक, राजा का अपराध करके भागा हुआ, पशुओं की तरह व्यवहार करने

मातु पितु अरहन्त दूसको सङ्घभेदको।
लोहितुप्पादको चेव उभतो ब्यञ्जनो च यो॥ २३॥
एकादसन्नं एतेसं ओसारणं न युज्जति।
हत्थपादं तदुभयं कण्णनासं तदूभयं॥ २४॥ [N.366]
अङ्गुलि अळकण्डरं फणं खुज्जो व वामनो।
गण्डी लक्खणकसा च लिखितको च सीपदी॥ २५॥
पापा परिसकाणो च कुणी खञ्जो हतो पि च।
इरियापथदुब्बलो अन्धो मूगो च बधिरो॥ २६॥
अन्धमूगन्धबधिरो मूगबधिरमेव च।
अन्धमूगन्धबधिरो च द्वत्तिंसेते अनूनका॥ २७॥
तेसं ओसारणं होति सम्बुद्धेन पकासितं।
दट्ठब्बा पटिकातब्बा निस्सज्जेता न विज्जति॥ २८॥
तस्स उक्खेपना कम्मा सत्त होन्ति अधम्मिका।
आपन्नं अनुवत्तन्तं सत्त ते पि अधम्मिका॥ २९॥
आपन्नं नानुवत्तन्तं सत्त कम्मा सुधम्मिका।
सम्मुखा पटिपुच्छा च पटिञ्ञाय च कारणा॥ ३०॥

वाला, माता-पिता एवं अर्हत् का घातक, भिक्षुणीदूषक, सङ्घ में फूट डालने वाला, लोहितोत्पादक उभय व्यञ्जन (चिह्न) वाला इन ग्यारह (११) का सङ्घ में पुनः लेना (अवसारण) नहीं करना चाहिये।। २२-२३।।

परन्तु भगवान् ने इन बत्तीस (३२) अनधिकृत पुद्गलों का अवसारण उचित भी बताया है; जैसे-कटे हाथ, कटे पैर वाला, कटे हाथ-पैर वाला, कटे कान, कटे नाक, कटे कान-नाक वाला, कटी अङ्गुलियों एवं कटे पंजे वाला, कटी हुई बड़ी स्नायुओं वाला, सर्प-फण की तरह हाथ की आकृति वाला, लँगड़ा, बौना, गण्डरोगी, शरीर में चित्रित चिह्नों वाला, कोड़े या चाबुक के आघात से चिह्नित शरीर के अङ्गों वाला, शरीर के अङ्गों पर या राजाज्ञा से अपराधपुस्तिका में लिखित नाम वाला, श्लीपद (फीलपाँव) रोग वाला, पापकर्मों से उद्भूत यक्ष्मा आदि रोगों से युक्त, एक आँख से काणा, टूटे हाथ का, टूटे पैर का, विकलाङ्ग, पैरों से चलने में दुर्बल, अन्धा, गूँगा, बहरा या फिर एक साथ तीनो (अन्धा,गूँगा और बहरा) दुगुर्णों से युक्त भी हो या गूँगा-बहरा हो या अन्धा-बहरा हो। इनका अवसारण बुद्धानुमोदित है।। २३-२७।।

भगवान् ने पीछे सात 'अधर्मकर्म' गिनाये हैं; जैसे-किसी को दोष न हो, किसी को कोई आपत्ति (दोष) प्रतीकार के लिये अवशिष्ट न हो, कोई पापमय विचार त्याग के लिये अवशिष्ट न हो आदि ये सात अधर्म कर्म जिस भिक्षु में न हों उसे यदि सङ्घ उत्क्षेपण दण्ड दे तो यह उसका अधर्मकर्म है।। २८-२९।।

इसी तरह (उक्त के विपरीत) सात धर्मों की भी गणना की गयी है। किसी भिक्षु में ये सातों दोष हों तो उसका उत्क्षेपण कर्म 'धर्मकर्म' माना गया है।

इसके बाद आयुष्मान् उपालि द्वारा पूछे गये इन अधर्म एव धर्मकर्मों के विषय में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर है।। ३०।।

सति अमूळ्हपापिका तज्जनीनियस्सेन च।
पब्बाजनीय पटिसारो उक्खेपपरिवास च॥ ३१॥
मूळा मानत्तअब्भाना तथेव उपसम्पदा।
अञ्ञं करेय्य अञ्ञस्स सोळसेते अधम्मिका॥ ३२॥
तं तं करेय्य तं तस्स सोळसेते सुधम्मिका।
पच्चारोपेय्य अञ्ञञ्ञं सोळसेते अधम्मिका॥ ३३॥
द्वे द्वे तम्मूलकं तस्स ते पि सोळस धम्मिका।
एकेकमूलकं चक्कं अधम्मं ति जिनोब्रवि॥ ३४॥
अकासि तज्जनीयं कम्मं सङ्घो भण्डनकारको।
अधम्मेन वग्गकम्मं अञ्ञं आवासं गच्छि सो॥ ३५॥
[N.367] तत्थाधम्मेन समग्गा तस्स तज्जनीयं करुं।
अञ्ञत्थ वग्गाधम्मेन तस्स तज्जनीयं करुं॥ ३६॥
पतिरूपेन वग्गा पि समग्गा पि तथा करुं।
अधम्मेन समग्गा च धम्मेन वग्गमेव च॥ ३७॥
पतिरूपकेन वग्गा च समग्गा च इमे पदा।
एकेकमूलकं कत्वा चक्कं बन्धे विचक्खणो॥ ३८॥
[B.479] बाला ब्यत्तस्स नियस्सं पब्बाजे कुलदूसकं।
पटिसारणीयं कम्मं करे अक्कोसकस्स च॥ ३९॥
[R.336] अदस्सनाप्पटिकम्मे यो च दिट्ठिं न निस्सज्जे।
तेसं उक्खेपनीयकम्मं सत्थवाहेन भासितं॥ ४०॥
उपरि नयकम्मानं पञ्ञो तज्जनीयं नये।
तेसं येव अनुलोमं सम्मा वत्तति याचिते॥ ४१॥
पस्सद्धि तेसं कम्मानं हेट्ठा कम्मनयेन च।
तस्मिं तस्मिं तु कम्मेसु तत्रट्ठो च विवदति॥ ४२॥

इनमें उपालि के प्रश्नों का अमूढविनय आदि रूप में १६ विभाजन करके धार्मिक एवं अधार्मिक भेद से उत्तर दिया गया है।

फिर १६ धर्मकर्मों का एकमूलक एव द्विमूलक चक्र बना कर भी उत्तर दिया गया है।। ३१–३४।।

एतदनन्तर सङ्घ किसी कलहप्रिय भिक्षु का कैसे तर्जनीय कर्म करे?—इसका धर्मकर्म एवं अधर्मकर्म भेद से विभाजन किया है।। ३५।।

यहाँ बुद्धिमान् (विचक्खण) शास्ता बुद्ध ने इस धर्मकर्म के अधर्म से वर्ग द्वारा आदि छह विभाजन करके तर्जनीय कर्म, न्यस्य कर्म, प्रतिसारणीय कर्म एव उत्क्षेपणीय कर्म की विधि विस्तारपूर्वक बतायी।। ३६–४०।।

अकतं दुक्कटं चेव पुन-कातब्बकं ति च।
कम्मे पस्सद्धिया चा पि ते भिक्खू धम्मवादिनो॥ ४३॥
विपत्तिब्याधिते दिस्वा कम्मप्पत्ते महामुनि।
पटिप्पस्सद्धिमक्खासि सल्लकत्तो व ओसधं ति॥ ४४॥

इमम्हि खन्धके वत्थूनि छत्तिंसा ति॥
नवमो चम्पेय्यक्खन्धको निट्ठितो॥

अन्त में सङ्घ के उपर्युक्त षड्विध निर्णय पर सदाचारी भिक्षुओं के कथन पर एक–एक कर निर्णय दिया कि किस भिक्षु का कथन धर्म (न्याय) का समर्थन करता है, किसका नहीं। अन्त में विवाद–शान्ति का उचित (सर्वसम्मत) समाधान बताया।। ४१–४४।।

इस स्कन्ध में छत्तीस विषयों पर चर्चा हुई है।।
नवम चाम्पेय स्कन्धक समाप्त।।

१०. कोसम्बकक्खन्धकं

१. कोसम्बकविवादकथा

[N.368, B.480, R.337] १. तेन समयेन बुद्धो भगवा कोसम्बियं विहरति घोसितारामे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो भिक्खु आपत्तिं आपन्नो होति। सो तस्सा आपत्तिया आपत्तिदिट्ठि होति; अञ्ञे भिक्खू तस्सा आपत्तिया अनापत्तिदिट्ठिनो होन्ति। सो अपरेन समयेन तस्सा आपत्तिया अनापत्तिदिट्ठि होति; अञ्ञे भिक्खू तस्सा आपत्तिया आपत्तिदिट्ठिनो होन्ति। अथ खो ते भिक्खू तं भिक्खुं एतदवोचुं—"आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो, पस्ससेतं आपत्तिं" ति? "नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति यमहं पस्सेय्यं" ति। अथ खो ते भिक्खू सामग्गिं लभित्वा तं भिक्खुं आपत्तिया अदस्सने उक्खिपिंसु। सो च भिक्खु बहुस्सुतो होति आगतागमो धम्मधरो विनयधरो मातिकाधरो पण्डितो ब्यत्तो मेधावी लज्जी कुक्कुच्चको सिक्खाकामो।

अथ खो सो भिक्खु सन्दिट्ठे सम्भत्ते भिक्खू उपसङ्कमित्वा एतदवोच—"अनापत्ति एसा, आवुसो, नेसा आपत्ति। अनापन्नोम्हि, नम्हि आपन्नो। अनुक्खित्तोम्हि, नम्हि उक्खित्तो। अधम्मिकेनम्हि कम्मेन उक्खित्तो कुप्पेन अट्ठानारहेन। होथ मे आयस्मन्तो धम्मतो विनयतो पक्खा" ति। अलभि खो सो भिक्खु सन्दिट्ठे सम्भत्ते भिक्खू पक्खे। जानपदानं पि सन्दिट्ठानं सम्भत्तानं भिक्खूनं सन्तिके दूतं पाहेसि—"अनापत्ति एसा, आवुसो, नेसा आपत्ति। अनापन्नोम्हि, नम्हि आपन्नो। अनुक्खित्तोम्हि, नम्हि उक्खित्तो। अधम्मिकेनम्हि कम्मेन उक्खित्तो कुप्पेन अट्ठानारहेन। होन्तु मे आयस्मन्तो धम्मतो विनयतो पक्खा" ति। अलभि

---

१०. कौशाम्बकस्कन्धक

१. कौशाम्बकभिक्षुविवादकथा

१. उस समय भगवान् बुद्ध कौशाम्बी के घोषिताराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कोई भिक्षु (शौचालय के) पात्र मे जल छोड़ने सम्बन्धी दोष से सम्पृक्त हो गया। प्रारम्भ में वह अपने उस दोष को दोष समझ रहा था, परन्तु दूसरे कुछ भिक्षु उस कर्म को दोष नहीं मानते थे। आगे चलकर, बहुत विचार के बाद, उसने उस दोष को दोष के रूप में मानना छोड़ दिया, परन्तु दूसरे भिक्षु तब उसके उसी कर्म को दोष मानने लगे।

तब वे भिक्षु उस भिक्षु से यों बोले—"आयुष्मन्! तुम अमुक दोष से ग्रस्त हो, क्या तुम अपने उस दोष को दोष के रूप मे नहीं समझ रहे हो?' (उसने उत्तर दिया—) "आयुष्मानो! मुझसे कोई दोष हुआ हो तो उसे स्वीकार करूँ! मुझ से तो कोई दोष हुआ ही नहीं कि जिसे मैं स्वीकार करूँ।' तब उन आपत्ति मानने वाले भिक्षुओं ने सामग्री (एकता) कर उस भिक्षु को 'आपत्ति स्वीकार न करने' के अपराध में सङ्घ से उत्क्षिप्त कर दिया। वह भिक्षु भी बहुश्रुत, आगमज्ञ, (सुत्तपिटक का ज्ञाता) अभिधर्म की मातृकाओं का विशेषज्ञ, पण्डित एवं शास्त्र में निपुण मेधावी, लज्जी (बुद्धवचनो के अनुसार जीवनयापन करने वाला) एव अच्छी बातों को जानने में रुचि रखने वाला था।

अतः वह भिक्षु, स्थिति को समझ, सम्भ्रान्त एवं दक्ष भिक्षुओं के पास जाकर यह बोला—"भन्ते! मुझ पर लगाया आरोप आरोप ही है, कोई दोष नहीं है। मैं किसी आपत्ति से दूषित नहीं हूँ। मुझे अनुचित विधि द्वारा सङ्घ ने उत्क्षिप्त कर दिया है जो कि अनुचित एव असंगत है। आप मेरा

खो सो भिक्खु जानपदे पि सन्दिट्ठे सम्भत्ते भिक्खू पक्खे। अथ खो ते उक्खित्तानुवत्तका भिक्खू येन उक्खेपका भिक्खू तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा उक्खेपके भिक्खू एतदवोचुं—"अनापत्ति एसा, आवुसो, नेसा आपत्ति। अनापन्नो एसो भिक्खु, नेसो [B.481, R.338] भिक्खु आपन्नो। अनुक्खित्तो एसो भिक्खु, नेसो भिक्खु उक्खित्तो। अधम्मिकेन कम्मेन उक्खित्तो कुप्पेन अट्ठानारहेना" ति। एवं वुत्ते उक्खेपका भिक्खू उक्खित्तानुत्तके भिक्खू एतदवोचुं—"आपत्ति एसा, आवुसो नेसा अनापत्ति। आपन्नो एसो भिक्खु, नेसो भिक्खु अनापन्नो। उक्खित्तो एसो भिक्खु, नेसो भिक्खु अनुक्खित्तो। धम्मिकेन कम्मेन उक्खित्तो अकुप्पेन ठानारहेन। मा खो तुम्हे आयस्मन्तो एतं उक्खित्तकं भिक्खुं अनुवत्तित्थ अनुपरिवारेथा" ति। एवं पि खो ते उक्खित्तानुवत्तका भिक्खू उक्खेपकेहि भिक्खूहि वुच्चमाना तथेव तं उक्खित्तकं भिक्खुं अनुवत्तिंसु अनुपरिवारेसुं।

२. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"इध, भन्ते, अञ्ञतरो भिक्खु आपत्तिं आपन्नो अहोसि। सो तस्सा आपत्तिया आपत्तिदिट्ठि अहोसि, अञ्ञे भिक्खू तस्सा आपत्तिया अनापत्तिदिट्ठिनो अहेसुं। सो अपरेन [N.369] समयेन तस्सा आपत्तिया अनापत्तिदिट्ठि अहोसि, अञ्ञे भिक्खू तस्सा आपत्तिया आपत्तिदिट्ठिनो अहेसुं। अथ खो ते, भन्ते, भिक्खू तं भिक्खुं एतदवोचुं—'आपत्तिं त्वं, आवुसो, आपन्नो, पस्ససेतं आपत्तिं' ति? "नत्थि मे, आवुसो, आपत्ति यमहं पस्सेय्यं" ति। अथ खो ते, भन्ते, भिक्खू सामग्गिं लभित्वा तं भिक्खुं आपत्तिया अदस्सने उक्खिपिंसु। सो च, भन्ते, भिक्खु बहुस्सुतो आगतागमो धम्मधरो विनयधरो मातिकाधरो पण्डितो ब्यत्तो मेधावी लज्जी कुक्कुच्चको सिक्खाकामो। अथ खो सो, भन्ते, भिक्खु सन्दिट्ठे सम्भत्ते भिक्खू उपसङ्कमित्वा एतदवोच—'अनापत्ति एसा, आवुसो; नेसा आपत्ति। अनापन्नोम्हि, नम्हि आपन्नो। अनुक्खित्तोम्हि, नम्हि उक्खित्तो। अधम्मिकेनम्हि कम्मेन उक्खित्तो कुप्पेन

धर्म्मसम्मत निर्णय करें और मेरे पक्षधर बनें।" तब बहुत से सम्भ्रान्त भिक्षु उस भिक्षु के पक्षधर बन गये।

फिर जनपदवासी भिक्षुओं को उस भिक्षु ने दूतों के माध्यम से अपना पक्ष समझाया तथा कहा....पूर्ववत् ..। अन्त में वे जनपदवासी भिक्षु भी उस भिक्षु के पक्षसमर्थक हो गये।

एतदनन्तर, वे उत्क्षिप्तक के पक्षधर (अनुवर्तक) भिक्षु उत्क्षेपक भिक्षुओं के पास गये। जाकर उन्होंने उन उत्क्षेपको से कहा –"आयुष्मानो! इस भिक्षु पर आप लोगों द्वारा आरोपित दोष इसमे नहीं है, अतः इस भिक्षु को आप लोग आपत्तिरहित ही माने। यह विनयानुसार उत्क्षिप्तक नहीं हो सकता। इसे अनुत्क्षिप्तक ही माने। आप लोगों ने इसको अधार्मिक एवं अयोग्य तथा असङ्गत विधि से उत्क्षेपण दण्ड दिया है।" यह सुनकर उन उत्क्षेपक भिक्षुओं ने उत्तर दिया—"नहीं, आयुष्मानो! यह उत्क्षिप्त ही माना जायगा; क्योंकि यह दोषग्रस्त है, निर्दोष नहीं। हमने इसको धार्मिक, उचित एवं सङ्गत विधि से उत्क्षेपण दण्ड दिया है। अतः आप लोग इसके पक्ष का समर्थन न करें।" तो भी, वे उत्क्षिप्त का साथ देने वाले भिक्षु उसी के पक्षधर बने रहे, उसी का अनुगमन करते रहे, उसी के साथ रहते रहे।

२. तब किसी भिक्षु ने भगवान् के पास जाकर उन्हे प्रणाम कर एक ओर बैठ कर यों

अट्ठानारहेन। होथ मे आयस्मन्तो धम्मतो विनयतो पक्खा' ति। अलभि खो सो, भन्ते, भिक्खु सन्दिट्ठे सम्भत्ते भिक्खू पक्खे। जानपदानं पि सन्दिट्ठानं सम्भत्तानं भिक्खूनं सन्तिके दूतं पाहेसि—'अनापत्ति एसा, आवुसो; नेसा आपत्ति। अनापन्नोम्हि, नम्हि आपन्नो। अनुक्खित्तोम्हि, नम्हि उक्खित्तो। अधम्मिकेनम्हि कम्मेन उक्खित्तो कुप्पेन अट्ठानारहेन। होन्तु मे आयस्मन्तो धम्मतो विनयतो पक्खा' ति। अलभि खो सो, भन्ते, भिक्खु जानपदे [B.482] पि सन्दिट्ठे सम्भत्ते भिक्खू पक्खे। अथ खो ते, भन्ते, उक्खित्तानुवत्तका भिक्खू येन उक्खेपका भिक्खू तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा उक्खेपके भिक्खू एतदवोचुं—'अनापत्ति एसा, आवुसो, नेसा आपत्ति। अनापन्नो एसो भिक्खु, नेसो भिक्खु आपन्नो। अनुक्खित्तो एसो भिक्खु, नेसो भिक्खु उक्खित्तो। अधम्मिकेन कम्मेन उक्खित्तो कुप्पेन अट्ठानारहेना' ति। एवं वुत्ते ते, भन्ते, उक्खेपका भिक्खू उक्खित्तानुवत्तके भिक्खू एतदवोचुं—'आपत्ति एसा, आवुसो; नेसा अनापत्ति। आपन्नो एसो भिक्खु, नेसो भिक्खु अनापन्नो। उक्खित्तो एसो भिक्खु, नेसो भिक्खु अनुक्खित्तो। धम्मिकेन कम्मेन उक्खित्तो अकुप्पेन ठानारहेन। मा खो तुम्हे आयस्मन्तो एतं उक्खित्तकं भिक्खुं अनुवत्तित्थ अनुपरिवारेथा' ति। एवं पि खो ते, भन्ते, उक्खित्तानुवत्तका भिक्खू उक्खेपकेहि भिक्खूहि वुच्चमाना तथेव तं उक्खित्तकं भिक्खुं अनुवत्तन्ति अनुपरिवारेन्ती'' ति।

३. अथ खो भगवा—'भिन्नो भिक्खुसङ्घो, भिन्नो भिक्खुसङ्घो' ति उट्ठायासना येन उक्खेपका भिक्खू तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि, निसज्ज खो भगवा उक्खेपके भिक्खू एतदवोच—''मा खो तुम्हे, भिक्खवे, 'पटिभाति नो, पटिभाति नो' ति यस्मिं वा तस्मिं वा भिक्खुं उक्खिपितब्बं मञ्ञित्थ।

''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु आपत्तिं आपन्नो होति। सो तस्सा आपत्तिया अनापत्तिदिट्ठि होति, अञ्ञे भिक्खू तस्सा आपत्तिया आपत्तिदिट्ठिनो होन्ति। ते चे, भिखवे, भिक्खू तं भिक्खुं एवं जानन्ति—'अयं खो आयस्मा बहुस्सुतो आगतागमो धम्मधरो विनयधरो [N.370] मातिकाधरो पण्डितो ब्यत्तो मेधावी लज्जी कुक्कुच्चको सिक्खाकामो। सचे मयं [R.339] इमं भिक्खुं आपत्तिया अदस्सने उक्खिपिस्साम, न मयं इमिना भिक्खुना सद्धिं उपोसथं करिस्साम, विना इमिना भिक्खुना उपोसथं करिस्साम, भविस्सति सङ्घस्स ततो निदानं

निवेदन किया—''भन्ते! यहाँ कोई भिक्षु.....पूर्ववत् ....(ऊपर का समग्र पाठ दोहरा लें।) उत्क्षेपकों द्वारा इतना कहने पर भी वे उत्क्षिप्तक के अनुवर्तक भिक्षु उसका ही अनुवर्तन कर रहे हैं, उसके साथ रह रहे हैं।

३. तब भगवान्—''यह तो सङ्घ में मतभेद हो गया, सङ्घ में मतभेद हो गया'' (—यह सोचकर) आसन से उठकर उत्क्षेपक भिक्षुओं के पास पहुँचे। पहुँच कर बिछे आसन पर विराजे। विराजकर, भगवान् ने उन उत्क्षेपक भिक्षुओं से यों कहा—''भिक्षुओ! तुम लोग केवल यह सोच कर ही कि हम सब जानते हैं, जिस किसी भिक्षु का, उसके विषय में विना गम्भीरता से विचार किये ही, जिस किसी बात पर उत्क्षेपण करने की बात ध्यान में न लाओ।

''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु किसी दोष से ग्रस्त होता है, परन्तु वह उस दोष को दोष के रूप में नहीं देखता। परन्तु दूसरे भिक्षुओं को उसका वह दोष समझ में आ रहा है। भिक्षुओ! वे भिक्षु उस

भण्डनं कलहो विग्गहो विवादो सङ्घभेदो सङ्घराजि सङ्घववत्थानं सङ्घनानाकरणं' ति, भेदगरुकेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि न सो भिक्खु आपत्तिया अदस्सने उक्खिपितब्बो।

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु आपत्तिं आपन्नो होति। सो तस्सा आपत्तिया अनापत्तिदिट्ठि होति, अञ्ञे भिक्खू तस्सा आपत्तिया आपत्तिदिट्ठिनो होन्ति। ते चे, [B.483] भिक्खवे, भिक्खू तं भिक्खुं एवं जानन्ति—'अयं खो आयस्मा बहुस्सुतो आगतागमो धम्मधरो विनयधरो मातिकाधरो पण्डितो ब्यत्तो मेधावी लज्जी कुक्कुच्चको सिक्खाकामो। सचे मयं इमं भिक्खुं आपत्तिया अदस्सने उक्खिपिस्साम, न मयं इमिना भिक्खुना सद्धिं पवारेस्साम, विना इमिना भिक्खुना पवारेस्साम। न मयं इमिना भिक्खुना सद्धिं सङ्घकम्मं करिस्साम, विना इमिना भिक्खुना सङ्घकम्मं करिस्साम। न मयं इमिना भिक्खुना सद्धिं आसने निसीदिस्साम, विना इमिना भिक्खुना आसने निसीदिस्साम। न मयं इमिना भिक्खुना सद्धिं यागुपाने निसीदिस्साम, विना इमिना भिक्खुना यागुपाने निसीदिस्साम। न मयं इमिना भिक्खुना सद्धिं भत्तग्गे निसीदिस्साम, विना इमिना भिक्खुना भत्तग्गे निसीदिस्साम। न मयं इमिना भिक्खुना सद्धिं एकच्छन्ने वसिस्साम, विना इमिना भिक्खुना एकच्छन्ने वसिस्साम। न मयं इमिना भिक्खुना सद्धिं यथावुड्ढं अभिवादनं पच्चुट्ठानं अञ्जलिकम्मं सामीचिकम्मं करिस्साम, विना इमिना भिक्खुना यथावुड्ढं अभिवादनं पच्चुट्ठानं अञ्जलिकम्मं सामीचिकम्मं करिस्साम। भविस्सति सङ्घस्स ततोनिदानं भण्डनं कलहो विग्गहो विवादो सङ्घभेदो सङ्घराजि सङ्घववत्थानं सङ्घनानाकरणं ति, भेदगरुकेहि, भिक्खवे, भिक्खूहि न सो भिक्खु आपत्तिया अदस्सने उक्खिपितब्बो" ति।

४. अथ खो भगवा उक्खेपकानं भिक्खूनं एतमत्थं भासित्वा उट्ठायासना येन उक्खित्तानुवत्तका भिक्खू तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि, निसज्ज खो

भिक्षु के विषय में यह भी जानते हों—यह आयुष्मान् भिक्षु बहुश्रुत है, आगम का ज्ञाता है.....पूर्ववत्.. आगे भी सीखना चाहता है। यदि हम इस भिक्षु को अपना दोषदर्शन स्वीकार न करने पर सङ्घ से उत्क्षिप्त कर देंगे तो 'इस भिक्षु के साथ (बैठकर) हम उपोसथ न करेंगे', 'इस भिक्षु के विना उपोसथ करेंगे'— ऐसे विचार पैदा होंगे। इन विचारों से सङ्घ में झगड़ा, कलह, विवाद, विग्रह (वैर), सङ्घ में फूट, सङ्घ में पृथक्ता, सङ्घ का विखराव होगा। तो इन भेद पैदा करने वाले महान् कारणों को ध्यान में रखते हुए, किसी भी भिक्षु को जिस किसी सामान्य कारण को लेकर सङ्घ से उत्क्षिप्त नहीं करना चाहिये।

"यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु को दोषग्रस्त होने पर भी उसे वह दोष न दिखायी दे और दूसरे भिक्षु उसका वह दोष देखकर भी, उसके विषय में यह जानते हुए कि यह आयुष्मान् बहुश्रुत....पूर्ववत्.....इस भिक्षु के साथ सङ्घ का कोई सामूहिक कर्म नहीं करेंगे, इसके विना ही सङ्घ कर्म करेंगे; इसके साथ एक आसन पर नहीं बैठेंगे....इसके साथ बैठकर यागुपान नहीं करेंगे....एक आसन पर बैठकर भोजन नहीं करेंगे....इसके साथ एक ही छत के नीचे नहीं सोयेंगे.....इसके साथ इसकी अवस्था के अनुरूप अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोड़ना, कुशलक्षेम-प्रश्न नहीं करेंगे। तो भिक्षुओ! इसी व्यवहार के कारण सङ्घ में झगड़ा, कलह, विवाद....बढ़ जायँगे। अतः इस बात की महत्ता समझते हुए किसी भिक्षु का साधारण बात पर सङ्घ से उत्क्षेपण नहीं करना चाहिये"।

४. तब भगवान् उन उत्क्षेपक भिक्षुओं को उनके हित की बात समझा कर, जहाँ उत्क्षिप्त के

भगवा उक्खित्तानुवत्तके भिक्खू एतदवोच—"मा खो तुम्हे, भिक्खवे, आपत्तिं आपज्जित्वा 'नाम्ह आपन्ना, नाम्ह आपन्ना' ति आपत्तिं न पटिकातब्बं मञ्ञित्थ।

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु आपत्तिं आपन्नो होति। सो तस्सा आपत्तिया अनापत्तिदिट्ठि होति, अञ्ञे भिक्खू तस्सा आपत्तिया आपत्तिदिट्ठिनो होन्ति। सो चे, भिक्खवे, भिक्खु ते भिक्खू एवं जानाति—'इमे खो आयस्मन्तो बहुस्सुता आगतागमा धम्मधरा विनयधरा मातिकाधरा पण्डिता ब्यत्ता मेधाविनो लज्जिनो कुक्कुच्चका सिक्खाकामा, नालं ममं वा कारणा अञ्ञेसं वा कारणा छन्दा दोसा मोहा भया अगतिं गन्तुं। सचे मं इमे भिक्खू [B.484] आपत्तिया अदस्सने उक्खिपिस्सन्ति, न मया सद्धिं उपोसथं करिस्सन्ति, विना [R.340, N.371] मया उपोसथं करिस्सन्ति भविस्सति सङ्घस्स ततोनिदानं भण्डनं कलहो विग्गहो विवादो सङ्घभेदो सङ्घराजि सङ्घववत्थानं सङ्घनानाकरणं' ति, भेदगरुकेन, भिक्खवे, भिक्खुना परेसं पि सद्धाय सा आपत्ति देसेतब्बा।

"इध पन, भिक्खवे, भिक्खु आपत्तिं आपन्नो होति। सो तस्सा आपत्तिया अनापत्तिदिट्ठि होति, अञ्ञे भिक्खू तस्सा आपत्तिया आपत्तिदिट्ठिनो होन्ति। सो चे, भिक्खवे, भिक्खु ते भिक्खू एवं जानाति—'इमे खो आयस्मन्तो बहुस्सुता आगतागमा धम्मधरा विनयधरा मातिकाधरा पण्डिता ब्यत्ता मेधाविनो लज्जिनो कुक्कुच्चका सिक्खाकामा, नालं ममं वा कारणा अञ्ञेसं वा कारणा छन्दा दोसा मोहा भया अगतिं गन्तुं। सचे मं इमे भिक्खू आपत्तिया अदस्सने उक्खिपिस्सन्ति, न मया सद्धिं पवारेस्सन्ति, विना मया पवारेस्सन्ति। न मया सद्धिं सङ्घकम्मं करिस्सन्ति, विना मया सङ्घकम्मं करिस्सन्ति। न मया सद्धिं आसने निसीदिस्सन्ति, विना मया आसने निसीदिस्सन्ति। न मया सद्धिं यागुपाने निसीदिस्सन्ति, विना मया यागुपाने निसीदिस्सन्ति। न मया सद्धिं भत्तग्गे निसीदिस्सन्ति, विना मया भत्तग्गे निसीदिस्सन्ति। न मया सद्धिं एकच्छन्ने वसिस्सन्ति, विना मया एकच्छन्ने वसिस्सन्ति। न मया सद्धिं यथावुड्ढं अभिवादनं पच्चुट्ठानं अञ्जलिकम्मं सामीचिकम्मं करिस्सन्ति, विना

पक्षधर भिक्षु थे, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर बिछे आसन पर विराजे। विराजकर भगवान् ने उन उत्क्षिप्तानुवर्तकों को भी यों समझाया—"भिक्षुओ! तुम लोगों को, दोषदर्शन के बाद, 'हम उसका प्रतीकार नहीं करेंगे'—ऐसा आग्रह नहीं करना चाहिये।

"भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु कोई दोष करने के बाद भी अपने में उस दोष का भान नहीं कर पाता। जबकि दूसरे उसके दोष को बहुत अच्छी तरह देख रहे हों। उस समय वह भिक्षु यदि उन भिक्षुओ के विषय में यह जान रहा हो कि "ये भिक्षु बहुश्रुत . सीखने के इच्छुक हैं, ये मेरे या किसी अन्य के कारण स्वेच्छाचार, द्वेष, मोह, भय के मार्ग पर या किसी अन्य कुपथ पर नहीं जा सकते। ये भिक्षु मुझमें कोई दोष न देखकर भी मेरा सङ्घ से उत्क्षेपण कर देगे तो फिर ये मेरे साथ बैठकर उपोसथ भी नहीं करेंगे, अकेले ही करेंगे। इससे सङ्घ मे झगड़ा, कलह, विवाद, फूट, बीच मे दरार (रेखा), अव्यवस्था या कई भागों में विखराव हो सकता है।" इस बात की महत्ता को समझते हुए, भिक्षुओ! उस भिक्षु को, अन्य भिक्षुओं के प्रति श्रद्धा रखते हुए, अपना दोष स्वीकार कर लेना चाहिये।

"यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु किसी प्रकार की आपत्ति से ग्रस्त हो कर भी उसे समझ न पाने के कारण उसका अपने में होना स्वीकार नहीं करता, दूसरे भिक्षु ..पूर्ववत् ...(पैरा स. ३ के दूसरे भाग

मया यथावुड्ढं अभिवादनं पच्चुट्ठानं अञ्जलिकम्मं सामीचिकम्मं करिस्सन्ति, भविस्सति सङ्घस्स ततोनिदानं भण्डनं कलहो विग्गहो विवादो सङ्घभेदो सङ्घराजि सङ्घववत्थानं सङ्घनानाकरणं' ति, भेदगरुकेन, भिक्खवे, भिक्खुना परेसं पि सद्धाय सा आपत्ति देसेतब्बा'' ति। अथ खो भगवा उक्खित्तानुवत्तकानं भिक्खूनं एतमत्थं भासित्वा उट्ठायासना पक्कामि।

५. तेन खो पन समयेन उक्खित्तानुवत्तका भिक्खू तत्थेव अन्तोसीमाय उपोसथं करोन्ति, सङ्घकम्मं करोन्ति। उक्खेपका पन भिक्खू निस्सीमं गन्त्वा उपोसथं करोन्ति, सङ्घकम्मं करोन्ति। अथ खो अञ्ञतरो उक्खेपको भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो [B.485] भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''ते, भन्ते, उक्खित्तानुवत्तका भिक्खू तत्थेव अन्तोसीमाय उपोसथं करोन्ति, सङ्घकम्मं करोन्ति। मयं पन उक्खेपका भिक्खू निस्सीमं गन्त्वा उपोसथं करोम, सङ्घकम्मं करोमा'' ति।

''ते चे, भिक्खु, उक्खित्तानुवत्तका भिक्खू तत्थेव अन्तोसीमाय उपोसथं करिस्सन्ति, सङ्घकम्मं करिस्सन्ति, यथा मया ञत्ति च अनुस्सावना च पञ्ञत्ता, तेसं तानि कम्मानि धम्मिकानि कम्मानि भविस्सन्ति अकुप्पानि ठानारहानि। तुम्हे चे, भिक्खु, उक्खेपका भिक्खू तत्थेव अन्तोसीमाय उपोसथं करिस्सथ, सङ्घकम्मं करिस्सथ, यथा मया [N.372] ञत्ति च अनुस्सावना च पञ्ञत्ता, तुम्हाकं पि तानि कम्मानि धम्मिकानि कम्मानि भविस्सन्ति अकुप्पानि ठानारहानि। तं किस्स हेतु? नानासंवासका एते भिक्खू तुम्हेहि, तुम्हे च तेहि नानासंवासका।

''द्वेमा, भिक्खु, नानासंवासकभूमियो—अत्तना वा अत्तानं नानासंवासकं करोति, समग्गो वा नं सङ्घो उक्खिपति अदस्सने वा अप्पटिकम्मे वा अप्पटिनिस्सग्गे वा। इमा खो,

---

की तरह)। उस भिक्षु को, अन्य भिक्षुओं पर श्रद्धा रखते हुए, अपने मे वह दोष स्वीकार कर लेना चाहिये।''

तब भगवान्, उन उत्क्षिप्त के पक्षधर भिक्षुओं को यों समझाते हुए आसन से उठकर चले गये।

५. इसके बाद, वे उत्क्षिप्त के पक्षधर भिक्षु वहीं (अपने आवास की) सीमा में ही उपोसथ करते थे, सङ्घकर्म करते थे। और उधर उत्क्षेपकों के अनुवर्तक भिक्षु उस सीमा के बाहर जाकर उपोसथ एवं सङ्घकर्म करते थे। तब किसी उत्क्षेपक भिक्षु ने जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचकर, उन्हें प्रणाम कर, एक तरफ बैठकर यों निवेदन किया—''भन्ते! वे उत्क्षिप्तानुवर्तक भिक्षु अपने आवास की सीमा में यों ही... . हम.. .सीमा के बाहर उपोसथ एवं सङ्घकर्म करते हैं।'' (भगवान् ने निर्णय दिया—) ''यदि वे उत्क्षिप्तक के पक्षधर भिक्षु उसी सीमा के अन्दर, मेरे द्वारा बतायी गयी ज्ञप्ति तथा अनुश्रावण के अनुसार, उपोसथ एव सङ्घकर्म करेगे तो उनके वे कर्म धर्मानुकल उचित एवं सङ्गत ही होंगे। इसी तरह तुम भी यदि उसी सीमा में रहते हुए भी मेरे द्वारा उपदिष्ट ज्ञप्ति एवं अनुश्रावण के अनुसार उपोसथ एवं सङ्घकर्म करोगे तो तुम्हारे भी ये कर्म धर्मानुकूल उचित एव सङ्गत ही कहलायेंगे। वह क्यों? वह इसलिये कि वे उत्क्षिप्तानुवर्तक भिक्षु तुम लोगों की दृष्टि में दूसरे आवास के हैं और उन लोगों के लिये तुम दूसरे (भिन्न) आवास के हो।

''भिक्षु! भिन्न आवास होने के ये दो कारण कहे जा सकते हैं— (१) कोई भिक्षु स्वयं ही अपने

भिक्खु, द्वे नानासंवासकभूमियो। द्वेमा, भिक्खु, समानसंवासकभूमियो—अत्तना वा अत्तानं समानसंवासं करोति, समग्गो वा नं सङ्घो उक्खित्तं ओसारेति अदस्सने वा अप्पटिकम्मे वा अप्पटिनिस्सग्गे वा। इमा खो, भिक्खु, द्वे समानसंवासकभूमियो'' ति।

[R.341] ६. तेन खो पन समयेन भिक्खू भत्तग्गे अन्तरघरे भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं अननुलोमिकं कायकम्मं वचीकम्मं उपदंसेन्ति, हत्थपरामासं करोन्ति। मनुस्सा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम समणा सक्यपुत्तिया भत्तग्गे अन्तरघरे भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं अननुलोमिकं कायकम्मं वचीकम्मं उपदंसेस्सन्ति, हत्थपरामासं करिस्सन्ती'' ति। अस्सोसुं खो भिक्खू तेसं मनुस्सानं उज्झायन्तानं खिय्यन्तानं विपाचेन्तानं। ये ते भिक्खू अप्पिच्छा ते उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति—''कथं हि नाम भिक्खू भत्तग्गे अन्तरघरे भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं अननुलोमिकं कायकम्मं वचीकम्मं उपदंसेस्सन्ति, हत्थपरामासं करिस्सन्ती'' ति। अथ [B.486] खो ते भिक्खू भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं....पे०....सच्चं किर, भिक्खवे, भिक्खू भत्तग्गे अन्तरघरे भण्डनजाता....पे०.....हत्थपरामासं करोन्ती ति? ''सच्चं, भगवा'' ति। विगरहि बुद्धो भगवा.... पे०.....विगरहित्वा धम्मिं कथं कत्वा भिक्खू आमन्तेसि—भिन्ने, भिक्खवे, सङ्घे अधम्मियायमाने असम्मोदिकाय वत्तमानाय 'एत्तावता न अञ्ञमञ्ञं अननुलोमिकं कायकम्मं वचीकम्मं उपदंसेस्साम, हत्थपरामासं करिस्सामा' ति आसने

को भिन्न आवास वाला बनाता है, या फिर (२) एकत्र होकर सङ्घ ही उस भिक्षु को, दोष के न मानने, उसका प्रतीकार न करने या उसका त्याग न करने के कारण, उत्क्षिप्त कर देता है। भिक्षु! भिन्न (नाना) आवास के ये दो कारण कहे जा सकते हैं।

''इसी तरह, समान (एक) आवास के भी दो कारण कहे जा सकते हैं—(१) या तो भिक्षु स्वयं ही उसे अपना आवास स्वीकार कर ले, या फिर (२) सङ्घ एकत्र होकर किसी उत्क्षिप्तक दोष को स्वीकार, प्रतीकार या प्रतिनिसर्ग करने पर उसके दण्ड को क्षमा कर उसका पुनः अवसारण (अपने में मिलाना) कर ले। भिक्षुओ! ये दो समानसंवासक भूमियाँ कहलाती हैं।

कलह करते हुए अनुचित कायिक, वाचिक कर्म का निषेध— ६. उस समय कुछ भिक्षु भण्डारे (समष्टि भोजन) के अवसरों पर गृहस्थों के घर में, परस्पर झगड़ा, कलह, विवाद करते हुए एक दूसरे के प्रति शरीर या वाणी से श्रमणाचरणविरुद्ध कुत्सित आचरण करते रहते थे, हाथो से अनुचित सङ्केत करते थे। उनकी ये कुत्सित क्रियाएँ देख कर सद्गृहस्थ पुरुष उद्विग्न एवं सन्त्रस्त होते थे कि कैसे ये लोग श्रमण शाक्यपुत्र होते हुए भी भोजन के समय.....करते हैं! धीरे-धीरे यह बात स्थविर भिक्षुओं के सामने भी गयी। तब उनमे जो अल्पेच्छ, सदाचारसम्पन्न थे वे भी उद्विग्न एवं सन्त्रस्त होने लगे कि कैसे ये भिक्षु गृहस्थों के घर में झगड़ा....करते हैं! तब उन भिक्षुओं ने भगवान् के पास जाकर यह घटना सुनायी....पूर्ववत्.....। भगवान् ने पूछा—''भिक्षुओ! क्या वस्तुतः कुछ भिक्षु गृहस्थों के घर में भोजन के समय झगड़ा......करते हैं?' हाँ, भगवन्! सचमुच।'' तब भगवान् ने उन भिक्षुओं के इस कार्य की निन्दा की...भिक्षुओं को बुलाकर आदेश दिया—''भिक्षुओ! सङ्घ में फूट पड़ जाने पर, किसी भिक्षु पर सङ्घ द्वारा अन्याय हो जाने पर, उसके कार्य का सम्मोदन न किये जाने पर भी, 'इतनी सी साधारण बात के कारण, परस्पर श्रमणविरुद्ध कायिक एवं वाचिक सङ्केत नहीं करेंगे और न हाथ के सङ्केत परस्पर किसी को धमकी ही देंगे'—यह विचारते हुए प्रज्ञप्त आसन पर शान्त

निसीदितब्बं। भिन्ने, भिक्खवे, सङ्घे धम्मियायमाने सम्मोदिकाय वत्तमानाय आसनन्तरिकाय निसीदितब्बं'' ति।

७. तेन खो पन समयेन भिक्खू सङ्घमज्झे भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति। ते न सक्कोन्ति तं अधिकरणं वूपसमेतुं। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''इध, भन्ते, भिक्खू सङ्घमज्झे भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति। ते न सक्कोन्ति तं अधिकरणं वूपसमेतुं। साधु, भन्ते, भगवा येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया'' ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो भगवा येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि, निसज्ज खो भगवा ते भिक्खू एतदवोच—''अलं, भिक्खवे, मा भण्डनं मा कलहं मा विग्गहं मा विवादं'' ति। एवं वुत्ते अञ्ञतरो [N.373] अधम्मवादी भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''आगमेतु, भन्ते, भगवा धम्मस्सामी; अप्पोस्सुक्को, भन्ते, भगवा दिट्ठधम्मसुखविहारमनुयुत्तो विहरतु। मयमेतेन भण्डनेन कलहेन विग्गहेन विवादेन पञ्ञायिस्सामा'' ति। दुतियं पि खो भगवा ते भिक्खू एतदवोच—''अलं, भिक्खवे, मा भण्डनं मा कलहं मा विग्गहं मा विवादं'' ति। दुतियं पि खो सो अधम्मवादी भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''आगमेतु, भन्ते, भगवा धम्मस्सामी; अप्पोस्सुक्को, भन्ते, [R.342] भगवा दिट्ठधम्मसुखविहारमनुयुत्तो विहरतु। मयमेतेन भण्डनेन कलहेन विग्गहेन [B.487] विवादेन पञ्ञायिस्सामा'' ति।

२. दीघावुवत्थु

८. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''भूतपुब्बं, भिक्खवे, बाराणसियं ब्रह्मदत्तो

भाव से बैठना चाहिये। अधिक से अधिक यही किया जा सकता है कि उपर्युक्त परिस्थिति आने पर, किसी दूसरे आसन पर जाकर, शान्त भाव से बैठ जाना चाहिये।

कलहकारकों का आग्रह– ७. उस समय कुछ भिक्षु सङ्घ के बीच बैठकर झगड़ा, कलह, विवाद करना प्रारम्भ करते थे। और वे अपने ही आग्रह पर स्थिर रहते हुए उस विवाद को शान्त भी नहीं होने देना चाहते थे। तब किसी भिक्षु ने भगवान् के सम्मुख....जाकर उन्हें यह बात सुनायी– ''भन्ते! यहाँ कुछ भिक्षु सङ्घ के बीच ...नहीं होने देना चाहते। अच्छा होगा, भन्ते! आप वहाँ पधार कर उन भिक्षुओं को समझावें।'' भगवान् ने उस भिक्षु के निवेदन को मौन भाव से स्वीकार किया। तब भगवान् ने ....बिछे आसन पर विराजकर उन भिक्षुओं को यह कहा–''बस करो, भिक्षुओ! बस करो। झगड़ा या कलह करना तुम्हारे लिये शोभास्पद नहीं है।'' तब उन अधर्मवादी भिक्षुओं में से किसी एक ने भगवान् से निवेदन किया–''भन्ते! भगवान् तो इस धर्म के स्वामी हैं। आप अपनी धर्मसाधना करते रहें। आपको इस विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं। हम स्वयं इस विवाद को शमन करने में समर्थ हैं।'' दूसरी बार भी भगवान् ने उन भिक्षुओं को विवाद न करने के लिये समझाया। परन्तु दूसरी बार भी उस भिक्षु ने अपना वही पूर्वोक्त निवेदन भगवान् के सम्मुख दोहरा दिया।

२. दीर्घायुजातककथा

८. तब भगवान् ने भिक्षुओ को (एक दृष्टान्त के सहारे से) यों समझाया–''भिक्षुओ! भूतकाल

नाम कासिराजा अहोसि अड्डो महद्धनो महाभोगो महब्बलो महावाहनो महाविजितो परिपुण्णकोसकोट्ठागारो। दीघीति नाम कोसलराजा अहोसि दलिद्दो अप्पधनो अप्पभोगो अप्पबलो अप्पवाहनो अप्पविजितो अपरिपुण्णकोसकोट्ठागारो। अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा दीघीतिं कोसलराजानं अब्भुय्यासि। अस्सोसि खो, भिक्खवे, दीघीति कोसलराजा—'ब्रह्मदत्तो किर कासिराजा चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा ममं अब्भुय्यातो' ति। अथ खो, भिक्खवे, दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो एतदहोसि—"ब्रह्मदत्तो खो कासिराजा अड्डो महद्धनो महाभोगो महब्बलो महावाहनो महाविजितो परिपुण्णकोसकोट्ठागारो, अहं पनम्हि दलिद्दो अप्पधनो अप्पभोगो अप्पबलो अप्पवाहनो अप्पविजितो अपरिपुण्णकोसकोट्ठागारो, नाहं पटिबलो ब्रह्मदत्तेन कासिरञ्ञा एकसङ्घातं पि सहितुं। यन्नूनाहं पटिगच्चेव नगरम्हा निप्पतेय्यं" ति।

अथ खो, भिक्खवे, दीघीति कोसलराजा महेसिं आदाय पटिगच्चेव नगरम्हा निप्पति। अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो बलं च वाहनं च जनपदं च कोसं च कोट्ठागारं च अभिविजिय अज्झावसति। अथ खो, भिक्खवे, दीघीति कोसलराजा सपजापतिको येन बाराणसी तेन पक्कामि। अनुपुब्बेन येन बाराणसी तदवसरि। तत्र सुदं, भिक्खवे, दीघीति कोसलराजा सपजापतिको बाराणसियं अञ्ञतरस्मिं पच्चन्तिमे ओकासे कुम्भकारनिवेसने अञ्ञातकवेसेन परिब्बाजकच्छन्नेन पटिवसति। अथ खो, भिक्खवे, दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो महेसी नचिरस्सेव गब्भिनी अहोसि। तस्सा एवरूपो दोहळो उप्पन्नो होति—'इच्छति सुरियस्स उग्गमनकाले चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नद्धं वम्मिकं सुभूमियं ठितं

में कभी वाराणसी में काशिराज ब्रह्मदत्त नामक राजा राज्य करते थे। जो कि विपुल ऐश्वर्यशाली, अत्यधिक सम्पत्तिशाली, अगणित सेना और वाहनों वाले लम्बे चौड़े राज्य (शासनक्षेत्र) के अधिकारी थे। उनके राजकीय भाण्डागार धन–धान्य एवं सोना–चान्दी से परिपूर्ण थे। उधर दीधिति नामक कोसलनरेश काशिराज की अपेक्षा दरिद्र, अल्प धन, अल्प ऐश्वर्य, अल्प सेना एवं वाहन, अल्प शासनक्षेत्र वाले थे। उनके राजकीय भाण्डागार भी धन–धान्य एवं सुवर्ण–रजत से रिक्त से ही थे।

भिक्षुओ! एक बार काशिराज ब्रह्मदत्त ने अपनी चतुरङ्गिणी सेना सन्नद्ध (तय्यार) कर कोसलराज दीधिति पर आक्रमण (चढ़ाई) कर दी। जब कोसलराज दीधिति ने सुना कि काशिराज ने उसके राज्य पर सदलबल चढ़ाई कर दी है, तब कोसलराज दीधिति ने सोचा—'यह काशिराज तो विपुल ऐश्वर्यशाली....पूर्ववत्....है। जबकि मैं दरिद्र अल्पधन.. हूँ। मैं उसके प्रथम आक्रमण का भी सामना नहीं कर पाऊँगा। तो क्यो न मै उसके आने से पूर्व ही अपने नगर से बाहर निकलकर कहीं दूर चला जाऊँ!'

"तब, भिक्षुओ! कोसलराज दीधिति, काशिराज के आने से पूर्व ही नगर छोड़कर अपनी रानी को साथ लेकर बाहर चला गया। उधर, पीछे से काशिराज ब्रह्मदत्त ने कोसलराज दीधिति की सेना को पराजित करते हुए उसके राज्य, कोष एव कोष्ठागारों (भण्डारों) पर कब्जा कर लिया। तब कोसलराज दीधिति अपनी रानी के साथ क्रमशः वाराणसी पहुँच गया। वाराणसी पहुँचकर वह वाराणसी के किसी क्षेत्र में एक कुम्हार के घर में अपरिचित बनकर परिव्राजक की तरह वास करने लगा। तब, भिक्षुओ! समय पाकर उसकी रानी गर्भवती हो गयी। गर्भ धारण के बाद उसको दोहद

पस्सितुं, खग्गानं च धोवनं पातुं' ति। अथ खो, भिक्खवे, दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो महेसी दीघीतिं कोसलराजानं एतदवोच—"गब्भिनीम्हि, देव। तस्सा मे एवरूपो दोहळो [B.488] उप्पन्नो—'इच्छामि सुरियस्स उग्गमनकाले चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नद्धं वम्मिकं सुभूमियं [N.374] ठितं पस्सितुं, खग्गानं च धोवनं पातुं" ति। "कुतो, देवि, अम्हाकं दुग्गतानं चतुरङ्गिनी सेना सन्नद्धा वम्मिका सुभूमियं ठिता, खग्गानं च धोवनं पातुं" ति। "सचाहं, देव, न लभिस्सामि, मरिस्सामी" ति।

९. तेन खो पन समयेन, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पुरोहितो [R.343] ब्राह्मणो दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो सहायो होति। अथ खो, भिक्खवे, दीघीति कोसलराजा येन ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पुरोहितो ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पुरोहितं ब्राह्मणं एतदवोच—"सखी ते, सम्म, गब्भिनी। तस्स एवरूपो दोहळो उप्पन्नो— 'इच्छति सुरियस्स उग्गमनकाले चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नद्धं वम्मिकं सुभूमियं ठितं पस्सितुं, खग्गानं च धोवनं पातुं' ति। "तेन हि, देव, मयं पि देविं पस्सामा" ति। अथ खो, भिक्खवे, दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो महेसी येन ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पुरोहितो ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पुरोहितो ब्राह्मणो दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो महेसिं दूरतोव आगच्छन्तिं, दिस्वान उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो महेसी तेनञ्जलिं पणामेत्वा तिक्खत्तुं उदानं उदानेसि— "कोसलराजा वत भो कुच्छिगतो, कोसलराजा वत भो कुच्छिगतो ति। अत्तमना, देवि, होहि। लच्छसि सुरियस्स उग्गमनकाले चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नद्धं वम्मिकं सुभूमियं ठितं पस्सितुं, खग्गानं च धोवनं पातुं" ति।

अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पुरोहितो ब्राह्मणो येन ब्रह्मदत्तो कासिराजा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा ब्रह्मदत्तं कासिराजानं एतदवोच—"तथा, देव, निमित्तानि दिस्सन्ति, स्वे सुरियुग्गमनकाले चतुरङ्गिनी सेना सन्नद्धा वम्मिका सुभूमियं तिट्ठतु, खग्गा च धोवियन्तू" ति। अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा मनुस्से आणापेसि—[B.489]

(गर्भिणी की इच्छा) उत्पन्न हुआ कि—"सूर्योदय के समय क्रीड़ाभूमि (परेड ग्राउण्ड) मे खड़े होकर ढाल कवच से युक्त चतुरङ्गिणी सेना को देखूँ और तलवार का धोवन पीऊँ।" तब, भिक्षुओ! उस रानी ने अपने पति कोसलराज को कहा—'देव! मैं गर्भिणी हूँ। मुझे यह दोहद उत्पन्न हुआ है. ..पूर्ववत्....धोवन पीऊँ।' (राजा ने कहा—) देवि! इस अवस्था मे हमारे पास कहाँ चतुरङ्गिणी सेना है? कहाँ सुभूमि? और कहाँ तलवार का धोवन है?' (रानी ने कहा—) 'देव! यदि मेरी यह इच्छा पूर्ण न हुई तो मेरी मृत्यु ही समझिये।'

९. भिक्षुओ! उस समय काशिराज ब्रह्मदत्त एक पुरोहित ब्राह्मण कोसलनरेश दीघिति का पुराना मित्र (सहाय=साथी) था। तब कोसलनरेश अपने उस पुराने मित्र के पास पहुँचे। पहुँचकर उस राजा ने उससे कहा—'सोम्य! तुम्हारी सखी (मेरी पत्नी) अब गर्भिणी है। उसे यह दोहद.....पूर्ववत्.. तलवार का धोवन पीऊँ।' पुरोहित ने कहा—'देव! तब तो हम भी रानी का दर्शन करेंगे।'

भिक्षुओ! तब वह कोसलराज की रानी काशिराज के ब्राह्मण पुरोहित के वासस्थान पर पहुँची। काशिराज के ब्राह्मण पुरोहित ने अब उस रानी को दूर से ही आते देखा। देखकर आसन से

"यथा, भणे, पुरोहितो ब्राह्मणो आह तथा करोथा" ति। अलभि खो, भिक्खवे, दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो महेसी सुरियस्स उग्गमनकाले चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नद्धं वम्मिकं सुभूमे ठितं पस्सितुं, खग्गानं च धोवनं पातुं। अथ खो, भिक्खवे, दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो महेसी तस्स गब्भस्स परिपाकमन्वाय पुत्तं विजायि। तस्स 'दीघावू' ति नामं अकंसु। अथ खो, भिक्खवे, दीघावु कुमारो नचिरस्सेव विञ्ञुतं पापुणि। अथ खो, भिक्खवे, दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो एतदहोसि—"अयं खो ब्रह्मदत्तो कासिराजा बहुनो अम्हाकं अनत्थस्स कारको, इमिना अम्हाकं बलं च वाहनं च जनपदो च कोसो च कोट्ठागारं च अच्छिन्नं। सचायं अम्हे [N.375] जानिस्सति, सब्बेव तयो घातापेस्सति। यन्नूनाहं दीघावुं कुमारं बहिनगरे वासेय्यं" ति। अथ खो, भिक्खवे, दीघीति कोसलराजा दीघावुं कुमारं बहिनगरे वासेसि। अथ खो, [R.344] भिक्खवे, दीघावु कुमारो बहिनगरे पटिवसन्तो नचिरस्सेव सब्बसिप्पानि सिक्खि।

१०. तेन खो पन समयेन दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो कप्पको ब्रह्मदत्ते कासिरञ्ञे पटिवसति। अद्दसा खो, भिक्खवे, दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो कप्पको दीघीतिं कोसलराजानं सपजापतिकं बाराणसियं अञ्ञतरस्मिं पच्चन्तिमे ओकासे कुम्भकारनिवेसने अञ्ञातकवेसेन परिब्बाजकच्छन्नेन पटिवसन्तं, दिस्वान येन ब्रह्मदत्तो कासिराजा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा

उठकर, उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर दीघिति की रानी की तरफ हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए तीन बार यह उदान (हर्षोद्गार) कहा—'अरे! इनकी कोंख में तो कोसलराज है, इनकी कोंख में तो...इनकी कोंख में तो कोसलराज है।' और फिर रानी के सम्मुख होकर कहा—'देवि! आप धैर्य रखें! आप सूर्योदय के समय सुभूमि में खड़ी होकर ढाल–कवच से युक्त चतुरङ्गिणी सेना को अवश्य देखेंगी। साथ ही तलवार का धोवन भी पीयेंगीं।'

"तब भिक्षुओ! दूसरे दिन वह काशिराज ब्रह्मदत्त का पुरोहित ब्राह्मण काशिराज के पास जाकर यों बोला—'देव! ऐसे शुभ निमित्त (लक्षण) दिखायी दे रहे हैं कि कल सूर्योदय के समय ढाल–कवच से युक्त होकर चतुरङ्गिणी सेना सुभूमि (परेड ग्राउण्ड) कें खड़ी हो। तलवारों को भी धोया जाय।' भिक्षुओ! तब काशिराज ने सम्बद्ध अधिकारी मनुष्यों को आज्ञा दी—'भणे! पुरोहित ब्राह्मण जैसा कह रहा है वैसा ही करो।' इस तरह, भिक्षुओ! कोसलराज की रानी ने चतुरङ्गिणी सेना का दर्शन एवं तलवार का धोवन प्राप्त कर अपना दोहद पूर्ण किया। तब भिक्षुओ! उस कोसलराज दीघिति की रानी ने समय आने पर उसके गर्भ का पूर्ण परिपाक होने पर एक पुत्र उत्पन्न किया। उस का 'दीर्घायु' नाम रखा गया। तब, भिक्षुओ! वह दीर्घायुकुमार शीघ्र ही, बहुत समय बीतते न बीतते, पूर्ण विज्ञ (बुद्धिमान्=समझदार) हो गया।

"तब कोसलराज दीघिति को यह विचार हुआ—'इस काशिराज ब्रह्मदत्त ने हमारे लिये बहुत अनर्थ किये हैं। इसने हमारी सेना, वाहन (हाथी–घोड़े), हमारे जनपद (प्रदेश), कोश एव धान्यागारआदि सब कुछ नष्ट कर दिया है। यदि अब यह (कभी) हमारे विषय में जान पायगा तो हम तीनों को ही मार डालेगा, तो क्यों न मैं दीर्घायुकुमार को नगर से बाहर बसा दूँ।' तब (यह सोचकर) कोसलराज दीघिति ने दीर्घायुकुमार को नगर से बाहर बसा दिया। तब वह दीर्घायुकुमार नगर से बाहर रहता हुआ कुछ ही समय में सभी शिल्पों का पूर्ण ज्ञाता हो गया।

१०. "उस समय कोसलराज दीघिति का कल्पक (नाई) काशिराज ब्रह्मदत्त के अधीन रहता था। भिक्षुओ! उस कोसलराज के नाई ने रानीसहित कोसलराज दीघिति को वाराणसी के

ब्रह्मदत्तं कासिराजानं एतदवोच—"दीघीति, देव, कोसलराजा सपजापतिको बाराणसियं अञ्ञतरस्मिं पच्चन्तिमे ओकासे कुम्भकारनिवेसने अञ्ञातकवेसेन परिब्बाजकच्छन्नेन पटिवसती" ति। अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा मनुस्से आणापेसि—"तेन हि, भणे, दीघीतिं कोसलराजानं सपजापतिकं आनेथा" ति। "एवं, देवा", ति खो, भिक्खवे, ते मनुस्सा ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पटिस्सुत्वा दीघीतिं कोसलराजानं सपजापतिकं आनेसुं। अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा मनुस्से आणापेसि—"तेन हि, भणे, दीघीतिं कोसलराजानं सपजापतिकं दळ्हाय रज्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खामेत्वा दक्खिणतो नगरस्स चतुधा छिन्दित्वा चतुद्दिसा बिलानि निक्खिपथा" ति। "एवं, देवा", ति खो, भिक्खवे, ते मनुस्सा ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पटिस्सुत्वा [B.490] दीघीतिं कोसलराजानं सपजापतिकं दळ्हाय रज्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं परिनेन्ति।

अथ खो, भिक्खवे, दीघावुस्स कुमारस्स एतदहोसि—"चिरंदिट्ठा खो मे मातापितरो। यन्नूनाहं मातापितरो पस्सेय्यं" ति। अथ खो, भिक्खवे, दीघावु कुमारो बाराणसिं पविसित्वा अद्दस मातापितरो दळ्हाय रज्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं परिनेन्ते, दिस्वान येन मातापितरो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो, भिक्खवे, दीघीति कोसलराजा दीघावुं कुमारं दूरतो व आगच्छन्तं, दिस्वान दीघावुं कुमारं एतदवोच—"मा खो त्वं, तात दीघावु, दीघं पस्स, मा [R.345]

किसी तटवर्ती प्रदेश में स्थित कुम्भकार के घर में, एक अपरिचित परिव्राजक के वेष मे, वास करते हुए देख लिया। उन्हें देखकर वह नाई काशिराज ब्रह्मदत्त के पास जाकर यों बोला—'देव! रानी सहित कोसलराज....वास कर रहा है।' तब काशिराज ने अपने पुरुषो (सिपाहियों) को आज्ञा दी—'भणे! जाओ और रानीसहित कोसलराज को पकड़कर यहाँ लाओ।' 'अच्छा, देव!' कहते हुए, भिक्षुओ! ये राजपुरुष रानीसहित कोसलराज को पकड़ लाये। तब काशिराज ने राजपुरुषों को आज्ञा दी—'तो भणे! रानीसहित इस कोसलराज दीधिति की बाहें पीछे कठिन रस्सी से बाँधकर, सिर मुँड़वाकर, ढोल पीटते हुए इस गली से उस गली घुमाते हुए इस चौराहे से उस चौराहे पर ले जाकर नगर के दक्षिण द्वार से निकाल कर इसके शरीर के चार भाग कर बलि (पशु–पक्षियों के आहार) हेतु फेंक दो।' 'अच्छा, देव !' कहते हुए, भिक्षुओ! वे राजपुरुष काशिराज को वचन देकर, रानीसहित कोसलराज दीधिति को दृढ़ रज्जु से उसके हाथ पैर बाँधकर....चौराहे से चौराहे पर घुमाने लगे।

"भिक्षुओ! उसी समय दीर्घायुकुमार के मन में यह विचार हुआ—'माता–पिता को देखे बहुत दिन हो गये तो क्यों न आज माता–पिता के दर्शन कर आऊँ।' तब दीर्घायु कुमार ने वाराणसी मे प्रवेश करते ही माता–पिता को उस दशा में देखा कि राजपुरुष उनके हाथ पैर पीछे दृढ़ रज्जु से बाँधकर....चौराहे पर घुमा रहे थे। ऐसा देखते ही, वह माता पिता के पास पहुँचा। उधर कोसलराज दीधिति ने दीर्घायु कुमार को दूर से ही आते हुए देख लिया। देखकर उसने दीर्घायु कुमार से यह कहा—'दीर्घायु! तुम बड़ा (दीर्घ) या छोटा (ह्रस्व) न देखो। पुत्र दीर्घायु! वैर करने से पुराने वैर का

रस्सं। न हि, तात दीघावु, वेरेन वेरा सम्मन्ति; अवेरेन हि, तात दीघावु, वेरा सम्मन्ती" ति। एवं वुत्ते, भिक्खवे, ते मनुस्सा दीघीतिं कोसलराजानं एतदवोचुं—"उम्मत्तको अयं दीघीति कोसलराजा विप्पलपति। को इमस्स दीघावु ? कं अयं एवमाह—मा खो त्वं, तात दीघावु, दीघं पस्स, मा रस्सं। न हि, तात दीघावु, वेरेन वेरा सम्मन्ति; अवेरेन हि, तात [N.376] दीघावु, वेरा सम्मन्ती" ति। "नाहं, भणे, उम्मत्तको विप्पलपामि, अपि च यो विञ्ञू सो विभावेस्सती" ति। दुतियं पि खो, भिक्खवे....पे०....ततियं पि खो, भिक्खवे, दीघीति कोसलराजा दीघावुं कुमारं एतदवोच—"मा खो त्वं, तात दीघावु, दीघं पस्स, मा रस्सं। न हि, तात दीघावु, वेरेन वेरा सम्मन्ति; अवेरेन हि, ताता दीघावु, वेरा सम्मन्ती" ति। ततियं पि खो, भिक्खवे, ते मनुस्सा दीघीतिं कोसलराजानं एतदवोचुं—"उम्मत्तको अयं दीघीति कोसलराजा विप्पलपति। को इमस्स दीघावु ? कं अयं एवमाह—मा खो त्वं, तात दीघावु, दीघं पस्स, मा रस्सं। न हि, तात दीघावु, वेरेन वेरा सम्मन्ति; अवेरेन हि, तात दीघावु, वेरा सम्मन्ती" ति। "नाहं, भणे, उम्मत्तको विप्पलपामि, अपि च यो विञ्ञू सो विभावेस्सती" ति। अथ खो, भिक्खवे, ते मनुस्सा दीघीतिं कोसलराजानं सपजापतिकं रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खामेत्वा दक्खिणतो [B.491] नगरस्स चतुधा छिन्दित्वा चतुद्दिसा बिलानि निक्खिपित्वा गुम्बं ठपेत्वा पक्कमिंसु। अथ खो, भिक्खवे, दीघावु कुमारो बाराणसिं पविसित्वा सुरं नीहरित्वा गुम्बिये पायेसि। यदा ते मत्ता अहेसुं पतिता, अथ कट्ठानि सङ्कड्ढित्वा चितकं करित्वा मातापितूनं सरीरं चितकं आरोपेत्वा अग्गिं दत्वा पञ्जलिको तिक्खत्तुं चितकं पदक्खिणं अकासि।

११. तेन खो पन समयेन ब्रह्मदत्तो कासिराजा उपरिपासादवरगतो होति। अद्दसा खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा दीघावुं कुमारं पञ्जलिकं तिक्खत्तुं चितकं पदक्खिणं करोन्तं, दिस्वानस्स एतदहोसि—"निस्संसयं खो सो मनुस्सो दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो

शमन नहीं होता, अवैर (विरोध न करना) से ही, तात दीर्घायु! वैर शान्त होता है।' राजा द्वारा ऐसा कहे जाने पर, भिक्षुओ! वे राजपुरुष कोसलराज दीधिति के विषय में यों बोले–'यह कोसलराज दीधिति पागल होकर प्रलाप कर रहा है। इसका दीर्घायु कौन लगता है? किस दीर्घायु को लक्ष्य करके इसने कहा है–'तात दीर्घायु! तुम बडा ..पूर्ववत् ..वैर शान्त होता है।' तब कोसलराज दीधिति ने कहा–'मै पागल नहीं हुआ हूँ। मैंने जो बात कही है उसे जो समझदार आदमी होगा वह समझ ही लेगा।' दूसरी बार भी.. .पूर्ववत् ..तीसरी बार भी भिक्षुओ! वह कोसलराज अपने पुत्र को लक्ष्य करके बोला–'तात दीर्घायु!.....वैर शान्त होता है.....जो समझदार आदमी होगा वह समझ ही लेगा।

तब भिक्षुओ! वे राजपुरुष सपत्नीक कोसलराज को ...पूर्ववत्....चारो दिशाओं मे बलि हेतु फेंक कर वहाँ पहरेदार रखकर वापस लौट गये। उनके चले जाने पर दीर्घायुकुमार ने वाराणसी जाकर सुरा खरीद कर उन पहरेदारों को पिलायी। जब वे अचेत हो गये तब उसने लकड़ियाँ इकट्ठी कर इनसे चिता बनाकर माता–पिता के शरीरो को उस पर रखकर अग्नि देकर, हाथ जोड़ते हुए तीन बार उस चिता की प्रदक्षिणा की।

११. "भिक्षुओ! उस समय काशिराज ब्रह्मदत्त अपने प्रासाद की छत पर टहल रहा था। उसने दीर्घायु कुमार को हाथ जोड़कर उस चिता को प्रणाम–प्रदक्षिणा करते हुए देखा। देखकर

ञाति वा सालोहितो वा, अहो मे अनत्थको, न हि नाम मे कोचि आरोचेस्सती'' ति। अथ खो, भिक्खवे, दीघावु कुमारो अरञ्ञं गन्त्वा यावदत्थं कन्दित्वा रोदित्वा वप्पं पुञ्छित्वा बाराणसिं पविसित्वा अन्तेपुरस्स सामन्ता हत्थिसालं गन्त्वा हत्थाचरियं एतदवोच— ''इच्छामहं, आचरिय, सिप्पं सिक्खितुं'' ति। ''तेन हि, भणे माणवक, सिक्खस्सू'' ति। अथ खो, भिक्खवे, दीघावु कुमारो रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय हत्थिसालायं मञ्जुना सरेन गायि, वीणं च वादेसि। अस्सोसि खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय हत्थिसालायं मञ्जुना सरेन गीतं वीणं च वादितं, सुत्वान मनुस्से पुच्छि—''को, भणे, रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय हत्थिसालायं मञ्जुना सरेन गायि, वीणं च [R.346] वादेसी'' ति? ''अमुकस्स, देव, हत्थाचरियस्स अन्तेवासी माणवको रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय हत्थिसालायं मञ्जुना सरेन गायि, वीणं च वादेसी'' ति। ''तेन हि, भणे, तं माणवकं आनेथा'' ति। ''एवं, देवा'', ति खो, भिक्खवे, ते मनुस्सा ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पटिस्सुत्वा दीघावुं कुमारं आनेसुं। ''त्वं भणे माणवक, रत्तिया पच्चूससमयं [N.377] पच्चुट्ठाय हत्थिसालाय मञ्जुना सरेन गायि, वीणं च वादेसी'' ति? 'एवं, देवा' ति। 'तेन हि त्वं, भणे माणवक, गायस्सु, वीणं च वादेही' ति। 'एवं, देवा', ति खो, भिक्खवे, दीघावु कुमारो ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पटिस्सुत्वा आराधापेक्खो मञ्जुना सरेन गायि, [B.492] वीणं च वादेसि। 'त्वं, भणे माणवक, मं उपट्ठहा' ति। 'एवं, देवा', ति खो, भिक्खवे, दीघावु कुमारो ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पच्चस्सोसि। अथ खो, भिक्खवे, दीघावु कुमारो

उसको यह विचार हुआ—'अवश्य ही यह कोई कोसलराज दीधिति का जातिवाला या दूर का रक्तसम्बन्धी है। यह तो मेरे लिये बहुत अहितकर हुआ। (मेरे भय से) मुझे कोई बतायगा भी नहीं।'

इसके बाद, भिक्षुओ! वह दीर्घायु कुमार वन में जाकर माता-पिता के लिये बहुत रोया। अन्त में आँसू पोंछकर वाराणसी में आकर राजप्रासाद के सम्मुख हस्तिशाला में जाकर वहाँ महावतों में प्रमुख को यह बोला—'आचार्य! मैं चाहता हूँ कि आपका शिष्य बनकर यह शिल्प सीख लूँ।' (महावत न कहा—) बच्चे! यदि सीखना चाहता है तो सीख ले।' (इस तरह वह दीर्घायु उस हस्तिशाला में ठहर गया।) तब भिक्षुओ! दीर्घायुकुमार रात्रि बीतते बीतते बहुत प्रातः उठकर हस्तिशाला में (बैठकर) मञ्जु स्वर से गाता था और वीणा बजाता था। भिक्षुओ! काशिराज ने भी कभी उसका वह गायन एवं वीणावादन सुना, सुनकर उसे बहुत अच्छा लगा। उसने लोगो से पूछा—'अरे! रात्रि के अन्त में बहुत प्रातः ही उठकर कौन इतने मधुर स्वर में गाता है? तथा वीणा बजाता है?' (लोगों ने बताया—) 'देव! अमुक महावत का कोई माणवकशिष्य रात्रि के अन्तिम प्रहर में ऐसे मधुर स्वर से गायन करता है एवं वीणा बजाता है।' 'तो उस माणवक को हमारे पास लाओ!' 'अच्छा देव!' कहकर, भिक्षुओ! उन राजपुरुषों ने दीर्घायुकुमार को काशिराज के सामने पहुँचाया। (राजा ने उससे पूछा—) 'अरे माणवक! क्या तूँ ही रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठकर हस्तिशाला में बैठकर मञ्जुस्वर से गायन एवं वीणावादन करता है?' 'हाँ देव!' 'तो, अरे भाई! हमें भी अपना गायन एव वीणावादन सुनाओ! 'अच्छा देव!' कहकर, भिक्षुओ! दीर्घायुकुमार ने काशिराज ब्रह्मदत्त को मनोहर मञ्जुस्वर में अपना मधुर गायन एवं वीणावादन सुनाया। सुनकर, राजा ने प्रसन्न होकर उससे कहा—'तो, माणवक! तूँ मेरे यहाँ ही रह।' 'अच्छा! देव!' कहकर दीर्घायुकुमार ने अपनी वहाँ रहने की स्वीकृति दे दी। भिक्षुओ! तब से उस दीर्घायुकुमार ने राजा के पास रहते हुए राजा की ऐसी सेवा की कि वह राजा से पहले प्रातः काल

ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पुब्बुट्ठायी अहोसि पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी। अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा दीघावुं कुमारं नचिरस्सेव अब्भन्तरिके विस्सासिकट्ठाने ठपेसि।

१२. अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा दीघावुं कुमारं एतदवोच—"तेन हि, भणे माणवक, रथं योजेहि, मिगवं गमिस्सामा" ति। एवं, देवा, ति खो, भिक्खवे, दीघावु कुमारो ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पटिस्सुत्वा रथं योजेत्वा ब्रह्मदत्तं कासिराजानं एतदवोच—"युत्तो खो ते, देव, रथो, यस्स दानि कालं मञ्ञसी" ति। अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा रथं अभिरुहि। दीघावु कुमारो रथं पेसेसि। तथा तथा रथं पेसेसि यथा यथा अञ्ञेनेव सेना अगमासि अञ्ञेनेव रथो। अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा दूरं गन्त्वा दीघावुं कुमारं एतदवोच—"तेन हि, भणे माणवक, रथं मुञ्चस्सु, किलन्तोम्हि, निपज्जिस्सामी" ति। "एवं, देवा" ति खो. भिक्खवे, दीघावु कुमारो ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पटिस्सुत्वा रथं मुञ्चित्वा पथवियं पल्लङ्केन निसीदि। अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा दीघावुस्स कुमारस्स उच्छङ्गे सीसं कत्वा सेय्यं कप्पेसि। तस्स किलन्तस्स मुहुत्तकेनेव निद्दा ओक्कमि। अथ खो, भिक्खवे, दीघावुस्स कुमारस्स एतदहोसि—"अयं खो ब्रह्मदत्तो [R.247] कासिराजा बहुनो अम्हाकं अनत्थस्स कारको। इमिना अम्हाकं बलं च वाहनं च जनपदो च कोसो च कोट्ठागारं च अच्छिन्नं। इमिना च मे मातापितरो हता। अयं ख्वस्स कालो योहं वेरं अप्पेय्यं" ति कोसिया खग्गं निब्बाहि। अथ खो, भिक्खवे, दीघावुस्स कुमारस्स एतदहोसि—"पिता खो मं मरणकाले अवच—'मा खो त्वं, तात दीघावु, दीघं पस्स, मा रस्सं। न हि, तात दीघावु, वेरेन वेरा सम्मन्ति; अवेरेन हि, तात दीघावु, वेरा सम्मन्ती' ति। न खो मेतं पतिरूपं, य्वाहं पितुवचनं अतिक्कमेय्यं" ति कोसिया खग्गं पवेसेसि। दुतियं पि खो, भिक्खवे, दीघावुस्स कुमारस्स एतदहोसि—"अयं खो [B.493] ब्रह्मदत्तो....पे०....निब्बाहि। दुतियं पि खो, भिक्खवे, दीघावुस्स कुमारस्स

उठकर सेवा में लग जाता था तो रात्रि में राजा के सोने के बाद ही सोता था। प्रतिक्षण 'क्या करूँ?' इस भाव में राजा के सम्मुख रहता था। राजा के अनुकूल बातचीत करता था, उसमें निरन्तर मनोरम वचनों का ही प्रयोग करता था। यों करते करते, भिक्षुओ! एक दिन ऐसा आया कि काशिराज ब्रह्मदत्त ने उस माणव को अपना अन्तरङ्ग विश्वासपात्र अनुचर बना लिया।

१२. भिक्षुओ! किसी दिन काशिराज ब्रह्मदत्त ने दीर्घायुकुमार से कहा—'अरे माणव! रथ जोतो, आज आखेट खेलने के लिये चलने का विचार है।' 'अच्छा देव!' कहकर रथ तय्यार कर पुनः राजा से निवेदन किया—'देव! रथ तय्यार है, अब जैसा आप उचित समझें।' तब, भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त रथ पर आरूढ़ हुए। दीर्घायुकुमार ने रथ आगे बढाया। रथ चलाते चलाते दीर्घायु ने ऐसा कुछ किया कि रथ एक तरफ मुड़ गया और सेना दूसरी तरफ चली गयी। बहुत दूर निकल जाने पर राजा ने दीर्घायु से कहा—'अरे माणव! रथ रोको। थक गया हूँ। कुछ समय विश्राम करूँगा।' 'अच्छा देव!' कहकर, भिक्षुओ! दीर्घायुकुमार रथ रोककर भूमि पर आसन लगाकर बैठ गया। तब, भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त, श्रान्त होने के कारण, दीर्घायु की गोद में लेट गया और सो गया। वह थका हुआ तो था ही, कुछ देर में उसे गाढ़ निद्रा आ गयी।

एतदहोसि—"पिता खो मं....पे०....पुनदेव कोसिया खग्गं पवेसेसि। ततियं पि खो, भिक्खवे, दीघावुस्स कुमारस्स एतदहोसि—"अयं खो ब्रह्मदत्तो कासिराजा बहुनो अम्हाकं [N.378] अनत्थस्स कारको। इमिना अम्हाकं बलं च वाहनं च जनपदो च कोसो च कोट्ठागारं च अच्छिन्नं। इमिना च मे मातापितरो हता। अयं ख्वस्स कालो योहं वेरं अप्पेय्यं" ति कोसिया खग्गं निब्बाहि। ततियं पि खो, भिक्खवे, दीघावुस्स कुमारस्स एतदहोसि—"पिता खो मं मरणकाले अवच—'मा खो त्वं, तात दीघावु, दीघं पस्स, मा रस्सं। न हि, तात दीघावु, वेरेन वेरा सम्मन्ति; अवेरेन हि, तात दीघावु, वेरा सम्मन्ती' ति। न खो मेतं पतिरूपं, य्वाहं पितुवचनं अतिक्कमेय्यं" ति पुनदेव कोसिया खग्गं पवेसेसि।

अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा भीतो उब्बिग्गो उस्सङ्की उत्रस्तो सहसा वुट्ठासि। अथ खो, भिक्खवे, दीघावु कुमारो ब्रह्मदत्तं कासिराजानं एतदवोच—"किस्स त्वं, देव, भीतो उब्बिग्गो उस्सङ्की उत्रस्तो सहसा वुट्ठासी" ति? "इध मं, भणे माणवक; दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो पुत्तो दीघावु कुमारो सुपिनन्तेन खग्गेन परिपातेसि। तेनाहं भीतो उब्बिग्गो उस्सङ्की उत्रस्तो सहसा वुट्ठासिं" ति। अथ खो, भिक्खवे, दीघावु कुमारो वामेन हत्थेन ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो सीसं परामसित्वा दक्खिणेन हत्थेन खग्गं निब्बाहेत्वा ब्रह्मदत्तं कासिराजानं एतदवोच—"अहं खो सो, देव, दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो पुत्तो दीघावु कुमारो। बहुनो त्वं अम्हाकं अनत्थस्स कारको। तया अम्हाकं बलं च वाहनं च जनपदो च कोसो च कोट्ठागारं च अच्छिन्नं। तया च मे मातापितरो हता। अयं ख्वस्स कालो य्वाहं वेरं अप्पेय्यं" ति। अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा दीघावुस्स कुमारस्स पादेसु सिरसा निपतित्वा दीघावुं कुमारं एतदवोच—"जीवितं मे, तात दीघावु, देहि। जीवितं मे, तात

तब, भिक्षुओ! दीर्घायुकुमार के मन में यह हुआ—'इस ब्रह्मदत्त काशिराज ने हमारा बहुत अनर्थ किया है। इसने हमारी सेना, हमारे वाहन, हमारे जनपद, हमारा राजकोष, हमारे भाण्डागार सभी कुछ नष्ट कर दिया। यहाँ तक कि इसने मेरे माता-पिता का भी वध करा डाला। तो आज अवसर मिल गया है कि इससे अपने वैर का प्रतिशोध कर लूँ!' यह सोचकर उसने कोष (म्यान) से खड्ग (तलवार) निकाल ली। भिक्षुओ! तभी उसको ध्यान आया कि उसके पिता ने मरणकाल में उसको आदेश दिया था—'तात दीर्घायु! दीर्घ या ह्रस्व न देखना....वैर शान्त होते हैं।' तो उसने सोचा कि पिता के आदेश के बाद यह मेरे लिये उचित नहीं है कि मैं इसका वध करूँ।' यह सोच कर उसने सड्ग को पुनः कोश में रख लिया। दूसरी बार भी 'इस ब्रह्मदत्त ने....पूर्ववत्....खड्ग कोष में रख ली। तीसरी बार भी...इस काशिराज ब्रह्मदत्त ने ...पूर्ववत्....खड्ग कोष में रख ली।

तब, भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त भयभीत, उद्विग्न, शङ्कायुक्त एवं सन्त्रस्त सा होकर अचानक उठ बैठा। तब...ब्रह्मदत्त से दीर्घायुकुमार ने पूछा—'देव! आप अचानक भयभीत....सन्त्रस्त से होकर कैसे उठ बैठे?' 'हाँ, माणवक! अभी मुझे ऐसा लगा कि कोसलराज दीधिति का पुत्र खड्ग से मुझ पर आक्रमण कर रहा है।' तब दीर्घायुकुमार बाँये हाथ से उसका शिर पकड़ कर और दाहिने हाथ में खड्ग लेकर काशिराज ब्रह्मदत्त को यो बोला—'हाँ, देव! मैं ही दीर्घायुकुमार हूँ। तुमने मेरा बहुत अहित किया है।...क्यो न मैं आज तुझसे अपने वैर का बदला लूँ।' तब, भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त दीर्घायुकुमार के पैरो में शिर रखकर उससे यों बोला—'तात! मुझे जीवन दो, तात! मुझे जीवन दो!'

[B.494] दीघावु, देही'' ति। ''क्याहं उस्सहामि देवस्स जीवितं दातुं? देवो खो मे जीवितं ददेय्या'' ति।''तेन हि, तात दीघावु, त्वं चेव मे जीवितं देहि, अहं च ते जीवितं दम्मी'' ति। अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो च कासिराजा दीघावु च कुमारो अञ्ञमञ्ञस्स जीवितं अदंसु, पाणिं च अग्गहेसुं सपथं च अकंसु अद्दुभाय।

[R.348] अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा दीघावुं कुमारं एतदवोच—''तेन हि, तात दीघावु, रथं योजेहि, गमिस्सामा'' ति। ''एवं, देवा'' ति खो, भिक्खवे, दीघावु कुमारो ब्रह्मदत्तस्स कासिरञ्ञो पटिस्सुत्वा रथं योजेत्वा ब्रह्मदत्तं कासिराजानं एतदवोच— ''युत्तो खो ते, देव, रथो, यस्स दानि कालं मञ्ञसी'' ति। अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा रथं अभिरुहि। दीघावु कुमारो रथं पेसेसि। तथा तथा रथं पेसेसि यथा यथा नचिरस्सेव सेनाय समागञ्छि। अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा बाराणसिं पविसित्वा अमच्चे पारिसज्जे सन्निपातापेत्वा एतदवोच—''सचे, भणे, दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो पुत्तं [N.379] दीघावुं कुमारं पस्सेय्याथ, किं ति नं करेय्याथा'' ति? एकच्चे एवमाहंसु— ''मयं, देव, हत्थे छिन्देय्याम। मयं, देव, पादे छिन्देय्याम। मयं, देव, हत्थपादे छिन्देय्याम। मयं, देव, कण्णे छिन्देय्याम। मयं, देव, नासं छिन्देय्याम। मयं, देव, कण्णनासं छिन्देय्याम। मयं, देव, सीसं छिन्देय्यामा'' ति।''अयं खो, भणे, दीघीतिस्स कोसलरञ्ञो पुत्तो दीघावु कुमारो। नायं लब्भा किञ्चि कातुं। इमिना च मे जीवितं दिन्नं, मया च इमस्स जीवितं दिन्नं'' ति।

१३. अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा दीघावुं कुमारं एतदवोच—''यं खो ते, तात दीघावु, पिता मरणकाले अवच—'मा खो त्वं, तात दीघावु, दीघं पस्स, मा रस्सं।

'देव! कैसे मैं ही आप को जीवन दूँ, आप भी मुझे जीवन का वचन दें, तब ना?' 'तो, तात दीर्घायु! तुम मुझे जीवनदान का वचन दो, मैं तुम्हें देता हूँ।' तब भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त ने दीर्घायुकुमार को जीवनदान का वचन दिया और दीर्घायुकुमार ने काशिराज ब्रह्मदत्त को। यों दोनों ने जीवनदान का वचन दिया, परस्पर हाथ मिलाया तथा जीवनपर्यन्त अद्रोह (प्रेम) पूर्वक रहने की शपथ ली।

तब, भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त ने दीर्घायुकुमार को रथ जोतने का आदेश दिया। 'अच्छा देव' कहकर रथ जोतकर राजा से कहा—'रथ तय्यार है, अब जैसा आप उचित समझें।' तब काशिराज ब्रह्मदत्त रथ में बैठे, दीर्घायुकुमार ने रथ इस तरह चलाया कि शीघ्र ही राजा की सेना मिल गयी। तब भिक्षुओ! काशिराज ने वाराणसी में प्रवेश कर अपने अमात्य एवं सभासदों को एकत्र कर यह कहा—'अरे! आप लोग कोसलराज दीधिति के पुत्र दीर्घायुकुमार को देख पावें तो उसके साथ क्या व्यवहार करेगे?' तब उनमें से कुछ बोले—'देव! हम उसके हाथ काट डालेंगे।' कुछ बोले—'पैर काट डालेंगे।' कुछ बोले—'हम उसके हाथ—पैर काट डालेंगे।' कुछ बोले—'उसके कान काट लेंगे।' कुछ बोले—'उसका नाक काट लेगे।' कुछ बोले—'हम उसके कान, नाक— दोनो काट लेंगे।' कुछ बोले—'देव! हम उसका शिर काट लेंगे।' तब राजा ने कहा—'यह दीधितिकुमार है, परन्तु आप इस का कुछ विगाड़ नहीं सकेंगे; क्योकि मैंने इसको एव इसने मुझको जीवनदान का वचन दिया है।

१३ ''तब, भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त ने दीर्घायुकुमार से पूछा— 'तात दीर्घायु! तुम्हारे पिता ने मरते समय यह जो कहा था—तात दीर्घायु! तूँ दीर्घ को न देख, न ह्रस्व को देख; क्योंकि तात

न हि, तात दीघावु, वेरेन वेरा सम्मन्ति; अवेरेन हि, तात दीघावु, वेरा सम्मन्ती' ति, किं ते पिता सन्धाय अवचा'' ति?''यं खो मे, देव, पिता मरणकाले अवच—'मा दीघं' ति 'मा चिरं वेरं अकासी' ति— इमं खो मे, देव, पिता मरणकाले अवच 'मा दीघं' ति। यं खो मे, देव, पिता मरणकाले अवच 'मा रस्सं' ति 'मां खिप्पं मित्तेहि भिज्जित्था' ति। इमं खो मे, देव, पिता मरणकाले अवच—'मा रस्सं' ति। यं खो मे, देव, पिता मरणकाले अवच—'न हि, तात दीघावु, वेरेन वेरा सम्मन्ति; अवेरेन हि, तात दीघावु, वेरा सम्मन्ती' ति [B.495] देवेन मे मातापितरो हता ति। सचाहं देवं जीविता वोरोपेय्यं, ये देवस्स अत्थकामा ते मं जीविता वोरोपेय्युं, ये मे अत्थकमा ते ते जीविता वोरोपेय्युं—एवं तं वेरं वेरेन न वूपसमेय्य। इदानि च पन मे देवेन जीवितं दिन्नं, मया च देवस्स जीवितं दिन्नं। एवं तं वेरं अवेरेन वूपसन्तं। इमं खो मे, देव, पिता मरणकाले अवच—'न हि, ताता दीघावु, वेरेन वेरा सम्मन्ति; अवेरेन हि, तात दीघावु, वेरा सम्मन्ती' '' ति।

अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मदत्तो कासिराजा—''अच्छरियं वत भो, अब्भुतं [R.349] वत भो, याव पण्डितो अयं दीघावु कुमारो, यत्र हि नाम पितुनो सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानिस्सती'' ति पेत्तिकं बलं च वाहनं च जनपदं च कोसं च कोट्ठागारं च पटिपादेसि, धीतरं च अदासि। तेसं हि नाम, भिक्खवे, राजूनं आदिन्नदण्डानं आदिन्नसत्थानं एवरूपं खन्तिसोरच्चं भविस्सति। इध खो पन तं, भिक्खवे, सोभेथ यं तुम्हे एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजिता समाना खमा च भवेय्याथ सोरता चा'' ति? ततियं पि खो भगवा ते

दीर्घायु! वैर से वैर शान्त नहीं होते, अपितु तात दीर्घायु! अवैर से ही वैर शान्त होते हैं—तुम्हारे पिता ने यह बात क्या लक्ष्य रख कर कही थी?'

(१) 'देव! मेरे पिता ने, मरते समय, यह जो कहा था—दीर्घ न देख। यह दीर्घकालीन वैर को लक्ष्य रखकर कहा था। उनका अभिप्राय यही था कि चिरकाल तक वैर नहीं रखा जाता।

(२) और देव! पिता जी ने यह जो कहा था—छोटा भी न देख। यह इस अभिप्राय से कि मित्रों के साथ जल्दी में विरोध न कर बैठना। मित्रों से स्थायी मित्रता ही उनका लक्ष्य था।

(३) और मेरे पिता ने मृत्यु के समय यह जो कहा था कि तात दीर्घायु! वैर से वैर शान्त नहीं हुआ करते, अवैर से ही वैर शान्त हुआ करते हैं। जैसे आपने मेरे पिता को मार दिया, उनके प्रतिशोध में मैं आपको मार देता तो आपके हितचिन्तक मेरा जीवन समाप्त कर देते और मेरे जो हितचिन्तक होते वे आपके हितचिन्तकों को मृत्यु का ग्रास बना देते। इस तरह वह वैर वैर से नहीं बुझ पाता। अपितु अब आपने मुझको जीवनदान कर दिया और मैंने देव को जीवन दे दिया—इसका फल यह हुआ कि वह दीर्घकाल का वैर स्वयमेव शान्त हो गया। यह लक्ष्य करके ही मेरे पिता ने अपने अन्त समय में कहा था—वैर से वैर शान्त नहीं हुआ करते, अपितु अवैर (मैत्री=सौहार्द) से ही वैर शान्त हो जाते हैं।

तब काशिराज ब्रह्मदत्त के मुख से अकस्मात् यह वचन निकल पड़े कि—अतीव आश्चर्य है, बहुत ही अद्भुत है, यह दीर्घायुकुमार कितना अधिक बुद्धिमान् है, पण्डित है कि पिता के उतने संक्षिप्त वचन का इतना विस्तृत एवं उचित अर्थ समझ लिया'—यह सोचकर उसकी पैतृक सेना, वाहन, कोषागार एवं भाण्डागार ही उसको नहीं लौटा दिये अपितु उसके साथ अपनी कन्या का भी विवाह कर दिया।

''तो, भिक्षुओ! जब वैसे दण्डधारी शस्त्रधारी क्षत्रियों (राजाओं) में समय आने पर परस्पर

भिक्खू एतदवोच—"अलं, भिक्खवे, मा भण्डनं मा कलहं मा विग्गहं मा विवादं" ति। ततियं पि खो सो अधम्मवादी भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"आगमेतु, भन्ते, भगवा धम्मस्सामी; अप्पोस्सुक्को, भन्ते, भगवा दिट्ठधम्मसुखविहारमनुयुत्तो विहरतु। मयमेतेन भण्डनेन कलहेन विग्गहेन विवादेन पञ्ञायिस्सामा" ति। अथ खो भगवा—"परियादिन्नरूपा खो इमे मोघपुरिसा, नयिमे सुकरा सञ्ञापेतुं" ति—उट्ठायासना पक्कामि।

दीघावुभाणवारो निट्ठितो पठमो।

[N.380] १४. अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय कोसम्बिं पिण्डाय पाविसि। कोसम्बियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय सङ्घमज्झे ठितको व इमा गाथायो अभासि—

[B.496] "पुथुसद्दो समजनो न बालो कोचि मञ्ञथ।
सङ्घस्मिं भिज्जमानस्मिं नाञ्ञं भिय्यो अमञ्ञरुं॥
"परिमुट्ठा पण्डिता भासा वाचागोचरभाणिनो।
याविच्छन्ति मुखायामं येन नीता न तं विदू॥
"अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये च तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति॥ (ध. प. ३)

मेल हो जाता है, क्षमादान हो जाता है, परस्पर क्षमा, सुरति (विनम्रता) हो जाती है तो फिर भिक्षुओ! तुम्हारे लिये तो यह शोभास्पद ही होगा कि तुम लोग इतने अच्छे धर्मविनय में प्रव्रजित होकर क्षमाशील एवं सुरतिसम्पन्न रहो। यों तीसरी बार भी भगवान् ने भिक्षुओं से कहा—'आप लोग परस्पर झगड़ा, कलह, विवाद न करें।'

परन्तु तीसरी बार भी उन अधर्मवादियों में से किसी भिक्षु ने कहा—"भन्ते! आप रहने दें, आप तो धर्मस्वामी हैं.....हम इस विग्रह को समाप्त करने में स्वयं समर्थ हैं।"

तब भगवान् यह सोचकर कि ये निकम्मे लोग अधिक मात्रा में सांसारिक बातों में लिप्त हैं, इन्हें समझाना सरल नहीं है। आसन से उठकर (अपनी साधनाकुटी में) चले गये।

दीर्घायु भाणवार प्रथम समाप्त॥

१४. तब भगवान् ने वस्त्र पहनकर, पात्र–चीवर ले कौशाम्बी में भिक्षाटन एवं भोजन कर, तत्पश्चात् भोजन कर्म से निवृत्त होकर अपना शयनासन समेट कर पात्र चीवर ले, सङ्घ के बीच में खड़े हुए की तरह ये गाथाएँ कहीं—

"समस्त भिक्षु समूह पृथक् पृथक् बात (मत) बोलने वाला, कोई भी अपने को किसी से कम न समझने वाला यह अज्ञ–समूह एकत्र हो गया है। न इसे सङ्घभेद की चिन्ता है, न इसको किसी अन्य बात (शास्ता की प्रतिष्ठा आदि) का ही महत्त्व ज्ञात है॥

"ये लोग वस्तुतः मूढ़ परन्तु बात करने में पण्डित की तरह दिखायी देने वाले, जिह्वा पर आयी बात को बक देने वाले, जो मन में हैं उसे बोल देने वाले (मुँहफट) हैं। ये जिसके द्वारा कुमार्ग पर ले जाये गये हैं उसकी वास्तविकता नहीं जानते॥

'इसने मुझ को अपशब्द कहे', 'इसने मुझको मारा', 'इसने मुझको पराजित किया' 'इसने मुझको त्याग दिया'—ऐसी बातों की जो गाँठ बाँध लेते हैं उनका पारस्परिक वैर कभी शान्त नहीं होता॥

"अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये च तं नुपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति॥ (ध. प. ४)
"न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥ (ध. प. ५)
"परे च न विजानन्ति मयमेत्थ यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा॥ (ध. प. ६)
"अट्ठिच्छिन्ना पाणहरा गवास्सधनहारिनो। [R.350]
रट्ठं विलुम्पमानानं तेसं पि होति सङ्गति॥
"कस्मा तुम्हाकं नो सिया?
"सचे लभेथ निपकं सहायं सद्धिं चरं साधुविहारि धीरं।
अभिभुय्य सब्बानि परिस्सयानि चरेय्य तेनत्तमनो सतीमा॥ (ध. प. ३२८)
"नो चे लभेथ निपकं सहायं सद्धिं चरं साधुविहारि धीरं।
राजा व रट्ठं विजितं पहाय एको चरे मातङ्गरञ्ञेव नागो॥ (ध. प. ३२९)
"एकस्स चरितं सेय्यो नत्थि बाले सहायता।
एको चरे न च पापानि कयिरा अप्पोस्सुक्को मातङ्गरञ्ञेव नागो" ति॥ (ध. प. ३३०)॥

'इसने मुझको अपशब्द कहे'....पूर्ववत्....ऐसी बातों को जो गाँठ (मन मे रखना) नहीं बाँधते उन लोगों का ही वैर शान्त होता है॥

किसी वैर के प्रतिशोध मे किये गये वैर से वह (पूर्व वैर) शान्त नहीं हुआ करता। वह (वैर) तो अवैर (प्रेमभाव=सौहार्द) से ही शान्त हो सकता है। यही सनातन धर्म (की परिपाटी) है॥

दूसरे (अपण्डित=अज्ञ) नहीं जानते कि हमको भी यहाँ से एक दिन जाना है। जो वहाँ जाना (मरण भाव को प्राप्त होना) जानते है वे बुद्धिमान् ही यहाँ के पारस्परिक वैर को तुच्छ समझकर, उसके शमन हेतु सतत प्रयास करते हैं॥

जिनके हाथ-पैरों की हड्डियाँ तोड़ दी जाती हैं, जिन पर प्राणघातक आक्रमण किया जाता है, जिनके गौ, अश्व एवं धन आदि छीन लिये जाते हैं, जिनका राष्ट्र जीत लिया जाता है उनका भी, समय आने पर, परस्पर मेल-मिलाप हो जाता है॥

तो फिर भिक्षुओ! 'तुम में यह मेल एक दिन क्यों नहीं होगा'– ऐसा तुम्हें क्यों नहीं लगता?

यदि साथ विचरण (साधना) करने वाला साथी अनुकूल, पण्डित, एवं धैर्यशाली मित्र के रूप में मिल जाय तो सभी विघ्नो से छुटकारा पाकर उसके साथ स्मृतिमान् एवं प्रसन्न मन से धर्मसाधना में लगे रहना चाहिये॥

यदि साथ में साधना करने वाला साथी अनुकूल, पण्डित धैर्यशाली मित्र के रूप में न मिले तो साधक को राजा की भाँति पराजित राष्ट्र को छोड़कर गजराज के समान एकाकी ही विचरण करना चाहिये॥

एकाकी रहकर ही साधना करना उत्तम है, साधना में मूर्ख का सहयोग लेना अहितकर होगा। बस, अकेला विचरण करे, पाप न करे, हस्तिराज के सामने संसार में अल्पेच्छ अल्प औत्सुक्य वाला बनकर साधनारत रहे॥

३. बालकलोणकगमनकथा

[N.381, B.497] १५. अथ खो भगवा सङ्घमज्झे ठितको व इमा गाथायो भासित्वा येन बालकलोणकगामो तेनुपसङ्कमि। तेन खो पन समयेन आयस्मा भगु बालकलोणकगामे विहरति। अद्दसा खो आयस्मा भगु भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं, दिस्वान आसनं पञ्ञापेसि, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपि, पच्चुग्गन्त्वा पत्तचीवरं पटिग्गहेसि। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने, निसज्ज खो भगवा पादे पक्खालेसि। आयस्मा पि खो भगु भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं भगुं भगवा एतदवोच— "कच्चि, भिक्खु खमनीयं; कच्चि यापनीयं, कच्चि पिण्डकेन न किलमसी" ति? "खमनीयं, भगवा, यापनीयं, भगवा; न चाहं, भन्ते, पिण्डकेन किलमामी" ति। अथ खो भगवा आयस्मन्तं भगुं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना येन पाचीनवंसदायो तेनुपसङ्कमि।

४. पाचीनवंसदायगमनकथा

१६. तेन खो पन समयेन आयस्मा च अनुरुद्धो आयस्मा च नन्दियो आयस्मा च किम्बिलो पाचीनवंसदाये विहरन्ति। अद्दसा खो दायपालो भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं, दिस्वान भगवन्तं एतदवोच—"मा, समण, एतं दायं पाविसि। सन्तेत्थ तयो कुलपुत्ता अत्तकामरूपा विहरन्ति। मा तेसं अफासुमकासी" ति। अस्सोसि खो आयस्मा अनुरुद्धो दायपालस्स भगवता सद्धिं मन्तयमानस्स, सुत्वान दायपालं एतदवोच—"मावुसो, दायपाल,

---

३. बालकलोणकगमनकथा

१५. उस समय भगवान् इन उपर्युक्त गाथाओं को सङ्घ के बीच में खडे हुए से एकाकी रूप में ही बोल कर बालकलोणक ग्राम में पहुँचे। उस बालकलोणकग्राम में आयुष्मान् भृगु साधना कर रहे थे। आयुष्मान् भृगु ने भगवान् को दूर से ही आते हुए देखा। देखकर उनके लिये आसन विछाया, पैर धोने के लिये लकड़ी का पट्टा रखा। फिर पास पहुँचकर उनका पात्र चीवर अपने हाथ में लिया। भगवान् काष्ठपट्ट पर बैठे, बैठकर पैर धोए। तब आयुष्मान् भृगु भी भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक तरफ बैठे आयुष्मान् भृगु को भगवान् ने पूछा—"कहो, भिक्षु! सब कुछ कुशल से तो चल रहा है, सब कुछ सुखपूर्वक तो बीत रहा है? भिक्षा मिलने में कोई कठिनाई तो नहीं होती?" "हाँ, भन्ते! सब कुछ कुशलपूर्वक सुखपूर्वक बीत रहा है, यापन हो रहा है, भिक्षा मे कोई कठिनाई नहीं होती। तब भगवान् ने आयुष्मान् भृगु को धार्मिक कथाएँ कहते हुए धर्म के प्रति सन्दृष्ट, समुत्तेजित एव सम्प्रहृष्ट करते हुए धर्मसाधना के प्रति उत्साहित किया। तदनन्तर वे प्राचीन वंशदाव की तरफ बढ़ गये।।

४. प्राचीनवंशदावगमनकथा

१६ उस समय आयुष्मान् अनुरुद्ध, नन्दिय एवं किम्बिल ये तीनों भिक्षु प्राचीन वंशदाव में साधनारत थे। वंशदावपाल ने भगवान् को दूर से ही आते हुए देख लिया। पास आने पर उसने वंशदाव में प्रविष्ट होने से रोकते हुए भगवान् से कहा—"श्रमण इस वंशदाव में प्रवेश न करो। इसमें तो पहले से ही तीन भिक्षु स्वानुकूल साधनारत हैं। उन्हें विघ्न न डालो।" आयुष्मान् अनुरुद्ध ने

भगवन्तं वारेसि। सत्था नो भगवा अनुप्पत्तो'' ति। अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो [R.351.] येनायस्मा च नन्दियो आयस्मा च किम्बिलो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं च नन्दियं आयस्मन्तं च किम्बिलं एतदवोच—''अभिक्कमथायस्मन्तो अभिक्कमथायस्मन्तो, सत्था नो भगवा अनुप्पत्तो'' ति। अथ खो आयस्मा च अनुरुद्धो आयस्मा च नन्दियो आयस्मा च किम्बिलो भगवन्तं पच्चुग्गन्त्वा एको भगवतो पत्तचीवरं पटिग्गहेसि, एको आसनं पञ्ञापेसि, एको पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपि। निसीदि [B.498] भगवा पञ्ञत्ते आसने, निसज्ज खो भगवा पादे पक्खालेसि। ते पि खो आयस्मन्तो भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं अनुरुद्धं भगवा एतदवोच— ''कच्चि वो, अनुरुद्धा[१], खमनीयं, कच्चि यापनीयं; कच्चि पिण्डकेन न किलमथा'' ति? ''खमनीयं भगवा, यापनीयं भगवा; न च मयं, भन्ते, पिण्डकेन किलमामा'' ति।

''कच्चि पन वो अनुरुद्धा समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकी- [N.382] भूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरथा'' ति? ''तग्घ मयं, भन्ते, समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरामा'' ति। ''यथा कथं पन तुम्हे, अनुरुद्धा, समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरथा'' ति? ''इध मय्हं, भन्ते, एवं होति— 'लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, योहं एवरूपेहि सब्रह्मचारीहि सद्धिं विहरामी' ति। ''तस्स मय्हं, भन्ते, इमेसु आयस्मन्तेसु मेत्तं कायकम्मं पच्चुपट्ठितं आवि चेव रहो च; मेत्तं वचीकम्मं.....मेत्तं मनोकम्मं पच्चुपट्ठितं आवि चेव रहो च। तस्स मय्हं, भन्ते, एवं होति—

दावपाल को भगवान् के साथ बात करते हुए देखा। उसकी बात सुनकर आयुष्मान् अनुरुद्ध ने दावपाल को रोकते हुए कहा—''नहीं दावपाल! भगवान् को न रोको। ये तो हमारे गुरु यहाँ पधारे हैं।'' फिर आयुष्मान् अनुरुद्ध ने आयुष्मान् नन्दिय एवं किम्बिल को जा कर बताया—''आयुष्मानो! जल्दी करो, अपने गुरु शास्ता यहाँ पधारे हैं।'' तब वे तीनों ही भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर किसी ने भगवान् का पात्र–चीवर लिया, किसी ने उनके लिये आसन बिछाया, किसी ने बैठकर पैर धोने हेतु काष्ठपट्ट रखा। भगवान् बिछे आसन पर विराजे और अपने पैर धोए। वे तीनों भिक्षु भी भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् अनुरुद्ध से भगवान् ने पूछा—''कहो भिक्षु!,....पूर्ववत्.....भिक्षा मिलने में कोई कठिनाई नहीं है।''

(भगवान् ने फिर पूछा—) ''अनुरुद्धो[१]! क्या तुम सब एकत्र हो कर परस्पर मोद के साथ, दूध–जल की तरह मिले हुए, एक दूसरे को प्रिय दृष्टि से देखते हुए साधनारत रहते हो?''

''हाँ, भन्ते! हम सब एकत्र होकर ही....पूर्ववत्....साधनारत रहते हैं।''

''अनुरुद्धो! कैसे तुम सब एकत्र.... साधनारत रहते हो?'' ''भन्ते! मुझे यह विचार होता है— 'मेरा कुछ अल्प ही नहीं बहुत लाभ हुआ है कि मैं ऐसे सदाचारपरायण गुरुभाइयों के साथ रहकर साधनारत हूँ। भन्ते! उस समय इन गुरुभाइयों के साथ कायकर्म बाह्य और आभ्यन्तर रूप से मित्रतापूर्ण होता है, वाक्कर्म....मनःकर्म बाह्य आभ्यन्तर रूप से मित्रतापूर्ण होता है। उस समय, भन्ते

---

१ पालि त्रिपिटक मे यह परम्परा देखी गयी है कि जब भगवान् तीन चार भिक्षुओ को एक साथ सम्बोधित करते है, तो वे उनमें प्रधान भिक्षु के नाम मे बहुवचन का प्रयोग करते हुए उन सबको सम्बोधित करते है जैसे यहाँ— अनुरुद्धा।

"'यन्नूनाहं सकं चित्तं निक्खिपित्वा इमेसं येव आयस्मन्तानं चित्तस्स वसेन वत्तेय्यं' ति। सो खो अहं, भन्ते, सकं चित्तं निक्खिपित्वा इमेसं येव आयस्मन्तानं चित्तस्स वसेन वत्तामि। नाना हि खो नो, भन्ते, काया, एकं च पन मञ्ञे चित्तं" ति।

आयस्मा पि खो नन्दियो....पे०....आयस्मा पि खो किम्बिलो भगवन्तं एतदवोच— "मय्हं पि खो, भन्ते, एवं होति—'लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, योहं एवरूपेहि सब्रह्मचारीहि सद्धिं विहरामी' ति। तस्स मय्हं, भन्ते, इमेसु आयस्मन्तेसु मेत्तं कायकम्मं पच्चुपट्ठितं आवि चेव रहो च; मेत्तं वचीकम्मं.....मेत्तं मनोकम्मं पच्चुपट्ठितं आवि चेव रहो च। तस्स मय्हं, भन्ते, एवं होति—'यन्नूनाहं सकं चित्तं निक्खिपित्वा इमेसं येव आयस्मन्तानं चित्तस्स वसेन वत्तेय्यं' ति। सो खो अहं, भन्ते, सकं चित्तं निक्खिपित्वा इमेसं येव आयस्मन्तानं चित्तस्स वसेन वत्तामि। नाना हि खो नो, भन्ते, काया, एकं च प न मञ्ञे चित्तं ति। एवं खो मयं, भन्ते, समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरामा" ति।

[B.499, R.352] "कच्चि पन वो, अनुरुद्धा, अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरथा" ति? "तग्घ मयं, भन्ते, अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरामा" ति। "यथा कथं पन तुम्हे, अनुरुद्धा अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरथा" ति? "इध, भन्ते, अम्हाकं यो पठमं गामतो पिण्डाय पटिक्कमति सो आसनं पञ्ञापेति, पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं उपनिक्खिपति, अवक्कारपातिं धोवित्वा उपट्ठापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति। यो पच्छा गामतो पिण्डाय पटिक्कमति, सचे होति भुत्तावसेसो, सचे आकङ्खति भुञ्जति, नो चे आकङ्खति अपहरिते वा छड्डेति। अप्पाणके वा उदके ओपिलापेति। सो आसनं उद्धरति,

---

मुझे ऐसा लगता है—'क्यो न मैं अपने मन में चिन्तित का आग्रह छोडकर अपने गुरुभाइयो के मन के अनुसार आचरण करता हुआ साधना करूँ। अत', भन्ते! मैं अपने मन मे... साधना करता हूँ। भन्ते! यो, कहने के लिये हम तीनो के शरीर अनेक हैं परन्तु मन एक ही है। यो, भन्ते! हम एकत्र होकर साधनारत रहते हैं।

आयुष्मान् नन्दी ने भी आयुष्मान् किम्बिल ने भी भगवान् से यही कहा—"भन्ते! मुझे यह विचार. पूर्ववत् (अनुरुद्ध के वचन के अनुसार विस्तार कर लें।) परन्तु मन एक ही है।"

(भगवान् ने फिर पूछा—) "ठीक है, अनुरुद्धो! ठीक है। क्या तुम प्रमादरहित रहकर उद्योगपूर्वक इन्द्रियो को सयत कर साधना करते हो?"

"हॉ, भन्ते! हमलोग अप्रमत्त होकर ..साधना करते है?" "कैसे अनुरुद्धो! तुम लोग अप्रमत्त होकर....साधना करते हो?"

"भन्ते! हममें से जो भी ग्राम से भिक्षा कर पहले लौटता है वह सबके लिये आसन लगता है, पैर धोने के लिये जल रखता है, कूडे का पात्र हटाता है, पीने के लिये जल तथा भोजन रखता है। जो ग्राम से भिक्षा कर बाद में लौटता है तो वह यदि भोजन कुछ बचा है तो इच्छा होने पर उसे खाता है, नहीं इच्छा है तो उसे एकतरफ हरियालीरहित भूमि पर या जीवरहित जल मे छोड़ देता है। वह बिछे आसन समेट कर रखता है पैर धोने के काष्ठ को, एक तरफ रखता है, कूडेदानी को साफ करता है, पीने के लिये रखे जल को ढक देता है, बाकी बचे स्वच्छ भोजन को एक तरफ रख देता है, भूमि

पादोदकं पादपीठं पादकथलिकं पटिसामेति, अवक्कारपातिं धोवित्वा पटिसामेति, पानीयं परिभोजनीयं पटिसामेति, भवग्गं सम्मज्जति। यो पस्सति पानीयघटं वा परिभोजनीयघटं वा वच्चघटं वा रित्तं तुच्छं सो उपट्ठापेति। सचस्स होति अविसय्हं, हत्थविकारेन [N.383] दुतियं आमन्तेत्वा हत्थविलङ्घकेन उपट्ठापेम, न त्वेव मयं, भन्ते, तप्पच्चया वाचं भिन्दाम। पञ्चाहिकं खो पन मयं, भन्ते, सब्बरत्तिं धम्मिया कथाय सन्निसीदाम। एवं खो मयं, भन्ते, अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरामा'' ति।

५. पालिलेय्यकगमनकथा

१७. अथ खो भगवा आयस्मन्तं च अनुरुद्धं आयस्मन्तं च नन्दियं आयस्मन्तं च किम्बिलं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना येन पालिलेय्यकं तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन पालिलेय्यकं तदवसरि। तत्र सुदं भगवा पालिलेय्यके विहरति रक्खितवनसण्डे भद्दसालमूले। अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"अहं खो पुब्बे आकिण्णो न फासु विहासिं तेहि कोसम्बकेहि भिक्खूहि भण्डनकारकेहि कलहकारकेहि विवादकारकेहि भस्सकारकेहि सङ्घे अधिकरणकारकेहि। सोम्हि एतरहि एको अदुतियो सुखं फासु विहरामि अञ्ञत्रेव तेहि कोसम्बकेहि भिक्खूहि भण्डनकारकेहि कलहकारकेहि विवादकारकेहि भस्सकारकेहि सङ्घे अधिकरणकारकेही'' ति।

अञ्ञतरो पि खो हत्थिनागो आकिण्णो विहरति हत्थीहि हत्थिनीहि हत्थि-[B.500] कलभेहि हत्थिच्छापेहि, छिन्नग्गानि चेव तिणानि खादति, ओभग्गोभग्गं चस्स साखाभङ्गं

पर गिरे भोजन के टुकड़ों को साफ करता है। यदि पैर धोने के जल का घड़ा, पीने के जल का घड़ा या शौचालय का घड़ा खाली देखे, तो उसे भरकर रख देता है। यदि कोई कार्य उससे नहीं होने की स्थिति में रहता है तो वह दूसरे साथी को हाथ के साधारण सङ्केत से या असाधारण सङ्केत से बुलाकर जल के घड़े को रखवा देता है। उस कार्य के कारण हम लोग परस्पर कोई कहा सुनी (वाग्युद्ध) नहीं करते। भन्ते! हम सप्ताह में प्रत्येक पाँचवें दिन रात्रिपर्यन्त जाग्रत् रहकर धार्मिक कथाएँ कहने सुनने में लगे रहते हैं। इस तरह, भन्ते! हम लोग अप्रमत्त रहते हुए उद्योगपूर्वक संयम के साथ साधना में लगे रहते हैं।"

५. पारिलेयकगमनकथा

१७. तब भगवान् आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिय एवं आयुष्मान् किम्बिल, को धार्मिक कथाओं द्वारा समुत्साहित, समुत्तेजित, सम्प्रहृष्ट कर आसन से उठकर जहाँ पारिलेयक (वन) था, उधर चारिका हेतु चल दिये। यों, क्रमशः चारिका करते हुए वे पारिलेयक में पहुँचे। तथा वहाँ पहुँचकर पारिलेयक के रक्षितवनषण्ड के भद्रसाल वृक्ष के नीचे जाकर साधनाहेतु विराजे।

एकान्तवास का आनन्द— तब एकान्त में स्थित होकर साधनामग्न होते समय भगवान् के चित्त में यह विचार आया—"मैं पहले उन झगड़ालू, कलहकारक, विवादप्रिय, बकवादी, सङ्घ में परस्पर आरोप प्रत्यारोप करने वाले भिक्षुओं से घिरा हुआ (आकीर्ण) अनुकूलता के साथ साधनामग्न नहीं हो पाता था, अब वही मैं एकांकी, अद्वितीय रहता हुआ उन झगड़ालू.....भिक्षुओं से दूर (पृथक्) रहकर सुखपूर्व साधना में रत हूँ। कोई बलिष्ठ युवा हाथी (हत्थिनाग) अन्य हाथियों से, हथिनियो से,

खादन्ति, आविलानि च पानीयानि पिवति, ओगाहा चस्स उत्तिण्णस्स हत्थिनियो कायं [R.353] उपनिघसन्तियो गच्छन्ति। अथ खो तस्स हत्थिनागस्स एतदहोसि—"अहं खो आकिण्णो विहरामि हत्थीहि हत्थिनीहि हत्थिकलभेहि हत्थिच्छापेहि, छिन्नग्गानि चेव तिणानि खादामि, ओभग्गोभग्गं च मे साखाभङ्गं खादन्ति, आविलानि च पानीयानि पिवामि, ओगाहा च मे उत्तिण्णस्स हत्थिनियो कायं उपनिघंसन्तियो गच्छन्ति। यन्नूनाहं एको व गणस्मा वूपकट्ठो विहरेय्यं" ति।

अथ खो सो हत्थिनागो यूथा अपक्कम्म येन पालिलेय्यकं रक्खितवनसण्डो भद्दसालमूलं येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा सोण्डाय भगवतो पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, अपहरितं च करोति। अथ खो तस्स हत्थिनागस्स एतदहोसि—"अहं खो पुब्बे आकिण्णो न फासु विहासिं हत्थीहि हत्थिनीहि हत्थिकलभेहि हत्थिच्छापेहि, छिन्नग्गानि [N.384] चेव तिणानि खादिं, ओभग्गोभग्गं च मे साखाभङ्गं खादिंसु, आविलानि च पानीयानि अपायिं, ओगाहा च मे उत्तिण्णस्स हत्थिनियो कायं उपनिघसन्तियो अगमंसु। सोम्हि एतरहि एको अदुतियो सुखं फासु विहरामि अञ्ञत्रेव हत्थीहि हत्थिनीहि हत्थिकलभेहि हत्थिच्छापेही" ति।

अथ खो भगवा अत्तनो च पविवेकं विदित्वा तस्स च हत्थिनागस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कं अञ्ञाय तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

"एतं नागस्स नागेन ईसादन्तस्स हत्थिनो।
समेति चित्तं चित्तेन यदेको रमती वने॥" ति॥

अथ खो भगवा पालिलेय्यके यथाभिरन्तं विहरित्वा येन सावत्थि तेन चारिकं

हाथियों के बच्चों से, हाथियों दुधमुँहें बच्चों से घिरा हुआ, अग्रभाग कटा घास (तृण) खाता था, टूटी-छँटी टहनियों को खाता था, मटमैला जल पीता था, जलाशय मे उतरने पर हथिनियाँ उसके शरीर से टकराती रहती थीं। तब उस हस्तिनाग को कभी यह विचार हुआ—"मैं इन अन्य हाथियों से . पूर्ववत्...टकराती चलती हैं; तो क्यों न मै अब इस यूथ (गण) से पृथक् होकर एकाकी विचरण करूँ।" तब वह युवा हाथी अपने यूथ से पृथक् होकर जहाँ पारिलेयक का रक्षित वनषण्ड था वहाँ भद्रशाल वृक्ष के नीचे जहाँ भगवान् विराजमान् थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर अपनी सूँड से यथासमय पीने के लिये जल एव खाने के लिये कन्द-मूल-फल लाकर प्रस्तुत करता था। और उनकी प्रतिकूल से रक्षा करता रहता था। तब कभी उस हस्तिनाग को विचार हुआ—'मैं पहले अन्य हाथियो से. ...टकराती चलती थीं। वही में अब समूह से पृथक् होकर एकाकी विचरण करता हुआ, सुख का अनुभव कर रहा हूँ।

तब भगवान् अपने उस एकान्तवास का तथा उस हस्तिनाग के चित्त का चिन्तन अपने चित्त से जानकर यह उदान बोले—

'हल की फाल की तरह तीखे दाँतों वाले नाग का चित्त इस नाग (बुद्ध) के चित्त के समान है जो कि वन मे एकाकी विचरण करता हुआ अपूर्व आनन्द का अनुभव कर रहा है।"

तब भगवान् उस पारिलेयक वनषण्ड में इच्छानुसार साधना करते हुए अन्त में श्रावस्ती की

पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन सावत्थि तदवसरि। तत्र सुदं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे।

अथ खो कोसम्बिकानं उपासकानं एतदहोसि— "इमे खो अय्या कोसम्बका भिक्खू बहुनो अम्हाकं अनत्थस्स कारका। इमेहि उब्बाळ्हो भगवा पक्कन्तो। [B.501] हन्द, मयं अय्ये कोसम्बके भिक्खू नेव अभिवादेय्याम, न पच्चुट्ठेय्याम, न अञ्जलिकम्मं सामीचिकम्मं करेय्याम, न सक्करेय्याम, न गरुं करेय्याम, न मानेय्याम, न भजेय्याम, न पूजेय्याम, उपगतानं पि पिण्डकं न दज्जेय्याम—एवं इमे अम्हेहि असक्करियमाना अगरुकरियमाना अमानियमाना अभजियमाना अपूजियमाना असक्कारपकता पक्कमिस्सन्ति वा विब्भमिस्सन्ति वा भगवन्तं वा पसादेस्सन्ती" ति। अथ खो कोसम्बा उपासका कोसम्बके भिक्खू नेव अभिवादेसुं, न पच्चुट्ठेसुं, न अञ्जलिकम्मं सामीचिकम्मं अकंसु, न सक्करिंसु, न गरुं करिंसु, न गरुं करिंसु, न मानेसुं, न भजेसुं, न पूजेसुं, उपगतानं पि पिण्डकं न [R.354] अदंसु। अथ खो कोसम्बका भिक्खू कोसम्बकेहि उपासकेहि असक्करियमाना अगरुकरियमाना अमानियमाना अभजियमाना अपूजियमाना असक्कारपकता एवमाहंसु—"हन्द मयं, आवुसो, सावत्थिं गन्त्वा भगवतो सन्तिके इमं अधिकरणं वूपसमेय्यामा" ति।

६. अट्ठारसवत्थुकथा

१८. अथ खो कोसम्बका भिक्खू सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय येन सावत्थि तेनुपसङ्कमिंसु। अस्सोसि खो आयस्मा सारिपुत्तो—"ते किर कोसम्बका भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका सावत्थिं आगच्छन्ती"

तरफ चारिकाहेतु चल पड़े। यों चारिका करते हुए क्रमशः श्रावस्ती में पहुँचे। वहाँ अनाथपिण्डिक द्वारा बनवाये जेतवनाराम में साधनाहेतु जाकर विराजे।

उधर (उस कलह वाली घटना के बाद) कौशाम्बी के उपासकों को यह ध्यान आया—"ये कौशाम्बी के भिक्षु तो हमारे लिये अत्यधिक अनर्थकारी सिद्ध हुए। इन्होंने भगवान् को अपने व्यवहार से दुःखी (उब्बाळ्ह) करते हुए कौशाम्बी से चले जाने को बाध्य कर दिया। तो क्यों न हम अब आगे इन कौशाम्बीवासी आर्य भिक्षुजनों को न अभिवादन करें, न प्रत्युत्थान; न हाथ जोड़े न कुशलक्षेम पूछें; न सत्कार करें न गौरवभाव दें; न इनका मान करें न सेवा; न पूजा करें। हमारे घर आने पर इनको हम भिक्षा के लिये भी न पूछें। यों ये हमसे असत्कृत, तिरस्कृत....भिक्षा न प्राप्त करते हुए कौशाम्बी छोड़कर अन्यत्र चले जाँयगे या भगवान् के सम्मुख जाकर अपने अपराध की क्षमा–याच्ञा करेंगे।" तब उन कौशाम्बी के उपासकों ने उन कौशाम्बीवासी भिक्षुओं का अभिवादन....भिक्षादान बन्द कर दिया। तब कौशाम्बीवासी उन भिक्षुओं ने कौशाम्बी के उपासकों का यह रूखा व्यवहार देखकर अन्त में यह कहा—"अब तो यही उचित होगा आयुष्मानो कि हम लोग श्रावस्ती चलकर भगवान् के सम्मुख बैठकर अपने इस विवाद को शान्त कर लें।"

६. अष्टादशवस्तुकथा

१८. तब वे कौशाम्बक भिक्षु अपना आसन समेटकर, अपना अपना पात्रचीवर लेकर जिधर श्रावस्ती थी उधर चल पड़े। उधर इन विवादी भिक्षुओं का श्रावस्ती में आगमन सुन कर आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर.....भगवान् से यों पूछा—"भन्ते! वे कौशाम्बी

ति। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"ते किर, भन्ते, कोसम्बका भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका सावत्थिं आगच्छन्ति। कथाहं, भन्ते, तेसु भिक्खूसु पटिपज्जामी" ति? "तेन हि त्वं, सारिपुत्त, यथा धम्मो तथा तिट्ठाही" ति। "कथाहं, भन्ते, जानेय्यं [N.385] धम्मं वा अधम्मं वा ति?"

अट्ठारसहि खो, सारिपुत्त, वत्थूहि अधम्मवादी जानितब्बो। इध, सारिपुत्त, भिक्खु १. अधम्मं 'धम्मो' ति दीपेति, २. धम्मं 'अधम्मो' ति दीपेति; ३. अविनयं 'विनयो' ति दीपेति, ४. विनयं 'अविनयो', ति दीपेति, ५. अभासितं अलपितं तथागतेन 'भासितं [B.502] लपितं तथागतेना' ति दीपेति, ६. भासितं लपितं तथागतेन 'अभासितं अलपितं तथागतेना' ति दीपेति; ७. अनाचिण्णं तथागतेन 'आचिण्णं तथागतेना' ति दीपेति; ८. आचिण्णं तथागतेन 'अनाचिण्णं तथागतेना' ति दीपेति; ९. अप्पञ्ञत्तं तथागतेन 'पञ्ञत्तं तथागतेना' ति दीपेति; १०. पञ्ञत्तं तथागतेन 'अपञ्ञत्तं तथागतेना' ति दीपेति; ११. अनापत्तिं 'आपत्ती' ति दीपेति, १२. आपत्तिं 'अनापत्ती' ति दीपेति; १३. लहुकं आपत्तिं 'गरुका आपत्ती' ति दीपेति; १४. गरुकं आपत्तिं 'लहुका आपत्ती' ति दीपेति; १५. सावसेसं आपत्तिं 'अनवसेसा आपत्ती' ति दीपेति,; १६. अनवसेसं आपत्तिं 'सावसेसा आपत्ती' ति दीपेति; १७. दुट्ठुल्लं आपत्तिं 'अदुट्ठुल्ला आपत्ती' ति दीपेति; १८. अदुट्ठुल्लं आपत्तिं 'दुट्ठुल्ला आपत्ती' ति दीपेति—इमेहि खो, सारिपुत्त, अट्ठारसहि वत्थूहि अधम्मवादी जानितब्बो।

अट्ठारसहि च खो, सारिपुत्त, वत्थूहि धम्मवादी जानितब्बो। इध, सारिपुत्त, भिक्खु

के विवादप्रिय भिक्षु श्रावस्ती में आ रहे हैं। उनके साथ, भन्ते! कैसा व्यवहार करूँ?" (भगवान् ने कहा—) तो, सारिपुत्र! तूँ उनके साथ धर्मानुसार ही व्यवहार करना।"

"भन्ते! मैं कैसे जानूँ कि र्धानुकूल व्यवहार यह है और अधर्मानुकूल व्यवहार यह?"

अधर्मवादी— "सारिपुत्र! इन अट्ठारह (१८) बातों से अधर्मवादी को जाना जा सकता है; जैसे— (१) जो अधर्म को 'धर्म' कहे, (२) जो धर्म को 'अधर्म' कहे, (३) अविनय को 'विनय' कहे, (४) विनय को 'अविनय' कहे, (५) तथागत द्वारा न कथित न मुखनिःसृत को 'तथागत द्वारा कथित एवं मुखनिःसृत कहे, (६) या जो तथागत द्वारा कथित एवं मुखनिःसृत को 'तथागत द्वारा न कथित एव न मुखनिःसृत' कहे, (७) तथागत द्वारा अनाचरित को 'तथागत द्वारा आचरित' कहे, (८) या तथागत द्वारा आचरित को 'तथागत द्वारा अनाचरित' कहे, (९) तथागत द्वारा प्रज्ञप्त (बोधित) को 'तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त' (अबोधित) कहे, (१०) या तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त को 'तथागत द्वारा प्रज्ञप्त' कहे, (११) अनापत्ति को 'आपत्ति' कहे, या (१२) आपत्ति को 'अनापत्ति' कहे (१३) गुर्वी आपत्ति को 'लघ्वी आपत्ति' कहे, या (१४) लघ्वी आपत्ति को 'गुर्वी आपत्ति' कहे, (१५) सावशेष आपत्ति को निरवशेष आपत्ति' कहे या (१६) निरवशेष आपत्ति को 'सावशेष आपत्ति' कहे, (१७) दुष्ठूल आपत्ति को 'अदुष्ठूल आपत्ति कहे, या (१८) अदुष्ठूल आपत्ति को 'दुष्ठूल आपत्ति' कहे। सारिपुत्त! इन अट्ठारह कारणों से 'अधर्मवादी' को जानना चाहिये।

१. अधम्मं 'अधम्मो' ति दीपेति, २. धम्मं 'धम्मो' ति दीपेति; ३. अविनयं 'अविनयो' ति दीपेति, ४. विनयं 'विनयो' ति दीपेति; ५. अभासितं अलपितं तथागतेन 'अभासितं [R.355] अलपितं तथागतेना' ति दीपेति; ६. भासितं लपितं तथागतेन 'भासितं लपितं तथागतेना' ति दीपेति; ७. अनाचिण्णं तथागतेन 'अनाचिण्णं तथागतेना' ति दीपेति; ८. आचिण्णं तथागतेन 'आचिण्णं तथागतेना' ति दीपेति; ९. अपञ्ञत्तं तथागतेन 'अपञ्ञत्तं तथागतेना' ति दीपेति; १०. पञ्ञत्तं तथागतेन 'पञ्ञत्तं तथागतेना' ति दीपेति; ११. अनापत्तिं 'अनापत्ती' ति दीपेति, १२. आपत्तिं 'आपत्ती' ति दीपेति; १३. लहुकं आपत्तिं 'लहुका आपत्ती' ति दीपेति, १४. गरुकं आपत्तिं 'गरुका आपत्ती' ति दीपेति; १५. सावसेसं आपत्तिं 'सावसेसा आपत्ती' ति दीपेति; १६. अनवसेसं आपत्तिं 'अनवसेसा आपत्ती' ति दीपेति; १७. दुट्ठुल्लं आपत्तिं 'दुट्ठुल्ला आपत्ती' ति दीपेति, १८. अदुट्ठुलं आपत्तिं 'अदुट्ठुल्ला आपत्ती' ति दीपेति— इमेहि खो, सारिपुत्त, अट्ठारसहि वत्थूहि धम्मवादी जानितब्बो ति।

१९. अस्सोसि खो आयस्मा महामोग्गल्लानो....पे०....अस्सोसि खो आयस्मा महाकस्सपो....अस्सोसि खो आयस्मा महाकच्चानो.....अस्सोसि खो आयस्मा महा-कोट्ठिको.... अस्सोसि खो आयस्मा महाकप्पिनो....अस्सोसि खो आयस्मा महाचुन्दो.... अस्सोसि खो आयस्मा अनुरुद्धो....अस्सोसि खो आयस्मा रेवतो....अस्सोसि खो [B.503] आयस्मा उपालि....अस्सोसि खो आयस्मा आनन्दो....अस्सोसि खो आयस्मा राहुलो— "ते किर कोसम्बका भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका सावत्थिं आगच्छन्ती" ति। अथ खो आयस्मा राहुलो येन [N.386] भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा राहुलो भगवन्तं एतदवोच—"ते किर, भन्ते, कोसम्बका भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका सावत्थिं आगच्छन्ति।

धर्मवादी— "और, सारिपुत्र! इन अट्ठारह कारणों से 'धर्मवादी' को जानना चाहिये। जैसे— (१) जो अधर्म को 'अधर्म' कहे, (२) जो धर्म को 'धर्म' कहे; (३) जो अविनय को 'अविनय' एवं (४) विनय को 'विनय' कहे; (५) तथागत द्वारा अभाषित अलपित को तथागत द्वारा 'अभाषित अलपित' कहे एवं (६) तथागत द्वारा भाषित लपित को तथागत द्वारा 'भाषित लापित' कहे; (७) तथागत द्वारा अनाचरित को 'तथागत द्वारा अनाचरित' कहे, एवं (८) तथागत द्वारा आचरित को 'तथागत द्वारा आचरित' कहे; (९) तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त को 'तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त' कहे, एवं (१०) तथागत द्वारा प्रज्ञप्त को 'तथागत द्वारा प्रज्ञप्त' कहे; (११) अनापत्ति को 'अनापत्ति' कहे एवं (१२) आपत्ति को 'आपत्ति' कहे; (१३) छोटी आपत्ति को 'छोटी आपत्ति' कहे, एवं (१४) बड़ी आपत्ति को 'बड़ी आपत्ति' कहे; (१५) सावशेष आपत्ति को 'सावशेष आपत्ति' कहे तथा (१६) निरवशेष आपत्ति को 'निरवशेष आपत्ति' कहे; (१७) दुष्ठूल (दुराचार) आपत्ति को 'दुष्ठूल आपत्ति' कहे, एवं (१८) अदुष्ठूल आपत्ति को 'अदुष्ठूल आपत्ति' कहे। सारिपुत्र! इन अट्ठारह (१८) कारणों से धर्मवादी को पहचानना चाहिये।

१९. आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने उन कौशाम्बक भिक्षुओं का आगमन सुना....आयुष्मान् महाकाश्यप ने...आयुष्मान् महाकात्यायन ने....आयुष्मान् महाकौष्ठिक ने ....आयुष्मान् महाकप्पिन ने....आयुष्मान् महाचुन्द ने... आयुष्मान् अनुरुद्ध ने.....आयुष्मान् रेवत ने....आयुष्मान् उपालि ने ....आयुष्मान्

कथाहं, भन्ते, तेसु भिक्खूसु पटिपज्जामी'' ति? ''तेन हि त्वं, राहुल, यथा धम्मो तथा तिट्ठाही'' ति। ''कथाहं, भन्ते, जानेय्यं धम्मं वा अधम्मं वा'' ति?

''अट्ठारसहि खो, राहुल, वत्थूहि अधम्मवादी जानितब्बो। इध, राहुल, भिक्खु अधम्मं 'धम्मो' ति दीपेति, धम्मं 'अधम्मो' ति दीपेति; अविनयं 'विनयो' ति दीपेति, विनयं 'अविनयो' ति दीपेति; अभासितं अलपितं तथागतेन 'भासितं लपितं तथागतेना' ति दीपेत्ति, भासितं लपितं तथागतेन 'अभासितं अलपितं तथागतेना' ति दीपेति; अनाचिण्णं तथागतेन 'आचिण्णं तथागतेना' ति दीपेति; आचिण्णं तथागतेन 'अनाचिण्णं तथागतेना' ति दीपेति; अपञ्ञत्तं तथागतेन 'पञ्ञत्तं तथागतेना' ति दीपेति, पञ्ञत्तं तथागतेन 'अप्पञ्ञत्तं तथागतेना' ति दीपेति; अनापत्तिं 'आपत्ती' ति दीपेति, आपत्तिं 'अनापत्ती' ति दीपेति; लहुकं आपत्तिं 'गरुका आपत्ती' ति दीपेति, गरुकं आपत्तिं 'लहुका आपत्ती' ति दीपेति; सावसेसं आपत्तिं 'अनवसेसा आपत्ती' ति दीपेति, अनवसेसं आपत्तिं 'सावसेसा आपत्ती' ति दीपेति; दुट्ठुल्लं आपत्तिं 'अदुट्ठुल्ला आपत्ती' ति दीपेति, अदुट्ठुल्लं आपत्तिं दुट्ठुल्ला आपत्ती' ति दीपेति—इमेहि खो, राहुल, अट्ठारसहि वत्थूहि अधम्मवादी जानितब्बो।

''अट्ठारसहि च खो, राहुल, वत्थूहि धम्मवादी जानितब्बो। इध, राहुल, भिक्खु अधम्मं 'अधम्मो' ति दीपेति, धम्मं 'धम्मो' ति दीपेति; अविनयं 'अविनयो' ति दीपेति, विनयं 'विनयो' ति दीपेति; अभासितं अलपितं तथागतेन 'अभासितं अलपितं तथागतेना' [B.504] ति दीपेति, भासितं लपितं तथागतेन 'भासितं लपितं तथागतेना' ति दीपेति; अनाचिण्णं तथागतेन 'अनाचिण्णं तथागतेना' ति दीपेति, आचिण्णं तथागतेन 'आचिण्णं तथागतेना' ति दीपेति; अनापत्तिं 'अनापत्ती' ति दीपेति, आपत्तिं 'आपत्ती' ति दीपेति; लहुकं आपत्तिं 'लहुका आपत्ती' ति दीपेति, गरुकं आपत्तिं 'गरुका आपत्ती' ति दीपेति; सावसेसं आपत्तिं 'सावसेसा आपत्ती' ति दीपेति, अनवसेसं आपत्तिं 'अनवसेसा आपत्ती' ति दीपेति; दुट्ठुल्लं आपत्तिं 'दुट्ठुल्ला आपत्ती' ति दीपेति, अदुट्ठुल्लं आपत्तिं 'अदुट्ठुल्ला आपत्ती' ति दीपेति—इमेहि खो, राहुल, अट्ठारसहि वत्थूहि धम्मवादी जानितब्बो'' ति।

२०. अस्सोसि खो महापजापति गोतमी—''ते किर कोसम्बका भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका सावत्थिं आगच्छन्ती'' ति। अथ खो महापजापति गोतमी येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभि-[N.387] वादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो महापजापति गोतमी भगवन्तं एतदवोच—''ते किर, भन्ते, कोसम्बका भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका

आनन्द ने.....आयुष्मान् राहुल ने सुना कि वे कौशाम्बीवासी कलहप्रिय.....भिक्षु श्रावस्ती में....पूर्ववत्....*(अभी पीछे भगवान् के साथ हुआ आयुष्मान् सारिपुत्त का सवाद 'राहुल' नाम बदल कर दोहरा ले)*

२०. महाप्रजापति गौतमी ने जब सुना कि कौशाम्बीवासी कलहप्रिय....भिक्षु श्रावस्ती में पूर्ववत्..... ''भन्ते, मैं उन भिक्षुओ के साथ कैसा व्यवहार करूँ?'' (भगवान् आदेश दिया–) ''गौतमि! तूँ दोनों तरफ का धर्मोपदेश सुनना। दोनों तरफ उपदेश सुनकर वहाँ जो धर्मवादी भिक्षु हों उनकी दृष्टि (विचार), क्षान्ति (सहनशीलता), रुचि (मन की अनुकूलता) एव ग्रहणेच्छा का ध्यान रखते

भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका सावत्थिं आगच्छन्ति। कथाहं, भन्ते, तेसु भिक्खूसु पटिपज्जामी'' ति?

''तेन हि त्वं, गोतमि, उभयत्थ धम्मं सुण। उभयत्थ धम्मं सुत्वा ये तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो तेसं दिट्ठिं च खन्तिं च रुचिं च आदायं च रोचेहि। यं किञ्चि भिक्खुनिसङ्घेन भिक्खुसङ्घतो पच्चासीसितब्बं सब्बं तं धम्मवादितो व पच्चासीसितब्बं'' ति।

२१. अस्सोसि खो अनाथपिण्डिको गहपति—''ते किर कोसम्बका भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका सावत्थिं आगच्छन्ती'' ति। अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो अनाथपिण्डिको गहपति भगवन्तं एतदवोच—''ते किर, भन्ते, कोसम्बका भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका सावत्थिं आगच्छन्ति। कथाहं, भन्ते, तेसु [B.505] भिक्खूसु पटिपज्जामी'' ति? ''तेन हि त्वं, गहपति, उभयत्थ दानं देहि। उभयत्थ दानं दत्वा उभयत्थ धम्मं सुण। उभयत्थ धम्मं सुत्वा ये तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो तेसं दिट्ठिं च खन्तिं च रुचिं च आदाय च रोचेही'' ति।

२२. अस्सोसि खो विसाखा मिगारमाता—''ते किर कोसम्बका भिक्खू [R.356] भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका सावत्थिं आगच्छन्ती'' ति। अथ खो विसाखा मिगारमाता येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्ना खो विसाखा मिगारमाता भगवन्तं एतदवोच—''ते किर, भन्ते, कोसम्बका भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरणकारका सावत्थिं आगच्छन्ति। कथाहं, भन्ते, तेसु भिक्खूसु पटिपज्जामी'' ति? ''तेन हि त्वं, विसाखे, उभयत्थ दानं देहि। उभयत्थ दानं दत्वा उभयत्थ धम्मं सुण। उभयत्थ धम्मं सुत्वा ये तत्थ भिक्खू धम्मवादिनो तेसं दिट्ठिं च खन्तिं च रुचिं च आदायं च रोचेही ति।

२३. अथ खो कोसम्बका भिक्खू अनुपुब्बेन येन सावत्थि तदवसरुं। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं

हुए तदनुसार आचरण करना। इस भिक्षुणी सङ्घ को जो कुछ भी आशा है वह उसे वैसे धर्मवादी भिक्षुसङ्घ से ही करनी चाहिये।''

२१. अनाथपिण्डिक गृहपति ने सुना....पूर्ववत्....''गृहपति! तुम दोनों पक्षों को दान दो। दोनों पक्षों को दान दो। दोनो पक्षो को दान देते हुए दोनों तरफ का उपदेश सुनना। उसे सुनकर, उनमें जो धर्मवादी हों उनके विचार (सिद्धान्त) क्षान्ति (औचित्य) एवं रुचि को देखना।''

२२. विशाखा मृगारमाता ने जब सुना कि वे कौशाम्बीवासी....पूर्ववत्. .(भगवान् ने आदेश दिया—) ''विशाखे! तुम दोनों तरफ दान....रुचि को देखना।''

२३. इसी बीच, वे कौशाम्बीवासी भिक्षु क्रमशः श्रावस्ती में पहुँच गये। तब आयुष्मान् भगवान् के सम्मुख. .पूछा—भन्ते! वे कलहप्रिय कौशाम्बी के भिक्षु श्रावस्ती में आ गये हैं। भन्ते! उनकी

निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"ते किर, भन्ते, कोसम्बका भिक्खू भण्डनकारका कलहकारका विवादकारका भस्सकारका सङ्घे अधिकरण-कारका सावत्थिं अनुप्पत्ता। कथं नु खो, भन्ते, तेसु भिक्खूसु सेनासने पटिपज्जितब्बं" ति? "तेन हि, सारिपुत्तं, विवित्तं सेनासनं दातब्बं" ति। "सचे पन, भन्ते, विवत्तं न होति, कथं [N.388] पटिपज्जितब्बं" ति? "तेन हि, सारिपुत्त, विवित्तं कत्वा पि दातब्बं, **न त्वेवाहं, सारिपुत्त, केनचि परियायेन वुड्ढतरस्स भिक्खुनो सेनासनं पटिबाहितब्बं ति वदामि। यो पटिबाहेय्य, आपत्ति दुक्कटस्सा**" ति।

"आमिसे पन, भन्ते, कथं पटिपज्जितब्बं" ति? "आमिसं खो, सारिपुत्त, सब्बेसं समकं भाजेतब्बं" ति।

७. ओसारणानुजानना

[B.506] २४. अथ खो तस्स उक्खित्तकस्स भिक्खुनो धम्मं च विनयं च पच्चवेक्खन्तस्स एतदहोसि—"आपत्ति एसा, नेसा अनापत्ति। आपन्नोम्हि, नम्हि अनापन्नो। उक्खित्तोम्हि, नम्हि अनुक्खित्तो। धम्मिकेनम्हि कम्मेन उक्खित्तो अकुप्पेन ठानारहेना" ति। अथ खो सो उक्खित्तको भिक्खु येन उक्खित्तानुवत्तका भिक्खू तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा उक्खित्तानुवत्तके भिक्खू एतदवोच—"आपत्ति एसा, आवुसो; नेसा अनापत्ति। आपन्नोम्हि, नम्हि अनापन्नो। उक्खित्तोम्हि, नम्हि अनुक्खित्तो। धम्मिकेनम्हि कम्मेन उक्खित्तो अकुप्पेन ठानारहेन। एथ मं आयस्मन्तो ओसारेथा" ति। अथ खो ते उक्खित्तानुवत्तका भिक्खू तं उक्खित्तकं भिक्खुं आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"अयं, भन्ते, उक्खित्तको भिक्खु एवमाह—'आपत्ति एसा, आवुसो; नेसा अनापत्ति। आपन्नोम्हि, नम्हि अनापन्नो। उक्खित्तोम्हि,

---

शयनासन–व्यवस्था के विषय में हमें क्या करना चाहिये?" "सारिपुत्र! उन्हे पृथक् शयनासन देना चाहिये।" "यदि भन्ते! पृथक् शयनासन न हो तब हमें क्या करना चाहिये?" "तो सारिपुत्र! पृथक् बनाकर देना चाहिये। परन्तु सारिपुत्र! **उनमें से वृद्धतम भिक्षु का आसन हटाने का आदेश मैं नहीं दूँगा। जो हटायगा उसे दुष्कृत दोष लगेगा।"**

"उनके भोजन के लिये क्या करना चाहिये?" "भोजन सबका समान (एक पंक्ति में) ही होगा।"

७. अवसारणानुजानना

२४. उस समय उस उत्क्षिप्त भिक्षु को धर्म और विनय का प्रत्यवेक्षण करते हुए यह भान हुआ कि उसमें यह आपत्ति है, अनापत्ति नहीं; अतः मैं आपत्तियुक्त हूँ, निरापन्न नहीं, अतः उत्क्षेपण दण्ड से उचित ही दण्डित हूँ, अनुरक्षित नहीं हूँ। मैं अकोप्य एवं स्थानार्ह रूप से धार्मिक कर्म से दण्डित हुआ हूँ, अधार्मिक कर्म से नहीं।" तब वह उत्क्षिप्त भिक्षु अपने अनुयायियो के पास गया और बोला—'आयुष्मानो! मुझमें ....पूर्ववत्... अधार्मिक कर्म से नहीं।' आओ! आयुष्मानो! मुझे मिला लो!....भगवान् के पास गये....मुझे मिला लो। भगवन्! इस विषय में हमें कैसे करना चाहिये?" (भगवान् ने कहा—) "भिक्षुओ! यह आपत्ति ही है, अनापत्ति नहीं। अतः यह भिक्षु आपन्न है, अनापन्न नहीं। इस कारण यह

नम्हि अनुक्खित्तो। धम्मिकेनम्हि कम्मेन उक्खित्तो अकुप्पेन ठानारहेन। एथ मं आयस्मन्तो ओसारेथा' ति। कथं नु खो, भन्ते, पटिपज्जितब्बं'' ति? ''आपत्ति एसा, भिक्खवे; नेसा अनापत्ति। आपन्नो एसो भिक्खु, नेसो भिक्खु अनापन्नो। उक्खित्तो एसो भिक्खु, नेसो भिक्खु अनुक्खित्तो। धम्मिकेन कम्मेन उक्खित्तो अकुप्पेन ठानारहेन। यतो च [R.357] खो सो, भिक्खवे, भिक्खु आपन्नो च उक्खित्तो च पस्सति च, तेन हि, भिक्खवे, तं भिक्खुं ओसारेथा'' ति।

८. सङ्घसामग्गीकथा

२५. अथ खो ते उक्खित्तानुवत्तका भिक्खू तं उक्खित्तकं भिक्खुं ओसारेत्वा येन उक्खेपका भिक्खू तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा उक्खेपके भिक्खू एतदवोचुं—''यस्मिं, आवुसो, वत्थुस्मि अहोसि सङ्घस्स भण्डनं कलहे विग्गहो विवादो सङ्घभेदो सङ्घराजि सङ्घववत्थानं सङ्घनानाकरणं, सो एसो भिक्खु आपन्नो च उक्खित्तो च पस्सि च ओसारितो च। हन्द मयं, आवुसो, तस्स वत्थुस्स वूपसमाय सङ्घसामग्गिं करोमा'' ति।

अथ खो ते उक्खेपका भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतद-[B.507] वोचुं—''ते भन्ते, उक्खित्तानुवत्तका भिक्खू एवमाहंसु—''यस्मिं, आवुसो, वत्थुस्मि अहोसि सङ्घस्स भण्डनं कलहो विग्गहो विवादो सङ्घभेदो सङ्घराजि सङ्घववत्थानं [N.389] सङ्घनानाकरणं, सो एसो भिक्खु आपन्नो च उक्खित्तो च पस्सि च ओसारितो च। हन्द मयं, आवुसो, तस्स वत्थुस्स वूपसमाय सङ्घसामग्गिं करोमा' ति। कथं नु खो, भन्ते, पटिपज्जितब्बं'' ति?

''यतो च खो सो, भिक्खवे, भिक्खु आपन्नो च उक्खित्तो च पस्सि च ओसारितो च, तेन हि, भिक्खवे, सङ्घो तस्स वत्थुस्स वूपसमाय सङ्घसामग्गिं करोतु। एवं च पन, भिक्खवे, कातब्बा। सब्बेहेव एकज्झं सन्निपतितब्बं गिलानेहि च अगिलानेहि च। न केहिचि छन्दो दातब्बो। सन्निपतित्वा ब्यत्तेन भिक्खुना पटिबलेन सङ्घो ञापेतब्बो—

''सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। यस्मिं वत्थुस्मि अहोसि सङ्घस्स भण्डनं कलहो विग्गहो

उत्क्षिप्त है अनुत्क्षिप्त नहीं। फिर यह धार्मिक कर्म से ही उत्क्षिप्त किया गया है, अधार्मिक से नहीं। परन्तु हाँ, जब यह आपन्न एवं उत्क्षिप्त भिक्षु अपनी आपत्ति को स्वीकार कर रहा है तो इसके अवसारण (सङ्घ में मिला लेने) में कोई दोष नहीं।''

८. सङ्घसामग्रीकथा

२५. तब वे उस उत्क्षिप्त के समर्थक भिक्षु उस उत्क्षिप्त को अपने (सङ्घ) में मिलाकर उत्क्षेपक भिक्षुओं के पास गये। जाकर उन उत्क्षेपक भिक्षुओं से यो बोले—''आयुष्मानो! जिस बात में सङ्घ में झगड़ा, कलह, विवाद, फूट, दरार, अव्यवस्था एवं नानाकरण हो गया था, वह यह भिक्षु अपने आपको आपन्न मान कर उत्क्षिप्त मान गया है। इसके निवेदन पर हमने इसको पुन सङ्घ मे मिला लिया है। तो क्यों न आयुष्मानो! उस बात के कारण हुए विवाद को शान्त कर सङ्घ में पुनः एकता कर ले।''

तब वे उत्क्षेपक भिक्षु जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम

विवादो सङ्घभेदो सङ्घराजि सङ्घववत्थानं सङ्घनानाकरणं, सो एसो भिक्खु आपन्नो च उक्खित्तो च पस्सि च ओसारितो च। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, सङ्घो तस्स वत्थुस्स वूपसमाय सङ्घसामग्गिं करेय्य। एसा ञत्ति।

"सुणातु मे, भन्ते सङ्घो। यस्मिं वत्थुस्मिं अहोसि सङ्घस्स भण्डनं कलहो विग्गहो विवादो सङ्घभेदो सङ्घराजि सङ्घववत्थानं सङ्घनानाकरणं, सो एसो भिक्खु आपन्नो च उक्खित्तो च पस्सि च ओसारितो च। सङ्घो तस्स वत्थुस्स वूपसमाय सङ्घसामग्गिं करोति। यस्सायस्मतो खमति तस्स वत्थुस्स वूपसमाय सङ्घसामग्गिया करणं, सो तुण्हस्स, यस्स नक्खमति सो भासेय्य।

"कता सङ्घेन तस्स वत्थुस्स वूपसमाय सङ्घसामग्गी। निहतो सङ्घभेदो, निहता सङ्घराजि, निहतं सङ्घववत्थानं, निहतं सङ्घनानाकरणं। खमति सङ्घस्स, तस्मा तुण्ही, एवमेतं धारयामी" ति।

तावदेव उपोसथो कातब्बो, पातिमोक्खं उद्दिसितब्बं ति।

९. उपालिसङ्घसामग्गीपुच्छा

[B.508, B.358] २६. अथ खो आयस्मा उपालि येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा उपालि भगवन्तं एतदवोच—"यस्मिं, भन्ते, वत्थुस्मिं होति सङ्घस्स भण्डनं कलहो विग्गहो विवादो सङ्घभेदो

कर एक तरफ बैठ गये और यों बोले—"भन्ते! ये इस उत्क्षिप्त के अनुयायी भिक्षु ऐसा कह रहे हैं—....पूर्ववत्....तो भन्ते! इस सङ्घ की सामग्री (एकता) के लिये कैसे करना चाहिये?"

"क्योंकि, भिक्षुओ! उस उत्क्षिप्त भिक्षु ने अपनी आपत्ति....सङ्घ अपनी एकता का प्रयास करे। वह प्रयास ऐसे करना चाहिये—

सभी भिक्षुओं को, भले ही कोई रोगी हो या नीरोग, एक स्थान पर इकट्ठा होना चाहिये। इस विषय में किसी को सम्मिलित होने न होने की स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिये। भिक्षुओं के इकट्ठा होने पर, उनमें से किसी चतुर भिक्षु को सङ्घ के सम्मुख खड़े होकर यों कहना चाहिये—

ज्ञप्ति— "भन्ते सङ्घ मेरी (बात) सुने। जिस भिक्षु के विषय पर सङ्घ में झगड़ा, कलह....हुआ था, वह यह भिक्षु अपने को आपन्न एवं उत्क्षिप्त मानना स्वीकार करता है। उसके निवेदन पर उसे सङ्घ में पुनः मिला लिया गया है। यदि सङ्घ को उचित लगे तो सङ्घ उस विषय को समाप्त कर सङ्घसामग्री कर ले। यह सूचना है।

अनुश्रावण— "भन्ते सङ्घ मुझे सुने--जिस विषय पर ..मिला लिया गया है। सङ्घ उस विषय के उपशमन के लिये सङ्घसामग्री कर रहा है। जिस आयुष्मान् को यह सामग्री स्वीकार हो वह चुप रहे। जिसे स्वीकार न हो वह बोले।....दूसरी बार भी....। ....तीसरी बार भी... ।"

धारणा— "सङ्घ को उस विषय के शमन के लिये सङ्घसामग्री स्वीकार है, इसीलिये सङ्घ चुप है। ऐसी मेरी धारणा है।"

उसी समय उपोसथ करना चाहिये और प्रातिमोक्ष उद्देश (प्रातिमोक्ष का पाठ) करना चाहिये।

९. उपालिसङ्घसामग्रीपिपृच्छा

२६. तब आयुष्मान् उपालि जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गये। जाकर उन्हें अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालि ने भगवान् से पूछा--"भन्ते! जिस विषय पर

सङ्घराजि सङ्घववत्थानं सङ्घनानाकरणं, सङ्घो तं वत्थुं अविनिच्छिनित्वा अमूला मूलं गन्त्वा सङ्घसामग्गिं करोति, धम्मिका नु खो सा, भन्ते, सङ्घसामग्गी'' ति? ''यस्मिं, उपालि, वत्थुस्मिं होति सङ्घस्स भण्डनं कलहो विग्गहो विवादो सङ्घभेदो सङ्घराजि सङ्घववत्थानं सङ्घनानाकरणं, सङ्घो तं वत्थुं अविनिच्छिनित्वा अमूला मूलं गन्त्वा सङ्घसामग्गिं [N.390] करोति, अधम्मिका सा, उपालि, सङ्घसामग्गी'' ति।

''यस्मिं पन, भन्ते, वत्थुस्मिं होति सङ्घस्स भण्डनं कलहो विग्गहो विवादो सङ्घभेदो सङ्घराजि सङ्घववत्थानं सङ्घनानाकरणं, सङ्घो तं वत्थुं विनिच्छिनित्वा मूला मूलं गन्त्वा सङ्घसामग्गिं करोति, धम्मिका नु खो सा, भन्ते, सङ्घसामग्गी'' ति? ''यस्मिं, उपालि, वत्थुस्मिं होति सङ्घस्स भण्डनं कलहो विग्गहो विवादो सङ्घभेदो सङ्घराजि सङ्घववत्थानं सङ्घनानाकरणं, सङ्घो तं वत्थुं विनिच्छिनित्वा मूला मूलं गन्त्वा सङ्घसामग्गिं करोति, धम्मिका सा, उपालि, सङ्घसामग्गी'' ति।

''कति नु खो, भन्ते, सङ्घसामग्गियो'' ति? ''द्वेमा, उपालि, सङ्घसामग्गियो— अत्थुपालि, सङ्घसामग्गी अत्थापेता ब्यञ्जनुपेता; अत्थुपालि, सङ्घसामग्गी अत्थुपेता च ब्यञ्जनुपेता च।

(१) ''कतमा च, उपालि, सङ्घसामग्गी अत्थापेता ब्यञ्जनुपेता? यस्मिं, उपालि, वत्थुस्मिं होति सङ्घस्स भण्डनं कलहो विग्गहो विवादो सङ्घभेदो सङ्घराजि सङ्घववत्थानं सङ्घनानाकरणं, सङ्घो तं वत्थुं अविनिच्छिनित्वा अमूला मूलं गन्त्वा सङ्घसामग्गिं करोति, अयं वुच्चति, उपालि, सङ्घसामग्गी अत्थापेता ब्यञ्जनुपेता।

(२) कतमा च, उपालि, सङ्घसामग्गी अत्थुपेता च ब्यञ्जनुपेता च? यस्मिं, उपालि, वत्थुस्मिं होति सङ्घस्स भण्डनं कलहो विग्गहो विवादो सङ्घभेदो सङ्घराजि सङ्घववत्थानं सङ्घनानाकरणं, सङ्घो तं वत्थुं विनिच्छिनित्वा मूला मूलं गन्त्वा सङ्घसामग्गिं करोति, अयं वुच्चति, उपालि, सङ्घसामग्गी अत्थुपेता च ब्यञ्जनुपेता च। इमा खो, उपालि, द्वे सङ्घसामग्गियो ति।

सङ्घ में झगड़ा, कलह, विवाद.....नानाकरण हो, सङ्घ उसका विनिश्चय (निर्णय) किये विना अमूल (विना जड़ की) बात से मूल को पाकर सङ्घसामग्री करे तो भन्ते! क्या यह सङ्घसामग्री धर्मानुसार है?''

''उपालि! जिस विषय पर सङ्घ में झगड़ा, कलह.. हो उसका निर्णय किये विना अमूल से मूल को पाकर सङ्घसामग्री करता है, उपालि! वह सङ्घसामग्री धर्मविरुद्ध है। (क)

''भन्ते! जिस विषयपर सङ्घ से झगड़ा....हो उस वस्तु का निर्णय कर, मूल से मूल पाकर की गयी सङ्घसामग्री धर्मानुसार है?''

''हाँ, उपालि! वह सङ्घसामग्री धर्मानुसार है।'' (ख)

द्विविध सङ्घसामग्री— ''भन्ते! यह सङ्घसामग्री कितने प्रकार की होती है?''

''उपालि! सङ्घसामग्री दो प्रकार की होती है— (१) उपालि पहली सङ्घसामग्री होती है अर्थरहित परन्तु व्यञ्जनसहित। यह अर्थरहित परन्तु व्यञ्जनसहित सामग्री क्या है? उपालि! जिस विषय में सङ्घ का झगड़ा....उसे निर्मूल किये विना की गयी सङ्घसामग्री अर्थरहित परन्तु व्यञ्जनसहित है। (२) उपालि दूसरी सामग्री होती है अर्थसहित भी व्यञ्जनसहित भी। यह अर्थसहित व्यञ्जनसहित सङ्घसामग्री

[B.509] २७. अथ खो आयस्मा उपालि उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"सङ्घस्स किच्चेसु च मन्तनासु च अत्थेसु जातेसु विनिच्छयेसु च।
कथम्पकारोध नरो महत्थिको भिक्खु कथं होतिध पग्गहारहो? ति॥

[R.359] "अनानुवज्जो पठमेन सीलतो अवेक्खिताचारसुसंवुतिन्द्रियो।
पच्चत्थिका नूपवदन्ति धम्मतो न हिस्स तं हाति वदेय्यु येन नं॥

[N.391] "सो तादिसो सीलविसुद्धिया ठितो विसारदो होति विसय्ह भासति।
नच्छम्भति परिसगतो न वेधति अत्थं न हापेति अनुय्युतं भणं॥

"तथेव पञ्हं परिसासु पुच्छितो न चेव पज्झायति न मङ्कु होति।
सो कालागतं ब्याकरणरहं वचो रञ्जेति विञ्ञूपरिसं विचक्खणो॥

"सगारवो वुड्ढतरेसु भिक्खुसु आचेरकम्हि च सके विसारदो।
अलं पमेतुं पगुणो कथेतवे पच्चत्थिकानं च विरद्धिकोविदो॥

"पच्चत्थिका येन वजन्ति निग्गहं महाजनो सञ्ञपनं च गच्छति।
सकं च आदायमयं न रिञ्चति वियाकरं पञ्हमनूपघातिकं॥

[B.510] "दूतेय्यकम्मेसु अलं समुग्गहो सङ्घस्स किच्चेसु च आहु नं यथा।

क्या है? उपालि, जिस कलहवाली वस्तु का निर्णय कर मूल से मूल तक जाकर यदि सङ्घसामग्री की जाय तो यह कहलाती है— अर्थसहित एवं व्यञ्जनसहित सङ्घसामग्री। इस तरह उपालि! यह सङ्घसामग्री द्विविध होती है।

२७. तब आयुष्मान् उपालि आसन से उठकर उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर जहाँ भगवान् थे वहाँ प्रणाम कर भगवान् ने इन गाथाओं द्वारा यह कहा—

"सङ्घ के कर्त्तव्यों, मन्त्रणाओं तथा उत्पन्न अर्थों एवं विनिश्चयों के समय कैसा पुरुष बहूपकारक होता है? और कैसे भिक्षु विशेष ग्रहण करने योग्य होता है?"

(भगवान् बोले—) जो प्रधान शीलों में दोषरहित हो, अपेक्षित आचार वाला हो, इन्द्रियों में संयमी हो, विरोधी भी जिसे धर्म (ईमानदारी) से दोषी नहीं कह सकते; क्योंकि उसमे वैसा कोई दोष नहीं होता जिससे उसकी निन्दा की जा सके।

वह वैसा ही सदाचार की शुद्धि से सम्पन्न है, विशारद है, विरोधी को परास्त करके बोलता है, परिषद् में जाकर न तो स्तब्ध होता है, न किसी से विचलित होता है। व्याख्येय विषयों मे से किसी का अर्थ (विश्लेषण करना) नहीं छोड़ता।।

परिषदों मे प्रश्न पूछे जाने पर, न सोचने लगता है, न चुप होता है, वह तो पण्डित की तरह प्रत्युत्पन्न प्रतिभा से प्राप्त उत्तर देता हुआ सभा का चित्त प्रसन्न कर देता है।।

वरिष्ठ भिक्षुओ में श्रद्धालु, अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ विश्वासी, मीमासा करने में समर्थ तथा विरोधियों के मनोभावों को ज्ञाता होता है।।

विरोधियों को वह अपने प्रबल तर्कों से निगृहीत कर लेता है, विद्वान् ही जिसके गूढ़ भावों को समझ पाते है। स्वपक्ष की हानि किये विना प्रश्नों का उत्तर देते समय स्व सम्प्रदाय एवं सिद्धान्तों से च्युत नहीं होता।।

करं वचो भिक्खुगणेन पेसितो अहं करोमी ति न तेन मञ्ञति॥
"आपज्जति यावतकेसु वत्थुसु आपत्तिया होति यथा च वुट्ठिति।
एते विभङ्गा उभयस्स स्वागता आपत्ति वुट्ठानपदस्स कोविदो॥
"निस्सारणं गच्छति यानि चाचरं निस्सारितो होति यथा च वत्तना।
ओसारणं तं वुसितस्स जन्तुनो एतं पि जानाति विभङ्गकोविदो॥
"सगारवो वुड्ढतरेसु भिक्खुसु नवेसु थेरेसु च मज्झिमेसु च।
महाजनस्सत्थचरोध पण्डितो सो तादिसो भिक्खु इध पग्गहारहो ति॥

कोसम्बक्खन्धकं निट्ठितं दसमं॥

१०. तस्सुद्दानं

कोसम्बियं जिनवरो विवादापत्तिदस्सने।
नुक्खिपेय्य यस्मिं तस्मिं सद्धायापत्ति देसये॥ १॥
अन्तोसीमायं तत्थेव बालकं चेव वंसदा।
पालिलेय्या च सावत्थि सारिपुत्तो च कोलितो॥ २॥
महाकस्सपकच्चाना कोट्ठिको कप्पिनेन च।
महाचुन्दो च अनुरुद्धो रेवतो उपालि चुभो॥ ३॥

सङ्घ के दूतकर्म में समर्थ, सुशिक्षित एवं जैसा उससे कहा जाय वैसा ही करने वाला तथा कार्यसिद्ध होने पर 'मेरे द्वारा पूर्ण हुआ' ऐसा अभिमान नहीं करता।।

जिन जिन बातों में आपत्तियुक्त होता है या जिस तरह उस आपत्ति से मुक्ति होती है, दोनों (भिक्षु–भिक्षुणी) विभङ्गों में सुनिष्णात है तथा आपत्ति से मुक्ति का उपाय भलीभाँति जानता है।।

जिनको विना किये निःसारण को प्राप्त होता है, जिनके करने से निःसारण प्राप्त होता है, उस आचरण के करने वाले प्राणी का जैसे अवसारण होता है—वह विभङ्ग का कोविद इन सब बातों को जानता है।।

वृद्धतम भिक्षुओं का, मध्यम भिक्षुओं का तथा नव भिक्षुओं का यथा योग्य आदर करने वाला, महाजन (शास्ता या गुरु) के वचनों के अर्थ की रक्षा में पण्डित—ऐसा भिक्षु विशेषतः संग्रह के योग्य हैं।।

कौशाम्बकस्कन्धक दशम समाप्त।।

उसका उदान

कौशाम्बी में भगवान् बुद्ध ने आदेश दिया कि विवादास्पद आपत्ति के लिये जिस किसी को उत्क्षिप्त करने में, सङ्घ की एकता को दृष्टि मे रखते हुए सावधानी वरतनी चाहिये।। १।।

इसके बाद बाललोण ग्राम की कथा है, तदनन्तर प्राचीन वंशदान मे भिक्षु अनुरुद्ध आदि को उपदेश, ततः परिलेय्यक मे जाने ग्राम की कथा है। वहाँ से चलकर सारिपुत्त एवं मौद्गल्यायन के साथ संवाद।। २।।

आनन्दो राहुलो चेव गोतमीनाथपिण्डिको।
सेनासनं विवित्तं च आमिसं समकं पि च॥ ४॥
न केहि छन्दो दातब्बो उपालिपरिपुच्छितो।
अनानुवज्जो सीलेन सामग्गी जिनसासने ति॥ ५॥

॥ महावग्गपालि निट्ठिता ॥

महाकाश्यप, महाकात्यायन, कोष्ठिक, काप्पिन, महाचुन्द, अनुरुद्ध, रेवत, उपालि ।। ३ ।।

आनन्द, राहुल, महाप्रजापती गौतमी, अनाथपिण्डिक गृहपति से विविक्त शयनासन, सामूहिक भोजन आदि के विषय में संवाद वर्णित है।। ४ ।।

अन्त में उपालि द्वारा सङ्घसामग्री के विषय में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देते हुए भगवान् ने उपसंहार में शीलवान् भिक्षु के संग्रह हेतु प्रशस्ति वचन कहे हैं।। ५ ।।

॥ महावग्गपालि समाप्त॥

००/-
००/-
५/-
००/-
००/-
५०/-
००/-
००/-
५०/-
प्रेस
प्रेस
००/-
३०/-
प्रेस
००/-
००/-
००/-
प्रेस
००/-
००/-
२०/-
००/-
९५/-
००/-
००/-
४०/-
५०/-
०/-
०/-

बौद्धभारती

पोस्ट बॉक्स नं. – 1049

वाराणसी-221 002.